॥ श्रीः ॥

॥ हरिदास-संस्कृत-ग्रन्थमाला ॥

९२

॥ श्रीः ॥

[दश]कुमारचरितम्

'बालविबोधिनी'-'बालक्रीडा'-द्वयोपेतम्



[चौखम्]बा संस्कृत सीरिज आफ़िस, वाराणसी-१

मो. ल. भावे

थाळनेर

॥ श्रीः ॥

हरिदास-संस्कृत-ग्रन्थमाला
९२



महाकविदण्ड्याचार्यविरचितं

शकुमारचरितम्

बोधिनी' 'बालक्रीडा' संस्कृत-हिन्दी-
व्याख्याद्वयोपेतम्

संस्कृतव्याख्याकारः
कवितार्किक-पण्डितराज-
ाचार्य श्रीताराचरणभट्टाचार्यः

हिन्दीव्याख्याकारः
साहित्यरत्न—
पण्डित श्रीकेदारनाथ शर्मा



ंस्कृत सीरिज आफिस, वाराणसी-१



मूल्यं ५॥)

[ई० १९५८

प्रकाशक :—
चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस,
वाराणसी–१

The Chowkhamba Sanskrit Series
P. O. Box 8, Varanasi.
(INDIA)
1958
(द्वितीयं संस्करणम्)

मुद्रक :—
विद्याविलास प्रेस,
वाराणसी–१

विज्ञप्तिः

्रेभिः श्रीमद्भिः श्रीचौखम्भा-संस्कृत-सिरीज-स्वत्वाधिकारिभिर्बहु-
मिदानीं महाकवेर्दण्डिनः सुप्रसिद्धां कृतिं दशकुमारचरितं सम्मुद्रय
मोऽयं समुद्यमः। यद्यपि बहुसंख्याकाष्टीका दशकुमारस्य मुद्रिताः
ताः काश्चनातिसंक्षिप्ता या भावगभीरस्यास्य सन्दर्भस्य तात्पर्य-
ः काश्चन चातिविस्तृतास्ततश्च विद्यार्थिनामल्पविषयग्राहिण्या मत्या
रणानर्हाः। अतश्च मया मध्यममार्गमवलम्ब्य विद्यार्थिनां ग्रन्था-
साहाय्यं वितरीतुं बालविबोधिनीनाम्नी काचन नवीना व्याख्याऽत्र

रुषधर्मत्वादत्र स्खलनं सम्भवदेव। अतो मन्मतेरपाटवाद् वा
यानि यान्यत्र स्खलितानि सञ्जातानि तानि विचारदृशः सहृदयाः
य मामनुग्रहीष्यन्तीति मे सुमहान् विश्वासः।

ालविबोधिनी परीक्षार्थिनां विद्यार्थिनां चेत् स्वल्पायाप्युपकाराय
सकलं श्रमं सार्थकं मंस्ये।

स्कृतसीरीजसञ्चालकानाञ्चायं ग्रन्थप्रकाशसमुद्यमो धन्यवादार्ह
न। भगवान् विश्वनाथो दीर्घायुषामेतेषामिमं समुद्यमं सर्वथा सफलं
कं नियतप्रार्थनेत्यलं पल्लवितेन।

विदुषामनुचरः—

श्रीताराचरणशर्मभट्टाचार्यः

दशकुमाराणां नामानि परिचयश्च

१. राजवाहनः—मगधाधिपतेश्चन्द्रवंशीयराजहंसस्य तनयः ।

२. सोमदत्तः—राजहंसमन्त्रिणः सितवर्मकनिष्ठात्मजस्य सत्यवर्मणस्तनयः ।

३. पुष्पोद्भवः— ,, पद्मोद्भवकनिष्ठात्मजस्य रत्नोद्भवस्य तनयः ।

४. अपहारवर्मा—राजहंसमित्रस्य मिथिलेश्वरप्रहारवर्मणो यमजपुत्रयोरेकः ।

५. उपहारवर्मा— ,, ,, यमजपुत्रयोरपरः ।

६. अर्थपालः—राजहंसमन्त्रिणो धर्मपालकनिष्ठात्मजस्य कामपालस्य तनयः ।

७. प्रमतिः— ,, सितवर्मज्येष्ठात्मजस्य सुमतेस्तनयः ।

८. मित्रगुप्तः— ,, धर्मपालज्येष्ठात्मजस्य सुमन्त्रस्य तनयः ।

९. मन्त्रगुप्तः— ,, धर्मपालमध्यमात्मजस्य सुमित्रस्य तनयः ।

१०. विश्रुतः— ,, पद्मोद्भवज्येष्ठात्मजस्य सुश्रुतस्य तनयः ।

विषयसूची

पूर्वपीठिकायां प्रथमे उच्छ्वासे—पुष्पपुरी-राजहंस-वसुमती-कुलामात्यवर्णनं राजहंसस्य मानसारेण सह विग्रहः। कुमाराणामुत्पत्तिः। मानसारस्य महेश्वरसमाराधनम्। राजहंसपराजयः, उपहारवर्मापहारवर्मपुष्पोद्भवार्थपालसोमदत्तप्राप्तिः।

" द्वितीये " वामदेवादेशात्कुमाराणां दिग्विजययात्रा। राजवाहनस्य द्विजोपकाराय गमनम्। कुमाराणां भूभ्रमणारम्भः।

" तृतीये " सोमदत्तचरितवर्णनम्।

" चतुर्थे " पुष्पोद्भवचरितवर्णनम्।

" पञ्चमे " राजवाहनचरितवर्णनारम्भः।

उत्तरखण्डे प्रथमे " राजवाहनचरितवर्णनसमाप्तिः।

" द्वितीये " अपहारवर्मचरितवर्णनम्।

" तृतीये " उपहारवर्म "

" चतुर्थे " अर्थपालचरित "

" पञ्चमे " प्रमतिचरित

" षष्ठे " मित्रगुप्त " "

" सप्तमे " मन्त्रगुप्त " "

" अष्टमे " विश्रुतचरितवर्णनारम्भः।

उत्तरपीठिकायां विश्रुतचरितवर्णनासमाप्तिः ग्रंथसमाप्तिश्च।

पश्चात्का मानते हैं। परन्तु भामहका काल ६०० ई० के बादका कदापि नहीं है अपितु उनका काल ५०० ई० प्रथम अथवा इसके समीप मानें तो कोई हानि नहीं है।

हाँ, महाशय काणेका कथन विचारने योग्य अवश्य हो सकता है, क्योंकि अवन्तिसुन्दरी कथाको प्रमाणरूपेण माननेमें अभीतक सभी इतिहासज्ञोंमें मतैक्य नहीं है। महाशय काणे स्वमतानुरूप सिद्धान्तके समर्थनमें कहते हैं कि कवयित्री विद्या (विज्जा) वा विज्जकाके नामसे निर्दिष्ट एक श्लोक 'शार्ङ्गधर-पद्धति' में वर्णित है। उक्त श्लोकमें 'काव्यादर्श' का वर्णन है। वह श्लोक निम्नांकित है—

'नीलोत्पलदलश्यामां विज्जकां मामजानता।
वृथैव दण्डिना प्रोक्तं सर्वशुक्ला सरस्वती॥'

इस कथनसे यह सिद्ध ही है कि 'काव्यादर्श' के प्रणेता दण्डी कवि ही हैं। यथाक्रम दशम और एकादश शताब्दियोंके आलंकारिकोंने अर्थात् मुकुल भट्ट और मम्मट भट्ट महोदयोंने क्रमतः अपने-अपने अलंकार-ग्रन्थोंमें, जिनके नाम 'अभिधावृत्तिमातृका' तथा 'शब्दव्यापारविचार' रक्खा है, विज्जकाके अनेक श्लोकोंका उद्धरण दिया है, अतएव विज्जकाका समय ८५० ई० पूर्व है। जल्हणकविकी 'सूक्तिमुक्तावली' में राजशेखरकृत जो श्लोक मिलता है उससे विदित होता है कि कर्नाटक प्रान्तमें विजयांका नामकी कोई एक कवयित्री सरस्वतीके समान तदानीन्तना थी, जैसा निम्नांकित शार्ङ्गधरपद्धतिके १८४ वें श्लोकसे प्रतीत होता है—

'सरस्वतीव कार्णाटी, विजयाङ्का जयत्यसौ।
या विदर्भगिरां वासः कालिदासादनन्तरम्॥'

विज्जका ही विजयांका थी। तथा वही विजयांका यदि द्वितीय पुलकेशीके कुमार चन्द्रादित्यकी महारानी विजयभट्टारिका रही हो तो उसका काल ६६० ईसवीके समीप माना जाता है। अतः इससे सिद्ध हो गया कि महाशय काणे दण्डी कविको ६०० ई० के समीप मानते हैं तथा अन्य इतिहासकार इन्हें सातवीं

सदीके अन्तिम चरणमें मानते हैं। इन दोनों मतोंमें अर्थात् महाशय काणे और अन्य इतिहासवेत्तृमण्डलोंके मतोंमें महाशय काणेका मत कुछ शिथिल मालूम पड़ता है। अस्तु, दण्डी कविके द्वारा रचित ग्रन्थोंमें भी इतिहासकारोंमें मतैक्य नहीं है। राजशेखर कविकृत शार्ङ्गधरपद्धतिके श्लोक १७४ से स्पष्ट विदित होता है कि प्राचीन समयसे दण्डीकविरचित तीन काव्य हैं—जैसा कि माना भी जाता है।

महाकवि दण्डीकी रचना

कुछ इतिहासलेखक दशकुमारचरित तथा काव्यादर्शको, एवं कोई अवन्तिसुन्दरीकथा तथा काव्यादर्शको दण्डीकविप्रणीत मानते हैं। परन्तु काव्यादर्शको सभी एकमतसे दण्डीकविविरचित मानते हैं। लेकिन, अवन्तिसुन्दरी कथाकी अपेक्षा दशकुमारकी ओर इतिहासज्ञ अधिक मतैक्यमें पाये जाते हैं। कुछ इतिहासज्ञ तो 'छन्दोविचिति' नामक एक काव्यको दण्डी कविका तीसरा काव्य माननेके पक्षमें हैं। किन्तु, छन्दस् शब्द छन्दःशास्त्रका नाम ही है। इस नामका कोई काव्य नहीं है। अस्तु, महाशय कीथके मतानुसार दशकुमारचरितांकका भूगोलचित्रण तो हर्षवर्द्धन पूर्वके भारतके वर्णनसे साम्य रखता है। दशकुमारचरितकी भाषाप्रणाली तथा वर्णनशैली भी दण्डीकविके सुबन्धु और बाणभट्टके पूर्वमें होनेकी सूचना देती है। महाकवि भारवि कांचीनगरीके नृपति सिंह विष्णुवर्माके सभापण्डित थे। इससे यह सिद्ध है कि दण्डी कवि सातवीं सदीके उत्तरार्द्धमें थे।

दशकुमारचरित

यह एक सुन्दर गद्यकाव्य है। इसमें पूर्वपीठिका, चरित और उत्तरपीठिका, तीन भाग हैं। पाँच उच्छ्वासोंकी पूर्वपीठिका है। आठ उच्छ्वासोंका चरितभाग है। उत्तरपीठिका तो केवल अष्टम उच्छ्वासका उपसंहारमात्र है। इस काव्यकी भाषा ललित तथा मधुर है और साथ ही बाणभट्ट एवं सुबन्धु कविकी भाषाओंसे सरल भी है। यह काव्य श्लेषालंकारहीन है। अन्य उपमा आदि अलंकार भी प्रचुरतामें नहीं पाये जाते। इसका कथानक राजवाहनादि

दशकुमारोंके यात्रा-विलास आदिके आधारपर अति रोचकता एवं सरलतासे लिखा गया है। इसमें पाठकोंको मुग्ध एवं आकर्षित करनेकी खूबी है। चौर-शास्त्र और राजनीतिज्ञान तथा व्यावहारिक ज्ञानका उपदेश तो पदे-पदे है। कुछ स्थलोंमें कामशास्त्रका वर्णन निपुणतापूर्वक वर्णित है। कुछ इतिहासके पारंगत उसे अश्लील होनेसे दोषमय कहते हैं किन्तु साहित्यिक दृष्टिसे वस्तुतः वह गुण ही है। बाण और सुबन्धु कविके सदृश इस काव्यका वर्णित कथाभाग पाठकोंके स्मृतिपटलमें सदा अंकित रहता है। तदानीन्तन व्यवहारोंकी कुटिल-ताएँ तो इसमें कूट-कूटकर भरी हैं। कुछ लोगोंके विचारसे यह काव्य एक लेखकका लिखा नहीं है। उनके विचारोंसे यह दो कवियोंकी कृति है। वे पूर्वपीठिकाके लेखकको अलग तथा उत्तरपीठिकाके लेखकको अलग मानते हैं। वे लोग कहते हैं कि पूर्वपीठिका और उत्तरपीठिकाके सूक्ष्मनिरीक्षणसे एक दूसरेमें साम्य नहीं है। कुछ विद्वानोंके मतसे तो पूर्वपीठिका और उत्तर-पीठिका दण्डीकविनिर्मित हैं ही नहीं। कुछ इतिहासज्ञ तो पद्मनाभनामक कविको उत्तरपीठिकाका लेखक मानते हैं। अस्तु...।

केवल दशकुमारचरितकी तीन टीकाएँ हैं। वे टीकाएँ पूर्वपीठिका और उत्तरपीठिकापर नहीं हैं। उनके कर्ताओंके नाम तथा टीकाओंके नाम निम्ना-ङ्कित हैं:—शिवराम पण्डितकी 'भूषणा', कवीन्द्राचार्य पण्डितकी 'पदचन्द्रिका' और पण्डित भानुचन्द्रकी 'लघुदीपिका'। ये तीनों टीकाएँ सुप्रसिद्ध हैं। पूर्वपीठिकापर कोई टीका न होनेसे कुछ विद्वानों के मतसे पूर्वपीठिका महाकवि-दण्डी-निर्मित नहीं है।

जो भी हो, प्राचीनताके अनुयायी तो महाकविदण्डी-निर्मित पूर्वपीठिका-चरित और उत्तरपीठिका-सहित 'दशकुमारचरित' को मानते हैं। अतः दण्डी कविके ललित पदोंवाले दशकुमारचरितका कौन गद्यकाव्य लालित्य में साम्य कर सकता है?

कृपेच्छु—

केदारनाथ शर्मा

॥ श्रीः ॥

दशकुमारचरितम्

पूर्वपीठिका

प्रथमोच्छ्वासः

ब्रह्माण्डच्छत्रदण्डः शतधृतिभवनाम्भोरुहो नालदण्डः

❀ अथ बालविबोधिनी ❀

[illegible]च्छायां जितपूर्णेन्दुविग्रहाम् ।
[illegible] वाऽप्यथवा शुभ्रां काञ्चिदेकां गिरं श्रये ॥
[illegible]ग्रजन्मानं गुरुंश्चानस्य यत्नतः ।
व्याख्यां दशकुमारस्य कुर्वे बालविबोधिनीम् ॥

आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखमित्यनुशासनमनुसरता तत्रभवता कविकुलधौरेयेणाचार्यदण्डिना चिकीर्षितस्य दशकुमारचरिताख्यस्य गद्यकाव्यस्य प्रत्यूहव्यूहविध्वंसनाय भगवच्चरणारविन्दस्मरणरूपं मङ्गलं कर्त्तुमुपक्रम्यते ब्रह्माण्डे-त्यादिना ।

❀ बालक्रीड़ा ❀

नवनीत खा, नवनीत सब लाते *कहाँसे पात्रमें ।
औ मूकको वाचाल भी करते अहो क्षणमात्रमें ॥
जो विस्मयान्वित वस्तुओंकी शक्तिके कर्त्ता सदा ।
वे कृष्णजी सह राधिका जिह्वाग्रणी हों सर्वदा ॥

संसारमें कार्य-कारण दोनोंका नियतसिद्ध एक सम्बन्ध है। जिस स्थानमें कार्य रहता है वहीं कारण रहता है क्योंकि कार्य विना कारणके कभी नहीं होता। यदि यह कहा जाय कि, [illegible]ारण रहनेपर कार्य स्वयमेव हो जाता है' तो यह बात भ्रमपूर्ण है एवं अनिश्चित भी है। [illegible]यः देखा जाता है कि कार्य कारणके रहनेपर भी नहीं होता। अत एव उपर्युक्त बात सर्वथा [illegible]य है क्योंकि जब कार्य विना कारणके नहीं होता है तब कार्यसाधक कोई दैवीशक्ति है [illegible]तें कार्यप्रतिबन्धक भी कहा जा सकता है। उसी दैवीशक्तिके, जो कार्यकी प्रतिबन्धक है, दूर

---

* जो माखन खाकर गोपियोंकी प्रार्थनापर अपनी लीलासे उसी क्षण बरतन भर देते हैं।

क्षोणीनौकूपदण्डः क्षरदमरसरित्पट्टिकाकेतुदण्डः ।
ज्योतिश्चक्राक्षदण्डस्त्रिभुवनविजयस्तम्भदण्डोऽङ्घ्रिदण्डः

अत्र कविना वामनरूपेणावतीर्णस्य भगवतो नारायणस्य बलिनियमनार्थमाविष्कृतस्य पादत्रयस्य वर्णनं कृतम्। तेष्वेकः पाद ऊर्ध्वमुत्क्षिप्तः समस्तं गगनं, द्वितीयश्चाधोगतः सम्पूर्णां क्षोणीं, तृतीयः पुनर्नाभितो निर्गतो बलेरुत्तमाङ्गं समाक्रान्तवानिति पौराणिकी कथा। रूपकेण कविस्तामेव विशिनष्टि—

ब्रह्माण्डं जगदेव छत्त्रमातपत्रं तस्य दण्ड आधारयष्टिः। भगवतः समस्तजगदाधारत्वात्। एतेनोर्ध्वपादो गम्यते। शतधृतेर्ब्रह्मणो भवनं गृहमाश्रय इत्यर्थः, यदम्भोरुट् कमलं तस्य नालदण्डो वृन्तभूता यष्टिः, अनेन मध्यमपादो गम्यते। क्षोणी क्षितिरेव नौस्तरणिस्तस्याः कूपदण्डो गुणवृक्षः, एतेन भूतलस्थपादो गम्यते। क्षरन्ती प्रवहमाणा याऽमरसरिदाकाशगङ्गा सैव पट्टिका पताका तस्याः केतुदण्डो ध्वजदण्डस्वरूपः, अयमप्यूर्ध्वपादः। ज्योतिषां ग्रहनक्षत्रादीनां चक्रं मण्डलमेव चक्रं रथचक्रमित्यर्थः, तस्याक्षदण्डः काष्ठदण्डविशेषः। त्रयाणां भुवनानां समाहारः त्रिभुवनं त्रैलोक्यं तस्य यो व्यापनरूपो विजयस्तत्सूचकः स्तम्भदण्डः। विबुधद्वेषिणामसुराणां

हो जानेपर कार्यसिद्धि हो जाती है। वह कार्यप्रतिबन्धक शक्ति ईश्वरानुकम्पासे ही दूर हो सकती है इसी कारण भक्त जन स्वसम्प्रदायानुसार विशेष तथा सामान्य रीतिसे सज-धज एवं भावनाके साथ परमपिता परमेश्वरका या उनकी कृतियोंका आराधन करते हैं। उसी भावमय भक्तिका नाम मंगलाचरण है जो ग्रन्थारम्भमें की जाती है।

आगामी सृष्टिके सभी लोग—प्राणिमात्र—इस मंगलाचरणसे सुन्दर फल प्राप्त करें इसी कारण ग्रन्थकृत् सज्जन अपने-अपने ग्रन्थोंके प्रारम्भमें मंगलाचरण करते हैं, जिसके कारण अध्यापक तथा शिष्यों, पाठक एवं पाठिकाओंको अनायास ही शुभ फलकी प्राप्ति होती है। पूज्यपाद दण्डी कविने भी इसी प्रणालीके आधारपर अपने ग्रन्थ—दशकुमारचरित—की रचनाके आरम्भमें भगवान् वामनके चरणकी वन्दना की, जिससे उनके ग्रन्थकी निर्विघ्न समाप्ति भी हो तथा सुहृदोंको लाभ भी हो। वे अपनी भावमयी भक्ति निम्नरीत्या प्रदर्शित करते हुए भगवान्के चरणकमलोंकी स्तुति करते हैं—

परमपिता परमेश्वर वामन भगवान्का चरणकमलदण्ड आपका तथा पाठक-पाठिकाओंका कल्याण करनेवाला है। जिस समय देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिए विष्णु भगवान्ने छद्मवेषी वामनावतार धारण किया था तथा पातालके राजा बलिसे तीन चरण पृथ्वी-दानका संकल्प करा लिया था उस समय राजा बलिको छद्मसे बन्दी करनेके हेतु उन्होंने तीनों लोकोंको नापनेके लिए अपना चरणरूपमात्र दण्ड बनाया था तथा उसे आकाशतक लम्बायमान कर दिया था। उस समय वह चरण जैसा प्रतीत होता था उसीका वर्णन इस श्लोकमें चित्रित किया गया है।

श्रेयस्त्रैविक्रमस्ते वितरतु विबुधद्वेषिणां कालदण्डः ॥

कालदण्डो यमदण्डस्वरूपः, त्रिविक्रमस्यायमिति त्रैविक्रमो विष्णुसम्बन्धी अङ्घ्रिश्चरणो दण्ड इवेत्यङ्घ्रिदण्डश्चरणदण्डस्ते तुभ्यं तव वा श्रेयो मङ्गलं सुकृतं वा वितरतु ददातु । अत्र रूपकालङ्कारसंसृष्टिः । ब्रह्माण्ड-क्षोणी-स्वर्गङ्गासु छत्र-नौ-पट्टिकानामारोपो भगवच्चरणे दण्ड-कूपदण्ड-ध्वजदण्डत्वारोपे हेतुरिति परम्परितरूपकं तच्चात्राश्लिष्टशब्दनिबन्धनम् । ज्योतिश्चक्राक्षदण्डेत्यत्र तु चक्रशब्दस्य श्लिष्टत्वात् श्लिष्टशब्दनिबन्धनम् । अन्यत्र तु केवलं निरङ्गरूपकम् । तेषाञ्च परस्परनिरपेक्षत्वात् संसृष्टिः । वृत्तञ्चात्र स्रग्धरा ।

वह चरण क्या, मानो ब्रह्माण्डरूपी छत्रका स्वर्णमय दण्ड है । अथवा ब्रह्माके उत्पत्ति स्थानरूपी कमलका नाल-दण्ड है । वा पृथ्वीरूपी नौकाका कूपदण्ड (*गुनरखा) है । अथवा स्वर्गसे गिरनेवाली आकाशगंगारूपी पताकाका केतुदण्ड है । अथवा चन्द्रादि नक्षत्रोंके ज्योतिश्चक्रका अक्षदण्ड है । अथवा भगवान्‌के त्रैलोक्य-विजयको सूचित करनेवाला सूचक स्तम्भ है तथा इन्द्रादि देवोंके शत्रुओंको ताड़ना देनेवाला कालदण्ड है ।

व्युत्पत्ति

इस श्लोकमें प्रतिपादके अन्तमें आठ बार दण्ड शब्द व्यवहृत हुआ है तथा प्रतिपादके पाँचवें अक्षरके पश्चात् यह शब्द आया है । अतः पादान्त्यानुप्रास और पदान्त्यानुप्रास इसे कहना चाहिये । हिन्दीमें इसे तुकान्त कविता कहा जाता है । परन्तु चौथे पादमें पाँच अक्षरोंके पश्चात् पदान्त्यानुप्रास कुछ शिथिल है क्योंकि वहाँ दण्ड शब्द व्यवहृत नहीं है । प्रति स्थल में दण्डः शब्द है परन्तु, अङ्घ्रिके पूर्व दण्डो होनेसे स्वरूप-प्रक्रमभंगदोष कहा जा सकता है । यदि प्रकारान्तरसे ये शब्द रचे जायँ तो निर्दोष हो जायँगे ।

तीनों भुवनोंको जीतनेके लिए भगवान् वामनने तीन बार पैरको विस्तृत किया इसी भावको झलकानेके लिए त्रिभुवन एवं त्रैविक्रम पद विशेषणरूपसे द्योतित किये गये हैं । अतः इसे परिकरालंकार जानना चाहिये । दण्डी कवि भगवान् वामनके चरणकमलोंमें श्रद्धासे नतमस्तक हो रहे हैं । इससे यहाँ शुद्ध भक्ति प्रकट हो रही है । अंघ्रि अर्थात् चरणको दण्डरूप मानकर सात स्वरूपोंमें उसे व्यक्त करनेका प्रयास किया गया है जिससे यहाँ रूपकालंकार है । वही रूपक ब्रह्माण्डच्छत्रदण्डः क्षोणीनौकूपदण्डः क्षरदमरसरित्पट्टिकाकेतुदण्डः आदि तीनों चरणोंमें अश्लिष्ट परम्परित है तथा 'ज्योतिश्चक्राक्षदण्डः' में श्लिष्टपरम्परित है, अन्य शेष स्थलोंमें साधारण है ।

इस सम्पूर्ण ग्रन्थमें पदे-पदे अनुप्रास तथा यमकालंकार आये हैं । अतः उन्हें मैं न

* गुनरखा—अनुकूल पवनकी ओर बिना पतवार नौका ले जाते समय जो बाँस जलमें धँसाया जाता है उसे मल्लाह लोग गुनरखा कहते हैं ।

(१) अस्ति समस्तनगरीनिकषायमाणा शश्वदगण्यपण्यविस्तारितमणिगणादिवस्तुजातव्याख्यातरत्नाकरमाहात्म्या मगधदेशशेखरीभूता पुष्पपुरी नाम नगरी ।

(२) तत्र वीरभटपटलोत्तरङ्गतुरङ्गकुञ्जरमकरभीषणसकलरिपुगणकटकजलनिधिमथनमन्दरायमाणसमुद्दण्डभुजदण्डः, पुरन्दरपुराङ्गणवनविहरणपरायणतरुणगणिकागणजेगीयमानयातिमानया शरदिन्दुकुन्दघनसारनीहारहारमृणालमरालसुरगजनीरक्षीरगिरिशाट्टहासकैलासकाशनीकाशमू-

(१) अस्तीत्यस्य पुष्पपुरी नाम नगरीत्यनेनान्वयः। समस्तानां सकलानां नगरीणां निकषः कषणोपल इवाचरतीति निकषायमाणा सर्वश्रेष्ठादर्शभूता । (अत्रोपमालङ्कारः) शश्वच्चिरन्तरम् अगण्यैरसंख्यैः पण्यैः विक्रेयैः विस्तारितैर्विक्रयार्थं प्रसारितैः मणिगणादिवस्तुजातैस्तत्तद्द्रव्यसमूहैः व्याख्यातं प्रकटितं रत्नाकरस्य समुद्रस्येव माहात्म्यं महिमा यस्याः सा, मगधदेशस्य कीकटस्य शेखरीभूता शिरोभूषणरूपा, पुष्पपुरी कुसुमपुरं नाम नगरी अस्ति वर्त्तते यस्याः साम्प्रतिकं नाम पाटलिपुत्रमिति ज्ञेयम् ।

(२) तत्र पुष्पपुर्यां, वीराणां शूराणां भटानां योद्धॄणां पटलेन समूहेन उत्तरङ्गः उद्गतवीचिस्तथा–तुरङ्गा अश्वाः कुञ्जरा गजास्ते मकरा नक्रा इव तैर्भीषणो भयङ्करस्तथा सकलानां रिपुगणानां शत्रुमण्डलानां कटकं सैन्यं जलनिधिः समुद्र इव तस्य मथने आलोडने मन्दरायमाणः मन्दराचल इवाचरन् मन्थनदण्डस्वरूपः, समुद्दण्डः समुद्यतो भुजो बाहुर्दण्ड इव यस्य सः। पुरन्दरपुरस्य अमरावत्या अङ्गणवने चत्वरोद्याने नन्दनवने इति यावत्, विहरणपरायणेन भ्रमणशीलेन तरुणगणिकागणेनाप्सरःसमूहेन जेगीयमानया मुहुर्गीतया, अति सातिशयं मानं परिमाणं यस्यास्तया अपरिमितया, शरदिन्दुः शरच्चन्द्रश्च कुन्दं माघ्यकुसुमञ्च घनसारः कर्पूरश्च नीहारो हिमञ्च हारो मौक्तिकस्रक् च मृणालं विसञ्च मरालो हंसश्च सुरगज

लिखूँगा। परन्तु यथाशक्ति अर्थालकारोंको दिखलानेकी चेष्टा करूँगा।

[अब मगधदेशाधिपति राजहंसके आधारसे दशकुमारचरित नामक संस्कृत उपन्यासके निर्माता महाकवि दण्डी प्रथमतः पुष्पपुरी नामकी मगधेश्वरकी राजधानीका वर्णन करते हैं।]

(१) भूमण्डलकी समस्त नगरियोंको जाँचनेकी कसौटी तथा असंख्य दूकानोंको फैलाये हुए रत्नादिके द्वारा समुद्रकी मणियोंके महत्त्वको अर्थात् रत्नाकर शब्दको प्रकाशित करानेवाली मगधदेशकी शिरोभूषण पुष्पपुरी नामकी नगरी है।

(२) उसमें एकबार राजहंस नामक नृपति आविर्भूत हुए। उनका विशाल बाहुदण्ड समस्त शत्रुओंके वीर-भटोंके समूह, चञ्चल घोड़े तथा बड़े-बड़े गजरूपी मकरसे भयंकर

र्त्या रचितदिगन्तरालपूर्त्या कीर्त्याऽभितः सुरभितः, स्वर्लोकशिखरोरुरुचिररत्नरत्नाकरवेलामेखलायितधरणीरमणीसौभाग्यभोगभाग्यवान्, अनवरतयागदक्षिणारक्षितशिष्टविशिष्टविद्यासम्भारभासुरभूसुरनिकरः, विरचितारातिसंतापेन प्रतापेन सतततुलितवियन्मध्यहंसः, राजहंसो नाम घनदर्पकन्दर्पसौन्दर्यसोदर्यहृद्यनिरवद्यरूपो भूपो बभूव ।

ऐरावतश्च नीरं जलञ्च क्षीरं दुग्धञ्च गिरिशस्य महादेवस्याट्टहासो महाहास्यञ्च काशः काशपुष्पञ्च तैर्नीकाशा तुल्या मूर्त्तिः स्वरूपं यस्यास्तया, रचिता कृता दिगन्तरालानां दिगवकाशानां पूर्त्तिः पूरणं यया तया, समस्तदिग्व्यापिन्येत्यर्थः, कीर्त्या यशसा अभितः समन्तात् सुरभितो मनोज्ञः, स्वः स्वर्गो लोक आश्रयो येषां ते स्वर्लोका देवास्तेषां शिखरेषु शिरःसु उरूणि महान्ति रुचिराणि मनोहराणि रत्नानि मणयो यस्य तथाभूतस्य रत्नाकरस्य सागरस्य वेलया तटभूम्या मेखलायिता मेखला काञ्ची तयेवाचरिता, वेष्टिता धरणी पृथिव्येव रमणी कामिनी तस्याः सौभाग्यस्य सौन्दर्यस्यैश्वर्यस्य च भोगे उपभोगे भाग्यवान् भाग्यशाली, ससागराया धराया अधीश्वर इत्यर्थः। अनवरतानां निरन्तरमनुष्ठितानां यागानां यज्ञानां दक्षिणाभिर्दत्तद्रव्यै रक्षितः पालितः शिष्टानां सदाचारपरायणानां विशिष्टेन अन्यविलक्षणेन विद्यासम्भारेण शास्त्रज्ञानातिरेकेण भासुराणां प्रदीप्तानां भूसुराणां ब्राह्मणानां निकरः समूहो येन सः । विरचितः उत्पादितः अरातीनां शत्रूणां सन्तापो दुःखं येन तथाविधेन प्रतापेन कोषदण्डजतेजसा सततमनारतं तुलितः समीकृतो वियन्मध्यहंसो मध्याह्नसूर्यो येन सः। प्रतापेन सूर्यसदृश इत्यर्थः। राजहंसो नाम राजहंसाभिधानो, घनः सान्द्रो दर्पोऽहङ्कारो यस्य तस्य महाभिमानवतः कन्दर्पस्य कामस्य यत्सौन्दर्यं रूपं तस्य सोदर्यं सदृशं हृद्यं मनोरमं निरवद्यमनिन्दनीयं निर्दोषमिति यावत् रूपं सौन्दर्यं यस्य स तथाभूतो भूपो राजा बभूव आसीत् ।

सेनासमुद्रको मन्थन करनेके लिए मन्दराचल पर्वतके समान थे। अमरावतीके आँगनमें विहार करनेवाली अप्सराओंसे प्रशंसित एवं अगणित शरत्कालीन चन्द्र तथा कुन्द फूल, कपूर एवं तुषार पुष्पकी माला, कमलका मूल-दण्ड, हंस, ऐरावत (इन्द्रगज), जल, दुग्ध, शङ्करजी का अट्टहास, कैलासपर्वत, काश नामक घास, आदिके सदृश स्वच्छ मूर्त्तिवाले दशों दिशाओंके अन्तरालको पूर्ण करनेवाली, कीर्तिसे अति मनोहर, सुमेरु पर्वतके शिखरके विशाल एवं सुन्दर रत्नोंसे संयुक्त रत्नाकरकी वेलारूपी करधनी (मेखला) से परिवेष्टित पृथ्वीरूपी अंगनाके सौभाग्यका उपभोग करनेवाले, निरन्तर किये गये यज्ञोंकी दक्षिणाओंके द्वारा सदाचारी, उद्भट एवं विद्वान् ब्राह्मणोंके रक्षक, रिपुओंके सन्तापकारी, प्रतापमें मध्याह्नकालिक सूर्यके समान, स्वरूपाभिमानी कामदेवको निजरूपसे तिरस्कृतकर्त्ता राजहंस नामक राजा हुए।

(३) तस्य वसुमती नाम सुमती लीलावतीकुलशेखरमणी रमणी बभूव।

(४) रोषरूक्षेण निटिलाक्षेण भस्मीकृतचेतने मकरकेतने तदा भयेनानवद्या वनितेति मत्वा तस्य रोलम्बावली केशजालम्, प्रेमाकरो रजनीकरो विजितारविन्दं वदनम्, जयध्वजायमानो मीनो जायायुतोऽक्षियुगलम्, सकलसैनिकाङ्गवीरो मलयसमीरो निःश्वासः, पथिकहृद्दलनकरवालः प्रवालश्चाधरबिम्बम्, जयशङ्खो बन्धुरा लावण्यधरा कन्धरा,

(३) तस्य राजहंसस्य वसुमती नाम सुमती शोभनबुद्धिशालिनी, लीलावतीनां कामिनीनां कुलस्य मण्डलस्य शेखरमणिः शिरोभूषणरूपा, रमणी पत्नी राज्ञीत्यर्थः, आसीत्।

(४) वसुमतीं विशिनष्टि—रोषेण तपोभङ्गकरणजनितेन कोपेन रूक्षो निष्ठुरस्तेन, निटिले भाले अक्षि चक्षुर्यस्य तेन शिवेन भस्मीकृता विनाशिता चेतना चैतन्यं यस्य तस्मिन्, भस्मीकृते इत्यर्थः, मकरकेतने कामदेवे सति, तदा भस्मीकरणकाले भयेन सहचरनाशजनितसम्भ्रमेण वनिता कामिनी अनवद्या निर्दोषा अतः सैव समाश्रयणीया, निर्दोषां तां महादेवोऽपि न धक्ष्यतीति मत्वा निश्चित्य तस्य मदनस्य रोलम्बावली भ्रमरपङ्क्तिः मौर्वीरूपा तस्या वसुमत्याः केशजालं कुन्तलकलापः समभूदिव, वचनविपरिणामेन सर्वत्रान्वयः। प्रेम्णः आकरः खनिः, प्रीत्युत्पादकः, रजनीकरश्चन्द्रः, प्रधानसहायः कामस्य, विजितं कान्त्या तिरस्कृतं अरविन्दं कमलं येन तद् तिरस्कृतकमलमित्यर्थः, तस्या वदनं मुखं (समभूदिव), जयध्वज इवाचरतीति जयध्वजायमानः (केतनं ध्वजमस्त्रियाम्), कामस्य मीनध्वजत्वं प्रसिद्धमेव। जायया स्वपत्न्या युतः समेतो मीनोऽक्षियुगलं तस्या नेत्रद्वन्द्वं (समभूदिव), अत्राक्षियुगलं प्रस्तुतमतो मीनस्यापि जायायुतत्वमपेक्षितम्। सकलसैनिकानां निखिलमदनसैन्यानां अङ्गवीरः प्रधानयोधः, मलयसमीरो दक्षिणानिलः, मलयानिलस्य कामोद्दीपकत्वात्। तस्या निःश्वासः प्राणवायुः, पथिकानां प्रोषितानां हृद्दलने हृदयभेदने करवालः

(३) उनकी वसुमती नामकी महारानी (पत्नी) थीं जो अति सुन्दरी एवं वनिताओं में मुकुटमणि थीं। (सुमतीका सुमति दोनों प्रयोग सिद्ध हैं)

(४) एकबार क्रोधसे रक्त नेत्रवाले त्रिनेत्र भगवान्‌ने अपनी नेत्राग्निसे कामदेवको जलाकर भस्म कर दिया। तब कामदेवकी सभी सेनाने मानो भयभीत होकर उस महिला (महारानी) को निर्दोष समझकर अपने-अपने स्वरूपके अनुसार उस महारानीके प्रत्येक अंगोंमें आश्रय लिया। भौरोंकी श्रेणियोंने केशोंका, प्रेमके आकर चन्द्रने कमलविजयी मुखका, जयध्वज चिह्न अर्थात् सपत्नीक मछली-दम्पतीने नयनयुगलोंका, समस्त सेनामें प्रधान योधा (सेनापति) मलयपवनने मुखपवनका, पथिकोंके हृदयोंको विदारित करनेमें

पूर्णकुम्भौ चक्रवाकानुकारौ पयोधरौ, ज्यायमाने मार्दवासमाने बिसलते च बाहू, ईषदुत्फुल्ललीलावतंसकह्लारकोरको गङ्गावर्तसनाभिर्नाभिः, दूरीकृतयोगिमनोरथो जैत्ररथोऽतिघनं जघनम्, जयस्तम्भभूते सौन्दर्यभूते विघ्नितयतिजनारम्भे रम्भे चोरुयुगम्, आतपत्रसहस्रपत्रं पादद्वयम्, अस्त्रभूतानि प्रसूनानि तानीतराण्यङ्गानि च समभूवन्निव ।

कृपाणरूपः नूतनतरुपल्लवदर्शनेन पान्थानां हृदयमतितरां पीड्यते । प्रवालः किसलयश्च अधरबिम्बं तस्या ओष्ठाधरौ, जयशङ्खः कामस्य विजयध्वनिकारकः शङ्खो बन्धुरा उन्नतावनता लावण्यधरा सौन्दर्यशालिनी तस्याः कन्धरा ग्रीवा, पूर्णकुम्भौ कामस्य विजययात्रायामपेक्षितौ जलपूर्णकलशौ चक्रवाकानुकारौ चक्रवाकं पक्षिविशेषं अनुकुरुत इति, तत्सदृशावित्यर्थः, पयोधरौ तस्याः स्तनौ, ज्यायमाने मौर्वीसदृश्यौ, मार्द्दवे कोमलतायामसमानेऽतुलनीयेऽतिकोमले इति शेषः । बिसलते मृणालद्वयं बाहू तस्या भुजौ, बाह्वोर्मृणालसादृश्यं कविप्रसिद्धम् । ईषत्फुल्लः स्वल्पविकसितो लीलावतंसः कामस्य विलासभूषणं कह्लारकोरकः सौगन्धिककुड्मलो गङ्गायास्तदाख्यप्रसिद्धनद्या आवर्त्तस्य अम्भसां भ्रमस्य (स्यादावर्त्तोऽम्भसां भ्रम इत्यमरः) सनाभिः सदृशस्तस्या नाभिः, दूरीकृतोपनीतो योगिनां तपश्चारिणां मनोरथो ध्यानाभिलाषो येन स तादृशो जैत्ररथः कामस्य जयनशीलरथः अतिघनमतिनिबिडं जघनं तस्याः कटिपुरोभागः, जयस्तम्भभूते कामस्य विजयस्तम्भस्वरूपे सौन्दर्यभूते मनोरमत्वमधिगते, विघ्नितः विघ्नयुक्तः कृतो यतिजनानां संयमिनामारम्भो ध्यानोद्योगो याभ्यां ते, रम्भे कदल्यौ च तस्या ऊरुयुगं सक्थियुगलम्, आतपत्रं छत्रं तद्रूपं कामस्य सहस्रपत्रं कमलं पादद्वयं तस्याश्चरणयुगलम्, तानि प्रसिद्धानि अस्त्रभूतानि कामस्य बाणभूतानि प्रसूनानि पुष्पाणि अरविन्दादीनि इतराणि पूर्ववर्णितभिन्नानि वसुमत्या अङ्गानि उदरादीनि समभूवन्निव जातानीव (उत्प्रेक्षा) ।

तलवारके समान नये पल्लवोंने अधरोष्ठोंका, विजयशंखके निम्नोन्नत लावण्यने ग्रीवाका, दोनों पूर्णकुम्भोंने चक्रवाकके समान दोनों स्तनोंका, धनुषकी प्रत्यंचाने कमलके मृदु तन्तुके समान बाहुओंका, किंचित् विकसित लाल-लाल कमलके कर्णालंकारने गंगाके आवर्त्तसदृश नाभिका, योगियोंके मनोरथोंको अर्थात् समाधि द्वारा परमब्रह्म परमात्माकी प्राप्तिकी अभिलाषाको दूर करनेवाले कामदेवके जैत्ररथने जघनस्थलका, मुनियोंके योगाभ्यासमें विघ्नबाधा उपस्थित करनेवाले केलेके (स्तम्भों) खम्भोंने दोनों जाँघोंका, छत्रके सदृश सहस्रपत्र (कमल) ने दोनों पैरोंका, तथा अन्य पुष्पोंने, जो कामके शस्त्र थे, उसके शेष अंगोंका आश्रय लिया ।

[कामदेवके अस्त्र-शस्त्रोंने उस रानीके अंगोंमें वास कर लिया अर्थात् उस रानीके मुख आदि चन्द्रादिके सदृश थे ।]

(५) विजितामरपुरे पुष्पपुरे निवसता सानन्तभोगलालिता वसुमती वसुमतीव मगधराजेन यथासुखमन्वभावि ।

(६) तस्य राज्ञः परमविधेया धर्मपालपद्मोद्भवसितवर्मनामधेया धीरधिषणावधीरितविबुधाचार्यविचार्यकार्यसाहित्याः कुलामात्यास्त्रयोऽभूवन् ।

(७) तेषां सितवर्मणः सुमतिसत्यवर्माणौ, धर्मपालस्य सुमन्त्रसुमित्रकामपालाः, पद्मोद्भवस्य सुश्रुतरत्नोद्भवाविति तनयाः समभूवन् ।

(८) तेषु धर्मशीलः सत्यवर्मा संसारासारतां बुद्ध्वा तीर्थयात्राभिलाषी देशान्तरमगमत् ।

(९) विटनटवारनारीपरायणो दुर्विनीतः कामपालो जनकाग्रजन्मनोः शासनमतिक्रम्य भुवं बभ्राम ।

---

(५) विजितं समृद्धया तिरस्कृतममरपुरमिन्द्रनगरं येन तस्मिन् । अनन्तभोगेन नानासुखोपभोगेन लालिता पुष्टा । वसुमती पृथिवीव । सापि अनन्तस्य वासुकेः भोगेन फणेन मस्तकेनेति यावत् , लालिता धृता । वसुमती महिषी । मगधराजेन राजहंसेन । अन्वभावि सम्भुक्ता ।

(६) परमविधेया अतिविनीताः । धीरधिषणया स्वतीक्ष्णबुद्ध्याऽवधीरितानि अवज्ञातानि विबुधाचार्यस्य बृहस्पतेरपि विचार्याणां विचारणीयानां कार्याणां साहित्यानि समूहा यैस्ते अतीवगम्भीरबुद्धय इत्यर्थः । कुलामात्या वंशपरम्परागतमन्त्रिणः ।

(७) तेषां कुलामात्यानां मध्ये । निर्द्धारणे षष्ठी ।

(८) संसारस्य असारतां नश्वरतया तुच्छताम् । देशान्तरमन्यदेशम् ।

(९) विटो धूर्तः नटः शैलूषः, वारनारी वेश्या तासु परायणस्तत्पर आसक्त इत्य-

---

(५) इन्द्रपुरीको भी अपनी सुन्दरतासे जीतनेवाली पुष्पपुरी नगरीमें रहते हुए उस राजा राजहंसने अनन्त (शेषनाग) के भोग (फणों) से लालित (धारण की हुई) पृथ्वीके समान परिमित भोग्य पदार्थोंसे प्रमुदित वसुमती रानीके साथ सुखपूर्वक विहार किया ।

(६) उन महाराजके परम विनीत, अपनी गम्भीर बुद्धिसे सुरगुरुको भी विचारणीय कार्य-साहित्यमें अनादृत करनेवाले धर्मपाल, पद्मोद्भव और सितवर्मा नामके तीन कुलमन्त्री थे।

(७) उन मन्त्रियोंमें सितवर्माके सुमति और सत्यवर्मा, धर्मपालके सुमन्त्र, सुमित्र और कामपाल तथा पद्मोद्भवके सुश्रुत और रत्नोद्भव नामक पुत्र हुए ।

(८) उन पुत्रोंमेंसे धर्मशील सत्यवर्मा संसारको असार जानकर, तीर्थाटनकी इच्छासे देशान्तरमें चला गया ।

(९) विट, नट तथा वारविलासिनियों (वेश्याओं) में अनुरागी एवं दुर्विनीत काम-

(१०) रत्नोद्भवोऽपि वाणिज्यनिपुणतया पारावारतरणमकरोत् ।

(११) इतरे मन्त्रिसूनवः पुरन्दरपुरातिथिषु पितृषु यथापूर्वमन्वतिष्ठन् ।

(१२) ततः कदाचिन्नानाविधमहदायुधनैपुण्यरचितागण्यजन्यराजन्यमौलिपालिनिहितनिशितसायको मगधनायको मालवेश्वरं प्रत्यग्रसङ्ग्रामघस्मरं समुत्कटमानसारं मानसारं प्रति सहेलं न्यक्कृतजलधिनिर्घोषाहङ्कारेण भेरीझाङ्कारेण हठिकाकर्णनाक्रान्तभयचण्डिमानं दिग्दन्तावलवलयं

र्थः । दुर्विनीतो दुर्निवारोऽशिष्टो वा । जनकाग्रजन्मनोः पितुर्ज्येष्ठसहोदरस्य च । शासनमादेशम्

(१०) पारावारतरणं समुद्रलङ्घनेन द्वीपान्तरगमनम् ।

(११) इतरे अन्ये । पुरन्दरपुरस्य महेन्द्रनगरस्यातिथिषु प्राघुणिकेषु सत्सु, स्वर्गतेषु मृतेषु इति शेषः । यथापूर्वं पितृपुरुषानुक्रमेण । अन्वतिष्ठन्मन्त्रित्वमकुर्वन् ।

(१२) नानाविधानामनेकप्रकाराणां महतां विशालानामायुधानामस्त्राणां नैपुण्येन प्रयोगकौशलेन रचितेषु सम्पादितेषु अगण्येष्वसंख्येषु जन्येषु युद्धेषु राजन्यानां क्षत्रियाणां मौलिपालिषु किरीटप्रान्तभागेषु निहिता निक्षिप्ता निशितास्तीक्ष्णाः सायका वाणा येन सः । विजितानेकभूपाल इत्यर्थः । मगधनायको राजहंसः । मालवेश्वरं मालवाधिपतिम् । प्रत्यग्रे नवीने संग्रामे युद्धे घस्मरं शत्रुभक्षणशीलम् । समुत्कटोऽतिशयितो मानो बलगर्व एव सारः स्थिरांशो यस्य तम् । मानसारं तन्नामानं नरपतिं प्रति लक्ष्यीकृत्य । सहेलं सावज्ञम् । न्यक्कृतस्तिरस्कृतो जलधेः सागरस्य निर्घोषाहङ्कारो निर्घोषविषयेऽभिमानो येन तथाविधेन भेरीझाङ्कारेण दुन्दुभिशब्देन हठिकाकर्णनात् सहसा श्रवणात् आक्रान्तः प्राप्तो भयस्य चण्डिमा चण्डत्वं यं तम् । दिशां ये दन्तावला गजा ऐरावतादयस्तेषां वलयं मण्डलं विघूर्णयन् सञ्चालयन् ।

पाल अपने पिता तथा बड़े भाइयोंकी शिक्षाओंका अनादर करके भूलोकमें इतस्ततः भ्रमण करने लगा ।

(१०) रत्नोद्भव व्यापारमें कुशल होकर समुद्र पार करके द्वीप-द्वीपान्तरोंमें यात्रा करने चला गया ।

(११) अन्य शेष मन्त्रियोंके पुत्र अपने-अपने पिताओंकी मृत्युके पश्चात् उनके स्थानमें—पिताओंके पदोंपर—कार्य करने लगे ।

(१२) तब एक बार, अनेक प्रकारके शस्त्रोंकी कलाओंमें निपुण एवं कई बार युद्ध करनेमें प्रवीण, नृपतियोंके सिरोंमें तेज-तेज बाण मारनेवाले मगधदेशाधिपति, थोड़े ही दिनों पहले समरमें विजय प्राप्त करनेवाले प्रबलाभिमानी मालवेश्वर मानसारके ऊपर क्रोध

विघूर्णयन्निजभरनमन्मेदिनीभरेणायस्तभुजगराजमस्तकबलेन चतुरङ्गबलेन संयुतः सङ्ग्रामाभिलाषेण रोषेण महताविष्टो निर्ययौ ।

(१३) मालवनाथोऽप्यनेकानेकपयूथसनाथो विग्रहः सविग्रह इव साग्रहोऽभिमुखीभूय भूयो निर्जगाम ।

(१४) तयोरथ रथतुरगखुरक्षुण्णक्षोणीसमुद्भूते करिघटाकटस्रव-

निजभरेण स्वभारेण नमन्त्या अधोगच्छन्त्याः पृथिव्या भरेण भारेण । अत्र करणे तृतीया । आयस्तं क्लिष्टमतिपीडितं भुजगराजस्य वासुकेर्मस्तकबलं शिरसां धारणसामर्थ्यं येन तथाभूतेन, अत्र कर्त्तरि तृतीया । चतुरङ्गबलेन गजवाजिरथपदातिरूपचतुर्विधसैन्येन संयुतः सहितः । संग्रामाभिलाषेण युद्धाकाङ्क्षया । महता अतिशयितेन रोषेण क्रोधेनाविष्टः समाक्रान्तः सन् । मगधराजो निर्ययौ निर्जगाम । युद्धमायोधनं जन्यम् । मौलिः किरीटे धम्मिल्ले चूडायाम् । पालिः कर्णलतायां स्यात्प्रदेशे पंक्तिचिह्नयोः । दन्ती दन्तावलो हस्तीति च कोशः । (अत्र असम्बन्धे सम्बन्धरूपातिशयोक्तिरनुप्रासश्चेत्यनयोः संसृष्टिः । घस्मर इत्यत्र च 'सृघस्यदः क्मरच्' इत्यनेन क्मरच्) ।

(१३) मालवनाथः मानसारः । अनेकैरसंख्यातैः अनेकपानां हस्तिनां यूथैः समूहैः सनाथो युक्तः । द्विरदोऽनेकपो द्विप इत्यमरः । विग्रहः समरः । सविग्रहः सशरीरः मूर्त्तिमान् । साग्रहः युद्धाभिनिवेशवान् । भूयः पुनरपि* ।

(१४) अथ निर्गमनानन्तरम् । तयोर्मगधराजमालवराजयोः । रथैः रथचक्रैः तुरगाणां अश्वानां खुरैः शफैः क्षुण्णायाः पिष्टायाः क्षोण्याः पृथिव्याः समुद्भूते उत्थिते उत्पन्ने वा धूलीपटले इत्यस्य विशेषणम् । करिघटानां हस्तिसमूहानां कटेभ्यो गण्डेभ्यः स्रवन्त्या

करके समुद्रके महाघोषको तिरस्कृत करनेवाले, दुंदुभियोंकी ध्वनियोंको हठात् श्रवण करनेसे भयभीत दिग्गजोंको कँपानेवाले, अपने भारसे दबी हुई पृथ्वीके भारसे भुजंगराजके मस्तकको व्यथित करनेवाली चतुरंगिणी—हाथी, घोड़े, पैदल और शस्त्रोंसे सज्जित—सेना लेकर, युद्धार्थ निकल पड़े ।

(१३) शरीरधारी संग्रामस्वरूप मालवेश्वर भी अनेक हाथियोंकी सेनाको लेकर आग्रहके साथ युद्धके लिये पुनः अपने पुरसे निकल पड़ा ।

(१४) उसके पश्चात् उन दोनोंमें संग्राम छिड़ गया । उस युद्धकालमें रथोंके पहियोंसे तथा घोड़ोंके खुरोंसे चूर्ण की हुई पृथ्वीसे उत्पन्न धूलि एवं हाथियोंके कपोलोंसे बहनेवाली मदधारासे सिक्त धूलिपटल नूतन वल्लभोंको वरण करनेके निमित्त आयी देव-कन्याओंके

* उत्प्रेक्षानुप्रासयोः सङ्करः ।

न्मदधाराधौतमूले नव्यवल्लभवरणागतदिव्यकन्याजनजवनिकापटमण्डप इव वियत्तलव्याकुले धूलीपटले दिविषदध्वनि धिक्कृतान्यध्वनिपटहध्वान-बधिरिताशेषदिगन्तरालं शस्त्राशस्त्रि हस्ताहस्ति परस्पराभिहतसैन्यं जन्यमजनि ।

(१५) तत्र मगधराजः प्रक्षीणसकलसैन्यमण्डलं मालवराजं जीव-ग्राहमभिगृह्य कृपालुतया पुनरपि स्वराज्ये प्रतिष्ठापयामास ।

(१६) ततः स रत्नाकरमेखलामिलामनन्यशासनां शासदनपत्यतया

क्षरन्त्या मदधारया मदजलप्रवाहेण धौतं क्षालितं मूलं मूलदेशो यस्य तस्मिन् । नव्य-वल्लभानां नवीनरमणानां वरणाय आगतस्य युद्धक्षेत्रे समुपस्थितस्य दिव्यकन्या-जनस्याप्सरःसमूहस्य जवनिकया तिरस्करिण्या युक्तः पटमण्डपः पटवासस्तस्मि-न्निव । वियत्तलव्याकुले नभस्तलसम्भृते । धूलीपटले पांशुसमूहे । दिवि सीदन्ति ये ते दिविषदो देवास्तेषामध्वनि मार्गे आकाशे इत्यर्थः । धिक्कृतस्तिरस्कृतः दूरीकृत इति यावत्, अन्येषां ध्वनिः शब्दो येन तादृशेन पटहध्वानेन ढक्काशब्देन बधिरितानि बधिरीकृतानि अशेषाणि दिगन्तरालानि तत्रस्थजना इत्यर्थः यस्मिन् तत् । शस्त्रैः शस्त्रैश्च प्रहृत्य यद्युद्धं प्रवृत्तमिति शस्त्राशस्त्रि । हस्तैश्च हस्तैश्च प्रहृत्य यत्प्रवृत्तं तद् हस्ताहस्ति । परस्परस्य अभिहतं समाक्रान्तं सैन्यं यस्मिन् तत् । जन्यं युद्धम् ।

(१५) तत्र युद्धे । प्रक्षीणं हतविध्वस्तं सकलं समस्तं सैन्यमण्डलं यस्य तम् । जीवग्राहमभिगृह्य जीवन्तमेव धृत्वा,

(१६) रत्नाकरः समुद्रो मेखला रशना यस्यास्ताम् । ससागरामित्यर्थः । इलां पृथ्वीम् । अनन्यशासनां–न विद्यतेऽन्यस्य नृपस्य शासनं यस्यां ताम् । अनपत्यतया

लिए पटमंडप (परदेका) काम करने लगी अर्थात् धूलि–पटल आकाशमें फैल गया ।

अन्य सभी शब्दोंको दबानेवाली युद्धकी वाद्यध्वनियां समस्त दिशाओंमें गूँज गयीं—जिससे सम्पूर्ण दिशाएँ ऐसी बहिरी हो गयीं कि कुछ सुनाई ही न देता था । उस युद्धमें योद्धागण शस्त्रसे शस्त्र और हाथसे हाथ भिड़ाकर परस्पर मार-काट करनेमें तल्लीन थे ।

(१५) उस तुमुल संग्राममें मगधराजने मालवराजकी समस्त सेना नष्ट कर दी और मालवेश्वर मानसारको जीते जी पकड़ लिया तथा पुनः दया करके उसे उसीके राज्यपर प्रतिष्ठित कर दिया ।

(१६) तब वे मगधाधिपति जो समुद्र पर्यन्त पृथ्वीका शासन करते थे, अनपत्य होनेके

नारायणं सकललोकैककारणं निरन्तरमर्चयामास।

(१७) अथ कदाचित्तदग्रमहिषी 'देवि देवेन कल्पवल्लीफलमाप्नुहि' इति प्रभातसमये सुस्वप्नमवलोकितवती।

(१८) सा तदा दयितमनोरथपुष्पभूतं गर्भमधत्त।

(१९) राजापि सम्पन्न्यक्कृताखण्डलः सुहृन्नृपमण्डलं समाहूय निजसम्पन्मनोरथानुरूपं देव्याः सीमन्तोत्सवं व्यधत्त।

(२०) एकदा हितैः सुहृन्मन्त्रिपुरोहितैः सभायां सिंहासनासीनो गुणैरहीनो ललाटतटन्यस्ताञ्जलिना द्वारपालेन व्यज्ञापि—'देव! देवसन्दर्शनलालसमानसः कोऽपि देवेन विरच्यार्चनार्हो यतिर्द्वारदेशमध्यास्ते' इति।

पुत्रकतया। एककारणमादिहेतुम्। गौरिला कुम्भिनी क्षमेत्यमरः।

(१७) तस्य राजहंसस्य। अग्रमहिषी प्रधानराज्ञी। देवेन राज्ञा सह। कल्पवल्लीफलं कल्पलताफलम्।

(१८) दयितस्य वल्लभस्य यो मनोरथः पुत्रप्राप्तिरूपोऽभिलाषस्तदेव फलं तस्य पुष्पभूतं कुसुममिव भूतम्।

(१९) सम्पदा समृद्धया न्यक्कृतस्तिरस्कृत आखण्डल इन्द्रो येन सः। समृद्धया महेन्द्रादप्यधिकः। सुहृदां मित्रभूतानां नृपाणां मण्डलं समूहम्। स्वस्य सम्पदः समृद्धेः मनोरथस्याभिलाषस्य चानुरूपं सदृशम्। सीमन्तोत्सवं संस्कारविशेषम्।

(२०) हितैः हिताकाङ्क्षिभिः। गुणैः राजगुणैरहीनोऽन्यूनः सर्वगुणसम्पन्न इत्यर्थः। ललाटतटे भालदेशे न्यस्तो धृतोऽञ्जलिर्येन तेन। व्यज्ञापि निवेदितः। देवस्य भवतः सन्दर्शनेऽवलोकने लालसमभिलाषि मानसं यस्य सः। देवेन भवता। विरच्यां कर्तव्यां अर्चनां पूजामर्हतीति। भवतोऽपि पूज्य इत्यर्थः। यतिः संन्यासी।

कारण सम्पूर्ण लोकोंके आदिकारण नारायण भगवान्‌की निरन्तर पूजामें संलग्न हो गये।

(१७) एक दिन प्रातःकाल उनकी महारानीने स्वप्नमें देखा कि उनसे किसीने आकर कहा—'हे देवि! देव (राजा) द्वारा प्रदत्त कल्पवृक्षका यह फल आप ग्रहण करें।'

(१८) उसके बाद उस महिषीने पतिके मनोरथ-पुष्पभूत गर्भको धारण किया।

(१९) अपने ऐश्वर्य-विभवसे इन्द्रको भी पराभव दिखानेवाले उन राजा हंसवाहनने सुभद्र राजाओंके मण्डलोंको बुलाकर अपने मनोरथ तथा विभवानुसार महारानीका सीमन्तोन्नयन संस्कार किया।

(२०) एक दिन सर्वगुणसम्पन्न मगधपति अपने हितैषी मित्रों एवं मन्त्रियों तथा पुरोधाओंके साथ राजसभामें सिंहासनासीन थे। उसी समय द्वारपालने राजसभामें आकर प्रणाम

(२१) तदनुज्ञातेन तेन स संयमी नृपसमीपमनायि ।

(२२) भूपतिरायान्तं तं विलोक्य सम्यगज्ञाततदीयगूढचारभावो निखिलमनुचरनिकरं विसृज्य मन्त्रिजनसमेतः प्रणतमेनं मन्दहासमभाषत—'ननु तापस ! देशं सापदेशं भ्रमन्भवांस्तत्र तत्र भवदभिज्ञातं कथयतु' इति ।

(२३) तेनाभाषि भूभ्रमणबलिना प्राञ्जलिना—'देव ! शिरसि देवस्याज्ञामादायैनं निर्दोषं वेषं स्वीकृत्य मालवेन्द्रनगरं प्रविश्य तत्र गूढतरं वर्तमानस्तस्य राज्ञः समस्तमुदन्तजातं विदित्वा प्रत्यागमम् ।

(२४) मानी मानसारः स्वसैनिकायुष्मत्तान्तराये संपराये भवतः

---

(२१) तदनुमतेन राज्ञादिष्टेन । तेन द्वारपालेन । संयमी यतिः । अनायि नीतः ।

(२२) सम्यक् सुष्ठु ज्ञातोऽवगतस्तदीयस्तत्सम्बन्धी गूढः प्रच्छन्नश्चारभावः चरत्वं येन सः । प्रणतं कृतनमस्कारम् । एनं यतिम् । मन्दहासं क्रियाविशेषणमिदम् । ईषद् हसन्नित्यर्थः । सापदेशं सकपटम् । यतिवेषच्छलेनेत्यर्थः । तत्र तत्र तेषु तेषु स्थानेषु । भवता त्वया अभिज्ञातमवगतम् ।

(२३) अभाषि कथितम् । भुवः पृथिव्याः भ्रमणे पर्यटनविषये बली समर्थस्तेन । प्राञ्जलिना बद्धाञ्जलिनेति तेनेत्यस्य विशेषणम् । देव राजन् । आदायाङ्गीकृत्य । निर्दोषं दोषवर्जितम् । वेषं यतिरूपम् । तत्र मालवेन्द्रनगरे । गूढतरमतिशयेन गूढं यथा स्यात्तथा । उदन्तजातं वृत्तान्तसमूहम् ।

(२४) स्वसैनिकानां निजभटानामायुष्मत्ताया आयुष्यस्यान्तरायो विघ्नस्तस्मिन्

करके कहा—हे स्वामिन् ! आपके द्वारा पूजाई कोई संन्यासी आपसे भेंट करने द्वारपर आकर उपस्थित हुए हैं ।

(२१) राजाज्ञा होनेपर द्वारपाल उस संन्यासीको राजसभामें राजाके पास ले आया ।

(२२) राजाने उसे देखकर तथा भली भाँति यह ज्ञात करके कि यह तो हमारा गुप्तचर है, राजसभासे सभी नौकर-चाकरोंको हटवा दिया । पुनः मन्त्रियोंसहित प्रणाम करके हँसकर पूछा—हे यतिवर ! इस छद्मवेशमें देशमें विचरण करते हुए आपने जो बात जानी हो वह कह दें ।

(२३) पृथ्वीभ्रमणमें समर्थ उस यतिने प्राञ्जलि होकर कहा—'हे देव ! आपकी आज्ञाको शिरोधार्य करके मैं इस निर्दोष वेषको धारणकर मालवेशके नगरमें प्रविष्ट हुआ । वहाँपर गुप्तरूपसे निवासकर समस्त वृत्तान्तको ज्ञात करके आया हूँ ।

(२४) वृत्त यह है कि अतिमानी मानसार युद्धमें अपने वीरोंके नाशसे तथा आपद्वारा

पराजयमनुभूय वैलक्ष्यलक्ष्यहृदयो वीतदयो महाकालनिवासिनं कालीविलासिनमनश्वरं महेश्वरं समाराध्य तपःप्रभावसंतुष्टादस्मादेकवीरारातिघ्नीं भयदां गदां लब्ध्वात्मानमप्रतिभटं मन्यमानो महाभिमानो भवन्तमभियोक्तुमुद्युङ्क्ते । ततः परं देव एव प्रमाणम्' इति ।

(२५) तदालोच्य निश्चिततत्कृत्यैरमात्यै राजा विज्ञापितोऽभूत्—'देव, निरुपायेन देवसहायेन योद्धुमरातिरायाति । तस्मादस्माकं युद्धं सांप्रतमसांप्रतम् । सहसा दुर्गसंश्रयः कार्यः' इति ।

(२६) तैर्बहुधा विज्ञापितोऽप्यखर्वेण गर्वेण विराजमानो राजा तद्वा-

सैन्यसंहारकारिणि इति तात्पर्यम् । संपराये युद्धे । 'युद्धायत्योः संपराय इत्यमरः' । वैलक्ष्यस्य पराजयजनितदैन्यस्य लक्ष्यं विषयीभूतं हृदयं यस्य सः । वीतदयो निर्दयः । महाकाले तदाख्यस्थाने निवासोऽस्त्यस्येति तम् । कालीविलासिनं पार्वतीवल्लभम् । अनश्वरं विनाशरहितम् । तपसः प्रभावेण सन्तुष्टात् प्रीतात् । अस्मान्महेश्वरात् । एकमेकसंख्यकं वीरं शूरम् अरातिं शत्रुं हन्तीति ताम् । भयदां भीतिदात्रीम् । अप्रतिभटमप्रतिद्वन्द्विनम् । महानतिशयितोऽभिमानोऽहङ्कारो यस्य सः । अभियोक्तुमाक्रमितुम् । उद्युङ्क्ते चेष्टते । देव एव भवानेव । प्रमाणं कर्त्तव्यतानिर्णायकः ।

(२५) तत्र शत्रुविषये यत्कृत्य करणीयं तन्निश्चितं निर्णीतं यैस्तैः । अमात्यैर्मन्त्रिभिः । निर्नास्त्युपायः प्रतीकारो यस्य तेन, अप्रतिकार्येणेत्यर्थः । असाम्प्रतमयुक्तम् । युक्ते द्वे साम्प्रतमित्यमरः । सहसा सत्वरम् । दुर्गसंश्रयः दुर्गप्रवेशः ।

(२६) बहुधा बहुप्रकारेण । अखर्वेण महता । अकृत्यमननुष्ठेयं कर्तुमनुचितं

युद्धमें पराजित होकर लज्जित हो गया अतएव अति दीन होकर कायिक, वाचिक, मानसिक कष्टोंको संस्मरण करता हुआ वह महाकालनिवासी (उज्जैनके महाकालके भव्य मन्दिरमें) कालीविलासी अनश्वर श्रीमहेश्वरकी प्रबल आराधना करके तथा उन्हें सन्तुष्ट एवं प्रसन्न करके अपनी तपस्याके प्रभावसे उन्हीं शङ्करजीसे एक अनुपम गदा प्राप्त कर चुका है। उस गदाद्वारा वह युद्धमें प्रधान वीर सेनाधिपको मार सकता है। बस, उक्त गदाके अभिमानपर वह आपसे संघर्षका उद्योग कर रहा है—इसके बाद क्या करना चाहिये इसे आप विचार लें।'

(२५) इस वृत्तान्तको श्रवणकर मन्त्रियोंने विचार-विनिमयकर महाराजसे निवेदित किया—'हे देव ! जिसमें मनुष्यके सभी उपाय विफल हैं ऐसे प्रबल यत्नसे अर्थात् शङ्करजीकी गदाके प्रसादसे शत्रु युद्ध करने आ रहा है अतः ऐसे समय उनके साथ हमारा युद्ध करना निष्फल होगा। ऐसे समय दुर्गका ही आश्रयण सर्वथा श्रेयस्कर होगा।'

(२६) मन्त्रियोंके बार-बार उक्त रीतिसे समझानेपर भी राजा अपने पराक्रमके गर्वपर

कथमकृत्यमित्यनादृत्य प्रतियोद्धुमना बभूव ।

(२७) शितिकण्ठदत्तशक्तिसारो मानसारो योद्धृमनसामग्रीभूय सामग्रीसमेतोऽक्लेशं मगधदेशं प्रविवेश ।

(२८) तदा तदाकर्ण्य मन्त्रिणो भूमहेन्द्रं मगधेन्द्रं कथंचिदनुनीय रिपुभिरसाध्ये विन्ध्याटवीमध्येऽवरोधान्मूलबलरक्षितान्निवेशयामासुः ।

(२९) राजहंसस्तु प्रशस्तवीतदैन्यसैन्यसमेतस्तीव्रगत्या निर्गत्याधिकरुषं द्विषं रुरोध ।

(३०) परस्परबद्धवैरयोरेतयोः शूरयोस्तदा तदालोकनकुतूहलागतगगनचराश्चर्यकारणे रणे वर्तमाने जयाकाङ्क्षी मालवदेशरक्षी विविधायुध-

---

दौर्बल्यप्रकाशकत्वादित्यर्थः । अनादृत्य अस्वीकृत्य । प्रतियोद्धुमना युद्धाभिलाषी ।

(२७) शितिकण्ठेन शिवेन दत्ताऽर्पिता शक्तिः प्रहरणविशेष एव सारो बलं यस्य सः । योद्धुमनसां युद्धाकाङ्क्षिणाम् । अग्रीभूय पुरो भूत्वा । सामग्रीसमेतः युद्धोपकरणसहितः ।

(२८) भूमहेन्द्रं पृथिवीन्द्रम् । कथञ्चिदतियत्नेन । असाध्ये दुष्प्रवेश्ये । अवरोधान् राजस्त्रियः मूलबलेन प्रधानसैन्येन रक्षितान् गुप्तान् । निवेशयामासुः स्थापयामासुः ।

(२९) प्रशस्तैरत्युत्कृष्टैर्वीतदैन्यैस्त्यक्तकार्पण्यैः निर्भयैरित्यर्थः । सैन्यैः समेतो युक्तः । तीव्रगत्या महता वेगेनेत्यर्थः । अधिकरुषं अतिक्रुद्धम् ।

(३०) परस्परेण बद्धं धृतं वैरं याभ्यां तयोः । तस्य युद्धस्यालोकने दर्शने यत्कुतूहलं कौतुकं तेनागतानां युद्धक्षेत्रे समुपस्थितानां गगनचराणामाकाशचारिणां देवानां आश्चर्यकारणे विस्मयहेतुभूते । मालवदेशस्य रक्षी रक्षिता मानसारः । विवि-

---

समरमें जानेको तैयार हो गया ।

(२७) मानी मानसार भी शङ्करजीकी दी हुई अमोघ शक्तिपर सम्पूर्ण वीरोंमें प्रमुख होकर विना क्लेशके युद्धसामग्रीके सहित मगध देशमें घुस आया ।

(२८) मानसारके आगमनकी चर्चा श्रवण करके मन्त्रियोंने पृथ्वीके स्वामी इन्द्रके तुल्य मगधेन्द्रको समझा-बुझाकर येन केन प्रकारेण राजमहल (अन्तःपुर) की स्त्रियोंको मुख्य सेनाकी रक्षामें विन्ध्यपर्वतकी अटवीके मध्यमें भिजवा दिया ।

(२९) नृपति राजहंस दैन्यशून्य सेनाको अपने साथ लिये बड़ी तीव्रगतिसे अपनी राजधानीसे बाहर आया और अति क्रोधसे आती हुई शत्रुसेनाको घेर लिया ।

(३०) परस्पर बद्धवैर इन दोनों शूरोंके उस संग्रामको देखनेके निमित्त आये आकाशगामी जनोंको भी वह युद्ध आश्चर्यका कारण हुआ । उस समय प्रवर्त्तमान तथा विजयाकांक्षी

स्थैर्यचर्याञ्चितसमरतुलितामरेश्वरस्य मगधेश्वरस्य तस्योपरि पुरा पुरारातिदत्तां गदां प्राहिणोत्।

(३१) निशितशरनिकरशकलीकृतापि सा पशुपतिशासनस्यावन्ध्यतया सूतं निहत्य रथस्थं राजानं मूर्छितमकार्षीत्।

(३२) ततो वीतप्रग्रहा अक्षतविग्रहा वाहा रथमादाय दैवगत्यान्तःपुरशरण्यं महारण्यं प्राविशन्।

(३३) मालवनाथो जयलक्ष्मीसनाथो मगधराज्यं प्राज्यं समाक्रम्य पुष्पपुरमध्यतिष्ठत्।

(३४) तत्र हेतिततिहतिश्रान्ता अमात्या दैवगत्यानुत्क्रान्तजीविता

स्त्रानां नानाप्रकाराणामायुधानामस्त्राणां स्थैर्येण स्थिरतया चर्यया प्रयोगेणाञ्चिते युक्ते समरे तुलितः समीकृतोऽमरेश्वर इन्द्रो येन तस्य। पुरा प्राक्। पुरारातिदत्तां महेश्वरार्पिताम्। प्राहिणोत् न्यक्षिपत् प्राहरदित्यर्थः।

(३१) निशितेन तीक्ष्णेन शरनिकरेण बाणसमूहेन शकलीकृता खण्डीकृतापि। सा गदा। पशुपतिशासनस्य शिववाक्यस्य। अवन्ध्यतया अव्यर्थतया। सूतं सारथिम्।

(३२) वीता मुक्ताः प्रग्रहा रश्मयो येषां ते। अक्षतो विग्रहः शरीरं येषां ते। वाहा अश्वाः। 'वाजिवाहार्वगन्धर्व' इत्यमरः। अन्तःपुरशरण्यं राजस्त्रीणामाश्रयभूतम्।

(३३) जयलक्ष्म्या विजयश्रिया सनाथो युक्तः। प्राज्यं प्रभूतं विशालमित्यर्थः।

(३४) तत्र महारण्ये। हेतीनामस्त्राणां ततिभिः समुदायैर्हत्या प्रहारेण श्रान्ताः क्लान्ताः। दैवगत्या शुभादृष्टवशेन। अनुत्क्रान्तं न निर्गतं जीवितं प्राणा

मालवेश राजा मानसारने अनेकों प्रकारके शस्त्रास्त्रोंके प्रयोग करनेमें निपुण एवं इन्द्रके समान योद्धा मगधेन्द्रके ऊपर महेश्वरसे प्राप्त गदा मार दी।

(३१) यद्यपि मगधेशने अपने तीक्ष्ण बाणोंके प्रहारोंसे उस गदा को खण्ड-खण्ड कर काट दिया। परन्तु भगवान् शिवजीके प्रभावसे उस गदाने रथके सारथिको मारकर मगधेशको भी मूर्च्छित कर दिया।

(३२) तब रथके घोड़ोंने, जो वीत-प्रग्रह (बेलगाम) तथा अक्षतविग्रह थे, उस रथको खींचते-खिचाते उसी स्थानपर सौभाग्यसे ला दिया जहाँपर अन्तःपुरकी रमणियाँ सेनाकी रक्षामें थीं—अर्थात् विन्ध्याटवी पहुँचा दिया।

(३३) मालवेशने भी विजयश्रीको प्राप्त करके प्रवृद्ध राज्य मगधकी राजधानी पुष्पपुरीमें प्रवेश किया और राज्यशासन करने लगा।

(३४) युद्धमें शस्त्रोंके प्रहारोंसे ताडित होकर मूर्च्छित परन्तु दैवगतिसे जीवित मन्त्रिगण

निशान्तवातलब्धसंज्ञाः कथंचिदाश्वस्य राजानं समन्तादन्वीक्ष्यानवलोकितवन्तो दैन्यवन्तो देवीमवापुः।

(३५) वसुमती तु तेभ्यो निखिलसैन्यक्षतिं राज्ञोऽदृश्यत्वं चाकर्ण्योद्विग्ना शोकसागरमग्ना रमणानुगमने मतिं व्यधत्त।

(३६) 'कल्याणि, भूरमणमरणमनिश्चितम्। किञ्च दैवज्ञकथितो मथितोद्धतारातिः सार्वभौमोऽभिरामो भविता सुकुमारः कुमारस्त्वदुदरे वसति। तस्मादद्य तव मरणमनुचितम्' इति भूषितभाषितैरमात्यपुरोहितैरनुनीयमानया तया क्षणं क्षणहीनया तूष्णीमस्थायि।

येषां ते। निशान्तवातेन प्राभातिकवायुना लब्धा पुनः प्राप्ता संज्ञा चैतन्यं यैस्ते। समन्तादितस्ततः। अन्वीक्ष्य अन्विष्य। दैन्यवन्तोऽतिविषण्णाः। देवीं महिषीं वसुमतीम्।

(३५) तेभ्योऽमात्येभ्यः। तत्सकाशादित्यर्थः। निखिलसैन्यक्षतिं सकलसैन्यविनाशम्। अदृश्यत्वमन्तर्धानम्। आकर्ण्य श्रुत्वा। उद्विग्ना व्याकुला। रमणानुगमने पतिमनु मरणे मतिं व्यधत्त निश्चयं कृतवती।

(३६) कल्याणि हे मङ्गलमयि ! राज्ञीसम्बोधनमेतत्। भूरमणस्य राज्ञो मरणं मृत्युः दैवज्ञैर्ज्यौतिषिकैः। कथित आदिष्टः। मथिता मर्दिता उद्धता दृप्ता अरातयः शत्रवो येन सः। मथिष्यमाणा इत्यर्थे मथिता इति। सार्वभौमश्चक्रवर्त्ती। अभिरामो मनोहरः। भविता भावी जनिष्यमाण इत्यर्थः। सुकुमारः कोमलः। कुमारः पुत्रः। तस्मात् गर्भवत्त्वात्। अनुचितमयुक्तम्। भूषितमलङ्कृतं शोभनमिति भावः भाषितं कथनं येषां तैः। क्षणहीनया उत्सवशून्यया। अस्थायि स्थितम्। स्थाधातोर्भावे लुङ्।

प्रातःकालिक शीतल पवनके स्पर्शसे उद्बोधित होकर स्वस्थ हो गये। और चारों ओर राजा राजहंसको खोजने लगे। किन्तु, जब वे उन्हें न पा सके तो खिन्न होकर महारानीके समीप पहुँचे।

(३५) महारानी वसुमती सेनाकी क्षति तथा राजाकी अदृश्यताकी बातें मन्त्रियोंके मुखोंसे जानकर अति दुःखी हुई और उद्विग्नमनसे शोकसागरमें निमग्न होकर पतिका अनुगमन करनेका निश्चय कर लिया—मरनेको उद्यत हो गयीं।

(३६) इसपर अमात्योंने एकत्र होकर कहा—'हे कल्याणि ! प्रथमतः तो राजाका मरण अनिश्चित है तथा दूसरे दैवज्ञोंके कथनानुसार आपके उदरमें सुकुमार राजकुमार है जो चक्रवर्त्ती एवं शत्रुओंको नाश करनेवाला होगा। अतः आपका मरना इस समय अनुचित है। इस प्रकारके प्ररोचक वचनोंको श्रवणकर–मन्त्रियों और पुरोहितोंके समझाने पर रानी वसुमती उत्सवहीना होकर कुछ भी उत्तर न दे सकीं। चुप होकर बैठी रहीं।

(३७) अथार्धरात्रे निद्रानिलीननेत्रे परिजने विजने शोकपारावारमपारमुत्तर्तुमशक्नुवती सेनानिवेशदेशं निःशब्दक्लेशं शनैरतिक्रम्य यस्मिन्रथस्य संसक्ततया तदानयनपलायनश्रान्ता गन्तुमक्षमाः क्षमापतिरथ्याः पथ्याकुलाः पूर्वमतिष्ठंस्तस्य निकटवटतरोः शाखायां मृतिरेखायामिव क्वचिदुत्तरीयार्धेन बन्धनं मृतिसाधनं विरच्य मर्तुकामाभिरामा वाङ्माधुरीविरसीकृतकल-कण्ठ-कण्ठा साश्रुकण्ठा व्यलपत्–'लावण्योपमितपुष्पसायक, भूनायक, भवानेव भाविन्यपि जन्मनि वल्लभो भवतु' इति।

(३८) तदाकर्ण्य नीहारकरकिरणनिकरसंपर्कलब्धावबोधो मागधो-

(३७) अर्धरात्रे निशीथे। निद्रया निलीने परिमिलिते नेत्रे नयने यस्य तस्मिन्। परिजनेऽनुचरमण्डले। विजने निर्जने एकान्ते इत्यर्थः। शोकपारावारं शोकसागरम्। अपारं दुस्तरम्। उत्तर्तुं लङ्घयितुम्। सेनानिवेशस्य शिविरस्य देशं प्रदेशम्। निर्नास्ति शब्दस्य लेशो लवोपि यस्मिंस्तद् यथा तथा। संसक्ततया संलग्नतया। तस्य राज्ञः आनयने वहने श्रान्ताः परिश्रान्ताः अत एव गन्तुं चलितुम् अक्षमा असमर्थाः। क्षमापतेः राज्ञो राजहंसस्य। रथ्या अश्वाः। पथि मार्गे आकुलाः दूरगमनेनातिशयक्लान्ताः। निकटवटतरोः समीपस्थवटवृक्षस्य। मृतेर्मरणस्य रेखा लेखा चिन्हभूतेति भावः तस्याम्। बन्धनं पाशम्। मृतिसाधनं मरणसाधकम्। विरचय्य विधाय। मर्तुं कामोऽभिलाषो यस्याः सा। वाङ्माधुर्या वचनमाधुर्येण विरसीकृतो नीरसीकृतः कलकण्ठस्य कोकिलस्य कण्ठो यया सा। साश्रुकण्ठा सगद्गदस्वरा। व्यलपत् रुरोद। लावण्येन देहसौन्दर्य्येण उपमितस्तुलितः पुष्पसायकः कामो येन तत्सम्बोधने। भूनायक भूपते। भाविनि भविष्यति। वल्लभः पतिः।

(३८) नीहाराः शीतलाः कराः किरणा यस्य सः नीहारकरश्चन्द्रस्तस्य किरणनिकरस्य मयूखसमूहस्य सम्पर्केण संस्पर्शेन लब्धः प्राप्तोऽवबोधश्चैतन्यं येन सः।

(३७) जब आधी रातमें सब दास–भृत्य आदि सो गये तब एकान्तमें महारानी वसुमती, जो अपार शोक समुद्रको पार करनेमें अपनेको असमर्थ समझती थीं, धीरे-धीरे उस स्थानपर गयीं जहाँपर राजाके रथको लिये हुए घोड़े थककर शान्तिकी निद्रा ले रहे थे। उसीके समीप बड़के पेड़की मृत्युरेखा सदृश किसी शाखामें उत्तरीय वस्त्र (चादर) को बाँधकर (फाँसीकी रस्सीसी बनाकर) मरनेके लिए तत्पर हो गयीं। जो कोयलकी ध्वनिको भी तिरस्कृत कर चुकी थीं ऐसी मीठी ध्वनिसे रोदन करके कहने लगीं—'हे लावण्यतासे उपमित कामदेवके समान राजन्! आप पुनः मेरे आगामी जीवनमें भी प्राणपति हों।'

(३८) रानीके विलाप करनेपर तथा शीतल चन्द्रकी किरणोंसे स्पर्शित होकर एवं मन्द

आधरुधिरविक्षरणनष्टचेष्टो देवीवाक्यमेव निश्चिन्वानस्तन्वानः प्रियवचनानि शनैस्तामाह्वयत् ।

(३९) सा ससंभ्रममागत्यामन्दहृदयानन्दसंफुल्लवदनारविन्दा तमुपोषिताभ्यामिवानिमिषिताभ्यां लोचनाभ्यां पिबन्ती विकस्वरेण स्वरेण पुरोहितामात्यजनमुच्चैराहूय तेभ्यस्तमदर्शयत् ।

(४०) राजा निटिलतटचुम्बितनिजचरणाम्बुजैः प्रशंसितदैवमाहात्म्यैरमात्यैरभाणि—'देव, रथ्यचयः सारथ्यपगमे रथं रभसादरण्यमनयत्' इति ।

मागधो मगधाधिपतिः । अगाधस्य प्रभूतस्य रुधिरस्य शोणितस्य विक्षरणेन विशेषतोऽपगमेन नष्टा विलुप्ता चेष्टा दैहिकप्रयत्नो यस्य सः । देवीवाक्यं वसुमतीविलापमेव निश्चिन्वानः देव्येवेयं नान्या विलपतीति निश्चयं कुर्वन् । तन्वानो विस्तारयन् ।

(३९) ससम्भ्रमं सत्वरम् । अमन्देन प्रचुरेण हृदयानन्देन हर्षेण संफुल्लं सम्यग् विकसितं वदनारविन्दं मुखकमलं यस्याः सा । तं राजानम् । उपोषिताभ्यां दर्शनार्थमत्युत्कण्ठिताभ्यामिवेति क्रियोत्प्रेक्षा—अत एव अनिमिषिताभ्यां निर्निमेषाभ्यां लोचनाभ्यां नयनाभ्यां पिबन्ती सादरं विलोकयन्ती । विकस्वरेण अतिस्पष्टेन । तेभ्यः पुरोहितामात्येभ्यः । तं राजानम् ।

(४०) निटिलतटेन भालस्थलेन चुम्बितं स्पृष्टं निजचरणाम्बुजं स्वपादपद्मं यैस्तैरमात्यैरित्यस्य विशेषणम् । प्रशंसितं स्तुतं दैवस्यादृष्टस्य माहात्म्यं प्रभावो यैस्तैः । अभाणि—शब्दार्थभणधातोः कर्मणि लुङ् । कथित इत्यर्थः । रथं वहन्तीति रथ्या अश्वास्तेषां चयः समूहः । सारथेः सूतस्यापगमे विनाशे सतीति शेषः । रभसाद् वेगात् । इत्यन्तं अभाणीत्यस्य कर्म ।

पवनके थपेड़ोंसे सञ्चरित होकर वह राजा जो अत्यन्त रक्तके प्रवाहसे निश्चेष्ट हो गया था कुछ-कुछ प्रबुद्ध हो उठा और उसने खेदन-ध्वनिको ज्ञातकर निश्चय कर लिया कि यह ध्वनि मेरी वल्लभा रानीकी है ऐसा समझकर उसने धीमी आवाजसे रानीको सम्बोधित किया।

(३९) राजाकी ध्वनिसे उत्पन्न हुए हर्षसे रानीका मुखकमल प्रफुल्लित हो गया । तत्क्षण ही उनको वह व्रतीकी भाँति एकटक देखने लगी । फिर उच्चस्वरसे पुरोहित एवं मन्त्रियोंको बुलाकर उनका दर्शन कराया ।

(४०) मन्त्रियोंने बद्धाञ्जलि करके राजाको प्रणाम किया तथा परमेश्वरको धन्यवाद देते हुए निवेदन किया—'हे महाराज ! सारथीके निधनपर ज्ञात होता है घोड़ोंने बड़ी तेजीसे रथको लाकर इस सघन वनमें रख दिया ।'

(४१) 'तत्र निहतसैनिकग्रामे संग्रामे मालवपतिनाराधितपुरारातिना प्रहितया गदया दयाहीनेन ताड़ितो मूर्छामागत्यात्र वने निशान्तपवनेन बोधितोऽभवम्' इति महीपतिरकथयत् ।

(४२) ततो विरचितमहेन मन्त्रिनिवहेन विरचितदैवानुकूल्येन कालेन शिबिरमानीयापनीताशेषशल्यो विकसितनिजाननारविन्दो राजा सहसा विरोपितव्रणोऽकारि ।

(४३) विरोधिदैवधिक्कृतपुरुषकारो दैन्यव्याप्ताकारो मगधाधिपतिरधिकाधिरमात्यसंमत्या मृदुभाषितया तया वसुमत्या मत्या कलितया च समबोधि।

(४१) निहतो निःशेषं विनष्टः सैनिकानां योधानां ग्रामः समूहो यस्मिन् तथाभूते । आराधितः सन्तोषितः पुरारातिर्महादेवो येन तथाभूतेन । प्रहितया प्रक्षिप्तया । दयया हीनो दयाहीनस्तेन निर्दयेनेत्यर्थः । आगत्य प्राप्य । निशाया रजन्या अन्तः शेषो निशान्तःप्रभातं तस्य पवनेन तत्सम्बन्धिसमीरणेन बोधितो लब्धसंज्ञोऽभवम् अहमिति शेषः ।

(४२) विरचितः कृतो मह उत्सवो येन तथाभूतेन । मन्त्रिनिवहेन अमात्यसंघेन विरचितं सम्पादितं दैवस्यानुकूल्यं साहाय्यं येन तथाभूतेन । कालेनेत्यस्य विशेषणम् , शुभमुहूर्त्ते इति भावः । शिविरं सेनानिवेशम् । अपनीतानि दूरीकृतानि अशेषाणि सर्वाणि शल्यानि बाणाग्राणि यस्य सः । विकसितं प्रसन्नं निजाननारविन्दं स्वमुखकमलं यस्य सः । विरोपिता औषधादिना चिकित्सिता व्रणा यस्य सः ।

(४३) विरोधिना प्रतिकूलेन दैवेन भागधेयेन धिक्कृतस्तिरस्कृतः पुरुषकारः विक्रमो यस्य सः । दैन्येन खेदेन व्याप्त आक्रान्तः आकारः स्वरूपं यस्य सः । अधिकाधिकोऽतिशयेनाधिक आधिर्मनोव्यथा यस्य सः । पुंस्याधिर्मानसी व्यथेत्यमरः । अमात्यानां मन्त्रिणां संमत्याऽनुमोदनक्रमेण । मृदु कोमलं भाषितं वचनं यस्यास्तया । मत्या बुद्ध्या । कलितया युक्तया । समबोधि विज्ञापितः । बुध्धातोः कर्मणि लुङ् ।

(४१) महाराजने उत्तर देते हुए कहा—'जब संग्राममें सब सैनिक मार डाले गये तब मालवेश मानसारने शिव-प्रसादसे प्राप्त गदा मुझे मारी जिससे मैं मूर्च्छित हो गया और इस वनके प्रातःकालिक शीतल पवनस्पर्शसे प्रतिबोधित हुआ ।'

(४२) तत्पश्चात् अमात्योंने अनेक प्रकारके उत्सव मनाये और राजाकी प्राणरक्षाके निमित्त देवाराधन किया । तथा राजाको शिविरमें लाकर अस्त्रोंके व्रणोंकी औषध की । समुचित उपचारसे राजा शीघ्र ही प्रसन्नमुख-प्रहृष्टवदन—हो गया-शीघ्र अच्छा हो गया ।

(४३) देवके प्रतिकूल होनेसे दीनतासे परिव्याप्त एवं खिन्न प्रकृतिवाले तथा विफल पौरुषवाले उन मगधराजकी सेवा मन्त्रिगणोंकी सम्मतिसे तथा निज बुद्धिसे रानी वसुमती करने लगी-सान्त्वना देने लगी ।

(४४) 'देव, सकलस्य भूपालकुलस्य मध्ये तेजोवरिष्ठो गरिष्ठो भवानद्य विन्ध्यवनमध्यं निवसतीति जलबुद्बुदसमाना विराजमाना संपत्तडिल्लतेव सहसैवोदेति नश्यति च। तन्निखिलं दैवायत्तमेवावधार्य कार्यम्।

(४५) किञ्च पुरा हरिश्चन्द्ररामचन्द्रमुख्या असंख्या महीन्द्रा ऐश्वर्योपमितमहेन्द्रा दैवतन्त्रं दुःखयन्त्रं सम्यगनुभूय पश्चादनेककालं निजराज्यमकुर्वन्। तद्वद्देव भवान्भविष्यति। कंचन कालं विरचित दैवसमाधिर्गलिताधिस्तिष्ठतु तावत्' इति।

(४६) ततः सकलसैन्यसमन्वितो राजहंसस्तपोविभ्राजमानं वामदेवनामानं तपोधनं निजाभिलाषावाप्तिसाधनं जगाम।

---

(४४) तेजसा प्रतापेन वरिष्ठो महत्तरः। गरिष्ठोऽतिशयेन गुरुः। विन्ध्यवनमध्यं निवसति राज्यभ्रष्टोऽरण्यमाश्रित्य तिष्ठति। जलस्य सलिलस्य बुद्बुदेन विकारेण समाना तुल्या। सम्पत् राज्यलक्ष्मीः। तडिल्लता विद्युत् सेव। सहसा अकस्मात्। उदेति आविर्भवति। नश्यति अदृश्यतां याति च। तत् तस्मात्कारणात्। दैवायत्तं भाग्याधीनम्। अवधार्य निश्चेतव्यम्।

(४५) किं च अपरञ्च। हरिश्चन्द्ररामचन्द्रौ मुख्यौ प्रधाने येषां ते। ऐश्वर्येण सम्पदा उपमितस्तुलितः समीकृत इति यावत्। महेन्द्रो देवराजो यैस्ते। दैवतन्त्रं दैवायत्तम् दैवचालितमिति भावः। दुःखयन्त्रं दुःखचक्रम्। तद्वद्देव—यथा हरिश्चन्द्रादयो राजानः पूर्वं महद्दुःखमनुभूय पश्चात्पुनरपि स्वस्वराज्यादिकं प्राप्तवन्तस्तथा। भविष्यति राज्यं प्राप्स्यतीत्यर्थः। विरचितः कृतो दैवसमाधिर्दैवाराधनं येन सः। गलितोऽपगत आधिर्मनोव्यथा यस्य सः। तिष्ठतु अपेक्षतामित्यर्थः।

(४६) तपसा विशेषेण भ्राजमानं दीप्यमानम्। वामदेव इति नाम यस्य तम्। तप एव धनं यस्य सः तम्। तापसमित्यर्थः। निजस्य स्वस्याभिलाषस्य मनोरथस्य अवाप्तेः प्राप्तेः साधनं सम्पादकम्।

---

(४४) हे देव ! वर्त्तमान कालमें जितने राजे–महाराजे हैं उनमें आप सर्वश्रेष्ठ हैं। किन्तु, इतने तेजवान् एवं प्रतापी होकर भी दैवगतिसे विन्ध्यारण्यमें पड़े हैं। इससे सिद्ध है कि राज्य-लक्ष्मी जलके बुद्बुदोंके समान बिजलीकी तरह सहसा आ जाती है—अतः शोच वृथा है, सभी बातें दैवायत्त हैं।

(४५) हे राजन् ! प्राचीन कालमें महाराज हरिश्चन्द्र, राजा रामचन्द्र आदि अगणित महीपतियोंने पहले दुःख भोगकर पुनः महेन्द्रके समान सुख भोगा। तद्वत् आप भी दुःख भोगकर सुखी होंगे–धीरज धरें, घबड़ायें नहीं। शान्तिसे देवाराधन करते रहें।

(४६) ततः अभीष्टसिद्धिके लिए राजा राजहंस मनोरथपूर्णकर्त्ता, तपी एवं तेजोबलवाले सख्यात वामदेव मुनिके समीप गया।

(४७) तं प्रणम्य तेन कृतातिथ्यस्तस्मै कथितकथ्यस्तदाश्रमे दूरीकृतश्रमे कंचन कालमुषित्वा निजराज्याभिलाषी मितभाषी सोमकुलावतंसो राजहंसो मुनिमभाषत—'भगवन् , मानसारः प्रबलेन दैवबलेन मां निर्जित्य मद्भोग्यं राज्यमनुभवति । तद्वदहमप्युग्रं तपो विरच्य तमरातिमुन्मूलयिष्यामि लोकशरण्येन भवत्कारुण्येनेति नियमवन्तं भवन्तं प्राप्नवम्' इति ।

(४८) ततस्त्रिकालज्ञस्तपोधनो राजानमवोचत्—'सखे ! शरीरकार्श्यकारिणा तपसालम् । वसुमतीगर्भस्थः सकलरिपुकुलमर्दनो राजनन्दनो नूनं संभविष्यति, कञ्चन कालं तूष्णीमास्स्व इति ।'

(४७) तेन वामदेवेन । कृतं विहितमातिथ्यं अतिथिसत्कारादि यस्य सः तस्मै वामदेवाय । कथितमुक्तं कथ्यं वक्तव्यं येन सः । दूरीकृतोऽपाकृतः श्रम आयासो येन यत्र वा तस्मिन् । सोमकुलावतंसः चन्द्रवंशभूषणम् । मानसारस्तदाख्यो मालवराजः । तद्वदिति—तेन मानसारेण यथा तपसा शिवं सन्तोष्य तस्माद्वरः समासादितस्तथाऽहमपि । उग्रं तीव्रमुत्कटञ्च । विरच्य कृत्वा । लोकानां जनानां शरणे रक्षणे साधुना । भवतस्तव कारुण्येन करुणया । इति—इति हेतोः । नियमवन्तं संयमिनम् ।

(४८) त्रिकालज्ञः भूतभविष्यद्वर्तमानकालवित् । शरीरस्य देहस्य कार्श्यं क्षीणतां करोतीति तेन । अलं प्रयोजनं नास्ति । वसुमतीगर्भस्थः—महिषीगर्भस्थितः । सकलं निखिलं रिपुकुलं शत्रुमण्डलं मर्दयति हिनस्तीति तथाभूतः । नूनं निश्चितं सम्भविष्यति—उत्पत्स्यते । तूष्णीमास्स्व जोषं तिष्ठ, युद्धादिकं मा कार्षीरित्यर्थः ।

(४७) वामदेवाश्रममें जाकर चन्द्रकुलालंकार राजा राजहंसने मुनिको प्रणाम करके आतिथ्य-सत्कारको स्वीकार किया । उनके सत्संगसे परिश्रमादि व्यथाको कुछ काल वहाँ रहकर निवृत्त किया । ततः स्वराज्याभिलाषी मितभाषी उस राजाने एक दिन उन मुनिसे कहा—'हे महाराज ! मालवेश मानसारने दैवकी प्रबल शक्तिसे मेरे राज्यको ले लिया अर्थात्—मुझे पराजितकर वह स्वयं मेरे राज्यको भोग रहा है । मैं चाहता हूँ कि मैं भी प्रबल तप करके दैवबलसे उस मानसारका उन्मूलन कर दूँ । अतः हे दीनवत्सल ! आप मुझे कृपया, तप विधि बता दें—जिससे मैं कृतकृत्य होऊँ । इसीकी विधि जाननेके हेतु आपतक आया हूँ ।'

(४८) यह श्रवणकर त्रिकालज्ञ तपोधन वामदेवने राजासे कहा—'शरीरको क्लेशकारिणी तपस्या न करो । रानी वसुमतीके गर्भसे जो पुत्र होगा वह सम्पूर्ण शत्रुओंको नष्ट करनेवाला है । इससे कुछ दिनों शान्ति रखो ।'

(४९) गगनचारिण्यापि वाण्या 'सत्यमेतत्' इति तदेवावाचि । राजापि मुनिवाक्यमङ्गीकृत्यातिष्ठत् ।

(५०) ततः सम्पूर्णगर्भदिवसा वसुमती सुमुहूर्ते सकललक्षणलक्षितं सुतमसूत । ब्रह्मवर्चसेन तुलितवेधसं पुरोधसं पुरस्कृत्य कृत्यविन्महीपतिः कुमारं सुकुमारं जातसंस्कारेण बालालंकारेण च विराजमानं राजवाहननामानं व्यधत्त ।

(५१) तस्मिन्नेव काले सुमतिसुमित्रसुमन्त्रसुश्रुतानां मन्त्रिणां प्रमतिमित्रगुप्तमन्त्रगुप्तविश्रुताख्या महाभिख्याः सूनवो नवोद्यदिन्दुरुचश्चिरायुषः समजायन्त । राजवाहनो मन्त्रिपुत्रैरात्ममित्रैः सह बालकेलीरनुभवन्नवर्धत ।

---

(४९) गगनचारिण्या–अशरीरिण्या । अङ्गीकृत्य स्वीकृत्य ।

(५०) सम्पूर्णाः परिपूर्णा गर्भदिवसाः नवदिनाधिकनवमासाः यस्याः सा । सुमुहूर्ते शुभलग्ने । सकलैरशेषैर्लक्षणैः सौभाग्यचिह्नैर्लक्षितं युक्तम् । ब्रह्मणो वर्च इति 'ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चस' इत्यच् । तेन ब्रह्मतेजसा तुलित उपमितो वेधा ब्रह्मा येन तम् । ब्रह्मतेजसा ब्रह्मसदृशम् । पुरस्कृत्य अग्रे कृत्वा । पुरोधसं पुरोहितम् । कृत्यवित् समयोचितकार्यज्ञः । सुकुमारं सुन्दरदर्शनम् । जातसंस्कारेण जातकर्मनाम्ना संस्कारविशेषेण । बालालङ्कारेण बालकोचितभूषणेन । विराजमानं विशेषतः शोभमानम् । राजवाहन इति नाम यस्य तम् । व्यधत्त चकार ।

(५१) तस्मिन्नेव काले–यदा राजवाहनस्य जन्माभवत् तदैव । महती समधिका अभिख्या शोभा येषां ते । अभिख्या नामशोभयोरित्यमरः । महदभिख्या इति पाठान्तरन्तु चिन्त्यम् । नवो नूतनः प्रातिपदिक इति यावत्–उद्यन् उदयमानो य इन्दुश्चन्द्रस्तस्य रुगिव रुक् कान्तिर्येषां ते । चिरायुषो दीर्घजीविनः । आत्मनः स्वस्य मित्रैः सुहृद्भिः । बालकेलीः शैशवोचितक्रीडाः ।

---

(४९) इसी क्षण आकाश-वाणीने भी 'यह बात सत्य है' ऐसा कहकर मुनिकी बातका समर्थन किया । राजा भी मुनिवाक्यपर सन्तुष्ट होकर वहीं रहने लगा ।

(५०) उसके पश्चात् गर्भके दिन पूरे होनेपर रानी वसुमतीने शुभ मुहूर्त्तमें सभी शुचि-शुभ लक्षणोंसे विभूषित पुत्रको उत्पन्न किया । तब ब्रह्मदेवके समान परम तेजस्वी पुरोहित की आज्ञानुसार उस कृत्यवेत्ता महीपालने उस सुकुमार राजकुमारका जन्मसंस्कार आदि (बालकोंके योग्य पहननेवाले अलंकारोंसे अलंकृत) यथाविधि कराकर राजवाहन नाम धरा ।

(५१) इसी समय सुमति, सुमन्त्र, सुमित्र और सुश्रुत चारों अमात्योंको भी क्रमसे प्रमति मित्रगुप्त, मन्त्रगुप्त और विश्रुत नामक बड़े सुन्दर चार पुत्र नूतनोदित चन्द्रकी तरह दीर्घजीवी उत्पन्न हुए । कुमार राजवाहन मन्त्रि-पुत्रोंसे बालक्रीड़ा करते हुए वृद्धि प्राप्त करते हुए रहने लगा ।

(५२) अथ कदाचिदेकेन तापसेन रसेन राजलक्षणविराजितं कञ्चिन्नयनानन्दकरं सुकुमारं कुमारं राज्ञे समर्प्यावाचि—भूवल्लभ, कुशसमिदानयनाय वनं गतेन मया काचिदशरण्या व्यक्तकार्पण्याश्रु मुञ्चन्ती वनिता विलोकिता।

(५३) निर्जने वने किंनिमित्तं रुद्यते त्वया इति पृष्टा सा करसरोरुहैरश्रु प्रमृज्य सगद्गदं मामवोचत्—मुने, लावण्यजितपुष्पसायके मिथिलानायके कीर्तिव्याप्तसुधर्मणि निजसुहृदो मगधराजस्य सीमन्तिनीसीमन्तमहोत्सवाय पुत्रदारसमन्विते पुष्पपुरमुपेत्य कञ्चन कालमधिवसति समाराधितगिरीशो मालवाधीशो मगधराजं योद्धुमभ्यगात्।

(५२) तापसेन मुनिना। रसेन अनुरागेण, राजहंसं प्रति प्रीत्येत्यर्थः। राज्ञो नृपस्य लक्षणैश्चिह्नैर्विराजितं शोभितम्। करतलादौ राजचिह्नचक्रच्छत्रादियुक्तमित्यर्थः। नयनानन्दकरं लोचनानन्ददायिनम्। राज्ञे राजहंसाय। अशरण्या नास्ति शरण्यं रक्षिता यस्याः सा। रक्षकहीनेत्यर्थः। व्यक्तं प्रकटितं कार्पण्यं दैन्यं यया सा। अश्रु नेत्रजलम्। मुञ्चन्ती त्यजन्ती, रोरुद्यमानेति शेषः।

(५३) करसरोरुहैः करकमलैः। अत्र सौन्दर्यातिशयमहिम्ना गौरवाद्बहुवचनं बोद्धव्यम्। प्रमृज्य दूरीकृत्य। सगद्गदं गद्गदस्वरेणेत्यर्थः। लावण्येन कान्त्या जितः पराजितः पुष्पसायकः कामो येन तस्मिन्। मिथिलानायके मिथिलाधिपतौ। कीर्त्या यशसा व्याप्ता परिपूरिता सुधर्मा देवसभा येन तस्मिन्। स्यात्सुधर्मा देवसभेत्यमरः। सीमन्तिन्या महिष्याः सीमन्तमहोत्सवाय सीमन्तोन्नयनाख्यगर्भसंस्काररूपमुत्सवं द्रष्टुम्। पुत्राश्च दाराश्चेति पुत्रदारास्तैः समन्विते युक्ते। अधिवसति वासं कुर्वति सति। समाराधितः सेवितो गिरीशो महेश्वरो येन सः।

(५२) एक समय कोई एक तपस्वी, राजाओंके सुलक्षणोंसे लक्षित तथा नयनाभिराम एक सुन्दर एवं सुकुमार बालकको, बड़े प्रेमके साथ राजाको समर्पित करके कहने लगा—'हे पृथ्वीके पति ! महाराज !! कुश और समिधाकी प्राप्तिके निमित्त मैं अरण्यमें गया था। वहाँ पर एक अनाथ तथा असहाय एवं दीना, आँखोंसे अश्रु बहाती हुई रमणीको मैंने देखा और पूछा कि इस एकान्त निर्जन वनमें तुम क्यों रो रही हो ? उसने अपने करकमलोंसे आसुओंको पोंछकर गद्गद स्वरमें मुझसे कहा—

(५३) हे मुने ! अपने शरीरांगोंकी लावण्यतासे कामको जीतनेवाला मिथिलेश प्रहारवर्मा जिसकी कीर्तिलता देवोंकी सभामें भी फैली है, अपने मित्र मगधराजकी सीमन्तिनीके सीमन्तोत्सवमें सम्मिलित होनेके लिए स्त्री-पुत्रोंके साथ आया और पुष्पपुरीमें आकर ठहरा। उसी समय शिवाराधनसे दैवशक्ति प्राप्तकर मालवेश युद्धके लिये वहाँपर आया।

(५४) तत्र प्रख्यातयोरेतयोरसंख्ये संख्ये वर्तमाने सुहृत्साहाय्यकं कुर्वाणो निजबले सति विदेहे विदेहेश्वरः प्रहारवर्मा जयवता रिपुणाभिगृह्य कारुण्येन पुण्येन विसृष्टो हतावशेषेण शून्येन सैन्येन सह स्वपुरगमनमकरोत् ।

(५५) ततो वनमार्गेण दुर्गेण गच्छन्नधिकबलेन शबरबलेन रभसादभिहन्यमानो मूलबलाभिरक्षितावरोधः स महानिरोधः पलायिष्ट । तदीयार्भकयोर्यमयोर्धात्रीभावेन परिकल्पिताहं मद्दुहितापि तीव्रगतिं भूपतिमनुगन्तुमक्षमे अभूव । तत्र विवृतवदनः कोऽपि रूपी कोप इव व्याघ्रः

(५४) प्रख्यातयोः वीरत्वेन प्रसिद्धयोः । संख्ये युद्धे । सुहृदः । स्वमित्रस्य राजहंसस्येति शेषः । साहाय्यकं साहाय्यमेवेति स्वार्थे कः । निजबले स्वसैन्ये । विगतो विनष्टो देहः शरीरं यस्य तस्मिन् । निहते सतीति शेषः । विदेहेश्वरो मिथिलाधिपः । जयवता विजयिना । अभिगृह्याक्रम्य । कारुण्येन करुणया । पुण्येन स्वभागधेयमाहात्म्येन । विसृष्टस्तेन मालवाधीशेन परित्यक्तः । शून्येन हताशेन शस्त्रादिरहितेन वा ।

(५५) दुर्गेण दुर्गमेण । अधिकं प्रभूतं बलं सामर्थ्यं यस्य तेन । शबरबलेन शबरसैन्येन । रभसाद् वेगात् । मूलबलेन प्रधानसैन्येन अभिरक्षितः सुरक्षितोऽवरोधः शुद्धान्तः स्त्रीवर्ग इति शेषः येन सः । स प्रहारवर्मा । महान् समधिको निरोधः स्वावरोधः स्वसैन्यैः स्वपरिवेष्टनं यस्य सः । तदीयार्भकयोः तत्पुत्रयोः । यमयोर्युग्मजातयोः । धात्रीभावेन उपमातृरूपेण । तीव्राऽतिवेगवती गतिर्यस्य तम् । अनुगन्तुमनुसर्तुम् । अक्षमे असमर्थे । तत्रारण्ये । विवृतं विस्तारितं वदनं मुखं येन सः । रूपी

(५४) उस समय उन दोनों वीरोंका खूब युद्ध होने लगा । मित्रकी सहायता करते हुए मिथिलेश प्रहारवर्माकी सेना भी नष्ट हो गयी और वह मालवेश मानसार द्वारा पकड़ लिया गया । तत्पश्चात् मानसारने दयादृष्टिसे अथवा मिथिलेशके पुण्यके बलसे उसे (मिथिलेशको) बन्धनमुक्त कर दिया । मिथिलेश भी छूटकर अपनी बची-खुची दुखी सेनाके साथ अपने नगरकी ओर चल दिया ।

(५५) जब मिथिलेश पराजित होकर उद्विग्न मन होकर अति विपुल एवं सघन वनके रास्ते होकर अपने देशको जा रहा था तब मार्गमें उसे प्रबल भीलसेनाका सामना करना पड़ा । परन्तु प्रधान सैन्यबलकी रक्षामें अन्तःपुरकी स्त्रियोंके साथ रक्षित होकर सब लोग प्राणत्राणके लिए वहाँसे भाग गये । प्रहारवर्माके जोड़ुआँ लड़कोंकी धात्री मैं तथा मेरी कन्या दोनों तीव्र गतिसे राजाके साथ दौड़नेमें असमर्थ होकर पीछे रह गयीं । उसी समय भक्षणार्थं

शीघ्रं मामाघ्रातुमागतवान्। भीताहमुदग्रग्राविण स्खलन्ती पर्यपतम्। मदीयपाणिभ्रष्टो बालकः कस्यापि कपिलाशवस्य क्रोडमभ्यलीयत।

(५६) तच्छवाकर्षिणोऽमर्षिणो व्याघ्रस्य प्राणान्बाणो बाणासनयन्त्रमुक्तोऽपाहरत्। लोलालको बालकोऽपि शबरैरादाय कुत्रचिदुपानीयत। कुमारमपरमुद्वहन्ती मद्दुहिता कुत्र गता न जाने। साहं मोहं गता केनापि कृपालुना वृष्णिपालेन स्वकुटीरमावेश्य विरोपितव्रणाभवम्। ततः स्वस्थीभूय भूयः क्ष्माभर्तुरन्तिकमुपतिष्ठासुरसहायतया दुहितुरनभिज्ञाततया च व्याकुलीभवामि' इत्यभिदधाना 'एकाकिन्यपि स्वामिनं गमिष्यामि' इति सा तदैव निरगात्।

मूर्तिमान्। आघ्रातुं हन्तुम्। उदग्रग्राविण उन्नतप्रस्तरे। मदीयपाणिभ्रष्टो मम हस्तच्युतः। कपिलाया धेनोः शवस्य मृतदेहस्य। क्रोडमङ्कम्। अभ्यलीयत प्रच्छन्नोऽभवत्।

(५६) अमर्षिणः क्रुद्धस्य। बाणः शरः। बाणासनयन्त्रं धनुस्तस्मान्मुक्तः प्रक्षिप्तः। विलोलाश्चञ्चला अलकाश्चूर्णकुन्तला यस्य सः। आदाय गृहीत्वा। कुत्रचिदज्ञातस्थाने। अपरमन्यं यमजयोर्मध्ये एकं तद्दुहितुरङ्कस्थमित्यर्थः। उद्वहन्ती धारयन्ती। कृपालुना दयावता। वृष्णिपालेन मेषपालेन*। आवेश्य प्रवेश्य। विरोपित औषधादिना चिकित्सितो व्रणो यस्याः सा। स्वस्थीभूय सुस्था भूत्वा अहमिति शेषः। भूयः पुनरपि। क्ष्माभर्तुः भूपतेः प्रहारवर्मणः। अन्तिकं समीपम्। उपतिष्ठासुः प्रयातुमिच्छुः। असहायतया सहायाभावात्। अनभिज्ञतया निरुद्दिष्टतया। अभिदधाना कथयन्ती।

मुखविवरको फैलाये हुये साक्षात् क्रोधकी मूर्तिके सदृश कोई व्याघ्र हमारी ओर हम दोनोंको खानेको दौड़ा। उससे भयभीत होकर मैं ऊबड़–खावड़ जमीनपर गिर पड़ी तथा मेरे हाथसे छूटकर बालक एक मृत कपिला गौकी गोदमें गिर पड़ा और वहीं छिप गया।

(५६) वह व्याघ्र ज्यों ही उस कपिला गौको खींचनेके लिए झपटा त्यों ही किसी व्याधाके हाथसे छोड़े गये बाणसे वह व्याघ्र मार डाला गया और उस चञ्चल केश–कलापवाले बालकको कोई एक शबर लेकर वहाँसे न मालूम कहाँ भाग गया। दूसरे बालकको लेकर मेरी पुत्री भी कहाँ चली गयी यह भी मुझसे अज्ञात है। मैं गिरनेसे मूर्छित हो गयी थी अतः एक दयालु ग्वालेने मुझे अपने घर ले जाकर मेरे घावोंकी मरहम पट्टी की तथा मुझे चङ्गा किया। अब मैं स्वस्थ होकर अपने महाराजके समीप जाना चाहती हूँ। किन्तु मैं एकाकिनी हूँ एवं पुत्रीके लोप होनेपर और दुखी हूँ तथा रो रही हूँ। अस्तु जैसा भी हो मैं महाराजके पास अवश्य जाऊँगी। ऐसा कहती हुई वह वहाँसे चली गयी।

* गोपालेन।

(५७) अहमपि भवन्मित्रस्य विदेहनाथस्य विपन्निमित्तं विषादमनुभवंस्तदन्वयाङ्कुरं कुमारमन्विष्यंस्तदैकं चण्डिकामन्दिरं सुन्दरं प्रागाम् ।

(५८) तत्र संततमेवंविधविजयसिद्धये कुमारं देवतोपहारं करिष्यन्तः किराताः 'महीरुहशाखावलम्बितमेनमसिलतया वा, सैकततले खनननिक्षिप्तचरणं लक्ष्यीकृत्य शितशरनिकरेण वा, अनेकचरणैः पलायमानं कुक्कुरबालकैर्वा दंशयित्वा संहनिष्यामः' इति भाषमाणा मया समभ्यभाष्यन्त 'ननु किरातोत्तमाः, घोरप्रचारे कान्तारे स्खलितपथः स्थविरभूसुरोऽहं मम पुत्रकं कचिच्छायायां निक्षिप्य मार्गान्वेषणाय किञ्चिदन्तरमगच्छम् ।

(५७) अहमपि वक्ता तापसोऽपि । विपत् निमित्तं यस्य तम्, विपत्तिसंजनितम् । तस्य विदेहराजस्यान्वयस्य वंशस्याङ्कुरं प्ररोहम् । तदा तस्मिन् समये ।

(५८) तत्र चण्डिकामन्दिरे । एवंविधविजयसिद्धये—यथा साम्प्रतं विदेहराजं वय विजितवन्तः एवमेव सर्वदास्माकं विजयो भूयादिति चण्डिकाप्रसादलाभाय । देवतोपहारं बलिम् । महीरुहस्य वृक्षस्य शाखायामवलम्बितं बद्धम् । असिलतया खड्गेन । सैकततले वालुकामयप्रदेशे । खनने गर्त्ते निक्षिप्तौ कीलितौ चरणौ यस्य तम् । लक्ष्यीकृत्य उद्दिश्य । शितशरनिकरेण तीक्ष्णबाणसमूहेन । अनेकचरणैः क्षिप्रचरणैः वेगेन धावद्भिरित्यर्थः । कुक्कुरबालकैरित्यस्य विशेषणम् । इति भाषमाणाः एवं कथयन्तः । समभ्यभाष्यन्त उक्ताः । घोरो भयङ्करः प्रचारः सञ्चारो यत्र तस्मिन् । कान्तारे दुर्गममार्गे । स्खलितो भ्रष्टः पन्था यस्य सः । मार्गभ्रष्ट इत्यर्थः । भूसुरो ब्राह्मणः निक्षिप्य संस्थाप्य । अन्तरं दूरम् ।

(५७) तत्पश्चात् मैं भी आपके मित्र विदेहेशकी विपत्तिपर विषादयुक्त होकर उनके वंशबीजांकुरकी खोजमें आगे चल पड़ा और जाते-जाते एक चण्डीमन्दिरमें पहुँचा ।

(५८) उस मन्दिरमें जाकर देखा कि वहाँ बहुतसे किरात-भील एकत्र खड़े हैं और उस बालकको विजयोपलक्षके निमित्त देवीको बलि चढ़ाना चाहते हैं । वे कहते थे कि, 'इसे या तो वृक्षमें लटकाकर तलवारसे मार दो अथवा बालूमें इसके दोनों पैर गाड़ दो और इसको तेज़ तीरोंसे वेध दो । वा कुत्तोंके पिल्ले इसके पीछे छोड़ दो जिसमें वे सब इसका माँस नोंच खायें आदि-आदि ।' उनको ऐसा कहते हुए सुनकर मैंने कहा—हे किरातवरों ! मैं वृद्ध ब्राह्मण हूँ तथा इस गहन वनमें मार्गभ्रष्ट हो गया हूँ । मेरा एक पुत्र था जिसे मैंने एक पेड़की छाया में सुला दिया था और स्वयं मार्ग खोजने कुछ दूर गया था ।

(५९) स कुत्र गतः, केन वा गृहीतः, परीक्ष्यापि न वीक्ष्यते तन्मुखावलोकनेन विनानेकान्यहान्यतीतानि । किं करोमि, क्व यामि, भवद्भिर्न किमदर्शि' इति ।

(६०) 'द्विजोत्तम, कश्चिदत्र तिष्ठति । किमेष तव नन्दनः सत्यमेव । तदेनं गृहाण' इत्युक्त्वा दैवानुकूल्येन मह्यं तं व्यतरन् ।

(६१) तेभ्यो दत्ताशीरहं बालकमङ्गीकृत्य शिशिरोदकादिनोपचारेणाश्वास्य निःशङ्कं भवदङ्कं समानीतवानस्मि । एनमायुष्मन्तं पितृरूपो भवानभिरक्षतात्' इति ।

(६२) राजा सुहृदापन्निमित्तं शोकं तन्नन्दनविलोकनसुखेन किञ्चिदधरीकृत्य तमुपहारवर्मनाम्नाहूय राजवाहनमिव पुपोष ।

---

(५९) स मत्पुत्रकः । परीक्ष्य अन्विष्य । अहानि दिनानि । अतीतानि गतानि । अदर्शि दृष्टः ।

(६०) कश्चित् एको बालकः । नन्दनः सुतः । दैवानुकूल्येन दैवानुग्रहेण । व्यतरन् दत्तवन्तः ।

(६१) तेभ्यः किरातेभ्यः । दत्ता अर्पिता आशिषो येन सः । अङ्गीकृत्य गृहीत्वा । शिशिरोदकादिना शीतलजलादिरूपेण शुश्रूषणेन । आश्वास्य स्वस्थं कृत्वा भवदङ्कं भवत्समीपम् । पितृरूपः पितृतुल्यः । अभिरक्षतात् रक्षतु । 'तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम्' इति तातङ् ।

(६२) राजा राजहंसः । सुहृदो मित्रस्य प्रहारवर्मणः आपद् विपद् निमित्तं कारणं यस्य तम् । तस्य मित्रस्य नन्दनस्य सुतस्य विलोकनाद् दर्शनाद् यत्सुखं तेन । अधरीकृत्य स्वल्पीकृत्य । उपहारवर्मनाम्ना । आहूय आकार्य । राजवाहनमिव स्वतनयवत् ।

---

(५९) किन्तु, लौटनेपर मैंने उसे वहाँ न पाया । नहीं ज्ञात हुआ कि वह कहाँ गया, उसे कौन जानवर ले गया । अन्वेषण करनेपर भी उसे नहीं पाया । उसका मुख देखे बिना कई दिन व्यतीत हो गये । क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? आप लोगोंने उसे देखा है ?

(६०) हे विप्र ! एक बालक यहाँ है । क्या सत्य ही यह आपका पुत्र है ? लीजिये इसे आप ले जाइये । ऐसा कहते हुए उन्होंने इस बालकको मुझे दैवानुकूल होनेसे दे दिया ।

(६१) मैंने उन लोगोंको आशीर्वाद दिया तथा शीतल जलोपचारसे इस बालकको निश्शंक कराकर आपके अंकमें ला रहा हूँ । इस आयुष्मान बालकके आप पितातुल्य हैं । अतः इसकी आप रक्षा करें ।

(६२) यह श्रवणकर राजाने सुहृदके विपत्ति जनित दुःखोंको उस बालकके मुखदर्शन से थोड़ा-थोड़ा दूर किया और उसका नाम उपहारवर्मा रखकर राजवाहनकी तरह उसका भी लालन-पालन करना प्रारम्भ किया ।

(६३) जनपतिरेकस्मिन्पुण्यदिवसे तीर्थस्नानाय पक्कणनिकटमार्गेण गच्छन्नबलया कयाचिदुपलालितमनुपमशरीरं कुमारं कंचिदवलोक्य कुतूहलाकुलस्तामपृच्छत्—'भामिनि ! रुचिरमूर्तिः सराजगुणसंपूर्तिरसावर्भको भवदन्वयसंभवो न भवति कस्य नयनानन्दनः, निमित्तेन केन भवदधीनो जातः, कथ्यतां याथातथ्येन त्वया' इति ।

(६४) प्रणतया तया शबर्या सलीलमलापि—'राजन् ! आत्मपल्लीसमीपे पदव्यां वर्तमानस्य शक्रसमानस्य मिथिलेश्वरस्य सर्वस्वमपहरति शबरसैन्ये मद्दयितेनापहृत्य कुमार एष मह्यमर्पितो व्यवर्धत' इति ।

(६५) तदवधार्य कार्यज्ञो राजा मुनिकथितं द्वितीयं राजकुमारमेव

---

(६३) जनपतिः राजा । पुण्यदिवसे पुण्यतिथौ पर्वणि वा । तीर्थस्नानाय तीर्थे स्नानं कर्तुम् । पक्कणस्य शबरालयस्य निकटमार्गेण सन्निहिताध्वना । अबलया स्त्रिया । उपलालितं वात्सल्येन धृतम् । अनुपमं अतुलनीयं शरीरं देहो यस्य तम् । कुतूहलेन कौतुकेन आकुलो व्याप्तः । भामिनि हे कामिनि ! सम्बोधनमेतत् । रुचिरा मनोरमा मूर्त्तिः स्वरूपं यस्य सः । राजगुणानां नृपलक्षणानां संपूर्त्या परिपूर्णतया सह वर्त्ततेऽसाविति । अर्भको बालः । भवत्यास्तवान्वये वंशे सम्भव उत्पत्तिर्यस्य सः । नयनानन्दनो नेत्रप्रीतिदः पुत्र इति भावः । निमित्तेन कारणेन । भवदधीनस्त्वदायत्तः । याथातथ्येन तत्त्वतः ।

(६४) प्रणतया कृतनमस्कारया । सलीलं सस्मितम् अलापि अभापि । पदव्यां मार्गे । शक्रसमानस्य इन्द्रतुल्यस्य । सर्वस्वं सर्वधनम् । मद्दयितेन मम भर्त्रा । व्यवर्धत वृद्धिं गतः ।

(६५) अवधार्य निशम्य । कार्यज्ञः कृत्यवित् । सामदानाभ्यां साम्ना सान्त्व-

---

(६३) एकदा किसी पुण्य कालके दिन मगधेश तीर्थस्नानके लिए जा रहे थे । रास्तेमें शबरोंके गांवमें एक वनिताको एक सुन्दर बालकको लालन करते हुए एवं किसी-दूसरेको दिखलाते हुए देखा । राजाने उस वनितासे आश्चर्यचकित होकर कुतूहलसे पूछा-'हे भामिनि ! इतना सुन्दर और सम्पूर्ण राजलक्षणोंसे युक्त यह सुन्दर मूर्तिवाला बालक किसका है । तुम्हारे वंशमें तो ऐसे सुन्दर बालककी उत्पत्ति असम्भव है । अतः सत्य कहो यह किसके नेत्रोंकी पुतली है । कैसे तुम्हारे पास यहाँ आया ?

(६४) वह भीलिनी प्रणामकर कहने लगी—'हे देव ? जब शबरोंकी सेनाने इस ग्रामसे जाते हुए मिथिलेशका सर्वस्व अपहरण कर लिया था । तब मेरे पतिने हरण करके इस बालकको मुझे दिया था । तबसे मैं इसका पालन कर रही हूँ ।'

(६५) उस भीलिनी द्वारा इस बालकका वृत्त ज्ञातकर तथा भलीभांति जानकर

निश्चित्य सामदानाभ्यां तामनुनीयापहारवर्मेत्याख्याय देव्यै 'वर्धय' इति समर्पितवान् ।

(६६) कदाचिद्वामदेवशिष्यः सोमदेवशर्मा नाम कंचिदेकं बालकं राज्ञः पुरो निक्षिप्याभाषत—'देव ! रामतीर्थे स्नात्वा प्रत्यागच्छता मया काननावनौ वनितया कयापि धार्यमाणमेनमुज्ज्वलाकारं कुमारं विलोक्य सादरमभाणि—'स्थविरे ! का त्वम् ? एतस्मिन्नटवीमध्ये बालकमुद्वहन्ती किमर्थमायासेन भ्रमसि' इति ।

(६७) वृद्धयाप्यभापि—'मुनिवर ! कालयवननाम्नि द्वीपे कालगुप्तो नाम धनाढ्यो वैश्यवरः कश्चिदस्ति । तन्नन्दिनीं नयनानन्दकारिणीं सुवृत्तां नामैतस्माद्द्वीपादागतो मगधनाथमन्त्रिसंभवो रत्नोद्भवो नाम रमणीय-

---

वादेन दानेन चोपायभूतेन । तां शबरीम् । अनुनीय सन्तोष्य । अपहारवर्मेत्याख्याय अपहारवर्मेति नाम कृत्वा । वर्धय पालय ।

(६६) राज्ञो राजहंसस्य । निक्षिप्य संस्थाप्य । काननावनौ आरण्यप्रदेशे । स्थविरे वृद्धे सम्बोधनमेतत् । 'प्रवयाः स्थविरो वृद्धो जीनो जीर्णो' इत्यमरः । अटवीमध्येऽरण्यमध्ये । उद्वहन्ती धारयन्ती । आयासेन क्लेशेन ।

(६७) कालयवननाम्नि कालयवनाख्ये । धनाढ्यो धनसमृद्धः । तन्नन्दिनीं तद्दुहितरम् । मगधनाथस्य मगधाधिपस्य मन्त्रिणोऽमात्यात् सम्भव उत्पत्तिर्यस्य सः । तत्पुत्र इत्यर्थः । रमणीयानामुत्कृष्टानां गुणानां सौन्दर्यादीनामालयो निलय

दूसरा बालक यही है ऐसा निश्चय कर लिया । फिर समझा बुझाकर तथा कुछ द्रव्यादि देकर उस भीलिनीसे वह बालक ले लिया तथा उसका नाम अपहारवर्मा धर दिया और महिषीको सहेजकर कह दिया—'हे देवि ! इसे पालो' ।

(६६) एक दिन वामदेव मुनिके शिष्य सोमदेव शर्माने एक बालक को राजाके समक्ष धरकर निवेदन किया—हे देव ! मैं रामतीर्थमें स्नानार्थ गया था । वहांसे लौटते समय मुझे मार्गमें—वनदेशमें—एक वृद्धा इस सुन्दर बालकको लिए मिली । मैंने उससे पूछा—'हे वृद्धे ! तुम कौन हो ! क्यों इस निर्जन वनमें अकेली आयासके साथ बालक लिये घूमती हो !'

(६७) वृद्धाने उत्तर देते हुए कहा—'हे मुनिवर ! कालयवन नामक एक महाद्वीप है। उसमें कालगुप्त नामक एक धनिक वैश्य रहता है । उसकी नयनाभिरामा सुवृत्ता नामकी पुत्रीसे इस द्वीपसे गये हुए मगधराजके मन्त्रिपुत्र रत्नोद्भवने परिणय किया । वह रत्नोद्भव अति सुन्दर अर्थात् रमणीयता का कोष था तथा सम्पूर्ण पृथ्वीतलपर पर्यटन कर चुका था

गुणालयो भ्रान्तभूवलयो मनोहारी व्यवहार्युपयम्य सुवस्तुसंपदा श्वशुरेण संमानितोऽभूत् कालक्रमेण नताङ्गी गर्भिणी जाता ।

(६८) ततः सोदरविलोकनकौतूहलेन रत्नोद्भवः कथंचिच्छ्वशुरमनुनीय चपललोचनया सह प्रवहणमारुह्य पुष्पपुरमभिप्रतस्थे । कल्लोलमालिकाभिहतः पोतः समुद्रान्भस्यमज्जत् ।

(६९) गर्भभरालसां तां ललनां धात्रीभावेन कल्पिताहं कराभ्यामुद्वहन्ती फलकमेकमधिरुह्य दैवगत्या तीरभूमिमगमम् । सुहृज्जनपरिवृतो रत्नोद्भवस्तत्र निमग्नो वा केनोपायेन तीरमगमद्वा न जानामि । क्लेशस्य परां काष्ठामधिगता सुवृत्तास्मिन्नटवीमध्येऽद्य सुतमसूत । प्रसववेदनया विचेतना सा प्रच्छायशीतले तरुतले निवसति । विजने वने स्थातुमशक्यतया

आधार इति यावत् भ्रान्तं पर्यटितं भुवः पृथिव्या वलयं मण्डलं येनासौ । व्यवहारी वाणिज्यकर्त्ता । उपयम्य विवाह्य । सुवस्तुसम्पदा शोभनद्रव्यसमृद्धया करणे तृतीया । उत्कृष्टवस्तून्युपहारीकृत्येत्यर्थः । संमानितः सत्कृतः । नताङ्गी सुवृत्ता ।

(६८) सोदराणां भ्रातॄणां विलोकने दर्शने यत्कुतूहलं कौतुकं तेन । चपले चञ्चले लोचने नयने यस्यास्तया । प्रवहणं नौकाम् । कल्लोलानां महातरङ्गाणां मालिकया परम्परयाऽभिहतस्ताडितः । पोता प्रवहणम् । अमज्जत् निमग्नः ।

(६९) गर्भभरेण गर्भभारेणालसां जडीकृताम् । ललनां स्त्रियम् । धात्रीभावेन धात्रीरूपेण । फलकं काष्ठखण्डम् । दैवगत्या दैवात् । सुहृज्जनैर्मित्रवर्गैः परिवृतः परिवेष्टितः । तत्र समुद्रे । परां काष्ठां अतिशयम् । असूत प्रसूतवती । प्रसववेदनया प्रसवकालिकपीडया । विचेतना संज्ञारहिता । प्रच्छायेन प्रचुरच्छायया शीतले शिशि-

---

व्यापारमें भी अतिकुशल था । श्वसुरने अतुल सम्पत्तिको देकर उसका सम्मान किया था । कुछ समय पश्चात् वह वैश्यपुत्री नतांगी गर्भवती हो गयी ।

(६८) तब भाइयोंको देखनेके लिए उद्विग्न पुष्पोद्भवने अपने श्वसुरसे प्रार्थना की और उनसे बिदाई लेकर चपललोचना पत्नीके साथ नौकापर पुष्पपुरके लिए प्रस्थान किया ।

(६९) दैववश वह नौका समुद्रकी तरंगोंसे अभिहत होकर जलमें डूब गयी । भगवत्कृपासे धात्रीभावसे नियुक्त मैं उस वैश्यकन्याको सम्हाले हुए, जो गर्भकी पीड़ासे उस समय अतिदुखी थी तथा अलसा रही थी, काठके एक तख्तेपर बैठकर समुद्रतटपर आ लगी । हम लोगोंको नहीं मालूम कि परिजनोंके साथ रत्नोद्भव डूब गये या कहीं तीरपर जा लगे । क्लेशकी पराकाष्ठाको प्राप्त हुई उस सुवृत्ताने इसी समय इस वनमें पुत्र उत्पन्न किया है । प्रसववेदनासे मूर्च्छित वह साध्वी सघन वृक्षकी छायामें बैठी है । निर्जन वनमें अकेले रहना

जनपदगामिनं मार्गमन्वेष्टुमुद्युक्तया मया विवशायास्तस्याः समीपे बालकं निक्षिप्य गन्तुमनुचितमिति कुमारोऽप्यनायि' इति ।

(७०) तस्मिन्नेव क्षणे वन्यो वारणः कश्चिददृश्यत । तं विलोक्य भीता सा बालकं निपात्य प्राद्रवत् । अहं समीपलतागुल्मके प्रविश्य परीक्षमाणोऽतिष्ठम् , निपतितं बालकं पल्लवकवलमिवाददति गजपतौ कण्ठीरवो महाग्रहेण न्यपतत् । भयाकुलेन दन्तावलेन झटिति वियति समुत्पात्यमानो बालको न्यपतत् । चिरायुष्मत्तया स चोन्नततरुशाखासमासीनेन वानरेण केनचित्पक्वफलबुद्ध्या परिगृह्य फलेतरतया विततस्कन्धमूले निक्षिप्तोऽभूत् । सोऽपि मर्कटः क्वचिदगात् ।

रे । जनपदगामिन लोकालयप्रापकम् । विवशाया विकलायाः । आनायि अनीतो मयेति शेषः ।

(७०) वने भव इति वन्य आरण्यक इत्यर्थः । वारणो गजः । सा धात्री । प्राद्रवत् पलायत । अहं वामदेवशिष्यः । समीपलतागुल्मके समीपस्थलतागृहे । परीक्षमाणः परितो विलोकयन् । पल्लवकवलं किसलयग्रासम् । आददति गृह्णति सतीति शेषः । कण्ठीरवः सिंहः । भीमो भयङ्करो रवो गर्जितं यस्य सः । महाग्रहेण अधिकावेशेन दन्तावलेन हस्तिना । वियति आकाशे । समुत्पात्यमानः समुत्क्षिप्यमाणः । चिरायुष्मत्तया दीर्घजीविततया । स बालकः । उन्नतस्योच्छ्रितस्य तरोर्वृक्षस्य शाखायां समासीनेनोपविष्टेन । पक्वफलबुद्ध्या पक्वफलभ्रान्त्या । फलेतरतया इदं फलं नेति हेतोः । वितते विस्तृते स्कन्धस्य वृक्षप्रकाण्डस्य मूले मूलदेशे । मर्कटो वानरः ।

अनुचित होगा । अतः नगरकी ओर जानेवाले मार्गका अन्वेषण करनेमें मैं व्यस्त हूँ । वेदनासे मूर्छित उस रमणीके समीप बालक छोड़ना ठीक न समझ मैं इसे अपने साथ लिये हुए हूँ ।

(७०) इसी समय एक मतवाला जंगली हाथी वहाँ दीख पड़ा । उसे देखते ही वह वृद्धा इस बालकको वहींपर रखकर भाग गयी । मैं वहींपर पास के लता-कुञ्जमें बैठकर यह देखने लगा कि देखें अब क्या होता है । ज्योंही वह गजराज भूमिपर निपतित इस बालकको नये पल्लवके ग्रासके समान उठानेको तत्पर हुआ त्योंही भयंकर शब्द करते हुए एक शेरने उस हाथीपर आक्रमण कर दिया । उस व्याघ्रके भयसे त्रस्त उस हाथीने उस बालकको ऊपरकी ओर उछालकर फेंक दिया । दीर्घायु होनेके कारण इस बालकको एक बन्दरने, जो एक विशाल पेड़की शाखापर बैठा था, पका हुआ फल समझकर लोक लिया । और फल न होनेसे उस बन्दरने इसे एक चौड़ी घनी डालपर रख दिया इस कारण यह बालक पृथ्वीपर गिरनेसे बच गया । वह वानर कहीं चला गया ।

(७१) बालकेन सत्त्वसंपन्नतया सकलक्लेशसहेनाभावि । केसरिणा करिणं निहत्य कुत्रचिदगामि । लतागृहान्निर्गतोऽहमपि तेजःपुञ्जं बालकं शनैरवनीरुहादवतार्य वनान्तरे वनितामन्विष्याविलोक्यैनमानीय गुरवे निवेद्य तन्निदेशेन भवन्निकटमानीतवानस्मि, इति ।

(७२) सर्वेषां सुहृदामेकदैवानुकूलदैवाभावेन महदाश्चर्यं बिभ्राणो राजा 'रत्नोद्भवः कथमभवत्' इति चिन्तयंस्तन्नन्दनं पुष्पोद्भवनामधेयं विधाय तदुदन्तं व्याख्याय सुश्रुताय विषादसंतोषावनुभवंस्तदनुजतनयं समर्पितवान् ।

(७३) अन्येद्युः कंचन बालकमुरसि दधती वसुमती वल्लभमभि-

---

(७१) सत्त्वसम्पन्नतया बलशालितया । सकलक्लेशसहेन सर्वप्रकारक्लेशसहिष्णुना । केसरिणा सिंहेन । तेजसां पुञ्जं राशिं तेजस्विनमित्यर्थः । शनैर्मन्दं मन्दम् । अवनीरुहाद् वृक्षात् । अविलोक्य अप्राप्येत्यर्थः । एनं बालकम् । निवेद्य कथयित्वा । तन्निदेशेन गुरोराज्ञया ।

(७२) एकदैव युगपदेव । अनुकूलदैवाभावेन प्रतिकूलदैववशात् । महदाश्चर्यं परमविस्मयम् । बिभ्राणो धारयन् । कथं सर्वेषामस्माकं सममेव दैवं प्रतिकूलं जातमिति विस्मयाकुलः सन्निति भावः । राजा राजवाहनः । रत्नोद्भवः कथमभवत्—रत्नोद्भवस्य का गतिर्जाता, तस्य किं जातमिति तात्पर्यम् । पुष्पोद्भवः नामधेयं नाम यस्य तम् । तदुदन्तं पूर्वोक्तं वृत्तान्तम् । व्याख्याय उक्त्वा । सुश्रुताय रत्नोद्भवस्य ज्येष्ठसहोदराय । विषादसन्तोषौ विषादहर्षौ—रत्नोद्भवस्य विनाशाद् विषादः तत्पुत्रस्य लाभात्सन्तोष इति भावः ।

(७३) अन्येद्युः अन्यस्मिन् दिने । उरसि वक्षसि । दधती धारयन्ती । वल्लभं

---

(७१) सत्त्वसम्पन्न शक्तिके प्रभावसे बालकने भी सभी कष्टोंको सह लिया । वह सिंह भी उस गजपतिको मारकर चला गया । तब मैंने लता-कुञ्जसे बाहर आकर तेजःपुंजरूपवाले इस बालकको वृक्षपरसे धीरेसे उतारा और वनमें इधर-उधर उस वृद्धाको खोजा । परन्तु खोजनेपर भी वह वृद्धा मुझे न मिली और मैंने इस बालकको लाकर गुरुदेवको दे दिया । फिर उनकी आज्ञा शिरोधार्य करके इसे आपके पास लाया हूँ ।

(७२) राजा हंसवाहन विचारने लगे—दैव प्रतिकूल होनेसे मेरे सभी मित्रोंपर एक साथ आपत्ति आयी । आश्चर्य है ! अब रत्नोद्भवका क्या होगा ? ऐसा सोचकर इसपर चिन्तित भी हो गये । इसके पश्चात् उन्होंने इस लड़केका नाम पुष्पोद्भव रखा और सारा वृत्त सुश्रुतको सुनाकर विषाद एवं हर्षके साथ उसे समर्पण कर दिया ।

(७३) एक दिन किसी एक बालकको गोदमें लिये हुए महारानी वसुमती महाराजके

गता। तेन 'कुत्रत्योऽयम्' इति पृष्टा समभाषत—'राजन् ! अतीतायां रात्रौ काचन दिव्यवनिता मत्पुरतः कुमारमेनं संस्थाप्य निद्रामुद्रितां मां विबोध्य विनीताब्रवीत्—'देवि ! त्वन्मन्त्रिणो धर्मपालनन्दनस्य कामपालस्य वल्लभा यक्षकन्याहं तारावली नाम, नन्दिनी मणिभद्रस्य। यक्षेश्वरानुमत्या मदात्मजमेतं भवत्तनूजस्याम्भोनिधिवलयवेष्टितक्षोणीमण्डलेश्वरस्य भाविनो विशुद्धयशोनिधे राजवाहनस्य परिचर्याकरणायानीतवत्यस्मि। त्वमेनं मनोजसंनिभमभिवर्धय' इति विस्मयविकसितनयनया मया सविनयं सत्कृता स्वक्षी यक्षी साप्यदृश्यतामयासीत्' इति।

पतिम्। तेन राज्ञा। कुत्र भव इति कुत्रत्य इति कुत्रेत्यव्ययात्त्यप्प्रत्ययः। अयं बालकः कुत्रोत्पन्नः—कस्य पुत्र इति भावः। अतीतायां गतायाम्। दिव्यवनिता स्वर्गीया स्त्री। निद्रया मुद्रितां निमीलितनयनाम्। विबोध्य प्रबोध्य। वल्लभा पत्नी। यक्षेश्वरस्य कुबेरस्यानुमत्याऽऽदेशेन। भवत्यास्तव तनूजस्य नन्दनस्य। भाविनो भविष्यतः। अम्भोनिधिः समुद्र एव वलयः कटकस्तेन वेष्टितं यत् क्षोणीमण्डलं भूमण्डलं तस्येश्वरः पतिः शासक इत्यर्थः। विशुद्धस्य निर्मलस्योज्ज्वलस्येति यावत् यशसः कीर्तेर्निधिर्निधानं तस्य। परिचर्येति शुश्रूषाकरणायेत्यर्थः। मनोजस्य मनोजेन वा सन्निभः—कामदेवतुल्यः सौन्दर्येणेति यावत्। अभिवर्द्धय पालय। विस्मयेनाश्चर्यरसेन विकसिते प्रफुल्ले नयने नेत्रे यस्यास्तया। सत्कृता संमानिता। स्वक्षी—सुशोभने अक्षिणी नेत्रे यस्याः सा। यक्षी यक्षकुलोत्पन्ना न तु यक्षपत्नी। कामपालस्य यक्षत्वाभावात्। अदृश्यतामन्तर्धानम्।

समीप आयी। राजाने उन्हें देखकर पूछा—'यह बालक कहाँसे आया।' उत्तरमें उन्होंने कहा—हे महाराज ! गत रात्रिमें एक स्वर्गांगना मेरे समीप निद्रावस्थामें आयी और इस सुकुमार कुमारको मेरी गोदीमें धरकर नम्रतासे विनयपूर्वक बोली—'मैं मणिभद्र नामक यक्षकी कुमारी हूँ तथा आपके अमात्य धर्मपालके सुत कामपालकी स्त्री हूँ। मेरा नाम तारावली है। यक्षेश्वर महाराजकी अनुमतिसे मैं इस बालकको आपके समीप आपके पुत्र राजवाहनकी सेवाके लिए लायी हूँ। कुमार राजवाहन भविष्यमें समुद्रोंसे परिवेष्टित समस्त भूमण्डलका चक्रवर्त्ती राजा कीर्तिशाली नरपति होगा। अत एव कामदेवके सदृश अति रम्य इस बालकका आप लालन-पालन करें।' ये सब बातें सुनते ही मैं जाग पड़ी और नेत्रोंको खोलकर आश्चर्य करने लगी तथा अति विनयसे मैंने उस यक्षिणीका स्वागत किया। स्वागतके बाद वह तुरन्त ही वहाँसे अदृश्य होकर चली गयी।

(७४) कामपालस्य यक्षकन्यासंगमे विस्मयमानमानसो राजहंसो रञ्जितमित्रं सुमित्रं मन्त्रिणमाहूय तदीयभ्रातृपुत्रमर्थपालं विधाय तस्मै सर्वं वार्तादिकं व्याख्यायादात् ।

(७५) ततः परस्मिन्दिवसे वामदेवान्तेवासी तदाश्रमवासी समाराधितदेवकीर्तिं निर्भर्त्सितमारमूर्तिं कुसुमसुकुमारं कुमारमेकमवगमय्य नरपतिमवादीत्—'देव ! विलोलालकं बालकं निजोत्सङ्गतले निधाय रुदतीं स्थविरामेकां विलोक्यावोचम्—'स्थविरे ! का त्वम्, अयमर्भकः कस्य नयनानन्दकरः, कान्तारं किमर्थमागता, शोककारणं किम्' इति ।

(७६) सा करयुगेन बाष्पजलमुन्मृज्य निजशोकशङ्कूत्पाटनक्षममि-

---

(७४) यक्षकन्यासङ्गमे यक्षीविवाहे । विशेषेण स्मयमानं आश्चर्यान्वितं मानसं मनो यस्य सः । रञ्जितानि स्वभावेनावर्जितानि मित्राणि सुहृदो येन तम् । सुमित्रं तन्नमानं कामपालज्येष्ठभ्रातरम् । अर्थपालं तन्नामानम् ।

(७५) अन्ते वसतीति अन्तेवासी—वामदेवस्यान्तेवासी छात्रः । 'छात्रान्तेवासिनौ शिष्ये' इत्यमरः । तस्य वामदेवस्याश्रमवासी आश्रमस्थः । समाराधिता प्राप्त्यर्थं संसेविता देवानां कीर्तिर्येन तं देवतुल्यकीर्त्तिमन्तमित्यर्थः । निर्भर्त्सिता स्वसौन्दर्येण तिरस्कृता मारस्य कन्दर्पस्य मूर्त्तिः स्वरूपं येन तम् । कुसुमवत् पुष्पमिव सुकुमारं कोमलम् । अवगमय्य प्रापय्य पुरतः संस्थाप्येत्यर्थः । विलोलाश्चञ्चला अलकाः कुन्तला यस्य तम् । उत्सङ्गतले अङ्के । स्थविरां वृद्धाम् । अर्भकः शिशुः कान्तारं दुर्गममार्गम् ।

(७६) बाष्पजलम् अश्रु । उन्मृज्यापनीय । निजस्य स्वस्य शोक एव शङ्कुः

---

(७४) कामपालका यक्षकुमारीसे सम्पर्क हुआ । इसपर राजहंसका चित्त विस्मित हुआ । तब उसने सुहृदोंको सुखी बनानेवाले सुमन्त्र नामक मन्त्रीको बुलाया और समस्त वृत्तान्त सुनाकर उस बालकका नाम अर्थपाल धरा ।

(७५) तत्पश्चात् कुछ दिनोंके अनन्तर एक दिन उसी आश्रमके निवासी वामदेव मुनिके शिष्यने आकर देवोंके समान कीर्तिशाली तथा कामदेवके समान सुन्दर एवं सुकुमार एक बालकको वहाँ लाकर राजासे कहा—'हे देव, मैं तीर्थाटन करते हुए कावेरी नदीके तटपर गया था । वहाँपर चंचलकेशकलापवाले इस बालकको अपनी गोदीमें धरकर रोती हुई एक वृद्धाको देखा तथा रोनेका कारण पूछा—'ऐ वृद्धे, तुम कौन हो ? यह कुमार किसका है ? तुम इस वनमें क्यों आयीं ? तुम इतनी दुःखी क्यों हो रही हो ?'

(७६) मेरी जिज्ञासापर वृद्धाने, दोनों हाथोंसे अपने आँखोंके आसुओंको पोंछकर और

व मामवलोक्य शोकहेतुमवोचत्—'द्विजात्मज ! राजहंसमन्त्रिणः सितवर्मणः कनीयानात्मजः सत्यवर्मा तीर्थयात्रामिषेण देशमेनमागच्छत् । स कस्मिंश्चिदग्रहारे कालीं नाम कस्यचिद् भूसुरस्य नन्दिनीं विवाह्य तस्या अनपत्यतया गौरीं नाम तद्भगिनीं काञ्चनकान्तिं परिणीय तस्यामेकं तनयमलभत । काली सासूयमेकदा धात्र्या मया सह बालमेनमेकेन मिषेणानीय तटिन्यामेतस्यामक्षिपत् । करेणैकेन बालमुद्धृत्यापरेण प्लवमाना नदीवेगागतस्य कस्यचित्तरोः शाखामवलम्ब्य तत्र शिशुं निधाय नदीवेगेनोह्यमाना केनचित्तरुलग्नेन कालभोगिनाहमदंशि । मदवलम्बीभूतो भूरुहोऽयमस्मिन्देशे तीरमगमत् । गरलस्योद्दीपनतया मयि मृतायामरण्ये कश्चन शरण्यो नास्तीति मया शोच्यते इति ।

कीलः तस्योत्पाटने उद्धरणे क्षमं समर्थम् । शोकस्य हेतुं कारणम् । कनीयान् कनिष्ठः तीर्थयात्राया मिषेण कपटेन । अग्रहारे ग्रामे । भूसुरस्य ब्राह्मणस्य । अनपत्यतया अपुत्रकतया । काञ्चनस्य स्वर्णस्येव कान्तिरौज्ज्वल्यं यस्यास्ताम् । परिणीय विवाह्य । सासूयं विद्वेषेण । मिषेण छलेन । तटिन्यां नद्याम् । उद्धृत्य धारयित्वा । अपरेण करेणेति शेषः प्लवमाना तरन्ती । नदीवेगागतस्य नद्या वेगवशादुपस्थितस्य । तरोः वृक्षस्य । निधाय संस्थाप्य । उह्यमाना नीयमाना । तरुलग्नेन वृक्षारूढेन । कालभोगिना कृष्णसर्पेण अदंशि दष्टा । मदवलम्बीभूतो मदाश्रयीभूतः । भूरुहो वृक्षः । अगमत् प्रापत् । गरलस्य विषस्य । उद्दीपनतया उत्कटतया । मृतायां सत्यामिति शेषः । शरण्यो रक्षकः । शोच्यते खेदः क्रियते ।

मनमें यह समझकर कि इस व्यक्तिद्वारा मेरा शोकरूपी अङ्कुश निकाल दिया जायगा—यह समर्थ शक्तिवाला है । मुझसे कहना प्रारम्भ किया—'हे विप्रसुत ! राजहंसके मन्त्री सितवर्माका छोटा लड़का सत्यवर्मा तीर्थाटनके लिये इस देशमें आया था । किसी अग्रहार (राजाके द्वारा संकल्प करके दिये हुए ग्राम) में एक विप्रकी कन्या, जिसका नाम काली था, उससे विवाह किया, परन्तु उससे सन्तति न होनेपर उसने उसीकी छोटी बहन गौरीसे उद्वाह किया जो स्वर्णसी सुन्दरी थी । उसको एक पुत्र हुआ । एक दिन काली ईर्ष्याके वशीभूत होकर उस बालकके सहित मुझे (मैं उसकी धात्री थी) किसी बहाने नदीके तीरपर ले आयी और हम दोनोंको नदीमें ढकेलकर भाग गयी । एक हाथसे बालकको पकड़े हुए मैं दूसरे हाथसे नदीमें तैरने लगी । इतनेमें नदीके बहावमें बहता हुआ एक वृक्ष आया जिसकी डालपर बालकको बिठा दिया और नदीमें उसी पेड़को पकड़कर नदीके वेगके सहारे तैरती चली । उस वृक्षमें लिपटे किसी सर्पने मुझे काट लिया । उस वृक्ष के साथ मैं इस प्रदेशमें तीरपर आ लगी । विषकी गर्मीसे मेरे मर जानेपर इस बालकका कोई भी रक्षक नहीं यही सोचकर रो रही हूँ ।

(७७) ततो विषमविषज्वालावलीढावयवा सा धरणीतले न्यपतत् । दयाविष्टहृदयोऽहं मन्त्रबलेन विषव्यथामपनेतुमक्षमः समीपकुञ्जेष्वौषधिविशेषमन्विष्य प्रत्यागतो व्युत्क्रान्तजीवितां तां व्यलोकयम् ।

(७८) तदनु तस्याः पावकसंस्कारं विरच्य शोकाकुलचेता बालमेनमगतिमादाय सत्यवर्मवृत्तान्तवेलायां तन्निवासाग्रहारनामधेयस्याश्रुततया तदन्वेषणमशक्यमित्यालोच्य भवदमात्यतनयस्य भवानेवाभिरक्षितेति भवन्तमेनमनयम्' इति ।

(७९) तन्निशम्य सत्यवर्मस्थितेः सम्यगनिश्चिततया खिन्नमानसो

---

(७७) विषमयाऽविषह्यया विषस्य ज्वालया शिखया पीडयेत्यर्थः । अवलीढाः व्याप्ता अवयवा अङ्गानि यस्याः सा । दयया करुणया आविष्टमाक्रान्तं हृदयं चेतो यस्य सः । मन्त्रबलेन मन्त्रशक्त्या । अपनेतुं दूरीकर्त्तुम् । समीपकुञ्जेषु निकटस्थलतादिपिहितस्थानेषु । व्युत्क्रान्तजीवितां मृताम् ।

(७८) तदनु तदनन्तरम् । पावकसंस्कारं विरच्य अग्निसंस्कारं कृत्वा तद्देहं भस्मसात्कृत्वेत्यर्थः । शोकेन खेदेनाकुलं व्याप्तं चेतो यस्य सः । अगतिमनाथम् । सत्यवर्मणो वृत्तान्तश्रवणवेलायां वार्ताश्रवणसमये तस्य सत्यवर्मणो निवासाग्रहारस्य वासस्थलभूतस्य ग्रामस्य यन्नामधेयं नाम तस्याश्रुततया अश्रवणेन । अभिरक्षिता पालकः । अनयं प्रापितवानस्मि । णीञ्प्रापणे इत्यस्य धातोर्लङि रूपम् ।

(७९) सत्यवर्मस्थितेः तदवस्थानस्य जीवनस्य वा सम्यगनिश्चिततया सोऽन्वे-

---

(७७) इतनी बात कहते-कहते भयङ्कर विषकी ज्वालासे जो सब शरीरमें व्याप्त हो गया था, वह अचानक भूमिपर गिर गयी । मुझे उसकी ऐसी दशापर दया आ गयी । परन्तु मैं मन्त्र नहीं जानता था इससे मन्त्रबलसे उसकी पीड़ा नष्ट न कर सका किन्तु समीपके लता-गृहसे मैं जब औषधि-विशेष खोजकर आया तो देखा कि उसके प्राण-पखेरू उड़ चुके थे ।

(७८) तत्पश्चात् मैंने उसकी दाह-क्रिया की । और इस शोकान्वित चित्तवाले बालकको अपने पास रख लिया । परन्तु सत्यवर्माके चरित्रके श्रवणके समय उसके निवासस्थान अग्रहारका नाम तो सुना किन्तु पता न पा सका अतः उस स्थानका अन्वेषण करना अशक्य समझा । हे प्रभो, आपके मन्त्रीका यह बालक है—ऐसा विचार करके आपके समीप ले आया हूँ ।

(७९) उपर्युक्त वृत्तान्तको जानकर तथा सत्यवर्माकी अनिश्चित स्थितिका ध्यान करके

नरपतिः सुमतये मन्त्रिणे सोमदत्तं नाम तदनुजतनयमर्पितवान् । सोऽपि सोदरमागतमिव मन्यमानो विशेषेण पुपोष ।

(८०) एवं मिलितेन कुमारमण्डलेन सह बालकेलीरनुभवन्नधिरूढानेकवाहनो राजवाहनोऽनुक्रमेण चौलोपनयनादिसंस्कारजातमलभत । ततः सकललिपिज्ञानं निखिलदेशीयभाषापाण्डित्यं षडङ्गसहितवेदसमुदायकोविदत्वं काव्यनाटकाख्यानकाख्यायिकेतिहासचित्रकथासहितपुराणगणनैपुण्यं धर्मशब्दज्योतिस्तर्कमीमांसादिसमस्तशास्त्रनिकरचातुर्यं कौटिल्य-

---

वावतिष्ठते न वेति जीवति न वेति वा सन्दिग्धतया । खिन्नं खेदाकुलं मानसं यस्य सः । नरपतिः राजा राजहंस इत्यर्थः । सोऽपि सुमतिरपि । सोदरं सत्यवर्माणमित्यर्थः । पुपोष वर्द्धयामास ।

(८०) एवमनेन प्रकारेण । मिलितेन एकत्र सङ्गतेन । कुमारमण्डलेन कुमारसंघेन । बालकेलीः, शैशवोचितक्रीडाः । अधिरूढानि समारूढान्यनेकानि नानाविधानि वाहनानि हस्त्यश्वादीनि येन सः । कदाचिद् गजं कदाचिच्चाश्वमारुरोहेति भावः । अनुक्रमेण यथाक्रमम् । सकललिपिज्ञानं सर्वविधाक्षरसंस्थानपरिचयम् । षडङ्गैः शिक्षाकल्पादिरूपैर्वेदाङ्गैः सहिते युक्ते वेदसमुदाये वेदसमूहे कोविदत्वं पाण्डित्यम् । काव्यं रामायणादि, नाटकं रूपकादि, आख्यानकं चूर्णकं, आख्यायिका कादम्बर्यादि कथा, इतिहासो महाभारतादि, चित्रकथा रमणीयकथा । एतैः सहितो युक्तो यत्पुराणगणः वेदव्यासरचिताष्टादशपुराणानि तत्र नैपुण्यं पाटवम् । धर्म इत्यादि प्रत्येकं शास्त्रेण सम्बध्यते तेन धर्मशास्त्रं स्मृतिः, शब्दशास्त्रं व्याकरणं, ज्योतिषं, तर्कशास्त्रं न्यायः, मीमांसा पूर्वोत्तरभेदेन द्विविधा, जैमिनीयदर्शनं वेदान्तदर्शनञ्चेत्यादिषु, आदिपदेन धनुर्वेदादिसंग्रहः, शास्त्रनिकरेषु शास्त्रसमूहेषु चातुर्यं अभिज्ञत्वम् । कौटिल्यश्चा-

---

राजहंस दुःखी हुए और सुमति नामक अमात्यको बुलवाकर उस बालकको उन्हें सौंप दिया और उसका सोमदत्त नाम भी धर दिया । उस सुमति मन्त्रीने उसे पाकर भाईके आनेके समान सुख प्राप्त किया तथा अति प्रीतिसे उसका लालन-पालन करने लगा ।

(८०) इस रीतिसे राजवाहन उन मिले हुए कुमारोंके साथ बालक्रीड़ा करता हुआ बढ़ने लगा और सवारियोंके आरोहणमें निपुण उस राजवाहनके क्रमसे चौल तथा उपनयन संस्कार विधिसे हुए । ततः सकल लिपि-विज्ञान, समस्त देशीय भाषाओंका पाण्डित्य, अंग सहित वेदका कोविदत्व, काव्य, नाटक, आख्यायिका, आख्यानक, इतिहास, चित्रकथा सहित पुराणोंकी विज्ञता, धर्मशास्त्र, ज्योतिःशास्त्र, न्यायशास्त्र, मीमांसा प्रभृति सकल शास्त्रोंकी चतुरता, कौटिल्य, कामन्दकीय आदि नीतिग्रन्थोंकी कुशलता, वीणा आदि सभी वाद्यकलाओंमें

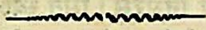
कामन्दकीयादिनीतिपटलकौशलं वीणाद्यशेषवाद्यदाक्ष्यं संगीतसाहित्यहारित्वं मणिमन्त्रौषधादिमायाप्रपञ्चचुञ्चुत्वं मातङ्गतुरङ्गादिवाहनारोहणपाटवं विविधायुधप्रयोगचणत्वं चौर्यदुरोदरादिकपटकलाप्रौढत्वं च तत्तदाचार्येभ्यः सम्यग्लब्ध्वा यौवनेन विलसन्तं कुमारनिकरं निरीक्ष्य महीवल्लभः सः 'अहं शत्रुजनदुर्लभः' इति परमानन्दममन्दमविन्दत ।

इति श्रीदण्डिनः कृतौ दशकुमारचरिते कुमारोत्पत्तिर्नाम प्रथम उच्छ्वासः ।



णक्यस्तेन प्रणीतं कौटिल्यं, कामन्दकरचितं कामन्दकीयम् आदिपदेन शुक्रनीत्यादिसंग्रहः । इत्यादीनि यानि नीतिपटलानि नीतिशास्त्रसमुदायास्तेषु कौशलं नैपुण्यम् । वीणादिषु वीणाप्रभृतिष्वशेषेषु सकलेषु वाद्येषु दाक्ष्यं दक्षताम् । सङ्गीतसाहित्येषु नृत्यगीतादिशिल्पकलासु हारित्वं मनोहारित्वम् । मणिमन्त्रौषधादिभिर्यो मायाप्रपञ्चः कपटप्रबन्धस्तेन वित्त इति 'तेन वित्तश्चुञ्चुप्चणपा'विति चुञ्चुप्प्रत्ययः, ततस्तस्य भावस्तथा । कपटप्रबन्धकुशलत्वमित्यर्थः । विविधानामायुधानामस्त्राणां प्रयोगेण वित्तस्तस्य भावस्तथा । अत्रापि तेनैव चणप् । चौर्यं स्तेयं, दुरोदरं द्यूतं तदादिकपटकलासु प्रौढत्वं प्रावीण्यम् । तत्तदाचार्येभ्यस्तत्तच्छास्त्रनिष्णातेभ्यः । लब्ध्वा अधिगम्य । कृत्येषु कार्येषु अनलसमालस्यरहितमुद्यमशीलमित्यर्थः । महीवल्लभो राजा । शत्रुजनदुर्लभः शत्रुभिरपराजेयः । अविन्दत अलभत ।

इति श्रीताराचरणभट्टाचार्यकृतायां बालविबोधिनीसमाख्यायां
दशकुमारचरितव्याख्यायां प्रथमोच्छ्वासः ।



पटुता, संगीत, साहित्य, मणि, मन्त्र, औषध आदि माया-प्रपंचोंमें दक्षता; हाथी, घोड़े रथादि सवारियोंपर चढ़नेकी क्षमता; अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंके चलानेमें पटुता; चोरी, जुआ, कपटकलामें प्रवीणता; आदि तत्तत् शास्त्रियोंसे अच्छी प्रकार सीखे हुए तरुणावस्थासे सुशोभित एवं कार्योंमें आलस्यरहित कुमारोंको देखकर राजा हंसवाहनने अपनेको कृतकृत्य माना तथा मनमें यह सोचा कि अब शत्रुजन मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते—मैं अजेय हूँ और परमानन्दित होने लगा ।

इस प्रकारसे प्रथमोच्छ्वासकी बालक्रीड़ा हिन्दीटीका समाप्त हुई ।



द्वितीयोच्छ्वासः

(१) अथैकदा वामदेवः सकलकलाकुशलेन कुसुमसायकसंशयितसौन्दर्येण कल्पितसोदर्येण साहसापहसितकुमारेण सुकुमारेण जयध्वजातपवारणकुलिशाङ्कितकरेण कुमारनिकरेण परिवेष्टितं राजानमानतशिरसं समभिगम्य तेन तां कृतां परिचर्यामङ्गीकृत्य निजचरणकमलयुगलमिलन्मधुकरायमाणकाकपक्षं विदलिष्यमाणविपक्षं कुमारचयं गाढमालिङ्ग्य मितसत्यवाक्येन विहिताशीरभ्यभाषत।

---

(१) सकलासु निखिलासु कलासु नृत्यगीतादिविद्यासु कुशलेन निपुणेन। कुमारनिकरेणेत्यस्य विशेषणमेवमग्रेऽपि। कुसुमसायकः कन्दर्पः संशयितः कन्दर्पो वा तदन्यो वेति सन्दिग्धो यस्मात् तथाभूतं सौन्दर्यं यस्य तेन। यस्य सौन्दर्यं दृष्ट्वा जनस्य कन्दर्पभ्रमो भवतीत्यर्थः। कल्पितं परस्परं रचितं सौदर्यं सहोदरभावः बन्धुतेति यावत्, येन तेन साहसेन पराक्रमेण अपहसितस्तिरस्कृतः कुमारः कार्त्तिकेयो येन तेन कुमाराधिकवीर्यशालिनेत्यर्थः। सुकुमारेण कोमलशरीरेण। जयध्वजो जयपताका, आतपवारणं छत्रं, कुलिशं वज्रं, तैरङ्कितौ चिह्नितौ करौ हस्तौ यस्य तेन। येषां करेषु ध्वजादिरेखाः सन्तीत्यर्थः। कुमारनिकरेण कुमारसमूहेन आनतशिरसं कृतनमस्कारम्। तेन राज्ञा राजहंसेन। परिचर्यां सेवाम् अङ्गीकृत्य स्वीकृत्य। निजस्य (वामदेवस्य) चरणकमलयुगले पादपङ्कजद्वये मिलन्तः पतन्तः मधुकरायमाणा भ्रमरा इवाचरन्तः काकपक्षाः शिखण्डका यस्य तं वामदेवं प्रणमन्तमित्यर्थः। विदलिष्यमाणाः पराजेष्यमाणा विपक्षाः शत्रवो येन तम्। कुमारचयं राजवाहनादिकुमारगणम्। गाढं निर्भरम्। मितं स्वल्पं सत्यमवितथं यद्वाक्यं तेन। परिमितसत्यप्रियवचनेनेत्यर्थः। विहिताशीः कृताशीर्वादः।

---

(१) तत्पश्चात् एकदा वामदेव मुनि, सभी कलाओंमें प्रवीण यही कामदेव हैं ऐसा जनोंके चित्तोंमें सन्देहको उत्पन्न करानेवाले और वेश-भूषादिसे अत्यन्त रमणीय एवं साहसमें स्वामी कार्त्तिकेयका उपहास करनेवाले तथा जिनके हाथोंमें जयध्वज, छत्र एवं कुलिशके चिह्न हैं ऐसे सुकुमार कुमारोंके समुदायसे परिव्याप्त हुए प्रणतमस्तक महाराजके समीप गये। वहाँ जाकर राजा द्वारा की गयी सेवा स्वीकार की। तत्पश्चात् अपने पादपद्ममें प्रणाम करते समय जिनके काकपक्ष भ्रमरोंकी शोभाको धारण करनेवाले ज्ञात होते थे और भविष्यमें शत्रुदलका दलन करनेवाले थे ऐसे कुमारोंके समुदायका आलिङ्गन किया। फिर परिमित तथा सत्य वचनोंसे आशीर्वाद देकर कहने लगे—

(२) 'भूवल्लभ, भवदीयमनोरथफलमिव समृद्धलावण्यं तारुण्यं नुतमित्रो भवत्पुत्रोऽनुभवति । सहचरसमेतस्य नूनमेतस्य दिग्विजयारम्भसमय एषः । तदस्य सकलक्लेशसहस्य राजवाहनस्य दिग्विजयप्रयाणं क्रियताम्' इति ।

(३) कुमारा माराभिरामा रामाद्यपौरुषा रुषा भस्मीकृतारयो रयोपहसितसमीरणा रणाभियानेन यानेनाभ्युदयाशंसं राजानमकार्षुः । तत्साचिव्यमितरेषां विधाय समुचितां बुद्धिमुपदिश्य शुभे मुहूर्ते सपरिवारं कुमारं विजयाय विससर्ज ।

(४) राजवाहनो मङ्गलसूचकं शुभशकुनं विलोकयन्देशं कंचिदति-

(२) भवदीयानां त्वदीयानां मनोरथानामभिलाषाणां फलमिव । समृद्धमतिशयेन वर्धितं लावण्यं सौन्दर्यं यस्मिन् तदिति तारुण्यविशेषणम् । नुतानि प्रशंसितानि मित्राणि सुहृदो यस्य सः । नूनं निश्चयेन । दिशां विजयस्यारम्भः प्रारम्भस्तस्य समयः कालः । अस्मिन्नेव समये दिग्विजयोद्योगः कर्त्तव्यः इत्यर्थः । सकलक्लेशसहस्य सत्त्वसम्पन्नतया सकलक्लेशसहिष्णोः । दिग्विजयप्रयाणं दिग्विजययात्रा ।

(३) मारः कन्दर्पस्तद्वदभिरामा मनोहराः । रामो दाशरथिराद्यो येषां ते तेषां पौरुषमिव पौरुषं पराक्रमो येषां ते । रुषा कोपेन भस्मीकृता विनाशिता अरयः शत्रवो यैस्ते । रयेण वेगेनोपहसितस्तिरस्कृतः समीरणः पवनो यैस्ते । रणमभियातीति रणाभियानं तेन रणाभियानेन रणाभिमुखेन । यानेन यात्रया । अभ्युदयेऽभ्युन्नतौ आशंसा यस्य तम् । तस्य राजवाहनस्य साचिव्यं मन्त्रित्वं सहायत्वमिति यावत् । इतरेषां अन्यकुमाराणाम् । समुचितां विजययात्रायां योग्याम् । सपरिवारं सपरिजनम् । विजयाय विजयं कर्त्तुमिति तुमर्थाच्च भाववचनादिति चतुर्थी । विससर्ज प्रेषयामास ।

(४) मङ्गलसूचकं शुभोदर्कज्ञापकम् । शुभशकुनं सुनिमित्तम् । तत्र विन्ध्याट-

(२) हे पृथिवीपति ! अनुकूलसुहृद् आपका पुत्र राजवाहन आपके मनोरथ-फलकी तरह समृद्ध-लावण्य तथा युवावस्थाका अनुभव करता है । अतः सहचर वर्गोंके सहित उसके दिग्विजय करनेका यह समय अच्छा है । इसलिये उसे आप दिग्विजयार्थ भेज देवें ।

(३) कामदेवके सदृश मनोहर तथा श्रीरामचन्द्रादिके समान पराक्रमशील एवं कोपसे ही अरिवर्गको भस्म करनेमें समर्थ और वेगमें पवनको भी तिरस्कृत करनेवाले कुमारवर्गकी रणयात्राके द्वारा राज्यश्रीका अभ्युदय निश्चित होगा । यह बात परिज्ञात करके उस राजहंसने अन्य कुमारोंको कुमार राजवाहनके साहाय्यके लिए नियुक्त किया तथा समुचित उपदेशोंको देकर शुभ मुहूर्तमें परिजनोंके साथ राजवाहनको विजय करनेके लिए भेज दिया ।

(४) कुमार राजवाहन यात्रामें मंगलसूचक शुभ लक्षणों (शकुनों) को देखता हुआ

क्रम्य विन्ध्याटवीमध्यमविशत् । तत्र हेतिहतिकिणाङ्कं कालायसकर्कशकायं यज्ञोपवीतेनानुमेयविप्रभावं व्यक्तकिरातप्रभावं लोचनपरुषं कमपि पुरुषं ददर्श ।

(५) तेन विहितपूजनो राजवाहनोऽभाषत—'ननु मानव, जनसङ्गरहिते मृगहिते घोरप्रचारे कान्तारे विन्ध्याटवीमध्ये भवानेकाकी किमिति निवसति । भवदंसोपनीतं यज्ञोपवीतं भूसुरभावं द्योतयति । हेतिहतिभिः किरातरीतिरनुमीयते । कथय किमेतत्' इति ।

(६) 'तेजोमयोऽयं मानुषमात्रपौरुषो नूनं न भवति' इति मत्वा स पुरुष-

व्याम् । हेतीनामस्त्राणां हतिभिः प्रहारैर्ये किणाः शुष्कव्रणास्तेषामङ्काश्चिह्नानि यस्मिन् तम् । कालायसं लोहमिव कर्कशः कठोरः कायो देहो यस्य तम् । यज्ञोपवीतेन यज्ञसूत्रेण । अनुमेयोऽनुमातुं योग्यो विप्रभावो द्विजत्वं यस्य तम् । व्यक्तः प्रकटितः किरातप्रभावो वनचरसामर्थ्यं येन तम् । यज्ञसूत्रेण ब्राह्मणोऽसावित्यनुमीयते, स्वरूपादिना तु किरातोऽयमिति स्पष्टं ज्ञायत इति भावः । लोचनयोर्नेत्रयोः परुषं कर्कशं भीषणदर्शनमित्यर्थः ।

(५) तेन किरातवेषधारिणा पुरुषेण । विहितपूजनः कृतसत्कारः । जनसङ्गरहिते । मनुष्यसम्पर्कशून्ये । मृगहिते पशूनामेव हितकरे । घोरो भयजनकः प्रचारः सञ्चारो यस्मिंस्तस्मिन् । किमिति किमर्थम् । भवतस्तव अंसं स्कन्धदेशमुपनीतं प्राप्तम् । भूसुरभावं विप्रभावम् । द्योतयति सूचयति । हेतिहतिभिः शस्त्राघातचिह्नैः । किरातरीतिः वनचरव्यवहारः । अनुमीयते तर्क्यते ।

(६) तेजोमयः प्राचुर्ये मयट् तेन तेजःपुञ्जशरीर इत्यर्थः । अयमिति राजवाह-

विन्ध्याटवीमें प्रविष्ट हो गया । वहाँपर उसने एक भयंकर नेत्रवाले मनुष्यको देखा—जो जनेऊ धारण करनेसे तो ब्राह्मण ज्ञात होता था किन्तु, उसके शरीरपर अनेक आयुधोंके आघातोंके व्रण थे । उसका शरीर लोहेके समान कर्कश तथा काला दिखाई देता था । उसे देखनेसे ऐसा प्रतीत होता था जैसे कोई किरात हो ।

(५) उस मनुष्यने कुमार राजवाहनका स्वागत-सत्कार किया । सत्कारके अनन्तर राजवाहनने पूछा—हे मानव ! मनुष्योंसे विहीन इस विन्ध्याटवीके गहन वनमें क्यों आप निवास कर रहे हैं ? यह वन तो हिरणोंके हितके लिए तथा हिंसक जानवरोंके विचरणयोग्य है । आपके कन्धेपर धारण किया हुआ यज्ञोपवीत 'आप ब्राह्मण' हैं ऐसा सूचित कर रहा है किन्तु, देहमें लगे शस्त्रास्त्रके घावोंसे आप किरातोंके समान आचरण करनेवाले हैं ऐसा प्रतीत हो रहा है । बतलावें इसका क्या कारण है ?

(६) इस तेजःपुञ्जाकृतिवाले मनुष्यकी शक्ति साधारण पुरुषोंके समान नहीं है अतः

स्तद्वयस्यमुखान्नामजनने विज्ञाय तस्मै निजवृत्तान्तमकथयत्—'राजनन्दन, केचिदस्यामटव्यां वेदादिविद्याभ्यासमपहाय निजकुलाचारं दूरीकृत्य सत्यशौचादिधर्मव्रातं परिहृत्य किल्बिषमन्विष्यन्तः पुलिन्दपुरोगमास्तदन्नमुपभुञ्जाना बहवो ब्राह्मणब्रुवा निवसन्ति, तेषु कस्यचित्पुत्रो निन्दापात्रचारित्रो मातङ्गो नामाहं सह किरातबलेन जनपदं प्रविश्य ग्रामेषु धनिनः स्त्रीबालसहितानानीयाटव्यां बन्धने निधाय तेषां सकलधनमपहरन्नुद्धृत्य वीतदयो व्यचरम् । कदाचिदेकस्मिन्कान्तारे मदीयसहचरगणेन जिघांस्यमानं भूसुरमेकमवलोक्य दयायत्तचित्तोऽब्रवम् 'ननु पापाः, न हन्तव्यो ब्राह्मण' इति ।

नस्य निर्देशः । मानुषमात्रं मानुषप्रमाणं पौरुषं पराक्रमो यस्य सः । नूनमवश्यम् । मत्वा विचार्य । तस्य राजवाहनस्य वयस्यानां मित्राणां मुखात् तेषां कथनेनेत्यर्थः । नामजनने नाम आख्या जननमुत्पत्तिः ते, कुलनामनीत्यर्थः । केचिदित्यस्य ब्राह्मणब्रुवा इत्यनेन सम्बन्धः । अपहाय परित्यज्य । निजकुलाचारं ब्राह्मणकुलोचितधर्मम् । धर्मव्रातं धर्मसमूहम् । परिहृत्य त्यक्त्वा । किल्बिषं पापम् । पापं किल्बिषकल्मषमित्यमरोक्तेः । पुलिन्दानां किरातानां पुरोगमा अग्रगाः, पुलिन्दाः पुरोगमा नेतारो येषां ते इति वा । तदन्नं म्लेच्छान्नमुपभुञ्जाना भक्षयन्तः । ब्राह्मणब्रुवा ब्राह्मणाधमाः । निन्दापात्रं गर्हणीयं चारित्रं चरितं यस्य सः । किरातबलेन शबरसैन्येन । धनिनो धनाढ्यान् । स्त्रीभिरबलाभिर्बालैः शिशुभिश्च सहितान् युक्तान् । उद्धृत्य विनाश्य । वीताऽपगता दया करुणा यस्य सः । जिघांस्यमानं हन्तुमिष्यमाणं हननार्थं नीयमानमिति भावः । भूसुरं ब्राह्मणम् । दयया करुणया आयत्तं आक्रान्तं चित्तं हृदयं यस्य सः । अब्रवमकथयम् ।

यह अवश्य तेजस्वी पुरुष है ऐसा ज्ञातकर तथा पूर्वसे ही राजवाहनके सुहृदोंसे उसका नाम और उत्पत्ति सुन चुकनेके कारण वह पुरुष राजवाहनसे अपना वृत्तान्त कहने लगा । उसने कहा—हे राजनन्दन ! इस विन्ध्याटवीमें अनेक कुत्सित विप्रोंका आवास है जिन्होंने वेदादि विद्याभ्यासको त्यागकर तथा ब्राह्मणोचित धर्माचार एवं सत्य-शौच आदि कुलाचारको छोड़कर पापाचारमें प्रविष्ट होकर म्लेच्छोंके अधीन रहना अपना धर्म बना लिया है और उन्हीं म्लेच्छोंका अन्न खाकर जीवन बिताना उनका प्रधान कार्य हो गया है । उन्हीं विप्रोंमेंसे एक चरित्रहीन, निन्दित विप्रपुत्र मैं भी हूँ । मेरा नाम मातंग है । इसी विपिनके किरात–भीलोंके साथ मैं भी नगरोंमें जाया करता था और पुत्र-कलत्रादिके सहित नगरोंसे धनिकोंको पकड़ लाया करता था तथा उन्हें बन्दी बनाकर सारा माल-असबाव छीन लेता था । इसी रीतिसे निर्दय होकर मैं घूमा करता था कि, एकदा किसी एक वनमें हमारे साथी लोग एक ब्राह्मणको मारने लगे । मुझे उसपर करुणा भर आयी और मैंने कहा—हे पापियों ! इस ब्राह्मणकी हत्या न करो ।

(७) ते रोषारुणनयना मां बहुधा निरभर्त्सयन् । तेषां भाषणपारुष्यमसहिष्णुरहमवनिसुररक्षणाय चिरं प्रयुध्य तैरभिहतो गतजीवितोऽभवम् ।

(८) ततः प्रेतपुरीमुपेत्य तत्र देहधारिभिः पुरुषैः परिवेष्टितं सभामध्ये रत्नखचितसिंहासनासीनं शमनं विलोक्य तस्मै दण्डप्रणाममकरवम् । सोऽपि मामवेक्ष्य चित्रगुप्तं नाम निजामात्यमाहूय तमवोचत्–'सचिव, नैषोऽमुष्य मृत्युसमयः । निन्दितचरितोऽप्ययं महीसुरनिमित्तं गतजीवितोऽभूत् । इतःप्रभृति विगलितकल्मषस्यास्य पुण्यकर्मकरणे रुचिरुदेष्यति । पापिष्ठैरनुभूयमानमत्र यातनाविशेषं विलोक्य पुनरपि पूर्वशरीरमनेन गम्यताम्' इति ।

(७) ते पुलिन्दाः । रोषेण क्रोधेन अरुणानि रक्तवर्णानि नयनानि नेत्राणि येषां ते । बहुधा नानाप्रकारेण । निरभर्त्सयन् अतर्जयन् । भाषणपारुष्यं कर्कशवचनानि । असहिष्णुः सोढुमशक्तः । अवनिसुररक्षणाय ब्राह्मणत्राणाय । चिरं दीर्घकालम् । प्रयुध्य युद्धं कृत्वा । अभिहतः प्रहृतः । गतं जीवितं यस्य सः गतप्राणो मृत इति शेषः ।

(८) प्रेतपुरीं यमालयम् । रत्नैर्मणिभिः खचिते प्रत्युप्ते सिंहासने आसीनमुपविष्टम् । शमनं यमराजम् । दण्डप्रणामं दण्डवन्नमस्कारम् । सोऽपि यमराजोऽपि । निजामात्यं स्वमन्त्रिणम् । अमुष्य पुरुषस्य । मृत्युसमयः मरणकालः । निन्दितं गर्हितं चरितं चरित्रं यस्य सः । महीसुरनिमित्तं ब्राह्मणार्थम् । इतः प्रभृति अद्यारभ्य । विगलितं विनष्टं कल्मषं पापं यस्य तस्य । अस्य पुरुषस्य । पुण्यकर्मणां करणेऽनुष्ठाने । रुचिरभिलाषः । उदेष्यति उत्पत्स्यते । पापिष्ठैः पापाचारिभिः अनुभूयमानं भुज्यमानम् । अत्र यमालये नरके वा । यातनाविशेषं पीडाविशेषम् । गम्यतां प्राप्यताम् ।

(७) इस बातपर उन किरातोंने मुझे बहुत डाँटा तथा मारे क्रोधके उनकी आँखें लाल-लाल हो गयीं । उनकी कटु निर्भर्त्सनाको मैं न सह सका तथा ब्राह्मणकी रक्षाके निमित्त उनसे लड़कर प्राणोंको त्याग दिया ।

(८) मृत्युके पश्चात् प्रेतपुरीमें गया । वहाँ शरीरधारी पुरुषोंसे परिवेष्टित सभाके मध्यभागमें रत्नादि-जटित सिंहासनपर आसीन यमराजको देखा और दण्ड-प्रणाम किया । उन्होंने भी मुझे देखा और चित्रगुप्त नामके अपने मन्त्रीको बुलाकर कहा—हे चित्रगुप्त मन्त्रिवर ! इसकी मृत्युका समय अभी नहीं है । यद्यपि इसका आचरणकुत्सित है परन्तु यह विप्रके लिए मरा है । अतः उस पुण्यसे आजसे इसकी बुद्धि पापाचरणरहित होकर धर्माचरणवाली होगी । अत एव पापियोंको दी जानेवाली नरक-यातनाको दिखाकर इसे पुनः इसके पहले शरीरमें ही भेज देना चाहिये ।

(९) चित्रगुप्तोऽपि तत्र तत्र संतप्तेष्वायसस्तम्भेषु बध्यमानान्, अत्युष्णीकृते विततशरावे तैले निक्षिप्यमाणान्, लगुडैर्जर्जरीकृतावयवान्, निशितटंकैः परितक्ष्यमाणानपि दर्शयित्वा पुण्यबुद्धिमुपदिश्य माममुञ्चत् । तदेव पूर्वशरीरमहं प्राप्तो महाटवीमध्ये शीतलोपचारं रचयता महीसुरेण परीक्ष्यमाणः शिलायां शयितः क्षणमतिष्ठम् ।

(१०) तदनु विदितोदन्तो मदीयवंशबन्धुगणः सहसागत्य मन्दिरमानीय मामपक्रान्तव्रणमकरोत् । द्विजन्मा कृतज्ञो मह्यमक्षरशिक्षां विधाय विविधागमतन्त्रमाख्याय कल्मषक्षयकारणं सदाचारमुपदिश्य ज्ञानेक्षणगम्यमानस्य शशिखण्डशेखरस्य पूजाविधानमभिधाय पूजां मत्कृतामङ्गीकृत्य निरगात् ।

---

(९) आयसस्तम्भेषु लौहस्तम्भेषु । विततशरावे विस्तीर्णकटाहे । तत्रस्थे इत्यर्थः । लगुडैर्वंशदण्डैर्यष्टिभिरिति यावत् । जर्जरीकृताः प्रहारेण शिथिलीकृता अवयवा अङ्गानि येषां तान् । निशितटङ्कैस्तीक्ष्णपाषाणदारणैः । परितक्ष्यमाणान् तनूक्रियमाणान् । रचयता कुर्वता । परीक्ष्यमाणः जीवति वा न वेति दृश्यमानः ।

(१०) विदितो ज्ञात उदन्तो वृत्तान्तो येन सः मदीयवंशबन्धुगणः मम ज्ञातिवर्गः । अपक्रान्ताः चिकित्सिता व्रणाः प्रहारस्थानानि यस्य तम् । द्विजन्मा ब्राह्मणः । अक्षरशिक्षां लिपिविज्ञानम् । विविधागमानां नानाशास्त्राणां तन्त्रं सिद्धान्तम् । आख्याय उपदिश्य । कल्मषाणां पापानां क्षये नाशे कारणं निमित्तभूतम् । सतामाचारं-सज्जनैरुपदर्शितं मार्गम् । ज्ञानेक्षणेन ज्ञाननेत्रेण गम्यमानस्य न तु चक्षुषा दृश्यस्येत्यर्थः । शशिखण्डशेखरस्य शिवस्य । पूजाविधानं पूजनविधिम् । अङ्गीकृत्य स्वीकृत्य गृहीत्वेत्यर्थः । निरगात् निर्गतः ।

---

(९) चित्रगुप्त महोदयने भी मुझे ले जाकर निम्नांकित नरकयातनाएँ दिखायीं । वहाँपर मैंने देखा कि यत्र तत्र जीवोंको लोहेके तप्त खम्भोंमें बांधा जा रहा था । कहीं-कहीं खूब गरम किये तेलके बड़े-बड़े कड़ाहे धरे थे जिनमें जीव फेंके जा रहे थे । यत्र तत्र लाठीके प्रहारोंसे लोगोंके अंग-भंग हो रहे थे । कहीं-कहींपर छेनीसे लोगोंको वेधा जा रहा था । तब उन्होंने और पापियोंको मुझे दिखाया तथा पुण्य चरित्रका, पुण्य बुद्धिके उदयार्थ उपदेश दिया और मुझे छोड़ दिया । पुनः मैं उस शरीरमें आ गया और देखा कि, वही ब्राह्मण जिसके लिए मैं लड़ा था मेरे मृत शरीरकी शीतोपचारसे रक्षा कर रहा है तथा मेरे शरीरको एक शिलाके ऊपर सुलाये हुए रखे है । मैं क्षण भर ऐसी दशामें रहा ।

(१०) अनन्तर मेरे वंशके बन्धु-बान्धवगण भी मेरी ऐसी दशा जानकर वहाँपर अचानक आ पहुँचे तथा मुझे घर ले गये एवं सेवा-शुश्रूषा द्वारा मेरे व्रणोंको अच्छा किया । वह कृतज्ञ

(११) तदारभ्याहं किरातकृतसंसर्गं बन्धुवर्गमुत्सृज्य सकललोकैकगुरुमिन्दुकलावतंसं चेतसि स्मरन्नस्मिन्कानने दूरीकृतकलङ्को वसामि। 'देव, भवते विज्ञापनीयं रहस्यं किंचिदस्ति । आगम्यताम्' इति ।

(१२) स वयस्यगणादपनीय रहसि पुनरेनमभाषत—'राजन्, अतीते निशान्ते गौरीपतिः स्वप्नसन्निहितो निद्रामुद्रितलोचनं विबोध्य प्रसन्नवदनकान्तिः प्रश्रयानतं मामवोचत्—'मातङ्ग, दण्डकारण्यान्तरालगामिन्यास्तटिन्यास्तीरभूमौ सिद्धसाध्याराध्यमानस्य स्फटिकलिङ्गस्य पश्चाददिपतिकन्यापदपङ्क्तिचिह्नितस्याश्मनः सविधे विधेराननमिव किमपि बिलं वि

(११) किरातैः कृतः संसर्गः सम्बन्धो येन तमिति बंधुवर्गस्य विशेषणम् । उत्सृज्य त्यक्त्वा । सकलस्य लोकस्य संसारस्यैकोऽद्वितीयो गुरुस्तम् । इन्दोः कला अवतंसः शिरोभूषणं यस्य तं शिवमित्यर्थः दूरीकृतकलङ्को निष्कलङ्को निष्पाप इति यावत् । विज्ञापनीयं कथनीयम् । रहस्यं गोप्यम् ।

(१२) स मातङ्गः ! वयस्यगणात् सुहृन्मण्डलात् अपनीय दूरं नीत्वा । रहसि निर्जने । एनं राजवाहनम् । अतीते विगते । निशान्ते रात्रिशेषे । स्वप्ने स्वप्नावस्थायां संनिहितः समीपमागतः। निद्रया मुद्रिते निमीलिते लोचने यस्य तम् । विबोध्य जागरयित्वा प्रसन्ना सौम्यमधुरा वदनस्य मुखस्य कान्तिः शोभा यस्य सः । प्रश्रयेण विनयेनानतं नम्रशिरसम् । दण्डकारण्यस्य तदाख्यवनस्य अन्तराले मध्ये गामिन्या गमनशीलायास्तटिन्या नद्याः । सिद्धैः गुह्यकादिभिः साध्यैः गणदेवताभिश्च आराध्यमानस्य उपास्यमानस्य । स्फटिकलिङ्गस्य स्फटिकनिर्मितशिवस्य । अद्रिपतेः हिमालयस्य कन्यायाः पार्वत्याः पदपंक्त्या चरणपद्धत्या चिह्नितस्याङ्कितस्य । अश्मनः पाषाणस्य । सविधे समीपे । विधेर्ब्रह्मणः। आननं मुखम् । बिलं विवरं

विप्र मुझे लिपिविज्ञान, नाना शास्त्र, तन्त्रके सिद्धान्त, पापनाशक सदाचार एवं ज्ञानसे भगवान् शिवकी पूजा-विधिका सदुपदेश देकर तथा मेरे द्वारा दी हुई दक्षिणा आदिको ग्रहण कर चला गया ।

(११) उसी दिनसे किरातोंके साथ रहनेवाले बान्धवोंको त्यागकर मैं समस्त भुवनोंके एकमात्र कारण भगवान् शङ्करकी सेवामें दृढ़ चित्त हो उन्हींको जपता हुआ इस विपिनमें सब पापोंको छोड़कर रह रहा हूँ । हे देव, आपसे एकान्तमें मुझे कुछ कहना है, अतः यहाँ आयें और सुनें।

(१२) सुहृद्-मण्डलसे अलग ले जाकर उसने राजवाहनसे कहा—हे राजन् , गत रात्रिमें भगवान् शिवने मुझे सोते हुए जगाया तथा कहा—हे मातङ्ग, दण्डकारण्यके मध्यमें होकर बहनेवाली नदीके तीरपर सिद्ध और गणदेवोंसे आराध्यमान स्फटिक-निर्मित शिवलिंगके पीछे पार्वती देवीके चरणश्रेणीसे चिह्नित प्रस्तरके समीप ब्रह्माके मुखके सदृश एक विवर है ।

द्यते । तत्प्रविश्य तत्र निक्षिप्तं ताम्रशासनं शासनं विधातुरिव समादाय विधिं तदुपदिष्टं दिष्टविजयमिव विधाय पाताललोकाधीश्वरेण भवता भवितव्यम् । भवत्साहाय्यकरो राजकुमारोऽद्य श्वो वा समागमिष्यति' इति । तदादेशानुगुणमेव भवदागमनमभूत् । साधनाभिलाषिणो मम तोषिणो रचय साहाय्यम्' इति ।

(१३) 'तथा' इति राजवाहनः साकं मातङ्गेन नमितोत्तमाङ्गेन विहायार्धरात्रे निद्रापरतन्त्रं मित्रगणं वनान्तरमवाप । तदनु तदनुचराः कल्ये साकल्येन राजकुमारमनवलोकयन्तो विषण्णहृदयास्तेषु तेषु वनेषु सम्यगन्विष्यानवेक्षमाणा एतदन्वेषणमनीषया देशान्तरं चरिष्णवोऽतिसहिष्णवो निश्चितपुनःसंकेतस्थानाः परस्परं वियुज्य ययुः ।

छिद्रमिति यावत् । तत् विलम् । निक्षिप्तं स्थापितम् । ताम्रशासनं ताम्रफलकम् । शासनमादेशम् । समादाय गृहीत्वा । तत्र ताम्रशासने उपदिष्टं लिखितम् । दिष्टस्य भाग्यस्य विजयं विजयकारिणम् । दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री नियतिर्विधिरित्यमरः । भवतस्तव साहाय्यकरः साहाय्यकारी । श्वः आगामिदिने । तदादेशानुगुणं तदादेशानुरूपम् । साधनाभिलाषिणः तत्कार्यसिद्धिं कामयतः । तोषिणः सन्तुष्टस्य । रचय कुरु ।

(१३) तथा 'एवमस्तु' इति प्रार्थनां स्वीकृत्येत्यर्थः । नमितोत्तमाङ्गेन नम्रशिरसा । विहाय परित्यज्य । मित्रगणमिति शेषः । अर्धरात्रे निशीथे । निद्रापरतन्त्रं निद्राकुलम् । वनान्तरं अपरं वनम् । कल्ये प्रभाते । प्रत्यूषोऽहर्मुखं कल्यमित्यमरः । साकल्येन सामस्त्येन—सर्वे सर्वत्र अन्विष्यापि इत्यर्थः । विषण्णं खिन्नं हृदयं येषां ते । अनवेक्षमाणाः अपश्यन्तः । एतस्य कुमारस्य अन्वेषणस्यानुसन्धानस्य मनीषया बुद्ध्या । चरिष्णवः भ्रमणशीलाः । अतिसहिष्णवः क्लेशसहनशीलाः । निश्चितं निर्णीतं पुनः सङ्केतस्थानं पुनःसंगमस्थानं यैस्ते । वियुज्य पृथग्भूय ।

उस विवर (विल) में प्रविष्ट होकर वहाँ धरे हुए ताम्रपत्रको ब्रह्माके आदेशके समान ले लो और उस ताम्रपत्रमें लिखी हुई विधिको सौभाग्यसे प्राप्त विजयकी भाँति स्वीकार करो और तुम पातालाधिपति बन जाओ । इस कार्यमें तुम्हारी सहायता करनेवाला एक राजपुत्र आज या कलतक तुम्हारे समीप आ जायगा । भगवान्के आदेशानुसार ही आपका आगमन हुआ है अतः आप अब मेरी सहायता करें ।

(१३) 'मैं सहायता करूँगा' ऐसा कहकर राजवाहन आधी रातके समय निद्राके वशीभूत मित्रवर्गोंको छोड़कर प्रणामार्थ नतमस्तक मातंगके साथ वनान्तरमें चला गया । प्रभात समयमें राजवाहनको खोजनेपर भी उसके सेवकोंने न पाया और वे बड़े दुःखी हुए । इसके पश्चात् वे लोग उसे खोजने अन्य अरण्योंमें गये । देशान्तरमें खोजनेके लिए जानेवाले

(१४) लोकैकवीरेण कुमारेण रक्ष्यमाणः संतुष्टान्तरङ्गो मातङ्गोऽपि बिलं शशिशेखरकथिताभिज्ञानपरिज्ञातं निःशङ्कं प्रविश्य गृहीतताम्रशासनो रसातलं पथा तेनैवोपेत्य तत्र कस्यचित्पत्तनस्य निकटे केलीकाननकासारस्य विततसारसस्य समीपे नानाविधेनेशशासनविधानोपपादितेन हविषा होमं विरच्य प्रत्यूहपरिहारिणि सविस्मयं विलोकयति राजवाहने समिदाज्यसमुज्ज्वलिते ज्वलने पुण्यगेहं देहं मन्त्रपूर्वकमाहुतीकृत्य तडित्समानकान्तिं दिव्यां तनुमलभत ।

(१५) तदनु मणिमयमण्डनमण्डलमण्डिता सकललोकललनाकुल-

(१४) लोकेषु भुवनेषु एकोऽद्वितीयो वीरो योधस्तेन । सन्तुष्टान्तरङ्गः हृष्टमानसः । शशिशेखरेण शिवेन कथितात् आदिष्टात् अभिज्ञानात् चिह्नात् परिज्ञातमवगतम् । निःशङ्कं निर्भयम् । रसातलं पातालम् । पथा मार्गेण । पत्तनस्य नगरस्य । केलीकानने क्रीडोद्याने यस्कासारं सरोवरं तस्य । वितताः सर्वतः प्रसृताः सारसाः पक्षिविशेषा यत्र तस्य । ईशस्य शिवस्य यत् शासनविधानं आज्ञाविधिस्तेनोपपादितेन सम्पादितेन । हविषा हवनीयद्रव्येण आज्यादिनेत्यर्थः । प्रत्यूहपरिहारिणि विघ्ननिवारके । समिद्भिः काष्ठैः आज्यैर्घृतैश्च समुज्ज्वलिते उद्दीपिते । ज्वलने वह्नौ । पुण्यस्य सुकृतस्य गेहमाधारभूतं देहस्य विशेषणमेतत् । मन्त्रपूर्वकं समन्त्रकम् । आहुतीकृत्य ज्वलने क्षिप्त्वा । तडिता विद्युता समाना तुल्या कान्तिः प्रभा यस्यास्ताम् । दिव्यां स्वर्गीयाम् । तनुं देहम् ।

(१५) मणिमयै रत्नप्रचुरैर्मण्डनमण्डलैर्भूषणगणैर्मण्डिताऽलंकृता । सकल-

उन अतिसहिष्णु कुमारोंने पुनः आकर मिलनेके लिए एक संकेतस्थल भी निश्चित कर दिया । इसके पश्चात् वे लोग अलग-अलग दिशाओंमें खोजने चल पड़े ।

(१४) विश्वके प्रमुख योधा राजवाहन द्वारा रक्षित होनेसे प्रसन्न-चित्त उस मातंगने भी शिवजीसे निर्देशित किये गये लक्षणोंवाले चिह्नोंसे परिज्ञात विवरमें निःशंक होकर प्रवेश किया और वहाँसे ताम्रपत्रको लेकर फिर इसी मार्गसे पातालमें चला गया । वहाँ किसी नगरके समीप सारस पक्षियोंसे युक्त क्रीडोद्यानके तालाबके पास परमेश्वरकी आज्ञा-विधिके अनुकूल सम्पादित अनेक प्रकारके हवनीय द्रव्यको होम करके विघ्नों को दूर करनेवाले राजवाहनके, आश्चर्यपूर्वक, देखते-देखते समिधा एवं घृतसे उद्दीप्त अग्निमें पुण्यगेह-देहकी आहुति दे दी । तथा बिजलीके सदृश देदीप्यमान शरीर प्राप्त किया ।

(१५) इसके पश्चात् रत्नोंके अलंकारोंसे अलंकृत समस्त रमणियोंमें श्रेष्ठ एक कुमारीने

ललामभूतकन्यका काचन विनीतानेकसखीजनानुगम्यमाना कलहंसगत्या शनैरागत्यावनिसुरोत्तमाय मणिमेकमुज्ज्वलाकारमुपायनीकृत्य तेन 'का त्वम्' इति पृष्टा सोत्कण्ठाकलकण्ठस्वनेन मन्दं मन्दमुदञ्जलिरभाषत—

(१६) 'भूसुरोत्तम, अहमसुरोत्तमनन्दिनी कालिन्दी नाम । मम पितास्य लोकस्य शासिता महानुभावो निजपराक्रमासहिष्णुना विष्णुना दूरीकृतामरे समरे यमनगरातिथिरकारि । तद्वियोगशोकसागरमग्नां मामवेक्ष्य कोऽपि कारुणिकः सिद्धतापसोऽभाषत—

(१७) 'बाले, कश्चिद्दिव्यदेहधारी मानवो नवो वल्लभस्तवं भूत्वा सकलं रसातलं पालयिष्यति' इति । तदादेशं निशम्य घनशब्दोन्मुखी चा-

---

लोकस्य निखिलसंसारस्य ललनाकुलेषु कामिनीगणेषु ललामभूता भूषणस्वरूपा कन्यका । विनीता नम्रा । अनेकैर्बहुभिः सखीजनैः सहचरीवर्गैरनुगम्यमानाऽनुस्रियमाणा । कलहंसगत्या राजहंसवन्मन्थरगमनेन । अवनिसुरोत्तमाय ब्राह्मणवराय मातङ्गायेत्यर्थः । उपायनीकृत्य उपहारीकृत्य । तेन मातङ्गेन । सोत्कण्ठा सोत्सुका । कलकण्ठस्वनेन कोकिलस्वरेण । उदञ्जलिर्बद्धाञ्जलिः ।

(१६) लोकस्य पातालस्य । शासिता पालयिता । महानुभावो महाप्रतापः । निजस्य स्वस्य (मत्पितुरित्यर्थः) पराक्रमस्य असहिष्णुना सहनाशक्तेन । दूरीकृताः पराजिताः अमरा देवा यस्मिंस्तस्मिन् । यमनगरस्य यमालयस्यातिथिरभ्यागतः । अकारि कृतः हत इत्यर्थः । तस्य पितुर्वियोगो विनाशस्तस्माद्यः शोक एव सागरस्तत्र मग्ना ताम् । कारुणिको दयालुः ।

(१७) वल्लभः पतिः । तस्य सिद्धतापसस्यादेशमाज्ञाम् । घनस्य मेघस्य शब्देन गर्जनेन उन्मुखी ऊर्ध्वमुखी । मेघध्वनिं श्रुत्वोर्ध्वाननेत्यर्थः । तदालोकनकाङ्क्षिणी

विनीत सखियोंके साथ कलहंसकी चालसे आकर उक्त देदीप्यमान शरीरधारी ब्राह्मणके समीप जाकर एक समुज्ज्वल मणि उसे भेंट की । ब्राह्मणके द्वारा पूछी जानेपर कि 'तुम कौन हो ?' उसने कोयलसी मीठी वाणीमें धीमे स्वरसे उत्तर दिया—

(१६) हे भूसुरोत्तम ! मेरा नाम कालिन्दी है और मैं असुरराजकी पुत्री हूँ । जब इस लोकके अधिपति मेरे पिताने, इस लोकका शासन करते हुए अपने महापराक्रमके विक्रमसे समरमें देवताओंको भी पराजित कर दिया, तब इस महापराक्रमको न सहकर विष्णु भगवान्‌ने मेरे पिताको संग्राममें मार डाला । उनके वियोगरूपी शोक-सागरमें निमग्न मुझे देखकर जटाधारी एक कारुणिक साधुने मुझसे कहा—

(१७) 'जो तुम्हारा वल्लभ होगा वही समस्त पातालके राज्यका स्वामी भी होगा ।'

तकी वर्षागमनमिव तवालोकनकाङ्क्षिणी चिरमतिष्ठम् । मन्मनोरथफलायमानं भवदागमनमवगम्य मद्राज्यावलम्बभूतामात्यानुमत्या मदनकृतसारथ्येन मनसा भवन्तमागच्छम् । लोकस्यास्य राजलक्ष्मीमङ्गीकृत्य मां तत्सपत्नीं करोतु भवान्' इति ।

(१८) मातङ्गोऽपि राजवाहनानुमत्या तां तरुणीं परिणीय दिव्याङ्गनालाभेन हृष्टतरो रसातलराज्यमुररीकृत्य परमानन्दमाससाद ।

(१६) वञ्चयित्वा वयस्यगणं समागतो राजवाहनस्तदवलोकनकौतूहलेन भुवं गमिष्णुः कालिन्दीदत्तं क्षुत्पिपासादिक्लेशनाशनं मणिं साहाय्यकरणसंतुष्टान्मातङ्गाल्लब्ध्वा कंचनाध्वानमनुवर्तमानं तं विसृज्य बिलप-

---

त्वद्दर्शनाभिलाषिणी । चिरं दीर्घकालम् । मम मनोरथोऽभिलाषस्तस्य फलं तद्वदाचरतीति । मम राज्यस्य लोकस्य पातालस्येत्यर्थः । अवलम्बभूतानां रक्षकाणां अमात्यानां मन्त्रिणामनुमत्या सम्मत्या । मदनेन कामेन कृतं सारथ्यं सारथिकर्म यस्य तेन मदनचालितेनेत्यर्थः । तस्या राजलक्ष्म्याः सपत्नीं प्रतिपक्षवनिताम् ।

(१८) राजवाहनानुमत्या राजकुमारादेशेन । परिणीयोद्वाह्य । हृष्टतरोऽतिशयेन हृष्टः । उररीकृत्य स्वीकृत्य तद्राज्याधिपतिर्भूत्वेत्यर्थः । आससाद प्राप ।

(१९) वञ्चयित्वा विप्रलभ्य । वयस्यगणं मित्रमण्डलम् । तदवलोकनकौतूहलेन तेषां सुहृदां अवलोकनकौतूहलेन दर्शनकौतुकेन । भुवं पृथिवीम् । गमिष्णुः गमनशीलोऽर्थात्पातालात् । कालिन्द्या मातङ्गपत्न्या दत्तमर्पितम् । क्षुत्पिपासेति—यस्य प्रभावात् क्षुत्पिपासादयो नश्यन्तीत्यर्थः । मणिं रत्नम् । साहाय्यकरणसन्तुष्टात् साहाय्य-

---

उसी आदेशको शिरोधार्य करके मैं, मेघागमके लिए जैसी चातकी प्रतीक्षा किये रहती है तद्वत्, आपकी आशामें प्रतीक्षा किये बहुत दिनोंसे बैठी हूँ । मेरी अभिलाषाके फलस्वरूप आपके आगमनको जानकर मेरे राज्यके आलम्बनभूत अमात्योंकी अनुमतिसे कामदेवको सारथी बनाकर मेरा मन आपके समीप आया है—कामोन्मत्ता मैं आप तक आयी हूँ । अतः आप इस राज्यश्रीसहित राज्यपालनको अंगीकार करें और मुझे भी राज्यश्रीकी सपत्नी (सौत) बनावें ।

(१८) राजवाहनकी अनुमतिसे मातंगने भी उस युवतीसे विवाह किया । तथा दिव्यांगनाकी प्राप्तिपर अति प्रसन्न होकर पातालके शासनकी प्राप्तिसे परमानन्दित हो गया ।

(१९) अपने मित्रोंको वनमें छोड़कर राजवाहन आया था । अतः मित्रोंको देखनेकी अभिलाषासे जब वह पृथिवीपर आने लगा तब भूख और प्यासको दूर करनेवाली एक मणि उसे कालिन्दीने दी और सहायता करनेसे सन्तुष्ट मातंग उसे पहुँचाने आया । कुछ दूरतक

थेन तेन निर्ययौ । तत्र च मित्रगणमनवलोक्य भुवं बभ्राम ।

(२०) भ्रमंश्च विशालोपशल्ये कमप्याक्रीडमासाद्य तत्र विशश्रमिषुरान्दोलिकारूढं रमणीसहितमाप्तजनपरिवृतमुद्याने समागतमेकं पुरुषमपश्यत् । सोऽपि परमानन्देन पल्लवितचेता विकसितवदनारविन्दः 'मम स्वामी सोमकुलावतंसो विशुद्धयशोनिधी राजवाहन एषः । महाभाग्यतयाकाण्ड एवास्य पादमूलं गतवानस्मि । संप्रति महान्नयनोत्सवो जातः' इति ससंभ्रममान्दोलिकाया अवतीर्य सरभसपदविन्यासविलासिहर्षोत्कर्षचरितस्त्रिचतुरपदान्युद्गतस्य चरणकमलयुगलं गलदुल्लसन्मल्लिकावलयेन मौलिना पस्पर्श ।

विधानपरितुष्टात् । कञ्चन कियन्तम् । अनुवर्त्तमानमनुसरन्तम् ।

(२०) विशाले महति उपशल्ये ग्रामप्रान्तभागे । आक्रीडमुद्यानम् । विशश्रमिषुः विश्रमितुमिच्छुः । आन्दोलिकायां दोलायामारूढमुपविष्टम् । आप्तजनैरात्मीयैः परिवृतं परिवेष्टितम् । सोऽपि आन्दोलिकारूढः पुरुषोऽपि । पल्लवितं विकसितं चेतो हृदयं यस्य सः प्रसन्नहृदय इत्यर्थः । विकसितवदनारविन्दः प्रफुल्लमुखकमलः । स्वामी प्रभुः । सोमकुलावतंसः चन्द्रवंशभूषणम् । विशुद्धयशोनिधिर्विमलकीर्तिशेवधिः । महद्भाग्यं यस्य तस्य भावस्तया अनुकूलदैवप्रभावेण । अकाण्डे असमये सहसेत्यर्थः । पादमूलं चरणसमीपम् । नयनोत्सवो नेत्रानन्दः । ससम्भ्रमं सत्वरादरम् । सरभसेन वेगवता पदविन्यासेन चरणनिःक्षेपेण विलसतीति विलासी तथाभूतश्चासौ हर्षोत्कर्षौ चरिते यस्य स चेति कर्मधारयः । त्रीणि चत्वारि वेति त्रिचतुराणि उद्गतस्य चलितस्य । गलद् अवनमनेन भ्रश्यद् उल्लसन्मल्लिकावलयं विकसन्मल्लिकामाल्यं यस्मात्तेन । मौलिना शीर्षेण । पस्पर्श चरणयुगलमिति शेषः, नमश्चकारेत्यर्थः ।

आनेपर राजवाहनने उसे बीचमेंसे ही लौटा दिया तथा स्वयं विवरके द्वारसे बाहर आ गया । जहांसे मित्रवर्गको वंचित करके वह पाताल गया था उस स्थलपर आनेपर उसने उन लोगोंको वहां न पाया । उन्हें न पाकर उनकी खोजमें वह पृथिवीतलपर इतस्ततः घूमने लगा ।

(२०) घूमते हुए वह एक दिन विशालपुरीके समीप एक बागमें आया । वहां विश्राम करनेकी चेष्टा करने लगा । इतनेमें पालकीमें बैठे हुए रमणीके साथ तथा आप्तजनोंसे परिवृत होकर आये हुए एक मनुष्यको उसने देखा । परमानन्द हर्षोल्लाससे मुदित मन एवं प्रफुल्लित मुखवाले उस पुरुषने कहा—'अरे ये तो चन्द्रवंशके भूषण स्वच्छ सुयशके निधान मेरे स्वामी राजवाहन हैं । बड़े भाग्योदयसे आज अनायास इनके दर्शन मिले । अब इनके चरण-कमलोंको छूना चाहिये । इस समय नेत्रोंको बड़ा सुख हो रहा है ।' ऐसा कहते हुए हर्षके साथ अति शीघ्र पालकीसे उतरकर बड़े वेगसे विलासके साथ पैरोंको भूमिपर रखते हुए तीन–चार पैर

(२१) प्रमोदाश्रुपूर्णो राजा पुलकिताङ्गं तं गाढमालिङ्ग्य 'अये सौम्य सोमदत्त!' इति व्याजहार। ततः कस्यापि पुन्नागभूरुहस्य छायाशीतले तले संविष्टेन मनुजनाथेन सप्रणयमभाणि—'सखे! कालमेतावन्तं, देशे कस्मिन्, प्रकारेण केनास्थायि भवता, संप्रति कुत्र गम्यते, तरुणी केयम्, एष परिजनः संपादितः कथम्, कथय' इति।

(२२) सोऽपि मित्रसंदर्शनव्यतिकरापगतचिन्ताज्वरातिशयो मुकुलितकरकमलः सविनयमात्मीयप्रचारप्रकारमवोचत्—

इति श्रीदण्डिनः कृतौ दशकुमारचरिते द्विजोपकृतिर्नाम द्वितीय उच्छ्वासः॥

---

(२१) प्रमोदाश्रुभिः सुहृदवलोकनानन्दजनितनेत्रवारिभिः पूर्णः। पुलकिताङ्गं रोमाञ्चितशरीरम्। सौम्य सुन्दर मनोहरेति यावत्। व्याजहार उवाच। पुन्नागभूरुहस्य नागकेसरवृक्षस्य। संविष्टेनोपविष्टेन। मनुजनाथेन राज्ञा। सम्पादितः प्राप्तः।

(२२) सोऽपि सोमदत्तोऽपि। मित्रस्य सुहृदः सन्दर्शनव्यतिकरेण अवलोकनव्यापारेण अपगतो विनष्टः चिन्ताज्वरातिशयो यस्य सः। मुकुलितकरकमलः बद्धाञ्जलिः। आत्मीयप्रचारप्रकारं निजभ्रमणवृत्तान्तम्।

इति श्रीताराचरणभट्टाचार्यकृतायां बालविबोधिनीसमाख्यायां दशकुमारचरितव्याख्यायां द्वितीयोच्छ्वासः।

आगेसे ही राजवाहनके पैरोंको अपने शिरसे स्पर्शित किया। चरणोंके स्पर्शके समय उसके शिरसे मल्लिकाकी मालाएं गिरी पड़ रही थीं।

(२१) आनन्दाश्रुसे परिपूर्ण राजवाहनने आनन्दविभोर होकर उस पुलकितांग पुरुषका गाढ़ालिंगन छातीसे लगाकर किया और कहा—'अये सौम्य सोमदत्त।' तब एक पुंनाग (नागकेसर) वृक्षकी शीतल छायामें बैठकर राजवाहनने कहा—हे सखे! इतने समय किस देशमें रहे तथा क्या करते रहे? अधुना कहाँ जाते हो? यह तरुणी स्त्री कौन है! इन सब परिजनोंसे कैसे भेंट हुई? सभी बातें समझाओ।

(२२) यह सुनकर सोमदत्त भी बड़ा प्रसन्न हुआ तथा मित्रसमागमसे उत्पन्न हर्षके द्वारा चिन्तायुक्त ज्वरसे रहित होकर अपने करकमलोंकी अञ्जलि बांधकर विनयसे बतलाने लगा।

इस प्रकारसे द्वितीय उच्छ्वासकी बालक्रीड़ा हिन्दी टीका समाप्त हुई।

तृतीयोच्छ्वासः

(१) 'देव, भवच्चरणकमलसेवाभिलाषीभूतोऽहं भ्रमन्नेकस्यां वनावनौ पिपासाकुलो लतापरिवृतं शीतलं नदसलिलं पिबन्नुज्ज्वलाकारं रत्नं तत्रैकमद्राक्षम्। तदादाय गत्वा कंचनाध्वानमम्बरमणेरत्युष्णतया गन्तुमक्षमो वनेऽस्मिन्नेव किमपि देवतायतनं प्रविष्टो दीनाननं बहुतनयसमेतं स्थविरमहीसुरमेकमवलोक्य कुशलमुदितदयोऽहमपृच्छम्।

(२) कार्पण्यविवर्णवदनो महदाशापूर्णमानसोऽवोचदग्रजन्मा—'महाभाग, सुतानेतान्मातृहीनाननेकैरुपायै रक्षन्निदानीमस्मिन्कुदेशे भैक्ष्यं संपाद्य ददद्देतेभ्यो वसामि शिवालयेऽस्मिन्' इति।

---

(१) सोमदत्तः कथयति देवेति—भवतस्तव चरणकमलयोः पादपद्मयोः सेवायां शुश्रूषायां अभिलाषीभूतः साभिलाषः। वनावनौ काननप्रदेशे। तत्र नदसलिले। कञ्चन कियन्तम्। अम्बरमणेः सूर्यस्य। देवतायतनं देवमन्दिरम्। दीनं विषण्णं आननं मुखं यस्य तम्। बहुभिरनेकैस्तनयैः पुत्रैः समेतं युक्तम्। स्थविरमहीसुरं वृद्धब्राह्मणम्। कुशलं क्षेमम् अपृच्छमित्यस्य कर्म। उदितोत्पन्ना दया करुणा यस्य सः। अहं सोमदत्त इत्यर्थः।

(२) कार्पण्येन दैन्येन विवर्णं मलिनं वदनं मुखं यस्य सः। महत्या प्रचुरया आशया आकाङ्क्षया उपस्थितोऽयं मह्यं किञ्चिदवश्यं प्रदास्यतीत्येवंरूपया पूर्णं मानसं यस्य सः। अग्रजन्मा ब्राह्मणः। इदानीं सम्प्रति। कुदेशे निकृष्टस्थाने। भैक्ष्यं भिक्षाचरणम्। एतेभ्यः सुतेभ्यः।

सोमदत्तचरित

(१) हे देव! आपके पादपद्मोंका सेवाभिलाषी मैं पर्यटन करता हुआ एक दिन एक वनमें पहुँचा। वहाँ प्याससे आकुलीभूत होकर लताओंसे आच्छादित नदीके जलको पीकर पर्यटन करने लगा। उसी विपिन स्थलमें एक समुज्ज्वल रत्नको पड़ा हुआ मैंने देखा और उसे उठा लिया। कुछ दूर आगे बढ़ा तो सूर्य भगवान्के प्रचण्ड तेज आतपको न सह सका और चलनेमें अशक्त होकर उसी विपिनके एक देव-मन्दिरमें घुस गया। वहाँपर दीन मुखवाले बहुतसे पुत्रोंके साथ बैठे हुए एक वृद्ध ब्राह्मण—पिताको देखा। मुझे उनपर दया आ गयी। मैंने उस वृद्धसे कुशल प्रश्न किये।

(२) दीनताके कारण विवर्णमुखी तथा विशाल आशाओंसे परिपूर्ण चित्त होकर उस वृद्ध विप्रने उत्तर दिया—हे महाभाग! मातृहीन इन पुत्रोंका पालन अनेक प्रकारके यत्नों द्वारा इस कुदेशमें भिक्षाटन करके करता हुआ इसी शिवालयमें रहता हूँ।

(३) 'भूदेव, एतत्कटकाधिपती राजा कस्य देशस्य, किं नामधेयः, किमत्रागमनकारणमस्य' इति पृष्टोऽभाषत महीसुरः—'सौम्य, मत्तकालो नाम लाटेश्वरो देशस्यास्य पालयितुर्वीरकेतोस्तनयां वामलोचनां नाम तरुणीरत्नमसमानलावण्यं श्रावं श्रावमवधूतदुहितृप्रार्थनस्य तस्य नगरीमरौत्सीत् । वीरकेतुरपि भीतो महदुपायनमिव तनयां मत्तकालायादात् । तरुणीलाभहृष्टचेता लाटपतिः 'परिणेया निजपुर एव' इति निश्चित्य गच्छन्निजदेशं प्रति संप्रति मृगयादरेणात्र वने सैन्यावासमकारयत् ।

(४) कन्यासारेण नियुक्तो मानपालो नाम वीरकेतुमन्त्री मानधनश्चतुरङ्गबलसमन्वितोऽन्यत्र रचितशिबिरस्तं निजनाथावमानखिन्नमान-

(३) एतस्य पुरतो वर्त्तमानस्य कटकस्य सैन्यस्याधिपतिः स्वामी । किन्नामधेयः किमाख्यकः किं नामधेयं यस्येति विग्रहः । महीसुरो भूसुरः । लाटेश्वरः लाटदेशाधिपतिः । असमानं अद्वितीयं लावण्यं सौन्दर्यं यस्य तत् । श्रावं श्रावं पुनः पुनः श्रुत्वा । अवधूता तिरस्कृता न स्वीकृतेति यावत् , दुहितुः कन्याया वामलोचनाया इति यावत् प्रार्थना लाटेश्वरकृता याच्ञा येन तस्य । तस्य वीरकेतोः । अरौत्सीत् रुद्धवान् । उपायनमुपढौकनम् । अदात् प्रददौ । तरुण्याः कन्याया लाभेन प्राप्त्या हृष्टं सन्तुष्टं चेतश्चित्तं यस्य सः । परिणेया विवाह्या । निजपुरे स्वनगरे । मृगयादरेण मृगयाभिलाषेण ।

(४) कन्यैव सारो धनं यस्य तेन वीरकेतुनेत्यर्थः । नियुक्तः प्रेरितः । मान एव धनं यस्य सः अभिमानीत्यर्थः । चतुरङ्गं हस्त्यश्वरथपदातिरूपं बलं सैन्यं तेन

(३) मैंने पूछा—हे विप्रवर ! इस सेनाका राजा कौन है और उसका क्या नाम है ? और यह राजा सेनासहित क्यों इस स्थान पर आया है ? ऐसा पूछनेपर उत्तर देते हुए उसने कहा-हे सौम्य ! लाट देशके स्वामी मत्तकालने इस देशके अधिपति वीरकेतुकी तनया, जो अपनी सुन्दरतामें अद्वितीया है तथा नारियोंमें मणिके समान है, के साथ विवाह करने की अभिलाषा प्रकट की परन्तु, वीरकेतुने उसकी इच्छाको विफल कर दिया—वामलोचना कन्या देनेसे इनकार कर दिया । तब क्रोध करके मत्तकालने इसका राज्य घेर लिया । इस पर वीरकेतु अतिभयान्वित हो गया और विशाल भेंटमें अपनी पुत्री वामलोचना उसे समर्पित कर दी । उक्त तरुणीकी प्राप्तिपर प्रसन्न चित्त मत्तकालने यह विचार किया कि इसके साथ विवाह-संस्कार अपने राज्यमें जाकर कर लेंगे—और वह वहाँसे चल पड़ा । अपने राज्यको जाते हुए शिकार खेलनेकी इच्छासे उसने मार्गमें पड़ाव डाल दिया ।

(४) इधर वीरकेतुके आदेशसे मानपाल नामक मन्त्रीने भी चतुरंगिणी सेनाके साथ

सोऽन्तर्बिभेद' इति ।

(५) विप्रोऽसौ बहुतनयो विद्वान्निर्धनः स्थविरश्च दानयोग्य इति तस्मै करुणापूर्णमना रत्नमदाम् । परमाह्लादविकसिताननोऽभिहितानेकाशीः कुत्रचिदग्रजन्मा जगाम । अध्वश्रमखिन्नेन मया तत्र निरवेशि निद्रासुखम् । तदनु पश्चान्निगडितबाहुयुगलः स भूसुरः कशाघातचिह्नितगात्रोऽनेकनैस्त्रिंशिकानुयातोऽभ्येत्य माम् 'असौ दस्युः' इत्यदर्शयत् ।

(६) परित्यक्तभूसुरा राजभटा रत्नावाप्तिप्रकारं मदुक्तमनाकर्ण्य भयरहितं मां गाढं नियम्य रज्जुभिरानीय कारागारम् 'एते तव सखायः'

समन्वितो युक्तः । रचितशिबिरः कृतसैन्यावासः । तं मत्तकालम् । निजनाथस्य स्वस्वामिनोऽवमानेन परिभवेन खिन्नं विषण्णं मानसं मनो यस्य सः । अन्तर्बिभेद प्रकृत्यमात्यादीनां भेदं चकार ।

(५) दानयोग्यो दानपात्रम् । करुणापूर्णमनाः सदयचित्तोऽहं सोमदत्त इत्यर्थः । परमेणोत्कृष्टेनाह्लादेनानन्देन विकसितं प्रफुल्लमाननं मुखं यस्य सः । अभिहिता उक्ता दत्ता इति यावत् । अनेका असंख्येया आशिष आशीर्वादा येन सः । कुत्रचिदनिर्दिष्टे स्थाने । अग्रजन्मा ब्राह्मणः । अध्वनि मार्गे यः श्रमः परिश्रमस्तेन खिन्नः तेन । निरवेशि उपभुक्तम् । तदनु तदनन्तरम् । पश्चात् पृष्ठदेशे निगडितं बद्धं बाहुयुगलं हस्तद्वयं यस्य सः । कशाघातेन वेत्रप्रहारेण चिह्नितं गात्रं शरीरं यस्य सः । अनेकैर्बहुभिर्नैस्त्रिंशिकैरस्त्रधारिपुरुषैरनुयातोऽनुसृतः । दस्युश्चौरः ।

(६) परित्यक्तो मुक्तो भूसुरो ब्राह्मणो यैस्ते । रत्नावाप्तिप्रकारं मम रत्नलाभवृत्तान्तम् । भयरहितं निर्भयम् । गाढं नियम्य दृढं बद्ध्वा । एते कारागारस्थिताः

पड़ाव डाल रखा है और अपने स्वामीके अनादरसे खिन्नचित्त होकर उनमें बुद्धिभेद करा दिया है ।

(५) इस वृत्तान्तको श्रवणकर मैंने सोचा कि यह ब्राह्मण विद्वान् है, वृद्ध है और निर्धन तथा बहुकुटुम्बी भी है अतः दानके देने योग्य है–ऐसा सोचकर मैंने वह रत्न दयावश उसे दानमें दे दिया । रत्नकी प्राप्तिपर उसे बड़ा हर्ष हुआ और वह अनेक आशीर्वाद देता हुआ वहाँसे चला गया । अध्वपरिश्रमसे क्लान्त होकर मैं भी वहीं सो गया । थोड़ी देरमें वह ब्राह्मण दोनों हाथ निगड़ित होकर कई सिपाहियोंके साथ मेरे पास आया । मैंने देखा कि उसके शरीरपर चाबुकोंकी मारके निशान भी पड़े हैं । मुझे संकेतकर उसने कहा—यही चोर है ।

(६) उन राजपुरुषोंने इस बातको श्रवणकर उस ब्राह्मणको छोड़ दिया और मुझे रस्सियोंसे कसकर बाँध दिया । रत्नप्राप्तिका सारा वृत्तान्त मैंने उनसे कह सुनाया । परन्तु

इति निगडितान्कांश्चिन्निर्दिष्टवन्तो मामपि निगडितचरणयुगलमकार्षुः । किङ्कर्तव्यतामूढेन निराशक्लेशानुभवेनावाचि मया—'ननु पुरुषा वीर्यपरुषाः, निमित्तेन केन निविशथ कारावासदुःखं दुस्तरम् । यूयं वयस्या इति निर्दिष्टमेतैः, किमिदम्' इति ।

(७) तथाविधं मामवेक्ष्य भूसुरान्मया श्रुतं लाटपतिवृत्तान्तं व्याख्याय चोरवीराः पुनरवोचन्—'महाभाग ! वीरकेतुमन्त्रिणो मानपालस्य किङ्करा वयम् । तदाज्ञया लाटेश्वरमारणाय रात्रौ सुरुङ्गाद्वारेण तदगारं प्रविश्य तत्र राजाभावेन विषण्णा बहुधनमाहृत्य महाटवीं प्राविशाम । अपरेद्युश्च पदान्वेषिणो राजानुचरा बहवोऽभ्येत्य धृतधनचयानस्मान्परितः

इत्यर्थः । सखायः सुहृदः । निगडितान् संयमितान् शृङ्खलाबद्धान् इति यावत् । निर्दिष्टवन्तो दर्शयन्तः । निगडितं बद्धं चरणयुगलं पादद्वयं यस्य तम् । किं कर्तव्यं यस्य तस्य भावः किंकर्त्तव्यता तस्यां मूढो मन्दस्तेन, अधुना किं कार्यमित्यजानतेत्यर्थः । निर्नास्ति आशा यस्य तस्य यः क्लेशः खेदस्तस्यानुभवो यस्मिन् तथाभूतेन । नन्विति सम्बोधने । वीर्येण पराक्रमेण परुषाः कठोराः । निविशथ अनुभवथ । दुस्तरमपारम् । वयस्याः सुहृदः । निर्दिष्टं कथितम् । एतै राजभटैः ।

(७) तथाविधं तथाकारं निगडितचरणमित्यर्थः । व्याख्याय मम पुरत उक्त्वा । किंकराः सेवकाः । तदाज्ञया वीरकेतोरादेशेन । सुरुङ्गाद्वारेण बिलमार्गेण । तदागारं तस्य लाटपतेरगारम्, गृहम् । राजाभावेन राज्ञोऽनुपस्थित्या । विषण्णाः दुःखिताः । आहृत्यादाय । अपरेद्युः अन्यस्मिन् दिने तत्परदिवस इत्यर्थः । पदान्वेषिणः चरणचिह्नमनुसरन्तः । अभ्येत्य अस्मत्समीपमागत्य । धृतो रक्षितो धनानां रत्नानां चयो

उन्होंने मेरे कथनपर कुछ भी ध्यान नहीं दिया और कारागारमें लाकर मुझसे कहा-'देखो ये सब तुम्हारे मित्र हैं' तथा जो चोर वहाँ पूर्वसे कैद थे उनको दिखाकर मुझे भी-मेरे दोनों पैरोंको-निगड़ित कर दिया । किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर तथा उस कारागारसे मुक्तिका कोई अन्य उपाय न देखकर मैंने उन बन्दियोंसे कहा—ऐ वीरो ! तुम लोग इतने बलिष्ठ होकर क्यों इस कारावासके कठिन दुःखोंको झेल रहे हो और इन राजपुरुषोंने तुम लोगोंको निर्देशित करके मुझे तुम लोगोंका मित्र कहा है, इसका क्या अभिप्राय है ?

(७) मेरे प्रश्नपर तथा मुझे निगड़ित दशामें देखकर और मेरे द्वारा विप्रके मुखसे सुने हुए लाटपतिके वृत्तान्तको सुनकर वे चोर बोले—'हे सौम्य ! राजा वीरकेतुके मंत्री मानपालके हम लोग दास हैं । उन्हीं मंत्रीकी आज्ञासे हम लोग राजाको मारनेके लिए सुरंगके द्वारा रातमें राजाके आगारमें गये । परन्तु, राजाको न पाकर खिन्न मन होकर वहांकी अतुल धन

परिवृत्य दृढतरं बद्ध्वा निकटमानीय समस्तवस्तुशोधनवेलायामेकस्यानर्घ्यरत्नस्याभावेनास्मद्वधाय माणिक्यादानादस्मान्किलाश्रृङ्खलयन्' इति ।

(८) श्रुतरत्नरत्नावलोकनस्थानोऽहम् 'इदं तदेव माणिक्यम्' इति निश्चित्य भूदेवदाननिमित्तां दुरवस्थामात्मनो जन्म नामधेयं युष्मदन्वेषणपर्यटनप्रकारं चाभाष्य समयोचितैः संलापैर्मैत्रीमकार्षम्। ततोऽर्धरात्रे तेषां मम च श्रृङ्खलाबन्धनं निर्भिद्य तैरनुगम्यमानो निद्रितस्य द्वाःस्थगणस्यायुधजालमादाय　　पुररक्षान्पुरतोऽभिमुखागतान्पटुपराक्रमलीलयाभिद्राव्य

राशिर्यैस्तान् । परितः समन्तात् परिवृत्य संवेष्ट्य । समस्तवस्तूनां सकलपदार्थानां शोधनवेलायां परीक्षणसमये अन्वेषणकाले इति यावत् । अनर्घ्यरत्नस्य महामूल्यमाणिक्यस्य । अभावेन अप्राप्त्या । माणिक्यादानात्–माणिक्यस्य दानं यावत् । तन्माणिक्यं यावन्न प्रत्यर्पयिष्यामस्तावत्कालपर्यन्तम् । अश्रृङ्खलयन् श्रृङ्खलितानकुर्वन् ।

(८) श्रुतमधिगतं रत्नस्य माणिक्यस्य तदवलोकनस्य च स्थानं येन सः । इदं–यन्मया भूसुराय दत्तमित्यर्थः । तदेव–लाटेश्वरगृहात् चौरैरपहृतम् । भूदेवाय ब्राह्मणाय दानं निमित्तं कारणं यस्यास्ताम् विप्रार्पणसमुद्भूतामित्यर्थः । दुरवस्थां दुर्दशाम् । युष्माकं भवतां राजवाहनादीनामित्यर्थः अन्वेषणाय पर्यटनस्य भूभ्रमणस्य प्रकारं स्वरूपं प्रणालीमिति शेषः । समयोचितैस्तत्कालयोग्यैः । संलापैरालापैः । तेषां चोरवीराणाम् । निर्भिद्य भङ्क्त्वा । द्वारि तिष्ठन्ति ये ते द्वाःस्था दौवारिकाः तेषां गणः समूहस्तस्य । आयुधजालं शस्त्रसमूहम् । पुररक्षान् नगररक्षणे नियुक्तान् । पुरतः अग्रतः । अभिमुखागतान् अस्मत्संमुखमागतान् । पटुः समर्था या पराक्रमलीला

सम्पत्ति लेकर एक महावनमें चले गये । दूसरे दिन पैरोंके चिह्नसे अन्वेषण करनेवाले राजपुरुष उस महावनमें आकर और दृढ़तासे हम लोगोंको बन्दी बनाकर धनके सहित यहांपर राजाके समीप ले आये । जब चोरी गयी मणियों–वस्तुओं आदिके निरीक्षणके समय एक रत्न न मिला । वह रत्न अति मूल्यवान् था । इसपर हम लोगोंके वधकी आज्ञा हुई और बांधकर कैदमें डाल दिया गया–जबतक वे लोग विचार न लें तबतक कैद रहेंगे फिर प्राणदण्ड होगा ।'

(८) विप्रदेवको दान देनेके कारण ऐसी मेरी दुर्दशा हुई । मैं अपने सुहृद्को खोजनेमें इस तरह वन–उपवन घूम रहा हूँ और इस दुर्गतिको प्राप्त हुआ । अस्तु, उन चोरोंसे अपना नाम, वंश आदिको बतलाकर मित्रता कर ली और आधी रातमें सामयिक वार्तालाप आदि योग्य बातोंके पश्चात् उन चोरोंकी मैंने तथा अपनी उन चोरों द्वारा बेड़ियां तुड़वा डालीं । और सभी लोग एक साथ बाहर आ गये । सोते हुए द्वारपालोंके शस्त्रास्त्रोंको ले लिया । मार्गमें जाते हुए कुछ नगर-रक्षक राजपुरुष मिले उन्हें अपने पराक्रमसे पराजित करके हम लोग

मानपालशिबिरं प्राविशम् । मानपालो निजकिङ्करेभ्यो मम कुलाभिमानवृत्तान्तं तत्कालीनं विक्रमं च निशम्य मामार्चयत् ।

(९) परेद्युर्मत्तकालेन प्रेषिताः केचन पुरुषा मानपालमुपेत्य 'मन्त्रिन्, मदीयराजमन्दिरे सुरुङ्गया बहुधनमपहृत्य चोरवीरा भवदीयं कटकं प्राविशन्, तानर्पय । नो चेन्महाननर्थः भविष्यति' इति क्रूरतरं वाक्यमब्रुवन् । तदाकर्ण्य रोषारुणितनेत्रो मन्त्री 'लाटपतिः कः, तेन मैत्री का, पुनरस्य वराकस्य सेवया किं लभ्यम्' इति तान्निरभर्त्सयत् । ते च मानपालेनोक्तं विप्रलापं मत्तकालाय तथैवाकथयन् । कुपितोऽपि लाटपतिर्दोर्वीर्यगर्वेणाल्पसैनिकसमेतो योद्धुमभ्यगात् । पूर्वमेव कृतरणनिश्चयो मानी मानपालः संनद्धयोधो युद्धकामो भूत्वा निःशङ्कं निरगात् । अहमपि सब-

तया । निजपराक्रमेणेत्यर्थः । अभिद्राव्य दूरमपवाह्य प्रपलाय्येति यावत् । तत्कालीनं तस्मिन् काले कारागृहान्निर्गमनसमये भवं जातम् । आर्चयत् सत्कृतवान् ।

(९) परेद्युः तत्परदिने । कटकं सैन्यमण्डलम् । अनर्थः अहितम् । रोषेण क्रोधेन अरुणिते रक्ते नेत्रे नयने यस्य सः । तेन सहेति शेषः । वराकस्य निकृष्टस्य । निरभर्त्सयत् अतर्जयत् । विप्रलापं विकृतवचनम् । तथैव यथाश्रुतं तथैव । दोर्वीर्यस्य भुजविक्रमस्य गर्वेणाहङ्कारेण । पूर्वमेव प्रागेव । कृतो रणस्य युद्धस्य निश्चयो निर्णयो येन सः । युद्धमवश्यम्भावीति प्रागेव निर्द्धारितमित्यर्थः । संनद्धा युद्धाय सज्जिता योधा भटा यस्य सः । सबहुमानं सादरं क्रियाविशेषणमेतत् । बहुलैरसंख्यैः

मानपालके शिविरमें जा पहुँचे । मानपालने अपने भृत्यों द्वारा मेरे कुल तथा मेरी कीर्ति और वीरगाथाकी प्रसिद्धि तथा उस समयके किये पराक्रमको मुग्धतापूर्वक सुना और हम लोगोंका अति आदर-सत्कार किया ।

(९) तदनन्तर दूसरे दिन मत्तकालद्वारा प्रेषित सेवकोंने मानपाल मन्त्रीके समीप आकर कहा—'हे मन्त्रिन् ! मेरे राज-मन्दिरमें सुरंग द्वारा प्रविष्ट होकर बहुत माल-असबाबको लेकर चोरवीरोंने तुम्हारे शिविरमे प्रवेश किया है उन्हें तुम मुझे सौंप दो अन्यथा महान् अनर्थ होगा ।' ऐसे कटु वाक्योंको सुनकर क्रोधसे रक्तवर्णी आँखें किये हुए मानपालने कहा—'अरे, कौन लाटपति, मैंने उससे मित्रता कब की ? उस अधमकी दासतासे मुझे क्या लाभ ? उपर्युक्तरीत्या राजपुरुषोंकी खूब भर्त्सना मानपालने की । उन राजसेवकोंने मत्तपालसे आकर ज्योंकी त्यों सभी बातें कह दीं । यह सुनकर लाटपति अपने भुजबलके अखर्व गर्वसे क्रोधान्ध हो गया । अपने साथ थोड़ासा सैन्य लेकर मानपालसे युद्ध करने चला आया । पहलेसे ही युद्धके लिए उद्युक्त मानी मानपाल भी निःशंक होकर युद्धार्थ शिविरसे निकल पड़ा । मैं भी

हुमानं मन्त्रिदत्तानि बहुलतुरंगमोपेतं चतुरसारथिं रथं च दृढतरं कवचं मदनुरूपं चापं च विविधबाणपूर्णं तूणीरद्वयं रणसमुचितान्यायुधानि गृहीत्वा युद्धसंनद्धो मदीयबलविश्वासेन रिपूद्धरणोद्युक्तं मन्त्रिणमन्वगाम् । परस्परमत्सरेण तुमुलसंगरकरमुभयसैन्यमतिक्रम्य समुल्लसद्भुजाटोपेन बाणवर्षं तदङ्गे विमुञ्चन्नरातीन्प्राहरम् ।

(१०) ततोऽतिरयतुरंगमं मद्रथं तन्निकटं नीत्वा शीघ्रलङ्घनोपेततदीयरथोऽहमरातेः शिरःकर्तनमकार्षम् । तस्मिन्पतिते तदवशिष्टसैनिकेषु पलायितेषु नानाविधहयगजादिवस्तुजातमादाय परमानन्दसंभृतो मन्त्री

तुरङ्गमैरश्वैरुपेतं युक्तम् । चतुरो दक्षः सारथिर्यस्य तम् । रथमित्यस्य विशेषणम् , कवचं वर्म्म तूणीरद्वयं इषुधियुग्मम् । रणसमुचितानि युद्धयोग्यानि । मदीयबलस्य विश्वासेन सकलरिपुसैन्यविनाशे सर्वथा समर्थोऽहमिति निर्णयेत्यर्थः । रिपूणां शत्रूणामुद्धरणे समुच्छेदे उद्युक्तं प्रवृत्तम् । मन्त्रिणं मानपालम् । परस्परमत्सरेण अन्योन्यद्वेषेण । तुमुलसंगरकरं संकुलयुद्धकारि अतिक्रम्य लङ्घयित्वा । समुल्लसतोः भ्राजमानयोः बाह्वोराटोपेन गर्वेण तदङ्गे तेषां शत्रुसैन्यानां शरीरे ।

(१०) अतिरयाः अतिवेगवन्तस्तुरङ्गमा अश्वा यस्मिन् तम् । मद्रथमित्यस्य विशेषणम् । तस्य लाटपतेः निकटं समीपम् । शीघ्रलङ्घनेन सत्वराक्रमणेन उपेतः प्राप्तस्तदीयो लाटपतेरित्यर्थः रथो येन सः तादृशोऽहम् । अरातेः शत्रोः लाटपतेरित्यर्थः । शिरःकर्तनं मस्तकच्छेदनम् । तस्मिन् लाटेश्वरे । पतिते मृते इत्यर्थः । तस्य लाटेश्वरस्य अवशिष्टेषु सैनिकेषु युद्धानन्तरं स्थितेषु बलेषु । नानाविधं बहुप्रकारं हयगजादिवस्तुजातं गजाश्वादिवस्तुसमूहम् । आदाय गृहीत्वा मदर्थमुपायनी-

अत्यन्त आदर तथा आग्रहके साथ भेंट किये हुए घोड़ोंसे खींचे जानेवाले रथपर जिसका सारथी भी प्रवीण था, दृढ़तर कवच और अपने योग्य धनुष तथा नाना प्रकारके शस्त्रायुधोंसे सुसज्जित एवं अनेक तरहके बाणोंसे भरे हुए दो तरकस तथा समरके योग्य जिरह बख्तर धारण करके मन्त्रीके साथ-साथ युद्धस्थलमें आ पहुँचा । मन्त्रीको मेरे पराक्रमपर पूर्ण विश्वास था, वह समझता था कि मैं शत्रुदलको पराजित करनेमें तथा उन्हें उखाड़ फेंकनेमें पूर्ण दक्ष हूँ । परस्पर क्रोध होनेसे घमासान युद्ध करनेकी लालसासे परिपूर्ण दोनों सेनाओंका अतिक्रमण करके मैं अपने बाहुदण्डके पराक्रमके आटोपसे शत्रुओंके ऊपर बाणोंकी वृष्टि करने लगा ।

(१०) इसके बादमें बड़े वेगवाले अश्वोंसे संयुक्त अपने रथको शीघ्र ही मत्तकालके रथके समीप ले आया । वह रथको लेकर भाग ही रहा था कि मैंने उसका शिर काट डाला ।

ममानेकविधां संभावनामकार्षीत् ।

(११) मानपालप्रेषितात्तदनुचरादेनमखिलमुदन्तजातमाकर्ण्य संतुष्टमना राजाभ्युद्गतो मदीयपराक्रमे विस्मयमानः समहोत्सवसमात्यबान्धवानुमत्या शुभदिने निजतनयां मह्यमदात् । ततो यौवराज्याभिषिक्तोऽहमनुदिनमाराधितमहीपालचित्तो वामलोचनयानया सह नानाविधं सौख्यमनुभवन्भवद्विरहवेदनाशल्यसुलभवैकल्यहृदयः सिद्धादेशेन सुहृज्जनावलोकनफलं प्रदेशं महाकालनिवासिनः परमेश्वरस्याराधनायाद्य पत्नीसमेतः समागतोऽस्मि । भक्तवत्सलस्य गौरीपतेः कारुण्येन त्वत्पदारविन्दसंदर्शनानन्दसंदोहो मया लब्धः’ इति ।

कर्तुमित्याशयः । परमानन्देन संभृतः पूर्णः । सम्भावनां सत्कारम् ।

(११) सन्तुष्टं मनो यस्य सः प्रीतचित्तः । राजा वीरकेतुः । अभ्युद्गतः सम्मानार्थमागतः । विस्मयमानः आश्चर्यमनुभवन् । निजतनयां बालचन्द्रिकाम् । युवा चासौ राजा चेति युवराजः तस्य भावो यौवराज्यं तस्मिन् अभिषिक्तो नियुक्तः । आराधितं सन्तोषितं महीपालस्य राज्ञः चित्तं मनो येन सः । भवतस्तव राजवाहनस्येत्यर्थः । विरहवेदना विच्छेदव्यथैव शल्यं शङ्कुस्तेन सुलभं अनायासप्राप्यं वैकल्यं विह्वलता हृदये यस्य सः । भवद्विरहदुःखाकुलचेता इत्यर्थः । सिद्धादेशेन सिद्धादेशवशात् । सुहृज्जनस्य मित्रस्यावलोकनं दर्शनमेव फलं प्रयोजनं यत्र तम्–प्रदेशविशेषणमेतत् । अस्मिन् प्रदेशे त्वत्प्रार्थितं मित्रदर्शनं भविष्यतीति सिद्धेनादिष्टम् । महाकालो नामोज्जयिन्यां प्रसिद्धं महादेवस्थानम् । अराधनायार्चनाय । भक्तेषु सेवकेषु वत्सलो दयालुः तस्य । तव पदारविन्दयोश्चरणकमलयोः सन्दर्शनेन अवलोकनेन य आनन्दो हर्षस्तस्य । सन्दोहोऽतिशयः ।

उसके गिरते उसके शेष योधा भाग गये । तब रिपुके अनेक तरहके हाथी–घोड़े–रथादि शस्त्रास्त्रोंको लेकर मैं मन्त्रीके समीप उपस्थित हुआ । जिसे देखकर परमानन्दित मानपालने मेरा अतीव आदर–सत्कार किया ।

(११) तदनन्तर मानपाल द्वारा प्रेषित सेवकोंसे मत्तकालका वध और मेरा वृत्त श्रवणकर राजा वीरकेतु अति प्रमुदित हुआ । मेरे पराक्रमको जानकर आश्चर्यान्वित होकर तथा अपने मन्त्रियों और बन्धु-बान्धवोंसे राय करके शुभ दिवसमें सविधि अपनी पुत्रीका परिणय मेरे साथ कर दिया । और कुछ दिनों पश्चात् यौवराज्यपर मुझे विभूषित कर दिया । मैं भी अपनी सेवाओंसे राजाको प्रसन्न रखता हुआ प्रतिदिन इस वामलोचनाके साथ आनन्दोपभोग करने लगा । परन्तु आपकी विरहजनित वेदनासे विकलचित्त होकर मैं, अपनी पत्नीके साथ, एक सिद्धपुरुषके आदेशसे, महाकालनिवासी परमेश्वरके अराधनार्थ इस स्थानमें आया

(१२) तन्निशम्याभिनन्दितपराक्रमो राजवाहनस्तन्निरपराधदण्डे दैवमुपालभ्य तस्मै क्रमेणात्मचरितं कथयामास । तस्मिन्नवसरे पुरतः पुष्पोद्भवं विलोक्य ससंभ्रमं निजनिटिलतटस्पृष्टचरणाङ्गुलिमुदञ्जलिममुं गाढमालिङ्ग्यानन्दबाष्पसंकुलसंफुल्ललोचनः 'सौम्य सोमदत्त, अयं स पुष्पोद्भवः' इति तस्मै तं दर्शयामास ।

(१३) तौ च चिरविरहदुःखं विसृज्यान्योन्यालिङ्गनसुखमन्वभूताम् । ततस्तस्यैव महीरुहस्य छायायामुपविश्य राजा सादरहासमभाषत— 'वयस्य, भूसुरकार्यं करिष्णुरहं मित्रगणो विदितार्थः सर्वथान्तरायं करिष्यतीति निद्रितान्भवतः परित्यज्य निरगाम् । तदनु प्रबुद्धो वयस्यवर्गः कि-

(१२) अभिनन्दितः प्रशंसितः पराक्रमः सोमदत्तस्य विक्रमो येन सः । तस्य सोमदत्तस्य निरपराधदण्डे अपराधाभावेऽपि प्राप्ते दण्डविषये । दैवमदृष्टम् उपालभ्य विनिन्द्य । तस्मै सोमदत्ताय । ससम्भ्रमं सचकितम् । निजस्य स्वस्य निटिलतटे भालस्थले स्पृष्टाः संसक्ताश्चरणाङ्गुलयो राजवाहनस्येति शेषः येन तम् । उदञ्जलिं कृताञ्जलिम् । अमुं पुष्पोद्भवम् । आनन्दबाष्पेण हर्षजनिताश्रुणा संकुले व्याप्ते संफुल्ले विकसिते लोचने नेत्रे यस्य सः तस्मै सोमदत्ताय । तं पुष्पोद्भवम् ।

(१३) तौ सोमदत्तपुष्पोद्भवौ । चिरविरहदुःखं दीर्घकालादर्शनजनितक्लेशम् । तस्यैव पूर्ववर्णितस्य । सादरो हासो यस्मिन् तत् क्रियाविशेषणमिदम् आदरेण स्मित्वेत्यर्थः । भूसुरकार्यं विप्रकृत्यम् । मित्रगणः यूयमित्यर्थः । विदितार्थः अवगत-

हूँ । यहां भक्तवत्सल गौरीपति विश्वनाथके प्रसादसे आज मैं आपके इन पदारविन्दोंके दर्शन पा रहा हूँ ।

(१२) उसके मुखसे यह सब वृत्तान्त श्रवणकर कुमार राजवाहनने उसके (सोमदत्तके) पराक्रमकी अति प्रशंसा की और निरपराधीको दण्ड देनेके निमित्त दैवको उपालम्भ दिया तथा क्रमशः अपना चरित कह सुनाया । उसी अवसरपर बड़े हर्षके साथ अपना शिर झुकाये हुए तथा राजवाहनके चरणकी अङ्गुलिपर अपना मस्तक स्पर्शित किये हुए पुष्पोद्भवको अपने समीप खड़े देखा । राजवाहनने शीघ्र उठकर उसे कंठसे लगाया और आनन्दाश्रु भरे नयनोंसे देखते हुए उससे कहा—हे सौम्य, देखो, यह पुष्पोद्भव भी आ पहुँचा । ऐसा कहकर सोमदत्तको दिखाया ।

(१३) उन दोनोंने भी परस्पर आलिंगनकर अतिकालसे प्राप्त वियोग-व्यथाको त्यागकर सुख प्राप्त किया । तदनन्तर उसी सघन वृक्षकी छायामें बैठकर राजाने बड़े आदरके साथ प्रफुल्लचित्त होकर कहा—'हे मित्र! हे सखे! जब मैं उस विप्रका कार्य करनेके लिए जानेको सोचने लगा तब मैंने यह भी सोचा कि यदि आप लोगोंसे (मित्रोंसे) कहूँगा तो आप लोग अवश्य

मिति निश्चित्य मदन्वेषणाय कुत्र गतवान्। भवानेकाकी कुत्र गतः’ इति। सोऽपि ललाटतटचुम्बदञ्जलिपुटः सविनयमलपत्।

इति श्रीदण्डिनः कृतौ दशकुमारचरिते सोमदत्तचरितं नाम तृतीय उच्छ्वासः।

चतुर्थोच्छ्वासः

(१) ‘देव, महीसुरोपकारायैव देवो गतवानिति निश्चित्यापि देवेन गन्तव्यं देशं निर्णेतुमशक्नुवानो मित्रगणः परस्परं वियुज्य दिक्षु देवमन्वेष्टुमगच्छत्।

विषयः। अन्तरायं विघ्नम्। प्रबुद्धो जागरितः। भवान् पुष्पोद्भव इत्यर्थः। ललाटतटं चुम्बद् अञ्जलिपुटं यस्य सः शिरसि अञ्जलिं बद्ध्वेत्यर्थः।

इति श्रीताराचरणभट्टाचार्यकृतायां बालविबोधिनीसमाख्यायां दशकुमारचरितव्याख्यायां तृतीय उच्छ्वासः।

(१) महीसुरोपकारायैव ब्राह्मणस्य साहाय्यं कर्तुमेव। देवो भवान् राजवाहन इत्यर्थः। निश्चित्यापि निर्णीयापि। देवेन भवता। निर्णेतुमवधारयितुम्। वियुज्य पृथग्भूय। दिक्षु विभिन्नदेशेषु।

बाधक होंगे और इसी कारण आप लोगोंको सोते छोड़कर मैं उस विप्रके साथ चला गया। उस ब्राह्मणके साथ चले जानेपर आप लोग जब जगे और मुझे न पाया तब क्या निश्चय किया और कहाँ-कहाँ आप लोग गये और आप अकेले कहाँ गये सो सब कहें। यह सुनकर विनयपूर्वक बद्धाञ्जलि होकर तथा हाथोंको अपने शिरपर लगाकर वह पुष्पोद्भव कहने लगा-

इस प्रकारसे तृतीय उच्छ्वासकी बालक्रीड़ा हिन्दी टीका समाप्त हुई।

(१) हे देव! आप ब्राह्मणके ही उपकारार्थ गये होंगे। यह निश्चय होनेपर भी हम लोग यह न ज्ञात कर सके कि आप किस देशमें गये हैं। और जब यह अनिश्चित ही रहा तब हम लोग परस्पर संकेतस्थलका (पुनः आकर मिलनेके स्थानका) निश्चय करके आपके अन्वेषणार्थ अलग-अलग देशोंमें गये।

(२) अहमपि देवस्यान्वेषणाय महीमटन्कदाचिदम्बरमध्यगतस्याम्बरमणेः किरणमसहिष्णुरेकस्य गिरितटमहीरुहस्य प्रच्छायशीतले तले क्षणमुपाविशम् । मम पुरोभागे दिनमध्यसंकुचितसर्वावयवां कूर्माकृतिं मानुषच्छायां निरीक्ष्योन्मुखो गगनतलान्महारयेण पतन्तं पुरुषं कंचिदन्तराल एव दयोपनतहृदयोऽहमवलम्ब्य शनैरवनितले निक्षिप्य दूरापातवीतसंज्ञं तं शिशिरोपचारेण विबोध्य शोकातिरेकेणोद्गतबाष्पलोचनं तं भृगुपतनकारणमपृच्छम् ।

(३) सोऽपि कररुहैरश्रुकणानपनयन्नभाषत-'सौम्य, मगधाधिना-

---

(२) अहम् पुष्पोद्भवः । महीमटन् भुवं भ्रमन् । अम्बरमध्यगतस्य आकाशमध्यमारूढस्य अम्बरमणेः सूर्यस्य । किरणं तापम् । पुरोभागे सम्मुखे । दिनस्य दिवसस्य मध्ये मध्यभागे मध्याह्न इत्यर्थः । संकुचिताः संक्षिप्ताः सर्वे निखिला अवयवा अङ्गानि यस्यास्ताम् । मध्याह्ने सूर्यस्योपरिस्थितिः छायासंकोचश्च प्रसिद्ध एव । कूर्माकृतिं कच्छपाकाराम् । उन्मुख उद्ध्वंमुखः अहमिति शेषः । महारयेण अतिवेगेन । अन्तराले मध्ये भूमिपतनात्पूर्वमेवेत्यर्थः । दयया करुणया उपनतं नम्रं हृदयं चित्तं यस्य सः अवलम्ब्य गृहीत्वा । निक्षिप्य संस्थाप्य । दूराद् दूरदेशादापातः पतनं तेन वीताऽपगता संज्ञा चेतना यस्य तम् । तं पतन्तं पुरुषम् । शिशिरोपचारेण जलसेकादिना । विबोध्य प्रकृतिस्थं कृत्वा । शोकातिरेकेण दुःखातिशयेन । उद्गतं निर्गतं बाष्पमश्रु याभ्यां तादृशी लोचने यस्य तम् । भृगोः प्रपातात् पतनस्य कारणं हेतुम् । प्रपातस्त्वतटो भृगुरित्यमरः । प्रच्छधातोर्द्विकर्मकत्वात्कर्मद्वयम् ।

(३) सोऽपि पुरुषोऽपि । कररुहैर्नखैरङ्गुलिभिरिति भावः । अश्रुकणान् नेत्रजल-

---

(२) भ्रमण करते हुए पृथिवीपर घूमते-घूमते एक दिन सूर्यके प्रखर तेजसे व्याकुल होकर एक पर्वतके किनारे एक सघन छायावाले तरुके नीचे एक क्षण विश्रामार्थ मैं बैठ गया । उस छायामें बैठते ही क्षण भरमें कुछ आहट मालूम पड़ी और सामने मध्याह्नके होनेके कारण संकुचित सर्वावयव कछुएके समान एक पुरुषाकृति दिखाई दी । मैंने ऊपरकी ओर मुँह करके देखा तो ज्ञात हुआ कि कोई पुरुष आकाशकी ओरसे गिरकर नीचे आ रहा है । यह देखकर मेरे अन्तःकरणमें दया आ गयी । और मैंने उसे बीचमें ही लोककर नीचे उतार दिया । पृथिवीतलपर धीरेसे रखकर शीतलोपचारसे उसे प्रबुद्ध किया-क्योंकि वह मूर्च्छित हो गया था । अति शोकके कारण उसकी आँखोंसे आँसू बह रहे थे । मैंने उससे पहाड़परसे कूदनेका कारण पूछा—

(३) वह अपने हाथोंसे आँसुओंको पोछकर कहने लगा—हे सौम्य ! मैं मगधदेशाधि-

थामात्यस्य पद्मोद्भवस्यात्मसंभवो रत्नोद्भवो नामाहम्। वाणिज्यरूपेण कालयवनद्वीपमुपेत्य कामपि वणिक्कन्यकां परिणीय तया सह प्रत्यागच्छन्नम्बुधौ तीरस्यानतिदूर एव प्रवहणस्य भग्नतया सर्वेषु निमग्नेषु कथंकथमपि दैवानुकूल्येन तीरभूमिमभिगम्य निजाङ्गनावियोगदुःखार्णवे प्लवमानः कस्यापि सिद्धतापसस्यादेशादरेण षोडश हायनानि कथंचिन्नीत्वा दुःखस्य पारं अनवेक्षमाणः गिरिपतनमकार्षम्' इति।

(४) तस्मिन्नेवावसरे किमपि नारीकूजितमश्रावि—'न खलु समुचितमिदं यत्सिद्धादिष्टे पतितनयमिलने विरहमसहिष्णुर्वैश्वानरं वि-

---

बिन्दून्। अपनयन् दूरीकुर्वन्। सौम्य सुन्दर। मगधाधिनाथामात्यस्य राजहंसमन्त्रिणः। आत्मसम्भवः तनयः। वाणिज्यरूपेण वाणिज्याभिलाषेण। परिणीय विवाह्य। प्रत्यागच्छन् तस्माद्द्वीपान्निवर्तमानः। अम्बुधौ समुद्रे। अनतिदूरे समीपे प्रवहणस्य पोतस्य नौकाया इति यावत्। सर्वेषु पोतस्थितेषु निखिलजनेषु निमग्नेषु सागरे इति शेषः। कथंकथमपि अतिकष्टेन। दैवानुकूल्येन भागधेयसाहाय्येन। अभिगम्य प्राप्य। निजायाः स्वकीयाया अङ्गनायाः पत्न्या यद्वियोगदुःखं विनाशक्लेशः स एवार्णवः सागरस्तस्मिन्। प्लवमानः सन्तरन्। आदेशादरेण वचनविश्वासेन। हायनानि वत्सरान्। कथञ्चित् महता कष्टेन। नीत्वा यापयित्वा। दुःखस्य पारं दुर्दशाशेषम्। अनवेक्षमाणोऽपश्यन्।

(४) अवसरे समये। नारीकूजितं स्त्रीक्रन्दितम्। अश्रावि श्रुतं मयेति शेषः। समुचितं युक्तम्। सिद्धादिष्टे सिद्धकथिते। पत्युः स्वामिनस्तनयस्य पुत्रस्य च मिलने सम्मेलने। षोडशवर्षानन्तरं ते पतिपुत्रसमागमो भविष्यतीति सिद्धेन कथिते सती-

---

पतिके अमात्य पद्मोद्भवका पुत्र हूँ, मेरा नाम रत्नोद्भव है। व्यापारके सिलसिलेमें मैं कालयवन द्वीपमें गया था। वहाँ एक वणिक्सुताके साथ मेरा परिणय हुआ। उसे साथ लेकर नावद्वारा मैं अपने देश आ रहा था। थोड़ी दूर आगे आनेपर समुद्रमें मेरी नाव एक प्रस्तरसे टकराकर टूट गयी। तथा सभी उसपर आरूढ़ यात्री जलमग्न हो गये। दैववश मैं बहता हुआ तीरभूमिपर आ लगा। फिर अपनी पत्नीकी विरहरूपी व्यथाके समुद्रमें बहता एक तपस्वीके पास गया। उसके आश्वासन दिलानेपर कि सोलह वर्षमें तुम्हारी पत्नी मिलेगी—१६ वर्ष बिताये, परन्तु अब भी उसके न मिलनेसे निराश होकर दुःखका अन्त करनेके लिये पर्वतसे कूद पड़ा।

(४) उसी क्षण एक तरफसे रोते हुए यह शब्द सुनाई पड़ा—'हे बाले! जब एक तपस्वीने बता दिया है कि तुम्हारे पति और पुत्र दोनों १६ वर्षमें मिल जायेंगे तो फिर क्यों

शसि' इति ।

(५) तन्निशम्य मनोविदितजनकभावं तमवादिषम्—'तात, भवते विज्ञापनीयानि बहूनि सन्ति । भवतु । पश्चादखिलमाख्यातव्यम् । अधुना नारीकूजितमनुपेक्षणीयं मया । क्षणमात्रमत्र भवता स्थीयताम्' इति

(६) तदनु सोऽहं त्वरया किंचिदन्तरमगमम् । तत्र पुरतो भयङ्कर-ज्वालाकुलहुतभुगवगाहनसाहसिकां मुकुलिताञ्जलिपुटां वनितां कांचिदवलोक्य ससंभ्रममनलादपनीय कूजन्त्या वृद्धया सह मत्पितुरभ्यर्णमभिगमय्य स्थविरामवोचम्—'वृद्धे, भवत्यौ कुत्रत्ये । कान्तारे निमित्तेन केन

त्यर्थः । असहिष्णुः सोढुमशक्नुवन् । वैश्वानरमग्निम् । विशसि त्वमिति अनुचितमिदमिति कयाचिदुच्यते ।

(५) मनसा चित्तेन ममेति शेषः विदितो ज्ञातो जनकभावो मत्पितृत्वं यस्य तम् अयमेव मे पितेति मया निश्चयविषयीकृतमिति भावः । तं पुरुषम् । अवादिषम् उक्तवानहमिति शेषः । भवते तुभ्यम् । विज्ञापनीयानि अवश्यवक्तव्यानि । पश्चात् नारीकूजितश्रवणानन्तरम् । अखिलं सर्वम् आख्यातव्यं कथनीयं मयेति शेषः । अनुपेक्षणीयं उपेक्षितुमनुचितम् ।

(६) तदनु तदनन्तरम् । सोऽहं तथाविध एव । त्वरया वेगेन । अन्तरं दूरम् पुरतोऽग्रतः भयंकरज्वालाभिः भीषणशिखाभिराकुले व्याप्ते हुतभुजि वह्नौ अवगाहने प्रवेशे साहसिकां कृतोत्साहाम्–अनलस्प्रवेष्टुमुद्यतामित्यर्थः । मुकुलिताञ्जलिपुटां बद्धाञ्जलिम् । ससम्भ्रमं सत्वरम् । अनलाद् अग्नेः । अपनीय दूरीकृत्य । कूजन्त्या क्रन्दन्त्या । अभ्यर्णं समीपम् । अभिगमय्य प्रापय्य । अभिपूर्वकगमेर्णिजन्ताल्ल्यप् । स्थविरां वृद्धाम् । भवत्यौ त्वमेषा च । कुत्रत्ये कस्मात् । स्थानादागते । निमित्तेन

वियोगजनित कष्टको सहनेमें असमर्थ होकर प्राणोंको अग्निमें कूदकर छोड़ना चाहती हो, यह बात सर्वथा अनुचित है ।

(५) यह वार्ता श्रवणकर मेरे मनमें आया कि ये मेरे पिता हैं और मैंने उनसे कहा—'हे तात ! मुझे आपसे अभी बहुत कुछ वार्ता करनी है । अतः आप बैठें, मैं क्षणभर भी उस नारीके रोदनकी उपेक्षा नहीं कर सकता हूँ ।

(६) ऐसा कहकर मैं शीघ्र बड़े वेगसे उस ओर गया जिधरसे महिलाकी वह ध्वनि आ रही थी । वहाँपर मैंने देखा कि, एक वनिता हाथ जोड़े बैठी हुई है और उसके सम्मुख भयंकर अग्निज्वाला जल रही है तथा वह उसकी ज्वालामें कूदनेको उद्यत है । मैंने तुरत ही वहाँ पहुँचकर उसे पहले अग्निके पाससे दूर कर दिया । फिर समीपमें ही रोनेवाली एक वृद्धा

दुरवस्थानुभूयते। कथ्यताम्' इति।

(७) सा सगद्गदमवादीत्—'पुत्र, कालयवनद्वीपे कालगुप्तनाम्नो व-णिजः कस्यचिदेषा सुता सुवृत्ता नाम रत्नोद्भवेन निजकान्तेनागच्छन्ती जलधौ मग्ने प्रवहणे निजधात्र्या मया सह फलकमेकमवलम्ब्य दैवयोगेन कूलमुपेतासन्नप्रसवसमया कस्याञ्चिदटव्यामात्मजमसूत। मम तु मन्दभा-ग्यतया बाले वनमातङ्गेन गृहीते मद्द्वितीया परिभ्रमन्ती 'षोडशवर्षानन्तरं भर्तृपुत्रसङ्गमो भविष्यति' इति सिद्धवाक्यविश्वासादेकस्मिन्पुण्याश्रमे तावन्तं समयं नीत्वा शोकमपारं सोढुमक्षमा समुज्ज्वलिते वैश्वानरे शरी-रमाहुतीकर्तुमुद्युक्तासीत्' इति।

कारणेन। दुरवस्था एतादृशी दुर्दशा। अनुभूयते भवतीभ्यामिति शेषः।

(७) सा वृद्धा। सगद्गदं बाष्परुद्धकण्ठम्। निजकान्तेन स्वभर्त्रा। फलकं काष्ठ-खण्डम्। कूलं तीरमुपेता प्राप्ता। आसन्नः प्राप्तः प्रसवसमयो यया सा। मन्दभाग्य-तया दुरदृष्टवशेन। बाले शिशौ। वनमातङ्गेन आरण्यगजेन। मद्द्वितीया अहं द्वितीया यस्याः सा मच्छरणेत्यर्थः। तावन्तं षोडशवर्षमितम्। नीत्वा यापयित्वा। अपारं अनन्तम्। अक्षमा असमर्था। समुज्ज्वलिते प्रज्वलिते। आहुतीकर्तुं प्रक्षेप्तुं भस्मसात्कर्तुमित्यर्थः।

बैठी थी उसे और उस वनिताको लेकर अपने पिताके पास आया और पिता के सामने ही वृद्धासे उसके अग्निप्रवेशका कारण पूछा—हे वृद्धे! तुम दोनों कौन हो तथा क्योंकर आगमें यहाँ प्रविष्ट हो रही थीं? और तुम लोग कहाँकी निवासिनी हो। इस अरण्यमें क्यों कष्ट सह रही हो?

(७) वह वृद्धा गद्गद स्वरमें बोली—'हे पुत्र! कालयवनद्वीपमें कालगुप्त नामक एक वणिक् रहता था। उसकी सुवृता नामक यह कन्या है। यह कन्या अपने पति रत्नोद्भवके साथ नावपर आ रही थी। दैववश नाव, बीच समुद्रमें, टूटकर डूब गयी। धात्रीभावसे नियुक्त मैं और यह कन्या एक काठके सहारे समुद्रतटपर आ लगी। यह आसन्नप्रसवा थी। अतः इसने पास हीके विपिनमें एक पुत्र उत्पन्न किया। दुर्भाग्यसे एक जंगली हाथी उस बालकको उठा ले गया। मेरे साथ विलपती हुई यह एक तपस्वीके समीप गयी। उनके उप-देशपूर्ण कथनपर कि १६ वर्षमें तुम्हारे पति-पुत्र मिल जायेंगे यह कन्या मेरे साथ एक पवित्र आश्रममें निवासकर जीवन-यापन करने लगी। परन्तु १६ वर्ष होनेपर भी जब इसे पति-पुत्र न मिले तो यह अपार शोक-सागर पार करनेमें चिन्तित हो गयी और इस जलती हुई आगमें प्रवेश करनेके लिए तैयार हो गयी।

(८) तदाकर्ण्य निजजननीं ज्ञात्वा तामहं दण्डवत्प्रणम्य तस्यै मद्वृत्तान्तमखिलमाख्याय धात्रीभाषणफुल्लवदनं विस्मयविकसिताक्षं जनकमदर्शयम् । पितरौ तौ साभिज्ञानमन्योन्यं ज्ञात्वा मुदितान्तरात्मानौ विनीतं मामानन्दाश्रुवर्षेणाभिषिच्य गाढमाश्लिष्य शिरस्युपाघ्राय कस्यांचिन्महीरुहच्छायायामुपाविशताम् ।

(९) 'कथं निवसति महीवल्लभो राजहंसः' इति जनकेन पृष्टोऽहं तस्य राज्यच्युतिं त्वदीयजननं सकलकुमारावाप्तिं तव दिग्विजयारम्भं भवतो मातङ्गानुयानमस्माकं युष्मदन्वेषणकारणं सकलमभ्यधाम् । ततस्तौ कस्यचिदाश्रमे मुनेरस्थापयम् । ततो देवस्यान्वेषणपरायणोऽहमखिलका-

---

(८) निजजननीं ज्ञात्वा इयमेव मे मातेति निश्चित्य तस्यै मात्रे मद्वृत्तान्तं मद्वृत्तान्तम् । धात्र्या वृद्धायाः भाषणेन वचनश्रवणेन फुल्लं हर्षविकसितं वदनमाननं यस्य तम् । विस्मयेन आश्चर्यरसेन विकसिते उत्फुल्ले अक्षिणी नेत्रे यस्य तम् । अदर्शयं दर्शितवानहमिति शेषः । माता च पिता चेति पितरौ । साभिज्ञानं परस्परपरिचयसूचकचिह्नेन । मुदितो हृष्टोऽन्तरात्मा ययोस्तौ । विनीतं प्रश्रयावनतम् । आनन्दाश्रुवर्षेण हर्षजनितनेत्रजलवर्षणेन । गाढं दृढम् । आश्लिष्य आलिङ्गय । शिरसि मस्तके । उपाघ्राय घ्राणं कृत्वा । महीरुहच्छायायां वृक्षच्छायायाम् । उपाविशताम् उपविष्टौ ताविति शेषः ।

(९) कथं केन प्रकारेण महीवल्लभो राजा । तस्य राजहंसस्य । राज्यच्युतिं राज्यभ्रंशं । त्वदीयजननं स्वदीयोत्पत्तिम् । मातङ्गानुयानं तदाख्यब्राह्मणस्याऽनुसरणम् । अभ्यधाम् अकथयम् । तौ मातापितरौ । देवस्य भवतः । अखिलानि सम्पूर्णानि कार्याणि तेषां निमित्तं साधनम् । वित्तं धनम् । साधकत्वस्य सिद्धादेशक-

---

(८) इन बातोंको सुनकर मैंने समझ लिया कि यह महिला मेरी माँ है। अतः मैंने उसे प्रणाम किया और अपनी पूरी कथा कह सुनायी । फिर धात्रीकी वार्ता सुनकर प्रफुल्लित मुखवाले और विस्मयसे प्रफुल्ल नयनोंवाले अपने पिता को उनके दर्शन कराये । पुनः माता-पिताने परस्पर अपने परिज्ञानोंसे अन्योन्यको समझ लिया और प्रसन्न होकर उन दोनोंने मुझे अपने हृदयमें लगा लिया तथा अश्रुओंसे मुझे भिंगोकर विनीतभावसे मेरा माथा सूंघा तथा पासके एक वृक्षकी छायामें हम लोग बैठे ।

(९) पिताजीके यह पूछनेपर कि, महाराज राजहंसका क्या समाचार है ? मैंने उनके राज्यच्युतिका, आपके जन्मका, सब कुमारोंके सम्मिलनका, आपके दिग्विजयके लिए प्रस्थानका, आपके मातंगके निमित्त पातालप्रवेशका और आपके अन्वेषणार्थ हम लोगोंके

यन्निमित्तं वित्तं निश्चित्य भवदनुग्रहाल्लब्धस्य साधकत्वस्य साहाय्यकरणदक्षं शिष्यगणं निष्पाद्य विन्ध्यवनमध्ये पुरातनपत्तनस्थानान्युपेत्य विविधनिधिसूचकानां महीरुहाणामधोनिक्षिप्तान्वसुपूर्णान्कलशान् सिद्धाञ्जनेन ज्ञात्वा रक्षिषु परितः स्थितेषु खननसाधनैरुत्पाद्य दीनारानसंख्यान् राशीकृत्य तत्कालागतमनतिदूरे निवेशितं वणिक्कटकं कञ्चिदभ्येत्य तत्र बलिनो बलीवर्दान् गोणीश्च क्रीत्वान्यद्रव्यमिषेण वसु तद्द्रोणीसंचितं तैरुह्यमानं शनैः कटकमनयम् ।

(१०) तदधिकारिणा चन्द्रपालेन केनचिद्वणिक्पुत्रेण विरचितसौ-

त्वस्य । साहाय्यकरणे दक्षं निपुणम् । निष्पाद्य एकीकृत्य । पुरातनपत्तनस्थानानि प्राचीननगरभूमीः । विविधनिधिसूचकानां नानारत्नकुम्भस्थितिनिर्देशकानां महीरुहाणां वृक्षाणाम् । वसुपूर्णान् धनपूरितान् । सिद्धाञ्जनेन नयनदत्तकज्जलेन । रक्षिषु रक्षापुरुषेषु । परितः समन्तात् स्थितेषु वर्त्तमानेषु । खननसाधनैः खनित्रादिखननोपायैः । उत्पाद्य भूमिमध्यादुत्थाप्य । दीनारान् स्वर्णमुद्रादीन् तत्कालागतं तस्मिन् समये तत्रोपस्थितम् । अनतिदूरे निकटे निवेशितं स्थापितम् । वणिक्कटकं वणिक्शिविरम् । अभ्येत्य गत्वा । बलिनो बलवतः पुष्टानित्यर्थः । बलीवर्दान् वृषभान् गोणीः धान्यादिवहनार्थाधारविशेषान् । अन्यद्रव्यमिषेण द्रव्यान्तरच्छलेन । तैः बलीवर्दैः । शनैर्मन्दं मन्दं क्रमश इति भावः ।

(१०) तदधिकारिणा कटकस्वामिना । विरचितं कृतं सौहृदं मैत्री येन सः ।

जानेका समस्त वृत्त कह सुनाया। तब मैंने उन दोनोंको एक मुनिकी कुटीमें ले जाकर स्थित कर दिया। फिर मैं आपकी खोजमें निकला। मैंने एक दिन विचार किया कि सभी कार्य धनसे साधे जाते हैं। आपकी दयासे उसी क्षण मुझे धन-प्राप्तिकी साधनाका एक उपाय प्राप्त हो गया। और मैंने कुछ दक्ष शिष्योंको धनलब्धकत्वमें समर्थ किया तथा विन्ध्याचलके एक प्राचीन नगरके भग्नावशेष स्थलमें जा पहुँचा। सिद्धाञ्जनसे मैंने नाना प्रकारके कोषोंकी सूचना देनेवाले वृक्षोंके नीचे स्थापित पृथ्वीके भीतरके घड़ोंको ज्ञात कर लिया। मैंने उन वृक्षोंके चारों ओर रक्षकोंको खड़ा कर दिया और कुदारी आदिसे पृथ्वी खोदवाकर अगणित मुद्राएँ एकत्र की। तत्पश्चात् तत्काल आए हुए वणिक्-समुदायसे पूरित पास हीके स्थलमें पहुँचा। उन लोगोंसे मैंने अति बलिष्ठ कुछ बैल तथा गाड़ियाँ खरीदीं और अन्नादिके ढोनेका बहाना करके उन गाड़ियोंपर सुवर्ण लादकर धीरे-धीरे उस स्थानपर आ पहुँचा।

(१०) फिर बनियोंके अधिपति चन्द्रपाल नामक वणिक्पुत्रसे मित्रता करके उसीके

हृदोऽहममुनैव साकमुज्जयिनीमुपाविशम् । मत्पितरावपि तां पुरीमभिगम्य सकलगुणनिलयेन बन्धुपालनाम्ना चन्द्रपालजनकेन नीयमानो मालवनाथदर्शनं विधाय तदनुमत्या गूढवसतिमकरवम् । ततः काननभूमिषु भवन्तमन्वेष्टुमुद्युक्तं मां परममित्रं बन्धुपालो निशम्यावदत्—'सकलं धरणितलमपारमन्वेष्टुमक्षमो भवान्मनोग्लानिं विहाय तूष्णीं तिष्ठतु । भवन्नायकालोकनकारणं शुभशकुनं निरीक्ष्य कथयिष्यामि इति ।

(११) तल्लपितामृताश्वासितहृदयोऽहमनुदिनं तदुपकण्ठवर्ती कदाचिदिन्दुमुखीं नवयौवनावलीढावयवां नयनचन्द्रिकां बालचन्द्रिकां नाम तरुणीरत्नं वणिङ्मन्दिरलक्ष्मीं मूर्तामिवावलोक्य तदीयलावण्यावधूतधी-

अमुना चन्द्रपालेन । उपाविशं न्यवसम् । मत्पितरौ मदीयां जननी जनकञ्च । तां पुरीमुज्जयिनीम् । अभिगमय्य प्रापय्य । सकलानां सर्वेषां गुणानां शौर्यदाक्षिण्यादीनां निलय आधारस्तेन । मालवनाथदर्शनं उज्जयिनीपतिसन्दर्शनम् । तदनुमत्या तस्य मालवनाथस्यानुमत्याऽऽज्ञया । गूढवसतिं गुप्तवासम् । अपारमनन्तम् । अक्षमोऽसमर्थः । मनोग्लानिं निर्वेदम् । भवतस्तव नायकस्य प्रभोरालोकनस्य दर्शनस्य कारणं निमित्तम् । शुभशकुनं मङ्गलचिह्नम् ।

(११) तस्य बन्धुपालस्य लपितं भाषितमेवामृतं तेन । आश्वासितं निर्वृतं हृद् स्वान्तं यस्य सः । अहं पुष्पोद्भवः । तस्य बन्धुपालस्य उपकण्ठवर्त्ती समीपवर्त्ती । नवयौवनेन अवलीढा व्याप्ता अवयवा अङ्गानि यस्यास्ताम् । नयनयोर्नेत्रयोः चन्द्रिका ज्योत्स्नारूपिणी ताम् । मूर्तां मूर्त्तिमतीम् । तदीयेन बालचन्द्रिकासम्बन्धिना लावण्येन सौन्दर्येण अवधूतस्तिरस्कृतो धीरभावो धैर्यं यस्य सः । लतान्ता कुसुमानि बाणाः शरा यस्य सः काम इत्यर्थः तस्य बाणलक्ष्यतां शरव्यत्वम् अयासिषमग-

साथ-साथ उज्जैन चला गया । कुछ कालके अनन्तर मैं अपने माता-पिताको भी वहीं ले आया । सकलगुणनिधान चन्द्रपालके पिता बन्धुपालके साथ मालवेशका दर्शन किया तथा उनकी आज्ञासे उनकी भूमिपर प्रच्छन्नवेशसे निवास करने लगा । एकदा वनमें आपको खोजते हुए ज्ञातकर मेरे परम मित्र बन्धुपालने कहा—यह भूमंडल अति विशाल है, इसका अन्वेषण करना सर्वथा असम्भव है । अतः आप शान्ति धरकर चुप बैठें । शुभ समय आने पर मैं शुभ शकुन बता दूँगा । तब आप अन्वेषण करें तो सफल होंगे ।

(११) उसके उन सुधामय वचनोंको सुनकर मेरा चित्त कुछ शान्त हुआ तथा मैं प्रतिदिन उसके पास जाने लगा । एक दिन मैंने साक्षात् लक्ष्मीस्वरूपा एक सुन्दरीको जो गृहके समीप रहती थी, देखा । वह अति मनोज्ञा थी । उसके मुखकी शोभा चन्द्रमाके समान थी ।

रभावो लतान्तबाणबाणलक्ष्यतामयासिषम्।

(१२) चकितबालकुरङ्गलोचना सापि कुसुमसायकसायकायमानेन कटाक्षवीक्षणेन मामसकृन्निरीक्ष्य मन्दमारुतान्दोलिता लतेवाकम्पत। मनःसाभिमुखैः समाकुञ्चितै रागलज्जान्तरालवर्तिभिः साङ्गवर्तिभिरीक्षणविशेषैर्निजमनोवृत्तिमकथयत्।

(१३) चतुरगूढचेष्टाभिरस्या मनोऽनुरागं सम्यग्ज्ञात्वा सुखसंगमोपायमचिन्तयम्। अन्यदा बन्धुपालः शकुनैर्भवद्गतिं प्रेक्षिष्यमाणः पुरोपान्त-

---

मम्। तदीयलावण्यदर्शनात्कामबाणविद्धोऽहमभवमिति तात्पर्यम्।

(१२) चकितस्य भीतस्य बालकुरङ्गस्य चपलमृगस्य लोचने नयने इव लोचने यस्याः सा। चञ्चलनयनेत्यर्थः। सापि बालचन्द्रिकापि। कुसुमसायकस्य कामस्य सायकः शर इवाचरतीति तेन—कामबाणसदृशेनेत्यर्थः। असकृद् वारं वारम्। मन्दमारुतेन धीरसमीरेण आन्दोलिता कम्पिता। मनसा हृदयेन। अभिमुखैः मय्यर्पितैः। समाकुञ्चितैर्लज्जया खर्वीकृतैः असमग्रपातिभिरिति भावः। रागोऽनुरागः लज्जा त्रपा तयोरन्तराले मध्ये वर्त्तन्ते ये तैः—अनुरागव्यञ्जकैरपि सलज्जैरित्यर्थः। अङ्गभङ्ग्या सह वर्त्तमानैः साङ्गभङ्गिभिः एतानि ईक्षणविशेषैरित्यस्य विशेषणानि। ईक्षणविशेषैः कटाक्षैरिति भावः। निजमनोवृत्तिं स्वमनोव्यापारम्—अभिलाषमिति यावत्। अकथयत् प्राकाशयत्।

(१३) चतुराः पेशला गूढा गुप्ताश्च याश्चेष्टाः कटाक्षादयस्ताभिः। अस्या बालचन्द्रिकायाः। सुखेनानयासेन यः सङ्गमो मिलनं तस्योपायं साधनम्। अन्यदा अन्यस्मिन् समये। शकुनैः निमित्तैः सामुद्रिकादिशास्त्रप्रदर्शितैश्चिह्नविशेषैः। भवद्गतिं भवतो राजवाहनस्येत्यर्थः। गतिं प्रचारप्रकारम्। प्रेक्षिष्यमाणः द्रक्ष्यन्। पुरस्य

उसका सारा अंग नवीन यौवनसे भरा था। उसकी आँखोंमें तेज था। उसकी सुन्दरता देखकर मेरा मन लुभा गया; धैर्य छूट गया और मैं कामबाणोंका लक्ष्य हो गया। उसका नाम बालचन्द्रिका था।

(१२) वह चंचल बालकुरंगलोचना तरुणी थी। कामदेवके पुष्पबाणोंके सदृश अपने अपांगोंसे मुझे बार-बार देखती हुई मन्द-मन्द पवनसे कम्पित लताके समान काँपने लगी। प्रेम और लज्जाके मध्यमें रहनेवाले प्रत्यक्ष हाव-भावों तथा विचित्र रीतिके भावों को दिखा-दिखाकर उसने भी मुझसे अपनी मनोव्यथा प्रकट कर दी।

(१३) मैं अपनी चतुरता तथा गुप्त चेष्टाओं द्वारा उस तरुणीके हार्दिक अनुरागको अच्छी तरह जान गया। उसके साथ समागमका यत्न सोचने लगा। दूसरे दिन मेरा मित्र बन्धुपाल

विहारवनं मया सहोपेत्य कस्मिंश्चिन्महीरुहे शकुन्तवचनानि शृण्वन्न-तिष्ठत् ।

(१४) अहमुत्कलिकाविनोदपरायणो वनान्तरे परिभ्रमन्सरोवरतीरे चिन्ताक्रान्तचित्तां दीनवदनां मन्मनोरथैकभूमिं बालचन्द्रिकां व्यलोकयम् ।

(१५) तस्याः ससंभ्रमप्रेमलज्जाकौतुकमनोरमं लीलाविलोकनसुखम-नुभवन्सुदत्या वदनारविन्दे विषण्णभावं मदनकदनखेदानुभूतं ज्ञात्वा तन्निमित्तं ज्ञास्यंल्लीलया तदुपकण्ठमुपेत्यावोचम्—'सुमुखि, तव मुखार-विन्दस्य दैन्यकारणं कथय' इति ।

नगरस्योपान्ते समीपे विहारवनं क्रीडोद्यानम् । शकुन्तानां पक्षिणां वचनानि पर-स्परभाषितानि । 'शकुन्तपक्षिशकुनिशकुन्तशकुनद्विजाः' इत्यमरः ।

(१४) उत्कलिकाया उत्कण्ठायाः विनोदेऽपनोदने परायणस्तत्परः । वनान्तरे अन्यवने । चिन्तया ध्यानेन आक्रान्तं पर्याकुलं चित्तं हृदयं यस्यास्ताम् । दीनवदनां विषण्णाननाम् । मम मनोरथस्याभिलाषस्यैकभूमिं प्रधानाश्रयभूताम् । यामहं निरन्तरमभिलषामीति भावः ।

(१५) सम्भ्रमेण त्वरया सह वर्त्तमानानि ससम्भ्रमाणि—प्रेमा अनुरागश्च लज्जा त्रपा च कौतुकमौत्सुक्यं चेति द्वन्द्वः । ससम्भ्रमाणि च तानीति कर्मधारयः तैर्मनोरमं मनोहरम् । लीलया विलासेन यद्विलोकनमवलोकनं तेन यत्सुखमानन्द-स्तत् । सुदत्याः शोभना दन्ता यस्याः सा सुदती तस्याः । मदनस्य कामस्य कदनखेदेन पीडनायासेन अनुभूतं विषण्णभावमित्यस्य विशेषणम्—अस्या विषण्ण-भावो नान्यनिमित्तकः किन्तु कामजनितपीडाहेतुक एवेति भावः । तस्य विषण्ण-भावस्य निमित्तं कारणम् । बालचन्द्रिकाया उपकण्ठं समीपम् ।

नगरके बाहर एक उद्यानमें आपके अन्वेषणके लिए शुभ शकुन बताने आया । समीपमें ही एक वृक्षपर पक्षियोंके कलरवको सुनकर बैठ गया ।

(१४) मैं अपनी बालचन्द्रिकाकी प्राप्तिकी उत्कण्ठाके विनोदार्थ दूसरे उपवनके सन्निकट एक तालाबके किनारे जा पहुँचा । वहाँ चिन्तितचित्त, म्लानमुख तथा एकमात्र मेरी प्राप्तिकी इच्छासे बैठी हुई एकान्तमें बालचन्द्रिका दिखायी पड़ी ।

(१५) उस मनोहर दाँतोंवाली तरुणीकी घबराहट और प्रीति एवं लज्जायुक्त भावोंसे सुन्दर मुखके अवलोकनजन्य आनन्दको लूटता हुआ उसके विनोदयुक्त भाव तथा कामदेव की पीड़ासे व्यथित उसे ज्ञातकर उसकी उद्विग्नताका हेतु जाननेके विचारसे मैं उसके पास गया और मैंने पूछा—सुमुखी ! आपके मुखकमलपर उदासी क्यों है इसका कारण मुझसे कहो—

(१६) सा रहस्यसंजातविश्रम्भतया विहाय लज्जाभये शनैरभाषत—'सौम्य, मानसारो मालवाधीश्वरो वार्धकस्य प्रबलतया निजनन्दनं दर्पसारमुज्जयिन्यामभ्यषिञ्चत्। स कुमारः सप्तसागरपर्यन्तं महीमण्डलं पालयिष्यन्निजपैतृष्वस्रेयावुद्दण्डकर्माणौ चण्डवर्मदारुवर्माणौ धरणीभरणे नियुज्य तपश्चरणाय राजराजगिरिमभ्यगात्।

(१७) राज्यं सर्वमसपत्नं शासति चण्डवर्मणि दारुवर्मा मातुलाग्रजन्मनोः शासनमतिक्रम्य पारदार्यपरद्रव्यापहरणादिदुष्कर्म कुर्वाणो मन्मथसमानस्य भवतो लावण्यात्तचित्तां मामेकदा विलोक्य कन्यादूषणदोषं दूरीकृत्य बलात्कारेण रन्तुमुद्युङ्क्ते। तच्चिन्तया दैन्यमगच्छम्' इति।

---

(१६) रहस्ये गोप्यविषये सञ्जात उत्पन्नो विश्रम्भो विश्वासो यस्यास्तस्या भावस्तया। वार्धकस्य वृद्धावस्थायाः जराया इति यावत्। प्रबलतया आधिक्येन। सप्त सागराः समुद्राः पर्यन्तः सीमान्तो यस्य तत्। महीमण्डलमित्यस्य विशेषणम्। निजपैतृष्वस्रेयौ—पितृस्वसुरपत्यं पुमानिति पैतृष्वस्रेयः, पितृभगिन्यास्तनयस्तौ। धरणीभरणे राज्यपालने। तपश्चरणाय तपस्यां कर्तुम्। राजराजगिरिं कैलासपर्वतं। राजराजः कुबेरस्तस्य गिरिः कैलासः। 'राजराजो धनाधिपः' इत्यमरः।

(१७) असपत्नं निःशत्रुं निष्कण्टकमिति यावत्। शासति पालयति सति। मातुलाग्रजन्मनोःदर्पसारचण्डवर्मणोः। अतिक्रम्योल्लङ्घ्य। पारदार्यं परदाराभिमर्शः परद्रव्यापहरणं चौर्यं ते आदी यस्य तत्। मन्मथसमानस्य कामसदृशस्य। लावण्येन सौन्दर्येणात्तं गृहीतं चित्तं हृदयं यस्यास्ताम्। कन्याया अपरिणीतायाः दूषणं धर्षणादि तदेव दोषस्तम्। दूरीकृत्य परिहृत्य। उद्युंक्ते चेष्टते।

---

(१६) निर्जन प्रदेश होनेसे उसे अवसर प्राप्त हो गया और उसने लज्जा एवं भय छोड़कर धीरे-धीरे कहा—हे सौम्य! मालवनाथ वृद्ध होनेके कारण राज-पाटके कार्योंमें असमर्थ हो गये थे और इन्होंने राज्यसिंहासनपर अपने पुत्र दर्पसारको उज्जैनमें राज्याभिषेक करके आसीन कर दिया। कुमार दर्पसार इस सप्त-सागरा वसुन्धरापर शासनके विचार से अपने पिताकी बहन के दो धृष्ट पुत्रों (चण्डवर्मा और दारुवर्मा) को राज्य-शासन का भार सौंपकर कैलास पर्वतपर तप करने चला गया है।

(१७) शत्रुहीन समस्त राज्यका शासन करते हुए चण्डवर्मा सुखसे रहने लगा। दारुवर्मा ममेरे भाई तथा अपने बड़े भाईकी आज्ञाओंका उल्लंघन करके परस्त्रीअपहरण तथा परद्रव्याहरण करता हुआ उपद्रव मचाने लगा। कामदेवके समान सुन्दर आपपर अनुरक्ता मुझे ज्ञातकर वह एक दिन मेरे साथ बलात्कार करनेका यत्न करने लगा—कन्यारमणके पापका उसे ध्यानतक नहीं है। वह इस भयंकर पापको करनेपर उतारू होकर व्यभिचार करना चाहता है। उसी चिन्तासे मैं त्रस्त हूँ।

(१८) तस्या मनोगतम्, रागोद्रेकं मन्मनोरथसिद्ध्यन्तरायं च निशम्य बाष्पपूर्णलोचनां तामाश्वास्य दारुवर्मणो मरणोपायं च विचार्य वल्लभामवोचम्—'तरुणि, भवदभिलाषिणं दुष्टहृदयमेनं निहन्तुं मृदुरुपायः कश्चिन्मया चिन्त्यते। यक्षः कश्चिदधिष्ठाय बालचन्द्रिकां निवसति। तदाकारसंपदाशाशृङ्खलितहृदयो यः संबन्धयोग्यः साहसिको रतिमन्दिरे तं यक्षं निर्जित्य तया एकसखीसमेतया मृगाक्ष्या संलापामृतसुखमनुभूय कुशली निर्गमिष्यति, तेन चक्रवाकसंशयाकारपयोधरा विवाहनीयेति सिद्धेनैकेनावादीति पुरजनस्य पुरतो भवदीयैः सत्यवाक्यैर्जनैरसकृत्कथनीयम्।

(१८) तस्या बालचन्द्रिकायाः। मनोगतं अभिलाषम्। रागोद्रेकमनुरागातिरेकम्। मम मनोरथस्य सिद्धेरन्तरायं विघ्नं सर्वमेतन्निशम्येत्यस्य कर्म। बाष्पेति—साश्रुनयनामित्यर्थः। आश्वास्य सान्त्वयित्वा। वल्लभां प्रियां बालचन्द्रिकामिति यावत्। भवत्यास्तव अभिलाषिणमाकाङ्क्षिणम्। दुष्टं हृदयं यस्य तं दुर्जनमित्यर्थः। एनं दारुवर्माणम्। मृदुः कोमलः। अधिष्ठाय आविश्य आक्रम्येत्यर्थः। तदाकारेति तस्या बालचन्द्रिकायाः आकारसम्पदः सुन्दराकृतेराशया शृङ्खलितं बद्धं हृदयं यस्य सः। तद्रूपाकृष्टचित्त इत्यर्थः। सम्बन्धयोग्यः अनुरूपः। साहसिकः साहसं कर्त्तुं समर्थः। रतिमन्दिरे सुरतगृहे। निर्जित्य विजित्य। एकया एकमात्रया सख्या सहचर्या समेतया युक्तया। संलापामृतसुखं आलापजनितानन्दम्। कुशली अक्षतशरीरः। तेन तादृशेन पुरुषेण। चक्रवाकस्य संशयः सन्देहो यस्मिन् तादृश आकारः स्वरूपं ययोस्तादृशौ पयोधरौ कुचौ यस्याः सा। विवाहनीया परिणेया। इति इत्थम्। पुरजनस्य पुरतः—नागरिकान् प्रति। भवदीयैः भवत्पक्षीयैः। सत्यवाक्यैः प्रामाणिकैः।

(१८) उस अंगनाके मनोगत भावोंको जानकर तथा अपने ऊपर उसका प्रगाढ़ानुराग ज्ञातकर एवं अपने मनोरथमें दारुवर्माको विघ्नभूत जानकर मैंने उस दारुवर्माको मार डालनेकी युक्ति सोची और अपनी वल्लभाको आश्वासन देकर कहा—हे तरुणि ! तुम्हें बलात् चाहनेवाले उस दुष्ट दारुवर्माकी हत्याके लिए मैं कोई सरल उपाय सोच रहा हूँ। अब तुम आज जाकर लोगोंसे यह कह दो कि मुझे सिद्ध तपस्वीने बताया है कि बालचन्द्रिका के ऊपर कोई प्रेत रहता है। उसके लावण्य पर मुग्ध होकर जो कोई साहसी पुरुष उसके साथ रमणकी इच्छा रखता हो उसे चाहिये कि वह अपनी योग्यताका परिचय उसके रतिमन्दिरमें जाकर देवे। रतिमन्दिरमें प्रेतको जीतकर तथा सखीके साथ बैठी हुई उस सुन्दरीके साथ वार्तालाप करके जो कुशलतासे निवृत्त होकर आवेगा उसीके साथ चक्रवाकके समान स्तनधारिणी बालचन्द्रिकाका विवाह होगा। अनेक बार नगरमें इस बातकी प्रसिद्धि कर देनी चाहिये। यदि

तदनु दारुवर्मा वाक्यानीत्थंविधानि श्रावंश्रावं तूष्णीं यदि भिया स्थास्यति तर्हि वरम्, यदि वा दौर्जन्येन त्वया सङ्गमङ्गीकरिष्यति, तदा स भवदीयैरित्थं वाच्यः—

(१९) 'सौम्य, दर्पसारवसुधाधिपामात्यस्य भवतोऽस्मन्निवासे साहसकरणमनुचितम्। पौरजनसाक्षिकं भवन्मन्दिरमानीतया अनया तोयजाक्ष्या सह क्रीडन्नायुष्मान्यदि भविष्यति तदा परिणीय तरुणीं मनोरथान्निर्विश' इति। सोऽप्येतदङ्गीकरिष्यति। त्वं सखीवेषधारिणा मया सह तस्य मन्दिरं गच्छ। अहमेकान्तनिकेतने मुष्टिजानुपादाघातैस्तं रभसान्निहत्य पुनरपि वयस्यामिषेण भवतीमनु निःशङ्कं निर्गमिष्यामि। तदेनमुपायमङ्गीकृत्य विगतसाध्वसलज्जा भवज्जनकजननीसहोदराणां पुरत आवयोः

असकृत् पुनः पुनः। भिया भयेन। यदि वा पक्षान्तरे। दौर्जन्येन दुर्जनतया हेतुना। त्वया सहेति शेषः। सङ्गमासक्तिम्। अङ्गीकरिष्यति स्वीकरिष्यति। स दारुवर्मा। इत्थं वक्ष्यमाणम्। वाच्यः कथनीयः।

(१९) दर्पसारवसुधाधिपस्य दर्पसारनृपतेरमात्यस्य मन्त्रिणः। अस्मन्निवासे अस्माकं गृहे। साहसकरणं साहसकार्यानुष्ठानम्। पौरजनाः साक्षिणो यस्मिंस्तद्यथा तथेति क्रियाविशेषणम्। पुरजनानां समक्षमित्यर्थः। भवतो मन्दिरं गृहम्। तोयजे कमले इवाक्षिणी यस्यास्तया। क्रीडन् विहरन्। आयुष्मान् कुशली। परिणीय विवाह्य। निर्विश उपभुंक्ष्व। सोऽपि दारुवर्माऽपि। एतत् यन्मयोक्तमिति भावः। त्वं बालचन्द्रिका। मया पुष्पोद्भवेनेत्यर्थः। तस्य दारुवर्मणः। एकान्तनिकेतने निर्जने गृहे। मुष्ट्या जानुना पादेन च ये आघाताः प्रहारास्तैः। रभसाद् वेगात्। वयस्यामिषेण सखीव्याजेन। भवतीमनु तव पश्चात्। विगते अपगते साध्वसलज्जे भयत्रपे

दारुवर्मा इस बातसे भयान्वित हो जाय तो ठीक है। और यदि वह न मानें तथा उत्पात मचावे तो तुम्हारे घरके लोग उससे यह कह दें—

(१९) हे सौम्य! आप राजा दर्पसारके अमात्य हैं। हमारे गृहपर आपको ऐसा करना अनुचित है। नगरवासियोंके सामने इस पद्मलोचनाको अपने यहां ले जाकर यदि सुखसे रह सकें तो रहें और इसके साथ परिणय भी वहीं कर लें तथा मनोभिलाष पूर्ण करें। वह अवश्य इस बातको स्वीकार कर लेगा तब उस समय सखीके वेषमें मैं तुम्हारे साथ चलूँगा तुम मेरे साथ उसके यहां चलनेको राजी हो जाना। समय पाकर एकान्तमें मैं उसे मुक्कों-लातों-थप्पड़ों आदिके प्रहारोंसे मार डालूंगा। फिर उसी वेशमें तुम्हारी सखीके रूपमें बाहर चला आऊँगा। मेरी इस युक्तिको तुम स्वीकार कर लो और अपने जननी-जनक-भाई आदिसे अपनी प्रगाढ़

प्रेमातिशयमाख्याय सर्वथास्मत्परिणयकरणेताननुनयेः । तेऽपि वंशसंपल्लावण्याढ्याय यूने मह्यं त्वां दास्यन्त्येव । दारुवर्मणो मारणोपायं तेभ्यः कथयित्वा तेषामुत्तरमाख्येयं मह्यम्' इति ।

(२०) सापि किञ्चिदुत्फुल्लसरसिजानना मामब्रवीत्—'सुभग, क्रूरकर्माणं दारुवर्माणं भवानेव हन्तुमर्हति । तस्मिन्हते सर्वथा युष्मन्मनोरथः फलिष्यति । एवं क्रियताम् । भवदुक्तं सर्वमहमपि तथा करिष्ये' इति मामसकृद्विवृत्तवदना विलोकयन्ती मन्दं मन्दमगारमगात् । अहमपि बन्धुपालमुपेत्य शकुनज्ञात्तस्मात् 'त्रिंशद्दिवसानन्तरमेव भवत्सङ्गः संभविष्यति' इत्यश्रृणवम् । तदनु मदनुगम्यमानो बन्धुपालो निजावासं प्रविश्य मामपि निलयाय विससर्ज ।

यस्याः सा । त्वमिति शेषः । प्रेम्णोऽनुरागस्य अतिशयमाधिक्यम् । सर्वथा सर्वप्रकारेण । तान् जनकादीन् । अनुनयेः प्रीणयेः । वंशसम्पदा कुलगौरवेण लावण्येन सौन्दर्येण चाढ्याय सम्पन्नाय । यूने तरुणाय । तेभ्यो जनकादिभ्यः । तेषामुत्तरं—ते एतत् सर्वं श्रुत्वा यत् कथयिष्यन्ति तत् । आख्येयं कथनीयम् ।

(२०) किञ्चिदुत्फुल्लमीषद्विकसितं सरसिजं कमलमिवाननं वदनं यस्याः सा । सुभग सौम्येति सम्बोधनम् । युष्मन्मनोरथः मत्पाणिग्रहणरूपः । तथा=यथा भवतोपदिष्टम् । असकृत्पुनः पुनः । विवृत्तं परावृत्तं वदनं यया सा । पश्चात् स्थितं मामवलोकयितुमिति भावः । अगारं गृहम् । शकुनज्ञात् निमित्तज्ञानकुशलात् । तस्मात् बन्धुपालात् । भवत्सङ्गः भवता सह मिलनम् । मदनुगम्यमानः मया अनुस्त्रियमाणः । निजावासं स्वगृहम् । निलयाय (मम) निलयं गन्तुम् । निलयो गृहम् । विससर्ज विसृष्टवान् प्रेषयामासेति यावत् ।

प्रीतिका वृत्त सुनाकर हम लोगोंमें विवाह हो जाय ऐसी विनती करो । वे लोग तुम्हारी विनयपर तथा मेरी कुलीनता और सौन्दर्यपर प्रसन्न हो जायेंगे और तुम्हारा विवाह मेरे साथ कर देंगे । उन लोगोंसे दारुवर्माके मारनेकी युक्ति भी बतला दो और मेरी इस युक्तिपर जो उनके विचार हों वे भी मुझे बतला देना ।

(२०) यह सुनकर उसने मुखकमलको विकसित करके कहा—हे सुभग ! उस क्रूरकर्मी दारुवर्माको आप ही मार सकते हैं । आप यदि उस दुराचारीको मार डालें तो सभी मनोकामनाएँ आपकी पूर्ण होवें । इसी रीतिपर सब कार्य आप करें । मैं भी आपके आदेशानुसार सारे कार्य कर दूँगी । ऐसा कहकर वह विकसित नयनोंसे मुझे अनेकबार अवलोकन करती हुई वहांसे चली गयी । मैं भी वहांसे लौटकर शकुनज्ञ बन्धुपालके समीप आया तथा उसने शुभ शकुन देखकर मुझसे कहा—तीस दिवसोंके पश्चात् आपके सहयोगियोंका आपसे सम्मिलन होने

(२१) मन्मायोपायवागुरापाशलग्नेन दारुवर्मणा रतिमन्दिरे रन्तुं समाहूता बालचन्द्रिका तं गमिष्यन्ती दूतिकां मन्निकटमभिप्रेषितवती । अहमपि मणिनूपुरमेखलाकङ्कणकटकताटङ्कहारक्षौमकज्जलं वनितायोग्यं मण्डनजातं निपुणतया तत्तत्स्थानेषु निक्षिप्य सम्यगङ्गीकृतमनोज्ञवेषो वल्लभया तया सह तदागारद्वारोपान्तमगच्छम् ।

(२२) द्वाःस्थकथितास्मदागमनेन सादरं विहिताभ्युद्गतिना तेन द्वारोपान्तनिवारिताशेषपरिवारेण मदन्विता बालचन्द्रिका संकेतागारमनीय-

(२१) मन्मायेति—मम मायया कपटेन य उपायः स एव वागुरापाशो बन्धनरज्जुस्तत्र लग्नो बद्धस्तेन । मया तस्य विनाशार्थं ये कपटोपाया रचितास्तान् लङ्घितुमसमर्थेनेति भावः । तं तत्समीपम् । गमिष्यन्ती प्रस्थास्यमाना । मणिनूपुरो मञ्जीरः, मेखला रशना, कङ्कणकटके वलयभेदौ, ताटङ्कं कर्णभूषणं, हारो मुक्तासरः, क्षौमं दुकूलम्, कज्जलमञ्जनञ्चैतत्सर्वं पादादिभूषणम् । वनितायोग्यं स्त्रीजनोचितम् । निपुणतया कौशलेन । तत्तत्स्थानेषु तत्तदङ्गेषु । निक्षिप्य परिधाय । सम्यग् निपुणं यथा स्यात्तथा अङ्गीकृतः स्वीकृतो धृत इति यावत्, मनोज्ञो मनोरमो वेषो येन सः । स्त्रीवेषं विधृत्येत्यर्थः । वल्लभया प्रियया । तया बालचन्द्रिकया । तदागारेति—तस्य दारुवर्मणः आगारद्वास्य गृहद्वारस्य उपान्तं समीपम् ।

(२२) द्वाःस्थेति—द्वास्थैर्दौवारिकैः कथितं विज्ञापितं अस्माकमागमनं यस्मै तेन । विहिता कृता अभ्युद्गतिरभ्युत्थानं येन तेन । दारुवर्मणा । द्वारोपान्ते द्वारसमीपे निवारिता रुद्धाः अशेषा निखिलाः परिवाराः परिजना येन तेन । मदन्विता मया अन्विता—मत्पुरोवर्त्तिनीत्यर्थः । संकेतागारं पूर्वनिर्दिष्टस्थानम् । अनीयत नीता । अनी-

का योग है । तत्पश्चात् मेरे पीछे-पीछे बन्धुपाल वहांसे आया और वह अपने घर गया तथा मुझे भी अपने घर जानेकी अनुमति दी ।

(२१) मेरे युक्तिरूपी मायाजालके पाशोंमें बँधकर वह दारुवर्मा बालचन्द्रिकाके साथ रमण करनेके लिए रतिमन्दिरमें उद्यत हो गया तथा उसने उसे वहांपर बुलाया । जब वह जानेको तैयार हो गयी तब अपनी एक दासी द्वारा उसने मुझे बुलवाया । मैं भी वनिताओंके अनुरूप आभूषणोंसे पूर्णरूपेण अलंकृत हो गया अर्थात्—रत्नजटित नूपुर, करधनी, कंकण, बिजायट, कनफूल, हार, कण्ठा आदि पहनकर एवं आंखोंमें काजल लगाकर बढ़िया रेशमी वस्त्र धारणकर अपनी सखी बालचन्द्रिकाके साथ मनोज्ञ वेषसे दारुवर्माके विहारमन्दिरके द्वारतक पहुँचा ।

(२२) दारुवर्माको द्वारपरसे अपने आनेकी सूचना संकेतसे दे दी । इसपर दारुवर्माने खड़े होकर भीतर-बाहर तथा द्वारके इधर-उधरके लोगोंको वहाँसे हटा दिया । तत्पश्चात् मेरे आगे

त । नगरव्याकुलां यक्षकथां परीक्षमाणो नागरिकजनोऽपि कुतूहलेन दारुवर्मणः प्रतीहारभूमिमगमत् ।

(२३) विवेकशून्यमतिरसौ रागातिरेकेण रत्नखचितहेमपर्यङ्के हंसतूलगर्भशयनमानीय तरुणीं तस्यै मह्यं तमिस्रासम्यगनवलोकितपुंभावाय मनोरमस्त्रीवेषाय च चामीकरमणिमयमण्डनानि सूक्ष्माणि चित्रवस्त्राणि कस्तूरिकामिलितं हरिचन्दनं कर्पूरसहितं ताम्बूलं सुरभीणि कुसुमानीत्यादिवस्तुजातं समर्प्य मुहूर्तद्वयमात्रं हासवचनैः संलपन्नतिष्ठत् ।

यतेति णीञ् प्रापणे इत्यस्य धातोः कर्मणि लङ् । द्विकर्मकत्वाच्च बालचन्द्रिकेत्यत्र मुख्ये कर्मणि प्रथमा । नगरव्याकुलां पुरव्यासाम् । परीक्षमाणः सत्या न वेति निर्धारयन् । प्रतीहारभूमिं द्वारदेशम् ।

(२३) विवेकेन सदसद्विचारेण शून्या रहिता मतिर्बुद्धिर्यस्यासौ । असौ दारुवर्मा । रागातिरेकेण अनुरागातिशयेन । रत्नैर्मणिभिः खचितः स्यूतः यो हेम्नः सुवर्णस्य पर्यङ्कः खट्वा तस्मिन् । हंसवत् स्वच्छस्तूलः हंसतूलः, स गर्भेऽभ्यन्तरे यस्य तादृशं शयनं शय्याम् । आनीय आरोप्य । तरुणीमिति शेषः । तस्यै तरुण्यै बालचन्द्रिकायै । मह्यं स्त्रीवेषधारिणे पुष्पोद्भवायेत्यर्थः । तमिस्रेति—तमिस्रायां तमस्यां रात्रौ सम्यक् स्पष्ट अनवलोकितः अदृष्टः पुम्भाव पुरुषभावो यस्य तस्मै । मनोरमः सुन्दरः स्त्रीवेषो यस्य तस्मै । विशेषणद्वयमेतत् मह्यमित्यस्य सम्प्रदाने चतुर्थी । चामीकरमणिमयानि सुवर्णरत्नविकाराणि मण्डनानि भूषणानि । सूक्ष्माणि श्लक्ष्णानि । चित्रवस्त्राणि मनोरमवासांसि । कस्तूरिकामिलितं मृगमदवासितम् । हरिचन्दनं गन्धद्रव्यविशेषः सुरभीणि सुगन्धीनि । वस्तुजातं द्रव्यसमूहम् । समर्प्य दत्त्वा । हासवचनैः हास्ययुक्तवाक्यैः । संलपन् आलापं कुर्वन् ।

चलती हुई बालचन्द्रिका सहित मुझे भीतर ले गया । मुख्य फाटकपर व्याकुल नागरिकोंकी भीड़ एकत्र थी—यह ज्ञात करनेके लिए प्रेत क्या करता है ?

(२३) विवेकशून्यमतिवाले दारुवर्माने मैथुनकी प्रबलेच्छासे उस बालचन्द्रिकाको मणियोंसे जड़ित एक सुवर्णके पलंगपर बिठाया । जिसपर हंसके पंखोंके भरे गद्दे बिछे थे । पुनः रातमें मुझे (मैं पुरुष हूँ ऐसा न पहचानकर) और मेरी सखीको अर्थात्—मनोहर दोनों रमणियोंको अनेक प्रकारके आभूषण, महीन कपड़े, कस्तूरीमिश्रित चन्दन, कर्पूरसे सुवासित ताम्बूल (पान), सुगन्धित पुष्प तथा इत्र आदि पदार्थ भेट किये । फिर दो घड़ी तक हास-परिहास करते वहाँपर बैठा रहा ।

(२४) ततो रागान्धतया सुमुखीकुचग्रहणे मतिं व्यधत्त। रोषारुणितोऽहमेनं पर्यङ्कतलान्निःशङ्को निपात्य मुष्टिजानुपादघातैः प्राहरम्। नियुद्धरभसविकलमलंकारं पूर्ववन्मेलयित्वा भयकम्पितां नताङ्गीमुपलालयन्मन्दिराङ्गणमुपेतः साध्वसकम्पित इवोच्चैरकूजमहम्—'हा, बालचन्द्रिकाधिष्ठितेन घोराकारेण यक्षेण दारुवर्मा निहन्यते। सहसा समागच्छत। पश्यतेमम्' इति।

(२५) तदाकर्ण्य मिलिता जनाः समुद्यद्बाष्पा हाहानिनादेन दिशो बधिरयन्तः 'बालचन्द्रिकामधिष्ठितं यक्षं बलवन्तं शृण्वन्नपि दारुवर्मा

---

(२४) तत इति। रागेण कामजनितविषयाभिलाषेण अन्धतया मत्ततया। हेतौ तृतीया। सुमुख्याः सुवदनायाः बालचन्द्रिकायाः कुचयोः स्तनयोः ग्रहणे पीडने। मतिं बुद्धिम् अभिलाषमिति यावत्। व्यधत्त अकरोत्। रोषेण क्रोधेन अरुणितः रक्तवर्णः। अहं वक्ता पुष्पोद्भव इत्यर्थः। एनं दारुवर्माणम्। पर्यङ्कतलात् खट्वायाः। मुष्टेः जानुनोः पादयोश्च घातैः प्रहारैः। नियुद्धेति–नियुद्धस्य बाहुयुद्धस्य रभसेन वेगेन विकलं विपर्यस्तम्। अलङ्कारं भूषणम्। मया धृतमिति शेषः। पूर्ववत् प्रागिव। मेलयित्वा यथास्थानं निवेश्य भयकम्पितां भयेन कम्पवतीम्। नताङ्गीं बालचन्द्रिकाम्। उपलालयन् आश्वासयन् सान्त्वयन् वा। मन्दिरस्य दारुवर्मगृहस्य अङ्गणं चत्वरम्। उपेत उपगतः प्राप्त इत्यर्थः। साध्वसेन भयेन कम्पित इव न तु सत्यमेव कम्पित इति भावः। उच्चैरकूजम्—उच्चैः स्वरेण आक्रन्दम्। आक्रन्दनस्य प्रकार माह—हेत्यादि—हा इति खेदसूचकमव्ययम्। बालचन्द्रिकाम् अधिष्ठितः आक्रम्य स्थितः तेन। घोरो भयङ्कर आकारः स्वरूपं यस्यासौ तेन। सहसा सत्वरम्।

(२५) मिलिताः तत्र सम्मिलता उपस्थिता इति यावत्। समुद्यद् उद्गच्छद् बाष्पं नेत्रजलं येषां ते। हाहानिनादेन हाहेति शब्देन। दिशः काष्ठाः। द्वितीयाबहु-

---

(२४) फिर कामपीड़ासे मतवाला वह अन्ध होकर उस सुमुखिके स्तनोंको ग्रहण करनेको उद्यत हुआ। उसकी इस हरकतपर मुझे क्रोध आ गया। निश्शंक होकर मैंने लाल-लाल आंखे करके उसे उठाकर पलंगके नीचे पटक दिया और घूसों–लातोंके प्रहारोंसे मार डाला। लड़ाईमें मेरे अलंकार अव्यवस्थित हो गये थे उन्हें व्यवस्थित करके भयसे काँपनेवाली उस सखीको प्रीतिसे सान्त्वना देकर मन्दिरके आंगनमें आ पहुंचा। तब भयसे घबरायी हुई आवाजमें मैं चिल्लाने लगा। 'हा, हा, गजब हो गया। बालचन्द्रिकाके सिरपर रहनेवाला भयंकर प्रेत दारुवर्माको मारे डालता है। दौड़ो लोगो, दौड़ो, जल्दी आओ, इस प्रेतको मारो।

(२५) मेरी इस चिल्लाहटको सुनकर आँखोंमें आँसुओंको भरे हुए हाहाकार ध्वनिसे दिशाओंको बहिरी करते हुए लोग परस्पर कहने लगे 'इस दारुवर्माके लिए प्रलाप वृथा है। यद्यपि

मदान्धस्तामेवायाचत। तदसौ स्वकीयेन कर्मणा निहतः। किं तस्य विलापेन' इति मिथो लपन्तः प्राविशन्। कोलाहले तस्मिंश्चटुललोचनया सह नैपुण्येन सहसा निर्गतो निजावासमगाम्।

(२६) ततो गतेषु कतिपयदिनेषु पौरजनसमक्षं सिद्धादेशप्रकारेण विवाह्य तामिन्दुमुखीं पूर्वसंकल्पितान्सुरतविशेषान्यथेष्टमन्वभूवम्। बन्धुपालशकुननिर्दिष्टे दिवसेऽस्मिन्निर्गत्य पुराद्बहिर्वर्तमानो नेत्रोत्सवकारि भवदवलोकनसुखमप्यनुभवामि' इति।

(२७) एवं मित्रवृत्तान्तं निशम्याम्लानमानसो राजवाहनः स्वस्य च

वचनस्य रूपम् बधिरयन्तः इत्यस्य कर्म। बधिरयन्तः बधिरा इव कुर्वन्तः—अन्यशब्दग्रहणेऽसमर्थाः कुर्वन्त इति यावत्—उच्चैराक्रोशन्त इति भावः। बधिरयन्त इति नामधातो रूपम्। शृण्वन्नपि जानन्नपि। मदान्धः मदगर्वितः। तामेव बालचन्द्रिकामेव। स्वकीयेन कर्मणा स्वदोषेण। मिथः परस्परम्। लपन्तः कथयन्तः। कोलाहले कलकले सञ्जाते इति शेषः। चटुले चपले लोचने यस्यास्तया। बालचन्द्रिकयेत्यर्थः। नैपुण्येन दक्षतया। सहसा सत्वरम्।

(२६) पौरजनानां नागरिकाणां समक्षं सम्मुखे। सिद्धस्य सिद्धपुरुषस्यादेशः कथनं तस्य प्रकारस्तेन। यथा सिद्धेनादिष्टं तथैवेत्यर्थः। पूर्वसंकल्पितान् प्रागेव मनस ईप्सितान्। सुरतविशेषान् क्रीडाविशेषान्। यथेष्टं यथाभिलाषम्। अन्वभूवम्—अनुभूतवान् अहमिति शेषः। बन्धुपालस्य तदाख्यमित्रस्य शकुनेन शुभसूचकेन निर्दिष्टे कथिते। पुरात् नगरात्। बहिः बहिःप्रदेशे। नेत्रोत्सवकारि नयनानन्दजनकम्। भवतः तव राजवाहनस्येति शेषः। अवलोकनस्य दर्शनस्य सुखमानन्दम्।

(२७) अम्लानेति—अम्लानं स्वच्छं मानसं मनो यस्यासौ प्रफुल्लहृदय इत्यर्थः।

यह मदान्ध पूर्वसे ही जानता था कि बालचन्द्रिकाके सिरपर प्रेत रहता है फिर भी इसने न माना और अपने ही कुकृत्यसे यह फल भोगा—अपने ही काले कृत्यसे यह मारा गया। अब क्यों खेद करें। ऐसा कहते हुए वे लोग अन्दर प्रविष्ट हुए। उसी कोलाहलवाले समुदायमें मैं भी उस चंचल नयनीके साथ चालाकीसे बाहर आकर अपने वासस्थानको चला आया।

(२६) कुछ दिवसोंके व्यतीत होनेके पश्चात् उस तपस्वीके बताये हुए तरीकेसे मैंने उस चन्द्रमुखीके साथ विवाह कर लिया। पूर्व संकल्पित मनोभिलाषोंको यथेच्छापूर्वक भोगा—उसके साथ नाना प्रकारके भोग-विलास किये। फिर बन्धुपालके द्वारा उपदेशित शकुनसे आज नगरके बाहर आ गया और नयनाभिराम आपके दर्शनकर सुखका अनुभव किया।

(२७) इस प्रकारसे मित्रके वृत्तान्तको श्रवणकर राजवाहनका चित्त प्रमुदित हो गया तथा उसने अपने और सोमदत्तके चरितोंको भी उससे यथावत् कह दिया। तब सोमदत्तसे

सोमदत्तस्य च वृत्तान्तमस्मै निवेद्य सोमदत्तम् 'महाकालेश्वराराधनानन्तरं भवद्वल्लभां सपरिवारां निजकटकं प्रापय्यागच्छ' इति नियुज्य पुष्पोद्भवेन सेव्यमानो भूस्वर्गायमानमवन्तिकापुरं विवेश । तत्र 'अयं मम स्वामिकुमारः' इति बन्धुपालादये बन्धुजनाय कथयित्वा तेन राजवाहनाय बहुविधां सपर्यां कारयन्सकलकलाकुशलो महीसुरवर इति पुरि प्रकटयन्पुष्पोद्भवोऽमुष्य राज्ञो मज्जनभोजनादिकमनुदिनं स्वमन्दिरे कारयामास ।

इति श्रीदण्डिनः कृतौ दशकुमारचरिते पुष्पोद्भवचरितं नाम चतुर्थ उच्छ्वासः ।



अस्मै पुष्पोद्भवाय । महाकालेश्वरस्य उज्जयिनीस्थमहादेवस्याराधनस्य पूजायाः अनन्तरं पश्चात् । भवतस्तव सोमदत्तस्येति शेषः । वल्लभां पत्नीम् । सपरिवारां सपरिजनाम् । निजकटकं स्ववसतिम् । प्रापय्य नीत्वा । नियुज्य आदिश्य सोमदत्तमिति शेषः । भूस्वर्गेति-भुवि पृथिव्यां स्वर्ग इवाचरदिति भूस्वर्गायमाणं=स्वर्गतुल्यमित्यर्थः । स्वामिकुमारः प्रभुपुत्रः । बन्धुपाल आदिर्यस्य तस्मै । तेन बन्धुजनेन = प्रयोज्यकर्त्रा । सपर्यां पूजाम् । सकलासु कलासु विद्यासु कुशलः पटुः । महीसुरवरः द्विजश्रेष्ठः । इति एतत् । पुरि नगरे । प्रकटयन् प्रकाशयन् । राजवाहनस्य नृपत्वं गोपयन्निति भावः । मज्जनभोजनादिकं स्नानाशनादिकम् । अनुदिनं प्रतिदिवसम् । स्वमन्दिरे निजगृहे पुष्पोद्भवस्येति शेषः ।

इति श्रीताराचरणभट्टाचार्यकृतायां बालविबोधिनीसमाख्यायां दशकुमारचरितव्याख्यायां चतुर्थ उच्छ्वासः ।



कहा—अपनी पत्नी तथा कुटुम्बी जनोंको, महाकालके पूजनके पश्चात् , यथास्थान पहुँचाकर, शीघ्र मेरे पास आओ । इस रीतिसे सोमदत्तको आदेश देकर राजवाहन, पुष्पोद्भवके साथ-साथ भूमण्डलपर स्वर्गके सदृश सुन्दर अवन्तिकापुरीमें आया । वहां आनेपर पुष्पोद्भवने अपने मित्रों बन्धुपाल आदिसे कहा—ये मेरे स्वामिपुत्र हैं। इस बातको सुनकर उन लोगोंने अनेक प्रकारके पदार्थोंके द्वारा राजवाहनका स्वागत सत्कार किया तथा पूजन किया । अपने नगरमें राजवाहनका परिचय कराते हुए लोगोंसे कहा—ये समस्त कलामें प्रवीण ब्राह्मण हैं—ऐसा कहकर राजवाहनको नगरवासियोंसे गुप्त रखा । फिर अपने बृहद् राजमन्दिरमें उसे स्नान भोजन नित्य कराने लगा तथा सुखसे निवास करने लगा ।

इस प्रकारसे चतुर्थोच्छ्वासकी बालक्रीड़ा नामक हिन्दी टीका समाप्त हुई ।



पञ्चमोच्छ्वासः

(१) अथ मीनकेतनसेनानायकेन मलयगिरिमहीरुहनिरन्तरावासिभुजङ्गमभुक्तावशिष्टेनेव सूक्ष्मतरेण धृतहरिचन्दनपरिमलभरेणेव मन्दगतिना दक्षिणानिलेन वियोगिहृदयस्थं मन्मथानलमुज्ज्वलयन्, सहकारकिसलयमकरन्दास्वादनरक्तकण्ठानां मधुकरकलकण्ठानां काकलीकलकलेन दिक्चक्रं वाचालयन्, मानिनीमानसोत्कलिकामुपनयन्, माकन्दसिन्दुवार-

(१) अथेति। अथानन्तरं वसन्तसमयः समाजगामेत्यग्रिमेणान्वयः। मीनेति—मीनकेतनस्य कामस्य सेनायाः सैन्यस्य नायकः प्रधानवीरः सेनापतिरित्यर्थः, तेन। मलयानिलस्य अत्यन्तकामोद्दीपकत्वान्नायकत्वमुक्तम्। मलयगिरेर्मलयपर्वतस्य महीरुहेषु वृक्षेषु निरन्तरं निरवच्छिन्नं निबिडमिति यावत्, आवासिनां वासं कुर्वतां भुजङ्गमानां सर्पाणां भुक्तस्य खादितस्यावशिष्टेन अतिरिक्तेनेव, अत एव सूक्ष्मतरेण मन्दतरेण। भुजङ्गमानां पवनाशनत्वाद् यावान् वायुर्मलयाचलाच्चलितस्तस्य प्रचुरोंऽशस्तैः खादितस्ततोऽवशिष्टः अत एव मन्दतर इति भावः। मन्दतरत्वे हेतुरुत्प्रेक्षितः। धृतेति—धृतः स्वीकृतो हरिचन्दनस्य वृक्षविशेषस्य परिमलभर आमोदातिशयो येन तेनेव मन्दगतिना धीरेण। भाराक्रान्तत्वं मन्दगतित्वे हेतुः स चोत्प्रेक्षितः। गृहीतभारस्य मन्दगतित्वञ्च स्वभावसिद्धम्। दक्षिणानिलेन मलयवायुना करणेन। वियोगिनां विरहिणां हृदयेषु चित्तेषु तिष्ठतीति वियोगिहृदयस्थं विरहिहृद्गतम्। मन्मथानलं कामाग्निम्। उज्ज्वलयन् उद्दीपयन्—उज्ज्वलयन्नित्यादि शत्रन्तपदानि वसन्तसमय इत्यस्य विशेषणानि, सहकारेति—सहकाराणामाम्रतरूणां किसलयमकरन्दयोः पल्लवपुष्परसयोः स्वादनेन भक्षणेन रक्तो मधुररागयुक्त इति यावत् कण्ठस्वरो येषां तेषाम्। मधुकरा भ्रमराश्च कलकण्ठाः कोकिलाश्च ते तेषाम्। काकलीकलकलेन काकलीकोलाहलेन। दिशां चक्रं मण्डलम्। वाचालयन् मुखरयन्। मानिनीनां मानवतीनां मानसस्य मनस उत्कलिकामुत्कण्ठाम्। उपनयन् प्रापयन्। माकन्दः सहकारश्च सिन्दुवारो निर्गुण्डी च रक्ताशोकश्च किंशुकः पलाशश्च तिलकस्तिल-

(१) अनन्तर कुछ समय बाद वसन्त ऋतु आकर उपस्थित हो गयी जिसका सेनाधिप स्वयं मीनकेतन कामदेव था। मलय पर्वतपरके चन्दनके वृक्षोंपर निवास करनेवाले सांपोंके पीनेसे अवशिष्ट तथा चन्दनकी सुगन्धसे मिश्रित पवन शनैः-शनैः चलता हुआ दक्षिण पवनके साथ विरहियोंके अन्तःकरणोंमें कामोद्दीपन कर रहा था। आमकी मञ्जरियोंके परागोंका आस्वादन कर लाल कण्ठवाले कोकिलोंकी मधुर ध्वनिसे तथा भ्रमरोंकी गुञ्जार से कामदेवने दिशाओंको मुखरित कर दिया था और मानिनी अंगनाओंके हृदयोंको उत्कण्ठित कर दिया था! आम, निर्गुण्डी, रक्ताशोक, पलाश तथा तिलकादि वृक्षोंको अंकुरित करके मदन-

रक्ताशोककिंशुकतिलकेषु कलिकामुपपादयन्, मदनमहोत्सवाय रसिकमनांसि समुल्लासयन्, वसन्तसमयः समाजगाम ।

(२) तस्मिन्नतिरमणीये कालेऽवन्तिसुन्दरी नाम मानसारनन्दिनी प्रियवयस्यया बालचन्द्रिकया सह नगरोपान्तरम्योद्याने विहारोत्कण्ठया पौरसुन्दरीसमवायसमन्विता कस्यचिच्चूतपोतकस्य छायाशीतले सैकततले गन्धकुसुमहरिद्राक्षतचीनाम्बरादिनानाविधेन परिमलद्रव्यनिकरेण मनोभवमर्चयन्ती रेमे ।

(३) तत्र रतिप्रतिकृतिमवन्तिसुन्दरीं द्रष्टुकामः काम इव वसन्तसहायः पुष्पोद्भवसमन्वितो राजवाहनस्तदुपवनं प्रविश्य तत्र तत्र मलयमा-

---

वृक्षश्च ते तेषु । कलिकां कोरकम् । उपपादयन् जनयन् । मदनमहोत्सवाय मदनमहोत्सवार्थम् । रसिकानां कामिजनानां मनांसि मानसानि । उल्लासयन् उत्साहयन् ।

(२) तस्मिन् पूर्वोक्ते । काले वसन्त इत्यर्थः । मानसारस्य तदाख्यमालवेश्वरस्य नन्दिनी कन्या । अवन्तिसुन्दरीति नामधेया । प्रियवयस्यया प्रियसख्या । नगरस्योपान्ते सीमायां यद् रम्यं मनोहरमुद्यानमुपवनं तत्र । विहारार्थं क्रीडार्थमुत्कण्ठया व्याकुलतया । पुरे भवाः पौराश्च ताः सुन्दर्यस्तासां पौराङ्गनानां समवायेन मण्डलेन समन्विता युक्ता । चूतपोतकस्य शिशुसहकारस्य । छायया शीतले तस्मिन् । सैकततले सिकतामयप्रदेशे । गन्धश्चन्दनं, कुसुमं पुष्पं, हरिद्रा, अक्षतास्तण्डुलाः, चीनाम्बरं सूक्ष्मवस्त्रं इत्यादिनानाविधेन अनेकप्रकारेण । परिमलद्रव्यनिकरेण गन्धद्रव्यसमूहेन । मनोभवं कामम् । रेमे चिक्रीड ।

(३) तत्र तस्मिन् समये । रतेः कामपत्न्याः प्रतिकृतिः प्रतिमा ताम् । वसन्तः सहायो यस्य स वसन्तद्वितीय इत्यर्थः । मलयेति—मलयमारुतेन दक्षिणानिलेन

महोत्सव मनानेके निमित्त कामदेवने रसिकोंके हृदयोंमें एक विशेष रीतिका उल्लास ला दिया । इस तरहसे वसन्त काल जब आ पहुँचा तब—

(२) ऐसी सुखदायी ऋतुमें राजा मानसारकी कन्या अवन्तिसुन्दरी अपनी प्रिय सहचरी बालचन्द्रिकाके साथ विहार करनेकी अभिलाषासे नगरके समीप उपवनमें आयी । उसके साथ नगरकी महिलाएँ भी थीं । उस उपवनमें आकर उसने एक छोटे आमके वृक्षके नीचे, रोरी, चन्दन, फल, फूल, हल्दी, अक्षत तथा चीनदेशीय रेशमी वस्त्रों के द्वारा सुगन्धित द्रव्योंके सहित विधिवत् आनन्दके साथ कामदेवका पूजन किया और क्रीड़ा करने लगी—सखियोंसे विनोद करने लगी ।

(३) कामदेवके समान मनोज्ञ राजवाहन भी पुष्पोद्भवके साथ उसी समय कामदेवकी पत्नीके समान मनोहर अवन्तिसुन्दरीको देखने जब वहाँपर आ गये तब ऐसा मालूम होता था

रुतान्दोलितशाखानिरन्तरसमुद्भिन्नकिसलयकुसुमफलसमुल्लसितेषु रसालतरुषु कोकिलकीरालिकुलमधुकराणामालापाञ्श्रावंश्रावं किञ्चिद्विकसदिन्दीवरकह्लारकैरवराजीवराजीकेलिलोलकलहंससारसकारण्डवचक्रवाकचक्रवालकलरवव्याकुलविमलशीतलसलिलललितानि सरांसि दर्शंदर्शममन्दलीलया ललनासमीपमवाप । ८५

(४) बालचन्द्रिकया 'निःशङ्कमित आगम्यताम्' इति हस्तसंज्ञया समाहूतो निजतेजोनिर्जितपुरुहूतो राजवाहनः कृशोदर्या अवन्तिसुन्दर्या अन्तिकं समाजगाम ।

आन्दोलितासु कम्पितासु शाखासु निरन्तरं निरवच्छिन्नं समुद्भिन्नैर्विकसितैः किसलयकुसुमफलैः पल्लवपुष्पफलैः समुल्लसितेषु शोभितेषु । रसालतरुषु आम्रवृक्षेषु । कोकिलेति—कोकिलाः पिकाश्च कीराः शुकाश्च अलिकुलं भ्रमरसमूहश्च मधुकरा भ्रमराश्च ते तेषाम् । आलापान् शब्दान् । श्रावं श्रावं वारं वारं श्रुत्वा । आभीक्ष्ण्ये णमुल् किञ्चिदिति—किञ्चिदीषद् विकसन्तीषु प्रस्फुटन्तीषु इन्दीवराणां, कह्लाराणां सौगन्धिकानां, कैरवाणां कुमुदानां राजीवानां कमलानां च राजीषु श्रेणिषु केलिलोलाः क्रीडासक्ता ये कलहंसाः कादम्बाः सारसाः पुष्कराह्वाः कारण्डवा मद्गवः—(मद्गुः कारण्डवः प्लव इत्यमरः) चक्रवाकाश्चक्राह्वाश्च तेषां यच्चक्रवालं मण्डलं तस्य कलरवेण अव्यक्तमधुरध्वनिना व्याकुलानि व्याप्तानि विमलानि स्वच्छानि शीतलानि शिशिराणि यानि सलिलानि जलानि तैर्ललितानि मनोरमाणि । सरांसि सरोवराणि दर्शं दर्शं वारं वारं दृष्ट्वा । अत्रापि पूर्ववण्णमुल् । ललनासमीपं अवन्तिसुन्दरीनिकटम् । अवाप प्राप्तवान् राजवाहन इति शेषः ।

(४) निःशङ्कं निर्भयम् । हस्तसंज्ञया करचेष्टया । समाहूत आकारितः । निजतेजसा स्वप्रतापेन निर्जितः पराजितः पुरुहूत इन्द्रो येन सः । कृशमुदरं यस्याः सा कृशोदरी तस्याः क्षीणमध्याया इत्यर्थः ।

मानो वसन्तके साथ कामदेव अपनी स्त्री रतिको देखने आया हो । मलय पवनके झोकोंसे झूमते और नवीन-नवीन कोंपलोंके पुष्पोंके, और फलोंके भारसे दबे आमोंके पेड़ोंपर बैठी कोयलों और सुग्गों की ध्वनियाँ तथा भ्रमरोंकी सुरीली तानोंसे कानोंको सुख देते हुए एवं अधखिले नीले तथा सफेद कमलों कुमुदिनियों और साधारण पद्मोंपर केलि करते हुए राजहंस, सारस, चक्रवाकोंके समुदायके मधुर मधुर गानोंसे व्याकुल निर्मल तथा शीतल जलवाले तालाबों की शोभाको बार-बार निरखते हुए वे लोग अवन्तिसुन्दरीके समीप जा पहुँचे ।

(४) दूरसे ही बालचन्द्रिकाने हाथके संकेतसे राजवाहनको पुकारकर कहा—निडर होकर चले आइये । उसके इशारेपर अपने तेजसे इन्द्रको पराजित करनेवाले राजवाहन उस

(५) या वसन्तसहायेन समुत्सुकतया रतेः केलीशालभञ्जिकाविधित्सया कञ्चन नारीविशेषं विरच्यात्मनः क्रीडाकासारशारदारविन्दसौन्दर्येण पादद्वयम्, उद्यानवनदीर्घिकामत्तमरालिकागमनरीत्या लीलालसगतिविलासम्, तूणीरलावण्येन जङ्घे, लीलामन्दिरद्वारकदलीलालित्येन मनोज्ञमूरुयुगम्, जैत्ररथचातुर्येण घनं जघनम्, किञ्चिद्विकसल्लीलावतंसकह्लारकोरककोटरानुवृत्त्या गङ्गावर्तसनाभिं नाभिम्, सौधारोहणपरि-

(५) या अवन्तिसुन्दरी निर्मितेव रराजेत्यग्रिमेणान्वयः। वसन्तः सहायो यस्य तेन कामेनेत्यर्थः। सुमुत्सुकतया रत्यर्थमुत्कण्ठिततया। रतेः स्वपत्न्याः। केली क्रीडा तदर्थं या शालभञ्जिका कृत्रिमपुत्रिका तस्या विधित्सा निर्मातुमिच्छा तया। कञ्चनेति अनिर्वचनीयमित्यर्थः। विरच्य निर्माय। आत्मनः स्वस्य। क्रीडाकासारे विहारसरसि यत् शारदं शरत्कालसम्बन्धि अरविन्दं कमलं तस्य सौन्दर्येण कान्त्या। कासारविन्देति पाठान्तरम्। तत्र सारं सारभूतं यदरविन्दमित्यर्थः। तेन पादद्वयं चरणयुगलं नारीविशेषस्येति शेषः। विधायेत्यग्रिमेणान्वयः। एवमग्रेऽपि सर्वत्र। उद्यानवने उपवने या दीर्घिका वापी तस्यां या मत्तमरालिका हंसी तस्या गमनरीतिर्गतिपरिपाटी तया। लीलया विलासेनालसं मन्दं गतिविलासं गमनप्रकारम्। मरालवन्मन्दगमनेति भावः। तूणीराविषुधी तयोर्लावण्येन सौन्दर्येण जङ्घे—तूणाकारं जङ्घाद्वयमित्यर्थः। लीलामन्दिरस्य मदनक्रीडागृहस्य द्वारे या कदली रम्भातरुस्तस्या लालित्येन सौन्दर्येण। जैत्रो जयनशीलो रथो जैत्ररथः कामस्येति शेषः। तस्य चातुर्येण निर्माणपरिपाट्या। घनं निबिडम्। किञ्चिदीषद् विकसन् प्रस्फुटन् लीलावतंसः विलासकर्णभूषणं यः कह्लारकोरकः सौगन्धिककलिका तस्य कोटरं मध्यदेशस्त-

कृशोदरी अवन्तिसुन्दरीके सन्निकट जाकर उपस्थित हो गये।

(५) अवन्तिसुन्दरीकी शोभा उस समय निम्नरीत्या थी। जैसे कामदेवने अपनी प्रिया रति देवीके क्रीडनार्थ एक पुत्तलिका रची हो—उस पुत्तलिकाके बनानेमें कामदेवने ऐसी दक्षता की कि उसके दोनों चरण उसने अपने क्रीड़ासरोवरके शरत्कालिक कमलोंकी शोभासे निर्मित किये—अर्थात् उसके दोनों पैर शारदीय कमलके सदृश थे। अपनी वाटिकाकी बावलीमें मदोन्मत्ता होकर भ्रमणशीला हंसिनीकी गतिसे उसकी अलसायी चाल रची—वह अलसाकर हंसकी चालसे चलनेवाली थी। उसकी दोनों जाँघें अपने तूणीर (तरकस) की छविके सदृश बनायीं। अपने लीलामन्दिरके दरवाजेपर लगे हुए केलोंकी छटाको एकत्र कर दोनों घुटने रचे तथा जैत्ररथकी कान्तिसे युक्त उसके जघनस्थल। कामदेवकी स्त्री रतिके कानोंमें अलंकृत कमलोंकी कलिकाके समान शोभाशाली थोड़े-थोड़े विकसित लीलावतंस कर्णभूषण। गङ्गाजीके आवर्त्त (भौंरों) के समान गम्भीर उसकी नाभि रचीं। ऊपर अट्टालिकापर चढ़नेके लिए सो-

पाट्या वलित्रयम्, मौर्वीमधुकरपङ्क्तिनीलिमलीलया रोमावलिम्, पूर्णसुवर्णकलशशोभया कुचद्वन्द्वम्, (लतामण्डपसौकुमार्येण बाहू), जयशङ्खाभिख्यया कण्ठम्, कमनीयकर्णपूरसहकारपल्लवरागेण प्रतिबिम्बीकृतबिम्बं रदनच्छदम्, बाणायमानपुष्पलावण्येन शुचि स्मितम्, अग्रदूतिकाकलकण्ठिकाकलालापमाधुर्येण वचनजातम्, सकलसैनिकनायकमलयमारुतसौरभ्येण निःश्वासपवनम्, जयध्वजमीनदर्पेण लोचनयुगलम्,

स्यानुवृत्त्या सादृश्येन । गङ्गाया आवर्त्तो भ्रमिस्तस्य सनाभि सदृशम् । आरुह्यतेऽनेनेति आरोहणम् । करणे ल्युट् । सौधस्य प्रासादस्य यदारोहणं सोपानं तस्य परिपाट्या अनुक्रमेण । सोपानपङ्क्तितुल्यं वलित्रयमित्यर्थः । मौर्वी ज्यैव मधुकरपङ्क्तिः रोलम्बमाला तस्या यो नीलिमा नैल्यं तस्य लीलया सौन्दर्येण रोमावलिं रोमपङ्क्तिम् । पूर्णो जलपूर्णो यः सुवर्णकलशः स्वर्णघटस्तस्य शोभया कान्त्या कुचद्वन्द्वं स्तनयुगम् । कुचौ तस्याः कामस्य द्वारदेशस्थितशुभसूचककनककलशाकारावित्यर्थः । लतामण्डपस्य सौकुमार्येण कोमलतया बाहू हस्तद्वयम् । जयशङ्खस्याभिख्यया शोभया कण्ठं ग्रीवाम् । सा कम्बुग्रीवेति भावः । कमनीयः सुन्दरो यः कर्णपूरः कर्णभूषणीभूतः सहकारपल्लवो रसालकिसलयं तस्य रागेण रक्तिम्ना, प्रतिबिम्बीकृतं प्रतिबिम्बवत्कृतं बिम्बं बिम्बफलं येन तादृशं, यत्पूर्वं बिम्बमासीत्तदेवास्या अधरनिर्माणादनन्तरं प्रतिबिम्बं जातमित्यर्थः । प्रसिद्धबिम्बफलापेक्षयाऽप्यस्या अधरोष्ठयो रागोऽधिक इति तात्पर्यम् । रदनच्छदमोष्ठम् । बाणवदाचरतीति बाणायमानं यत् पुष्पं तस्य लावण्येन सौन्दर्येण । शुचि शुद्धम् । स्मितं हास्यम् । अग्रदूतिका प्रथमदूती कामस्येति शेषः । या कलकण्ठिका कोकिलवधूस्तस्या यः कलो मधुर आलापो ध्वनिस्तस्य माधुर्येण मधुरतया । वचनजातं वाक्यसमूहम् । सकलसैनिकानां निखिलभटानां कामस्येति शेषः । नायको नेता सेनापतिरिति यावत् यो मलयमारुतो मलयवायुस्तस्य सौरभ्येण सौगन्ध्येन । निःश्वासपवनं श्वासवायुम् । जयसूचको ध्वजो

पान (सीढ़ियां) के सदृश उसकी त्रिवली । धनुषके ऊपर मंडराती भ्रमरावलिकी कालिमासे सुशोभित रोमावली । पूर्ण स्वर्णकलशकी छविको धारण करनेवाले उसके कुचद्वय बनाये । लतामण्डपकी शोभाके समान उसके दोनों हाथ रचे । जयशंखकी ग्रीवाके समान उसका कण्ठ । सुन्दर कनफूलके ऊपर रखी हुई आम्रमंजरीकी लालिमाके सदृश एवं पके कुंदरू (बिम्बा फल) के समान लाल लाल उसके ओंठ । बाणोंके समान आकारवाले फूलोंकी शोभाके समान सुन्दर मुसकान तथा पहले-पहल प्रेषित की जानेवाली कामदूतिका (अर्थात् कोयल) की वाणीके समान मधुर उसकी वाणी तथा कामदेवकी सम्पूर्ण सेनाके सेनापति मलय पवनकी सुगन्धिसे उसके श्वासोच्छ्वास एवं जयसूचिका पताकामें लगी मीनाकार (मछलीके समान)

चापयष्टिश्रिया भ्रूलते, प्रथमसुहृदः सुधाकरस्यापनीतकलङ्कया कान्त्या वदनम्, (लीलामयूरबर्हभङ्ग्या केशपाशं) च विधाय समस्तमकरन्द-कस्तूरिकासम्मितेन मलयजरसेन प्रक्षाल्य कर्पूरपरागेण सम्मृज्य निर्मितेव रराज।

(६) सा मूर्तिमतीव लक्ष्मीर्मालवेशकन्यका स्वेनैवाराध्यमानं सङ्कल्पितवरप्रदानायाविर्भूतं मूर्तिमन्तं मन्मथमिव तमालोक्य मन्दमारुतान्दोलिता लतेव मदनावेशवती चकम्पे। तदनु क्रीडाविश्रम्भान्निवृत्ता

जयध्वजस्तथाभूतो यो मीनो मत्स्यस्तस्य दर्पेणाहङ्कारेण। मीनाकारं नयनयुगमिति भावः। चापयष्टिर्धनुर्लता तस्याः श्रिया कान्त्या। वक्रे भ्रूलते इत्यर्थः। प्रथमसुहृदः प्रधानमित्रस्य कामस्येति शेषः। अपनीतो दूरीकृतः कलङ्को लाञ्छनं यस्यास्तया। निष्कलङ्कसुधाकरसदृशं वदनमिति भावः। लीलार्थो मयूरः लीलामयूरः क्रीडामयूरः कामस्येति शेषः। तस्य बर्हं पिच्छं तस्य भङ्ग्या रचनया—तत्सदृशमिति भावः। केशपाशं केशकलापम्। विधाय कृत्वा। समस्ताभ्यामेकीकृताभ्यां मकरन्द-कस्तूरिकाभ्यां पुष्परसमृगमदाभ्यां संमितेन युक्तेन मिलितेनेत्यर्थः। मलयजरसेन चन्दनद्रवेण। प्रक्षाल्य आर्द्रीकृत्य। कर्पूरपरागेण कर्पूरचूर्णेन। संमृज्य सर्वतः समीकृत्य। निर्मितेव रचितेव कामेनेति शेषः।

(६) मूर्त्तिमतीव शरीरिणीव, साक्षादित्यर्थः। स्वेनैव स्वयमेव। आराध्यमानमुपास्यमानम्, अत एव सङ्कल्पितवरप्रदानाय सङ्कल्पितस्य अभिलषितस्य अवन्तिसुन्दर्य्येति शेषः। वरस्य प्रदानाय प्रदानार्थमाविर्भूतमुपस्थितम्। तं राजवाहनम्। मन्दमारुतेन धीरसमीरेणान्दोलिता कम्पिता। मदनस्य कामस्यावेश आविर्भावस्तद्वती। चकम्पे यथा समीरसम्पर्केण लता कम्पिता भवति तथा सापि कामावेशवशात् कम्पिताऽभवत्। एतेन तस्या राजवाहने रतिरुत्पन्नेति ज्ञायते, सात्त्विकभावस्य कम्पनस्यानुभावरूपत्वात्। तदनु एतदवस्थाप्राप्त्यनन्तरम्। क्रीडायां विश्रम्भो

उसकी दोनों आखें निर्मित कीं। उसकी भृकुटियाँ अपने धनुषके समान तिरछी तथा अपने मित्र चन्द्रमाकी निष्कलंक छविके समान उसका सुन्दर मुख और क्रीड़ा करनेवाले अपने मयूरके समान उसके केशपाश रचकर एवं सभी तरहकी सुगन्धियोंसे—कस्तूरी-कर्पूर—चन्दन आदिसे मिश्रित जलसे उसे नहला-धुलाकर पुनः कर्पूरके चूर्णसे (सुगन्धित पाउडरसे) उसकी देह सजा दी—ऐसी सुन्दरी वह, उस समय दीख रही थी।

(६) मानो साक्षात् मूर्त्तिमती लक्ष्मी, सुन्दरीके समान मालवनाथकी पुत्री अपने ही द्वारा उपास्यमान तथा पूर्वसंकल्पित वरप्रदानार्थ आए हुए साक्षात् मूर्त्तिमान कामदेव के समान सुन्दर राजवाहनको देखकर कामवशीभूता होकर मन्द-मन्द बहती हवासे काँपती

लज्जया कानि कान्यपि भावान्तराणि व्यधत्त ।

(७) 'ललनाजनं सृजता विधात्रा नूनमेषा घुणाक्षरन्यायेन निर्मिता ।' नो चेदब्जभूरेवंविधो निर्माणनिपुणो यदि स्यात्तर्हि तत्समानलावण्यामन्यां तरुणीं किं न करोति' इति सविस्मयानुरागं विलोकयतस्तस्य समक्षं स्थातुं लज्जिता सती किञ्चित्सखीजनान्तरितगात्रा तन्नयनाभिमुखैः किञ्चिदाकुञ्चितैरञ्चितभ्रूलतैरपाङ्गवीक्षितैरात्मनः कुरङ्गस्यानायमानलावण्यं

विश्वासोऽनुरागविशेषस्तस्मात् । कानि कान्यपि अनिर्वचनीयानीत्यर्थः । भावान्तराणि तदवस्थासमुचितान् नानाभावान् ।

(७) ललनाजनमित्यादि न करोतीत्यन्तं विलोकयतः इत्यस्याः क्रियायाः कर्म । न करोतीत्येतत्पर्यन्ता राजवाहनस्य चिन्ता । एषा अवन्तिसुन्दरी । घुणाक्षरन्यायेन काकतालीयसंयोगन्यायेन । घुणः प्रसिद्धः काष्ठकीटो यदृच्छया काष्ठं भिन्दन् सञ्चरति—तथा तस्य सञ्चारेण काष्ठे कदाचिदक्षराकाराणि चिह्नानि जायन्ते । अयमेव घुणाक्षरन्यायः । यथा घुणः अविदित्वैव अक्षराणि निर्माति तथैव इयमपि अविदित्वैव विधातृहस्तान्निर्गता । नो चेत्—अन्यथा । अब्जाद्भवतीति अब्जभूर्ब्रह्मा । एवंविधाया अवन्तिसुन्दरीसदृश्या निर्माणे सृष्टौ निपुणः कुशलः । तस्याः समानं तुल्यं लावण्यं सौन्दर्यं यस्यास्ताम् । अन्यामपराम् । किं कथम् । सविस्मयानुरागं विलोकयत इति क्रियाया विशेषणम् । विस्मयेनानुरागेण चेत्यर्थः । तस्य राजवाहनस्य । समक्षं पुरस्तात् । किञ्चिदीषत् सखीजनेन सहचर्या अन्तरितं व्यवहितं गात्रं शरीरं यस्याः सा तथाभूता । तस्य राजवाहनस्य नयनयोर्नेत्रयोरभिमुखैः सम्मुखवर्त्तिभिः । किञ्चिदाकुञ्चितैरीषत्संक्षिप्तैः । अञ्चिते शोभिते भ्रूलते यैस्तैः । अपाङ्गवीक्षितैः कटाक्षैः । आत्मनः कुरङ्गस्य कुरङ्गभूतस्य आत्मनः इत्यर्थः । आनायो जालं तदिवाचरतीति आनायमानं लावण्यं यस्येति विग्रहः । यथा कश्चिद् आनाये कुरङ्गं बध्नाति

हुई लताके सदृश काँपने लगी । फिर लज्जाके कारण उसने अपनी सखियोंके साथ-खेला बन्द कर दिया तथा न मालूम एक ओर बैठकर क्या क्या सोच-विचार करने लगी ।

(७) उसकी ऐसी प्रतिमा देखकर ऐसा ज्ञात हुआ कि, जब ब्रह्मदेव, सृष्टिमें स्त्रियोंकी रचना करने लगे तब घुणाक्षरन्यायसे यह सुन्दरी बन गयी, अन्यथा इसके समान और स्त्रियाँ क्यों नहीं उन्होंने रचीं । यदि वे ऐसी रचना कर सकनेमें प्रवीण होते, तब न करते ! यह तो धोखेसे बन गयी, ब्रह्माजीने जानकर नहीं रची । नहीं तो और तरुणियाँ वे अवश्य बनाते । आश्चर्य और प्रीतिपूर्वक बार-बार राजवाहनको अवलोकित करनेवाली वह राजकुमारी वहाँपर अधिक न बैठ सकी । बल्कि कुछ दूर हटकर अपनी सखियोंके पीछे आड़में होकर राजवाहनकी भ्रुकुटियोंको देखती हुई बैठी । उस समय उसे ऐसा मालूम होता था कि राजवाहनके कटाक्ष

राजवाहनं विलोकयन्त्यतिष्ठत् ।

(८) सोऽपि तस्यास्तदोत्पादितभावरसानां सामग्र्या लब्धबलस्येव विषमशरस्य शरव्यायमाणमानसो बभूव ।

(९) सा मनसीत्थमचिन्तयत्—'अनन्यसाधारणसौन्दर्येणानेन कस्यां पुरि भाग्यवतीनां तरुणीनां लोचनोत्सवः क्रियते । पुत्ररत्नेनामुना पुरन्ध्रीणां पुत्रवतीनां सीमन्तिनीनां का नाम सीमन्तमौक्तिकीक्रियते । कास्य देवी । किमत्रागमनकारणमस्य । मन्मथो मामपहसितनिजलावण्यमेनं विलोकयन्तीमसूययेवातिमात्रं मथ्नन्निजनाम सान्वयं करोति । किं करोमि ।

तथा राजवाहनः स्वलावण्येन अवन्तिसुन्दरीं समाचकर्षेति इति भावः ।

(८) सोऽपि राजवाहनोऽपि । तस्या अवन्तिसुन्दर्याः । तदा तस्मिन् काले उत्पादिता जनिता ये भावा विकारास्त एव रसास्तेषां सामग्र्या समग्रतया पूर्णतयेत्यर्थः लब्धं प्राप्तं बलं सामर्थ्यं येन तस्य । अन्योऽपि रसायनोपयोगाल्लब्धबलो भवतीति प्रसिद्धमेव । विषमा अयुग्मसंख्यकाः पञ्च शरा बाणा यस्य तस्य, कामस्येत्यर्थः । शरव्यं लक्ष्यं तदिवाचरत् शरव्यायमाणं मानसं यस्य सः । सोऽपि तदा मदनबाणवेध्यो बभूवेत्यर्थः ।

(९) अनन्यसाधारणम् अद्वितीयं सौन्दर्यं यस्य तेन । पुरि नगर्याम् । लोचनोत्सवो नयनानन्दः । कुत्रायं निवसतीति भावः । पुत्रेषु रत्नमिव, पुत्रश्रेष्ठ इत्यर्थस्तेन । सीमन्तिनीनां कामिनीनां मध्ये सीमन्तमौक्तिकीक्रियते शिरोभूषणीक्रियते । या खल्वस्य जननी सा तु सर्वसीमन्तिनीनां शिरोमणिरिति भावः । देवी महिषी । अपहसितं उपहासविषयं कृतं निजं स्वकीयं लावण्यं सौन्दर्यं कामस्येति शेषः येन तम् । एनमित्यस्य विशेषणम् । असूयया अक्षमया । मथ्नन् पीडयन् । निजनाम

विक्षेप उस हिरणी (अवन्तिसुन्दरी) को फँसानेके लिये जाल बिछा रहे हैं और उसी मोहजालमें वह फँस गयी—अर्थात् राजवाहनकी शोभा खूब देखने लगी ।

(८) कुमार राजवाहनका चित्त भी अवन्तिसुन्दरीके भावमय रसोंसे—कटाक्षविक्षेपोंसे—वर्द्धित होकर कामदेवके बाणोंसे विद्ध हो गया ।

(९) वह अपने मनमें सोचने लगी—ये अनन्यसाधारण शोभाशाली राजकुमार किस पुरकी सौभाग्यवती नारीके होंगे जो इन्हें देखकर प्रमुदित होगी । वे रमणियाँ धन्य होंगी जो इन्हें देखकर नेत्र सफल करती होंगी । वह धन्य-धन्य पुत्रवती है जिसने इन्हें पुत्ररूपमें प्राप्त किया है । अवश्य ही वह अंगना सर्वश्रेष्ठ होगी जो इन्हें पुत्र कहकर आनन्दित होती होगी । न जाने इनकी वल्लभा कौन है ? ये इस उपवनमें क्यों आए ? हा, वह मन्मथ भी इनके सौन्दर्यसे निर्जित ईर्ष्याके साथ देखनेवाली मुझ कुमारीको मथता है तथा

कथमयं ज्ञातव्य' इति ।

(१०) ततो बालचन्द्रिका तयोरन्तरङ्गवृत्तिं भावविवेकैर्ज्ञात्वा कान्तासमाजसन्निधौ राजनन्दनोदन्तस्य सम्यगाख्यानमनुचितमिति लोकसाधारणैर्वाक्यैरभाषत—'भर्तृदारिके, अयं सकलकलाप्रवीणो देवतासान्निध्यकरण आहवनिपुणो भूसुरकुमारो मणिमन्त्रौषधिज्ञः परिचर्यार्हो भवत्या पूज्यताम्' इति ।

(११) तदाकर्ण्य निजमनोरथमनुवदन्त्या बालचन्द्रिकया सन्तुष्टान्तरङ्गा तरङ्गावली मन्दानिलेनेव सङ्कल्पजेनाकुलीकृता राजकन्या जितमारं कुमारं समुचितासनासीनं विधाय सखीहस्तेन शस्तेन गन्धकुसुमाक्षतघन-

मन्मथेति स्वनाम सान्वयं सार्थकम् ।

(१०) तयोरवन्तिसुन्दरीराजवाहनयोः । अन्तरङ्गवृत्तिं मनोवृत्तिम् । भावानां मानसविकाराणां विवेकैर्विज्ञानैः । राजनन्दनोदन्तस्य राजवाहनवृत्तान्तस्य । सम्यगाख्यानं विशेषेण कथनम् । लोकसाधारणैः लौकिकैः । भर्तृदारिके । प्रभुपुत्रि ! राजनन्दिनीत्यर्थः । सकलासु कलासु नृत्यगीतादिषु प्रवीणः कुशलः । देवतानां सान्निध्यं साक्षात्कारं करोतीति तथा मन्त्रादिसाधनज्ञ इत्यर्थः । आहवनिपुणो युद्धकुशलः । परिचर्यार्हः सत्कारयोग्यः ।

(११) निजमनोरथमनुवदन्त्या स्वाभिलाषानुरूपं कथयन्त्या । तरङ्गावली कल्लोलमाला । सङ्कल्पजेन मनोभवेन । जितो विजितो मारः कन्दर्पो येन तम् । शस्तेन प्रशस्तेन मनोहारिणा वस्तुनिचयेनेत्यस्य विशेषणम् । नूनं निश्चयेन । एषा

अपना मन्मथ नाम सार्थक करता है, क्या करूँ, कैसे जान सकूँ कि ये कौन व्यक्ति हैं ।

(१०) उस कुमारी बालचन्द्रिकाने उन दोनोंकी अङ्गवृत्तियोंसे यह जान लिया कि उनके मनमें अनुराग उत्पन्न हो गया है । परन्तु स्त्रीसमुदायमें यह बात उसने प्रकट न की क्योंकि ऐसा करना उसे योग्य न मालूम पड़ा कि वह उन सबके समक्ष उनका परिचय देती। अर्थात् राजवाहनको राजकुमार-रूपमें भी कहना उसने वहाँ ठीक न समझा । वार्तालापके प्रसंगमें उसने बताया कि, हे अवन्तिसुन्दरी ! ये (राजवाहन) मणि-मन्त्र-औषधके परिज्ञाता हैं तथा समस्त कलाओंमें प्रवीण हैं और देवताओंके साक्षात्कार करनेमें अति दक्ष हैं साथ ही विप्रसुत भी हैं । अतः आप इनकी पूजा करें-क्योंकि ये आपसे पूजार्ह हैं ।

(११) राजकुमारी अवन्तिसुन्दरी इस बातपर अति हर्षित हुई तथा अपनी मनोनुकूल बातको बालचन्द्रिकासे सुनकर जैसे वायुके मन्द पड़नेसे जलाशयोंकी तरंगें क्षीण हो जाती हैं वैसे ही उसकी वार्तोको सुननेसे कामतरंगोंसे व्यथित राजकुमारीका अन्तःकरण क्षीण

सारताम्बूलादिनानाजातिवस्तुनिचयेन पूजां तस्मै कारयामास । राजवाहनोऽप्येवमचिन्तयत्—'नूनमेषा पूर्वजन्मनि मे जाया यज्ञवती । नो चेदेतस्यामेवंविधोऽनुरागो मन्मनसि न जायेत । शापावसानसमये तपोनिधिदत्तं जातिस्मरत्वमावयोः समानमेव । तथापि कालजनितविशेषसूचकवाक्यैरस्या ज्ञानमुत्पादयिष्यामि' इति ।

(१२) तस्मिन्नेव समये कोऽपि मनोरमो राजहंसः केलीविधित्सया तदुपकण्ठमगमत् । समुत्सुकया राजकन्यया मरालग्रहणे नियुक्तां बालचन्द्रिकामवलोक्य समुचितो वाक्यावसर इति सम्भाषणनिपुणो राजवाहनः सलीलमलपत्—'सखि, पुरा शाम्बो नाम कश्चिन्महीवल्लभो मनोवल्लभया सह विहारवाञ्छया कमलाकरमवाप्य तत्र कोकनदकदम्बसमीपे निद्राधी-

---

अवन्तिसुन्दरी । जाया पत्नी । शापावसानसमये—यदा शापस्य समाप्तिर्भविष्यति तदा । तपोनिधिना तापसेन येन पूर्वं शापो दत्तस्तेन दत्तं विहितम् । जातिस्मरत्वं पूर्वजन्मस्मरणम् । कालेन दीर्घसमयेन जनित उत्पादितो यो विशेषस्तस्य सूचकानि प्रकाशकानि यानि वाक्यानि तैः ।

(१२) तस्या अवन्तिसुन्दर्या उपकण्ठं समीपम् । समुचितो योग्यः । वाक्यावसरः अस्मिन्नेव समये किञ्चिद्वक्तव्यमित्यर्थः । महीवल्लभो राजा । मनोवल्लभया स्वप्रियया । कमलाकरं सरोवरम् । कोकनदानां रक्तोत्पलानां कदम्बं समूहस्तस्य समीपे । निद्राधीनमानसं निद्रया आक्रान्तम् । बिसगुणेन मृणालतन्तुना । तस्य

(सन्तुष्ट) हुआ और कामदेवके जीतनेवाले राजवाहनको योग्य आसनपर बैठाया तथा सखियोंके हाथोंसे गन्ध, पुष्प, माला, चन्दन कर्पूर, ताम्बूल आदि विविध प्रकारकी वस्तुओंसे पूजा करायी । कुमार राजवाहनने अपने मनमें विचार किया—यह कुमारी पूर्व जन्ममें अवश्य ही मेरी भार्या यज्ञवती थी ! यदि वह न होती तो मेरे मनमें इतना प्रेमांकुर न उत्पन्न होता । यद्यपि पूर्व जन्ममें मुनिप्रदत्त शापके अन्तमें मुनि का वरदान था कि हम लोगोंको पूर्ववृत्तकी स्मृति रहेगी । वे बातें भी इसमें घटती हैं, मुझमें और इस कुमारीमें समान भावसे पूर्व जन्मस्मृति है तथापि मैं बात-चीतके सिल-सिलेमें इसे पूर्व जन्मकी स्मृति दिलाना उचित समझता हूँ । क्योंकि हम लोगोंमें यह ज्ञान बहुत दिनोंके पश्चात् आया है—न इसके दर्शन होते न ज्ञान उत्पन्न होता ।

(१२) इतनेमें ही क्रीड़ा करते-करते एक मनोहर राजहंस हंसिनीके पीछे-पीछे अवन्तिसुन्दरीके पास आ गया । जिसे देखकर राजकुमारी उत्सुक हो गयी और बालचन्द्रिकाको उसे पकड़नेके लिए भेजा । वार्तालापमें प्रवीण राजवाहनने एकान्त पाकर बात करनेका अवसर

नमानसं राजहंसं शनैर्गृहीत्वा बिसगुणेन तस्य चरणयुगलं निगडयित्वा कान्तामुखं सानुरागं विलोकयन्मन्दस्मितविकसितैककपोलमण्डलस्तामभाषत—'इन्दुमुखि, मया बद्धो मरालः शान्तो मुनिवदास्ते। स्वेच्छयानेन गम्यताम्' इति।

(१३) सोऽपि राजहंसः शाम्बमशपत्—'महीपाल, यदस्मिन्नम्बुजखण्डेऽनुष्ठानपरायणतया परमानन्देन तिष्ठन्तं नैष्ठिकं मामकारणं राज्यगर्वेणावमानितवानसि तदेतत्पाप्मना रमणीविरहसन्तापमनुभव' इति। विषण्णवदनः शाम्बो जीवितेश्वरीविरहमसहिष्णुर्भूमौ दण्डवत्प्रणम्य सविनयमभाषत—'महाभाग, यदज्ञानेनाकरवं तत्क्षमस्व' इति। स तापसः

हंसस्य। निगडयित्वा बद्ध्वा। मन्दस्मितेन ईषद्धसितेन विकसितं प्रफुल्लमेकं कपोलमण्डलं गण्डस्थलं यस्य सः। तां स्वकान्ताम्। अनेन हंसेन।

(१३) अम्बुजखण्डे कमलसमुदाये। अनुष्ठाने ध्यानादिकरणे परायणः प्रवृत्तः तस्य भावस्तया। नैष्ठिकं ब्रह्मचारिणम्। अवमानितवान् अवज्ञातवान्। पाप्मना पापेन अपराधेनेति यावत्। रमण्या दयिताया विरहस्य विच्छेदस्य सन्तापं क्लेशम्। असहिष्णुः सोढुमशक्नुवन्। करुणया आकृष्टं चेतो यस्य सः दयापरवशचित्तः। शापफलाभावः—शापस्य फलं न भविष्यतीत्यर्थः। अमोघतया अव्यर्थतया। भाविनि

उचित समझकर बात-चीत छेड़ दी। उन्होंने लीलापूर्वक कहा—हे प्रिये! प्राचीन कालमें शाम्ब नामका एक महीपति अपनी जायाके साथ जलविहार करनेकी अभिलाषासे एक सरोवरके तटपर गया। वहाँपर कमलोंके मध्यमंडलमें सोता हुआ एक राजहंस दीख पड़ा। उसे पकड़कर उसने धीरेसे उसके चरणोंमें कमलदण्डका सूत्र बाँध दिया। प्रेमसे प्रफुल्लित कपोलमण्डल करके अपनी प्रियतमाके मुखको मन्दस्मितके साथ देखकर बोला—हे चन्द्रमुखि! मैंने इस राजहंसको बाँध दिया है। यह मुनिके समान स्थिरचित्त हो गया है। अच्छा अब इसे छोड़ ही देता हूँ। यह चाहे जहाँ विचरे। यह कहकर उसने उसे छोड़ दिया।

(१३) उस राजहंसने राजा शाम्बको उसी समय शाप दिया कि, हे राजन्! इस कमलवनमें राजहंसके रूपमें मैं परब्रह्मके ध्यानमग्न समाधिस्थ था और परमानन्द सुखभोग रहा था। ऐसे नैष्ठिक तथा निरपराधी मुनिका मदसे अपमान तुमने स्व-प्रियाके अनुरंजनार्थ किया है अतः इस अपराधका दण्ड तुम्हें अपनी 'भार्याका वियोग' भोगना पड़ेगा। इसपर राजाका मुख म्लान हो गया और अपनी प्रियाके विरहको सहन करनेमें अशक्त होकर उसने ऋषिवरके चरण छुए तथा प्रार्थना की कि, हे महाभाग! अज्ञानवश मुझसे यह अपराध हो गया, कृपया, क्षमा करें। करुणार्द्रचित्त उन तपस्वीने राजा शाम्बसे कहा—हे राजन्! मेरी वाणी सत्य है।

करुणाक्रुष्टचेतास्तमवदत्—'राजन्, इह जन्मनि भवतः शापफलाभावो भवतु । मद्वचनस्यामोघतया भाविनि जनने शरीरान्तरं गतायाः अस्याः सरसिजाक्ष्या रसेन रमणो भूत्वा मुहूर्तद्वयं मच्चरणयुगलबन्धकारितया मासद्वयं शृङ्खलानिगडितचरणो रमणीवियोगविषादमनुभूय पश्चादनेककालं वल्लभया सह राज्यसुखं लभस्व' इति ।

(१४) तदनु जातिस्मरत्वमपि तयोरन्वगृह्णात् । 'तस्मान्मरालबन्धनं न करणीयं त्वया' इति । सापि भर्तृदारिका तद्वचनाकर्णनाभिज्ञातस्वपुरातनजननवृत्तान्ता 'नूनमयं मत्प्राणवल्लभः' इति मनसि जानती रागपल्लवितमानसा समन्दहासमवोचत्—'सौम्य, पुरा शाम्बो यज्ञवतीसन्देशपरिपालनाय तथाविधं हंसबन्धनमकार्षीत् । तथा हि लोके पण्डिता अपि दाक्षिण्येनाकार्यं कुर्वन्ति' इति । कन्याकुमारावेवमन्योन्यपुरातनजनन-

भविष्यति । जनने जन्मनि । जनुर्जननजन्मानि जनिरुत्पत्तिरुद्भव इत्यमरः । शरीरान्तरङ्गतायाः अन्यदेहं प्राप्तायाः । रसेन अनुरागेण । रमणो वल्लभः । मुहूर्तेति-त्वया तु मुहूर्तद्वयमेव मच्चरणयुगलस्य बन्धनं कृतं तेन पुनर्मासद्वयं तत्फलं त्वया भोक्तव्यमित्यर्थः । शृङ्खलया निगडितौ बद्धौ चरणौ यस्य सः । अनेककालं दीर्घकालं यावत् ।

(१४) अन्वगृह्णात् अनुज्ञातवान् । तद्वचनस्य राजवाहनवाक्यस्य आकर्णनेन श्रवणेन अभिज्ञातः स्मृतः स्वपुरातनजननस्य निजपूर्वजन्मनो वृत्तान्तो यया सा । रागेणानुरागेण पल्लवितं प्रफुल्लं मानसं यस्याः सा । दाक्षिण्येन परच्छन्दानुरोधेन । अकार्यमनुचितम् । कन्याकुमारौ अवन्तिसुन्दरीराजवाहनौ । एवमित्थम् । अन्यो-

अतः तुम्हें यह शाप इस जीवनमें न होकर अन्य जीवनमें अवश्य प्राप्त होगा । उस समय तुम दोनोंको इस जीवनकी स्मृति भी बनी रहेगी तथा मुझे दो मुहूर्त्त बाँधा है अतः तुम्हें दो मास श्रृङ्खलाबद्ध होकर रमणीवियोग अवश्य सहना पड़ेगा । तत्पश्चात् उस रमणीके साथ अति कालतक राज्य सुख भोगोगे ।

(१४) फिर तुरत ही उन तपस्वीने एक और वरदान देकर कहा 'जाओ तुम लोगोंको जाति-स्मरत्व' रहे (पूर्व जन्मकी बात याद रहे) । अतः हे राजपुत्री ! आपसे कहता हूँ कि आप राजहंसको न बाँधें । राजकुमारीको भी राजकुमारकी बातें सुनकर पूर्व जीवनकी स्मृति हो आयी और दृढ़ प्रतीति हो गयी कि ये ही मेरे प्राणप्रिय उस जीवनके हैं । निश्चयानन्तर उस का मुख-कमल विकसित हो गया तथा वह प्रेमसे हँसकर कहने लगी—हे सौम्य ! उस समय राजा शाम्बने रानी यज्ञवतीके आदेशानुसार राजहंसको पकड़कर बाँधा था । इससे विदित होता

नामधेये परिचिते परस्परज्ञानाय साभिज्ञमुक्त्वा मनोजरागपूर्णमानसौ बभूवतुः ।

(१५) तस्मिन्नवसरे मालवेन्द्रमहिषी परिजनपरिवृता दुहितृकेलीविलोकनाय तं देशमवाप । बालचन्द्रिका तु तां दूरतो विलोक्य ससम्भ्रमं रहस्यनिर्भेदभिया हस्तसंज्ञया पुष्पोद्भवसेव्यमानं राजवाहनं वृक्षवाटिकान्तरितगात्रमकरोत् । सा मानसारमहिषी सखीसमेताया दुहितुर्नानाविधां विहारलीलामनुभवन्ती क्षणं स्थित्वा दुहित्रा समेता निजागारगमनायोद्युक्ता बभूव । मातरमनुगच्छन्ती अवन्तिसुन्दरी 'राजहंसकुलतिलक, विहारवाञ्छया केलिवने मदन्तिकमागतं भवन्तमकाण्ड एव विसृज्य मया, समुचितमिति जनन्यनुगमनं क्रियते—तदनेन भवन्मनोरागोऽन्यथा मा

न्येति—परस्परपूर्वजन्मनामनी । परस्परज्ञानाय परस्परप्रतिबोधनाय । साभिज्ञं सप्रमाणम् । मनोजः कामः रागोऽनुरागस्ताभ्यां पूर्णं मानसं ययोस्तौ ।

(१५) तां महिषीम् । ससम्भ्रमं सत्वरम् । रहस्यनिर्भेदभिया राजमहिषी यदि तथाविधं राजपुत्रं पश्येत्तदा रहस्यं निर्भिद्येतेति शङ्कया । हस्तसंज्ञया हस्तचेष्टया । वृक्षवाटिकायां गृहोद्याने अन्तरितं गोपितं गात्रं शरीरं यस्य तथाविधम् । राजहंसकुलतिलकेति सम्बोधनं श्लिष्टं, राजहंसस्य पक्षिविशेषस्य कुले मण्डले तिलक इवेति, पक्षे-राजहंसस्य तदाख्यनृपस्य कुले वंशे तिलको भूषणभूत इवेति चार्थद्वययोगात् । विहारवाञ्छया विहर्तुमिच्छया । अकाण्डे असमये सहसेति यावत् । समुचितमिति कर्त्तव्यमिति हेतोः । भवन्मनोरागः भवतो मनोवृत्तिः । अन्यथा विपरीतः । मयि

है कि पण्डित लोग भी संसारमें कभी कभी भोलेपनसे अनुचित कर्म कर बैठते हैं । फिर पूर्वजन्म की अन्य बातोंका स्मरण करते-कराते वे दोनों कामदेवके वशीभूत हो गये ।

(१५) इसी अवसरपर मालवेशकी पटरानी अपने बहुतसे परिजनोंसे परिवृत होकर अपनी राजसुताके खेलोंको देखनेके लिए उस उपवनमें पधारीं । दूरसे ही बालचन्द्रिकाने उन्हें आते देख लिया और रहस्य-भेदन न हो इस भयसे जल्दीसे राजवाहनके समीप दौड़कर आयीं और हाथके संकेतसे पुष्पोद्भवके साथ-साथ राजकुमार राजवाहनको घने वृक्षोंके निकुंजोंमें छिप जानेको कह दिया । राजा मानसारकी पटरानी वहाँपर कुछ देर रहीं और बालिकाकी क्रीड़ाएँ देखकर उसे साथ लेकर राजमहल जाने लगीं । माताकी अनुवर्त्तिनी होकर जाती हुई राजकुमारी अवन्तिसुन्दरीने कहा—हे राजहंस-कुलतिलक ! तुम इस उपवनमें मेरे साथ रमणके लिए आये थे किन्तु मैं असमयमें ही तुम्हें छोड़कर जा रही हूँ । परन्तु यह जाना उचित और अनिवार्य है क्योंकि माताकी आज्ञा अलंघनीय होती है परन्तु मेरे इस

भूत्' इति मरालमिव कुमारमुद्दिश्य समुचितालापकलापं वदन्ती पुनः पुनः परिवृत्तदीननयना वदनं विलोकयन्ती निजमन्दिरमगात् ।

(१६) तत्र हृदयवल्लभकथाप्रसङ्गे बालचन्द्रिकाकथिततदन्वयनामधेया मन्मथबाणपतनव्याकुलमानसा विरहवेदनया दिने दिने बहुलपक्षशशिकलेव क्षामक्षामाहारादिसकलं व्यापारं परिहृत्य रहस्यमन्दिरे मलयजरसक्षालितपल्लवकुसुमकल्पिततल्पतलावर्तिततनुलता बभूव ।

(१७) तत्र तथाविधावस्थामनुभवन्तीं मन्मथानलसन्तप्तां सुकुमारीं कुमारीं निरीक्ष्य खिन्नो वयस्यागणः काञ्चनकलशसञ्चितानि हरिचन्दनो-

---

कोप मा कार्षीरित्यर्थः । मरालमिवेति—यथा राजहंसकुलतिलक इत्यनेन मराल उद्दिष्टस्तथा कुमारोऽपीत्यर्थः । परिवृत्ते विवृत्ते दीने विषण्णे नयने यया सा । वदनं मुखं राजपुत्रस्येति शेषः । मन्दिरं गृहम् ।

(१६) तत्र निजमन्दिरे । बालचन्द्रिकया कथिते प्रकाशिते तदन्वयनामधेये राजपुत्रस्य कुलनामनी यस्यै सा । दिने दिने प्रतिदिनम् । बहुलपक्षे कृष्णपक्षे या शशिकला ज्योत्स्ना सेव । अतिक्षीणेत्यर्थः । क्षामक्षामा अतिकृशा । रहस्यमन्दिरे निर्जनगृहे । मलयजरसेन चन्दनद्रवेण क्षालितैः सिक्तैः पल्लवैः किसलयैः कुसुमैश्च कल्पितं रचितं यत् तल्पतलं तत्र आवर्तिनी लुठन्ती तनुलता यस्याः सा ।

(१७) खिन्नो विषण्णः । वयस्यागणः सखीवर्गः । हरिचन्दनं चन्दनविशेषः । उशीरं नलदं घनसारः कर्पूरं तैर्मिलितानि मिश्रितानि । तस्या अवन्तिसुन्द-

---

व्यवहारपर आप कुपित नहीं हों और मेरा अनुराग आपपर नहीं यह न समझें तथा मुझपर अनुराग भी कम न करें । इस रीतिसे राजहंसके बहाने राजकुमारसे विनय करती हुई वह राजकुमारी दीनतापूर्ण नेत्रोंसे राजवाहनको देखती हुई अपने भवनमें माताके साथ चली गयी ।

(१६) घरपर आनेके पश्चात् बालचन्द्रिकाके आनेपर, उसकी बहुत बुरी दशा हो गयी । जब उसने बालचन्द्रिकाके मुखसे अपने हृदयेश्वरके नाम तथा वंश आदिकी ख्याति सुनी तब तो वह कामबाणोंसे पूर्ण विद्ध हो गयी और मनमें बड़ी व्याकुल हुई । उसकी देहकान्ति कृष्णपक्षके चन्द्रके समान बराबर क्षीणप्रभ होने लगी । भोजन तथा शयनादि सभी व्यापार उसके अव्यवस्थित हो गये । वह एकान्तमें एक कमरेमें चन्दन-वासित जलसे सींची जाती, तथा पुष्पों और पत्रोंकी शय्यापर लोटती हुई पड़ी रहती ।

(१७) सुकुमारी राजकुमारीको कामदेवपीडित सन्तप्त दशाओंमें देखकर उसकी सखियाँ अत्यन्त खिन्नमुखी तथा दुखी हुईं । वे लोग एक सुवर्णके घड़ेमें मलयगिरि चन्दन, खस,

शीरघनसारमिलितानि तदभिषेककल्पितानि सलिलानि बिसतन्तुमयानि वासांसि च नलिनीदलमयानि तालवृन्तानि च सन्तापहरणानि बहूनि संपाद्य तस्याः शरीरमशिशिरयत् । तदपि शीतलोपचरणं सलिलमिव तप्ततैले तदङ्गदहनमेव समन्तादाविश्चकार । किंकर्तव्यतामूढां विषण्णां बालचन्द्रिकामीषदुन्मीलितेन कटाक्षवीक्षितेन बाष्पकणाकुलेन विरहानलोष्णनिःश्वासग्लपिताधरया नताङ्ग्या शनैः शनैः सगद्गदं व्यलापि—'प्रियसखि, कामः कुसुमायुधः पञ्चबाण इति नूनमसत्यमुच्यते । इयमहमयोमयैरसंख्यैरिषुभिरनेन हन्ये । सखि, चन्द्रमसं वडवानलादतितापकरं मन्ये । यदस्मिन्नन्तःप्रविशति शुष्यति पारावारः, सति निर्गते

र्थां अभिषेकाय स्नानाय कल्पितानि स्थापितानि । बिसतन्तुमयानि मृणालसूत्ररचितानि । अशिशिरयत् शीतलीचकार । सलिलमिव तप्ततैले—तप्ततैले जलनिक्षेपाद् यथा तैलस्याधिकतप्तता जायते तद्वत् तस्याः शरीरे कृतेन शीतलोपचारेण तस्या दाहाधिक्यमेव जातमिति भावः । दहनम् अग्निम् । किंकर्त्तव्यतामूढामधुना किंकर्त्तव्यं तन्निश्चेतुमशक्नुवानाम् । विरह एवानलस्तस्योष्णनिःश्वासेन ग्लपितः म्लानोऽधरो यस्यास्तया । काम इति—कामस्य आयुधानि कुसुमानि, तस्य बाणा अपि पञ्चसंख्यका एवेति यदुच्यते तन्मिथ्या । यतोऽयोमयैर्लोहनिर्मितैरसंख्यैः संख्यातुमशक्यैः इषुभिर्बाणैः अनेन कामेन हन्ये हतास्मि । अहमिति शेषः । यस्मिन्निति । यस्मिन् चन्द्रमसि । अस्तसमये चन्द्रः पारावारे प्रविशति तदा पारावारस्य वृद्धिर्न भवति, उदयसमये तु पारावारस्य वृद्धिर्भवति—अतो ब्रवीमि चन्द्रस्यान्तःस्थित्या पारावारः शुष्यति निर्गमेण च वर्धत इति । अत एव च वाडवाग्नेरधिकतापकरः हिम-

कर्पूर आदि मिश्रित जल उसके स्नानार्थ ले आयीं । कमलतन्तुओंके वस्त्र तथा कमलके पत्रोंके पंखे और सन्तापहरण करनेवाली बहुतसी वस्तुएँ लाकर उसके शरीरपर उपचार करने लगीं । परन्तु वे शीतलोपचारकी वस्तुएँ उसे और दाहक प्रतीत होने लगीं और शीतलता न दे सकीं । वे वस्तुएँ तपे तेलमें पानीके विन्दुके समान हुईं अर्थात्—तापको शान्त न कर सकीं । किंकर्त्तव्यविमूढ़ा, दुःखी बालचन्द्रिकाको उसने आँखोंमें आँसू भरे नेत्रोंसे देखा । उस समय विरहव्यथाग्निसे उसका मुख उदास हो गया था तथा सर्वाङ्ग मुरझा गये थे । विलाप करती हुई वह गद्गदस्वरमें बोली—हे प्रिय सखी ! संसारी पुरुषोंकी यह बात सर्वथा असत्य है कि कामदेवके पाँचों बाण पुष्प-निर्मित हैं वह तो मुझे असंख्य लोहेके तीरोंसे छेद रहा है—मारे डाल रहा है । हे सखी, जिस चन्द्रमाको लोग हिमराशि कहते हैं वह मुझे वाडवाग्निसे भी अधिक सन्तापप्रद मालूम पड़ रहा है । यदि ऐसा नहीं होता तो क्योंकर समुद्र इसके

तदैव वर्धते। दोषाकरस्य दुष्कर्म किं वर्ण्यते मया। यदनेन निजसोदर्याः पद्मालयाया गेहभूतमपि कमलं विहन्यते।

(१८) विरहानलसंतप्तहृदयस्पर्शेन नूनमुष्णीकृतः स्वल्पीभवति मलयानिलः। नवपल्लवकल्पितं तल्पमिदमनङ्गाग्निशिखापटलमिव सन्तापं तनोस्तनोति। हरिचन्दनमपि पुरा निजयष्टिसंश्लेषवदुरगरदनलिप्तोल्बणगरलसंकलितमिव तापयति शरीरम्। तस्मादलमलमायासेन शीतलोपचारे। लावण्यजितमारो राजकुमार एवागदंकारो मन्मथज्वरापहरणे। सोऽपि लब्धुमशक्यो मया। किं करोमि' इति।

(१९) बालचन्द्रिका मनोजज्वरावस्थापरमकाष्ठां गतां कोमलाङ्गीं तां

कर इति। दोषां रात्रिं करोतीति दोषाकरश्चन्द्रः, दोषाणामाकरश्च। निजसोदर्याः स्वभगिन्याः। लक्ष्मीचन्द्रौ समुद्राज्जाताविति प्रसिद्धिः। विहन्यते मुकुलीक्रियते।

(१८) विरहानलेन सन्तप्तस्य हृदयस्य स्पर्शेन उष्णीकृत उत्तप्तीकृतो मलयानिलः स्वल्पीभवति नूनं मन्ये। उष्णवस्तुसंसर्गादन्योऽपि शुष्यति अतः स्वल्पीभाव उष्णत्वञ्च तस्य भवतीति भावः। नवपल्लवकल्पितं नूतनकिसलयरचितम्। पुरा प्राक्। निजयष्ट्याः स्वशाखायाः संश्लेषवतः सम्पर्किणः उरगस्य सर्पस्य रदनेन दन्तेन लिप्तं युक्तं यदुल्बणं तीव्रं गरलं विषं तेन संकलितं व्याप्तम्। चन्दनतरौ सर्पाणां वासः प्रसिद्धः। हरिचन्दनमपि विषलिप्ततया शरीरस्य तापजनकत्वेनोत्प्रेक्ष्यते। तस्मादिति—युष्माभिर्यद् यत् शीतलतयोपन्यस्यते तत्सर्वमेव मे सन्तापदायकं भवति-अतो निरर्थकमेव-युष्माभिर्निवर्त्यताम् इति भावः। अगदंकारश्चिकित्सकः।

(१९) परमकाष्ठाम् अतिशयम्। अनन्यशरणामनन्यगतिकाम्। स्मरणीयां

(चन्द्रके) कृष्णपक्षमें प्रवेश करनेपर सूखने लगता है। और शुक्लपक्षमें इसके बाहर आ जानेपर पुनः बढ़ने लगता है। मैं इस चन्द्रके दुष्कर्म कहाँ तक कहूँ। यह अपनी सगी बहिन लक्ष्मीके आधारभूत कमलोंको भी मुकुलित कर देता है।

(१८) मेरी वियोगरूपी अग्निके द्वारा सन्तप्त हृदयके स्पर्शमात्रसे उष्ण होकर मलय पवन भी अल्प हो जाता है। नवीन पल्लवों द्वारा रचित मेरी शय्या तथा बिछौने कामाग्नि के शिखा-समूहके समान मेरे शरीरको जलाये डाल रहे हैं। चन्दनके वृक्षोंपर लिपटे सर्पों के दाँतोंके द्वारा गलित विष साक्षात् मूर्त्तिमान होकर चन्दनके लेपके रूपमें मुझे सन्तापित कर रहा है। अतः इन शीतलोपचारवाली वस्तुओंसे मेरा उपचार वृथा है। अपने सौन्दर्य से कामदेवको जीतनेवाले राजवाहन ही इस कामज्वरको हटानेमें समर्थ हैं। परन्तु खेद है, कि वे अप्राप्य हैं। हाय, अब क्या करूँ?

(१९) जब बालचन्द्रिकाने देखा कि राजकुमारी सखी अवन्तिसुन्दरी कोमलांगी

राजवाहनलावण्याधीनमानसामनन्यशरणामवेद्यात्मन्यचिन्तयत्—

'कुमारः सत्वरमानेतव्यो मया । नो चेदेनां स्मरणीयां गतिं नेष्यति मीनकेतनः । तत्रोद्याने कुमारयोरन्योन्यावलोकनवेलायामसमसायकः समं मुक्तसायकोऽभूत् । तस्मात्कुमारानयनं सुकरम्' इति । ततोऽवन्तिसुन्दरी-रक्षणाय समयोचितकरणीयचतुरं सखीगणं नियुज्य राजकुमारमन्दिरमवाप । पुष्पबाणबाणतूणीरायमानमानसोऽनङ्गतप्तावयवसंपर्कपरिम्लानपल्लवशयनमधिष्ठितो राजवाहनः प्राणेश्वरीमुद्दिश्य सह पुष्पोद्भवेन संलपन्नागतां प्रियवयस्यामालोक्य पादमूलमन्वेषणीया लतेव बालचन्द्रिकागतेति संतुष्टमना निटिलतटमण्डनीभवदम्बुजकोरकाकृतिलसदञ्जलिपुटाम्

गतिं—कथाशेषतां मृत्युमिति शेषः । कुमारयोः कुमारी च कुमारश्चेत्येकशेषः । तयोः । असमसायकः विषमबाणः काम इत्यर्थः । समं युगपत् । द्वयोरेवोपरि । सुकरं सुसाध्यम् । समयेति—तस्मिन् समये तस्यामवस्थायां वा यत्करणीयं तत्र चतुरं पेशलम् । पुष्पबाणस्य कामस्य ये बाणास्तेषां तूणीरवदाचरन् मानसं यस्येति विग्रहः—बाणास्तूणीरे तिष्ठन्ति पुष्पबाणस्य बाणा राजवाहनस्य मानसरूपे तूणीरे तदा आसन्निति भावः । प्रियवयस्यां प्रियसखीम् । बालचन्द्रिकामित्यर्थः । अन्वेषणीया लतेवेति—महौषधत्वाल्लता यथा रोगार्त्तैरन्वेषणयोग्या भवति तथा सा बालचन्द्रिकाऽपि तदानीं राजवाहनस्य मन्मथज्वरापहरणे महौषधिरेवासीदिति भावः । निटिलतटेत्यादि—शिरसि अञ्जलिपुटं निधाय प्रणमन्तीमित्यर्थः । निषीद

कामज्वरकी चरम सीमापर पहुँच गयी । अब उसका चित्त राजवाहनके अधीन हो गया है । तब वह उसकी दीनावस्थापर विचार करने लगी । और मनमें सोचने लगी कि मुझे राजवाहनको यहाँ अवश्य लाना चाहिये । नहीं तो कामबाणसे यह विद्ध होकर मर जायगी । जब उपवनमें ये दोनों परस्पर अवलोकन कर रहे थे तब कामदेवने विषबाणके द्वारा इन दोनों को एक साथ ही वेध दिया । अतः राजवाहनको यहाँ ले आना कठिन नहीं है—क्योंकि वे भी पीडित हैं । तब कुछ दक्ष सहचारियोंको राजकुमारीकी रक्षापर नियोजित करके बालचन्द्रिका राजकुमार राजवाहनके भवनमें चली गयी । वहाँ जाकर उसने देखा कि; कुसुमायुधके बाणोंसे वेधित हुआ राजवाहनका चित्त बाणोंके धरनेवाले तरकशके समान हो गया है । कामज्वरसे सन्तप्त स्वशरीरके स्पर्शसे मुरझाए हुए फूलोंकी सेजपर बैठकर वह प्राणप्रिया राजपुत्रीके विषयकी बातें कुमार पुष्पोद्भवके साथ कर रहा है । इतनेमें राजकुमारने राजपुत्रीकी प्रियसखी बालचन्द्रिकाको वहाँ देखा तो उसे ऐसा भास हुआ कि वह वृक्षोंके समीप कोई मनोवाञ्छित औषधिकी खोजमें आयी है । उसे देखकर वह कुमार आनन्दित हो गया, उसके सम्मुख पहुँचकर बालचन्द्रिकाने मस्तकपर शोभाके लिए लगे कमलदलके समान अपने हाथों

'इतो निषीद' इति निर्दिष्टसमुचितासनासीनामवन्तिसुन्दरीप्रेषितं सकर्पूरं ताम्बूलं विनयेन ददतीं तां कान्तावृत्तान्तमपृच्छत् । तथा सविनयमभाणि—'देव, क्रीडावने भवदवलोकनकालमारभ्य मन्मथमथ्यमाना पुष्पतल्पादिषु तापशमनमलभमाना वामनेनेवोन्नततरुफलमलभ्यं त्वदुरःस्थलालिङ्गनसौख्यं स्मरान्धतया लिप्सुः सा स्वयमेव पत्रिकामालिख्य 'वल्लभायैनामर्पय' इति मां नियुक्तवती'। राजकुमारः पत्रिकां तामादाय पपाठ—

(२०) 'सुभग कुसुमसुकुमारं जगदनवद्यं विलोक्य ते रूपम् ।
मम मानसमभिलषति त्वं चित्तं कुरु तथा मृदुलम् ॥'

उपविश । वामनेनेति·वामनेन यथा अलभ्यं उन्नततरुफलं लब्धुमिष्यते तद्वत् सापि कामान्धतया विवेकशून्यतया दुर्लभं भवदुरःस्थलालिङ्गनसौख्यं लब्धुमिच्छुरिति भावः । वल्लभाय दयिताय । एनां पत्रिकाम् ।

(२०) सुभगेति—हे सुभग प्रियतम, कुसुममिव सुकुमारं सुकोमलं जगति संसारे अनवद्यं अनिन्द्यं निर्दोषमिति यावत् । ते तव । रूपं सौन्दर्यं वपुर्वा । विलोक्य दृष्ट्वा । मम मानसं कर्तृ । अभिलषति वाञ्छति प्रार्थयति वा यत् त्वं स्वचित्तं मानसं तथास्वरूपवत् । मृदुलमतिपेलवं कुरु विधेहीति । तव वपुरतिकोमलं किन्तु चित्तं ते अतिकठिनमिति भावः ।

को जोड़कर उसे प्रणाम किया । और राजवाहनकी आज्ञा पाकर उचितासनपर जा बैठी । 'आओ यहाँ बैठो' इस कथनके अनन्तर बालचन्द्रिकाने उसे उसकी प्रेयसी अवन्तिसुन्दरी द्वारा प्रदत्त कर्पूर-वासित पान बड़े विनयके साथ अर्पित किये । पानको ग्रहणकर राजवाहनने अपनी कान्ताका समाचार उससे पूछा । बालचन्द्रिका विनीतभावसे कहने लगी-हे देव ! केलिवनमें जिस दिनसे राजपुत्रीने आपको देखा उसी दिनसे कामपीडिता है । यहाँ तक कि, फूल तथा नये-नये पल्लवोंकी सेजें भी उसे सता रहीं हैं । फिर उसने वामन (बौने) के समान ऊँचे वृक्षपर लगे फलको न प्राप्त करनेके समान आपके वक्षःस्थलके आलिंगनसुखकी इच्छासे कामान्ध होकर यह पत्र स्वयं लिखकर आपके समीप मुझे भेजा है-यद्यपि वह आपका आलिंगनसुख अलभ्य समझती है पर कामान्धवश उसे सुगम सोच रही है । पत्र देकर मुझसे कहा-यह पत्र मेरे प्रियतमके समीप ले जाओ । राजकुमारीने पत्र लेकर पढ़ा उसमें लिखा था—

(२०) हे सुभग ! पुष्पके सदृश सुन्दर तथा कोमल तुम्हारे स्वरूपको देखकर मेरा चित्त तुमपर मुग्ध हो गया । तुम अपने चित्तको भी अपने शरीरके समान कोमल कर लो ।

(२१) इति पठित्वा सादरमभाषत—'सखि, छायावन्मामनुवर्तमानस्य पुष्पोद्भवस्य वल्लभा त्वमेव तस्या मृगीदृशो बहिश्चराः प्राणा इव वर्तसे । त्वच्चातुर्यमस्यां क्रियालतायामालवालमभूत् । यत्तवाभीष्टं येन प्रियामनोरथः फलिष्यति तदखिलं करिष्यामि । नताङ्ग्या मन्मनःकाठिन्यमाख्यातम् । यदा केलीवने कुरङ्गलोचना लोचनपथमवर्तत तदैषापहृतमदीयमानसा सा स्वमन्दिरमगात् । सा चेतसो माधुर्यकाठिन्ये स्वयमेव जानाति । दुष्करः कन्यान्तःपुरप्रवेशः । तदनुरूपमुपायमुपपाद्य श्वः परश्वो वा नताङ्गीं संगमिष्यामि । मद्वृत्तान्तमेवमाख्याय शिरीषकुसुमसुकुमाराया यथा शरीरबाधा न जायेत तथाविधमुपायमाचर' इति ।

(२२) बालचन्द्रिकापि तस्य प्रेमगर्भितं वचनमाकर्ण्य संतुष्टा कन्या-

---

(२१) छायया तुल्यं छायावत् यथा छाया पुरुषं सर्वथा अनुसरति तद्वदित्यर्थः । अनुवर्तमानस्य अनुसरतः सर्वदैव मां सेवमानस्येत्यर्थः । बहिश्चराः प्राणाः द्वितीयमिव जीवितम् । क्रिया कार्यं मत्प्रयोजनमित्यर्थः । सैव लता तस्याम् । आलवालं जलसेकभूमिः । (आलवालं विना लतायाः पुष्टिर्यथा न भवति तथा त्वच्चातुर्यं विना मत्प्रयोजनमपि न सेत्स्यतीति भावः) । मम मनसः काठिन्यं कठोरता । अपहृतं चोरितं मदीयं मानसं चित्तं यया सा । माधुर्यं कोमलता च काठिन्यं कठोरता च ते । उपपाद्य कृत्वा श्वः आगामिदिने । परश्वः—द्वितीयदिने ।

(२२) प्रेम्णा गर्भितं प्रेमपूर्णम् । तत्रोद्याने । चकोरस्येव दीर्घे लोचने यस्याः

---

(२१) इस पत्रोत्तरमें राजवाहनने उससे आग्रहके साथ कहा—हे सखि ! पुष्पोद्भव छायाके समान मेरे पास रहता है । उस पुष्पोद्भवकी वल्लभा तुम हो और उस मृगनयनी मेरी प्यारीकी सखी हो तथा उसके बाहरी प्राणोंके सदृश इतस्ततः परिभ्रमण करती हो । इस कार्यरूपी लतामें तुम्हारी चतुरता आलवाल (थाले) का काम करती है । अतः आपकी जो अभिलाषा होगी तथा जो अभीष्ट होगा उसे मैं पूर्णतया सफल करूँगा । यद्यपि वह सुकुमारी मेरे मनको कठोर कहती है परन्तु, मैंने जिस समय उस नतांगीको उस उपवनमें देखा था उसी समयसे वह मेरे मनको चुराकर अपने घर भाग गयी ! वह नतांगी हृदयकी कठिनता तथा मृदुता खूब जानती है । अस्तु कन्याके अन्तःपुरमें प्रविष्ट होना अति दुष्कर है । अतः वहाँ जानेका कोई सरल उपाय सोचकर मैं कल या परसों उनसे मिलूँगा । इस रीति से मेरे वृत्तान्तोंको उसे सुनाकर तुम ऐसी युक्ति करो जिससे शिरीषकुसुमके समान कोमल अंगोंवाली इस राजपुत्रीको कोई कष्ट न होवे ।

(२२) वह बालचन्द्रिका राजवाहनके इस प्रेमपूर्ण सन्देशको वहनकर प्रसन्नचित्त होकर

पुरमगच्छत्। राजवाहनोऽपि यत्र हृदयवल्लभावलोकनसुखमलभत तदुद्यानं विरहविनोदाय पुष्पोद्भवसमन्वितो जगाम। तत्र चकोरलोचनावचितपल्लवकुसुमनिकुरम्बं महीरुहसमूहं शरदिन्दुमुख्या मन्मथसमाराधनस्थानं च नताङ्गीपदपङ्क्तिचिह्नितं शीतलसैकततलं च सुदतीभुक्तमुक्तं माधवीलतामण्डपान्तरपल्लवतल्पं च विलोकयंल्ललनातिलकविलोकनवेलाजनितशेषाणि स्मारंस्मारं मन्दमारुतकम्पितानि नवचूतपल्लवानि मदनाग्निशिखा इव चकितो दर्शंदर्शं मनोजकर्णेजपानामिव कोकिलकीरमधुकराणां क्वणितानि श्रावंश्रावं मारविकारेण क्वचिदप्यवस्थातुमसहिष्णुः परिबभ्राम।

(२३) तस्मिन्नवसरे धरणीसुर एकः सूक्ष्मचित्रनिवसनः स्फुरन्म-

सा तया। अवचितानि छिन्नानि पल्लवानां कुसुमानाञ्च निकुरम्बाणि समूहा यस्य तम्। नताङ्ग्या अवन्तिसुन्दर्याः पदपङ्क्त्या चरणचिह्नेन चिह्नितम्। सुदत्या आदौ भुक्तमुपभुक्तं पश्चान्मुक्तं त्यक्तम्। माधवीलतामण्डपस्यान्तरे मध्ये यत्पल्लवतल्पं किसलयशय्या तत्। ललनातिलकस्य कामिनीभूषणभूताया अवन्तिसुन्दर्या विलोकनवेलायां दर्शनसमये जनित उत्पादितः शेषो येषां तथाभूतानिव वाक्यानीति शेषः। मनोजस्य कामस्य कर्णेजपा मन्त्रिणः सहायास्तेषाम्। कामोद्दीपकानामित्यर्थः।

(२३) धरणीसुरो ब्राह्मणः। सूक्ष्मं श्लक्ष्णं चित्रं नानावर्णं निवसनं वासो

राजपुत्रीके अन्तःपुरमें वापस आ गई। राजपुत्र राजवाहन वहाँसे उठकर वियोगजनित व्यथाके निवारणार्थ केलिवनके उस स्थानपर मनोरञ्जनार्थ चले गये जहाँपर राजकुमारीके प्रथम-प्रथम दर्शन हुए थे और उन्हें आनन्द मिला था। पुष्पोद्भवभी उस समय उनके साथ था। वहाँ चकोर के समान नयनोंवाली अपनी प्रियतमा अवन्तिसुन्दरी द्वारा इकट्ठे किये हुए पुष्पों, पत्रों और वृक्षोंके समूहोंको देखकर उस चन्द्रवदना द्वारा किया हुआ काम-पूजनका स्थान देखा। फिर उस नतांगी कुमारीके पदचिह्नोंसे विभूषित वालुकामय प्रदेश तथा उस सुन्दर दाँतवाली कुमारीके द्वारा उपभुक्त माधवी लतामण्डपके आभ्यन्तरिक स्थानमें पड़ी पत्रोंकी शय्याको देखा। तब प्रथम दर्शनपर उस सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी द्वारा किये गये हाव-भावोंको संस्मरण करके मन्द-मन्द बहनेवाली हवाके झोकोंसे काँपते हुए आमोंको देखा। इन नवीन पेड़ोंके पत्तोंको कामाग्निकी ज्वाला जानकर तथा कामदेवके गुप्तचर कोयल, सुग्गे और भौरोंकी ध्वनियोंको सुनता हुआ वह आश्चर्यान्वित होकर कामदेवकी व्यथासे व्यथित होकर विह्वल हो गया और उस उपवनमें विश्राम करनेमें अशक्त होकर इतस्ततः पर्यटन करने लगा।

(२३) उसी अवसरपर महीन तथा रंगीन वस्त्रधारी एक विप्र वहाँ आ पहुँचा। उसके

णिकुण्डलमण्डितो मुण्डितमस्तकमानवसमेतश्चतुरवेषमनोरमो यदृच्छया समागतः समन्ततोऽभ्युल्लसत्तेजोमण्डलं राजवाहनमाशीर्वादपूर्वकं ददर्श। राजवाहनःसादरम् 'को भवान्, कस्यां विद्यायां निपुणः' इति तं पप्रच्छ। स च 'विद्येश्वरनामधेयोऽहमैन्द्रजालिकविद्याकोविदो विविधदेशेषु राजमनोरञ्जनाय भ्रमन्नुज्जयिनीमद्यागतोऽस्मि' इति शशंस। पुनरपि राजवाहनं सम्यगालोक्य 'अस्यां लीलावनौ पाण्डुरतानिमित्तं किम्' इति साभिप्रायं विहस्यापृच्छत्। पुष्पोद्भवश्च निजकार्यकरणं तर्कयन्नेनमादरेण बभाषे—'ननु सतां सख्यस्याभाषणपूर्वतया चिरं रुचिरभाषणो भवानस्माकं प्रियवस्यो जातः। सुहृदामकथ्यं च किमस्ति?। केलीवनेऽस्मिन्वसन्तमहोत्सवायागताया मालवेन्द्रसुताया राजनन्दनस्यास्य चाकस्मिकदर्शनेऽन्योन्यानुरागातिरेकः समजायत। सततसंभोगसिद्ध्युपायाभावेनासावीदृशीमवस्थामनुभवति' इति। विद्येश्वरो लज्जाभिरामं राजकुमारमुखमभि-

---

यस्य सः। मुण्डितं मस्तकं यस्य तादृशेनापरेण मानवेन समेतो युक्तः। यदृच्छया अकस्मात्। कोविदः पण्डितः। लीलावनौ उद्यानभूमौ। पाण्डुरताया निःश्रीकताया निमित्तं कारणं किम् 'विहारभूमौ तिष्ठन्नपि पाण्डुवदनं किमर्थं बिभर्षि' इति राजवाहनं प्रत्यैन्द्रजालिकस्य प्रश्नः। साभिप्रायं साभिनिवेशम्। सख्यस्य मित्रतायाः। आभाषणं पूर्वं यस्मिंस्तस्य भावस्तया। आभाषणमात्रेणैव सतां मैत्री भवतीति भावः। चिरं दीर्घसमयं यावत्। सुहृदां मित्राणां सकाशे। अकथ्यं अप्रकाश्यम्। अन्योन्यानुरागातिरेकः परस्परप्रेमातिशयः। असौ राजवाहनः। लज्जया

कानोंमें मणिमय कुण्डल लटक रहे थे तथा एक और मनुष्य मुण्डन किये हुए उसके साथमें था। देखनेसे ही वह पटु पुरुष ज्ञात होता था तथा उसकी वेश-भूषा भी भली थी। उसके चेहरेसे उसका तेजःपुंज झलक रहा था। उसने राजवाहनके समीप आकर उसे आशीर्वाद दिया। राजवाहनने भी बड़े विनीतभावसे उससे पूछा—आप कौन हैं तथा आप किस विद्याके पण्डित हैं? उत्तरमें उसने कहा—मेरा नाम विद्येश्वर है। मैं प्रसिद्ध ऐन्द्रजालिक हूँ। अनेक देशोंके राजे-महाराजोंका मनोविनोद कराता हुआ, आज ही आपकी नगरी उज्जयिनीमें भ्रमण करता हुआ, आया हूँ। तत्पश्चात् उसने राजवाहनको एक बार अच्छी रीतिसे देखा तथा हँसते हुए पूछा—इन केलिवनों में आप पाण्डुवदन क्यों दीख रहे हैं? पुष्पोद्भवने, उसके द्वारा अपने काममें सहायता मिलनेकी कामनासे प्रेरित होकर बड़े आदर तथा आग्रहके साथ कहा—हे प्रभो! भद्र पुरुष पहले ही वार्ता शुरू करते हैं। अत एव आप हमारे मित्र हैं क्योंकि आपने पूर्वसे ही मधुरालाप हमसे प्रारम्भ किया है। जब आप सुहृद् हैं तो फिर आपसे गोप-

वीक्ष्य विरचितमन्दहासो व्याजहार—'देव, भवदनुचरे मयि तिष्ठति तव कार्यमसाध्यं किमस्ति । अहमिन्द्रजालविद्यया मालवेन्द्रं मोहयन् पौरजनसमक्षमेव तत्तनयापरिणयं रचयित्वा कन्यान्तःपुरप्रवेशं कारयिष्यामीति वृत्तान्त एष राजकन्यकायै सखीमुखेन पूर्वमेव कथयितव्यः' इति । संतुष्टमना महीपतिरनिमित्तं मित्रं प्रकटीकृतकृत्रिमक्रियापाटवं विप्रलम्भकृत्रिमप्रेमसहजसौहार्दवेदिनं तं विद्येश्वरं सबहुमानं विससर्ज ।

(२४) अथ राजवाहनो विद्येश्वरस्य क्रियापाटवेन फलितमिव मनोरथं मन्यमानः पुष्पोद्भवेन सह स्वमन्दिरमुपेत्य सादरं बालचन्द्रिकामुखेन निजवल्लभायै महीसुरक्रियमाणं संगमोपायं वेदयित्वा कौतुकाकृष्टहृदयः

अभिरामं मनोज्ञदर्शनम् । व्याजहार उवाच । अनिमित्तं निष्कारणम् । प्रकटीकृतं प्रकाशीकृतं कृत्रिमक्रियायां इन्द्रजालकर्मणि पाटवं चातुर्यं येन तम् । विप्रलम्भः प्रतारणं कृत्रिमप्रेम कपटानुरागः सहजसौहार्दं निष्कपटमित्रता—तानि वेत्तीति तं सबहुमानं बहुसत्कारपूर्वकम् ।

(२४) क्रियापाटवेन कार्यकौशलेन । फलितमिव सिद्धप्रायम् । महीसुरेण ब्राह्मणेन ऐन्द्रजालिकेनेत्यर्थः क्रियमाणमनुष्ठीयमानम् । वेदयित्वा ज्ञापयित्वा । चपा

नीय कोई बात नहीं रहनी चाहिये । अतः आप सुनें-एक दिन इस केलिवनमें मालवेशपुत्री राजकुमारी अवन्तिसुन्दरी आयी थी । वसन्तमहोत्सवके निमित्त वह आयी थी तथा मेरे ये सखा राजवाहन भी दैववश उसी समय उपवनमें आ गये । परस्पर अवलोकन करते हुए इन दोनोंमे प्रेम हो गया किन्तु आगे कोई उपाय नहीं दिखलायी पड़ता है जिससे ये दोनों दीर्घ कालिक सुख-भोग प्राप्त कर सकें। इसी हेतु इनकी यह क्षीण दशा हो रही है । लज्जासे मनोज्ञ राजकुमारके मुखको देखकर मन्द-मन्द मुसकानसे विद्येश्वरने कहा—हे देव! आपका अनुचर मैं उपस्थित हूँ फिर आपको किस बातकी चिन्ता । संसारमें क्या असाध्य है—कुछ भी नहीं । आप किसी सखी द्वारा उस राजपुत्रीके समीप यह कहलादें कि-मैं इन्द्रजाल विद्या द्वारा मालवेश मानसारको मोहित करके समस्त पुरवासियोंके समक्ष तुम्हारे साथ विवाह करके तुम्हारे मन्दिरमें प्रविष्ट होऊंगा । ऐन्द्रजालिककी बातोंपर प्रसन्न होकर राजवाहनने उस निष्कारण मित्र तथा कृत्रिम क्रिया-कुशलज्ञ, विप्रलम्भ कृत्रिम प्रेम तथा सहज सौहार्द आदि क्रियाओंको जाननेवाले उस विप्रको सम्मानके साथ विदा किया ।

(२४) तदनन्तर विद्येश्वरकी कला-कुशलतासे मानो राजवाहनकी मनोकामना पूर्ण हो गयी ऐसा सोचकर राजवाहन अपने घर पुष्पोद्भवके साथ-साथ लौटा तथा वहाँपर बालचन्द्रिकाको बुलवाया और उस विप्रद्वारा उपदेशित वे सब युक्तियाँ बता दीं । फिर उत्सुकतापूर्ण

'कथमिमां क्षपां क्षपयामि' इत्यतिष्ठत् । परेद्युः प्रभाते विद्येश्वरो रसभावरीतिगतिचतुरस्तादृशेन महता निजपरिजनेन सह राजभवनद्वारान्तिकमुपेत्य दौवारिकनिवेदितनिजवृत्तान्तः सहसोपगम्य सप्रणामम् 'ऐन्द्रजालिकः समागतः' इति द्वाःस्थैर्विज्ञापितेन तद्दर्शनकुतूहलाविष्टेन समुत्सुकावरोधसहितेन मालवेन्द्रेण समाहूयमानो विद्येश्वरः कक्षान्तरं प्रविश्य सविनयमाशिषं दत्त्वा तदनुज्ञातः परिजनताड्यमानेषु वाद्येषु नदत्सु, गायकीषु मदनकलकोकिलामञ्जुलध्वनिषु, समधिकरागरञ्जितसामाजिकमनोवृत्तिषु पिच्छिकाभ्रमणेषु, सपरिवारं परिवृत्तं भ्रामयन्मुकुलितनयनः क्षणमतिष्ठत् । तदनु विषमं विषमुल्बणं वमन्तः फणालङ्करणा रत्नराजिनीराजित-

रात्रिम् । क्षपयामि यापयामि । रसाः शृङ्गारादयः, भावोऽभिप्रायादयः, रीतिगतयः इन्द्रजालक्रियाः तत्र चतुरः । तादृशेन तत्तद्गुणवता । दौवारिकैः द्वारपालैर्निवेदितः प्रकाशितो निजवृत्तान्तः स्वपरिचयो येन सः । समुत्सुकः द्रष्टुमुत्कण्ठितोऽवरोधो राजस्त्रियस्तेन । मालवेन्द्रेण मानसारेण । नदत्सु ध्वनत्सु । मदकलानां मदमत्तानां कोकिलानामिव मञ्जुलो मनोहरो ध्वनिर्यासां तासु । गायकीविशेषणमेतत् । समधिकेनातिशयितेन रागेणानुरागेण रञ्जिता आकृष्टा सामाजिकानां सभ्यानां मनोवृत्तिर्येन तेषु । पिच्छिकाभ्रमणेष्वित्यस्य विशेषणम् , पिच्छिका ऐन्द्रजालिकानामुपकरणभूताः मयूरादिपुच्छगुच्छाः । ऐन्द्रजालिकाः पिच्छिकां भ्रामयित्वा जनान् मोहयन्तीति प्रसिद्धम् । परिवृत्तं मण्डलाकारम् । मुकुलितनयनो मुद्रितलोचनः । उल्बणं तीव्रम् । वमन्तः उद्गिरन्तः । फणा फटा अलंकरणं भूषणं येषां ते । रत्नराजिभिः

हृदयोंसे विचार करते हुए उन दोनोंने वह रात व्यतीत की । दूसरे दिन प्रभातकालमें रस-भाव-रीति-व्यवहार में कुशल वह विप्र विद्येश्वर अपने अनेकों परिजनोंके साथ राजभवनके द्वारपर आ पहुँचा । द्वारपालके द्वारा अपने आगमनकी सूचना उसने महाराजके समीप भेजी। द्वारपालने जाकर राजासे प्रणाम करके कहा-हे देव ! दरवाजेपर एक ऐन्द्रजालिक अपने चतुर पात्रोंके साथ आया है और जादूके खेल दिखलाना चाहता है । राजा मानसार तथा रानियोंने बड़ी कूतूहलताके साथ उसे बुलवाया । वह राजाके समीप गया तथा दूसरे कक्षको लांघकर उसने राजा मानसारको आशीर्वाद दिया । उसी समय विद्येश्वरकी आज्ञासे उसके दक्ष पात्र कई प्रकारके बाजे बजाने लगे और गानेवाली मतवाले-सुरीले कोकिल कण्ठोंसे चुटीले गीत गाने लगीं । विद्येश्वर स्वयं मोरपङ्खोंके मूर्च्छलको मन्त्र पढ़-पढ़कर घुमाने लगा जिससे दर्शकोंकी चित्तवृत्तियाँ उसकी ओर अनुरञ्जित हो जावें । वह आँखे बन्दकर मौन होकर घड़ीभर बैठ गया तथा उसके साथी उसकी परिक्रमा करने लगे । तब भीड़के समक्ष उसने बड़े-बड़े

राजमन्दिराभोगा भोगिनो भयं जनयन्तो निश्चेरुः ।

(२५) गृध्राश्च बहवस्तुण्डैरहिपतीनादाय दिवि समचरन् । ततोऽ जन्मा नरसिंहस्य हिरण्यकशिपोर्दैत्येश्वरस्य विदारणमभिनीय महाश्चर्या न्वितं राजानमभाषत—'राजन्, अवसानसमये भवता शुभसूचकं द्रष्टुमुचि तम् । ततः कल्याणपरम्परावाप्तये भवदात्मजाकारायास्तरुण्या निखिल लक्षणोपेतस्य राजनन्दनस्य विवाहः कार्यः' इति । तदवलोकनकुतूहले महीपालेनानुज्ञातः स संकल्पितार्थसिद्धिसंभावनसम्फुल्लवदनः सकलमो हजनकमञ्जनं लोचनयोर्निक्षिप्य परितो व्यलोकयत् । सर्वेषु 'तदैन्द्रजालि कमेव कर्म' इति साद्भुतं पश्यत्सु रागपल्लवितहृदयेन राजवाहनेन पू

शिरःस्थितरत्नश्रेणिभिः नीराजित उज्ज्वलीकृतो राजमन्दिरस्याभोगः प्रदेशो यैस्ते भोगिनः सर्पाः । निश्चेरुः चरन्ति स्म ।

(२५) गृध्राः पक्षिविशेषाः । तुण्डैर्मुखैः । अहिपतीन् सर्पश्रेष्ठान् । दिवि गगने अग्रजन्मा ब्राह्मणः । विदारणं नखैश्छेदनम् । अभिनीय दर्शयित्वा । अवसानसम क्रीडासमाप्तौ । कल्याणानां परम्परा श्रेणिस्तस्या अवाप्तये प्राप्तये । भवत आत्मज नन्दिनी तस्या आकार इवाकारो यस्यास्तस्याः भवत्कन्यासदृश्या इत्यर्थः । निखिल लक्षणोपेतस्य सर्वसुलक्षणयुक्तस्य । अनुज्ञात आदिष्टः । संकल्पितस्य अभीष्ट

सांपोंको सहसा निकालना शुरू किया उन सांपोके मुखोंसे विष निकल रहा था उनके मस्त पर रखी मणियाँ राजमन्दिरके आँगनको देदीप्यमान बना रही थीं । उन सर्पोंको देख सभी दर्शक डर गये और कुछ-कुछ दूर हट गये ।

(२५) दर्शकोंको भयान्वित देखकर उस विद्येश्वरने बड़े-बड़े गृध्र उत्पन्न किये जो अप बड़े बड़े चंगुलोंमें उन विषधर सांपोंको पकड़कर आकाशमें उड़ने लगे । फिर उसने नृसिं भगवान्को उत्पन्न कराया तथा उनके द्वारा हिरण्यकशिपु दैत्येश्वरके विदारणका अति आश्च यँकारी रूपक दर्शकोंको दिखाकर मुग्ध किया और राजासे कहा—इन्द्रजालके सभी खेलों पश्चात् एक मांगलिक रूपक देखना सर्वथा उचित है । इस शुभ परम्परासूचक खेलको कल्या परम्परामें मैं आपकी पुत्रीके समान स्वरूपवाली युवतीका विवाह सभी तरहके राज लक्षणों युक्त एक राजकुमारसे कराऊंगा । उस रूपकको दखनेको राजा मानसारको प्रबल उत्कं हुई । अपनी पूर्वसंकल्पित मनोभिलाषाको पूर्ण करनेवाली राजाज्ञा प्राप्त करके विद्येश्वर प्रस चित्त हो गया और मुख चमक उठा । तत्काल ही उसने डिब्बीसे समस्त जनोंको मोहि करनेवाला अंजन निकाला और उसे अपनी दोनों आँखोंमें लगा लिया । तथा चारों ओर देख लगा । सब लोग यह समझने लगे कि यह भी कोई जादूका कार्य है तथा विस्मित होकर देखने लगे । रागपल्लवित राजवाहन द्वारा पहलेसे संकेतित राजकुमारी बहुत तरहके आभू

सङ्केतसमागतामनेकभूषणभूषिताङ्गीमवन्तिसुन्दरीं वैवाहिकमन्त्रतन्त्रनैपुण्येनाग्निं साक्षीकृत्य संयोजयामास । क्रियावसाने सति 'इन्द्रजालपुरुषाः, सर्वे गच्छन्तु भवन्तः' इति द्विजन्मनोच्चैरुच्यमाने सर्वे मायामानवा यथायथमन्तर्भावं गताः । राजवाहनोऽपि पूर्वकल्पितेन गूढोपायचातुर्येणैन्द्रजालिकपुरुषवत्कन्यान्तःपुरं विवेश । मालवेन्द्रोऽपि तदद्भुतं मन्यमानस्तस्मै वाडवाय प्रचुरतरं धनं दत्त्वा विद्येश्वरम् 'इदानीं साधय' इति विसृज्य स्वयमन्तर्मन्दिरं जगाम । ततोऽवन्तिसुन्दरी प्रियसहचरीवरपरिवारा वल्लभोपेता सुन्दरं मन्दिरं ययौ । एवं दैवमानुषबलेन मनोरथसाफल्यमुपेतो राजवाहनः सरसमधुरचेष्टाभिः शनैःशनैर्हरिणलोचनाया

र्थस्य प्रयोजनस्य (अवन्तिसुन्दरीराजवाहनयोर्विवाहरूपस्येत्यर्थः) सिद्धेः सम्भावनेन सम्भवतया संफुल्लं हर्षविकसितं वदनमाननं यस्य सः । सकलमोहजनकं सर्वेषां द्रष्टृणां भ्रमोत्पादकम् । अञ्जनं कज्जलम् । लोचनयोः स्वनेत्रयोः । परितः समन्तात् । पूर्वसंकेतेन प्राक्सूचनानुसारेण समागतामुपस्थिताम् । वैवाहिका विवाहसम्बन्धिनो ये मन्त्रतन्त्रास्तेषु यन्नैपुण्यं पाटवं तेन । यथाविधीत्यर्थः । मायामानवाः लेपतपुरुषाः । अन्तर्भावमदृश्यताम् । वाडवाय ब्राह्मणाय । 'द्विजात्यग्रजन्मभूदेववाडवाः' इत्यमरः । साधय गच्छ । दैवमदृष्टजनितं मानुषमैन्द्रजालिकविहितं च, बलं तेन । अपनयन् दूरीकुर्वन् । उपनयन् प्रापयन् । रहः निर्जने । विश्रम्भं विश्वासम् । संलापे इति शेषः । संलापः परस्परालापः । तदनुलापेति—तस्या अनुलाप एव

वस्त्रोंको पहनकर आयी हुई थी । उसके साथ वैवाहिक मन्त्रको पढ़ते हुए अग्निको साक्षी बनाकर राजवाहनका विवाह अवन्तिसुन्दरीसे कर दिया । इन्द्रजालके इस विवाहरूपी प्रदर्शनकी समाप्तिपर उस विप्रने कहा—'हे ऐन्द्रजालिक पात्रो ! आप लोग अब जायें ।' यह सुनकर वे सभी मायावी मानव धीरे-धीरे अदृश्य हो गये । पहलेसे निश्चित तथा गुप्त वेशधारी एवं छिपनेकी कलामें प्रवीण राजवाहन भी मायावी पुरुषके समान कन्याके अन्तःपुरमें चले गये । मालवनाथ मानसारने उस ऐन्द्रजालिकके अद्भुत कार्मोंकी प्रशंसा की तथा उसे प्रचुर धन देकर कहा—हे ऐन्द्रजालिक अब आप जायें । आपके खेल अद्भुत थे । फिर मानसार भी अपने राजप्रासादमें चले गये । तब अपनी प्रिय सखियोंके साथ अवन्तिसुन्दरी कुमारी भी अपने प्राणेश्वरको साथ लिये अन्तःपुरमें आ गयी । इस रीतिसे दैवी और मानुषी पराक्रमद्वारा अपना मनोरथ साधकर अपनी सरस और सुललित क्रियाओंद्वारा राजवाहनने धीरे-धीरे उस मृगलोचनाकी लज्जाको दूर कर दिया । फिर एकान्त में रतिसुखका आनन्द लेते हुए वार्तालाप द्वारा उसके चित्तमें अपने प्रति विश्वास उत्पन्न कराया । तदनन्तर उस

लज्जामपनयन्सुरतरागमुपनयन् रहो विश्रम्भमुपजनयन् संलापे तदनुला पीयूषपानलोलश्चित्रचित्रं चित्तहारिणं चतुर्दशभुवनवृत्तान्तं श्रावयामास

इति श्रीदण्डिनः कृतौ दशकुमारचरितेऽवन्तिसुन्दरीपरिणयो नाम पञ्चम उच्छ्वासः ।

इति पूर्वपीठिका



पीयूषममृतं तस्य पाने सानुरागाकर्णने लोलश्चञ्चलः । चित्रचित्रम् अत्याश्चर्यजनक चतुर्दशानां भुवनानां वृत्तान्तमाख्यायिकाम् श्रावयामास । अवन्तिसुन्दरीमि शेषः । आख्यायिकाश्रवणे युवतीनां बलवती स्पृहा भवतीति ध्येयम् ।

इति श्रीताराचरणभट्टाचार्यकृतायां बालविबोधिनीसमाख्यायां दशकुमारचरितव्याख्यायां पञ्चमोच्छ्वासः ।

समाप्ता पूर्वपीठिका



राजपुत्रीकी सुधामयी मधुर वचनावली एवं बहुत तरहकी मीठी बातोंको जिज्ञासासे सु फिर उसे चित्तहारी चौदहों भुवनोंकी मनोहर आख्यायिकाएँ सुनायीं—और समयों आनन्द करने लगा ।

इस प्रकारसे दशकुमारचरितके पञ्चमोच्छ्वासकी बालक्रीड़ा नामक हिन्दी टीका समाप्त

पूर्वपीठिका समाप्त ।



॥ श्रीः ॥

दशकुमारचरितम्

उत्तरपीठिकायाम्

प्रथमोच्छ्वासः

(१) श्रुत्वा तु भुवनवृत्तान्तमुत्तमाङ्गना विस्मयविकसिताक्षी सस्मितमिदमभाषत—'दयित, त्वत्प्रसादादद्य मे चरितार्था श्रोत्रवृत्तिः। अद्य मे मनसि तमोपहस्त्वया दत्तो ज्ञानप्रदीपः। पक्वमिदानीं त्वत्पादपद्मपरिचर्या-

---

❀ बालविबोधिनी ❀

(१) उत्तमा निखिलनायिकागुणभूषिता अङ्गना कामिनी अवन्तिसुन्दरीति शेषः। विस्मयेन नानाविधाख्यायिकाश्रवणजनिताश्चर्यरसेन विकसिते प्रफुल्ले अक्षिणी नयने यस्याः सा। सस्मितं सहासम्। चरितार्था सफला। श्रोत्रवृत्तिः श्रवणेन्द्रियमित्यर्थः। तमः अपहन्तीति तमोपहोऽज्ञाननाशकः। ज्ञानमेव प्रदीपः। तव पादपद्मयोश्चरणकमलयोः परिचर्यायाः सेवायाः फलम् परिपाकः। त्वत्प्रसादस्य भुवनवृत्तान्तश्रावणरूपस्येत्यर्थः। किमुपकृत्य कीदृशमुपकारं कृत्वा। प्रत्युपकृतवती कृतप्रत्युपकारा। अभवदीयं न भवदीयम्। मत्सम्बद्धं मदीयम्-यतोऽहमपि भवत एवातो यदेव मदीयं तदपि भवदीयमेवेति भावः। अथवा पक्षान्तरे पूर्वापरितोषे इत्याशयः। अस्यापि जनस्य ममेत्यर्थः। क्वचित् कुत्रापि। प्रभुत्वं

❀ बालक्रीडा ❀

(१) चौदहों भुवनों का वृत्तान्त सुनकर उस सुन्दरी रमणी के नेत्र आश्चर्य से विकसित हो उठे। और उसने मुसकराकर कहा—प्रियतम! आप की कृपा से आज मैंने सब बातें सुन लीं। आज आपने मेरे अँधेरे हृदय में ज्ञान का दीपक जला दिया। आप के चरणों की सेवा का फल आज परिपक्व हो गया। आपने मेरे पर जो कृपा की है, उस के बदले मैं कौन उपकार करके अपने को प्रत्युपका-

फलम्। अस्य च त्वत्प्रसादस्य किमुपकृत्य प्रत्युपकृतवती भवेयम्। अभ-वदीयं हि नैव किञ्चिन्मत्सम्बद्धम्। अथवास्त्येवास्यापि जनस्य कश्चित्प्र-भुत्वम्। अशक्यं हि मदिच्छया विना सरस्वतीमुखग्रहणोच्छेषणीकृतो दशनच्छद एष चुम्बयितुम्।

(२) 'अम्बुजासनास्तनतटोपभुक्तमुरःस्थलं चेदमालिङ्गयितुम्' इति प्रियोरसि प्रावृडिव नभस्युपास्तीर्णगुरुपयोधरमण्डला प्रौढकन्दलीकुड्म-

❀ बालविबोधिनी ❀

स्वातन्त्र्यम्—मदाज्ञया विना तत्तद्भवतापि कर्तुं न शक्यत इति भावः। तदे विशदीकरोति–अशक्यमित्यादिना। सरस्वत्या वाण्या मुखग्रहणेन आननाधिकारे उच्छेषणीकृत उच्छिष्टीकृतः। दशनच्छदस्य विशेषणम्। सरस्वत्या तु प्रागेव भ-तो वदनकमलमधिकृतम्–मुखमधिष्ठाय सा वसतीत्यर्थः। दशनच्छद ओष्ठः। चुम्बयितुमिति णिजन्तम्। अन्यया कामिन्येति शेषः।

(२) अम्बुजासना लक्ष्मीस्तस्याः स्तनतटाभ्यां पयोधराभ्यामुपभुक्तं सं-लिङ्गितमित्यर्थः। उरःस्थलं वक्षःस्थलं राजवाहनस्येत्यर्थः। आलिङ्गयितुमिति णिजन्तम्—अन्ययेति शेषः। इति उक्त्वेति शेषः। प्रावृट् वर्षा तद्वत्। नभसि आकाशे। उपास्तीर्णं विस्तारितमिति प्रावृट्पक्षे अवन्तिसुन्दरीपक्षे तु स्थापितं गु विशालमुभयत्र समानम् पयोधरमण्डलमेकत्र मेघसमूहोऽन्यत्र स्तनयुगलं य-सा। प्रौढायाः पुष्टायाः कन्दल्या द्रोणपर्णीति प्रसिद्धायाः कुड्मलं मुकुलमिव। ह

❀ बालक्रीडा ❀

रिणी समझूँ? मेरे पास तो कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जो आपकी न हो। फि भी ध्यान से देखने पर मुझे ऐसा लगता है कि मेरा आधिपत्य भी किसी वस् पर अवश्य है। सरस्वती के द्वारा जूठा किया हुआ आपका यह ओठ मेरे सिवा और कोई भी स्त्री नहीं चूम सकती। क्योंकि इस पर मेरी प्रभुता है।

(२) दूसरे लक्ष्मी के स्तनों से संस्पृष्ट आप के इस उरःस्थल का आलिंगन मेरे सिवाय और कोई नहीं कर सकता।' ऐसा कहकर उसने सावन मा के साथ वर्षा ऋतु की तरह बड़े-बड़े कुचों वाली अपनी छाती उसके हृदय सटा दी और द्रोणपर्णी की कोंपल के समान प्रेमातिरेक से कुछ लालिमा लि

लमिव रूढरागरूषितं चक्षुरुल्लासयन्ती बर्हिबर्हावलीविडम्बयता कुसुमचन्द्रकशारेण मधुकरकुलव्याकुलेन केशकलापेन स्फुरदरुणकिरणकेसरकरालं कदम्बमुकुलमिव कान्तस्याधरमणिमधीरमाचुचुम्ब।

(३) तदारम्भस्फुरितया च रागवृत्त्या भूयोऽप्यावर्ततातिमात्रचित्रो-

❀ बालविबोधिनी ❀

उत्पन्नो यो रागो रक्तिमा अनुरागश्च तेन रूषितं भूषितम्। चक्षुर्विशेषणमिदम्। तादृशं चक्षुरुल्लासयन्ती विशदीकुर्वाणा; बर्ही मयूरस्तस्य बर्हावलीः पिच्छपंक्तीः विडम्बयता अनुकुर्वता। कुसुमानि शिरःस्थितपुष्पाण्येव चन्द्रिका मेचकास्तैः शारेण विचित्रेण। मधुकरकुलव्याकुलेन कुसुमामोदलुब्धभ्रमरव्याप्तेन। सर्वमेतत्केशकलापस्य विशेषणम्। केशकलापेनेति उपलक्षणे तृतीया। तथाविधकेशपाशोपलक्षिता अवन्तिसुन्दरीत्यर्थः। स्फुरदिति—स्फुरन्तः शोभमाना अरुणा रक्तवर्णाः किरणा एव केसराणि किञ्जल्कास्तैः करालं दन्तुरम्। अत एव कदम्बसाम्यमस्य। अधरमणेर्विशेषणमेतत्। कदम्बमुकुलं नीपकलिकामिव। कान्तस्य दयितस्य राजवाहनस्येत्यर्थः। अधरो मणिरिव तम् अधरमणिमधरबिम्बम्। अधीरमवशं यथा तथा आचुचुम्ब चुम्बितवती।

(३) तदारम्भेति—तस्यारम्भस्तदारम्भस्तेन चुम्बनारम्भेण स्फुरितया उद्दीप्तया। रागवृत्त्या अनुरागसमृद्ध्या। भूयोऽपि बाहुल्येनेति भावः। आवर्त्तत प्रवृत्तोऽभवत्। अतिमात्रमत्यर्थं चित्रेण नानाविधेन विस्मयोत्पादकेन वा उपचारेण सुरतसाधनेन शीफरो रमणीयः। सुरतस्य खेदः श्रमस्तेन सुप्तयोः निद्रितयोः।

❀ बालक्रीडा ❀

हुए लोचनों से टकटकी बाँधकर निहारने लगी। उसके केशपाश में जो फूल गुँथे थे, वे मयूरपंख के चमकीले चन्द्रक के समान चमचमाते मालूम पड़ते थे। उन फूलों का मधुपान करने के लिए लोभी भौंरों का झुण्ड मँडरा रहा था। इसी समय भावावेश से अधीर होकर उसने कदम्ब की कोंपल के सदृश लाल लाल अपने प्रियतम के ओठ चूम लिये।

(३) इस चुम्बन से उस की कामवासना उद्दीप्त हो उठी और वह उस के साथ भोग-विलास करने लगा। बहुत देर तक विलास करके थक जाने

पचारशीफरो रतिप्रबन्धः। सुरतखेदसुप्तयोस्तु तयोः स्वप्ने बिसगुणनिगडितपादो जरठः कश्चिज्जालपादोऽदृश्यत। प्रत्यबुध्येतां चोभौ।

(४) अथ तस्य राजकुमारस्य कमलमूढशशिकिरणरज्जुदामनिगृहीतमिव रजतशृङ्खलोपगूढं चरणयुगलमासीत्। उपलभ्यैव च 'किमेतत्' इत्यतिपरित्रासविह्वला मुक्तकण्ठमाचक्रन्द राजकन्या। येन च तत्सकल-

❀ बालविबोधिनी ❀

तयोः अवन्तिसुन्दरीराजवाहनयोः। स्वप्ने स्वप्नावस्थायाम्। विसगुणेन मृणालतन्तुना निगडितौ वद्धौ पादौ चरणौ यस्य सः। जरठो वृद्धः। जालपादो हंसः। अदृश्यत ताभ्यां दृष्टोऽभवदित्यर्थः। प्रत्यवुध्येतां जागरितौ।

(४) अथ हंसदर्शनानन्तरम्। कमलेन पद्मेन मूढो भ्रान्तो यः शशी चन्द्रस्तस्य किरण एव रज्जुदाम गुणसमूहस्तेन निगृहीतं वद्धमिव—इदं कमलमिति भ्रान्त्या चन्द्रः स्वमयूखजालेन रज्ज्वा चरणयुगलं ववन्धेति भावः। चन्द्रपद्मयोः वैरं तु प्रसिद्धम्। रजतशृङ्खलया उपगूढं वेष्टितम्। उपलभ्य ज्ञात्वा। किमेतत्? एतत् किं जातमिति अतिपरित्रासेन अत्यन्तभयेन विह्वला व्याकुला। मुक्तकण्ठं उच्चैः। आचक्रन्द रुरोद। येन आक्रन्देन। कन्यान्तःपुरं कन्यानिवासः। अग्निना अनलेन परीतं व्याप्तम्। पिशाचेनोपहतं भूताविष्टम्। वेपमानं कम्पमानम्। अनिरूप्येति—न निरूप्यमाणो न निर्णीयमानः तदात्वस्य तत्कालस्य आय-

❀ बालक्रीडा ❀

पर जब वे दोनों सो गये तो उन्होंने स्वप्न में एक वृद्ध हंस को देखा। जिसके पैर मृणालतन्तु से बंधे हुए थे। इसी समय उन दोनों की आँखें खुल गयीं।

(४) उठकर राजकुमार ने देखा कि कमल के भ्रम से चन्द्रमा की किरणों के समान चाँदी की जंजीर से उसके पैर जकड़े हुए हैं। राजकुमारी ने अपने प्रियतम को जो इस दशा में देखा तो अत्यन्त भयभीत होकर बड़े जोर से चीख उठी। उसका चीत्कार सुनकर राजकन्या का सारा अन्तःपुर व्याकुल हो उठा और इस प्रकार कोलाहल मचने लगा—जैसे आग लग गयी हो अथवा पिशाचों की विशाल सेना ने आक्रमण कर दिया हो। वहाँ के सब लोग भय के मारे काँप रहे थे। उस समय लोगों को न यही सूझ रहा था कि इस समय क्या

मेव कन्यान्तःपुरमग्निपरीतमिव पिशाचोपहतमिव वेपमानमनिरूप्यमाणतदात्वायतिविभागमगण्यमानरहस्यरक्षासमयमवनितलविप्रविध्यमानगात्रमाक्रन्दविदीर्यमाणकण्ठमश्रुस्रोतोऽवगुण्ठितकपोलतलमाकुलीबभूव ।

(५) तुमुले चास्मिन्समयेऽनियन्त्रितप्रवेशाः 'किं किम्' इति सहसोपसृत्य विविशुरन्तर्वंशिकपुरुषाः । ददृशुश्च तदवस्थं राजकुमारम् । तद-

---

❀ बालविबोधिनी ❀

तेरुत्तरकालस्य च विभागः कृत्यं येन तत् । तत्कालस्य तदात्वं स्यादुत्तरः काल आयतिरित्यमरः । न गण्यमानः विचार्यमाणः रहस्यस्य निर्जनोत्पन्नस्य विषयस्य रक्षायाः समयो व्यवस्था येन तत्—रहस्यरक्षार्थं केनापि न यत्यत इति भावः । अवनितले भूतले विप्रविध्यमानं ताड्यमानं गात्रं शरीरं यस्य तत् । आक्रन्देन रुदितेन विदीर्यमाणः भिद्यमानः कण्ठो यस्य तत् । सर्वमेतत्कन्यान्तःपुरमित्यस्य विशेषणम् । आकुलीबभूव व्याकुलं सञ्जातम् ।

(५) तुमुले संकुले । न नियन्त्रितो निवारितः प्रवेशो येषां ते—अनिवारितप्रवेशाः । अन्तर्वंशिकपुरुषाः अन्तःपुराधिकृताः । अन्तःपुरे त्वधिकृतः स्यादन्तर्वंशिको जन इत्यमरः । तदवस्थमिति—सा अवस्था यस्येति विग्रहः । शृङ्खलितचरणयुगलम् । तदनुभावेति–तस्य राजकुमारस्य अनुभावेन प्रतापेन निरुद्धा प्रति-

❀ बालक्रीडा ❀

करना चाहिए और न वे यही कल्पना कर पा रहे थे कि आगे चलकर क्या किया जायगा। उन लोगों को इसका भी कोई उपाय नहीं दिखायी दे रहा था कि राजकुमारी को इस लाञ्छन से किस प्रकार बचाया जाय। सब लोग गला फाड़-फाड़ कर चिल्ला रहे थे और उनके नेत्रों द्वारा इतने प्रवल वेग से आँसू वह रहा था कि सब का कपोलप्रदेश आँसुओं से भींग गया था।

(५) इस प्रकार हंगामा मचने पर सभी पुराने नौकर-चाकर 'क्या बात है, क्यों शोर मच रहा है' कहते हुए भीतर घुस आये और उन्होंने बंधन में बँधे हुए राजकुमार को देख लिया। राजपुरुषों की तो हिम्मत पड़ी नहीं कि

नुभावनिरुद्धनिग्रहेच्छास्तु सद्य एव ते तमर्थं चण्डवर्मणे निवेदयाञ्चक्रुः।

(६) सोऽपि कोपादागत्य निर्दहन्निव दहनगर्भया दृशा निशाम्योत्पन्नप्रत्यभिज्ञः 'कथं स एवैष मदनुजमरणनिमित्तभूतायाः पापाया बालचन्द्रिकायाः पत्युरत्यभिनिविष्टवित्तदर्पस्य वैदेशिकवणिक्पुत्रस्य पुष्पोद्भवस्य मित्रं रूपमत्तः कलाभिमानी नैकविधविप्रलम्भोपायपाटवावर्जि-

❀ बालविबोधिनी ❀

हता निग्रहेच्छा पराभवाभिलाषो येषां ते । ते अन्तर्वंशिकपुरुषाः । अर्थविषयम् ।

(६) सोऽपि चण्डवर्माऽपि । निर्दहन्निव भस्मीकुर्वन्निव । दहनोऽग्निर्गर्भे मध्ये यस्यास्तस्या । दृशा नेत्रेण । निशाम्य अवलोक्य । उत्पन्ना प्राप्ता प्रत्यभिज्ञा सोऽयमित्याकारिका स्मृतिर्यस्य सः । मदनुजस्य दारुवर्मणो मरणस्य मृत्योर्निमित्तभूतायाः कारणभूतायाः । पत्युः स्वामिनः । अति अतिशयेन अभिनिविष्ट उत्पन्नो वित्तदर्पो धनगर्वो यस्य तथाभूतस्य । मित्रं सखा । नैकविधेषु नानाप्रकारेषु विप्रलम्भस्य परवञ्चनस्योपायेषु यत्पाटवं कौशलं तेनावर्जितो वशीकृतो मूढोऽज्ञो यः पौरजनस्तेन मिथ्यारोपितो वितथो निष्फलो देवतानुभावो दैवप्रभावो यस्मिन् सः ।

❀ बालक्रीडा ❀

राजकुमारको पकड़ लें, इस वास्ते वे लोग चण्डवर्मा के पास दौड़ गये और उसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया ।

(६) उसने जैसे ही यह खबर सुनी, तुरन्त कुपित होकर अन्तःपुर में जा पहुंचा और आग उगलतीं हुई लाल-लाल आँखों से वहाँ की सब परिस्थिति देखते ही समझ ली । उसी आवेश में वह कहने लगा-'हुँ, यही वह दुष्ट है ? जिस के कारण मेरा छोटा भाई मारा गया था, उस बालचन्द्रिका के पति पुष्पोद्भव बनिये का मित्र क्या यही है ? जिस को अपने धन पर बड़ा गर्व था । जो अपने रूप पर बड़ा गर्व करता था और जो अपने को असाधारण कलाकार समझता था, वह क्या यही है ? जिसने ठगहारी के अनेक ढंग रचकर मूर्ख पुरवासियों की दृष्टि में अपने को देवता साबित कर दिया था ? जो कपटी धर्मका आडम्बर रचकर जन साधारण को धोखा देता फिरता था ? जिस ने छिप-छिप कर न जाने

तमूढपौरजनमिथ्यारोपितवितथदेवतानुभावः कपटधर्मकञ्चुकौ निगूढपापशीलश्चपलो ब्राह्मणब्रुवः ।

(७) कथमिवैनमनुरक्ता मादृशेष्वपि पुरुषसिंहेषु सावमाना पापेयमवन्तिसुन्दरी । पश्यतु पतिमद्यैव शूलावतंसितमियमनार्यशीला कुलपांसनी' इति निर्भर्त्सयन्भीषणभ्रुकुटिदूषितललाटः काल इव काललोहदण्डकर्कशेन बाहुदण्डेनावलम्ब्य हस्ताम्बुजे रेखाम्बुजरथाङ्गलाञ्छने राजपुत्रं सरभसमाचकर्ष ।

❀ बालविबोधिनी ❀

कपटं छलमेव धर्मकञ्चुकं आवरणं यस्य सः । निगूढपापशीलः यः खलु गुप्तरूपेण पापमाचरतीत्यर्थः । ब्राह्मणब्रुवो ब्राह्मणाधमः ।

(७) कथमिवेति--कथमिव केन प्रकारेण । एनं राजवाहनम् । अनुरक्ता जातेति शेषः । पुरुषसिंहेषु पुरुषश्रेष्ठेषु । सावमाना सतिरस्कारा । पापा पापशीला । शूले अवतंसितमारोपितम् । अनार्यं शीलं यस्याः सा—दुष्टस्वभावा । कुलपांसनी कुलदूषणी । भीषणया भ्रुकुट्या दूषितं ललाटं यस्य सः । कालो यमः । कालः कृष्णवर्णो यो लोहदण्डस्तद्वत् कर्कशेन कठोरेण । बाहुदण्डेनेत्यस्य विशेषणम् । रेखारूपाणि अम्बुजानि पद्मानि, रथाङ्गानि चक्राणि च लाञ्छनानि चिह्नानि ययोस्तादृशे । हस्ताम्बुजे इत्यस्य विशेषणम् अवलम्ब्य इत्यस्य च कर्म । सरभसं सवेगम् । क्रियाविशेषणमिदम् ।

❀ बालक्रीडा ❀

कितने पाप किये थे ? जो स्वभाव का अतिशय चंचल है और अपने को ब्राह्मण कहता है, वह दुष्ट यही है ?

(७) कुछ समझ में नहीं आता कि यह पापिन अवन्तिसुन्दरी हम जैसे पुरुषसिंहों का अपमान करके इससे क्यों प्रेम करती है । अच्छा, आज ही तो यह कुलकलंकिनी अपने प्रीतम को सूली पर लटकता देखेगी ।' इस प्रकार धमकाता और अपनी भीषण भ्रुकुटियों से ललाट को दूषित करता हुआ वह काल की तरह आगे बढ़ा और उसने लोह के समान अपने मजबूत हाथों से राजकुमार का हाथ पकड़कर झटका देते हुए अपनी ओर खींच लिया ।

(८) स तु स्वभावधीरः सर्वपौरुषातिभूमिः सहिष्णुतैकप्रतिक्रियां दैवीमेव तामापदमवधार्य 'स्मर तस्या हंसगामिनि, हंसकथायाः। सहस्व वासु मासद्वयम्' इति प्राणपरित्यागरागिणीं प्राणसमां समाश्वास्यारिवश्यतामयासीत्।

(९) अथ विदितवार्तावार्तौ महादेवीमालवेन्द्रौ जामातरमाकारपक्षपातिनावात्मपरित्यागोपन्यासेनारिणा जिघांस्यमानं ररक्षतुः। न शेकतुस्तु तमप्रभुत्वादुत्तारयितुमापदः। स किल चण्डशीलश्चण्डवर्मा सर्वमिदमुद्-

❀ बालविबोधिनी ❀

(८) स तु राजवाहनस्तु। सर्वेषां पौरुषाणां पुरुषार्थानाम्। अतिभूमिरधिष्ठानम्। सहिष्णुतैव एका केवला प्रतिक्रिया प्रतीकारो यस्यास्ताम्। या आपत् सहनमन्तरेण अन्योपायसाध्या नेत्यर्थः। वासु बाले। सम्बोधनमेतत्। प्राणपरित्यागरागिणीं प्राणविसर्जनकाङ्क्षिणीम्। अरिवश्यतां शत्रुवशंवदताम्। अयासीत् प्रापत्। गत्यर्थानां प्राप्त्यर्थकत्वात्।

(९) विदितेति—विदिता वार्त्ता याभ्यां तौ—ज्ञातवृत्तान्तौ अत एवार्तौ पीडितौ। महादेवीमालवेन्द्रौ अवन्तिसुन्दरीपितरौ। जामातरं राजवाहनम्। आकारपक्षपातिनौ आकृतिं दृष्ट्वैव पक्षपातिनौ जातावित्यर्थः। आत्मपरीति—आत्मपरित्यागस्य स्वदेहविसर्जनस्य उपन्यासेन कथनेन—यद्येनं राजपुत्रं घातयिष्यसि

❀ बालक्रीडा ❀

(८) राजकुमार स्वभावतः धैर्यशाली थे। सब प्रकार के पुरुषार्थ भी उनमें थे। किन्तु उस समय सहनशीलता के सिवाय और किसी तरह इस दैवी विपत्ति को टालने का उपाय ही नहीं था। खूब अच्छी तरह सोच-समझ कर उन्होंने अपनी प्रेयसी से कहा—'प्रिये! तुम उस हंसकी बातों का स्मरण कर दो महीने तक धीरज धरो।' प्राण त्यागने के लिए उद्यत राजकन्या को इस प्रकार समझा-बुझाकर राजकुमार ने अपने आप को शत्रु के हाथ में सौंप दिया।

(९) जब महादेवी और मालवेन्द्र को इस प्रकार राजकुमार के फँसने का हाल मालूम हुआ तो वे बहुत दुःखी हुए। क्योंकि उन्होंने राजकुमार की आकृति देखते ही पहचान लिया था कि यही मेरा भावी दामाद है। अन्त में महादेवी

न्तजातं राजराजगिरौ तपस्यते दर्पसाराय सन्दिश्य सर्वमेव पुष्पोद्भवकुटुम्बकं सर्वस्वहरणपूर्वकं सद्य एव बन्धने क्षिप्त्वा कृत्वा च राजवाहनं केसरिकिशोरकमिव दारुपञ्जरनिबद्धं मूर्धजजालविलीनचूडामणिप्रभाव-

❀ बालविबोधिनी ❀

तदा आवामपि प्राणान् परित्यक्ष्याव इत्युक्त्वेत्यर्थः । जिघांस्यमानं हन्तुमिष्यमाणम् । इदं तु जामातरमित्यस्य विशेषणम् । शेकतुः शक्तौ । तं राजवाहनम् । अप्रभुत्वात् असामर्थ्यात् । उत्तारयितुं—उद्धर्तुम् । चण्डशीलः क्रूरस्वभावः । उदन्तजातं वृत्तान्तसमूहम् । राजराजगिरौ कैलासपर्वते । तपस्यते तपःकुर्वाणाय दर्पसारोऽवन्तिसुन्दरीभ्राता—तस्मै । सन्दिश्य निवेद्य । बन्धने कारागृहे । केसरिणः सिंहस्य किशोरः तरुणस्तमिव । दारुपञ्जरनिबद्धं काष्ठनिर्मितपञ्जरमध्यस्थम् । कृत्वेत्यस्य कर्म । मूर्द्धजजाले केशसमूहे विलीनस्य गुप्तस्य चूडामणेः मातङ्गदत्तमणिविशेषस्य प्रभावेण माहात्म्येन विक्षिप्तो दूरीकृतः क्षुत्पिपासादिखेदो यस्य तम् । तं राजवाहनम् । अवधूतेति—अवधूता तिरस्कृता दुहितुः कन्यायाः अम्वालिका-

❀ बालक्रीडा ❀

और मालवराज ने अपने प्राणों की बाजी लगाकर—अर्थात् 'यदि तुम इसे मार डालोगे तो हम दोनों भी अपनी जान दे देंगे' यह कहकर राजकुमार का प्राण बचाया। फिर भी उस समय न उनके हाथ में कोई अधिकार था और न शक्ति ही थी। इसलिए वे पूर्ण रूप से राजकुमार को इस विपत्ति-महासागर से पार नहीं उतार सके। क्रोधी चण्डवर्मा ने कैलास पर्वत पर तपस्या करते हुए दर्पसार के पास यह समस्त वृत्तान्त कहला भेजा। इस के बाद पुष्पोद्भव का सर्वस्व छीन लिया और उसे तथा उसके कुटुम्बियों को पकड़कर कारागार में डाल दिया और साथ ही सिंह के बच्चे के समान वीर राजवाहन को भी उसने काठ के बने पींजरे में बन्द कर दिया। यद्यपि उसे कई दिन से खाने-पीने को कुछ भी नहीं मिला, फिर भी उसे भूख-प्यास बिलकुल नहीं लगी। क्यों कि उस के बालों में एक चूडामणि छिपा था। उसका यही प्रभाव था कि चाहे कितने ही समय तक खाने को न मिले, उस के प्रभाव से न कमजोरी आ सकती थी और न व्याकुलता ही। उससे यद्यपि बड़ी दीनता के साथ चण्डवर्मा

विक्षिप्तक्षुत्पिपासादिखेदं च तमवधूतदुहितृप्रार्थनस्याङ्गराजस्योद्धरणायाङ्गानभियास्यन्ननन्यविश्वासान्निनाय । रुरोध च बलभरदत्तकम्पश्चम्पाम् ।

(१०) चम्पेश्वरोऽपि सिंहवर्मा सिंह इवासह्यविक्रमः प्राकारं भेदयित्वा महता बलसमुदायेन निर्गत्य स्वप्रहितदूतव्राताहूतानां साहाय्यदानायातिसत्वरमापततां धरापतीनामचिरकालभाविन्यपि सन्निधावदत्तापेक्षः

❀ बालविबोधिनी ❀

याः प्रार्थना येन तस्य । उद्धरणाय उन्मूलनाय । अङ्गान् अङ्गदेशान् । अनन्यविश्वासात् अन्यस्मिन् विश्वासाभावात् । हेतौ पञ्चमी । बलभरेण सैन्यसमूहेन दत्तः कम्पो येन सः । चण्डवर्मणो विशेषणमेतत् । चम्पां अङ्गदेशराजधानीम् ।

(१०) प्राकारं प्राचीरम् । बलसमुदायेन सैन्यसमूहेन । स्वप्रहितेति—स्वप्रहितेन स्वयं प्रेषितेन दूतव्रातेन दूतसमूहेन आहूतानां आकारितानाम् । साहाय्यदानाय निमन्त्रितानामित्यर्थः । आपतताम् आगच्छताम् । अचिरभाविनि शीघ्रभाविनि । सन्निधौ सन्निधाने । उपस्थिताविति यावत् । अदत्तापेक्षः अपेक्षामकृत्वे-

❀ बालक्रीडा ❀

से यह प्रार्थना की कि 'यह राजकन्या मुझे चाहती है और मैं भी इससे प्रेम करता हूँ । इसलिए हम लोगों के इस पवित्र प्रेम में किसी प्रकार की बाधा न डाली जाय, पर उसने एक भी नहीं सुना । इसी समय सिंहवर्मा को उखाड़ फेंकने के विचार से चण्डवर्मा ने उस पर चढ़ायी कर दी । अपने किसी भृत्य पर पूरा भरोसा न रहने के कारण युद्ध में जाते समय वह राजवाहन को भी अपने साथ लेता गया । अङ्गराज की राजधानी के पास पहुँचकर उसने सिंहवर्मा की चम्पा नगरी को चारो ओर से घेर लिया ।

(१०) सिंह के समान असाधारण पराक्रमी चम्पेश्वर महाराज सिंहवर्मा भी बहुत बड़ी सेना साथ लेकर सामना करने को आये । उन्होंने अपने प्रबल पराक्रम से उसका व्यूह तोड़ डाला और बड़ी वीरता से मुकाबला किया । इसी समय उन्होंने दूतों द्वारा पास-पड़ोस के राजाओं के पास भी खबर भेज दी थी, जिससे वे लोग भी ठीक मौके से सहायता देने को आ पहुँचे । लेकिन उस

साक्षादिवावलेपो वपुष्मानक्षमापरीतः प्रतिबलं प्रतिजग्राह।

(११) जगृहे च महति संपराये क्षीणसकलसैन्यमण्डलः प्रचण्डप्रहरणशतभिन्नमर्मा सिंहवर्मा करिणः करिणमवप्लुत्यातिमानुषप्रमाणबलेन चण्डवर्मणा। स च तद्दुहितर्यम्बालिकायामबलारत्नसमाख्यातायामतिमात्राभिलाषः प्राणैरेनं न व्ययूयुजत्। अपि त्वनीनयदपनीता-

❀ बालविबोधिनी ❀

त्यर्थः। साक्षात् अग्रतः स्थितः। वपुष्मान् मूर्त्तिमान्। अवलेपो गर्वः। अक्षमापरीतः कोपाक्रान्तः। प्रतिबलं शत्रुसैन्यम्। प्रतिजग्राह आक्रान्तवान्।

(११) जगृहे गृहीतः चण्डवर्मणा सिंहवर्मेत्यन्वयः। सम्पराये युद्धे। क्षीणं नष्टं सकलं सैन्यमण्डलं यस्य सः। प्रचण्डेन भीषणेन प्रहरणशतेन शस्त्रसहस्रेण भिन्नं विदीर्णं मर्म यस्य सः। करिणः करिणमिति—एकस्मात् गजात् अन्यं गजम् अवप्लुत्य आरुह्य। अतिमानुषं मनुष्यादप्यधिकं प्राणबलं यस्य तेन। स च चण्डवर्मा च। तद्दुहितरि सिंहवर्मकन्यायाम्। अबलारत्नं स्त्रीरत्नमिति समाख्यातायां प्रसिद्धायाम्। अतिमात्रं अभिलाषो यस्य सः—अत्यन्तासक्त इत्यर्थः। एनं सिंहवर्माणम्। न व्ययूयुजत् न पृथक् चकार न जघानेत्यर्थः। विपूर्वकाद् युजेर्णिजन्ताल्लुङ्। अपितु किन्तु। अनीनयत् प्रापयामास। णीञ् प्रापणे इत्यस्य धातोर्णिजन्तस्य लुङि रूपम्। अपनीताशेषशल्यं दूरीकृतनिखिलशस्त्रव्रणम्। एनमित्यस्य

❀ बालक्रीडा ❀

वीर ने उनकी सहायता की कुछ भी इच्छा नहीं की और मूर्तिमान् गर्व के समान क्रुद्ध होकर शत्रु से जा भिड़ा। उसने बहुत देर तक वीरता के साथ युद्ध किया।

(११) किन्तु चण्डवर्मा उससे बहुत प्रबल पड़ता था। उसके पास शस्त्रबल बहुत अधिक था। इस कारण जैसे एक हाथी को कोई दूसरा—उससे प्रबल हाथी धर दबोचे, इसी प्रकार समस्त सेना के नष्ट हो जाने पर चण्डवर्मा ने सिंहवर्मा को चारो ओर से छोप लिया। चण्डवर्मा सिंहवर्मा की पुत्री—जो अपनी सुन्दरता के कारण स्त्रियों में रत्न कही जाती थी, उस—अम्बालिका को बहुत चाहता था। इसी कारण उसने सिंहवर्मा को जान से नहीं मारा, बल्कि शिविर में ले जाकर मरहम—पट्टी करायी और अपने कारागार में बन्द कर दिया।

शेषशल्यमकल्पसंधो बन्धनम् । अजीगणच्च गणकसंघैः 'अद्यैव क्षपावसाने विवाहनीया राजदुहिता' इति ।

(१२) कृतकौतुकमङ्गले च तस्मिन्नेकपिङ्गाचलात्प्रतिनिवृत्त्यैणजङ्घो नाम जङ्घाकरिकः प्रभवतो दर्पसारस्य प्रतिसन्देशमावेदयत्—'अयि मूढ, किमस्ति कन्यान्तःपुरदूषकेऽपि कश्चित्कृपावसरः । स्थविरः स राजा जराविलुप्तमानावमानचित्तो दुश्चरितदुहितृपक्षपाती यदेव किञ्चित्प्रलपति

❀ बालविबोधिनी ❀

विशेषणम् । अकल्पा अचिन्त्या सन्धा प्रतिज्ञा यस्य सः । सत्यप्रतिज्ञ इति भावः । बन्धनं कारागृहम् । बन्धनमिति द्वितीयं कर्म, नयतेर्द्विकर्मकत्वात् । अजीगणत् गणयामास । गणकसंघैः ज्यौतिषिकैः । क्षपावसाने रात्रिशेषे ।

(१२) कृतकौतुकेति—कृतं विहितं कौतुकं मङ्गलं विवाहसम्बन्धि कृत्यं येन तस्मिन् । तस्मिन् चण्डवर्मणि । एकपिङ्गाचलात् तदाख्यपर्वतात् । प्रतिनिवृत्त्य आगत्य । जंघाकरिकः वेगगामी दूतः । प्रभवतः प्रभोः । प्रतिसन्देशं प्रत्युत्तरम् । अयि मूढेति चण्डवर्मणः सम्बोधनम् । कन्यान्तःपुरेति यः कन्यान्तःपुरं प्रविश्य दूषयति तस्मिन् । अत्र राजवाहने इत्यर्थः । कृपावसरः करुणाया अवकाशः । अस्ति किं नास्तीत्यर्थः । स्थविरो वृद्धः । स राजा मानसारः । जरेति—जरया

❀ बालक्रीडा ❀

उसी समय ज्योतिषियों को बुलाकर उसने 'आज ही रात को इसकी कन्या अम्बालिका के साथ विवाह हो जाय ।' यह मन्तव्य प्रकट करके विवाह का मुहूर्त भी निकलवा लिया ।

(१२) विवाह सम्बन्धी आभ्युदयिक (मङ्गल) कार्य हो जाने पर एणजंघ नाम का हरकारा कैलास पर्वत से महाराज दर्पसार का प्रतिसंदेश लेकर आ पहुँचा और कहने लगा कि महाराज का कथन है–ओ मूर्ख ! राजकन्या के अन्तःपुर में घुसकर बदमाशी करने वाले पर भी क्या कृपा करने की कुछ गुंजाइश रह जाती है ? वह राजा तो अतिशय वृद्ध हो गया है । इसलिए उसके हृदय में मान और अपमान का भाव न रहना स्वाभाविक बात है । ऐसी दशा में यदि वह अपनी दुराचारिणी लड़की का पक्षपात करता हुआ कुछ बकवास करता है तो क्या तू भी उसी के

त्वयापि किं तदनुमत्या स्थातव्यम् । अविलम्बितमेव तस्य कामोन्मत्तस्य चित्रवधवार्ताप्रेषणेन श्रवणोत्सवोऽस्माकं विधेयः । सा च दुष्टकन्या सहानुजेन कीर्तिसारेण निगडितचरणा चारके निरोद्धव्या इति ।

(१२) तच्चाकर्ण्य 'प्रातरेव राजभवनद्वारे स च दुरात्मा कन्यान्तःपुरदूषकः संनिधापयितव्यः । चण्डपोतश्च मातङ्गपतिरुचितकल्पनोपपन्नस्तत्रैव समुपस्थापनीयः । कृतविवाहकृत्यश्चोत्थायाहमेव तमनार्यशीलं तस्य हस्तिनः कृत्वा क्रीडनकं तदधिरूढ एव गत्वा शत्रुसाहाय्याय प्रत्या-

❀ बालविबोधिनी ❀

वार्द्धकेन विलुप्तौ नाशितौ मानापमानौ यस्य तादृशं चित्तं यस्य सः । चित्रवधेति-चित्रेण प्रकारेण यो वधस्तस्य वार्ताप्रेषणेन—अद्भुतोपायेन तं निहत्य तद्वृत्तान्तज्ञापनेनेत्यर्थः । श्रवणयोः कर्णयोरुत्सव आनन्दः । निगडितचरणा निबद्धपादयुगला । चारके बन्धनालये । इत्यन्तं दर्पसारस्य सन्देशवचनम् ।

(१२) सन्निधापयितव्यः सन्निधौ स्थापयितव्यः । चण्डपोतस्तदाख्यो मातङ्गपतिर्गजराजः । उचिताभिर्योग्याभिः कल्पनाभिरलङ्कारादिसाधनैरुपपन्नो युक्तः । तत्रैव राजभवनद्वारे । समुपस्थापनीयः आनेतव्यः । अनार्यशीलं दुष्टस्वभावम् । तं राजवाहनम् । क्रीडनकं क्रीडनसाधनं खेलनमिति यावत् । तदधिरूढः—तमेव गजमधिरुह्येत्यर्थः । शत्रुसाहाय्याय शत्रोः सिंहवर्मणः साहाय्यं कर्तुम् । प्रत्यासीदतः समीपमागच्छतः । राजन्यकस्य क्षत्रियसमूहस्य । अवग्रहणं प्रतिबन्धं

❀ बालक्रीडा ❀

कहे पर चलेगा ? इसलिए तू तत्काल क्रूरतापूर्वक उसके वध का वृत्तान्त भेज कर मेरी आत्मा को प्रसन्न कर और उसके लघुभ्राता कीर्तिसार को हाथ-पैर बांधकर कारागार में डाल दे ।

(१२) यह समाचार सुनते ही उसने अपने सेवकों को आज्ञा दी—'ठीक सवेरे ही दुष्ट राजवाहन राजद्वार पर हाजिर किया जाय । हाथियों में श्रेष्ठ चण्डपोत हाथी भी सजकर वहीं खड़ा रहे । विवाहसम्बन्धी कार्य समाप्त होते ही मैं वहाँ आ पहुँचूँगा और अपने सामने उसे हाथी से कुचलवा कर समाप्त कर दूँगा । इस के बाद उसी हाथी पर सवार होकर मैं उन दुष्ट राजाओं पर आक्र-

सीदतो राजन्यकस्य सकोशवाहनस्यावग्रहणं करिष्यामि' इति पार्श्वचरानवेक्षांचक्रे । निन्ये चासावहन्यन्यस्मिन्नुन्मिषत्येवोषोरागे राजपुत्रो राजाङ्गणं रक्षिभिः । उपतस्थे च क्षरितगण्डश्चण्डपोतः ।

(१४) क्षणे च तस्मिन्मुमुचे तदङ्घ्रियुगलं रजतशृङ्खलया । सा चैनं चन्द्रलेखाच्छविः काचिदप्सरा भूत्वा प्रदक्षिणीकृत्य प्राञ्जलिर्व्यजिज्ञपत्—'देव, दीयतामनुग्रहार्द्रं चित्तम् । अहमस्मि सोमरश्मिसम्भवा

❀ बालविबोधिनी ❀

-बन्धनमिति यावत् । पार्श्वचरान् पार्श्वस्थचीरान् । अवेक्षांचक्रे ददर्श, सावधानांश्चक्रे वा । निन्ये चेति—असौ राजपुत्रः राजवाहनः अन्यस्मिन् अहनि दिवसे उन्मिषति स्फुरति उषोरागे प्रभातसम्बन्धिरक्तिम्नि रक्षिभिः रक्षाधिकृतैः राजाङ्गणं निन्ये -नीतः । उपतस्थे—उपस्थितोऽभवत् । क्षरितगण्डः स्रवत्कपोलः ।

(१४) मुमुचे मुक्तमभवत् । तदङ्घ्रियुगलं—राजवाहनचरणद्वयम् । सा रजतशृङ्खला । एनं राजवाहनम् । चन्द्रलेखाया ज्योत्स्नायाः छविरिव छविर्यस्याः -सा । काचित्—अनिर्वचनीया । व्यजिज्ञपत् निवेदितवती । दीयतामनुग्रहार्द्रं चित्तं अनुग्रहेण कृपया आर्द्रं सिक्तं—चित्तमित्यस्य विशेषणम् । मयि प्रसन्नो भवेति -भावः । सोमरश्मिसम्भवा—तदाख्यगन्धर्वकन्या । सुरसुन्दरी अप्सराः । नभसि

❀ बालक्रीडा ❀

-मण कर दूँगा, जो सिंहवर्मा की सहायता करने के लिए आये थे । मैं उन पर धावा बोलकर उन की सेना और कोष पर कब्जा कर लूँगा । चण्डवर्मा -के आज्ञानुसार अरुणोदय होते ही सन्तरियों ने राजवाहन को लेजाकर राजद्वार पर हाजिर कर दिया । हाथियों में श्रेष्ठ हाथी चण्डपोत भी वहाँ खड़ा था । उस के गण्डस्थल से मद की धारा वह रही थी ।

(१४) उस समय राजवाहन के दोनों पैरों की वह चाँदी वाली जंजीर अपने आप खुल गयी और वह शृंखला एक स्त्रीरूप में प्रगट हो करके उसके सामने हाथ जोड़कर कहने लगी-देव ! मुझ पर दया कीजिये । मैं चन्द्रमा की किरण से उत्पन्न सुरतमंजरी नाम की अप्सरा हूँ । एक समय मैं स्वेच्छानुसार आकाश में विचर रही थी । उसी समय एक कलहंस उड़ता हुआ

सुरतमञ्जरी नाम सुरसुन्दरी । तस्या मे नभसि नलिनलुब्धमुग्धकलहंसानुबद्धवक्त्रायास्तन्निवारणलोभविच्छिन्नविगलिता हारयष्टिर्यदृच्छया जातु हैमवते मन्दोदके मग्नोन्मग्नस्य महर्षेर्मार्कण्डेयस्य मस्तके मणिकिरणद्विगुणितपलितमपतत् ।

(१५) पातितश्च कोपितेन कोऽपि तेन मयि शापः—'पापे, भजस्व लोहजातिमजातचैतन्या सती' इति । स पुनः प्रसाद्यमानस्त्वत्पादपद्मद्वयस्य मासद्वयमात्रं सन्दानतामेत्य निस्तरणीयामिमामापदमपरिक्षीण-

❀ बालविबोधिनी ❀

आकाशे । नलिने पद्मे लुब्ध आसक्तो मुग्धो मूढो यः कलहंसो राजहंसस्तेनानुबद्धमनुसृतं वक्त्रं मुखं यस्यास्तथाभूतायाः मन्मुखं नलिनं बुद्ध्वा कलहंसस्तदनुसरतीत्यर्थः । मे इत्यस्य विशेषणम् । तन्निवारणेति—तस्य कलहंसस्य निवारणे यः क्षोभश्चाञ्चल्यं तेन विच्छिन्ना त्रुटिता अत एव विगलिता भ्रष्टा—हारयष्टिर्हारलता । यदृच्छया स्वेच्छया । जातु कदाचित् । हैमवते मन्दोदके हिमालयसम्बधिनि स्वल्पजले । मग्नोन्मग्नस्य स्नानं कुर्वतः । मणिकिरणेति—क्रियाविशेषणम् । मणिकिरणैर्हारस्थरत्नमयूखैर्द्विगुणितं वर्द्धितुं पलितं जराजनितशौक्ल्यं यत्र तद् यथा तथा ।

(१५) पातितो दत्तः । कोपितेन क्रुद्धेन । कोपः सञ्जातोऽस्येतीतच् । लोहजातिं लोहभावम् । अजातचैतन्या चैतन्यरहिता । सः मार्कण्डेयः । प्रसाद्यमानः प्रसन्नीक्रियमाणः । मयेति शेषः । त्वत्पादेति—तव भवतो राजवाहनस्येत्यर्थः । पादपद्मद्वयस्य चरणकमलयुगलस्य । मासद्वयं प्रमाणमस्येति मात्रच्प्रत्ययः । सन्दानतां

❀ बालक्रीडा ❀

आया और उसने मेरे मुख को कमल समझ कर ढाँक लिया । इससे मैं घबड़ा उठी । घबड़ाहट के साथ उसे हटाते समय अनजान में मेरे गले का हार टूट गया । उसी समय हिमवान् पर्वत के एक सरोवर में महर्षि मार्कण्डेय डुबकियाँ लगा-लगा कर स्नान कर रहे थे । मेरा वह हार जाकर उनके उज्ज्वल और लम्बी-लम्बी जटाओं वाले मस्तक पर गिरा ।

(१५) इससे वे कुपित हो गये और मुझे शाप देते हुए उन्होंने कहा—'ओ पापिनि ! तू चेतनाहीन लोहजाति की हो जा ।' उनका शाप सुनकर जब मैंने बहुत

शक्तित्वं चेन्द्रियाणामकल्पयत्। अनल्पेन च पाप्मना रजतश्रृङ्खलीभूतां मामैक्ष्वाकस्य राज्ञो वेगवतः पौत्रः, पुत्रो मानसवेगस्य, वीरशेखरो नाम विद्याधरः शङ्करगिरौ समभ्यगमत्। आत्मसात्कृता च तेनाहमासम्।

(१६) अथासौ पितृप्रयुक्तवैरे प्रवर्तमाने विद्याधरचक्रवर्तिनि वत्सराजवंशवर्धने नरवाहनदत्ते, विरसाशयस्तदपकारक्षमोऽयमिति तपस्यता

❀ बालविबोधिनी ❀

बन्धनत्वं। 'सन्दानं पादबन्धनमित्यमरः।' एत्य प्राप्य। निस्तरणीयां उद्धरणीयां समाप्यामिति यावत्। इमामापदं—श्रृङ्खलात्वप्राप्तिरूपाम्। अपरिक्षीणशक्तित्वं अनष्टस्वस्वविषयग्रहणसामर्थ्यम्। इन्द्रियाणां चक्षुरादीनाम्। अकल्पयत् सम्पादयामास। पाप्मना पापेन। ऐक्ष्वाकस्य इक्ष्वाकुवंशीयस्य वेगवतः वेगवानिति नाम्नः। शङ्करगिरौ कैलासे। समभ्यगमत् प्राप। मामिति शेषः। आत्मसात्कृता गृहीता।

(१६) असौ वीरशेखरः। पित्रा स्वजनकेन मानसवेगेनेत्यर्थः। प्रयुक्तं कृतं यद्वैरं शत्रुत्वं तस्मिन्। प्रवर्त्तमाने तिष्ठति। वत्सराजवंशवर्द्धने वत्सराजकुलोत्पन्ने।

❀ बालक्रीडा ❀

अनुनय-विनय किया, तब दया करके उन्होंने केवल दो महीने के लिए मुझे आपके पैर का बन्धन बनाकर उस शाप से मुक्त हो जाने की अवधि बाँध दी। साथ ही यह सुविधा भी कर दी कि अचैतन्य अवस्था में भी मुझे इन्द्रियज्ञान तथा मेरी शक्ति बनी रहे। इस प्रकार एक असाधारण अपराध के लिए मुझे चाँदी की जंजीर बनना पड़ा। जब मैं शाप के अनुसार इस दशा को प्राप्त हो गयी, उसी समय इक्ष्वाकुवंशी राजा वेगवान का पौत्र और मानसवेग का पुत्र वीरशेखर नाम का विद्याधर कैलास पर्वत पर आ पहुँचा। उसने जंजीररूप में मुझे देखा तो उठाकर अण्टी में रख लिया।

(१६) कुछ समय बाद वीरशेखर और उनके पिता में वैर हो गया। जिससे वह विद्याधरों के चक्रवर्ती और वत्सराज के वंश के असाधारण पुरुष नरवाहनदत्त से जा मिला, किन्तु उससे कोई सहायता नहीं मिली और उसे वहां से निराश होना पड़ा। बहुत सोच-विचार कर वह कैलास पर्वत पर तपस्या

दर्पसारेण सह समसृज्यत । प्रतिश्रुतं च तेन तस्मै स्वसुरवन्तिसुन्दर्योः प्रदानम् ।

(१७) अन्यदा तु वियति व्यवदायमानचन्द्रिके मनोरथप्रियतमामवन्तिसुन्दरीं दिदृक्षुरवशेन्द्रियस्तदिन्द्रमन्दिरद्युतिं कुमारीपुरमुपासरत् । अन्तरितश्च तिरस्करिण्या विद्यया । स च तां तदा त्वदङ्कापाश्रयां सुरत-

❀ बालविबोधिनी ❀

विरसाशयः क्रूरान्तःकरणः । तदपकारेति—तस्य नरवाहनदत्तस्यापकारे विग्रहे क्षमः समर्थोऽयं दर्पसार इति मत्वा । तपस्यता तपस्कुर्वता । समसृज्यत मिलितोऽभवत् । प्रतिश्रुतं प्रतिज्ञातम् । तेन दर्पसारेण । तस्मै वीरशेखराय । स्वसुः भगिन्याः ।

(१७) अन्यदा अन्यदिने । वियति आकाशे । व्यवदायमानचन्द्रिके निर्मलज्योत्स्ने व्यवपूर्वकस्य दैप् शोधन इत्यस्य धातो रूपम् । मनोरथेति—मनोरथेनैव असम्पन्नविवाहत्वान्मनसैव न तु कर्मणेति भावः, प्रियतमा वल्लभा ताम् । अवशानि विकलानि इन्द्रियाणि यस्य स वीरशेखर इति शेषः । इन्द्रमन्दिरस्य महेन्द्रगृहस्य द्युतिरिव द्युतिः शोभा यस्य तत् । कुमारीपुरमित्यस्य विशेषणम् । उपासरत् अगच्छत् । अन्तरित आच्छादितः । तिरस्करिण्या अन्तर्धानकारिण्या । स च वीरशेखरश्च । तां अवन्तिसुन्दरीम् । त्वदङ्केति—तव भवतो राजवाहनस्येत्यर्थः । अङ्के = क्रोडदेशे अपाश्रयः शिरोभागो यस्यास्ताम् । सुरतखेदसुप्तगात्रीं

❀ बालक्रीडा ❀

करते हुए राजा दर्पसार से जा मिला । क्योंकि उसे यह भरोसा था कि दर्पसार अवश्य मेरे पिता का गर्व खर्व कर सकता है । वीरशेखर ने दर्पसार से मिलकर उसे वचन दिया कि यदि आप मेरी सहायता करेंगे तो मैं अपनी बहिन अवन्तिसुन्दरी का विवाह आपके साथ कर दूँगा ।

(१७) इसके कुछ समय बाद एक दिन रात को जब चन्द्रमा की चाँदनी सारे जगतीतल में छिटकी हुई थी, तब दर्पसार विकल होकर अपनी अभिलषित प्रियतमा अवन्तिसुन्दरी से मिलने के लिए इन्द्रभवन के समान सुन्दर उस के अन्तःपुर में पहुँचा । उस समय वह तिरस्करिणी विद्या से अपने आपको छिपाये हुए था । उसने वहां पहुँचकर देखा कि उसकी प्रेयसी सुरत-खेद से सुस्त होकर तुम्हारी गोद में पड़ी सो रही है । वह तुम्हारे द्वारा तीनों भुवनों

खेदसुप्तगात्रीं त्रिभुवनसर्गयात्रासंहारसंबद्धाभिः कथाभिरमृतस्यन्दिनीभिः प्रत्यानीयमानरागपूरां न्यरूपयत् ।

(१८) स तु प्रकुपितोऽपि त्वदनुभावप्रतिबद्धनिग्रहान्तराध्यवसायः समालिङ्ग्येतरेतरमत्यन्तसुखसुप्तयोर्युवयोर्दैवदत्तोत्साहः पाण्डुलोहश्रृङ्खलात्मना मया पादपद्मयोर्युगलं तव निगडयित्वा सरोषरभसमपासरत् । अवसितश्च ममाद्य शापः । तच्च मासद्वयं तव पारतन्त्र्यम् । प्रसीदेदानीम् । किं तव करणीयम्' इति प्रणिपतन्तीं 'वार्तयानया मत्प्राणसमां समा-

❀ बालविबोधिनी ❀

रतिखेदनिश्चलावयवाम् । त्रिभुवनेति—त्रिभुवनस्य सर्ग उत्पत्तिः यात्रा स्थितिः संहारः प्रलयश्च तैः सम्बद्धाभिः संसृष्टाभिः । अमृतस्यन्दिनीभिः सुधास्राविणीभिः । प्रत्यानीयमान उत्पाद्यमानो रागपूरोऽनुरागातिशयो यस्यास्ताम् । न्यरूपयत् ददर्श ।

(१८) सः वीरशेखरः । त्वदनुभावेति—तव भवतोऽनुभावेन प्रतापेन प्रतिबद्धो रुद्धः निग्रहान्तरस्य श्रृङ्खलया पादबन्धनं विना अन्यविधनिग्रहस्य अध्यवसायोऽभिप्रायो यस्य सः । इतरेतरं परस्परम् । युवयोः अवन्तिसुन्दर्याः राजवाहनस्य चेत्यर्थः । पाण्डुलोहेति—पाण्डुलोहस्य रजतस्य श्रृङ्खला आत्मा स्वरूपं यस्यास्तया । मयेत्यस्य विशेषणम् । मया सुरतमञ्जर्या इत्यर्थः । निगडयित्वा बद्ध्वा । निगडितं करोतीति नामधातुः । सरोषरभसं सक्रोधवेगम् । अपासरत्

❀ बालक्रीडा ❀

की यात्रासम्बन्धी अमृतमयी कहानी सुनकर गद्गद हो गयी थी और तुम्हारे प्रति उसके हृदय में प्रेम की तरंगें उछाल मारने लगी थीं ।

(१८) इस प्रकार अपनी कामनापूर्ति में तुम्हें बहुत बड़ा अन्तराय समझकर दर्पसारको बहुत क्रोध आया, पर तुम्हारे प्रताप के सामने वह कुछ करने में असमर्थ था । अन्त में तुम्हारे दुर्भाग्यवश–जब तुम दोनों एक दूसरे से लिपटे हुए आनन्द के साथ सो रहे थे–उसने मुझ (चाँदी की जंजीर) से तुम्हारे दोनों पैर कसकर बाँध दिये और उसी क्रोध के आवेश में बड़ी शीघ्रता से भाग गया । आज मेरे शापकी अवधि समाप्त हो गयी । क्योंकि दो महीने तक मैं परतन्त्र रह चुकी । अब मुझ पर कृपा करो और यह बताओ कि मैं तुम्हारी कौनसी सेवा कर सकती हूँ ।' ऐसा कहकर प्रणाम करती हुई उस अप्सरा से राजवाहन ने कहा—

श्वासय' इति व्यादिश्य विससर्ज ।

(१९) तस्मिन्नेव क्षणान्तरे 'हतो हतश्चण्डवर्मा सिंहवर्मदुहितुरम्बालिकायाः पाणिस्पर्शरागप्रसारिते बाहुदण्ड एव बलवदवलम्ब्य सरभसमाकृष्य केनापि दुष्करकर्मणा तस्करेण नखप्रहारेण राजमन्दिरोद्देशं च शवशतमयमापादयन्नचकितगतिरसौ विहरति' 'इति वाचः समभवन् । श्रुत्वा चैतत्तमेव मत्तहस्तिनमुदस्ताधोरणो राजपुत्रोऽधिरुह्य रंहसोत्तमेन

❀ बालविबोधिनी ❀

अन्तर्दधौ । अवसितः समाप्तः । पारतन्त्र्यं पराधीनता । व्यादिश्य कथयित्वा । वार्त्तयेत्यादिसमाश्वासयेत्यन्तमस्य कर्म ।

(१९) पाणिस्पर्शेति—पाणिस्पर्शे करग्रहणे विवाहे इति यावत् , यो रागोऽनुरागस्तेन प्रसारिते विस्तारिते । बाहुदण्डे भुजदण्डे । बलवद् दृढम् , अवलम्ब्य गृहीत्वा । सरभसं सवेगम् । तस्करेणेति हत इति क्रियायाः कर्त्तरि तृतीया । नखप्रहारेण छुरिकाघातेन । करणे तृतीया । राजमन्दिरोद्देशं नृपगृहप्रदेशम् । आपादयन् कुर्वन् । अचकितगतिः अत्रस्तगमनः । असौ तस्करः । इति वाचः एवम्भूताः गिरः । समभवन् उद्भूताः । तमेव चण्डवर्माधिष्ठितम् । उदस्तो दूरीकृत आधोरणो हस्तिपको येन सः । राजपुत्र इत्यस्य विशेषणम् । रंहसा वेगेन ।

❀ बालक्रीडा ❀

'बस, तुम मेरा सारा वृत्तान्त कहकर मेरी प्रियतमा को धैर्य दे दो ।' यह कहकर उसने उसे विदा कर दिया ।

(१९) इसके क्षण ही भर बाद यह शोर मचने लगा कि 'चण्डवर्मा मार डाला गया । जिस समय उसने सिंहवर्मा की पुत्री अम्बालिका का पाणिग्रहण करने के लिए अपना प्रेमपूर्ण हाथ बढ़ाया, उसी समय किसी ने उसका हाथ पकड़कर जबर्दस्ती खींच लिया और मार डाला । उस अकेले, किन्तु साहसी चोर ने अपने नख के प्रहार से राजमहल के फाटक पर सैकड़ों राजपुरुषों को मारकर शव का ढेर लगा दिया है । अब भी वह निर्भीक भाव से उसी जगह विचर रहा है ।' यह कोलाहल सुनते ही राजवाहन ने उस मतवाले हाथी के हाथीवान को अलग कर दिया और स्वयं हाँकता हुआ बड़े वेग के साथ राजभवन

राजभवनमभ्यवर्तत।

(२०) स्तम्बेरमरयावधूतपदातिदत्तवर्त्मा च प्रविश्य वेश्माभ्यन्तरमदभ्राभ्रनिर्घोषगम्भीरेण स्वरेणाभ्यधात्—'कः स महापुरुषो येनैतन्मानुषमात्रदुष्करं महत्कर्मानुष्ठितम्। आगच्छतु मया सहेमं मत्तहस्तिनमारोहतु। अभयं मदुपकण्ठवर्तिनो देवदानवैरपि विगृह्णानस्य' इति।

(२१) निशम्यैवं स पुमानुपोढहर्षो निर्गत्य कृताञ्जलिराक्रम्य संज्ञासंकुचितं कुञ्जरगात्रमसक्तमध्यरुक्षत्। आरोहन्तमेवैनं निर्वर्ण्य हर्षोत्फुल्लदृष्टिः 'अये, प्रियसखोऽयमपहारवर्मैव' इति पश्चान्निषीदतोऽस्य बाहु-

❀ बालविबोधिनी ❀

उत्तमेन अतिशयितेन। अभ्यवर्त्तत प्राचलत्।

(२०) स्तम्बेरमेति—स्तम्बेरमस्य हस्तिनो रयेण वेगेन अवधूता दूरीकृता ये पदातयः पत्तयस्तैर्दत्तं वर्त्म मार्गो यस्यासौ। हस्तिपदपेषणभयात्पदातयो मार्गं परिहृत्य दूरंगता इति भावः। अदभ्रेति-अदभ्रो बहुलो योऽभ्रनिर्घोषो मेघगर्जितं तद्वद् गम्भीरेण। अभ्यधात् अकथयत्। मानुषमात्रेण साधारणमानवेन दुष्करं कर्त्तुमशक्यम्। महत्कर्म चण्डवर्ममारणरूपम्। अनुष्ठितं कृतम्। मदुपकण्ठवर्त्तिनः मत्समीपस्थितस्य। विगृह्णानस्य विरोधं कुर्वतः।

(२१) निशम्य श्रुत्वा। उपोढः प्राप्तो हर्षो येन]सः। आक्रम्य पादविक्षेपेणागत्य। संज्ञया सङ्केतेन सङ्कुचितं खर्वीकृतम्। कुञ्जरगात्रं हस्तिशरीरम्। अस-

❀ बालक्रीडा ❀

की ओर गया।

(२०) हाथी के वेग से चलने के कारण सब लोग रास्ता देते जाते थे, इसलिए वह बहुत शीघ्र राजद्वार पर पहुँच गया। पहुँचते ही भवन के भीतर जाकर उसने मेघगर्जन के सदृश गंभीर स्वर में कहा—'वह कौन महापुरुष है, जिसने मनुष्य की शक्ति से बाहर का इतना बड़ा कार्य क्षणमात्र में कर डाला है? वह आवे और मेरे साथ इस मतवाले हाथी पर सवार हो ले। देवताओं तथा दानवों से भी शत्रुता करने वाला पुरुष मेरे पास आकर अभय हो जाता है।'

(२१) यह वाणी सुनकर उस पुरुष को बड़ी प्रसन्नता हुई और वह हाथ जोड़कर राजवाहन के समक्ष आ उपस्थित हुआ। राजवाहन के संकेत से हाथी बैठ

दण्डयुगलमुभयभुजमूलप्रवेशितमग्रेऽवलम्ब्य स्वमङ्गमालिङ्गयामास। स्वयं च पृष्ठतो वलिताभ्यां भुजाभ्यां पर्यवेष्टयत्।

(२२) तत्क्षणोपसंहृतालिङ्गनव्यतिकरश्चापहारवर्मा चापचक्रकणपकर्पणप्रासपट्टिशमुसलतोमरादिप्रहरणजातमुपयुञ्जानान्बलावलिप्तान्प्रतिब-

❀ बालविबोधिनी ❀

क्रमलग्नं यथा तथा। हस्तिनमस्पृष्ट्वेत्यर्थः। निर्वर्ण्य दृष्ट्वा। हर्षोत्फुल्लदृष्टिः प्रीतिविकसितनयनः। अये विस्मयसूचकमव्ययमेतत्। प्रियसखः प्रियमित्रम्। निषीदतः उपविष्टस्य। अस्य अपहारवर्मणः। उभयभुजमूले स्वस्योभयकक्षे प्रवेशितं विन्यस्तम्। अग्रे अग्रभागे। अवलम्ब्य गृहीत्वा। स्वं स्वकीयं राजवाहनस्येत्यर्थः। अङ्गं शरीरम्। आलिङ्गयामास तेनापहारवर्मणेति शेषः। पृष्ठतः पृष्ठभागे। वलिताभ्यां वक्रीकृताभ्याम्। पर्यवेष्टयत् समालिलिङ्ग अपहारवर्माणमिति शेषः। अभिमुखं स्थितयोरेव द्वयोरालिङ्गनं स्वाभाविकं भवति अत्र तु गजपृष्ठमधिरूढयोस्तयोस्तदसम्भवमतः प्रातिलोम्येन कथंचिदङ्गसम्मेलनं जातमिति निष्कर्षः।

(२२) तत्क्षणेति—तस्मिन् क्षणे समये उपसंहृतः समाप्त आलिङ्गनस्याश्लेषस्य व्यतिकरः सम्पर्को येनासौ। चापेति—चापो धनुः, चक्रं, कणपो लोहस्तम्भः, कर्पणः शरावाकारोऽस्त्रविशेषः, प्रासः कुन्तः, पट्टिशः शस्त्रविशेषः, मुसलं मुसलाकारशस्त्रविशेषः, तोमरो लोहगुच्छनिर्म्मितं शस्त्रमित्यादि प्रहरणजातं शस्त्र-

❀ बालक्रीडा ❀

गया और वह पुरुष उस पर सवार हो गया। किन्तु उसने हाथी पर इस ढंग से बैठना चाहा कि राजवाहन के शरीर से उसके शरीर का स्पर्श न हो। लेकिन जिस समय वह हाथी पर चढ़ आया और राजवाहन ने ध्यान देकर उस पुरुष की आकृति देखी तो देखते ही पहचान लिया और तुरन्त अपने भुजपाश में जकड़ कर छाती से लगाते हुए कहा—'ओह! तुम तो मेरे प्रिय मित्र अपहारवर्मा हो!' ऐसा कहकर उसे अपने सामने बैठा लिया। वह स्वयं पीछे की ओर सरककर बैठा और उसे भुजाओं में कस कर लिपट गया।

(२२) उस समय अपहारवर्मा ने क्षण ही भर में यह मिलनकार्य समाप्त कर दिया और धनुष, चक्र, कणप (एक प्रकार का लौहदण्ड), कर्पण (एक प्रकार का टेढ़ा अस्त्रविशेष), प्रास (कुन्त), पट्टिश, मुसल तथा तोमर आदि

लवीरान्बहुप्रकारायोधिनः परिक्षिपतः क्षितौ विचिक्षेप । क्षणेन चाद्राक्षीत्तदपि सैन्यमन्येन समन्ततोऽभिमुखमभिधावता बलनिकायेन परिक्षिप्तम् ।

(२३) अनन्तरं च कश्चित्कर्णिकारगौरः कुरुविन्दसवर्णकुन्तलः कमलकोमलपाणिपादः कर्णचुम्बिदुग्धधवलस्निग्धनीललोचनः कटितटनिविष्टरत्ननखः पट्टनिवसनः कृशाकृशोदरोरःस्थलः कृतहस्ततया रिपुकुलमि-

❀ बालविबोधिनी ❀

-समूहमुपयुञ्जानान् निक्षिपतः । बलावलिप्तान् बलगर्वितान् । प्रतिबलवीरान् शत्रुपक्षीययोधान् । बहुभिः प्रकारैरायोधिनः युद्धं कुर्वतः । परिक्षिपतः पातयतो लोकानिति शेषः । एते प्रतिबलवीरानित्यस्य विशेषणे । विचिक्षेप पातयामास । क्षणेन मुहूर्तमात्रेण । समन्ततः सर्वतः । अभिमुखं सम्मुखम् । अभिधावता आगच्छता बलनिकायेन सैन्यसमूहेन । परिक्षिप्तमाक्रान्तम् । सैन्यमित्यस्य विशेषणमेतत् ।

(२३) कर्णिकारो द्रुमोत्पलः स्थलपद्मवृक्षस्तद्वद् गौरो धवलः । कुरुविन्देन मेघनाम्ना मुस्ताविशेषेण सवर्णास्तुल्याः कुन्तलाः केशा यस्यासौ । कमल-

❀ बालक्रीडा ❀

उन सब शस्त्रों को—जो गर्वीले वीरों का गर्व ध्वंस करने के लिए थे—फेंक दिया । क्योंकि वे अपने प्रिय मित्र से मिलने में बाधा दे रहे थे । क्षण ही भर बाद उसने देखा कि उस राजद्वार पर विद्यमान सेना को भी किसी दूसरी सेना ने आकर चारों ओर से घेर लिया है ।

(२३) इसके अनन्तर कर्णिकार—कुसुम सरीखा गोरा एक पुरुष दिखायी पड़ा । कुरुविन्द के पुष्प के समान उसके नीले केश थे । कोमल और सुन्दर उसके हाथ-पैर थे । कानों के पास तक फैली हुई और दूध की तरह उज्ज्वल पलकों युक्त उसकी काली-काली आँखें थीं । उसकी कमर में रत्नजटित वघनखा खुँसा हुआ था । उसके सभी वस्त्र रेशमी थे । उसकी चौड़ी छाती थी और कृश उदर था । वह अपने फुर्तीले हाथों से शत्रुओं पर लगातार बाणवर्षा करता जा रहा था । वह अपने पैर के अंगूठे को निर्दयता के साथ दबाकर अपने हाथी को तेजी के साथ चलाता हुआ तुरन्त राजवाहन के समक्ष आ खड़ा हुआ और पूर्व के परिचय के अनुसार पहचानकर कहा—'ये ही समारे स्वामी राजवाहन हैं ।' इसके अनन्तर उसने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और उनकी ओर आदरभरी दृष्टि से निहारता हुआ कहने

षुवर्षेणाभिवर्षन्पादाङ्गुष्ठनिष्ठुरावघृष्टमूलेन प्रजविना गजेन संनिकृष्य पूर्वोपदेशप्रत्ययात् 'अयमेव स देवराजवाहनः' इति प्राञ्जलिः प्रणम्यापहारवर्मणि निविष्टदृष्टिराचष्ट—'त्वदादिष्टेन मार्गेण संनिपातितमेतदङ्गराजसाहाय्यदानायोपस्थितं राजकम् । अरिबलं च विहितविध्वस्तं स्त्रीबालहार्यशस्त्रं वर्तते । किमन्यत्कृत्यम्' इति ।

(२४) हृष्टस्तु व्याजहारापहारवर्मा—'देव, दृष्टिदानेनानुगृह्यतामय-

❀ बालविबोधिनी ❀

वत् कोमलौ पाणिपादौ करचरणौ यस्यासौ । कर्णौ चुम्बत इति कर्णचुम्बिनी आकर्णविश्रान्ते, दुग्धवत् क्षीरवद्धवले शुभ्रे, स्निग्धे नीले नीलवर्णे लोचने नयने यस्यासौ । कटितटे कटिदेशे निविष्टो रत्ननखः रत्नयुक्तछुरिका यस्य सः । पट्टं दुकूलं निवसनं वासो यस्य सः । कृशं चाकृशं चेति कृशाकृशे उदरं च उरःस्थलं चेति उदरोरःस्थले यस्येति विग्रहः । कृशोदरः, अकृशोरःस्थलश्चेत्यर्थः । एतत्सर्वं कश्चिदित्यस्य विशेषणम् । कृतहस्ततया शिक्षिततया । इषुवर्षेण बाणवृष्ट्या । पादाङ्गुष्ठाभ्यां निष्ठुरमतिकर्कश्यं यथा तथा अवघृष्टं घर्षितं कर्णमूलं यस्य तेन । प्रजविना वेगवता । द्वे गजेनेत्यस्य विशेषणे । संनिकृष्य समीपमागत्य । पूर्वोपदेशप्रत्ययात् प्रागुक्तपरिचयज्ञानात् । निविष्टदृष्टिर्दत्तनेत्रः । आचष्ट अकथयत ! त्वया अपहारवर्मणेत्यर्थः, आदिष्टेन कथितेन । मार्गेण पथा । संनिपातितं आनीतम् । राजकं राजसमूहः । विहितविध्वस्तं कृतध्वंसम् । स्त्रीभिर्बालैश्च हार्यं धार्यं शस्त्रं यत्र तत् । स्त्रियो बालाश्च अवशिष्टा अन्ये सर्वे मृता इति भावः । कृत्यं करणीयम् ।

(२४) व्याजहार उवाच । आज्ञाकरः सेवकः । सोऽपि धनमित्रोऽपीत्यर्थः । अहमेव किन्तु अमुना दृश्यमानेन रूपेणाकारेण धनमित्राख्यया धनमित्रेति नाम्ना

❀ बालक्रीडा ❀

लगा—'आपके बताये रास्ते से मैं अङ्गराज की सहायता के लिये राजाओं की यह विशाल सेना लेकर आ उपस्थित हुआ हूँ । इस सेना ने शत्रु की सेना को छिन्न-भिन्न कर दिया है । अब वे इतने निर्बल हो गये हैं कि नन्हें-नन्हें बच्चे और स्त्रियाँ भी उनके शस्त्र छीन सकती हैं । इतना काम तो मैं कर चुका । अब और क्या काम बाकी है ?'

(२४) उसे देखकर अपहारवर्मा प्रसन्न हुआ और कहने लगा—'स्वामिन् !

माज्ञाकरः । सोऽप्यहमेव ह्यमुना रूपेण धनमित्राख्यया चान्तरितो मन्तव्यः । स एवायं निर्गमय्य बन्धनादङ्गराजमपवर्जितं च कोशवाहनमेकीकृत्यास्मद्गृह्येणामुना सह राजन्यकेनैकान्ते सुखोपविष्टमिह देवमुपतिष्ठतु यदि न दोषः' इति ।

(२५) देवोऽपि 'यथा ते रोचते तमाभाष्य गत्वा च तन्निर्दिष्टेन मार्गेण नगराद्बहिरतिमहतो रोहिणद्रुमस्य कस्यचित्क्षौमावदातसैकते गङ्गा-

❀ बालविबोधिनी ❀

च अन्तरितः पृथक्कृतः । मन्तव्यो ज्ञातव्यः । ममैवात्मा धनमित्रनाम्ना तदाकारेण च आच्छादितो वर्त्तते—अभिन्नहृदयावावामिति भावः । स एवायं—धनमित्रः । निर्गमय्य मोचयित्वा । बन्धनात् कारागृहात् । अङ्गराजमिति शेषः । अपवर्जितं इतस्ततो विक्षिप्तम् । एकीकृत्य संगृह्य । अस्मद्गृह्येण अस्मत्पक्षीयेण । एकान्ते निर्जने । देवं भवन्तम् । उपतिष्ठतु समीपे तिष्ठतु ।

(२५) देवोऽपि राजवाहनोऽपि । ते तुभ्यं रुच्यर्थानामिति चतुर्थी । तमपहारवर्माणम् । रोहिणद्रुमस्य वटवृक्षस्य । तले इत्यनेनान्वयः । क्षौमेति—क्षौमवत् पट्टवस्त्रवत् अवदातं निर्मलं यत् सैकतं सिकतामयप्रदेशस्तस्मिन् । गङ्गेति—गङ्गायास्तरङ्गपवनस्य तरङ्गयुक्तवायोः पातेन पतनेन शीतले । तले इत्यस्य विशेषणम् । द्विरदाद् गजात् । प्रथमसमवतीर्णेन प्रागेव गजादवरूढेन । स्वहस्तेन निजकरेण

❀ बालक्रीडा ❀

इस आज्ञाकारी सेवक पर दयादृष्टि करके अनुग्रह करिए । मैं ही अब तक इस वेश में धनमित्र नाम से विख्यात होकर छिपा छिपा फिरता था । इस धनमित्र ने ही अङ्गराज को बन्धन से छुड़ाया और विध्वस्त कोष तथा वाहन को फिर से एकत्र किया है । अब जब कि हमारे पक्ष के राजे उनके साथ एकान्त में सुख से बैठे हैं, यदि आप कुछ हर्ज न समझें तो चलकर उनसे भेंट कर लीजिये ।

(२५) राजवाहन ने कहा—'जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो ।' बस, उसी हाथी पर सवार होकर वे दोनों वहां से चल पड़े । अपहारवर्मा के बताये मार्ग से चलकर नगर के बाहर थोड़ी ही दूरी पर एक बहुत बड़े वटवृक्ष के नीचे रुके । उस स्थान पर रेशम की तरह स्वच्छ बालुका फैली हुई थी, जो गंगा के तरंग से टकरा कर आती हुई हवा के झोंके से शीतल हो रही थी । वहीं वे हाथी से

तरङ्गपवनपातशीतले तले द्विरदादवततार । प्रथमसमवतीर्णेनापहारवर्मणा च स्वहस्तसत्वरसमीकृते मातङ्ग इव भागीरथीपुलिनमण्डले सुखं निषसाद ।

(२६) तथा निषण्णं च तमुपहारवर्मार्थपालप्रमतिमित्रगुप्तमन्त्रगुप्तविश्रुतैर्मैथिलेन च प्रहारवर्मणा, काशीभर्त्रा च कामपालेन, चम्पेश्वरेण सिंहवर्मणा, सहोपागत्य धनमित्रः प्रणिपपात । देवोऽपि हर्षाविद्धमभ्युत्थितः 'कथं समस्त एष मित्रगणः समागतः को नामायमभ्युदयः' इति कृतयथोचितोपचारान्निर्भरतरं परिरेभे । काशीपतिमैथिलाङ्गराजांश्च सुहृ-

❀ बालविबोधिनी ❀

अपहारवर्मणेति शेषः; सत्वरं शीघ्रं समीकृते मार्जनादिना समानीकृते । मातङ्गे इव गजे यथा सुखेन निषसाद तद्वत् । भागीरथीपुलिनमण्डले गङ्गातटे । निषसाद उपविष्टो बभूव ।

(२६) तथा तेन प्रकारेण सुखेनेत्यर्थः । तं राजवाहनम् । मैथिलेन मिथिलाधिपेन । काशीभर्त्रा काशीश्वरेण । तृतीयान्तादिपदानि सहेत्यनेनान्वितानि । देवः राजवाहनः । हर्षाविद्धं सहर्षं क्रियाविशेषणमेतत् । अभ्युदयः परमोन्नतिः, कल्याणपरम्परेति यावत् । कृतेति—कृतो विहितः यथोचितो यथायोग्य उपचारः सम्मानादिर्येषां तान् उपहारवर्मादीन् इत्यर्थः । निर्भरतरं गाढतरम् । परिरेभे आलिलिङ्ग । सुहृदा धनमित्रेण निवेदितान् निर्दिष्टान् । पितृवत् पित्रा तुल्यान् । वृद्ध-

❀ बालक्रीडा ❀

उतर पड़े । अपहारवर्मा राजवाहन के पहले ही उतर पड़ा और उसने जल्दी जल्दी अपने हाथ से उसी बालू का एक समतल चबूतरा बना दिया । जिस पर राजवाहन बड़े आनन्द के साथ बैठ गये ।

(२६) क्षण भर बाद अपहारवर्मा, अर्थपाल, प्रमति, मित्रगुप्त, मन्त्रगुप्त, मैथिल, प्रहारवर्मा, काशीपति कामपाल, चम्पापति सिंहवर्मा आदि के साथ आकर धनमित्र ने राजवाहन को प्रणाम किया । राजवाहन ने प्रसन्नता के साथ उठकर उनका स्वागत करते हुए कहा—'एक साथ सब मित्र आ मिले ? आज हमारा सबसे बड़ा अभ्युदय हुआ है ।' ऐसा कहकर वे एक एक करके सब लोगों से गले लगकर मिले और यथोचित आदर-सत्कार किया । अपहारवर्मा द्वारा परिचय पाकर राजवाहन ने काशीनरेश, मिथिलेश और अङ्गदेश के महाराज को पिता के

न्निवेदितान्पितृवदपश्यत् । तैश्च हर्षकम्पितपलितं सरभसोपगूढः परमभिननन्द ।

(२७) ततः प्रवृत्तासु प्रीतिसंकथासु प्रियवयस्यगणानुयुक्तः स्वस्य च सोमदत्तपुष्पोद्भवयोश्चरितमनुवर्ण्य सुहृदामपि वृत्तान्तं क्रमेण श्रोतुं कृतप्रस्तावस्तांश्च तदुक्तावन्वयुङ्क्त । तेषु प्रथमं प्राह स्म किलापहारवर्मा—

इति श्रीदण्डिनः कृतौ दशकुमारचरिते राजवाहनचरितं नाम प्रथम उच्छ्वासः ।

❀ बालविबोधिनी ❀

त्वात् तान् जनकवत् सम्मानयामास । तैः काशीपतिप्रमुखैः । हर्षेण कम्पितानि पलितानि शुक्लकेशा यस्मिंस्तद् यथा तथा । सरभसं सवेगं उपगूढ आलिङ्गितः । परम् अत्यर्थम् । अभिननन्द राजवाहन इति शेषः ।

(२७) प्रवृत्तासु आरब्धासु । प्रियवयस्येति—प्रियवयस्यगणेन अनुयुक्तः पृष्टः । स्वस्य निजस्य राजवाहनस्येत्यर्थः । चरितम् आचरणम् । कृतः प्रस्ताव उपक्रमो येनासौ । तान् सुहृदः । तदुक्तौ वृत्तान्तवर्णने । अन्वयुङ्क्त नियुक्तवान् । तेषु सुहृत्सु मध्ये । प्रथमं प्राक् ।

इति श्रीताराचरणभट्टाचार्यकृतायां बालविबोधिनीसमाख्यायां दशकुमारचरितव्याख्यायां राजवाहनचरितं नाम प्रथमोच्छ्वासः ।

❀ बालक्रीडा ❀

समान समझकर उनका आदर किया । जब उन वृद्ध राजों ने भी मारे प्रेम के उनको हृदय से लगा लिया, तब राजवाहन ने अपना सौभाग्य समझा ।

(२७) इस प्रकार मेल-मिलाप हो जाने के बाद जब सब लोग आनन्द के साथ बैठ गये और उन अनन्य प्रेमियों में परस्पर प्रेमालाप होने लगा तब राजवाहन ने पहले अपना और सोमदत्त तथा पुष्पोद्भव का वृत्तान्त बताकर अन्य मित्रों पर बीती हुई घटनाओं को सुनने के विचार से उन मित्रों को भी अपना-अपना हाल बताने के लिए कहा । उनमें सर्वप्रथम अपहारवर्मा अपनी आप बीती बात सुनाने लगा ।

इति श्रीरामतेजपाण्डेयकृतदशकुमारचरितभाषानुवादे राजवाहनचरितं नाम प्रथमोच्छ्वासः ।

द्वितीयोच्छ्वासः

(१) देव त्वयि तदावतीर्णे द्विजोपकारायासुरविवरं त्वदन्वेषण-प्रसृते च मित्रगणे अहमपि महीमटन्नङ्गेषु गङ्गातटे बहिश्चम्पायाः कश्चिदस्ति तपःप्रभावोत्पन्नदिव्यचक्षुर्मरीचिर्नाम महर्षिरिति कुतश्चित् संलपतो जनसमाजादुपलभ्यामुतो बुभुत्सुस्त्वद्गतिं तमुद्देशमगमम् ।

(२) न्यशामयं च तस्मिन्नाश्रमे कस्यचिच्चूतपोतकस्य छायायां कमप्युद्विग्नवर्णं तापसम् । अमुना चातिथिवदुपचरितः क्षणं विश्रान्तः

❀ बालविबोधिनी ❀

(१) अथापहारवर्मा कथयति । देव, कुमार । त्वयि भवति राजवाहने इत्यर्थः तदा तस्यां रात्रौ । अवतीर्णे प्रविष्टे । द्विजस्य ब्राह्मणस्य मातङ्गस्येत्यर्थः उपकाराय उपकारं कर्त्तुम् । असुरविवरं पातालम् । त्वदिति—तव भवतः राजवाहनस्येत्यर्थः, अन्वेषणाय मार्गणाय प्रसृते निर्गते । अहमपि अपहारवर्माऽपि महीं पृथ्वीम् । अटन् भ्रमन् । चम्पाया अङ्गदेशराजधान्याः । तपः प्रभावेण तपस्यामाहात्म्येन उत्पन्नं प्रादुर्भूतं दिव्यचक्षुर्ज्ञाननयनं यस्यासौ । कुतश्चिद् अज्ञातपरिचयात् । संलपतः परस्परभाषमाणात् । उपलभ्य ज्ञात्वा । अमुतः अस्मान्मरीचेः सकाशात् । अदस्शब्दात् पञ्चम्यास्तसिल् । त्वद्गतिं भवत्प्रचारं । बुभुत्सुः ज्ञातुमिच्छुः बुधेः सन्नन्तादुः प्रत्ययः । उद्देशं प्रदेशं, मरीचिर्यत्रासीदिति शेषः ।

(०) न्यशामयम् अपश्यम् । चूतपोतकस्य तरुणाम्रतरोः उद्विग्नवर्णं अनुतापमलीमसम् । अमुना तत्रोपविष्टेन तापसेन । उपचरितः सत्कृतः । अहमिति

❀ बालक्रीडा ❀

(१) हे देव ! जब आप उस ब्राह्मणका उपकार करनेके लिए उस कन्दरामें उतरे और आपके सभी मित्र जब आपको खोजनेके लिए इधर-उधर फैल गये, तब मैं अङ्गदेशकी पृथिवीपर गङ्गाके किनारे और चम्पा नगरीके बाहर ही बाहर विचरता रहा । इसी बीच मैंने परस्पर बातें करते हुए कुछ लोगोंसे सुना कि, मरीचि नामके कोई एक महर्षि हैं । उन्होंने अपनी तपस्याके बलसे दिव्यदृष्टि पायी है । बस, उनके द्वारा आपका पता लगानेके निमित्त चल पड़ा ।

(२) उनके आश्रमपर जा कर मैंने देखा कि, छोटेसे आम्रवृक्षतले एक

क्वासौ भगवान् मरीचिः तस्मादहमुपलिप्सुः प्रसङ्गप्रोषितस्य सुहृदो गतिम् आश्चर्यज्ञानविभवो हि स महर्षिर्मह्यां विश्रुत इत्यवादिषम्।

(३) अथासावुष्णमायतञ्च निःश्वस्याशंसत—आसीत्तादृशो मुनिरस्मिन्नाश्रमे। तमेकदा काममञ्जरी नामाङ्गपुरीवतंसस्थानीया वारयुवतिरश्रुबिन्दुतारकितपयोधरा सनिर्वेदमभ्येत्य कीर्णशिखण्डास्तीर्णभूमिरभ्यवन्दिष्ट।

❀ बालविबोधिनी ❀

शेषः। तस्मात् मरीचेः सकाशात्। उपलिप्सुः ज्ञातुमिच्छुः। प्रसङ्गेति-प्रसङ्गेन केनापि कारणेन प्रोषितस्य देशान्तरगतस्य। सुहृदः मित्रस्य, राजवाहनस्येत्यर्थः। गतिं प्रचारम्। आश्चर्यजनको ज्ञानस्य विभवो माहात्म्यं यस्यासौ। विश्रुतः प्रसिद्धः। अवादिषम्। अकथयम्।

(३) अथ मद्वचनश्रवणान्तरम्। असौ विवर्णमुखस्तापसः। आयतं दीर्घं। उष्णमायतं चेति पदद्वयं क्रियाविशेषणम्। अशंसत अकथयत्। तादृशः त्वदुक्तगुणयुक्तः। तं मुनिम्। अङ्गपुरी अङ्गदेशराजधानी चम्पेति ख्याता तस्यावतंसस्थानीया शेखरभूता-वतंसः कर्णभूषणशिरोभूषणयोरिति कोषात्। वारयुवतिर्वेश्या। अश्रुबिन्दुभिर्नेत्रजलकणिकाभिस्तारकितौ व्याप्तौ पयोधरौ स्तनौ यस्याः सा रुदतीत्यर्थः। सनिर्वेदं सवैराग्यं सर्वत्र विरक्त्या सहेति शेषः। कीर्णेति-कीर्णः प्रसृतो यः शिखण्डः केशपाशस्तेनास्तीर्णा व्याप्ता भूमिर्यया सा। स्वकेश-

❀ बालक्रीडा ❀

घबड़ाये हुए तपस्वीजी बैठे हैं। उन्होंने अतिथिकी भाँति मेरा सत्कार किया। क्षणभर विश्राम करनेके अनन्तर मैंने तपस्वीजीसे पूछा-'भगवन्! महर्षि मरीचि कहाँ हैं? प्रसङ्गवश मेरे मित्रका विछोह हो गया है। मैं उसका पता लगाना चाहता हूँ। मैंने सुना है कि, उनके पास आश्चर्यजनक ज्ञानका वैभव है।'

(३) मेरी बात सुन करके तपस्वीजीने गरम तथा लम्बी साँस ली और कहा हाँ, इस आश्रममें एक वैसा मुनि था। एक समय काममञ्जरी नामकी एक वेश्या जो चम्पापुरीका अलङ्कार मानी जाती थी-उसके पास गयी और पृथ्वीपर माथेके बाल बखेर करके बड़ी वेदनाके साथ प्रणाम किया। उस समय उसके कुचोंपर

(४) तस्मिन्नेव च क्षणे मातृप्रमुखस्तदाप्तवर्गः सानुक्रोशमनुप्रधावितस्तत्रैवाविच्छिन्नपातमपतत् । स किल कृपालुस्तं जनमार्द्रया गिराश्वास्यार्तिकारणं तां गणिकामपृच्छत् । सा तु सव्रीडेव सविषादेव सगौरवेव चाब्रवीत्—'भगवन् , ऐहिकस्य सुखस्याभाजनं जनोऽयमामुष्मिकाय श्वोवसीयायार्ताभ्युपपत्तिवित्तयोर्भगवत्पादयोर्मूलं शरणमभिप्रपन्नः'—इति ।

❀ बालविबोधिनी ❀

कलापेन भूमिमाच्छाद्य नमस्कृतवतीत्यर्थः ।

(४) मातृप्रमुखो जनन्यादिः । तस्याः काममञ्जर्या आप्तवर्ग आत्मीयगणः । सानुक्रोशं सदयम् । अनुप्रधावितः पश्चादागतः । तत्रैव मरीचेः पुरतः अविच्छिन्नपातं पुनः पुनर्निपत्य । सः महर्षिः । तं जनम्—आप्तवर्गम् । आर्द्रया स्निग्धया । गिरा वचनेन । आर्त्तिकारणं निर्वेदनिदानम् । गणिकां वेश्यां काममञ्जरीमिति यावत् । सा काममञ्जरी । सव्रीडेव सलज्जेव । सविषादेव सनिर्वेदेव । सगौरवेव साभिमानेव । अत्र सलज्जत्वादिकं सर्वमेव कृत्रिमं न तु वास्तवम् । स्वोत्तमताप्रकटनार्थं सलज्जेति । स्वनिर्वेदस्य मुनेः प्रत्ययार्थं सविषादेति । अहमस्य मुनेर्मानसमावर्जयितुं क्षमेत्यभिमानात् सगौरवत्वम् । इह—अस्मिन् जन्मनि भवमैहिकं तस्य । अभाजनम् अस्थानमपात्रमित्यर्थः । अयं जनः—मल्लक्षणो वेश्याजनः । अमुष्मिन् जातमामुष्मिकं पारलौकिकमिति यावत् तस्मै । श्वोवसीयाय कल्याणाय । श्वःश्रेयसं स्यात्कल्याणं श्वोवसीयं शिवं शुभमिति कोषः । ऐहिकं सुखं तावन्न लब्धं मया—अनन्तरं च पारलौकिकं मङ्गलं स्वर्गभोगादिकं यथा मे स्यात्तदर्थमिति भावः । आर्त्तेति—आर्त्तानां पीडितानां विपन्नानामिति यावत्—

❀ बालक्रीडा ❀

पड़ी आँसूकी बूँदें झलक रही थी ।

(४) उसी समय काममञ्जरीके आत्मीयजन मारे शोकके कारण व्याकुलभावसे पीछे—पीछे दौड़ते हुए आये और महर्षि मरीचिके सम्मुख वार—वार गिरने लगे । तव उन दयालु महर्षिने उन लोगोंको प्रेमार्द्र वचनोंसे ढाढ़स वँधा करके काममञ्जरीसे दुःखका कारण पूछा । उस वेश्याने लज्जा, विषाद, किन्तु अभिमानपूर्वक कहा—'भगवन् ! इस प्राणीने (मैंने) इस जीवनमें कोई सुख नहीं पाया ।

(५) तस्यास्तु जनन्युदञ्जलिः पलितशारशिखण्डबन्धस्पृष्टमुक्तभूमिरभाषत—'भगवन्, अस्या मे दोषमेषा वो दासी विज्ञापयति। दोषश्च मम स्वाधिकारानुष्ठापनम्।

(६) एष हि गणिकामातुरधिकारो यद्दुहितुर्जन्मनः प्रभृत्येवाङ्गक्रिया, तेजोबलवर्णमेधासंवर्धनेन दोषाग्निधातुसाम्यकृता मितेनाहारेण

❀ बालविबोधिनी ❀

अभ्युपपत्त्या अनुग्रहेण परिपालनेनेति यावत्—वित्तयोः ख्यातयोः सर्वत्र प्रसिद्धयोरिति यावत्। भगवत्पादयोर्विशेषणमेतत्। भगवतस्तव महर्षेरिति शेषः। पादयोश्चरणयोः। मूल—मन्तिकम्। अभिप्रपन्नः—प्राप्तः।

(५) तस्याः काममञ्जर्याः। जननी माता। उदञ्जलिरूर्ध्वीकृतकरपुटा। पलितेति—पलितेन जरसा शौक्ल्येन शारः शबलो यः शिखण्डबन्धः केशपाशबन्धनं तेनादौ स्पृष्टा पश्चान्मुक्ताभूमिर्यया सा। शिरःस्पृष्टभूतलं यथा तथा प्रणम्येत्यर्थः। अस्या भवत्पुरोवर्त्तमानायाः मे मम दोषं दूषणं अपराधमिति शेषः। एषा पुरोदृश्यमाना। वो युष्माकं दासी मत्कन्येत्यर्थः। स्वस्य आत्मनो गणिकामातुर्यः अधिकारः कन्याया वेश्योचितव्यवहारशिक्षणं तस्यानुष्ठापनं तदुचिताचरणाय प्रेरणम्।

(६) दुहितुः कन्यायाः। जन्मनः प्रभृति—जन्मसमयमारभ्य। अङ्गक्रिया उद्वर्त्तनादिशरीरसंस्कारः। तेजः प्रभावः, बलं सामर्थ्यं, वर्णो गौरत्वादिकं मेधा प्रज्ञा-

❀ बालक्रीडा ❀

सो अब पारलौकिक कल्याणके निमित्त मैं आपके इन चरणोंके शरणमें आ पड़ी हूँ जो दुखी जनोंपर अनुग्रह करके उनका दुःख दूर कर दिया करते हैं।'

(५) इसी समय कुछ सफेद और कुछ काले वालोंके कारण चितकवरे जूड़ेवाली उसकी माताने हाथ जोड़ करके और मस्तकको भूमिमें स्पर्श करा करके कहा—'भगवन्! आपकी दासी (काममञ्जरी) मेरा अपराध वताती है। किन्तु, मेरा दोष यही है कि, मैंने इससे वेश्याजनोचित कार्य करानेकी चेष्टा की है।

(६) और यह प्रत्येक वेश्याकी माताका अधिकार है कि, जन्मसे ही वह अपनी पुत्रीको उवटन आदि लगावे। तेज, बल (शारीरिक वल), वर्ण (रूप)

शरीरपोषणम् , आपञ्चमाद्वर्षात्पितुरप्यनतिदर्शनम् , जन्मदिने पुण्यदिने चोत्सवोत्तरो मङ्गलविधिः, अध्यापनमनङ्गविद्यानां साङ्गानाम् , नृत्यगीतवाद्यनाट्यचित्रास्वाद्यगन्धपुष्पकलासु लिपिज्ञानवचनकौशलादिषु च सम्यग्विनयनम् , शब्दहेतुसमयविद्यासु वार्तामात्रावबोधनम् , आजीवज्ञाने

❀ बालविबोधिनी ❀

चैतेषां संवर्धनेन वृद्धिकारिणा तथा दोषाणां वातपित्तकफानाम्—अग्नेर्जठरानलस्य, धातूनां त्वङ्मांसादीनां साम्यकृता समभावं कुर्वता—तथा मितेन परिमितेन, नात्यल्पेन नातिविस्तरेण वेति भावः। पदत्रयमेतत् आहारेणेत्यस्य विशेषणम्। आपञ्चमात् पञ्चमादारभ्य। पितुः स्वजनकस्यापि अन्येषां तु का कथेति भावः। अनतिदर्शनम् अधिकदर्शनाभावः। प्रायेण पितृदर्शनाभावः कन्याया लज्जाभयाद्यभावं सूचयति। जन्मदिने कन्याया उत्पत्तिदिवसे। पुण्यदिने पुण्यतिथौ संक्रमणादिसमय इत्यर्थः। उत्सवोत्तरः उत्सवप्रधानः। मङ्गलविधिः माङ्गल्यानुष्ठानम्। अध्यापनं—शिक्षादानम्। अनङ्गविद्यानाम्—कामशास्त्राणाम्। साङ्गानाम्—अङ्गसहितानाम्। नृत्येति—नृत्यं च गीतं च वाद्यं च नाट्यमभिनयश्च चित्रमालेख्यकर्म च आस्वाद्यं भोज्यं मिष्टान्नादि च गन्धश्च पुष्पं च तानीति द्वन्द्वसमासः—तेषां कलासु विद्यासु। कलाशब्दस्य सर्वैः सहान्वयः तेन नृत्यकला-गीतकलेत्यादिप्राप्तम्, लिपिज्ञानं अक्षरज्ञानम्, वचनकौशलं श्लेषादि। विनयनं शिक्षणम्। शब्दो व्याकरणविद्या, हेतुस्तर्कविद्या समयो ज्यौतिषविद्या तासु। वार्त्तामात्रावबोधनं वृत्तान्तमात्रज्ञानम्। केन शास्त्रेण कियल्लभ्यते इत्येतावन्मात्रबोधः। आजीवज्ञाने—जीविकापरिचये। ममेयं जीविकेति ज्ञाने इति भावः।

❀ बालक्रीडा ❀

तथा बुद्धिको बढ़ाने और वात-पित्तादि दोषों, जठराग्नि एवं रस आदि धातुओं को समभावमें रखनेवाला परिमित आहार दे करके उसके शरीरका पोषण करे। कन्याका पाँचवाँ वर्ष समाप्त होते ही वेश्याकी माता उसे पितातककी दृष्टिसे दूर रखे। जन्मके दिन तथा संक्रान्ति आदि पवित्र दिनोंमें उत्सवके साथ मङ्गल कार्य करे। सभी अङ्गों समेत अनङ्गविद्या (कामशास्त्र) पढ़ावे। नृत्य, गीत, वाद्य, नाट्य, (अभिनय) चित्रकला, भोज्य-पदार्थ (पकवान आदि), गन्ध, पुष्प,

क्रीडाकौशले सजीवनिर्जीवासु च द्यूतकलास्वभ्यन्तरीकरणम् , अभ्यन्तरकलासु वैश्वासिकजनात्प्रयत्नेन प्रयोगग्रहणम् , यात्रोत्सवादिष्वादरप्रसाधितायाः स्फीतपरिबर्हायाः प्रकाशनम् , प्रसङ्गवत्यां संगीतादिक्रियायां पूर्वसंगृहीतैर्ग्राह्यवाग्भिः सिद्धिलम्भनं दिङ्मुखेषु तत्तच्छिल्पवित्तकैर्यशःप्रख्यापनम् , कार्तान्तिकादिभिः कल्याणलक्षणोद्घोषणम् पीठमर्दविट-

---

❀ बालविबोधिनी ❀

सजीवनिर्जीवासु द्यूतकलास्वित्यस्य विशेषणम् । सजीवा द्यूतकला यथा कुक्कुटादिद्वन्द्वयुद्धं निर्जीवा च अक्षक्रीडादि । अभ्यन्तरीकरणं तेषु अन्तःप्रवेशनं स्वायत्तीकरणमिति शेषः । अभ्यन्तरकलासु रतिक्रीडासु । वैश्वासिकजनात् प्रामाणिकपुरुषात् । प्रयत्नेन आदरातिशयेन । प्रयोगग्रहणं कर्त्तव्यताशिक्षणम् । आदरसाधितायाः सादरमलंकृतायाः । स्फीतेति–स्फीताः अतिशयिताः प्रोज्ज्वला इति यावत् परिवर्हाः परिच्छदा यस्यास्तथाविधायाः । परिच्छदे नृपार्हेऽर्थे परिवर्हः इत्यमरः । प्रकाशनं वहिः प्रकटनम् । प्रसङ्गवत्यां–केनचित्प्रसङ्गेन कार्यविशेषेण वा संजातायाम् । पूर्वसंगृहीतैः–प्रागेव धनादिना स्वायत्तीकृतैः ग्राह्यवाग्भिः । ग्राह्या सर्वैः स्वीकार्या वाक् येषां तैः । सिद्धिलम्भनं कार्येषु सिद्धिलाभः । दिङ्मुखेषु दिगन्तरेषु तत्तच्छिल्पवित्तकैः प्रसिद्धकलाशास्त्रनिष्णातैर्वैणिकमार्दङ्गिकादिभिः यशःप्रख्यापनं स्वकीर्त्तिसमुद्घोषणम् । कार्त्तान्तिको लक्षणज्ञः । कल्याणेति--अस्यां गणिकायां सर्वाणि शरीरलक्षणानि कल्याणसूचकानीत्यादिख्यापनम् । पीठमर्दो नायकप्रधानसहायः । विटो विदूषकश्च नायकस्य शृङ्गारसहायौ ।

❀ बालक्रीडा ❀

आदिकी कलाओं कथा पढ़ने--लिखने और बात--चीतमें पूर्ण निपुण करे। व्याकरण, तर्क और सिद्धान्त (ज्योतिष) विद्याके वृत्तान्त मात्रका ज्ञान करा दे, सजीव द्यूतकला (जुआ) अर्थात् मुर्गे आदिकी लड़ाई और पाँसा आदि एवं रतिक्रियाका मर्म समझा दे। किसी प्रकारकी यात्रा और उत्सव आदिके अवसर पर वड़े आदरके साथ कन्याका शृङ्गार करके इस तरह लोगोंके समक्ष ले जाय कि, उसके चिकने तथा चमकीले केश लहरा रहे हों। यदि कोई प्रसङ्ग आ पड़े तो पहले ही से धन आदि दे करके अपने वशमें किये हुए गुणी लोगोंद्वारा विश्वस-

विदूषकैर्भिक्षुक्यादिभिश्च नागरिकपुरुषसमवायेषु रूपशीलशिल्पसौन्दर्य-माधुर्यप्रस्तावना, युवजनमनोरथलक्ष्यभूतायाः प्रभूततमेन शुल्केनाव-स्थापनम्, स्वतो रागान्धाय तद्भावदर्शनोन्मादिताय वा जातिरूपवयोऽर्थशक्तिशौचत्यागदाक्ष्यदाक्षिण्यशिल्पशीलमाधुर्योपपन्नाय स्वतन्त्राय प्रदा-नम्, अधिकगुणायास्वतन्त्राय प्राज्ञतमायाल्पेनापि बहुव्यपदेशेनार्पणम्,

❀ बालविबोधिनी ❀

शृङ्गारेऽस्य सहाया विटचेटविदूषकाद्याः स्युरिति साहित्यदर्पणः । भिक्षुकी परि-व्राजिका । नागरिकपुरुषसमवायेषु चतुरजनसमाजेषु । रूपं वर्णः, शीलं स्वभावः, सौन्दर्यं लावण्यं, माधुर्यं मनोहरत्वं तेषां प्रस्तावना प्रसङ्गः प्रख्यापनमिति यावत् । युवजनेत्यादिगणिकाया विशेषणम् । प्रभूततमेन प्रचुरतरेण । शुल्केन पणेन । अवस्थापनं युवकस्य समीपे स्थापनम् । स्वतः स्वयमेव रागान्धाय अनु-रागवशीभूताय । तद्भावेति-तस्य गणिकाया भावस्य विलासादेर्दर्शनेनावलोक-नेन उन्मादिताय उन्मत्तीकृताय । जातीति-जातिर्ब्राह्मणत्वादिः, रूपं लावण्यं, वयो यौवनं, अर्थो धनं, शक्तिः सामर्थ्यं, त्यागो दानं, दाक्ष्यं नैपुण्यं, दाक्षिण्यं, सरलता, शिल्पं कलाचातुर्यं, शीलं चारित्रं, माधुर्यं जनमनोरञ्जकत्वं एतैरुपपन्नाय युक्ताय । स्वतन्त्राय स्वाधीनाय नत्वन्यपरतन्त्रायेत्यर्थः । प्रदानमर्पणं गणिकाया इति शेषः । अधिकगुणाय अधिकगुणशालिने अस्वतन्त्राय पराधीनाय । प्राज्ञ-

❀ बालक्रीडा ❀

सनीय वाक्योंको कहला करके कन्याका गुण-गान कराये । विविध लक्षणोंको जाननेवाले लोगोंद्वारा कन्याके शुभ लक्षण कहलावे । कन्याको चाहनेवाले नायकके प्रिय मित्र, विट, विदूषक और भिक्षुकी आदिके द्वारा नागरिकोंके समवायमें अपनी कन्याके रूप, शील, कौशल, सौन्दर्य और माधुर्यका बखान करावे । युवकोंके मनोरथकी लक्ष्यभूमि बना करके कन्याका अधिकसे अधिक मूल्य निर्धारित करे । यदि स्वतः रागान्ध अथवा कन्याके हाव-भावसे उन्मत्त, जाति, रूप, वय, धन, शक्ति, शुचिता, त्याग, दक्षता, दाक्षिण्य, शिल्प और माधुर्यसे युक्त एवं स्वतन्त्र प्रेमी मिले तो, कन्याको उसके हवाले कर दे । जिस प्रणयीमें गुण तो अधिक हों किन्तु वह स्वतन्त्र न हो ऐसे अतिशय बुद्धिमान् प्रेमीको बहुत-

अस्वतन्त्रेण वा गान्धर्वसमागमेन तद्गुरुभ्यः शुल्कापहरणम्, अलाभेऽर्थस्य कामस्वीकृते स्वामिन्यधिकरणे वा साधनम्, रक्तस्य दुहित्रैकचारिणीव्रतानुष्ठापनम्, नित्यनैमित्तिकप्रीतिदायकतया हृतशिष्टानां गम्यधनानां चित्रैरुपायैरपहरणम्, अददता लुब्धप्रायेण च विगृह्यासनम्,

❀ बालविबोधिनी ❀

तमाय विद्वत्तमाय। अल्पेन, अल्पधनेन, अल्पं गृहीत्वापीत्यर्थः, वहुव्यपदेशेन मयास्य सकाशाद् वहुधनं गृहीतमिति प्रख्याप्येत्यर्थः। अस्वतन्त्रेण पराधीनेन, यस्तु युवा पित्राद्यधीनस्तेन सहेत्यर्थः। गान्धर्वसमागमेन गान्धर्वविवाहेन तद्गुरुभ्यः तस्य यूनः पित्रादेः सकाशात्। अयं ते पुत्रो गान्धर्वेण विधिना मद्दुहितरं परिणीतवानिति कथयित्वेति भावः। शुल्कापहरणं धनग्रहणम्। अलाभेऽप्राप्तौ। कामस्वीकृते कामेन वशीकृते। विषये सप्तमी। स्वामिनि तत्पित्रादेः समीपे। अधिकरणे व्यवहारालये। साधनम् अभियोगकरणम्। रक्तस्य अनुरक्तस्य पुरुषस्य सम्बन्धे। दुहित्रेति--दुहित्रा स्वकन्यया एकचारिणीव्रतस्य एक पुरुषासक्तिरूपस्य व्रतस्यानुष्ठापनं प्रवर्त्तनम्। नित्येति--गणिका खलु नित्येन नैमित्तिकेन च विधिना प्रीतिदायिका भवति तेन हेतुना हृतशिष्टानां हृतेभ्यो गृहीतेभ्यो धनेभ्यः। शिष्टानामवशिष्टानाम्। गम्यधनानां विटजनद्रव्याणाम्। गम्यो विटः पाल्लविको भुजङ्ग इति भागुरिः। चित्रैर्नानाविधैः। अददता अर्थमिति

❀ बालक्रीडा ❀

कुछ वढ़ानेके वाद कन्या अर्पण करे। कदाचित् किसी पराधीन प्रेमीके साथ कन्याका सम्पर्क हो जाय तो, प्रणयीके गुरुजनोंसे अपनी कन्याका शुल्क वसूल करे। यदि धन न मिल सके और कन्या आप प्रेमीको अङ्गीकार कर ले तो प्रेमीके वड़े वूढ़ों तथा अधिकारियों--(अफसरों--) के पास नालिश करके कार्य साधन करे। प्रेमीके प्रति अपनी कन्याद्वारा पातिव्रत-धर्म पालन करावे। प्रेमीसे नित्य--नैमित्तिक रूपमें आये हुए धनसे अवशिष्ट धनको तरह--तरहके कौशलसे खींचें। यदि प्रेमी लोभवश धन न दे तो उसे लड़ करके अलग कर दे। कन्याके प्रेमीके पड़ोसियोंमें ऐसा भाव भर दे कि, जिससे वे प्रेमीकी त्यागशक्तिको प्रोत्साहित करें। जव प्रेमीके पास कुछ न रहे तो, जली--कटी वातोंको कह करके कोसे।

प्रतिहस्तिप्रोत्साहनेन लुब्धस्य रागिणस्त्यागशक्तिसंधुक्षणम्, असारस्य वाक्संतक्षणैर्लोकोपक्रोशनैर्दुहितृनिरोधनैर्व्रीडोत्पादनैरन्याभियोगैरवमानैश्चापवाहनम्, अर्थदैरनर्थप्रतिघातिभिश्चानिन्द्यैरिभ्यैरनुबद्धार्थानर्थसंशयान्विचार्य भूयोभूयः संयोजनमिति ।

❀ बालविबोधिनी ❀

शेषः । लुब्धप्रायेण प्रायशो लोलुपेन विगृह्य विरोध्य । विग्रहं कारयित्वेत्यर्थः । आसनमवस्थानम् । असनमिति पाठे क्षेपणं नायकस्य तिरस्कार इत्यर्थः । प्रतिहस्तिना प्रतिद्वन्द्विना प्रतिवासिना वा यत्प्रोत्साहनमुद्दीपनं तेन । प्रतिहस्ती प्रातिवेश्य इति कोषः । लुब्धस्य अर्थलोलुपस्य कृपणस्येत्यर्थः । त्यागशक्तेर्दानसामर्थ्यस्य संधुक्षणमुद्दीपनम् । असारस्य निर्धनस्य । वाक्संतक्षणैः वाक्पीडनैः कटुवाक्यैरिति यावत् । लोकोपक्रोशनैः लोकेषु जनसमाजेषु निन्दनैः । दुहितृनिरोधनैः स्वकन्याया गमननिवारणैः । व्रीडोत्पादनैः लज्जाप्रदानैः । अन्येति अन्यविधैरभियोगैः धर्माधिकरणव्यवहारैः । अपवाहनं गृहाद् बहिष्करणम् । अर्थदैः । धनप्रदैः । अनर्थप्रतिघातिभिः आपत्प्रतीकारसमर्थैः । अनिन्द्यैः समाजेषु शिष्टत्वेन परिगणितैः । इभ्यैर्धनिकैः । अनुबद्धार्थान् अनुबद्धः संश्लिष्टोऽर्थो येषां तान्, सम्बन्धयुक्तानित्यर्थः । अर्थसंशयान् अर्थस्य शुल्कस्य प्राप्तिविषये संशयो येभ्यस्तान् । विचार्य विविच्य, अर्थप्राप्तौ कापि बाधा न भविष्यतीति विचार्येति भावः । संयोजनं गणिकायाः सम्मेलनम् । इति—एतत्पर्यन्तं गणिकामातुरधिकारकथनम् ।

❀ बालक्रीडा ❀

अपनी कन्याको उससे न मिलने दे । लज्जा उत्पन्न करनेवाली बातें कह–कह करके उसपर नाना प्रकारके अभियोग लगावे और अन्तमें उसका अपमान करके भगा दे । जिससे धन अधिक मिल सके और किसी प्रकारकी विघ्न—बाधा न आवे । ऐसी अनिन्द्य बातें सोच–सोच करके धनिकोंके साथ कन्याका मेल करावे । किन्तु, उसमें भी इस बातका ध्यान रखे कि, सम्बन्ध सदा ऐसोंके साथ ही करे कि, जहाँ से धन मिलनेमें कोई संशय न हो ।

(७) गणिकायाश्च गम्यं प्रति सज्जतैव न सङ्गः। सत्यामपि प्रीतौ न मातुर्मातृकाया वा शासनातिवृत्तिः। एवं स्थितेऽनया प्रजापतिविहितं स्वधर्ममुल्लङ्घ्य क्वचिदागन्तुके रूपमात्रधने विप्रयूनि स्वेनैव धनव्ययेन रममाणया मासमात्रमत्यवाहि। गम्यजनश्च भूयानर्थयोग्यः प्रत्याचक्षाणयानया प्रकोपितः। स्वकुटुम्बकं चावसादितम् 'एषा कुमतिर्न कल्याणी,

---

❀ बालविबोधिनी ❀

(७) अधुना गणिकाया अधिकारः कथ्यते। गम्यं विटम्। सज्जता सुन्दरपरिच्छदादिप्रदर्शनमेव कार्यमिति शेषः—न तु सङ्गः सहवासादिः गणिकया कार्य इति शेषः। प्रीतौ अनुरागे। मातुर्जनन्याः। मातृकायाः मातामह्याः धात्र्या वा। मातुर्माता तु मातृकेति वैजयन्ती। मातेव मातृकेति इवार्थे कन् प्रत्ययो वा। उपमातृका धात्रीत्यर्थः। शासनातिवृत्तिः आज्ञालंघनम्। गणिकया सर्वदा मातुर्मातृकाया वा शासने वर्त्तितव्यमिति भावः। एवं स्थिते—एतादृश्यां मर्य्यादायाम्। अनया काममञ्जर्या। प्रजापतिविहितं विधिनिर्दिष्टम्। स्वधर्मं गणिकोचितकर्त्तव्यम्। क्वचित् अपरिचिते। रूपमात्रं धनं यस्य तस्मिन्, यस्य सौन्दर्यमेव वर्त्तते न तु धनमिति भावः। विप्रयूनि ब्राह्मणयुवके। स्वेनैव धनव्ययेन काममञ्जर्या एव धनव्ययेन। रममाणया विहरन्त्या। अत्यवाहि यापितम्। गम्यजनः विटजनः भूयान् अधिकः। अर्थयोग्यः धनप्रदानसमर्थः प्रत्याचक्षाणया प्रत्याख्यानं कुर्वत्या। अनया काममंजर्या। प्रकोपितः रोषितः। स्वकुटुम्बकं निजपरिवारवर्गः। अवसादितं—धनाभावादवसन्नीकृतम्, कष्टं प्रापितमिति भावः। एषा एतादृशी। कुमतिः कुबुद्धिस्तवेति शेषः। कल्याणी शुभप्रदा। मयि काम-

❀ बालक्रीडा ❀

(७) प्रत्येक वेश्याका कर्तव्य है कि, वह प्रेमीके ऊपरी ठाट--बाटको ही देख करके न रीझ जाय—बल्कि तत्त्व भी देखे। यदि किसीसे प्रीति हो जाय तो भी, वेश्या अपनी माताकी आज्ञाका उल्लंघन न करे। ऐसी दशामें इसने भगवान् प्रजापतिके निर्मित धर्मका अतिक्रमण करके किसी रूपमात्रके धनी परदेशी युवकपर रीझ करके अपना ही व्यय करती हुई एक महीनेका समय विताया। इसी बीच कितने ही वड़े--वड़े धनी--मानी आये, जिसके साथ यह सुखसे रह सकती थी,

इति निवारयन्त्यां मयि वनवासाय कोपात्प्रस्थिता। सा चेदियमहार्यनिश्चया सर्व एष जनोऽत्रैवानन्यगतिरनशनेन संस्थास्यते, इत्यरोदीत्।

(८) अथ सा वारयुवतिस्तेन तापसेन 'भद्रे, ननु दुःखाकरोऽयं वनवासः। तस्य फलमपवर्गः स्वर्गो वा। प्रथमस्तु तयोः प्रकृष्टज्ञानसाध्यः प्रायो दुःसंपाद एव, द्वितीयस्तु सर्वस्यैव सुलभः कुलधर्मानुष्ठायिनः। तद्-

---

❀ बालविबोधिनी ❀

मय्यां मातरि। वनवासाय अरण्यवासं कर्त्तुम्। कोपात् क्रोधमाश्रित्य। इयं काममञ्जरी। अहार्यनिश्चया अहार्यः हर्त्तुं निवारयितुमशक्यो निश्चयः प्रतिज्ञा यस्याः सा। दृढनिश्चयेत्यर्थः। एष जनः अस्मदादिः। अत्रैव भवत्पुरत एव। संस्थास्यते मरिष्यति। संस्थानं मरणं मतमिति वैजयन्ती। अरोदीत् विललाप, सा वृद्धा गणिकामातेति शेषः।

(८) अथानन्तरं तेन पूर्वोक्तेन तापसेन मरीचिना सा वारयुवतिर्गणिका काममञ्जरीति यावत्। सानुकम्पं सदयमभिहितेति समन्वयः। दुःखाकरो दुःखजनकः। तस्य वनवासस्य। अपवर्गो मोक्षः। प्रथमः अपवर्गः। तयोः अपवर्गस्वर्गयोः। प्रकृष्टज्ञानसाध्यो ब्रह्मज्ञानादिनिष्पाद्यः। प्रायो बाहुल्येन। दुःसंपादः अशक्यः। द्वितीयः स्वर्गः। कुलधर्मानुष्ठायिनः कुलधर्ममनुतिष्ठतीति कुलधर्मानुष्ठायी तस्य स्वजात्युचितकर्त्तव्यपरायणस्य सर्वस्येत्यनेन सम्बन्धः। तत् तस्मात्

❀ बालक्रीडा ❀

किन्तु, इसने उनका तिरस्कार करके नाराज कर दिया। अपने कुटुम्बियोंको भी बहुत तकलीफ दी। जब मैंने 'यह कुमति ठीक नहीं है' यों कह करके वैसा करनेसे रोका तो, मारे क्रोधके यह वनवासके लिए घरसे निकल पड़ी। सो यदि इसका यह दृढ़ निश्चय है तो, असहायभावसे सारा कुटुम्ब अनशन करता हुआ इसी जगह मर मिटेगा।

(८) इसके बाद उन तपस्वीजीने उस वेश्यासे कहा—'भद्रे! वनवास दुःखकी खान है। इसका फल मोक्ष अथवा स्वर्ग ही हो सकता है। सो मोक्ष तो, अतिशय प्रखर ज्ञानसे ही साध्य हो सकता है और उसमें विविध प्रकारके क्लेश मिलते हैं। रही स्वर्गकी बात--सो वह अपने कुल--धर्मका अनुष्ठान करनेवाले सभी प्राणि-

शक्यारम्भादुपरम्य मातुर्मते वर्तस्व' इति सानुकम्पमभिहिता 'यदीह भगवत्पादमूलमशरणम्, शरणमस्तु मम कृपणाया हिरण्यरेता देव एव इत्युदमनायत ।

(६) स तु मुनिरनुविमृश्य गणिकामातरमवदत्—'संप्रति गच्छ गृहान् । प्रतीक्षस्व कानिचिद्दिनानि यावदियं सुकुमारा सुखोपभोगसमुचिता सत्यरण्यवासव्यसनेनोद्वेजिता भूयोभूयश्चास्माभिर्विबोध्यमाना प्रकृतावेव स्थास्यति' इति ।

❀ बालविबोधिनी ❀

कारणात् । अशक्यारम्भात् असाध्यकर्मणः । उपरम्य निवृत्य मातुर्मते वर्त्तस्व—मातुरुपदेशं पालयेत्यर्थः । इह संसारे । भगवत्पादमूलं भगवतस्तव तापसस्येति शेषः पादमूलं चरणमूलम् । अशरणम् अरक्षकम् । ममेति शेषः । मम काममञ्जर्याः । कृपणायाः दीनायाः । हिरण्यरेताः अग्निः । शरणमस्तु—अग्नौ प्रवेक्ष्यामीति भावः । उदमनायत उन्मना इव वभूव ।

(९) अनुविमृश्य विचिन्त्य विचार्य वा । सुखेति--सुखस्योपभोगे समुचिता अभ्यस्ता । अरण्यवासव्यसनेन वनवासजनितदुःखेन । उद्वेजिता व्याकुला । विबोध्यमाना उपदिश्यमाना । प्रकृतौ स्वभावे ।

❀ बालक्रीडा ❀

योंके लिए सुलभ है । अत एव तुम ऐसे अशक्य उद्योगसे विरत हो करके अपनी माता की बात मानो ।' इस प्रकार मुनिकी दयाभरी वाणी कहनेपर वेश्याने कहा—'यदि यहाँ आपके चरणोंमें भी मुझे शरण नहीं मिलेगी, तब तो, मुझ अभागिनके लिए एक-मात्र अग्निदेव ही शरण होंगे ।' यों कह करके वह बिलखने लगी ।

(९) तदनन्तर कुछ विचार करके तपस्वीजीने वेश्याकी माता से कहा—'अब तुम घर जाओ और कुछ समय प्रतीक्षा करो । तबतक सब प्रकारके सुखोपभोगके लिए अभ्यस्त यह सुकुमारी वनवासके क्लेशसे ऊब करके और हम लोगोंके बार-बार समझानेसे प्रकृतिस्थ हो जायगी ।

(१०) 'तथा' इति तस्याः प्रतियाते स्वजने सा गणिका तमृषिमलघुभक्तिर्धौतोद्गमनीयवासिनी नात्यादृतशरीरसंस्कारा वनतरुपोतालवालपूरणैर्देवतार्चनकुसुमोच्चयावचयप्रयासैर्नैकविकल्पोपहारकर्मभिः कामशासनार्थे च गन्धमाल्यधूपदीपनृत्यगीतवाद्यादिभिः क्रियाभिरेकान्ते च त्रिवर्गसंबन्धिनीभिः कथाभिरध्यात्मवादैश्चानुरूपैरल्पीयसैव कालेनान्वरञ्जयत् ।

❀ बालविबोधिनी ❀

(१०) तथा—तथाऽस्तु इति कथयित्वा । प्रतियाते प्रतिनिवृत्ते । अलघुभक्तिः दृढभक्तिः । धौतेति—धौतं शुद्धं उद्गमनीयं उपस्थानयोग्यं वसनं वस्ते इति तद्वासिनी । उद्गमनीयं धौतवस्त्रयुगं वा । तस्मादुद्गमनीयं यद् धौतयोर्वस्त्रयोर्युगमित्यमरः । नात्यादृतेति--नात्यादृतः नाभिलषितः शरीरस्य संस्कारः परिकर्मादि यया सा । वनेति--वनतरुपोतानां वनस्थबालवृक्षाणामालवालस्य जलाधारवेष्टनस्य पूरणैर्जलेनेति शेषः । देवतेति--देवतानामर्चनार्थं यः कुसुमोच्चयः पुष्पराशिस्तस्यावचयः संग्रहस्तस्य प्रयासैः प्रयत्नैः । नैकेति--नैकेऽनेके विकल्पाः प्रकारा येषां तानि यान्युपहारकर्माणि बलिकर्माणि तैः । कामस्य शासनः कामशासनो महादेवस्तदर्थे तन्निमित्तम् । एकान्ते रहसि । त्रिवर्गसम्बन्धिनीभिः धर्मार्थकामविषयाभिः । अध्यात्मवादैः आत्मतत्त्वचिन्तनैः । अनुरूपैर्योग्यैः । अन्वरञ्जयत् । सन्तोषयामास मुनिमिति शेषः ।

❀ बालक्रीडा ❀

(१०) 'बहुत अच्छा' कह करके जब उस वेश्याके कुटुम्बी घर लौट गये, तब वह बड़ी श्रद्धाके साथ उन मुनिराजकी सेवा-शुश्रूषा करने लगी । वह धुले हुए केवल एक जोड़े कपड़े से अपना काम चलाती । शरीरको एक दम सँवारती सिंगारती नहीं । तपोवनके छोटे-छोटे पौधोंके थालोंमें जल भरती । देवपूजनके निमित्त फूल जुटाती । विविध प्रकारके उपचार एकत्र करती । श्रीशिवजीके पूजनके निमित्त चन्दन, माला, धूप, दीपका जुगाड़ करती और नृत्य--गीत--वाद्य करके उन्हें प्रसन्न करती । कभी--कभी एकान्तमें अर्थ—धर्म—कामसे सम्बन्ध रखनेवाली अथवा अध्यात्मसे सम्बद्ध अनुरूप बातें करती थी । ऐसा करके उसने थोड़े ही समयमें उन मुनिका मन मोह लिया ।

(११) एकदा च रहसि रक्तं तमुपलक्ष्य मूढः खलु लोको यत्सहधर्मेणार्थकामावपि गणयति' इति किंचिदस्मयत। 'कथय वासु, केनांशेनार्थकामातिशायी धर्मस्तवाभिप्रेतः' इति प्रेरिता मरीचिना लज्जामन्थरसारभताभिधातुम्—'इतः किल जनाद्भगवतस्त्रिवर्गबलाबलज्ञानम्। अथवैतदपि प्रकारान्तरं दासजनानुग्रहस्य। भवतु, श्रूयताम्।

(१२) ननु धर्मादृतेऽर्थकामयोरनुत्पत्तिरेव। तदनपेक्ष एव धर्मो

❀ बालविबोधिनी ❀

(११) रक्तमनुरक्तम्। तम् मरीचिम्। मूढः अज्ञः। धर्मेण सहार्थकामावपि गणयति धर्मेण सहार्थकामयोर्गणना नोचितेति भावः। अस्मयत—स्मितमकरोत्। वासु बाले। सम्बोधनमेतत्। केनांशेन कया विधया। अर्थकामौ अतिशेते श्रेष्ठत्वेनोल्लंघ्य वर्त्तत इति तथा। अभिप्रेतः इष्टः। इति एवं प्रकारेण। प्रेरिता अनुयुक्ता पृष्टेति यावत्। लज्जामन्थरं सव्रीडमन्दम्। क्रियाविशेषणमिदम्। इतो जनात्—अस्मान्मल्लक्षणाज्जनात्। मत्त इति यावत्। भगवतस्तव। त्रिवर्गेति—त्रिवर्गस्य धर्मार्थकामानां बलावलयोरुत्कर्षापकर्षयोर्ज्ञानम्। मादृशजनाद् भवादृशमहर्षेस्त्रिवर्गबलाबलज्ञानमसम्भवमेव। तथापि यद्भवता जिज्ञासितं तदपि मयि भवतोऽनुग्रहस्य चिह्नमिति भावः। भवतु—यथावाऽस्तु।

(१२) धर्मादृते—धर्मेण विना। अनुत्पत्तिरभावः। तदनपेक्षः अर्थकामनि-

❀ बालक्रीडा ❀

(११) एक दिन एकान्तमें मुनिको अपने पर आसक्त देख करके उस वेश्याने सोचा—'यह संसार कितना मूर्ख है कि, जो धर्मके साथ-साथ अर्थ और कामको भी गणना करता है।' ऐसा विचार आने पर उसे कुछ विस्मय भी हुआ। इसी समय महर्षि मरीचिने कहा—'हे बाले ? अर्थ और कामसे भी बढ़ करके धर्मको तुमने क्यों करके माना ?' तब वह लज्जावश धीरे-धीरे बोली—'इस दासीकी अपेक्षा आपको त्रिवर्ग (अर्थ-धर्म-काम) का बलाबल ज्ञान अधिक है। अथवा यह भी अपने सेवकों पर कृपा करनेका एक प्रकारान्तर है। अच्छा, सुनिए।

(१२) धर्मके विना अर्थ और कामकी उत्पत्ति ही नहीं हो पाती। इसलिए

निवृत्तिसुखप्रसूतिहेतुरात्मसमाधानमात्रसाध्यश्च । सोऽर्थकामवद्बाह्यसाधनेषु नात्यायतते । तत्त्वदर्शनोपबृंहितश्च यथाकथंचिदप्यनुष्ठीयमानाभ्यां नार्थकामाभ्यां बाध्यते । बाधितोऽपि चाल्पायासप्रतिसमाहितस्तमपि दोषं निर्हृत्य श्रेयसेऽनल्पाय कल्पते ।

(१२) तथाहि पितामहस्य तिलोत्तमाभिलाषः, भवानीपतेर्मुनिपत्नीसहस्रसंदूषणम्, पद्मनाभस्य षोडशसहस्रान्तः पुरविहारः, प्रजापतेः

❀ बालविबोधिनी ❀

रपेक्षः । निवृत्तिसुखप्रसूतिहेतुः निवृत्त्या यत् सुखं तस्य प्रसूतेरुत्पत्तेः हेतुः कारणम् मोक्षसुखनिदानम् । आत्मेति—आत्मनः स्वस्य समाधानमात्रेणैकाग्रयेण साध्यः सम्पाद्यः । सः धर्मः । बाह्यसाधनेषु लोकव्यवहारेषु । अत्यायतते आयत्तीभवतीत्यर्थः' । तत्त्वदर्शनेन यथार्थविचारेण उपबृंहितो वर्द्धितो धर्मः कथंचिदपि—केनापि प्रकारेण । अनुष्ठीयमानाभ्यां सेव्यमानाभ्याम् । बाध्यते प्रतिहन्यते । अल्पायासेन स्वल्पप्रयत्नेन प्रतिसमाहितः समाधानं प्रापितः । निर्हृत्य दूरीकृत्य । अनल्पाय श्रेयसे मोक्षाय । कल्पते समर्थो भवति ।

(१२) तथाहि—यथा ब्रह्मादयो देवा अर्थकामाभ्यां प्रतिहतेऽपि धर्मे पुनरप्यल्पायासेन तं दोषं परिहृत्य निरतिशयसुखं लब्धवन्तस्तदेवोदाहरणमुखेन प्रदर्श्यत इत्यर्थः । पितामहस्य ब्रह्मणः । तिलोत्तमा काचिदप्सराः । भवानीपतेः शिवस्य । संदूषणमुपभोगः । पद्मनाभस्य श्रीकृष्णस्य । अन्तःपुरं स्त्रीवर्गः ।

❀ बालक्रीडा ❀

कहा जा सकता है कि, धर्म काम और अर्थकी अपेक्षा नहीं करता, यह धर्म ही निवृत्ति सुखकी उत्पत्तिका मूल कारण है और चित्तकी एकाग्रता मात्रसे यह सिद्ध हो जाता है धर्म अर्थ और कामकी तरह बाह्य साधनोंके अधीन नहीं रहता । तत्त्वज्ञानसे उत्कर्षको प्राप्त धर्म किसी भी तरह यदि अर्थ और कामका अनुष्ठान करनेपर भी उनसे बाधित नहीं होता । कदाचित् उनसे बाधित हो भी जाय तो, यह तनिकसे प्रयाससे समाहित हो करके उस दोषको भी नष्ट करके विपुल श्रेयका कारण बन जाता है ।

(१२) और फिर पितामहका तिलोत्तमापर मोहित होना, शिवजीका हजारों

स्वदुहितर्यपि प्रणयप्रवृत्तिः शचीपतेरहल्याजारता, शशाङ्कस्य गुरुतल्पगमनम्, अंशुमालिनो वडवालङ्घनम्, अनिलस्य केसरिकलत्रसमागमः, बृहस्पतेरुतथ्यभार्याभिसरणम्, पराशरस्य दासकन्यादूषणम्, पाराशर्यस्य भ्रातृदारसङ्गतिः अत्रेर्मृगीसमागम इति ।

(१४) अमराणां च तेषु तेषु कार्येष्वासुरविप्रलम्भनानि ज्ञानबलान्न धर्मपीडामावहन्ति । धर्मपूते च मनसि नभसीव न जातु रजोऽनुषज्यते ।

❀ बालविबोधिनी ❀

प्रजापतेः विधातुः । स्वदुहितरि निजकन्यायाम् । शचीपतेरिन्द्रस्य । शशाङ्कस्य चन्द्रस्य । गुरुतल्पगमनं बृहस्पतिपत्नीधर्षणम् । तल्पं शय्याट्टदारेष्विति कोषः । अंशुमालिनः सूर्यस्य । वड़वा अश्वी । अनिलस्य वायोः । केसरिकलत्रेति–केसरिणस्तन्नामकवानरस्य कलत्रं स्त्री अञ्जनी नाम्नी तया सह समागमः सङ्गमः । उतथ्यो नाम बृहस्पतेरग्रजः । पराशरस्य व्यासपितुः । दासकन्या कैवर्त्तदुहिता योजनगन्धेति प्रसिद्धा । पाराशर्यस्य । व्यासस्य । पराशरस्यापत्यं पुमानिति गर्गादिभ्यो यञ् । तस्य भ्राता विचित्रवीर्यस्तस्य दारेषु पत्नीषु संगतिः समागमः । अत्रेस्तदाख्यमहर्षेः ।

(१४) अमराणां देवानाम् । आसुरविप्रलम्भनानि अकृत्याचरणानि । ज्ञानबलात् ज्ञानोत्कर्षात् । धर्मपीडां धर्मबाधाम् । आवहन्ति जनयन्ति । नभसि आकाशे । जातु कदाचित् । रजो रजोगुणः धूलिश्च । अनुषज्यते सम्बध्यते ।

❀ बालक्रीडा ❀

मुनि-पत्नियोंका धर्म बिगाड़ना, श्रीकृष्णका सोलह हजार स्त्रियोंके अन्तःपुरमें विहार करना, प्रजापतिका अपनी कन्यापर बुरी दृष्टि करना, इन्द्रका अहल्याके साथ दुराचार करना, चन्द्रमाका गुरुपत्नीको दूषित करना, सूर्य का वडवा (घोड़ी) का घर दबोचना, वायुका केसरी वन्दरकी पत्नीसे समागम करना, बृहस्पतिका उतथ्यकी पत्नीसे अभिसार करना, महर्षि पराशरका धीवरकी कन्याके साथ दुराचार करना, व्यासदेवका अपने भाईकी स्त्रियोंके साथ समागम करना और अत्रिभगवानका मृगीके साथ संभोग करना आदि ।

(१४) इस प्रकार देवताओंके दुराचार भी ज्ञानबलसे युक्त पुरुषोंको नहीं सताते । धर्मसे पुनीत मनसे रजोगुणका समावेश उसी तरह नहीं हो पाता जैसे

तन्मन्ये नार्थकामौ धर्मस्य शततमीमपि कलां स्पृशतः इति ।

(१५) श्रुत्वैतदृषिरुदीर्णरागवृत्तिरभ्यधात्—'अयि विलासिनि, साधु पश्यसि न धर्मस्तत्त्वदर्शिनां विषयोपभोगेनोपरुध्यत इति । किंतु जन्मनः प्रभृत्यर्थकामवार्तानभिज्ञा वयम् । ज्ञेयौ चेमौ किंरूपौ किंपरिवारौ किंफलौ च' इति ।

(१६) सा त्ववादीत्—'अर्थस्तावदर्जनवर्धनरक्षणात्मकः, कृषिपाशु-

❀ बालविबोधिनी ❀

तन्मन्य इत्यादि—अर्थकामौ धर्मस्य शततमांशेनापि समानौ न भवितुमर्हत इति मां प्रतिभातीत्यर्थः ।

(१५) एतत्—काममञ्जर्युक्तम् । ऋषिर्मरीचिः । उदीर्णा उद्रिक्ता वृद्धिं गतेति यावत् रागवृत्तिरनुरागव्यापारः कामाभिलाष इति वा यस्यासौ । अभ्यधात् कथयामास । अयि विलासिनीति सम्बोधनेन स्वानुरागप्रकटनम् । साधु सम्यक् । पश्यसि विचारयसि । तत्त्वदर्शिनां तत्त्वसाक्षात्कारवताम् । उपरुध्यते क्षीयते । जन्मनः प्रभृति—आजन्म । अर्थकामवार्त्तानभिज्ञाः अर्थकामयोर्नामापि न जानीम इति भावः । ज्ञेयौ—ज्ञातव्यौ । इमौ—अर्थकामौ । किं रूपौ कीदृशस्वरूपौ । किं परिवारौ—अनयोरङ्गभूतानि कानीत्यर्थः । केन प्रकारेणेमौ साध्याविति भावः । किं फलौ—अनयोः परिणामः कीदृश इत्यर्थः ।

(१६) सा—काममञ्जरी । अर्जनेति—अर्जनमुपार्जनं सम्पादनमिति यावत् ।

❀ बालक्रीडा ❀

आकाशमें धूल नहीं रुकती । अत एव मेरा तो, विश्वास है कि, अर्थ और काम धर्मकी सौवीं कलाको भी नहीं पहुँच सकते ।

(१५) इन बातोंको सुन करके मुनिराजकी इच्छाशक्ति प्रबल हो उठी और उन्होंने कहा—'ओ विलासिनि ! तुम्हारा कथन यथार्थ है । यह सच है कि, तत्त्वज्ञानी पुरुषोंका धर्म विषय-भोगसे नष्ट नहीं होता । लेकिन, जन्मसे लेकर आज-तक हमलोग अर्थ और कामकी बातोंसे अनभिज्ञ रहते आये हैं । इसलिए यह जानना आवश्यक है कि, इनका क्या स्वरूप है, इनके कौन—कौनसे परिवार हैं और इनका क्या फल है ।'

(१६) उस वेश्याने कहा—'अर्जन (संचय) वर्धन (व्यापार आदिके द्वारा

पाल्यवाणिज्यसंधिविग्रहादिपरिवारः, तीर्थप्रतिपादनफलश्च । कामस्तु विषयातिसक्तचेतसोः स्त्रीपुंसयोर्निरतिशयसुखस्पर्शविशेषः । परिवारस्त्वस्य यावदिह रम्यमुज्ज्वलं च । फलं पुनः परमाह्लादनम्, परस्परविमर्दजन्म, स्मर्यमाणमधुरम्, उदीरिताभिमानमनुत्तमम्, सुखमपरोक्षं स्वसंवेद्यमेव । तस्यैव कृते विशिष्टस्थानवर्तिनः कष्टानि तपांसि, महान्ति

❀ बालविबोधिनी ❀

वर्धनं उपचयः । रक्षणं चौरादिभ्यः पालनमेतत्स्वरूपोऽर्थ इति । कृषीति-कृषिः कर्षणं पाशुपाल्यं गवादिपशुपालनम् वाणिज्यं वणिक्कर्म क्रयविक्रयादि, सन्धिविग्रहौ राजनीत्युक्तौ एते परिवाराः परिकराः साधनानीति यावद् यस्य सः। तीर्थेति—तीर्थे सत्पात्रे प्रतिपादनं दानं फलं परिणामो यस्य सः। विषयेति-विषयेषु स्रक्चन्दनाद्युपभोग्यपदार्थेषु अतिसक्तम् अत्यन्तलग्नं चेतो मानसं ययोस्तथाविधयोः। स्त्री च पुमांश्चेति स्त्रीपुंसौ। 'अचतुर' इत्यादिना निपातात्। निरतिशयेति-श्रेष्ठसुखसाक्षात्कारस्वरूपः आलिङ्गनादिरूप इत्यर्थः। अस्य कामस्य। यावत् साकल्येन। इह संसारे। रम्यं मनोहरमुज्ज्वलमुत्कृष्टञ्च। संसारे यावन्तो रमणीया उत्कृष्टाश्च पदार्थाः सन्ति सर्व एव ते कामस्य परिवारा इति भावः। परमाह्लादनं उत्कृष्टानन्दजनकम्। परस्परविमर्दजन्म-अन्योन्यालिङ्गनादिजन्यम्। स्मर्यमाणमपि मधुरं—यस्य स्मरणेऽपि माधुर्यं का कथा तस्य साक्षादनुभवे इति भावः। उदीरिताभिमानम्-उद्दीपिताहङ्कारम्। अनुत्तमं श्रेष्ठम्। न विद्यते

❀ बालक्रीडा ❀

उसे बढ़ाना) और उसे नष्ट होनेसे बचाना ही अर्थका तत्त्व है। कृषि (खेती), पशुपालन, व्यापार, सन्धि और विग्रह, ये ही अर्थके परिवार हैं। सत्पुरुषोंको दान देना ही अर्थका फल है। स्त्री-पुरुष वासनावश परस्पर अत्यन्त आसक्त चित्तसे जिसमें स्पर्श-सुखका अनुभव करते हैं, उसे काम कहते हैं। रमणीयता और उज्ज्वलता ही इसके परिवार हैं। इस कामका फल परमानन्द है। वह आनन्द स्त्री-पुरुषके परस्पर आलिंगन चुम्बन आदिसे उत्पन्न होता है। स्मरण करनेमें यह बड़ा ही मधुर लगता है। यह अभिमानको प्रोत्साहन देता है और आनन्दसे उत्तम वस्तु और कोई है ही नहीं। यह प्रत्यक्ष सुख अनुभवगम्य है। इसीके निमित्त स्थान विशेषमें रहनेवाले लोग तरह-तरहके कष्ट सहते, तप करते, बड़े

दानानि, दारुणानि युद्धानि, भीमानि समुद्रलङ्घनादीनि च नराः समाचरन्ति' इति ।

(१७) निशम्यैतन्नियतिबलान्नु तत्पाटवान्नु स्वबुद्धिमान्द्यान्नु स्वनियममनादृत्य तस्यामसौ प्रासजत् । सा सुदूरं मूढात्मानं च तं प्रवहणेन नीत्वा पुरमुदारशोभया राजवीथ्या स्वभवनमनैषीत् । अभूच्च घोषणा 'श्वः कामोत्सवः' इति । उत्तरेद्युः स्नातानुलिप्तमारचितमञ्जुमालमारब्ध-

❀ बालविबोधिनी ❀

उत्तमं यस्मात्तदिति विग्रहः । अपरोक्षं—प्रत्यक्षम् । स्वसंवेद्यं स्वयमेवानुभवनीयं नत्वन्यवाक्येनेति शेषः । सर्वमेतत् सुखमित्यस्य विशेषणम् । तस्यैव–सुखस्यैव । कृते निमित्तम् । विशिष्टस्थानवर्त्तिनः–प्रसिद्धतीर्थादिक्षेत्रवासिनः । नरा इत्यस्य विशेषणम् । दारुणानि भयानकानि । भीमानि भयंकराणि । समाचरन्ति–कुर्वन्ति ।

(१७) निशम्य–श्रुत्वा । एतत्–काममंजरीवाक्यम् । नियतिबलात्–दैवप्रभावात् । तत्पाटवात्–तस्याः काममंजर्याः पाटवाच्चातुर्यात् । स्वस्य मरीचेरित्यर्थः बुद्धिमान्द्यात्–मतिदौर्वल्यात् । सर्वत्र नु वितर्के । स्वनियमं–मुनिजनोचित–तपश्चरणादिकम् । अनादृत्य–परित्यज्य । तस्यां गणिकायाम् । असौ–मरीचिः । प्रासजत् आसक्तोऽभवत् । सा–काममञ्जरी अनैषीदित्यस्य कर्त्तृपदम् । सुदूरं अतिदूरवर्त्ति । पुरमित्यस्य विशेषणम् । मूढात्मानं–मुग्धचित्तम् । तं–मरीचिम् । प्रवहणेन यानविशेषेण । नीत्वेत्यस्य दुहादित्वात् तं पुरञ्चेति कर्मद्वयम् । उदारशोभया–प्रशस्तसौन्दर्यशालिन्या । राजवीथ्या–राजमार्गेण । स्वभवनं काममञ्जरीगृहम् । घोषणा डिण्डिमादिना प्रचारः । श्वः—आगामिदिने । उत्तरेद्युः–परदिने ।

❀ बालक्रीडा ❀

बड़े दान देते, भयानक युद्ध करते और विकराल समुद्र लाँघने आदिका दुष्कर कर्म करते हैं ।

(१७) उसके ये वचन सुन करके दैववलसे, उस वेश्याके कौशलसे अथवा बुद्धि मन्द पड़ जानेके कारण उन मुनिराजने अपने नियमोंको त्याग दिया और काममंजरीमें आसक्त हो गये । तदनन्तर उन मूढात्मा मुनिको कर्णीरथपर विठा करके उत्कृष्ट शोभासम्पन्न राजवीथीसे चल करके अपने नगरके भवनमें ले गयी उसी दिन राजदरबारमें घोषणा हुई कि, 'कल कामोत्सव मनाया जायगा ।' दूसरे

कामिजनवृत्तं निवृत्तस्ववृत्ताभिलाषं क्षणमात्रे गतेऽपि तया विना दूयमानं तमृद्धिमता राजमार्गेणोत्सवसमाजं नीत्वा क्वचिदुपवनोद्देशे युवतिजनशतपरिवृतस्य राज्ञः संनिधौ समासदत् स्मितमुखेन तेन 'भद्रे' भगवता सह निषीद' इत्यादिष्टा सविभ्रमं कृतप्रणामा सस्मितं न्यषीदत् ।

(१८) तत्र काचिदुत्थाय बद्धाञ्जलिरुत्तमाङ्गना 'देव, जितानया-

❀ बालविबोधिनी ❀

स्नातानुलिप्तं आदौ स्नातः पश्चादनुलिप्तस्तम् । स्नानानन्तरं चन्दनादिना लिप्तसर्वाङ्गमित्यर्थः । आरचिता परिहिता मञ्जुर्मनोहरा माला येन तम् । आरब्धं प्रक्रान्तं कामिजनस्य विलासिनो वृत्तमाचरणं येन । कामुकवद्व्यवहरन्तमित्यर्थः । निवृत्तोऽपगतः स्ववृत्तस्य निजाचारस्य तपोनुष्ठानरूपस्याभिलाषो यस्य तम् । क्षणमात्रे मुहूर्त्तमात्रे । तया काममञ्जर्या । दूयमानं–दुःखमनुभवन्तम् । तस्या दर्शनं विना क्षणमात्रमपि स्थातुमपारयन्तमित्यर्थः । एतानि तमित्यस्य विशेषणानि । तं मरीचिम् । ऋद्धिमता—समृद्धेन । उत्सवसमाजं क्रीडासभाम् । युवतिजनेति—तरुणगणिकागणवेष्टितस्य । राज्ञः–चम्पापतेः सिंहवर्मणः । समासदत् आगतवती । तेन राज्ञा । भगवता मुनिना । निषीद—उपविश । आदिष्टा अनुमता । सविभ्रमं—सविलासम् ।

(१८) तत्र उत्सवसमाजे । काचिद् अनिर्दिष्टनाम्नी । देव–राजन् । अनया-

❀ बालक्रीडा ❀

दिन महर्षि मरीचिने स्नान करके सुगन्धित तेल लगाया । सुन्दर माला पहनी । इस तरह कामी पुरुषों जैसा बानक बनाया । उस समय वे अपने पूर्ववृत्त (ऋषि-जीवन) को एकदम भूल गये । क्षणमात्रके लिए भी काममंजरीका वियोग होनेसे वे विह्वल हो उठते थे । इसी समय वह वेश्या समृद्धिसम्पन्न राजमार्गसे चल करके उनको, सैकड़ों युवतियोंसे आवेष्टित महाराजके पास किसी उपवनमें विद्यमान, राजदरबारमें ले गयी । राजा काममंजरीको देख करके मुसकराये और उन्होंने कहा—'भद्रे ! भगवान् मरीचिके साथ बैठो' महाराजकी यह आज्ञा पा करके उसने भावभंगीके साथ प्रणाम किया और मन्द–मन्द मुसकाती हुई बैठ गयी ।

(१८) इसी समय एक उत्तम श्रेणीकी स्त्री हाथ जोड़ करके उठ खड़ी

हम्। अस्यै दास्यमद्यप्रभृत्यभ्युपेतं मया' इति प्रभुं प्राणंसीत्। विस्मयहर्षमूलश्च कोलाहलो लोकस्योदजिहीत। हृष्टेन च राज्ञा महार्हैं रत्नालंकारैर्महता च परिबर्हेणानुगृह्य विसृष्टा वारमुख्याभिः पौरमुख्यैश्च गणशः प्रशस्यमाना स्वभवनमगत्वैव तमृषिमभाषत—'भगवन्, अयमञ्जलिः, चिरमनुगृहीतोऽयं दासजनः, स्वार्थ इदानीमनुष्ठेयः' इति।

(१९) स तु रागादशनिहत इवोद्भ्राम्याब्रवीत्—'प्रिये, किमेतत्। कुत

❀ बालविबोधिनी ❀

काममञ्जर्या। अस्यै—एतदर्थम्। काममञ्जर्या इत्यर्थः। दास्यं—दासीत्वम्। अभ्युपेतम्—अङ्गीकृतम्। प्रभुं—राजानम्। प्राणंसीत्—प्रणनाम। विस्मयेति—विस्मयश्चमत्कारो हर्ष आनन्दश्चेति विस्मयहर्षौ मूलं यस्य स तथा। लोकस्य—तत्रस्थजनसमूहस्य। उदजिहीत—उत्थितोऽभवत्। ओहाङ्गताबित्यस्य लङि रूपम्। महार्हैः—बहुमूल्यैः। परिबर्हेण राजोचितपरिच्छदेन, हस्त्यश्वादिभिरित्यर्थः। अनुगृह्य—परितोष्य काममञ्जरीमिति शेषः। विसृष्टा—गमनायानुज्ञाता। वारमुख्याभिः—श्रेष्ठवाराङ्गनाभिः। पौरमुख्यैः नागरिकप्रधानैः। गणशः—संघशः। प्रशस्यमाना अभिनन्द्यमाना काममञ्जरीति शेषः। अयमञ्जलिः—प्रणमामीति भावः। अयं दासजनः—अहमित्यर्थः स्वार्थः—स्वकीयप्रयोजनम् अनुष्ठेयः—अनुष्ठीयताम्।

(१९) स महर्षिः। रागाद् अनुरागात्। अशनिहतो वज्राहतः। उद्भ्रम्य

❀ बालक्रीडा ❀

हुई और बोली—'देव! इसने मुझे जीत लिया। आजसे मैं इसकी दासी हो गयी।' यह कह करके उसने राजाको प्रणाम किया। इसपर राज-दरबारमें आश्चर्य और हर्षभरा कोलाहल होने लगा। महाराजने प्रसन्न हो करके वेश कीमती रत्न-जटित अलङ्कार अच्छे-अच्छे वस्त्र दे करके काममंजरीको विदा किया। तब झुण्डके झुण्ड वेश्याओं और पुरवासियोंने उसकी प्रशंसा की। अपने घर पहुँचनेके पहले ही काममंजरीने मरीचिसे कहा—'भगवन्! मैं हाथ जोड़ती हूँ। आपने इस दासीपर बड़ी कृपा की। अब जा करके अपना काम करिये।'

(१९) प्रेमातिरेकके कारण अपनी प्रियाके कठोर वचन सुन करके महर्षि इस तरह तिलमिला उठे जैसे उन पर वज्र गिर पड़ा हो। उन्होंने कहा 'प्रिये!

इदमौदासीन्यम् । क्व गतस्तव मय्यसाधारणोऽनुरागः' इति । अथ सा सस्मितमवादीत्—'भगवन्, ययाद्य राजकुले मत्तः पराजयोऽभ्युपेतस्तस्याश्च मम च कस्मिंश्चित्संघर्षे 'मरीचिमावर्जितवतीव श्लाघसे' इति तयास्म्यहमधिक्षिप्ता । दास्यपणबन्धेन चास्मिन्नर्थे प्रावर्तिषि । सिद्धार्था चास्मि त्वत्प्रसादात्' इति । स तया तथावधूतो दुर्मतिः कृतानुशयः शून्यव-

❀ बालविबोधिनी ❀

उद्भ्रान्तो भूत्वा । कुतः—कस्माद्धेतोः । औदासीन्यं-विरागः । सा काममञ्जरी । यया-गणिकया । राजकुले-राजसकाशे । मत्तः मम सकाशात् । संघर्षे-विवादे । आवर्जितवतीव-वशीकृतवतीव । श्लाघसे--स्वगौरवं प्रकटयसि । अधिक्षिप्ता-तिरस्कृता । दास्यमेव पणस्तस्य बन्धो दृढनियमस्तेन । यद्यहं मरीचिमावर्जयितुं शक्नुयां तदा त्वं मे दासी भविष्यसि, अन्यथाऽहं तव दासी भविष्यामीति पणस्य स्वरूपम् । अर्थे-विषये-भवदावर्जनरूपे इत्यर्थः । प्रावर्त्तिषि-प्रवृत्ता । सिद्धार्था—कृतकृत्या । सः मरीचिः । तया-काममञ्जर्या । तथा--तेन प्रकारेण अवधूतः—तिरस्कृतः । कृतानुशयः-कथमहमनया वञ्चित इति कृतपश्चात्तापः । शून्यवत्—शून्यहृदय इव । न्यवर्त्तिष्ट स्वस्थानं प्रति परावृत्तोऽभवत् । यस्तपस्वी—अहमित्यर्थः । तया काममञ्जर्या । एवं कृतः—पापे निमज्जितः तमेव-मरीचिमेव । मन्य-

❀ बालक्रीडा ❀

यह क्या ? ऐसी उदासीनता तुममें क्यों आ गयी ? मुझपर तुम्हारा जो असाधारण अनुराग था, वह कहाँ चला गया ?' तब उसने मुसकाकर कहा—'भगवन् ? जिस स्त्रीने राज-दरबारमें अपनी पराजय मानी है, उसके साथ किसी समय मेरा संघर्ष हो गया । उस समय उसने ताना दे करके कहा था—'ओ हो ! तुम तो, इतनी हैकड़ी दिखाती हो, मानो तुमने महर्षि मरीचिको मोहित कर लिया है ।' अन्तमें जब उसने मेरी दासी होनेकी शर्त मान ली, तब मैं इस काम—(आपको मोहित करनेके काम) में प्रवृत्त हुई । और आपकी कृपासे मनोरथ भी सिद्ध हो गया ।' उसके द्वारा इस प्रकार तिरस्कृत हो करके दुर्मति मरीचि बहुत पछताये और शून्य मनसे आश्रमपर लौट आये । इस तरह जिस तपस्वीकी छीछालेदर हुई थी, हे महाभाग ! वह मैं ही हूँ । उस कुलटाने अपने अर्पित

न्यवर्तिष्ट । यस्तथैवं कृतस्तपस्वी तमेव मां महाभाग, मन्यस्व । स्वशक्तिनिषिक्तं रागमुद्धृत्य तयैव बन्धक्या महद्वैराग्यमर्पितम् । अचिरादेव शक्य आत्मा त्वदर्थसाधनक्षमः कर्तुम् । अस्यामेव तावदङ्गपुर्यां वस्पायाम्' इति ।

(२०) अथ तन्मनश्च्युततमःस्पर्शभियेवास्तं रविरगात् । ऋषिमुक्तश्च रागः संध्यात्वेनास्फुरत् । तत्कथादत्तवैराग्याणीव कमलवनानि समकुचन् । अनुमतमुनिशासनस्त्वहमसुनैव सहोपास्य संध्यामनुरूपाभिः

❀ बालविबोधिनी ❀

स्व-जानीहि । महाभागेति सम्बोधनमपहारवर्मणः । स्वशक्तिनिषिक्तं—निजसामर्थ्यनिःक्षिप्तम्—काममञ्जर्या स्वयमेव जनितमित्यर्थः । रागम्--अनुरागम् । उद्धृत्य—उत्पाट्य । बन्धक्या--कुलटया । महद्वैराग्यमर्पितं--रागस्थाने वैराग्यं स्थापितम् । त्वदर्थेति । तवापहारवर्मणोऽर्थस्य प्रयोजनस्य सुहृद्गतिनिर्णयरूपस्य साधने सम्पादने क्षमः समर्थः । अल्पेनैव कालेन पुनरहं पूर्वशक्तिसम्पन्नो भविष्यामीत्यर्थः । वस-तिष्ठ--प्रतिपालयेति यावत् ।

(२०) अथेति—तस्य मरीचेर्मनसो मानसाच्च्युतं गलितं यत्तमोऽज्ञानरूपं तस्य स्पर्शभिया संपर्कभयेनेवेत्युत्प्रेक्षा । रवितमसोर्वैरं प्रसिद्धमेव । ऋषिणा मरीचिना मुक्तस्त्यक्तो रागो गणिकाविषयकः सन्ध्यात्वेन सन्ध्यारूपेणास्फुरत् प्रकटीबभूव । तत्कथेति—तस्य मरीचेः कथया वार्त्तया दत्तं वैराग्यं येभ्यस्तानि । समकुचन्—संकुचितानि बभूवुः । कमलवनानां संकोचे तत्कथादत्तवैराग्यमेव कारणत्वेनोत्प्रेक्षितम् । अनुमतमङ्गीकृतं मुनेर्मरीचेः शासनमादेशो येन स तथा ।

❀ बालक्रीडा ❀

अनुरागको दूर करके मुझे असाधारण वैराग्य प्रदान किया है । शीघ्र ही मेरी आत्मा आपका कार्यसाधन करनेको समर्थ हो जायगी । तबतक आप इसी अङ्गपुरीमें निवास करिये ।

(२०) इसी समय जैसे उस तपस्वीके मनसे निःसृत अज्ञानान्धकारके स्पर्शभयसे सूर्य भगवान अस्त हो गये । उन्हीं महर्षिसे परित्यक्त अनुराग संध्याके रूपमें परिणत हो गया । उनकी बातोंसे जैसे वैराग्य प्राप्त करके कमलवन संकुचित हो गया । तदनन्तर उन्हीं मुनिराजकी अनुमतिसे मैंने उनके

कथाभिस्तमनुशय्य नीतरात्रिः प्रत्युन्मिषत्युदयप्रस्थदावकल्पे कल्पद्रुमकिसलयावधीरिण्यरुणार्चिषि तं नमस्कृत्य नगरायोदचलम् ।

(२१) अदर्शं च मार्गाभ्याशवर्तिनः कस्यापि क्षपणकविहारस्य बहिर्विविक्ते रक्ताशोकखण्डे निषण्णमस्पृष्टसमाधिमाधिक्षीणमग्रगण्यमनभिरूपाणां कृपणवर्णं कमपि क्षपणकम् । उरसि चास्य शिथिलितमलनि-

❀ बालविबोधिनी ❀

अमुना—मुनिना । अनुरूपाभिः तत्कालयोग्याभिः । तमनुशय्य तेन मुनिना सह शयित्वा । नीतरात्रिः—यापितनिशः । प्रत्युन्मिषति—प्रकाशमाने । उदयति सतीत्यर्थः । उदयेति—उदयः उदयपर्वतस्तस्य प्रस्थः—सानु तस्मिन् । दावकल्पे वनाग्निसदृशे । कल्पद्रुमेति—कल्पद्रुमस्य कल्पवृक्षस्य किसलयानि पल्लवानि अवधीरयति तिरस्करोतीति तस्मिन् । कल्पद्रुमपल्लवापेक्षयाधिकरक्तवर्णे इत्यर्थः । अरुणार्चिषि—अरुणा रक्तवर्णा अर्चिषो यस्य तस्मिन्—सूर्ये इत्यर्थः । तं—मुनिं नगराय नगरं गन्तुम् । उदचलं प्रस्थितोऽभवम् ।

(२१) मार्गाभ्यासवर्त्तिनः—पथि पार्श्वस्थितस्य । क्षपणकविहारस्य—बौद्धमन्दिरस्य । विविक्ते—निर्जने पवित्रे वा । रक्ताशोकखण्डे—रक्तवर्णाशोकतरुकदम्बे । निषण्णमुपविष्टम् । अस्पृष्टेति—अस्पृष्टोऽलब्धः समाधिर्योगो येन तं ध्यानशून्यमित्यर्थः । आधिक्षीणं मनोव्यथाभिः कृशम् । अग्रगण्यं श्रेष्ठम् । अनभिरूपाणां कुरूपाणाम् । कृपणपर्णं दीनवर्णं विषण्णमिति यावत् । उरसि—वक्षसि । अस्य—

❀ बालक्रीडा ❀

साथ संध्या की । रातको उनके साथ ही सोया और तरह-तरहकी बातें करते हुए वह रात बितायी । सवेरे जब दावानलके सदृश तथा कल्पवृक्षकी कोंपलों को नीचा दिखाने वाली अरुण किरणें उदयाचलपर उदित हुईं, तब मैंने उनको प्रणाम किया और नगरकी ओर चल पड़ा ।

(२१) एक स्थानपर मैंने मार्गके किनारे ही विद्यमान बौद्ध विहारके बाहर रक्त अशोक बनमें बैठे नियमहीन, मानसी पीड़ासे दुर्बल, कुरूप पुरुषोंके अग्रणी एवं अतिदीन वर्ण एक बौद्ध भिक्षुको देखा । और उसकी छातीपर गिरते हुए उन आँसुओंको भी देखा जो उसके मुखकी मैल धो रहे थे । मैं उसके समीप जा बैठा और पूछा—'भगवन् ! कहाँ तपस्या और कहाँ रोदन !

चयान्मुखान्निपततोऽश्रुबिन्दूनलक्षयम् । अप्राक्षं चान्तिकोपविष्टः—'क्व तपः, क्व च रुदितम् । न चेद्रहस्यमिच्छामि श्रोतुं शोकहेतुम्' इति ।

(२२) सोऽब्रूत—'सौम्य, श्रूयताम् । अहमस्यामेव चम्पायां निधिपालितनाम्नः श्रेष्ठिनो ज्येष्ठसूनुर्वसुपालितो नाम । वैरूप्यान्मम विरूपक इति प्रसिद्धिरासीत् । अन्यश्चात्र सुन्दरक इति यथार्थनामा कलागुणैः समृद्धो वसुना नातिपुष्टोऽभवत् । तस्य च मम च वपुर्वसुनी निमित्तीकृत्य वैरं वैरोपजीविभिः पौरधूर्तैरुदपाद्यत । त एव कदाचिदावयोरुत्सव-

❀ बालविबोधिनी ❀

क्षपणकस्य । शिथिलितेति शिथिलितो धारापातेन विस्रंसितो मलनिचयो मलराशिर्यैस्तानिति अश्रुबिन्दुविशेषणम् । शिथिलितो मलनिचयो यत्र तस्मादिति विग्रहे तु मुखादित्यस्य विशेषणमपि भवितुमर्हति न तन्मनोरमम् । अलक्षयम् अपश्यम् । अप्राक्षम्—पृष्टवानस्मि । क्व तप इति—अत्र क्व द्वयं तपोरुदितयोरसामानाधिकरण्यं सूचयति । रहस्यं गोप्यम् । शोकहेतुं शोकनिदानम् ।

(२२) स क्षपणकः । श्रेष्ठिनः-वणिक्प्रधानस्य । ज्येष्ठसूनुः ज्येष्ठपुत्रः । वैरूप्यात्—कुत्सितरूपवत्त्वाद्धेतोः । अत्र—चम्पायाम् । यथार्थेति—यथार्थं सार्थकं नाम यस्यासौ । नामानुरूपं सौन्दर्यमप्यासीदिति भावः । कलागुणैः-शिक्षामाहात्म्यैः । समृद्धः-पुष्टः । वसुना धनेन नातिपुष्टः साधारणः धनस्य प्राचुर्यं नासीदिति भावः । तस्य सुन्दरकस्य । वपुर्वसुनी—आकृतिधने । निमित्तीकृत्य कारणीकृत्य । पौरधूर्तैर्यद्वैरमुत्पादितं तत्र सुन्दरकस्य शरीरसौन्दर्यं मम धनं च कारणमासीदित्यर्थः । वैरोपजीविभिः—ये खलु द्वयोः परस्परं वैरमुत्पाद्य जीविकां

❀ बालक्रीडा ❀

यदि कोई छिपानेकी बात न हो तो, मैं आपके शोकका कारण जानना चाहता हूँ ।'

(२२) उसने कहा—'हे सौम्य ! सुनिये—मैं इसी चम्पानगरीके निवासी निधिपालित नामक सेठका बड़ा बेटा वसुपालित हूँ । मैं कुरूप हूँ, इस कारण 'विरूपक' इस नामसे प्रसिद्ध था । मेरा दूसरा भाई 'सुन्दरक' नामका था । उसका यह नाम उसके अनुरूप था । क्योंकि, उसमें सभी कलाओं और गुणों का समावेश था । हाँ, धन उसके पास उतना अधिक नहीं था, सो नगरके वैरोपजीवी धूर्तोंने उसके सौन्दर्य और मेरे धनकी आड़में वैर खड़ा कर

समाजे स्वयमुत्पादितमन्योन्यावमानमूलमधिक्षेपवचनव्यतिकरमुपशमय्य 'न वपुर्वसु वा पुंस्त्वमूलम्, अपि तु प्रकृष्टगणिकाप्रार्थ्ययौवनो हि यः स पुमान्। अतो युवतिललामभूता काममञ्जरी यं वा कामयते स हरतु सुभगपताकाम्' इति व्यवास्थापयन्।

(२३) अभ्युपेत्यावां प्राहिणुव तस्यै दूतान्। अहमेव किलामुष्याः स्म-

❀ बालविबोधिनी ❀

निर्वाहयन्ति ते वैरोपजीविनस्तैः। पौरधूर्त्तैः नागरिकवञ्चकैः। उदपाद्यत—उत्पादितम्। ते एव—पौरधूर्त्ता एव। आवयोः सुन्दरकस्य मम च। स्वयमुत्पादितं—पौरधूर्त्तैरेव प्रारब्धम्। अन्योन्येति—अन्योन्यस्य परस्परस्यावमानोऽवज्ञैव मूलं निदानं यस्य तमिति अधिक्षेपवचनव्यतिकरमित्यस्य विशेषणम्। अधिक्षेपवचनव्यतिकरं—तिरस्कारसूचकवाक्यप्रपञ्चम्। उत्तरोत्तरवर्धमानमिति शेषः। उपशमय्य—शमयित्वा। न वपुरिति—शरीरेण धनेन वा पुरुषः पुरुषपदवाच्यो न भवति किन्तु यः श्रेष्ठगणिकाभिः प्रार्थनीयो भवति स एव पुरुष इति भावः। युवतिललामभूता—तरुणी कुलालंकारस्वरूपा। सुभगपताकां सौभाग्यचिह्नम्। हरतु प्राप्नोतु। व्यवास्थापयन् निर्णीतवन्तः।

(२३) अभ्युपेत्य स्वीकृत्य तन्निर्णयमिति शेषः। आवां—सुन्दरकोऽहञ्च। प्राहिणुव—प्रेषितवन्तौ। तस्यै काममञ्जर्यै तदर्थमित्यर्थः। अमुष्याः काममञ्जर्याः। स्मरोन्मादहेतुः स्मरेण कामेन य उन्मादः पारवश्यं तत्र हेतुर्निमित्तभूतः, रूपक-

❀ बालक्रीडा ❀

दिया। उन्हीं लोगों ने किसी उत्सवके अवसर पर स्वयं उत्पन्न परस्पर अपमानके कारणस्वरूप तिरस्कारका उपशमन करके व्यवस्था दी 'केवल सौन्दर्य अथवा धन ही मनुष्यके पुंस्त्वका कारण नहीं हो सकता। सच्चा पुरुष तो वही हो सकता है जिसको कोई उत्तम वेश्या चाहे। इसलिए युवतियोंकी मुकुटमणिस्वरूपा काममञ्जरी तुम दोनोंमेंसे जिसे पसन्द करे, वही सौभाग्यशाली माना जाय।' इसे अङ्गीकार करके हम दोनोंने उसके पास दूत भेजें।

(२३) अन्तमें उस सुन्दरी काममञ्जरीने मुझको ही अपना प्रेमी चुना। जब हम दोनों एक साथ बैठे हुए थे, तब वह आयी और दोनोंमेंसे हमपर ही अपने नीलकमलनीय नेत्रोंके कटाक्ष फेंकती हुई मेरे प्रतिद्वन्द्वीका मुख लाज

रोन्मादहेतुरासम् । आसीनयोश्चावयोर्मामेवोपगम्य सा नीलोत्पलमयमिवापाङ्गदामाङ्गे मम मुञ्चन्ती तं जनमपत्रपयाधोमुखं व्यधत्त । सुभगंमन्येन च मया स्वधनस्य स्वगृहस्य स्वगणस्य स्वदेहस्य स्वजीवितस्य च सैवेश्वरी कृता । कृतश्चाहमनया मलमल्लकशेषः । हृतसर्वस्वतया चापवाहितः प्रपद्य लोकोपहासलक्ष्यतामक्षमश्च सोढुं धिक्कृतानि पौरवृद्धानामिह जैनायतने मुनिनैकेनोपदिष्टमोक्षवर्त्मा सुकर एष वेषो वेशनिर्गतानामित्युदीर्णवैरा-

❀ बालविबोधिनी ❀

न्तमपि सुन्दरकं विहाय धनिकतया मामेव स्वीकृतवतीति भावः । आसीनयोः उत्सव समाजे समुपविष्टयोः । उपगम्य वल्लभत्वेनाङ्गीकृत्य । सा—काममञ्जरी । नीलोत्पलमयमिव—नीलकमलरचितमिव । अपाङ्गदाम—कटाक्षपरम्पराम् । मुञ्चन्ती—विसृजन्ती । तं सुन्दरकम् । अपत्रपया लज्जया । व्यधत्त-कृतवती । आत्मानं सुभगं सौभाग्यवन्तं मन्यत इति सुभगम्मन्यस्तेन । स्वगणस्य स्वजनवर्गस्य । सैव काममञ्जर्येव । ईश्वरी स्वामिनी । अनया काममञ्जर्या । मलमल्लकशेषः—कौपीनमात्रावलम्बनः । कौपीनं मलमल्लकमिति वैजयन्ती । अपवाहितः गृहान्निष्काशितः । प्रपद्य प्राप्य । लोकोपहासलक्ष्यतां जनानामुपहासविषयताम् । पौरवृद्धानां नागरिकश्रेष्ठानाम् । जैनायतने सौगतमन्दिरे । एकेन—केनचित् । उपदिष्टेति—उपदिष्टं प्रदर्शितं मोक्षस्यापवर्गस्य वर्त्म मार्गो यस्मै तथाभूतः । सुकरः सुसाध्यः । वेशनिर्गतानां वेश्यागृहनिष्क्रान्तानाम् । उदीर्णवैराग्यः समु-

❀ बालक्रीडा ❀

के मारे नीचा कर दिया । अब मैंने अपने को सुन्दर मान करके कामंजरीको ही अपने धन, अपने घर, अपने गण, अपने शरीर और अपने जीवनतककी अधीश्वरी बना दिया । और उसने भी सर्वस्व हड़प करके मुझे कौपीनावशेष कर दिया । कुछ शेष न रहनेपर उसने मुझे घरसे निकाल दिया । संसारके लोगोंने मुझे उपहासका लक्ष्य बनाया और जब नगरके बड़े-बूढ़ोंके धिक्कार भरे वचन सहनेमें मैं असमर्थ हो गया तब इस जैनमठमें भाग आया । यहाँ एक मुनिने मुझे मोक्षमार्गका उपदेश दिया । अब तो, मेरा यह दृढ़ विश्वास हो गया है कि, वेश्याओंद्वारा तिरस्कृत पुरुषोंके लिए यह (निर्हंग) वेश ही

ग्यस्तदपि कौपीनमजहाम्।

(२४) अथ पुनः प्रकीर्णमलपङ्कः प्रबलकेशलुञ्चनव्यथः प्रकृष्टतमक्षुत्पिपासादिदुःखः स्थानासनशयनभोजनेष्वपि द्विप इव नवग्रहो बलवतीभिर्यन्त्रणाभिरुद्वेजितः प्रत्यवामृशम्। 'अहमस्मि द्विजातिः। अस्वधर्मो ममैष पाषण्डपथावतारः। श्रुतिस्मृतिविहितेनैव वर्त्मना मम पूर्वजाः प्रावर्तन्त।

❀ बालविबोधिनी ❀

दीपितवैराग्यः। अजहाम् अत्यजम्।

(२४) अथ—कौपीनत्यागानन्तरम्। प्रकीर्णेति—प्रकीर्णः प्रसृतो व्याप्त इति यावत् मलपङ्कः सान्द्रीभूतरजःसमूहो यत्र सः। बौद्धानां देहमार्जननिषेधात् सर्वशरीरव्याप्तमल इत्यर्थः। प्रबलेति—प्रबला अत्यधिका केशानां लुञ्चनेनोत्पाटनेन व्यथा पीड़ा यस्य स तथा। बौद्धानां लुञ्चनमपि प्रसिद्धम्। प्रकृष्टेति—प्रकृष्टतमं अतिप्रबलं क्षुत्पिपासादिभिर्दुःखं यस्य सः। स्थानमवस्थानं, आसनमुपवेशनं, शयनं निद्रा, भोजनमशनमित्यादिकार्येषु। द्विपो हस्ती। नवग्रहः नवो नूतनो ग्रहो ग्रहणं यस्य सः। अचिरगृहीत इत्यर्थः। यन्त्रणाभिः पीडाभिः। अचिरगृहीतो हस्ती यथा शयनभोजनादिष्वपि नितरां दुःखमनुभवति तथाहमपीति भावः। प्रत्यवामृशम् अचिन्तयम्। द्विजातिर्वैश्यः। अस्वधर्मः—स्वधर्मो नेत्यर्थः। पाषण्डेति—पाषण्डानां वैदिकाचारभ्रष्टानां पन्थाः इति पाषण्डपथस्तत्र अवतारोऽवतरणम् बौद्धमार्गानुसरणम्। पूर्वजाः—पितृपितामहादयः। प्रावर्त्तन्त प्रवृत्ता अभूवन्। निन्द्यो गर्हणीयो वेषो यस्य तम्। अमन्दस्य महतो दुःखस्य-

❀ बालक्रीडा ❀

अच्छा है। इसी वास्ते मैंने कौपीनतक त्याग दी है।

(२४) कुछ समय बाद जब मेरे शरीरमें बहुत-सा मैल जम गया, केशोंमें लटें बँध जानेके कारण पीड़ा होने लगी, अत्यन्त भूख-प्याससे असह्य वेदना हुई और खड़े होने, बैठने, सोने तथा भोजनमें भी नये पकड़े हुए हाथीकी भाँति बलवती यन्त्रणाओंसे ऊब उठा, तब मैंने सोचा—मैं द्विज (वैश्य) हूँ। मेरा इस तरह पाषण्डपथपर आना भी स्वधर्मका त्याग ही है। मेरे पूर्वज श्रुति और स्मृतिविहित धर्म पथपर ही चले थे लेकिन मुझ अभागेने इस निन्द्य वेष और अतिशय दुखदायी जीवनको अपनाया है। विष्णु, शिव और

मम तु मन्दभाग्यस्य निन्द्यवेषममन्ददुःखायतन हरिहरहिरण्यगर्भादि-देवतापवादश्रवणनैरन्तर्यात्प्रेत्यापि निरयफलम् अफलं विप्रलम्भप्रायमीदृशमिदमधमवर्त्म धर्मवत्समाचरणीयमासीत्' इति प्रत्याकलितस्वदुर्नयः पिण्डीषण्डं विविक्तमेतदासाद्य पर्याप्तमश्रु मुञ्चामि इति।

(२५) श्रुत्वा चैतदनुकम्पमानोऽब्रवम्—'भद्र क्षमस्व। कञ्चित्कालमत्रैव निवस। निजेन द्युम्नेनासावेव वेश्या यथा त्वां योजयिष्यति तथा यतिष्ये।

❀ बालविबोधिनी ❀

क्लेशस्यायतनं स्थानम्। हरिहरेति हरिहरौ विष्णुशंकरौ हिरण्यगर्भो ब्रह्मा-तदादि-देवतानामपवादो निन्दा तस्य श्रवणस्य नैरन्तर्यं तस्मात्। अनवरतनिन्दाश्रवणात्। प्रेत्य जन्मान्तरे। निरयफलं नरकपरिणामकम्। अफलं निष्फलं अत एव विप्रलम्भप्रायं प्रायेण वञ्चनात्मकम् एतावद् विशेषणं अधर्मवर्त्मेत्यस्य। इदं मत्स्वीकृतम् अधर्मवर्त्म-बौद्धमतानुसरणरूपम्। धर्मवत् धर्मेण तुल्यम्। समाचरणीयं सेव्यमाश्रयणीयमिति यावत्। प्रत्याकलितेति—प्रत्याकलितश्चिन्तितः स्वस्य दुर्नयो येन सः। पिण्डीषण्डम् अशोकसमूहम्। विविक्तं विजनम्। आसाद्य प्राप्य। पर्याप्तं प्रचुरम्। अश्रु नयनजलम्। मुञ्चामि त्यजामि।

(२५) अनुकम्पमानो दयमानः। अहमपहारवर्मेति शेषः। क्षमस्व—सहस्व अत्रैव जैनायतने एव। निवस तिष्ठ। द्युम्नेन धनेन। हिरण्यं द्रविणं द्युम्नमित्यमरः। असौ काममञ्जरी। यथा येन प्रकारेण। योजयिष्यति युक्तं करिष्यति धनेनेति शेषः। तथा तेन प्रकारेण। यतिष्ये—चेष्टिष्ये। उपायाः साधनानि।

❀ बालक्रीडा ❀

ब्रह्मा आदि देवताओंके अपवाद निरन्तर सुनते रहनेके कारण यद्यपि मुझे नरकफल प्राप्त हुआ है, फिर भी इस असार और जुआ चोरीसे भरे अधर्म मार्गको मैंने धर्मकी भाँति मान रखा है। इस प्रकार अपने अनाचारको सोचकरके मैं इस एकान्त अशोकवनमें आ करके पर्याप्त आँसू बहाता हूँ।

(२५) उसका वृत्तान्त सुन करके उसपर अनुकम्पा करते हुए मैंने कहा—'भद्र, क्षमा करो और कुछ समय यहीं रहो। तबतक मैं ऐसा उपाय करूँगा कि, जिससे वही वेश्या अपना सब धन तुम्हें लौटा दे। ऐसे बहुतेरे उपाय हैं।' इस प्रकार

सन्त्युपायास्तादृशाः' इत्याश्वास्य तमनूत्थितोऽहम् । नगरमाविशन्नेव चोपलभ्य लोकवादाल्लुब्धसमृद्धपूर्णं पुरमित्यर्थानां नश्वरत्वं च प्रदर्श्य प्रकृतिस्थानमून्विधास्यन्कर्णीसुतप्रहिते पथि मतिमकरवम् ।

(२६) अनुप्रविश्य च द्यूतसभामक्षधूर्तैःसमगंसि । तेषां च पञ्चविंशतिप्रकारासु सर्वासु द्यूताश्रयासु कलासु कौशलमक्षभूमिहस्तादिषु चात्यन्त-

❀ बालविबोधिनी ❀

आश्वास्य सान्त्वयित्वा । तं विरूपकं अनु पश्चात् । अहमपहारवर्मा । आविशन् प्रविशन् । उपलभ्य ज्ञात्वा । लोकवादात् जनमुखात् । लुब्धेति—लुब्धैर्धूर्त्तैः समृद्धैः धनशालिभिः पूर्णं व्याप्तम् । पुरं नगरम् । इत्यन्तं उपलभ्येत्यस्य कर्म । नश्वरत्वं क्षणिकत्वम् । प्रदर्श्य वोधयित्वा । अमून् पौरान् । प्रकृतिस्थान् स्वभावस्थान् सन्मार्गवर्तिन इत्यर्थः । विधास्यन् । करिष्यन् । कर्णीसुतेति—कर्णीसुतः स्तेयशास्त्रप्रवर्त्तकस्तेन प्रहिते प्रदर्शिते । पथि मार्गे चौरशास्त्रे इत्यर्थः ।

(२६) द्यूतसभाम्—अक्षक्रीडासमाजम् । अक्षधूर्त्तैः—पाशक्रीडानिपुणैः । समगंसि—तैःसह सम्मिलितोऽभवम् । गम् धातोरात्मनेपदे लुङि उत्तमपुरुषैकवचने रूपम् । समोगम्यृच्छिभ्यामित्यनेनात्मनेपदम् । तेषामक्षधूर्त्तानाम् । द्यूताश्रयासु द्यूतक्रीडासम्वन्धिनीषु । कलासु शिक्षासु । अक्षेत्यादि—अक्षाः पाशकाः, भूमिस्तत्पातनस्थानं, हस्तस्तत्पातनयोग्यः करस्तदादिषु । अक्षभ्रमिहस्तेति पाठे अक्षाणां पाशकानां भ्रमिप्रघूर्णनेषु ये हस्तादयोऽपेक्ष्यन्ते तेषु । अत्यन्तेति अत्यन्तं नितरां दुरुपलक्ष्याणि दुर्ज्ञेयानि दुःखेनापि ज्ञातुमशक्यानीत्यर्थः । कूटकर्माणि कपटव्यवहारान् । तन्मूलानि—कूटकर्ममूलानि । तन्निमित्तकानि वा । सावलेपानि

❀ बालक्रीडा ❀

उसे ढाढ़स वँधा करके मैं उठ पड़ा । नगरमें घुसते ही मैंने सुना कि, वह नगर, लोभियोंके विपुल धनसे भरा है । बस, मैंने धनकी नश्वरता दिखा करके उन धन लोलुपोंको प्रकृतिस्थ करनेके लिए चौर्यशास्त्रके प्रवर्तक कर्णीसुतके विहित पथपर चलनेका संकल्प किया ।

(२६) बस, सर्व प्रथम मैं जुआड़ियोंकी मण्डलीमें घुसा और कुशल जुआड़ियोंमें घुल-मिल गया । उन लोगोंकी पच्चीसों प्रकारकी सभी द्यूतकला-

दुरुपलक्ष्याणि कूटकर्माणि तन्मूलानि सावलेपान्यधिक्षेपवचनानि जीवितनिरपेक्षाणि संरम्भविचेष्टितानि सभिकप्रत्ययव्यवहारान्न्यायबलप्रतापप्रायानङ्गीकृतार्थसाधनक्षमान्बलिषु सान्त्वनानि दुर्बलेषु भर्त्सितानि पक्षरचनानैपुणमुच्चावचानि प्रलोभनानि ग्लहप्रभेदवर्णनानि द्रव्यसंविभागौ-

❀ बालविबोधिनी ❀

सगर्वाणि । अधिक्षेपवचनानि तिरस्कारसूचकानि वाक्यानि । जीवितनिरपेक्षाणि प्राणधारणेऽपि आसक्तिशून्यानि । संरम्भविचेष्टितानि कोपकार्याणि । सभिकेत्यादि–सभिकस्य द्यूतकारकस्य प्रत्ययो विश्वासस्तदुचितव्यवहारान् तद्योग्यानुष्ठानानि । कीदृशा व्यवहारा इति तद्विशिनष्टि न्यायेति–न्यायो युक्तिः, बलं सामर्थ्यं प्रतापः प्रभावः प्रायो बहुलो येषु तान् । पुनः किम्भूतान्–अङ्गीकृतस्य कर्त्तुं प्रतिज्ञातस्यार्थस्य प्रयोजनस्य साधने सिद्धौ क्षमान् योग्यान् । बलिषु बलवत्सु । सान्त्वनानि सामप्रयोगान् । भर्त्सितानि भीतिजनकवाक्यानि । पक्षरचनायां जयवतां पुरुषाणामात्मपक्षीयकरणे । नैपुणं पाटवम् । उच्चावचानि नानाविधानि । प्रलोभनानि लोभोत्पादकानि । ग्लहेति–ग्लहस्य पणस्य ये प्रभेदा विशेषास्तेषां वर्णनानि निरूपणानि । द्रव्येति—द्रव्यस्य द्यूतलब्धधनस्य संविभागे वण्टने-औदार्यं महत्त्वं स्वकीयांशत्यागादिवेति भावः । अन्तरान्तरा मध्ये मध्ये । कलकलान् कोलाहलान् । इत्येतानि–यावन्ति उक्तानि–अन्यानि–यान्यनुक्तानि । अनुभवन्–दृष्ट्वा श्रुत्वा च । तृप्तिं सन्तोषम् । नाध्यगच्छम् न प्राप्तवान् । द्यूत-

❀ बालक्रीडा ❀

की कुशलता, गोटियोंको रखनेकी जगह, अतिशय दुष्प्रेक्ष्य हाथकी सफाई, चालबाजियाँ और उनसे युक्त गर्व तथा आक्षेपभरे वाक्य, जीवनकी भी परवा न करके साहसके काम कर गुजरना, जुआ खेलानेवाले-(नालिया-) की जानकारी रहते हुए न्यायालयमें जा करके जीतने तथा प्रभावयुक्त स्वार्थसाधनके उपायोंको जानना, बलवानोंके साथ सान्त्वना देते हुए, दुर्बलोंको डाँट-फटकार बताना, ऊँची-नीची बातें करके अपना पक्ष प्रबल कर लेना, प्रलोभन देना, दांवके विभिन्न भेद बताना, जुएमें प्राप्त द्रव्यका बंटवारा करना, बीच-बीचमें गाली-गलौजका शोरगुल आदि तरह-तरहकी बातोंका सतत अनुभव करते

दयमन्तरान्तराश्लीलप्रायान्कलकलानित्येतानि चान्यानि चानुभवन्न तृप्तिमध्यगच्छम्।

(२७) अहसं च किंचित्प्रमाददत्तशारे कचित्कितवे। प्रतिकितवस्तु निर्दहन्निव क्रोधताम्रया दृशा मामभिवीक्ष्य 'शिक्षयसि रे द्यूतवर्त्म हासव्याजेन। आस्तामयमशिक्षितो वराकः। त्वयैव तावद्विचक्षणेन देविष्यामि' इति द्यूताध्यक्षानुमत्या व्यत्यषजत्। मया जितश्चासौ षोडशसहस्राणि दीनाराणाम्। तदर्धं सभिकाय सभ्येभ्यश्च दत्त्वार्धं स्वीकृत्योदतिष्ठम्।

❀ बालविबोधिनी ❀

क्रीडां विना केवलदर्शनेन तृप्तिर्नोत्पद्यत इति भावः।

(२७) किंचित्–ईषत्। प्रमाददत्तशारे–प्रमादेन अनवधानतया दत्तः स्थापितः शारः शारिका गुटिकेति यावद्, येन तथाविधे। क्वचित्–कस्मिंश्चित्। कितवे–धूर्ते द्यूतकरे। प्रतिकितवः–प्रतिकूलद्यूतकरः। निर्दहन्निव भस्मीकुर्वन्निव। क्रोधताम्रया–रोषारुणया। दृशा–नेत्रेण द्यूतवर्त्म–द्यूतमार्गम्। हासव्याजेन–हास्यच्छलेन। आस्तां तिष्ठतु। अशिक्षितः अपटुः। वराकः शोच्यः। विचक्षणेन पण्डितेन। देविष्यामि–क्रीडिष्यामि इति–एवमभिधाय। द्यूताध्यक्षानुमत्या सभिकसम्मतिपूर्वकम्। व्यत्यषजत्–द्यूतक्रीडायां संलग्नोऽभवत्। वि-अतिपूर्वकस्य षञ्ज-सङ्ग इत्यस्य धातोर्लङि रूपम्। असौ प्रतिकितवः। दीनाराणां स्वर्णमुद्राणाम्। जित इत्यत्र जिधातोरप्रधाने कर्मणि असावित्यत्र निष्ठाप्रत्ययः। तदर्धं विजितधनस्या-

❀ बालक्रीडा ❀

हुए मैं तृप्त नहीं होने आया।

(२७) एक बार एक धूर्तके प्रभाववश गोटी दे देनेपर मुझे हँसी आ गयी तब उसका प्रतिपक्षी धूर्त क्रोधसे अपनी आंखें लाल करके मेरी ओर इस तरह ताकने लगा जैसे मुझे जलाकर भस्म ही कर देगा, कहने लगा 'अरे छोकरे! हँसीके बहाने मुझे जुआ खेलना सिखाता है! अच्छा, यह अशिक्षित खेलाड़ी अलग बैठे। तू जो अपनेको कुशल खेलाड़ी मानता है तो, आ, मैं तेरे ही साथ खेलूँगा।' इसपर द्यूताध्यक्षकी भी अनुमति मिल गयी और वह मेरे साथ खेलने लगा। मैंने बातकी बातमें इसकी सोलह हजार अशर्फियां जीत लीं। उनमेंसे आधी द्यूताध्यक्षको और आधी की आधी सभ्योंको दे करके आधी

(२८) उदतिष्ठंश्च तत्र गतानां हर्षगर्भाः प्रशंसालापाः । प्रार्थयमानसभिकानुरोधाच्च तदगारेऽत्युदारमभ्यवहारविधिमकरवम् । यन्मूलश्च मे दुरोदरावतारः स मे विमर्दको नाम विश्वास्यतरं द्वितीयं हृदयमासीत् । तन्मुखेन च सारतः कर्मतः शीलतश्च सकलमेव नगरमवधार्य धूर्जटिकण्ठकल्माषकालतमे तमसि नीलनिवसनार्धोरुकपरिहितो बद्धतीक्ष्णकौक्षेयकः

❀ बालविबोधिनी ❀

र्थम् । स्वीकृत्य स्वयं गृहीत्वा । उदतिष्ठम् उत्थितोऽभवम् ।

(२८) तत्र गतानां—द्यूतसमाजस्थितानाम् । हर्षगर्भाः आनन्दमिश्राः । प्रशंसालापाः प्रशंसासूचकवाक्यानि । प्रार्थयमानेति-प्रार्थयमानस्य मम गृहे त्वया भोक्तव्यमिति प्रार्थनां कुर्वतः सभिकस्य द्यूताध्यक्षस्यानुरोधात् प्रार्थनानुसारेण । तदगारेऽभिकगृहे । अत्युदारमत्युत्कृष्टम् । अभ्यवहारविधिं भोजनव्यापारम् । यन्मूलः यन्निमित्तकः । दुरोदरावतारः—द्यूतक्रीडाप्रवेशः । विश्वास्यतरमत्यन्तविश्वासभाजनम् । द्वितीयं हृदयं परममित्रम् । तन्मुखेन विमर्दकसाहाय्येन । सारतो बलात् । कर्मतोऽनुष्ठानात् । शीलतः स्वभावाच्च । अवधार्य-के कीदृक् सारवन्तः कर्मवन्तः स्वभाववन्तश्चेति निश्चित्य । धूर्जटीति धूर्जटेर्महादेवस्य कण्ठे गले यत्कल्माषं कालिमा तद्वत् कालतमेऽतिकृष्णवर्णे । अतिघोरे इति भावः । तमस्यन्धकारे । नीलेति-नीलं कृष्णवर्णं यन्निवसनं वस्त्रं तस्य यदर्धोरुकमर्धोरु व्यापि अवगुण्ठनं तत्परिहितमाच्छादितं येन सः । नीलवस्त्राच्छादितशरीरः । निष्ठान्तस्य

❀ बालक्रीडा ❀

अशर्फियां अंटीमें कीं और उठ खड़ा हुआ ।

(२८) मेरे उठनेके साथ ही वहांपर विद्यमान सब लोगोंके सहर्ष प्रशंसाभरे वचनोंसे कोलाहल-सा मच गया । द्यूताध्यक्षके पुनः पुनः प्रार्थना करने पर मैंने उसीके घर जा करके अतिशय उदारतापूर्वक भोजन किया । जिसकी बदौलत मैं इस द्यूतकर्ममें प्रवृत्त हुआ था, वह 'विमर्दक' नामका मेरा अति विश्वसनीय दूसरे हृदयके समान अभिन्न मित्र था । उसीकी जबानी मैंने अपने बल, कर्म और शीलसे सारे शहरको अपनी अच्छाईका विश्वास दिला दिया । तदनन्तर जब श्रीशिवजीके कण्ठकी तरह काला अन्धकार छा गया, तब नीले रंगका अर्धोरुक (लबादा) पहना । कमरमें अतितीक्ष्ण तलवार बांधी ।

फणिमुखकाकलीसंदंशकपुरुषशीर्षकयोगचूर्णयोगवर्तिकामानसूत्रकर्कटकरज्जुदीपभाजनभ्रमरकरण्डकप्रभृत्यनेकोपकरणयुक्तो गत्वा कस्यचिल्लुब्धेश्वरस्य गृहे संधि छित्त्वा पटभाससूक्ष्मच्छिद्रालक्षितान्तर्गृहप्रवृत्तिरव्यथो निजगृहमिवानुप्रविश्य नीवीं सारमहतीमादाय निरगाम् ।

❀ बालविबोधिनी ❀

परनिपातः । कौक्षेयकः खड्गः । फणिमुखेति—अग्रे वक्ष्यमाणानि सर्वाण्येव चौर्यसाधनान्युपकरणानि । फणिमुखं फणिनो मुखमिव मुखं यस्य तत् । सुरुङ्गाखननसाधनमस्त्रविशेषः । काकली काकचञ्च्वाकारयन्त्रविशेषः कर्त्तरीति प्रसिद्धः । सन्दंशकः दृढनिखातकीलोत्पाटनार्थं यन्त्रविशेषः साडांशीति भाषा । पुरुषशीर्षकं पुरुषमस्तकाकारकाष्ठमयशिरः परीक्षार्थं सुरङ्गायां प्रथमप्रवेशनार्थम् । योगचूर्णं निध्यंजनौषधिमूलादिचूर्णं गृहस्थानां गभीरनिद्रावेशसाधनम् । योगवर्त्तिका-अग्निं विना आलोकसाधनम् । मानसूत्रं प्रमाणरज्जुः, कर्कटकः कुलीराकृतियन्त्रविशेषः । रज्जुः सौधाप्रारोहणार्थम् । दीपभाजनमालोकाधारः, भ्रमरकरण्डकं दीपनिर्वापणार्थं शलभभाण्डम्-इत्यादिभिरनेकैरुपकरणैर्युक्तः, अहमिति शेषः । लुब्धेश्वरस्य-लुब्धधनिकस्य धूर्त्तप्रधानस्य वा । सन्धिं इष्टकासंयोगम् । पटभासेति—पटभासो गवाक्षजालं तस्य सूक्ष्मेण छिद्रेण विवरेण आलक्षिता दृष्टा अन्तर्गृहे गृहमध्ये स्थितानां प्रवृत्तिर्वृत्तान्तो येनासौ । अव्यथः अश्रान्तः । नीवीं मूलधनम् । सारमहतीं सारेण श्रेष्ठरत्नादिना महतीं महामूल्यवतीम् । निरगाम् निरगच्छम् ।

❀ बालक्रीडा ❀

सेंध लगानेवाली शवरी, कैंची, सँड़सी, काष्ठ-निर्मित पुरुषका मस्तक, योगवर्तिका, (जिसके जलानेपर सर्प दीख जाते हैं) नापनेका फीता यन्त्रसाधन, रस्सी, दीपपात्र, भ्रमरकरण्डक (दीपक बुझानेवाले भौंरोंसे भरी पेटी) आदि अनेक प्रकारकी सामग्रियां ले करके गया और एक लोभी धनीके घरमें सेंध लगायी । वहां पहले मैंने झरोखेके सूक्ष्म छिद्रसे घरकी सारी स्थिति भलीभांति देख ली और तब बिना हिचकके अपने घरके समान घुस गया तथा एक बहुमूल्य करधनी चुरा करके निकल आया ।

(२९) नीलनीरदनिकरपीवरतमोनिविडितायां राजवीथ्यां झटिति शतह्रदासंपातमिव क्षणमालोकमलक्षयम् । अथासौ नगरदेवतेव नगरमोषरोषिता निःसंबाधवेलायां निःसृता संनिकृष्टा काचिदुन्मिषद्भूषणा युवतिराविरासीत् । 'कासि वासु, क यासि' इति सदयमुक्ता त्रासगद्गदमगादीत्—'आर्य, पुर्यस्यामर्यवर्यः कुबेरदत्तनामा वसति । अस्म्यहं तस्य कन्या । मां जातमात्रां धनमित्रनाम्नेऽत्रत्यायैव कस्मैचिदिभ्यकुमारायान्वजानाज्जायां मे पिता । स पुनरस्मिन्नत्युदारतया पित्रोरन्ते वित्तैर्निजैः

❀ बालविबोधिनी ❀

(२९) नीलेति—नीलाः कृष्णा ये नीरदा मेघास्तेषां निकरः समूहस्तद्वत् पीवरं सान्द्रं यत्तमोऽन्धकारस्तेन निबिडितायाम् व्याप्तायाम् । राजवीथ्यां राजमार्गे । शतह्रदासम्पातं विद्युत्स्फुरणम् । क्षणं मुहूर्तं यावत् । आलोकं ज्योतिः । असौ—अग्रतो निर्दिष्टा । नगरदेवतेव—नगराधिष्ठात्री देवीव । कीदृशी सेति विशिनष्टि नगरमोषेति—नगरस्य पुरस्य मोषेण अपहरणेन रोषिता कोपिता । नगरस्य यत्सारधनं मयापहृतं तेन नगराधिष्ठात्र्याः कोपः सञ्जात इति भावः । निःसम्बाधवेलायां जनसंकटरहितसमये । संकटं नातु संबाध इति कोषः । निःसृता गृहान्निर्गता । सन्निकृष्टा—समीपस्थिता । उन्मिषद्भूषणा दीप्यमानालङ्कारा । उन्मिषन्ति भूषणानि यस्याः सेति विग्रहः । आविरासीत् प्रकटीबभूव । उक्ता पृष्टा मयेति शेषः । त्रासगद्गदं भीतिभिन्नस्वरम् । पुरि नगरे । अर्यवर्यः वैश्यश्रेष्ठः । अर्यः स्वामिवैश्ययोरिति निपातः । जातमात्रां जन्मसमये एव । अत्रत्याय—

❀ बालक्रीडा ❀

(२९) बाहर काले बादलोंके कारण अतिशय घने अन्धकारयुक्त राजमार्गमें एकाएक बिजलीकी चमक जैसी चमकती ज्योतिको मैंने देखा । इसके बाद वह, नगरमें चोरी होनेसे रुष्ट नगरदेवीकी नाईं, इस सुनसानके समय घरसे निकल करके, जब मेरे समीप आयी, तब मैंने देखा कि, वह एक युवती स्त्री है और उसके शरीरपर विविध आभूषण आभूषित हो रहे हैं । मैंने सदय वचन करके उससे पूछा—'देवि ! तुम कौन हो ? कहां जा रही हो ?' अब जैसे मारे भयके गद्गदवाणीमें उसने कहा—'आर्य ! इस पुरीमें वैश्यवर्य कुबेरदत्त रहते हैं । मैं उनकी पुत्री हूँ । मैं जन्मी, तैसे ही मेरे पिताने यहींके निवासी एक धनी

क्रीत्वेवार्थिवर्गाद्दारिद्र्यं दरिद्रति सत्यथोदारक इति च प्रीतलोकाधिरोपिता- परश्लाघ्यनामनि वरयत्येव तस्मिन्मां तरुणीभूतामधन इत्यदत्त्वार्थ- पतिनाम्ने कस्मैचिदितरस्मै यथार्थनाम्ने सार्थवाहाय दित्सति मे पिता। तदमङ्गलमद्य किल प्रभाते भावीति ज्ञात्वा प्रागेव प्रियतमदत्तसंकेता वञ्चितस्वजना निर्गत्य बाल्याभ्यस्तेन वर्त्मना मन्मथाभिसरा तदगारम-

❀ बालविबोधिनी ❀

एतद्देशोत्पन्नाय । इभ्यकुमाराय—धनिकपुत्राय भार्याम् अन्वजानात्—पत्नीत्वेन दातुं प्रतिज्ञातवान् । सः मम पिता । अस्मिन् धनमित्रे । अत्युदारतया—दानशौण्डतया पित्रोर्मातापित्रोः । अन्ते अवसाने मरणानन्तरमित्यर्थः । निजैः स्वकीयैः । वित्तैर्धनैः । अर्थिवर्गाद् याचकसमूहात् । दारिद्र्यं दरिद्रताम् । क्रीत्वेव गृहीत्वेव । दरिद्रति सति दारिद्र्यमनुभवति सति । अतिदातृत्वेनार्थिभ्यः स्वधनं वितीर्य स्वयमेव दरिद्रोऽभवदिति भावः । प्रीतेति—प्रीतेन सन्तुष्टेन लोकेन जनेनाधिरोपितं दत्तम् उदारक इत्यपरमन्यत् श्लाघ्यं प्रशंसनीयं—नाम अभिधानं यस्य तस्मिन् । वरयति प्रार्थयति । तस्मिन् धनमित्रे । अधनो निःस्व इति कारणात् । इतरस्मै अन्यस्मै । यथार्थनाम्ने वस्तुतो धनिकायेति भावः । सार्थवाहाय वणिजे । दित्सति दातुमभिलषति । तदमङ्गलम्—अर्थपतये मद्दानरूपमशुभं कर्म । भावि- भविष्यति । प्रागेव—दानात्पूर्वमेव । प्रियतमेन धनमित्रेण दत्तः कृतः संकेतो यस्यै सा । वञ्चितः प्रतारितः स्वजन आत्मीयवर्गो यया सा । निर्गत्य स्वगृहादिति शेषः ।

❀ बालक्रीडा ❀

वैश्यपुत्रके साथ मेरा विवाह करनेका संकल्प कर लिया था । माता-पिताके गुजर जानेपर उस वैश्यकुमारने अपना सब धन याचकोंको दे करके उनकी दरिद्रता मोल ले ली और गरीबीके दिन बिता रहा है । इन्हीं लोगोंने उसको 'उदारक' यह उपाधि दे दी है । वह श्लाघनीय नामवाला वैश्य मुझ तरुणी के साथ विवाह करना चाहता है । 'किन्तु मेरे पिता धनहीन समझ करके उसके साथ मेरा विवाह न करके अर्थपति नामक किसी धनी और विदेशी वैश्यके साथ मेरा विवाह करना चाहते । यह असंगल सवेरे ही होनेवाला है, यह पता पा करके मैं अपने प्रियतमके पूर्व संकेतानुसार, अपने कुटुम्बवालोंसे आंख बचा करके, अभी ही निकल पड़ी और बाल्यकालसे अभ्यस्त मार्गसे उसके घर जा

भिसरामि तन्मां मुञ्च । गृहाणैतद्भाण्डम्' इत्युन्मुच्य मह्यमर्पितवती ।

(३०) दयमानश्चाहमब्रवम्—'एहि साध्वि, त्वां नयेयं त्वत्प्रियावसथम्' इति त्रिचतुराणि पदान्युदचलम् । आपतच्च दीपिकालोकपरिलुप्यमानतिमिरभारं यष्टिकृपाणपाणि नागरिकवलमनल्पम् । दृष्ट्वैव प्रवेपमानां कन्यकामवदम्—'भद्रे, मा भैषीः । अस्त्ययमसिद्वितीयो मे बाहुः । अपि तु मृदुरयमुपायस्त्वदपेक्षया चिन्तितः । शयेऽहं भावितविषवेगवि-

❀ वालविबोधिनी ❀

वाल्याभ्यस्तेन–परिचितेन । मन्मथाभिसरा–मदनसहाया । तदगारं धनमित्रगृहम् । अभिसरामि गच्छामि । भाण्डमलङ्कारजातम् । उन्मुच्य स्वदेहादुत्तार्य ।

(३०) दयमानः कृपायुक्तः । नयेयं प्रापयेयम् । त्वत्प्रियावसथं त्वद्दयितगृहम् । त्रिचतुराणि–त्रीणि चत्वारि वा । उदचलं चलितवान् । आपतत्–एतदन्तरे समागच्छत् । नागरिकवलमित्यनेन सम्बध्यते । दीपिकेति दीपिकायाः हस्तदीपस्य 'मशाल्' इति भाषाप्रसिद्धस्यालोकेन प्रकाशेन परिलुप्यमानो नाश्यमानस्तिमिरभारोऽन्धकारसमूहो यत्रेति क्रियाविशेषणम् । यष्टिर्दण्डः कृपाणः खड्गस्तौ पाणौ यस्य तत् । नारारिकवलस्य विशेषणमेतत् । वलं सैन्यम् । अनल्पं बहु । प्रवेपमानां भयेन कम्पमानाम् । असिद्वितीयः खड्गसहायः । असिर्द्वितीयो यस्येति विग्रहः । अपि तु–किन्तु । मृदुः–कोमलः । त्वदपेक्षया भवत्या अनुरोधेन । चिन्तितः स्थिरीकृतः । शये–सुप्तो भवामि । भाविततेति–भाविता प्रकटिता विषस्य

❀ वालक्रीडा ❀

रही हूँ । इसलिए आप मुझे छोड़ दें और मेरे पास जो भाण्ड है, उसे आप ले लें ।' ऐसा कह करके उसने मुझे वह भाण्ड अर्पण कर दिया ।

(३०) अब मुझे उसपर दया आ गयी और मैंने कहा—'हे साध्वि ! आओ, मैं तुम्हें तुम्हारे प्रियतमके घर पहुँचा दूँ ।' यों कह करके मैं तीन-चार कदम चला होगा कि, इतनेमें दीपकके प्रकाशसे अन्धकार राशिको दूर करता हुआ हाथमें लाठी और तलवार लिये नागरिकोंका एक बड़ा झुण्ड आ पहुँचा । उसे देखते ही मारे भयके कांपनेवाली उस कन्यासे मैंने कहा—'मत डरो । मेरे भी भुजायें हैं और भुजाओंमें तलवार है । तथा तुम्हारे अनुरोधसे मैंने एक उपाय सोच लिया है । मैं बनावटी विषवेगसे व्याकुल हो करके यहां लेट

क्रियः। त्वयाप्यमी वाच्याः 'निशि वयमिमां पुरीं प्रविष्टाः। दृष्टश्च ममैष नायको दर्वीकरेणामुष्मिन्सभागृहकोणे। यदि वः कश्चिन्मन्त्रवित्कृपालुः स एनमुज्जीवयन्मम प्राणानाहरेदनाथायाः' इति।

(३१) सापि बाला गत्यन्तराभावाद्भयगद्गदस्वरा बाष्पदुर्दिनाक्षी बद्धवेपथुः कथंकथमपि गत्वा मदुक्तमन्वतिष्ठत्। अशयिषि चाहं भावितविषविक्रियः। तेषु कश्चिन्नरेन्द्राभिमानी मां निर्वर्ण्य मुद्रातन्त्रमन्त्रध्यानादिभिश्चोपक्रम्याकृतार्थः, 'गत एवायं कालदष्टः। तथा हि स्तब्धश्या-

---

❀ बालविबोधिनी ❀

वेगेन विक्रिया विकारो येन सः। विषमूर्च्छितमिवात्मानं दर्शयामीति भावः। अमी उपस्थिता जनाः। वाच्याः कथनीयाः। नायको वल्लभः। दर्वीकरेण सर्पेण। वः युष्माकं मध्ये। मन्त्रवित् मन्त्रौषधिज्ञः। आहरेद् उद्धरेत्।

(३१) गत्यन्तराभावात् उपायान्तरासत्त्वात्। बाष्पदुर्दिनाक्षी—अश्रुपूर्णनयना। बद्धवेपथुः सञ्जातकम्पा। अन्वतिष्ठत्—यथा मयोक्तं तथैव कृतवती। अशयिषि शयितोऽभवम्। तेषु नागरिकेषु। नरेन्द्राभिमानी-विषवैद्यम्मन्यः। नरेन्द्रो वार्त्तिके राज्ञि विषवैद्येऽपीति कोषः। मां शयितमपहारवर्माणम्। निर्वर्ण्य—सावधानं निरीक्ष्य। मुद्रेति—मुद्रातन्त्रादिप्रयोगैः। उपक्रम्य चिकित्सामारभ्य। अकृतार्थः अकृतकार्यः। विषापनयनं कर्त्तुमपारयन्नित्यर्थः। गतः मृतः। कालदष्टः कालेन मृत्युना दष्टो भक्षितः। मरणचिह्नानि दर्शयति तथाहीति

❀ बालक्रीडा ❀

जाता हूँ। ये आयें तो कहना कि, 'हम परदेशी हैं और इसी रात इस नगरीमें आये हैं। इस सभागृहके कोनेमें मेरे पतिको सांपने काट लिया है। आप लोगोंमेंसे कोई दयालु यदि मंत्र जानता हो तो, इसे जीवित करके मुझ अनाथिनीके प्राणोंको बचा ले।

(३१) और कोई उपाय न देखकर उस तरुणीने भी भयसे गद्गदस्वरमें आंसू बहाती हुई, काँपती-काँपती मेरे कथनका अनुसरण किया। अब मैं बनावटी विषके विकारसे व्याकुल होकर लोट गया। तदनन्तर उनमेंसे अपनेको वैद्य माननेवाले एक पुरुषने मुझे भली भाँति देखा मुद्रा, तन्त्र, मन्त्र तथा ध्यान आदिके द्वारा अनेक उपाय करके भी असमर्थ रहा, तब उसने

वमङ्गम्, रुद्धा दृष्टिः, शान्त एवोष्मा । शुचालं वासु, श्वोऽग्निसात्करिष्यामः । कोऽतिवर्तते दैवम्' इति सहेतरैः प्रायात् ।

(३२) उत्थितश्चाहमुदारकाय तां नीत्वाब्रवम्—'अहमस्मि कोऽपि तस्करः । त्वद्गतेनैव चेतसा सहायभूतेन त्वामिमामभिसरन्तीमन्तरोपलभ्य कृपया त्वत्समीपमनैषम् । भूषणमिदमस्याः' इत्यंशुपटलपाटितध्वान्तजालं तदप्यर्पितवान् । उदारकस्तु तदादाय सलज्जं च सहर्षं च ससं-

❀ बालविबोधिनी ❀

स्तब्धं निश्चलं श्यावं धूम्रवर्णमङ्गं शरीरम् । दृष्टिर्दर्शनशक्तिः रुद्धा नष्टा । उष्मा शरीरतापः । शान्तोऽपगतः । शुचा शोकेनालं प्रयोजनन्नास्ति । श्वः आगामिदिने । अग्निसात्करिष्यामः धक्ष्यामः । अतिवर्त्तते—अतिक्रामति । इति—इत्युक्त्वा । इतरैरन्यैः । प्रायादगच्छत् ।

(३२) उदारकाय तां नीत्वा—तां कन्यामुदारकसमीपं प्रापय्य । त्वद्गतेन त्वत्पक्षपातिना । चेतसा—हृदयेन । सहायभूतेन सहायकेन । स्वहृदयमेव सहायीकृत्येत्यर्थः । त्वां भवत्समीपम् अभिसरन्तीम् आगच्छन्तीम् इमां भवत्पत्नीम् । अन्तरा मार्गमध्ये । उपलभ्य प्राप्य । कृपया दयया । अनैषम्—आनीतवानस्मि । इति इदमुक्त्वा । अंशुपटलेति अंशुपटलेन किरणसमूहेन पाटितं नाशितं ध्वान्तजालमन्धकारसमूहो येन तत् । तदपि—भूषणमपि । तदादाय—भूषणं गृहीत्वा । सलज्जं सव्रीडम् । सहर्षं सानन्दम् । ससम्भ्रमं साश्चर्यम् । सलज्ज-

❀ बालक्रीडा ❀

कहा—'इसे सर्पने नहीं, बल्कि कालने काटा है, इसलिए अब यह चल बसा । इसके सब अङ्ग शिथिल और श्याम हो गये हैं । आँखें पथरा गयी हैं और शरीर ठण्ढा पड़ गया है । देवि ! शोक करना व्यर्थ है । सवेरे हम लोग आकर इसे जला देंगे । विधिके विधानको भला कौन मेट सकता है ?' यों कहकर वह अपने साथियोंके साथ चला गया । तब मैं भी उठा और उस कन्याको उदारकके पास ले जाकर कहा—'आर्य ! मैं एक चोर हूँ । तुम्हारेमें इस कन्याका मन लगा हुआ था, उसी मनका सहायक बनकर, मार्गमें मिली हुई, इस कन्याको तुम्हारे समीप ले आया हूँ । ये इसके गहने हैं ।' ऐसा कहकर अपनी दीप्तिसे अन्धकार राशिको नष्ट करते हुए उन आभूषणोंको उसे दे दिया । उसे

भ्रमं च मामभाषत—'आर्य, त्वयैवेयमस्यां निशि प्रिया मे दत्ता। वाक्पुनर्ममापहृता। तथा हि न जाने वक्तुं त्वत्कर्मैतदद्भुतमिति। ननु ते स्वशीलमद्भुतवत्प्रतिभाति। नैवमन्येनापि कृतपूर्वमिति प्रतिनियतैव वस्तुशक्तिः। न हि त्वय्यन्यदीया लोभादयः। त्वयाद्य साधुतोन्मीलितेति तत्प्रायस्त्वत्पूर्वोन्नदानेभ्यो न रोचते। दृष्टमिदानीमौदार्यस्य स्वरूपमिति

❀ बालविबोधिनी ❀

मित्यत्र स्वरहस्यज्ञानं लज्जायाः, सहर्षमित्यत्र अद्भुतोपायेन प्रियाप्राप्तिर्हर्षस्य ससम्भ्रममित्यत्र च तस्करस्यालौकिककर्मदर्शनं सम्भ्रमस्य कारणम्। एतानि च अभाषतेति क्रियाविशेषणानि। मे मह्यम्। अपहृता गृहीता। अत्र प्रियाविनिमयेन वागपहरणात् परिवृत्तिरलंकारः। परिवृत्तिर्विनिमयो न्यूनाभ्यधिकयोर्मिथ इति लक्षणात्। मम वचनसामर्थ्यं नास्ति इति यदुक्तं तदेव विशदयति–तथाहीत्यादिना। एतत्त्वत् कर्म–प्रियादानरूपमद्भुतमाश्चर्यजनकमिति वक्तुं न जाने वचनसामर्थ्यं मम नास्ति। तादृशशक्तेरभावात्। न जाने इत्यनेनानन्तरोक्तानां सर्वेषामित्यन्तवाक्यानामन्वयः। ते तव स्वशीलं स्वभावः चोरस्यापि भूषादिसमर्पणरूपः अद्भुतमिव प्रतिभाति। एवमीदृशं कर्म अन्येनापि भवद्व्यतिरिक्तेनापि न कृतपूर्वं पूर्वं नाचरितमित्यपि वक्तुं न जाने यतो वस्तुशक्तिः पदार्थस्वभावः प्रतिनियता तत्तद्व्यक्तिनिष्ठैव। एकस्य शक्तिरेकत्रैव तिष्ठति नान्यत्रात एतादृशं कर्म पूर्वमन्येन न कृतमिति वचनस्यावसरोऽपि नास्तीति भावः। अन्यदीया अन्यपुरुषसाधारणाः लोभादयस्त्वयि न सन्ति नोपलभ्यन्ते। अद्य साम्प्रतं साधुता सज्जनता उन्मीलिता प्रकटीकृतेति यत्तत् प्रायो बाहुल्येन त्वत्पूर्वोन्नदानेभ्यः पूर्वकृतमहाकर्मभ्यो न रोचते स्वदते। पूर्वमपि भवता ईदृशानि

❀ बालक्रीडा ❀

देकर उदारकने 'लज्जा, हर्ष और घबड़ाहटभरो वाणीमें कहा—'आर्य! तुम्हींने इस रातके समय मेरी प्रियाको मेरे पास पहुँचाया है। तुमने अपने कार्यसे मेरी जबान ही बन्द कर दी है। कुछ सूझता ही नहीं कि, क्या कहकर मैं तुम्हारे इस अद्भुत कार्यकी सराहना करूँ। निःसन्देह तुम्हारा स्वभाव विचित्र है। यह तो निश्चित ही है कि, किसी चोरने कभी ऐसा नहीं किया है। और लोगोंके समान तुम्हारेमें लोभ आदि दुर्गुण नहीं हैं। तुमने आज जिस

त्वदाशयमननुमान्य न युक्तो निश्चयः। त्वयामुना सुकृतेन क्रीतोऽयं दासजन इत्यसारमतिगरीयसा क्रीणासीति स ते प्रज्ञाधिक्षेपः। प्रियादानस्य प्रतिदानमिदं शरीरमिति तदलाभे निधनोन्मुखमिदमपि त्वयैव दत्तम्। अथवैतावदत्र प्राप्तरूपम्। अद्यप्रभृति भर्तव्योऽयं दासजनः' इति मम पादयोरपतत्।

❁ बालविबोधिनी ❁

कर्माणि न कृतानीत्यपि वक्तुं नाभिलषामीति भावः। अवदानं कर्मवृत्तमिति कोषः। औदार्यस्य उदारतायाः स्वरूपमिदानीं दृष्टमित्यपि वक्तुं न जाने यतस्त्वदाशयं भवदभिप्रायम् अननुमान्य सम्यगविदित्वा निश्चयो निर्णयो न युक्त उचितः। सुकृतेन सुकर्मणा। दासजनः सेवकः। क्रीतः स्वाधीनीकृतः इत्यपि वक्तुं न जाने यतोऽति गरीयसा अतिमहता वस्तुनेति शेषः असारं निकृष्टं वस्त्विति शेषः क्रीणासीति यत्तदपि ते प्रज्ञाधिक्षेपः बुद्धेर्निन्दा। न कोऽपि सचेता उत्कृष्टेन वस्तुना निकृष्टं क्रीणातीति भावः। प्रतिदानं प्रतिरूपदानम् इदं मम शरीरमित्यपि वक्तुं न पारयामि यतः तदलाभे प्रियाया अप्राप्तौ निधनोन्मुखं मरणायोद्यतमिदं शरीरं भवतैव मह्यं दत्तमतः कथमेतत्प्रतिदानं भवितुमर्हति। मच्छरीरं भवदीयमेवेति भावः, एतावत्-इति कथनमेवात्र प्राप्तरूपं युक्तियुक्तम्। भर्त्तव्यः पालनीयः। इति-इति कथयित्वा।

❁ बालक्रीडा ❁

सज्जनताका परिचय दिया है, उससे तुम्हारे पूर्वकृत्य (चोरी आदि) का मेल नहीं खाता। इस समय तो, मैंने तुममें उदारताका प्रत्यक्ष स्वरूप देख लिया है। तुम्हारा अभिप्राय समझे बिना कोई निश्चय कर लेना उचित न होगा। 'तुमने अपने सुकृतसे इस दासको मोल ले लिया है' यदि यह कहूँ तो तुम्हारी बुद्धिकी निन्दा होगी। तुमने मुझे जो मेरी प्रियतमा दी है, उसके बदलेमें मेरा यह शरीर अर्पित है। यदि यह न मिली होती तो, यह शरीर भी न रह जाता। अत एव शरीर भी तुम्हींने दिया है। अस्तु, यह बहुत ही अच्छा हुआ। आजसे आप अपने इस दास पर दया रखियेगा।' यों कहकर वह मेरे पैरोंपर गिर पड़ा।

(३३) उत्थाप्य चैनमुरसोपश्लिष्याभाषिषि—'भद्र, काद्य ते प्रतिपत्तिः' इति । सोऽभ्यधत्त—'न शक्नोमि चैनामत्र पित्रोरनभ्यनुज्ञयोपयम्य जीवितुम् । अतोऽस्यामेव यामिन्यां देशमिमं जिहासामि । को वाहम् । यथा त्वमाज्ञापयसि' इति । अथ मयोक्तम्—'अस्त्येतत् । स्वदेशो देशान्तरमिति नेयं गणना विदग्धस्य पुरुषस्य । किन्तु बालेयमनल्पसौकुमार्या । कष्टाः प्रत्यवायभूयिष्ठाश्च कान्तारपथाः । शैथिल्यमिव किञ्चित्प्रज्ञासत्त्वयोरनर्थेनेदृशेन देशत्यागेन संभाव्यते । तत्सहानया सुखमि-

❀ बालविबोधिनी ❀

(३३) उत्थाप्य पादपतनादिति शेषः । एनं धनमित्रम् । उरसा वक्षसा । उपश्लिष्य–आलिङ्ग्य । अभाषिषि–उक्तवानस्मि । प्रतिपत्तिः–कर्त्तव्यबुद्धिः । अभ्यधत्त अकथयत् । एनां–कुवेरदत्तकन्यां । पित्रोः तन्मातापित्रोः । अनभ्यनुज्ञया अननुमत्या । उपयम्य विवाह्य । जिहासामि त्यक्तुमिच्छामि । को वाहं एतत्करणे मम प्रभुत्वं नास्तीत्यर्थः । अस्त्येतत्–सत्यमेव त्वयोक्तम् । देशान्तरं परदेशः । गणना विचारः । विदग्धस्य चतुरस्य । विद्वान् सर्वत्र पूज्यत इति भावः । बाला कन्या । अनल्पसौकुमार्या–अतिकोमला । कष्टाः क्लेशजनकाः । प्रत्यवायभूयिष्ठाः–विघ्नबहुलाः । कान्तारपथाः अरण्यमार्गाः । शैथिल्यमिवेति–अनर्थेन विपत्पूर्णेन ईदृशेन पूर्वोक्तप्रकारेण देशत्यागेन स्वदेशं त्यक्त्वाऽऽन्यत्रगमनेन प्रज्ञासत्त्वयोर्बुद्धिसामर्थ्ययोः किञ्चित् ईषत् शैथिल्यं ह्रास इव सम्भाव्यते विविच्यते । बुद्धिहीना दुर्बलाश्च देशत्यागिनो भवन्तीति भावः । तत् तस्मात् कार-

❀ बालक्रीडा ❀

(३३) तब मैंने उसे उठाकर छातीसे लगा लिया और कहा—'भद्र ! अब तुम क्या चाहते हो ? उसने कहा—'इसके माता-पिताकी अनुमति पाये बिना इसके साथ विवाह करके मैं जीवित नहीं रह सकता । अत एव इसी रातको यह देश त्यागकर मैं चल देना चाहता हूँ । अथवा मैं (अपने मनकी करने वाला) हूँ ही कौन ? आप जैसी आज्ञा दें, वैसा करूँ ।' तब मैंने कहा—'तुम्हारा कथन यथार्थ है । 'स्वदेश' और 'विदेश' में समझदार लोग कोई अन्तर नहीं मानते । किन्तु, यह युवती बड़ी ही सुकुमार है । वनके मार्ग बड़े दुखदायी और विविध विघ्न-बाधाओंसे भरे रहते हैं । तुम्हारे इस तरह देश

हैव वस्तव्यम् । एहि । नयावैनां स्वमेवावासम्' इति ।

(३४) अविचारानुमतेन तेन सद्य एवैनां तद्गृहमुपनीय तयैवापसर्पभूतया तत्र मृद्भाण्डावशेषमचोरयाव । ततो निष्पत्य क्वचिन्मुषितकं निधाय समुच्चलन्तौ नागरिकसंपाते मार्गपार्श्वशायिनं कंचिन्मत्तवारणमुपरिपुरुषमाकृष्याध्यारोहाव । ग्रैवेयप्रोतपादयुगलेन च मयोत्थाप्यमान

❁ बालविबोधिनी ❁

णात् । अनया त्वद्भार्यया । सहैव अस्यामेव नगर्याम् । वस्तव्यं वसतिः कर्त्तव्या । नयाव-प्रापयाव आवामिति शेषः । आवासं गृहम् ।

(३४) अविचारानुमतेन-निर्विचारस्वीकृतेन । तेन धनमित्रेण-तद्द्वारेणेत्यर्थः । एनां कन्याम् । तद्गृहं-तस्याः कन्याया गृहम् । उपनीय-नीत्वा । अपसर्पभूतया-चररूपया । अपसर्पश्चरः स्पर्श इत्यमरः । तत्र कुबेरदत्तगृहे । मृद्भाण्डेति-मृद्भाण्डानामवशेषो यस्मिंस्तद् यथा तथा । एवं चोरितं येन मृत्पात्राण्येव अवशिष्टानीति भावः । अचोरयाव आवामपहृतवन्तौ । ततस्तस्मान्नगरात् । निष्पत्त्य-निर्गत्य । मुषितकं-अपहृतद्रव्यम् । निधाय-संस्थाप्य । समुच्चलन्तौ-स्वगृहं गन्तुमुद्यतौ । नागरिकसंपाते-नगररक्षिणां संमर्दे सति । मार्गपार्श्वशायिनं पथिप्रान्तशयितम् । मत्तवारणं मत्तहस्तिनम् । अध्यारोहावेत्यस्याः क्रियायाः कर्म । उपरिपुरुषम्-उपरि हस्तिपृष्ठे स्थितं पुरुषं-आधोरणमित्यर्थः । आकृष्येति क्रियायाः कर्म आकृष्य-निपात्य ग्रैवेयेति-ग्रैवेये कण्ठरज्ज्वां प्रोतं प्रवेशितं पादयुगलं येन तेन । उत्थाप्यमानः ऊद्र्ध्वमुत्क्षिप्यमाणः । गज इत्यस्य विशेषणम् । पातितेति-पातितस्य गजपृष्ठादाकृष्टस्याधोरणस्य हस्तिपकस्य पृथुले विस्तृते

❁ बालक्रीडा ❁

त्याग देनेपर लोग बुद्धि और बलका शैथिल्य ही समझेंगे । इसलिए तुम इसके साथ सुखपूर्वक यहीं रहो । चलो, इसे अपने घर ले चलें ।

(३४) बिना सोचे विचारे उसने मेरी बात मान ली और तत्काल सुन्दरीको उसके घर पहुँचा दिया तथा उसी नारीको अगुआ बनाकर उस घरके मृद्भाण्डमें जो अवशिष्ट धन था, सो भी, हम दोनोंने चुरा लिया । वहांसे चलकर चोरी करनेके सब उपकरण एक स्थानपर रख दिये और आगे बढ़े । मार्गमें एक जगह मनुष्योंकी बड़ी भीड़ एकत्रित थी । पास ही राहके किनारे

एव पातिताधोरणपृथुलोरःस्थलपरिणतः पुरीतल्लतापरीतदन्तकाण्डः स रक्षिकबलमक्षिणोत्। अध्वंसयाव चामुनैवार्थपतिभवनम्। अपवाह्य च क्वचन जीर्णोद्याने शाखाग्राहिकया चावातराव। स्वगृहगतौ च स्नातौ शयनमध्यशिश्रियाव।

(३५) तावदेवोदगादुदधेरुदयाचलेन्द्रपद्मरागशृङ्गकल्पं कल्पद्रुमहेमपल्लवापीडपाटलं पतङ्गमण्डलम्। उत्थाय च धौतवक्त्रौ प्रगेतनानि

❀ बालविबोधिनी ❀

उरःस्थले वक्षसि परिणतस्तिर्यग्दन्तप्रहारी। तिर्यग्दन्तप्रहारस्तु गजः परिणतो मत इति हलायुधः। पुरीतदिति पुरीतल्लतया अन्त्रवल्ल्या परीतं वेष्टितं दन्तकाण्डं यस्य सः। स—गजः। रक्षिकबलं—नगररक्षिसैन्यम्। अक्षिणोत् क्षयमनयत्। अध्वंसयाव—आवां ध्वंसितवन्तौ। अमुना—गजेन। अपवाह्य—नीत्वा। शाखाग्राहिकया वृक्षशाखाग्रहणेन। अवातराव अवतीर्णौ। स्नातौ कृतस्नानौ। शयनं शय्याम्। अध्यशिश्रियाव अधिष्ठितवन्तौ आवामिति शेषः।

(३५) तावदेव—तस्मिन्नेवकाले। उदगाद् उत्थितमभवत्। उदधेः—सागरात् उदयेति—उदयाचलेन्द्रस्य उदयपर्वतराजस्य यत् पद्मरागशृङ्गं शोणमणिशिखरं तस्मादीषदूनं तत्सदृशमित्यर्थः। कल्पद्रुमस्य देवतरोर्ये हेमपल्लवाः सुवर्णकिसलयानि तेषामापीडः समूहस्तद्वत्पाटलं श्वेतरक्तवर्णम्। पतङ्गमण्डलं सूर्यबि-

❀ बालक्रीडा ❀

एक मतवाला हाथी पड़ा सो रहा था। उसपर सवार फीलवानको पकड़कर हम दोनों उस हाथी पर चढ़ गये। मैंने तत्काल उसके गलेमें डाली हुई रस्सीमें दोनों पांव डालकर जैसे ही उठाया, उसी समय उसने हाथीवान को जमीनमें गिरा दिया और उसकी छातीमें अपना दांत गड़ाकर अंतड़ियाँ निकाल लीं और उन्हें दांतमें लपेटकर रक्षकोंके झुण्डकी ओर झपटा। उसी हाथीके द्वारा मैंने अर्थपतिका भवन ढहा दिया। जब वह हम दोनोंको अपनी पीठ पर लादकर कुछ दूर ले गया तो, एक उजाड़ उपवनमें वृक्षकी शाखा पकड़कर उतर आया। अन्तमें अपने घर जाकर हम दोनोंने स्नान किया और सो गये।

(३५) इसी समय उदयाचलके पद्मरागमणिके शिखर सदृश एवं कल्पवृक्षके स्वर्णपल्लव समूहकी भाँति रक्तवर्णका सूर्यमण्डल समुद्रसे निकल

मङ्गलान्यनुष्ठायास्मत्कर्मतुमुलं पुरमनु विचरन्तावश्रृणुव वरवधूगृहेषु कोलाहलम् । अथार्थैरर्थपतिः कुवेरदत्तमाश्वास्य कुलपालिकाविवाहं मासावधिकमकल्पयत् । उपह्वरे पुनरित्यशिक्षयं धनमित्रम्—'उपतिष्ठ सखे, एकान्त एव चर्मरत्नभस्त्रिकामिमां पुरस्कृत्याङ्गराजम् । आचक्ष्व च जानात्येव देवो नैककोटिसारस्य वसुमित्रस्य मां धनमित्रं नामैकपुत्रम् । सोऽहं

❀ बालविबोधिनी ❀

म्बम् । उदगादित्यस्य कर्तृपदम् । उत्थाय शयनादिति शेषः । धौतवक्त्रौ प्रक्षालितमुखौ आवामिति शेषः । प्रगेतनानि—प्रभातोचितानि । प्रगे इत्येकारान्तमव्ययं तस्मात् 'सायं चिरमि'त्यादिना ट्युल् प्रत्ययस्तुडागमश्च । अनुष्ठाय परिसमाप्य । अस्मदिति—अस्माकं कर्मणा चौर्येण तुमुलं भयसङ्कुलम् । पुरस्य विशेषणम् । वरवधूगृहेषु—वरस्यार्थपतेर्वध्वाः कुवेरदत्तकन्यायाश्च गृहेषु । उभयत्रैव सर्वद्रव्यापहरणं जातमिति भावः । कोलाहलमार्त्तनादम् । अर्थैर्धनैः । कुवेरदत्तं कन्यापितरम् । आश्वास्य सान्त्वयित्वा । कुलपालिका कुवेरदत्तकन्या तस्या विवाहस्तम् । मासावधिकं—मासोऽवधिर्यस्य तम् । एकमासाभ्यन्तरे कदापि भविष्यतीति अकल्पयत्—निरधारयत् । उपह्वरे एकान्ते । इति—वक्ष्यमाणम् । अशिक्षयं शिक्षितवानस्मि । उपतिष्ठ—भजस्व । चर्मेति—चर्मणा निर्म्मिता रत्नभस्त्रिका रत्नप्रसविनी भस्त्रा ताम् अथवा चर्मरत्नेन उत्तमचर्मणा निर्मिता भस्त्रिका ताम् । पुरस्कृत्य अग्रे धृत्वा । अङ्गराजं अङ्गदेशाधिपतिम् । आचक्ष्व—ब्रूहि । देवो—भवान् । नैककोटिसारस्य अनेककोटिद्रव्यवतः, महाधनिकस्येत्यर्थः । मूलहरत्वं लुप्तमूलधनत्वम्—

❀ बालक्रीडा ❀

आया । तब उठकर हम दोनोंने मुंह धोया प्रातःकालोचित सब कार्य सम्पन्न किये । तदनन्तर घूमने निकले तो, वहीं एक वर—वधू के घरोंमें कोलाहल सुना । इसके बाद अर्थपति-(वर—) ने बहुत सा धन देकर कुवेरदत्त-(कन्याके पिता-) को आश्वासन दिया और महीनेभर बाद कुलपालिका—(कन्या—) के साथ उसका विवाह निश्चित हो गया । इसके बाद एकान्तमें मैंने धनमित्रको यह शिक्षा दी—मित्र ! तुम यह उत्तम चर्मकी बनी भाथी लेकर अङ्गराजसे मिलो । उनसे कहना कि, आप यह जानते ही होंगे कि, मैं अनेक करोड़ धनके अधिपति वसुमित्रका एक पुत्र धनमित्र हूँ । अब मेरी सब पूँजी समाप्त हो गयी है;

मूलहरत्वमेत्यार्थिवर्गादस्म्यवज्ञातः । मदर्थमेव संवर्धितायां कुलपालिकायां मद्दारिद्र्यदोषात्पुनः कुवेरदत्तेन दुहितर्यर्थपतये दित्सितायामुद्वेगादुज्झितुमसूनुपनगरभवं जरद्वनमवगाह्य कण्ठन्यस्तशस्त्रिकः केनापि जटाधरेण निवार्यैवमुक्तः—'किं ते साहसस्य मूलम्' इति ।

(३६) मयोक्तम्—'अवज्ञासोदर्यं दारिद्र्यम्' इति । स पुनरेवं कृपालुरन्वग्रहीत्—'तात, मूढोऽसि । नान्यत्पापिष्ठतममात्मत्यागात् । आत्मा-

❀ बालविबोधिनी ❀

दारिद्र्यमित्यर्थः । एत्य—प्राप्य—अर्थिवर्गादितिशेषः । अवज्ञातः निःस्वतया तिरस्कृतः मदर्थं मन्निमित्तम् । संवर्धितायां पालितायाम् । कुलपालिकां कन्याम् । दुहितरि—कन्यायाम् । दित्सितायां दातुमिष्टायाम् । उद्वेगात् शोकात् । उज्झितुं त्यक्तुम् । असून् प्राणान् । उपनगरभवं नगरसन्निकटस्थम् । जरद्वनं जीर्णारण्यम् । लोकप्रचाररहितमिति यावत् । अवगाह्य प्रविश्य । कण्ठेति—कण्ठे गलदेशे न्यस्ता निहिता शस्त्रिका छुरिका येन सः । केनापि—अज्ञातनाम्ना । निवार्य निषिध्य । साहसस्य एतादृशोद्योगस्य । मूलं निदानम् ।

(३६) अवज्ञेति—अवज्ञा अवहेलना सोदर्या सहोदरा यस्य तत् । अवज्ञायाः सोदर्यं वन्धुभूतमिति वा । अनादरसहितमित्यर्थः ईदृशं दारिद्र्यमेव मम साहसस्य मूलमिति प्रश्नोत्तरम् । स—जटाधरः । अन्वग्रहीत्—अनुगृहीतवान् मामिति शेषः । तात—वत्स । नान्यदिति—आत्मत्यागाद् आत्महत्यातः अन्यदपरं

❀ बालक्रीडा ❀

इसलिए भिखारी लोग भी मेरा तिरस्कार करते हैं। यद्यपि कुवेरदत्तने मुझे अर्पण करनेके लिए ही अपनी कन्याका पालन किया था, किन्तु, मेरी दरिद्रताके कारण वह उसे अर्थपतिको देना चाहता है। यह समाचार सुनकर मुझे इतना सन्ताप हुआ कि, मैं नगरके समीप ही सुनसान जङ्गलमें चला गया और अपने गलेपर तलवार चलानी चाही, इसी समय एक जटाधारी सन्तने मुझे रोककर कहा—'तुम ऐसा दुःसाहस किस लिए कर रहे हो ?'

(३६) मैंने कहा—'अवज्ञा और दरिद्रता ही मेरे दुःसाहसका कारण है।' उस दयालुने मेरेपर अनुग्रह करके कहा—'हे तात ! तुम बड़े नासमझ हो। आत्मघातसे वढ़कर और कोई पाप नहीं हो सकता। भले लोग अपनी

नमात्मनानवसाद्यैवोद्धरन्ति सन्तः । सन्त्युपाया धनार्जनस्य बहवः नैकोऽपि छिन्नकण्ठप्रतिसन्धानपूर्वस्य प्राणलाभस्य । किमनेन । सोऽस्म्यहं मन्त्रसिद्धः । साधितेयं लक्षग्राहिणी चर्मरत्नभस्त्रिका । चिरमहमस्याः प्रसादात्कामरूपेषु कामप्रदः प्रजानामवात्सम् । मत्सरिण्यां जरसि भूमिस्वर्गमत्रोद्देशे प्रवेद्दयन्नागतः । तामिमां प्रतिगृहाण । मदन्यत्र चेयं

❀ बालविबोधिनी ❀

पापिष्ठतमं पापवत्तरमतिपातकं नास्तीत्यर्थः । आत्मानमिति–सन्तः साधवः आत्मना स्वयमात्मानमनवसाद्य अविनाश्य आत्मानमुद्धरन्ति मुक्तिं लभन्ते । छिन्नकण्ठेति–छिन्नः कर्त्तितो यः कण्ठः तस्य प्रतिसंधानं पुनः संयोगस्तदेव पूर्वं यस्य तथाभूतस्य । प्राणलाभस्य जीवनप्राप्तेः । धनार्जनस्य बहव उपायाः सन्ति किन्तु प्राणलाभस्यैकोऽप्युपायो नास्तीत्यर्थः । अनेन प्राणत्यागेन । साधिता सम्पादिता लब्धेति यावत् । लक्षं ग्राहयतीति लक्षग्राहिणी–लक्षमुद्राप्रसविनी । चिरं दीर्घकालं यावत् । अस्याः चर्मरत्नभस्त्रिकायाः । कामरूपेषु तदाख्यप्रदेशे । कामप्रदः अभीष्टदाता प्रजानामिति शेषः । अवात्सं वसतिमकरवम् । मत्सरिण्यां विद्वेषिण्याम् । जरसि–जरायां वार्द्धके इति यावत् । मयि जराग्रस्ते सतीत्यर्थः । भूमिस्वर्गं भूमौ पृथिव्यां स्वर्ग इव तम् । स्वर्गतुल्यं किमपि स्थानमित्यर्थः । भूमितः स्वर्गगमनार्थं किमपि विलं वा । प्रवेद्दयन्नित्यस्य कर्म । उद्देशे प्रदेशे । इमां चर्मरत्नभस्त्रिकाम् । मदन्यत्र मां विहाय अपरत्र । इयं चर्मरत्नभस्त्रिका । वणिग्भ्यो वैश्येभ्यः । वारमुख्याभ्यः वाराङ्गनाभ्यः । चतुर्थी बहुवच-

❀ बालक्रीडा ❀

आत्माको कुछ कष्ट दिये विना ही अपना निस्तार कर लिया करते हैं । धन अर्जन करनेके बहुतेरे उपाय हैं । लेकिन कटे हुए गलेको जोड़नेका एक भी उपाय नहीं है । सो, ऐसा करनेकी क्या आवश्यकता । मैं एक मन्त्रसिद्ध-पुरुष हूँ । मैंने लाखोंकी सम्पत्ति प्रदान करनेवाली यह चर्मरत्नभस्त्रिका साध ली है । इसकी कृपासे कामरूप देशमें सब लोगोंकी कामनाएं पूर्ण करता हुआ बहुत समयतक रहा हूँ । मत्सर (ईर्ष्या) उत्पन्न करनेवाली वृद्धावस्थामें इस भूमिको स्वर्ग समझकर मैं घूमता–फिरता आ निकला । सो, आप इसे स्वीकार करें । यह बात नहीं है कि, यह (चर्मभस्त्रिका) हमारी ही कामना पूर्ण करती

वणिग्भ्यो वारमुख्याभ्यो वा दुग्धे इति हि तद्गता प्रतीतिः। किन्तु यत्सकाशादन्यायापहृतं तत्तस्मै प्रत्यर्पणीयम्। न्यायार्जितं तु देवब्राह्मणेभ्यस्त्याज्यम्।

(३७) अथेयं देवतेव शुचौ देशे निवेश्यार्च्यमाना प्रातः-प्रातः सुवर्णपूर्णेव दृश्यते। स एष कल्पः' इति बद्धाञ्जलये मह्यमेनां दत्त्वा किमपि ग्रावच्छिद्रं प्राविशत्। इयं च रत्नभूता चर्मभस्त्रिका देवायानिवेद्य नोपजीव्येत्यानीता। परन्तु देवः प्रमाणम्' इति। राजा च नियतमेव वक्ष्यति-'भद्र, प्रीतोऽस्मि। गच्छ। यथेष्टमिमामुपभुङ्क्ष्व' इति। भूयश्च

❀ बालविबोधिनी ❀

नम्। दुग्धे रत्नानि प्रसूते। तद्गता-चर्मरत्नभस्त्रिकाविषयिणी। प्रतीतिः प्रसिद्धिः। यत्सकाशात्-यस्य जनस्य सकाशात्समीपात्। अन्यायापहृतं-अन्यायेनानीतं तद् वस्तु तस्मै-यत्सकाशादानीतमित्यर्थः। त्याज्यं दातव्यम्।

(३७) अथ-त्यागानन्तरम्। इयं-भस्त्रा। शुचौ-पवित्रे। निवेश्य संस्थाप्य। अर्च्यमाना-पूज्यमाना। प्रातः प्रातः-प्रतिप्रातः कालम्। कल्पः प्रकारः। बद्धाञ्जलये-कृतप्रणामाय। एनां भस्त्रिकाम्। ग्रावच्छिद्रं पर्वतविवरम्। रत्नभूता-रत्नस्वरूपा। देवाय भवते। अनिवेद्य अनुक्त्वा। नोपजीव्या न भोक्तव्या। प्रमाणं निर्णायकः। नियतमवश्यमेव। वक्ष्यति कथयिष्यति। यथेष्टम्-स्वेच्छा-

❀ बालक्रीडा ❀

हो, बल्कि, यह तो वैश्यों और वेश्याओंको भी इच्छा पूर्ण करती है। यह बात विख्यात हो चुकी है। लेकिन यह बात भी ध्यानमें रखनी चाहिए कि, यदि अन्यायसे किसीका कुछ अपहरण कर लिया जाय तो, वह उसे लौटा देना चाहिए। और न्यायसंगत रीतिसे जो उपलब्ध हो उसे देवताओं और ब्राह्मणोंके काम खर्च करना उचित है।

(३७) यदि किसी पवित्र स्थानपर रखकर देवताकी भांति इसका पूजन किया जाय तो, प्रतिदिन यह सुवर्णसे पूर्ण दीखेगी। यही इसका विधान है।' अञ्जलि बांधकर खड़े मुझ दाससे यों कह कर वह जटाधारी किसी पर्वतकी कन्दरामें घुस गया। यह रत्नस्वरूपा भस्त्रिका आपको अर्पण किये विना अपने काममें लाना अनुचित जानकर ही आपके समीप ले आया हूँ। अब आप जो उचित

ब्रूहि—'यथा न कश्चिदेनां मुष्णाति तथानुगृह्यताम्' इति । तदप्यवश्यमसावभ्युपैष्यति । ततः स्वगृहमेत्य यथोक्तमर्थत्यागं कृत्वा दिने दिने वरिवस्यमानां स्तेयलब्धैरर्थैर्नक्तमापूर्य प्राह्णे लोकाय दर्शयिष्यसि । ततः कुबेरदत्तस्तृणाय मत्वार्थपतिमर्थलुब्धः कन्यकया स्वयमेव त्वामुपस्थास्यति ।

(३८) अथ कुपितोऽर्थपतिर्व्यवहर्तुमर्थगर्वादभियोक्ष्यते । तं च भूयश्चित्रैरुपायैः कौपीनावशेषं करिष्यावः । स्वकं चौर्यमनेनैवाभ्युपायेन सुप्रच्छन्नं भविष्यति' इति । हृष्टश्च धनमित्रो यथोक्तमन्वतिष्ठत् । तदहरेव

❀ बालविबोधिनी ❀

नुरूपम् । इमां भस्त्रिकाम् । भूयः पुनरपि । मुष्णाति चोरयति । असौ राजा । अभ्युपैष्यति स्वीकरिष्यति । अर्थत्यागं धनदानम् । वरिवस्यमानाम् अर्च्यमानाम् । भस्त्रिकामिति शेषः । स्तेयलब्धैः चौर्येणाधिगतैः । नक्तं रात्रौ । आपूर्य रत्नैः पूरयित्वा । प्राह्णे प्रभाते । तृणाय मत्वा तृणवज्ज्ञात्वा अवज्ञायेत्यर्थः । उपस्थास्यति—आराधयिष्यति ।

(३८) व्यवहर्त्तुं विवादं कर्त्तुम् । अर्थगर्वात् धनमदात् । अभियोक्ष्यते—राजद्वारे अभियोगं करिष्यति । एनम् अर्थपतिम् । चित्रैर्नानाविधैः । स्वकं स्वकीयम् ।

❀ बालक्रीडा ❀

समझें सो, करें । इसपर राजा अवश्य कहेगा—'भद्र ! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ । जाओ और इच्छानुसार इसका उपयोग करो । तब तुम कहना कि, 'कृपा करके श्रीमान् कोई ऐसा प्रबन्ध कर दें कि, जिससे इसे कोई चुरा न सके ।' राजा तुम्हारी बात अवश्य मानेगा । तदनन्तर अपने घर आकर पूर्वोक्त रीतिसे धन दान करके सतत पूजित इस भस्त्रिकाको रातके समय चोरी करके प्राप्त धन से भर दिया करना । और सवेरे लोगोंको दिखाना । तब धनका लोभी कुबेरदत्त अर्थपतिको तृणकी भांति समझकर अपनी कन्याको साथ लेकर तुम्हारे पास आयेगा ।

(३८) इस बातसे अर्थपति क्रुद्ध होगा और धनके गर्वचश वह तुमसे द्वेष करने लगेगा । उसे हम दोनों विविध उपायोंसे कौपीनावशेष कर डालेंगे । चोरीका अपना दुष्कर्म इसी उपाय से छिपेगा ।' धनमित्रने प्रसन्न मनसे मेरे

मन्नियोगाद्विमर्दकोऽर्थपतिसेवाभियुक्तस्तस्योदारके वैरमभ्यवर्धयत्। अर्थलुब्धश्च कुबेरदत्तो निवृत्त्यार्थपतेर्धनमित्रायैव तनयां सानुनयं प्रादित्सत। प्रत्यबध्नाच्चार्थपतिः।

(३९) एष्वेव दिवसेषु काममञ्जर्याः स्वसा यवीयसी रागमञ्जरी नाम पञ्चवीरगोष्ठे संगीतकमनुष्ठास्यतीति सान्द्रादरः समागमन्नागरजनः। स चाहं सह सख्या धनमित्रेण तत्र संन्यधिषि। प्रवृत्तनृत्यायां च तस्यां

❀ बालविबोधिनी ❀

अनेन—पूर्वोक्तेन। सुप्रच्छन्नं गुप्तम्। तदहः तस्मिन् दिने। मन्नियोगात्—ममाज्ञया। विमर्दकः एतन्नामकः कश्चित्। अर्थपतीति—अर्थपतेः सेवायामाराधनेऽभियुक्तः संलग्नः। तस्य अर्थपतेः। उदारके धनमित्रे। वैरं द्वेषम्। अभ्यवर्धयत् वर्धयामास। निवृत्य परावृत्य। अर्थपतेः। सकाशात्। प्रादित्सत—प्रदातुमैच्छत। प्रत्यबध्नात् प्रतिबन्धं विरोधमिति यावत् चकार।

(३९) स्वसा भगिनी। यवीयसी कनिष्ठा। पञ्चवीरगोष्ठे जानपदसभायाम् तत्पञ्चवीरगोष्ठं तु यत्तु जानपदं सद इति कोषसारः। सङ्गीतकं गानादि। यदाह गीतं वाद्यं च नृत्यञ्च त्रिभिः सङ्गीतमुच्यते। इति अनुष्ठास्यति विधास्यति। सान्द्रादरः—तद्गानश्रवणे गाढस्पृहः। समागमत्—सम्मिलितोऽभवत्। अहम्। अपहारवर्मेत्यर्थः। संन्यधिषि सन्निहितोऽभवम्। सन्निपूर्वकाद्धाधातोर्लुङि आत्मनेपदस्योत्तमपुरुषैकवचने रूपम्। प्रवृत्तनृत्यायां प्रारब्धनर्तनायाम्। तस्यां रागमञ्जर्याम्। रङ्गपीठं नृत्यस्थानम्। निरन्तरस्मर्यमाणतया मन्मानसे नृत्यमकरोदिति

❀ बालक्रीडा ❀

कहे हुए सब कार्य सम्पन्न कर दिये। उसी दिन मेरी प्रेरणानुसार विमर्दकने अर्थपतिके यहां नौकरी कर ली और उसमें और धनमित्रमें वैर बढ़ाने लगा। ऐसा करनेसे लोभी कुबेरदत्तका मन अर्थपतिकी ओरसे फिर गया और उसने धनमित्रको ही अपनी कन्या प्रदान की। अर्थपतिने भी इस कार्यमें सभी सम्भव विघ्न डाले।

(३९) इन्हीं दिनों काममंजरीकी छोटी बहिन रागमंजरीका नागरिक सभामें नाच-गाना होनेवाला है, यह सुनकर बड़े आदरके साथ बहुतेरे नागरिक एकत्र हुए। मैं भी अपने मित्र धनमित्रके साथ वहां जा पहुँचा। जब वह गणिका

द्वितीयं रङ्गपीठं समाभून्मनः । तद्दृष्टिविभ्रमोत्पलवनसच्चापाश्रयश्च पञ्चशरो भावरसानां सामग्र्यात्समुदितबल इव मामतिमात्रमव्यथयत् ।

(४०) अथासौ नगरदेवतेव नगरमोषरोषिता लीलाकटाक्षमालाशृङ्खलाभिर्नीलोत्पलपलाशश्यामलाभिर्मामबध्नात् । नृत्योत्थिता च सा सिद्धिलाभशोभिनी–'किं विलासात्, किमभिलाषात्, किमकस्मादेव वा,

❀ बालविबोधिनी ❀

भावः । तद्दृष्टीति–तस्या रागमञ्जर्या दृष्टिविभ्रमः कटाक्ष एवोत्पलवनं नीलकमलमाला तदेव सदुत्तमं चापं धनुराश्रयो यस्य तादृशः । पञ्चशरः कामः । भावरसानां भावानां प्राधान्येनाञ्जितव्यभिचारिणां निर्वेदादीनां रसानां शृङ्गारादीनाञ्च । सामग्र्यात् सम्पूर्णतया । समुदितबलः प्राप्तसामर्थ्यः । अतिमात्रं गाढम् अव्यथयत् अपीडयत् ।

(४०) अथ कामपीडनानन्तरम् । असौ रागमञ्जरी । लीलेति–लीलया विलासेन याः कटाक्षमालाः दृष्टिपंक्तयस्ता एव शृङ्खला बन्धनानि साधनानि ताभिः । नीलोत्पलेति–नीलोत्पलानां यानि पलाशानि पत्राणि तद्वत् श्यामलाभिः कृष्णवर्णाभिः शृङ्खला विशेषणमेतत् । अबध्नात् बबन्ध । नृत्योत्थिता नर्त्तनाद्विरता । सिद्धिलाभशोभिनी--मनोरथप्राप्तिशालिनी । सिद्धमनोरथेति यावत् । विलासाद् विभ्रमात् । अभिलाषात् स्वेच्छया । अकस्मात् विना कारणमित्यर्थः । असकृत् वारं वारम् । मामिति अभिवीक्ष्येत्यस्य कर्म । अनुपलक्षितेन अनवलोकितेन । गुप्तरूपेणेति भावः । अपाङ्गप्रेक्षितेन–कटाक्षावलोकनेन । सविभ्रमेति–

❀ बालक्रीडा ❀

नाचने लगी तब मेरा मन दूसरी रङ्गभूमि बन गया । उसकी सैनके कमलवनका निवासी कामदेव सभी भावों और सभी रसोंसे सम्पन्न एवं बलवान बनकर बहुत बुरी तरह सताने लगा ।

(४०) तदनन्तर नगरमें चोरीके करनेके कारण रोषिता नगरदेवीके सदृश उस सुन्दरी काममंजरीने अपने नीले कमलके पत्रोंके तुल्य आभावाले विलासी श्यामल कटाक्षोंकी शृंखला–(सीकड़ी–) से मुझे बद्ध कर लिया तथा नृत्यसे विरत होकर वह मनोरथप्राप्तिशालिनी रागमञ्जरी अपने विलाससे या अभिलाषसे वा अकस्मात् (विना कारण ही) न मालूम क्यों सखियोंसे भी छिपाकर अपने

न जाने,—असकृन्मां सखीभिरप्यनुपलक्षितेनापाङ्गप्रेक्षितेन सविभ्रमारेचितभ्रूलतमभिवीक्ष्य, सापदेशं च किंचिदाविष्कृतदशनचन्द्रिकं स्मित्वा, लोकलोचनमानसानुयाता प्रातिष्ठत।

(४१) सोऽहं स्वगृहमेत्य दुर्निवारयोत्कण्ठया दूरीकृताहारस्पृहः शिरःशूलस्पर्शनमपदिशन्विविक्ते तल्पे मुक्तैरवयवैरशयिषि। अतिनिष्णातश्च मदनतन्त्रे मामभ्युपेत्य धनमित्रो रहस्यकथयत्—'सखे, सैव धन्या गणिकादारिका, यामेवं भवन्मनोऽभिनिविशते। तस्याश्च मया सु

❀ बालविबोधिनी ❀

सविभ्रमं सविलासं यथा तथा आरेचिते वक्रीकृते भ्रूलते भ्रूद्वयं यस्मिंस्तद्यथा तथा। अभिवीक्ष्य दृष्ट्वा। सापदेशं सकपटम्। किञ्चिदिति-किञ्चिदीषत्—आविष्कृता प्रकटिता दशनचन्द्रिका दन्तप्रभा यत्र तद्यथा तथा। स्मित्वा ईषद्विहस्य। लोकेति—लोकानां जनानां लोचनैर्नेत्रैः मानसैश्चित्तैश्च अनुयाता अनुसृता। जनानां नेत्राणि तामेव अनुसरन्तिस्म मानसानि प्रस्थानानन्तरमपि तामेव ध्यायन्तिस्मेति भावः। प्रातिष्ठत—गृहं प्रति प्रतस्थे।

(४१) दुर्निवारया निवारयितुमशक्यया। दूरीकृताहारस्पृहः—परित्यक्तभोजनाभिलाषः। शिरःशूलेति—शिरःशूलं शिरोवेदना रोगविशेषस्तस्य स्पर्शनमनुभवं अपदिशन् ख्यापयन्। तद्व्याजेनेत्यर्थः। विविक्ते विजने तल्पे शय्यायाम्। मुक्तैः प्रसारितैरवयवैरङ्गैः। अशयिषि शयितोऽभवम्। अतिनिष्णात

❀ बालक्रीडा ❀

अपांगोंसे मुझे बार-बार देखती हुई एवं विलासके व्याजसे अपनी भौंहोंको तरेरती हुई और गुप्तरीत्या (कपटसे) अपनी दन्तप्रभा दिखाती हुई—मुस्कराती हुई—जनोंके नेत्रों और चित्तोंको अपने साथ लेती हुई घरको चली गयी।

(४१) मैं भी अपने गृहमें आकर, उस रागमञ्जरीकी उत्कण्ठाको निवारण करनेमें असमर्थ हो (उसीसे) भोजनादिकी इच्छासे रहित होकर शिरोवेदनाके बहाने एकान्तमें जा करके, हाथ पैर फैला करके शय्यापर सो गया। अतिपटु धनमित्र मुझे कामशास्त्रमें (कामजालमें) फंसे हुए (डूबे हुए) समझकर एकान्तमें आकर कहा—'हे मित्र! वह वेश्याकी कन्या धन्य है, जो तुम्हारे चित्तमें बसी है। जिसके अनुरागविशेषको मैंने देख लिया है। कामदेव अपनी बाणों

लक्षिता भाववृत्तिः। तामप्यचिरादयुग्मशरः शरशयने शाययिष्यति। स्थानाभिनिवेशिनोश्च वामयत्नसाध्यः समागमः। किन्तु सा किल वारकन्यका गणिकास्वधर्मप्रतीपगामिना भद्रोदारेणाशयेन समगिरत—'गुणशुल्काहम्, न धनशुल्का। न च पाणिग्रहणादृतेऽन्यभोग्यं यौवनम्' इति।

(४२) तच्च मुहुः प्रतिषिध्याकृतार्था तद्भगिनी काममञ्जरी माता च माधवसेना राजानमश्रुकण्ठ्यौ व्यजिज्ञपताम्—'देव, युष्मद्दासी राग-

❀ बालविबोधिनी ❀

अतिपटुः। मदनतन्त्रे कामशास्त्रे। रहसि निर्जने। गणिकादारिका—वेश्याकन्या। एवं—अनेन प्रकारेण। भवन्मनः त्वच्चित्तम्। अभिनिविशते आकांक्षति। सुलक्षिता दृष्टा। भाववृत्तिः अनुरागावेशः। अयुग्मशरः कामः। शरशयने शरशय्यायाम्। शाययिष्यति णिजन्तमेतत्। स्थानाभिनिवेशिनोः युक्ताभिलाषवतोः। वां युवयोः। अयत्नसाध्यः अनायाससाध्यः। समागमः सम्मेलनम्। किंतु इत्यनेन किञ्चिद्वैशिष्ट्यं सूचितम्। तदेवाह—गणिकेति—गणिकायाः वेश्यायाः यः शुल्कग्रहणरूपः स्वधर्मस्तस्मात् प्रतीपगामिना विरुद्धेन। भद्रोदारेण—भद्रः कल्याणजनक उदारो महांश्च तेन। आशयेन अभिप्रायेण। समगिरत—प्रतिज्ञातवती। गुणः शुल्कं मूल्यं यस्याः सा। पाणिग्रहणात् विवाहात्। ऋते विना। अन्यभोग्यं अन्येन गुणवन्तमन्तरा अपरेण भोग्यमुपभोग्यम्।

(४२) तच्च—तादृशीं प्रतिज्ञां च। प्रतिषिध्य—निषिध्य। अकृतार्था—असिद्धमनोरथा। अश्रुकण्ठ्यौ रुदन्त्यौ। रूपेति—रूपस्य सौन्दर्यस्यानुरूपं तुल्यं शीलं

❀ बालक्रीडा ❀

शय्यापर, उसे भी शीघ्र सुलायेगा। युक्ताभिलाषियोंका (पारस्परिक प्रेमियोंका) सम्मेलन अनायाससाध्य (सुख-साध्य) होता है। परन्तु, उस वेश्याकन्याने अपने वेश्याधर्मसे विरुद्ध कल्याणजनक उदार आशयवाली प्रतिज्ञा की है। 'मैं गुणशुल्का हूं' 'धनशुल्का' नहीं हूं—मेरा मूल्य गुण होगा, धनपर न विकूंगी और (मेरे) साथ बिना विवाह किये हुए कोई मेरे यौवनका उपभोग नहीं कर सकता है।

(४२) उसकी ऐसी प्रतिज्ञापर उसकी बहिन काममञ्जरी और उसकी माता माधवसेनाने उसे (रागमञ्जरीको) बार-बार समझानेपर असिद्धमनो-

मञ्जरी रूपानुरूपशीलशिल्पकौशला पूरयिष्यति मनोरथानित्यासीदस्मा-कमतिमहत्याशा साद्य मूलच्छिन्ना । यदियमतिक्रम्य स्वकुलधर्ममर्थनिर-पेक्षा गुणेभ्य एव स्वं यौवनं विचिक्रीषते । कुलस्त्रीवृत्तमेवाच्युतमनुतिष्ठा-सति । सा चेदियं देवपादाज्ञयापि तावत्प्रकृतिमापद्येत तदा पेशलं भवेत्' इति ।

(४३) राज्ञा च तदनुरोधात्तथानुशिष्टा सत्यप्यनाश्रवैव सा यदासी-त् , तदास्याः स्वसा माता च रुदितनिर्बन्धेन राज्ञे समगिरताम्—'यदि इ

❀ बालविबोधिनी ❀

स्वभावः शिल्पकौशलं कलानैपुण्यञ्च यस्याः सा । सा आशा । मूलच्छिन्ना समूलं विनष्टा । यद् यतः । इयं रागमञ्जरी । स्वकुलधर्मं गणिकावंशधर्मं धनग्रहणादिरूपम् । अर्थनिरपेक्षा–धनाभिलाषशून्या । यौवनं तारुण्यम् । विचिक्रीषते–विक्रेतुमिच्छति कुलस्त्रीवृत्तं–कुलांगनाचरणम् । अच्युतं अविच्छिन्नम अनुतिष्ठासति अनुष्ठातुमाचरितुमिच्छति । देवपादाज्ञया—भवदनुशासनेन । प्रकृतिं स्वस्थताम् । पेशलं–क्षमम् ।

(४३) तदनुरोधात्–तयोः माधवसेनाकाममंजर्योरनुरोधादाग्रहात् । तथा–त्ताभ्यामुक्तं तेनैव प्रकारेण । अनुशिष्टा उपदिष्टा । अनाश्रवा–अनादृतवचना

❀ बालक्रीडा ❀

रथ होकर रोते हुए राजाको सूचना दी । 'हे देव ! आपकी दासी रागमञ्जरी सौन्दर्यके अनुरूप स्वभाव, कलानिपुणता पायी है । जिससे हम लोगोंको आशा थी, कि, यह हम लोगोंके मनोरथोंको पूरा करेगी, किन्तु, आज आशा समूल विनष्ट हो गयी । क्योंकि, यह रागमञ्जरी अपने धर्मको (धनग्रहण करना आदि गणिकाओंके धर्मको) छोड़कर धनकी अभिलाषासे शून्य हो गुणियोंको अपना तारुण्य वेचनेकी इच्छा करती है । कुलाङ्गनाओंके आचरणको ही अवच्छिन्नरूपसे धारण करना चाहती है । यदि यह रागमञ्जरी आपके आदेशसे भी अपनी (स्वस्थता वृत्तित्व) का आचरण करे तो, वड़ा कल्याण हो' ।

(४३) राजाने, उन लोगोंके आग्रहसे, (रागमञ्जरीको वुलाकर और काममञ्जरी और माधवसेनाने कहा था ।) उसी प्रकारसे, उपदेश किया । तो भी उसने उस उपदेशका अनादर ही किया । जिससे उन लोगोंने अति विलख

श्चिद्भुजङ्गोऽस्मदिच्छया विनैनां बालां विप्रलभ्य नाशयिष्यति स तस्करवद्वध्यः' इति । तदेवं स्थिते धनादृते न तत्स्वजनोऽनुमन्यते । न तु धनदायासावभ्युपगच्छतीति विचिन्त्योऽत्राभ्युपायः' इति । अथ मयोक्तम्—'किमत्र चिन्त्यम् । गुणैस्तामावर्ज्य गूढं धनैस्तत्स्वजनं तोषयावः' इति ।

(४४) ततश्च कांचित्काममञ्जर्याः प्रधानदूतीं धर्मरक्षितां नाम शाक्यभिक्षुकीं चीवरपिण्डदानादिनोपसंगृह्य तन्मुखेन तया बन्धक्या पणब-

❀ बालविबोधिनी ❀

अस्याः रागमञ्जर्याः । रुदितनिर्बन्धेन—अत्यन्तरोदनपूर्वकम् । राज्ञे—राजसमीपे । समगिरतां प्रतिज्ञातवत्यौ । भुजङ्गो विटः । विप्रलभ्य प्रतार्य । नाशयिष्यति—अपवाहयिष्यति । धनादृते—अर्थेन विना । तत्स्वजनः—रागमञ्जर्याः मात्रादिः । धनदाय—वित्तदायिने पुरुषाय । असौ रागमञ्जरी । अभ्युपगच्छति स्वीकरोति । इति—इति हेतोः, अत्र अस्मिन् विषये । मया—अपहारवर्मणा । आवर्ज्य वशीकृत्य । गूढं गुप्तरूपेण ।

(४४) शाक्यभिक्षुकीं बौद्धसन्यासिनीम् । चीवरपिण्डदानादिना वस्त्रखण्डभोजनादिदानेन । उपसंगृह्य वशीकृत्य । तन्मुखेन दूतीमुखेन । बन्धक्या—कुलटया । सहेति शेषः । पणबन्धं शुक्लादिदानव्यवस्थाम् । उदारकात् धनमित्रात् ।

❀ बालक्रीडा ❀

करते हुए राजासे यह कहा कि, (इस विषयमें निम्नांकित आज्ञा होनी चाहिये) 'यदि कोई भी विट, हम लोगोंकी इच्छाके विरुद्ध, इस बालिकाको फुसलाकर इसे प्रतारित करेगा; तो, वह चोरके समान दण्डका भागी होगा ।' ऐसी स्थितिमें विना द्रव्यके उसके स्वजन माता आदि राजी ही न होंगे । और द्रव्यदाताको वह रागमञ्जरी स्वीकार न करेगी । इस विषयमें उचित उपाय विचारिये । यह श्रवण करके मैंने (अपहारवर्माने) कहा—'इसमें विचारना ही क्या है ।' गुणोंसे उस रागमञ्जरीको वश करके गुप्तरूपसे द्रव्य द्वारा उसके स्वजनोंको सन्तुष्ट कर लूंगा ।

(४४) इसके पश्चात्—काममञ्जरी की, बौद्धसंन्यासिनी धर्मरक्षिता नामकी मुख्य दूतीको वस्त्रखण्डान्नदानद्वारा वश करके उसी दूतीके मुखसे उस कुलटा काममञ्जरीसे पणबन्ध' शुल्कादिदान व्यवस्था की कि,—'धनमित्रसे चुराकर चर्म-

न्धमकरवम्—'अजिनरत्नमुदारकान्मुषित्वा मया तुभ्यं देयम्, यदि प्रतिदानं रागमञ्जरी' इति । सोऽहं संप्रतिपन्नायां च तस्यां तथा तदर्थं संपाद्य मद्गुणोन्मादिताया रागमञ्जर्याः करकिसलयमग्रहीषम् । यस्यां च निशि चर्मरत्नस्तेयवादस्तस्याः प्रारम्भे कार्यान्तरापदेशेनाहूतेषु शृण्वत्स्वेव नागरमुख्येषु मत्प्रणिधिर्विमर्दकोऽर्थपतिगृह्यो नाम भूत्वा धनमित्रमुल्लङ्घ्य बह्वतर्जयत् । उक्तं च धनमित्रेण—'भद्र, कस्तवार्थो यत्परस्य हेतोर्मामाक्रोशसि । न स्मरामि स्वल्पमपि तवापकारं मत्कृतम्' इति । स भूयोऽपि तर्जयन्निवाब्रवीत्—'स एष धनगर्वो नाम, यत्परस्य भार्यां शुल्कक्रीतां

❀ बालविबोधिनी ❀

मुषित्वा चोरयित्वा । प्रतिदानमिति–विनिमयरूपेण रागमञ्जरीं ददासि चेदित्यर्थः । सम्प्रतिपन्नायां स्वीकृतायाम् । तदर्थं तत्प्रयोजनं चर्मभस्त्रिकादानरूपम् । मद्गुणोन्मादिताया–मद्गुणमुग्धायाः । करकिसलयं पाणिपल्लवम् । चर्मरत्नस्तेयवादः–चर्मभस्त्रिकाचौर्यवार्त्ताप्रचारः, अभूदिति शेषः । तस्याः रात्रेः । प्रारम्भे—प्रदोषे इत्यर्थः । कार्यान्तरापदेशेन–अन्यकार्यच्छलेन । आहुतेषु–आकारितेषु । नागरमुख्येषु–नगरप्रधानपुरुषेषु । मत्प्रणिधिर्ममगुप्तचरः । अर्थपतिगृह्यः अर्थपतिपक्षीयः । नामेति अलीकसम्भावनायाम् । उल्लंघ्य मर्यादामतिक्रम्य । बहु–अनेकप्रकारम् । अमर्जयत् भीषयामास । अर्थः प्रयोजनम् । हेतोः निमित्तम् । आक्रो

❀ बालक्रीडा ❀

रत्नभस्त्रिका' को मैं तुम्हें दूंगा, यदि तुम मुझे उसके विनिमयमें रागमञ्जरी दो' उस काममञ्जरीके स्वीकार करनेपर मैंने उसे चर्मरत्नभस्त्रिका का प्रवन्ध करके मेरे गुणोंसे उन्मुग्ध (प्रफुल्लित) रागमञ्जरीके पाणिपल्लवोंको ग्रहण किया । जिस रातमें चर्मरत्नभस्त्रिकाकी चौर्यवार्त्ताका प्रकाश होनेवाला था, उसके पूर्वमें ही अन्य कार्यके छलसे नगरके प्रधान पुरुषोंको एकत्र करके मेरे गुप्तचर विमर्दकने जो अर्थपतिका पक्षीय हो गया था, धनमित्रका अनादर किया और अनेक प्रकारसे डराया । धनमित्रने कहा—'इसमें आपका क्या प्रयोजन है जो आप दूसरेके निमित्त मुझे गाली देते हैं । मेरे द्वारा आपका स्वल्प भी उपकार हुआ हो इसका भी मुझे स्मरण नहीं है ।' वह विमर्दक पुनः डरवाते हुए धनमित्रसे बोला–'यही धनका गर्व है, कि दूसरेकी स्त्रीको जो धनके द्वारा

पुनस्तत्पितरौ द्रव्येण विलोभ्य स्वीचिकीर्षसि । ब्रवीषि च—'कस्तवापकारो मत्कृतः' इति, ननु प्रतीतमेवैतत् 'सार्थवाहस्यार्थपतेर्विमर्दको बहिश्चराः प्राणाः' इति ।

(४५) सोऽहं तत्कृते प्राणानपि परित्यजानि । ब्रह्महत्यामपि न परिहरामि । 'ममैकरात्रजागरप्रतीकारस्तवैष चर्मरत्नाहंकारदाहज्वरः' इति । तथा ब्रुवाणश्च पौरमुख्यैः सामर्षं निषिध्यापवाहितोऽभूत् । इयं च वार्ता कृत्रिमार्तिना धनमित्रेण चर्मरत्ननाशमादावेवोपक्षिप्य पार्थिवाय

❀ बालविबोधिनी ❀.

शसि निन्दसि । मत्कृतं मया कृतम् । अपकारमिति स्मरामीत्यस्य कर्म । स विमर्दकः । धनगर्वः अर्थमदः । शुल्कक्रीतां अर्थविनिमयेन गृहीताम् । द्रव्येण अर्थेन । स्वीचिकीर्षसि स्वीकर्त्तुमिच्छसि । प्रतीतं प्रसिद्धम् । बहिश्चराः प्राणाः परममित्रम् ।

(४५) सोऽहं–विमर्दकः । तत्कृते अर्थपतिनिमित्तम् । परिहरामि त्यजामि । ब्रह्महत्यामपि न गणयामीति भावः । एकरात्रेति–एकरात्रं जागरो जागरणमेव प्रतीकारो वैरशुद्धिर्यस्य सः । चर्मरत्नेति–चर्मरत्नस्याहङ्कारः मम चर्मरत्नमस्तीति गर्वः स एव दाहज्वर ऊष्मा । तव चर्मरत्नापहरणं ममैकरात्रजागरणसाध्यं तेन च ते चर्मरत्नाहङ्कारमपनयामीति भावः । ब्रुवाणः वदन् । सामर्षं सक्रोधम् ।

❀ बालक्रीडा ❀

खरीदी गयी थी । फिरसे उसके माता-पिताको धनके लोभमें फंसाकर उसी (परस्त्रीको) स्वीकार करना चाहते हो' । और कहते हो-'मैंने आपका कौनसा अपकार किया है ।' यह तो प्रसिद्ध ही है कि, मैं सार्थवाह अर्थपतिका परममित्र हूँ ।

(४५) 'मैं उसके (अर्थपतिके) लिये प्राणोंको भी त्याग सकता हूँ । ब्रह्महत्याको भी नहीं गिनता हूँ मेरे एक रातका जागरण तुम्हारे चर्मरत्नरूपी अहंकारके दाहज्वरकी वैरशुद्धिके लिये काफी है ।' ऐसी क्रोधपूर्ण वाणी बोलनेवाले विमर्दकको मुख्यनगरवासियोंने मनाकर हटा दिया । राजासे, उस चर्मरत्नभस्त्रिकाकी चोरीकी वार्ताका प्रथम उपक्षेप करके बनावटी पीड़ाका बहाना करनेवाले धनमित्रने निवेदित कर दिया । उस राजाने अर्थपतिको एका-

निवेदिता। स चार्थपतिमाहूयोपह्वरे पृष्टवान् 'अङ्ग, किमस्ति कश्चिद्विमर्दको नामात्र भवतः' इति। तेन च मूढात्मना 'अस्ति देव, परं मित्रम्'। कश्च तेनार्थः' इति कथिते राज्ञोक्तम्—'अपि शक्नोषि तमाह्वातुम्' इति। 'बाढमस्मि शक्तः' इति निर्गत्य स्वगृहे वेशवाटे द्यूतसभायामापणे च निपुणमन्विष्यन्नोपलब्धवान्। कथं वोपलभ्येत स वराकः। स खलु विमर्दको मद्ग्राहितत्वदभिज्ञानचिह्नो मन्नियोगात्त्वदन्वेषणायोज्जयिनीं तदहरेव प्रातिष्ठत। अर्थपतिस्तु तमदृष्ट्वा तत्कृतमपराधमात्मसंबद्धं मत्वा मो-

❀ बालविबोधिनी ❀

अपवाहितः दूरीकृतः। कृत्रिमार्त्तिना–कृत्रिमा स्वाभाविकेतरा आर्त्तिः पीडा यस्य तेन। आदौ प्रथमम्। उपक्षिप्य प्रस्तूय। पार्थिवाय राज्ञे। निवेदिता विज्ञापिता वार्त्तेति शेषः। स पार्थिवः। उपह्वरे एकान्ते। तेन अर्थपतिना। मूढात्मना अल्पबुद्धिना। परमत्यन्तम्। तेन विमर्दकेन। अर्थः प्रयोजनम्। बाढमित्यङ्गीकारार्थकमव्ययम्। वेशवाटे वेश्यागृहमार्गे। निपुणं सावधानम्। स वराकः तुच्छो विमर्दकः। मद्ग्राहितेति–मया ग्राहितं बोधितं तव राजवाहनस्य अभिज्ञानचिह्नं परिचयसूचकं यस्मै सः। मन्नियोगात् मदादेशात्। त्वदन्वेषणाय–तव भवतो राजवाहनस्यान्वेषणमनुसन्धानं तस्मै। तदहः। तस्मिन् दिने। प्रातिष्ठत चलितोऽभवत्। तत्कृतं विमर्दकविहितम्। आत्मसम्बद्धं स्वकीयम्। प्रत्याख्याय विपरीत

❀ बालक्रीडा ❀

न्तमें बुला करके पूछा—'हे अङ्ग! (मित्र!) विमर्दक नामक कोई व्यक्ति तुम्हारे यहां है?' उस मन्द बुद्धिने कहा—'हे देव! मेरा परम मित्र है।' उससे आपका क्या प्रयोजन है?' ऐसा कहनेपर राजाने कहा—'क्या उसे बुला सकते हो?' (अर्थपतिने कहा—) अतिसमर्थ हूं।' इसके पश्चात् अर्थपतिने अपने घर जाकर विमर्दकको वेश्याओंके पथोंमें, जुआखानोंमें, बाजारोंमें खोजवाया। लेकिन, वह सावधान विमर्दक न मिला। मैं उस तुच्छ (हीन) विमर्दकको कैसे पाऊं? वह विमर्दक मेरे द्वारा बोधित कराये हुए परिचय-सूचक चिह्नसे और मेरे आदेशसे आपको (राजवाहनको) खोजनेके लिए उसी दिन ही उज्जयिनी-(उज्जैन-) के लिए प्रस्थान कर चुका था। अर्थपतिने विमर्दकको न पा करके विमर्दकद्वारा किये अपराधको अपने ऊपर मान

हाद्भयाद्वा प्रत्याख्याय पुनर्धनमित्रेण विभाविते कुपितेन राज्ञा निगृह्य निगडबन्धनमनीयत ।

(४६) तेष्वेव दिवसेषु विधिना कल्पोक्तेन चर्मरत्नं दोग्धुकामा काममञ्जरी पूर्वदुग्धं क्षपणीभूतं विरूपकं रहस्युपसृत्य ततोऽपहृतं सर्वमर्थजातं तस्मै प्रत्यर्प्य सप्रश्रयं च बह्वनुनीय प्रत्यागमत् । सोऽपि कथंचिन्निर्ग्रन्थिकग्रहान्मोचितात्मा मदनुशिष्टो हृष्टतमः स्वधर्ममेव प्रत्यप-

---

❀ बालविबोधिनी ❀

मुक्त्वा अस्वीकृत्य वा । विभाविते-प्रमाणीकृते । निगृह्य बलाद् धृत्वा । निगडबन्धनं-पादयोः श्रृङ्खलबन्धनम् । अनीयत प्रापितः ।

(४६) विधिना-अनुष्ठानेन । कल्पोक्तेन-चर्मरत्ननियमोक्तेन । दोग्धुकामा रत्नदोहनेच्छुः । पूर्वदुग्धं-प्राग्गृहीतसर्वस्वम् । क्षपणीभूतं-बौद्धभिक्षुकम् । विरूपके-वसुपालितापरनामकम् । ततस्तस्माद्विरूपकात् । तस्मै विरूपकाय । प्रत्यर्प्य दत्त्वा । सप्रश्रयं-सविनयम् । सप्रत्ययमिति पाठे सशपथम् । प्रत्यागमत् प्रतिगतवती । सोऽपि-विरूपकोऽपि कथंचित् केनापि प्रकारेण । निर्ग्रन्थिकग्रहात्-निर्ग्रन्थिकः क्षपणकाचारः स एव ग्रह उत्पातविशेषस्तस्मात् । निर्ग्रन्थोऽर्हन् क्षपणकः श्रमणो जिन इत्यपीत्यमरः । निर्ग्रन्थस्यायमिति निर्ग्रन्थिको निर्ग्रन्थाचार इत्यर्थः । मदनुशिष्टः मया बोधितः । स्वधर्मं वैदिकधर्मम् । प्रत्यपद्यत-पुनरग्रहीत् । अश्मन्तकशेषम् । अश्मन्तकं चुल्लिः शेषोऽवशिष्टं यस्मिन् तमिति स्वमभ्युद-

❀ बालक्रीडा ❀

करके, मोहसे अथवा भयसे अस्वीकार करनेपर फिरसे धनमित्रके आविष्कृत करने तक राजाने क्रोधसे अर्थपतिको बेड़ी पहिना दी ।

(४६) उन्हीं दिनोंमें चर्मरत्नभस्त्रिकाको नियमोक्त विधिसे दुहनेकी इच्छा करनेवाली काममञ्जरी जो पहले बौद्धभिक्षुक विरूपकका धन ले चुकी थी । उस बौद्धभिक्षुक-(क्षपणक-) को एकान्तमें बुलाया तथा उस बौद्धभिक्षुसे जो धन पहले प्राप्त किया था उस धनको बौद्धभिक्षुको विनयपूर्वक देते हुए तथा उस भिक्षुकी बहुत सम्मान्यता करके पुनः घर पर लौट आयी । वह बौद्धभिक्षु भी किसी प्रकारसे अर्हन् सिद्धान्तकी वेदनाओंसे युक्त हो करके मेरे आदेशोंसे प्रसन्न वदन होकर अपने वैदिक-धर्ममें लौटकर आ गया । काममञ्जरीने भी थोड़े ही

द्यत । काममञ्जर्यपि कतिपयैरेवाहोभिरश्मन्तकशेषमजिनरत्नदोहाशया स्वमभ्युदयमरोत् ।

(४७) अथ मत्प्रयुक्तो धनमित्रः पार्थिवं मिथो व्यज्ञापयत्—'देव, येयं गणिका काममञ्जरी लोभोत्कर्षाल्लोभमञ्जरीति लोकावक्रोशपात्रमासीत्, साद्य मुसलोलूखलान्यपि निरपेक्षं त्यजति । तन्मन्ये मच्चर्मरत्नलाभं हेतुम् । तस्य खलु कल्पस्तादृशः । वणिग्भ्यो वारमुख्याभ्यश्च दुग्धे नान्येभ्य इति हि तद्गता प्रतीतिः । अतोऽमुष्यामस्ति मे शङ्का' इति । सा सद्य एव राज्ञा सह जनन्या समाहूयत ।

❀ बालविबोधिनी ❀

यमित्यस्य विधेयविशेषणम् । अश्मन्तमुद्धानमधिश्रयणीचुल्लिरन्तिकेत्यमरः । स्वमभ्युदयं स्वकीयसम्पदम् । काममञ्जरी सर्वाण्येव स्वधनानि तथा व्यतरद् यथा चुल्लिमात्रमेव गृहेऽवशिष्टमासीदिति भावः ।

(४७) मत्प्रयुक्तः मयोपदिष्टः । पार्थिवं राजानम् । लोभोत्कर्षात् लोभातिशयात् । लोकावक्रोशपात्रं जनापवादभाजनम् । निरपेक्षं निर्विचारं यथा तथा । त्यजति ददाति । तत्—तस्मात्कारणात् । मच्चर्मरत्नलाभं मदीयचर्मरत्नप्राप्तिम् । हेतुं तादृशदानस्य कारणम् । मन्ये—निश्चिनोमि । तस्य चर्मरत्नस्य । कल्पो नियमः । तादृशः पूर्वोक्तप्रकारः । अमुष्यां काममञ्जर्याम् । शङ्का—चौर्यसन्देहः । सा काममञ्जरी । सद्यः तस्मिन्नहनि । जनन्या रागमञ्जरीमात्रा । सहेति सम्बध्यते ।

❀ बालक्रीडा ❀

दिनोंमें अपने अभ्युदयके लिये चर्मरत्नभस्त्रिका दुहनेकी इच्छासे, सब धनको दान करके केवल चूल्हीमात्र अवशिष्टा अपनेको बना डाला ।

(४७) तत्पश्चात् मेरे द्वारा उपदिष्ट धनमित्रने एकान्तमें राजासे कहा—'हे देव ! आजकल जो यह काममञ्जरी वेश्या है । वह अतिशय लोभके कारण लोभमञ्जरीकी तरह जनोंके द्वारा अपवादधारिणी हो रही है । वह आज मूसल, ओखली भी अविचारसे त्याग रही है । उस चर्मरत्नभस्त्रिकाकी दोहनक्रिया इसी रीतिसे है । वेश्या और वनिया ही इसे दुह सकते हैं । अन्य लोग नहीं दुह सकते । इसलिए उसीपर विश्वास होता है कि, उसी वेश्याने मेरी चर्मरत्नभस्त्रिका प्राप्त की है । उसी पर शङ्का है । राजाके द्वारा वह काममञ्जरी माताके साथ तुरत बुलायी गयी ।

(४८) व्यथितवर्णेनेव मयोपह्वरे कथितम्—'नूनमार्ये, सर्वस्वत्यागादतिप्रकाशादाशङ्कनीयचर्मरत्नलाभा । तदनुयोगायाङ्गराजेन समाहूयसे । भूयोभूयश्च निर्बन्धया त्वया नियतमस्मि तदागतित्वेनाहमपदेश्यः । ततश्च मे भावी चित्रवधः । मृते च मयि न जीविष्यत्येव ते भगिनी । त्वं च निःस्वीभूता । चर्मरत्नं च धनमित्रमेव प्रतिभजिष्यति । तदियमापत्समन्ततोऽनर्थानुबन्धिनी । तत्किमत्र प्रतिविधेयम्' इति ।

❀ बालविबोधिनी ❀

(४८) व्यथितवर्णेन—दैन्यपूर्णेन । मया अपहारवर्मणा । उपह्वरे एकान्ते । अतिप्रकाशात्—सर्वजनसंवेद्यात् । आशंकनीयेति—आशङ्कनीयः संशयनीयः चर्मरत्नस्य लाभो यस्याः सा । त्वया चर्मरत्नं लब्धमिति सर्वे संशेरत इति भावः । तदनुयोगाय—तत्प्रश्नं कर्त्तुम् । भूयो भूयः पुनः पुनः । निर्बन्धया साग्रहं पृष्ठया । नियतं अवश्यम् । तदागतित्वेन चर्मरत्नप्राप्तिहेतुत्वेन । अपदेश्यः । वक्तव्यः । चित्रवधः—विचित्रनिधनम् । अस्वाभाविकं मरणमिति भावः । ते भगिनी—रागमञ्जरी । निःस्वीभूता—दरिद्रीकृता । प्रतिभजिष्यति—प्राप्स्यति । समन्ततः सर्वतः । अनर्थानुबन्धिनी—अनर्थोत्पादिका । अत्रास्मिन् विषये । प्रतिविधेयं कर्त्तव्यम् ।

❀ बालक्रीडा ❀

(४८) मैंने (अपहारवर्माने) वनावटी दुःखमयवेष करके काममञ्जरीसे एकान्तमें जा करके कहा—'हे आर्य्ये ! आपने अपना सम्पूर्ण धन दान कर दिया है इस हेतुसे सबको पूर्ण सन्देह हो गया है कि, आपके (काममञ्जरीके) पास चर्मरत्नभस्त्रिका है । उसीके विषयमें पूछनेके लिये राजाने आपको बुलाया है । राजा द्वारा आग्रहपूर्वक बार–बार पूछे जानेपर कि, यह चर्मरत्नभस्त्रिका आपको (काममञ्जरीको) कैसे मिली ? कहां मिली ? आदि तो आप (काममञ्जरी) अवश्य मेरा नाम बतलावेंगी । उसपर मेरा विचित्र रीतिसे निधन हो जायगा' । मेरे (अपहारवर्माके) इस अस्वाभाविक रीतिके मरणसे आपकी वहिन रागमञ्जरी भी जीवित न रहेगी । आप (काममञ्जरी) दरिद्रावस्थामें हैं ही । चर्मरत्नभस्त्रिका—जिससे धनकी प्राप्ति होनेकी आशा है वह भी—धनमित्रको ही मिल जायगी । इस कारणसे यह आपत्ति सर्वथा अनर्थकारिणी है अतः एव इस विषयमें क्या उपाय करना चाहिये ।

(४९) तया तज्जनन्या चाश्रूणि विसृज्योक्तम्—'अस्त्येवैतदस्मद्बालिश्यान्निर्भिन्नप्रायं रहस्यम्। राज्ञश्च निर्बन्धाद्द्विस्त्रिश्चतुर्निह्नुत्यापि नियतमागतिरपदेश्यैव चोरितस्य त्वयि। त्वयि त्वपदिष्टे सर्वमस्मत्कुटुम्बमवसीदेत्। अर्थपतौ च तदपयशो रूढम्। अङ्गपुरप्रसिद्धं च तस्य कीनाशस्यास्माभिः संगतम्। अमुनैव तदस्मभ्यं दत्तमित्यपदिश्य वरमात्मा गोपायितुम्' इति मामभ्युपगमय्य राजकुलमगमताम्। राज्ञानुयुक्ते

❀ बालविबोधिनी ❀

(४९) तया काममञ्जर्या। तज्जनन्या तन्मात्रा च। अस्त्येवैतत्—सत्यमेवैतत्। अस्मद्बालिश्यात्—अस्माकं मूर्खतया। निर्भिन्नप्रायं—बाहुल्येन प्रकाशितम्। निर्बन्धात्। आग्रहातिशयात्। द्विर्द्विवारम्। त्रिस्त्रिवारं चतुश्चतुर्वारम्। द्वित्रिचतुर्भ्यः सुजिति सुच् प्रत्ययः। निह्नुत्य संगोप्य। आगतिः प्राप्तिहेतुत्वम्। चोरितस्य अपहृतस्य पदार्थस्य। अपदिष्टे कीर्त्तिते चोरत्वेनेति शेषः। अवसीदेत्। विनश्येत्। तदपयशः—चर्मरत्नचौर्यापवादः। रूढं प्रसिद्धम्। तस्य अर्थपतेः। कीनाशस्य—क्षुद्रस्य। संगतं मैत्री। अमुना अर्थपतिना। तत्—चर्मरत्नम्। वरं मनागिष्टः। गोपायितुं रक्षितुम्। अभ्युपगमय्य बोधयित्वा। अगमतां गतवत्यौ। अनुयुक्ते—पृष्टे। न्यायः नियमो रीतिर्वा। वेशकुलस्य वेश्याजनस्य दातुरपदेशः

❀ बालक्रीडा ❀

(४९) इस पर वह काममञ्जरी और उसकी माता माधवसेनाने आखोंसे आंसुओंको छोड़ते हुए कहा—'यह सर्वदा सत्य है कि, हम लोगोंकी मूर्खताके कारण ही यह रहस्य बहुलतासे प्रकाशित हो गया है। राजाके अतिशय आग्रहसे यदि आपने दो वार तीन वार चार वार उस बातको छिपानेपर फिर अपहृत (चोरी की हुई) वस्तुके विषयमें कह दिया तो, आप पर ही चोरीका सन्देह हो जायगा। और आपके नाम कथनसे हमारा सारा परिवार विनष्ट हो जायगा। वह चर्मरत्नभस्त्रिका का चौर्यापवाद अर्थपतिके लिए प्रसिद्ध हो चुका है। अङ्गपुरमें यह प्रसिद्धि है ही कि, उस क्षुद्र अर्थपतिके साथ हम लोगोंकी मैत्री है। ऐसी अवस्थामें हम लोग यह कह करके अपनी रक्षाका उपाय ठीक सोचती हैं। कि, यह चर्मरत्नभस्त्रिका मुझे उसी अर्थपतिने दी है। 'ऐसा मुझे समझा करके वे लोग राजदरबारमें चली गयीं। राजा द्वारा पूछे जानेपर—

च 'नैष न्यायो वेशकुलस्य यद्दातुरपदेशः । न ह्यर्थैर्न्यायार्जितैरेव पुरुषा वेशमुपतिष्ठन्ति' इत्यसकृदतिप्रगुह्य कर्णनासाच्छेदोपक्षेपभीषिताभ्यां दग्धबन्धकीभ्यां स एव तपस्वी तस्करत्वेनार्थपतिरग्राह्यत ।

(५०) कुपितेन च राज्ञा तस्य प्राणोपूद्यतो दण्डः । प्राञ्जलिना धनमित्रेणैव प्रत्यषिध्यत—'आर्य, मौर्यदत्त एष वरो वणिजाम् ईदृशेष्वपराधेष्वसुभिरवियोगः । यदि कुपितोऽसि हृतसर्वस्वो निर्वासनीयः पाप

❀ बालविबोधिनी ❀

दातृनामकीर्त्तनम् । नह्यीति-अन्यायार्जितेनार्थेनैव प्रायो वेश्यासु आसक्ता भवन्ति पुरुषा इति भावः । असकृत् पुनः पुनः । अतिप्रगुह्य परिहृत्य निह्नुत्य वा । कर्णयोर्नासायाश्च छेदः कर्त्तनं तस्योपक्षेपः प्रस्तावस्तेनभीषिताभ्यां तर्जिताभ्याम् । यदि पुनर्मिथ्या कथयिष्यसि तदा कर्णनासिकच्छेदं करिष्यामीति भयं प्रदर्शितमिति भावः । दग्धबन्धकीभ्यां भाग्यहीनगणिकाभ्यां काममञ्जरीतज्जननीभ्याम् । तपस्वी-निर्दोषः । अग्राह्यत ग्राहितो राज्ञेति शेषः ।

(५०) तस्य अर्थपतेः । उद्यत ऊर्द्ध्वीकृतः । प्राणदण्डो विहित इत्यर्थः । प्रत्यषिध्यत निवारितः । मौर्यदत्तः-मौर्येण चन्द्रगुप्तेन नीतिशास्त्रकर्त्रा दत्तोऽर्पितः । वणिजां वैश्यानाम् । ईदृशेषु-चौर्यादिषु । असुभिः प्राणैः । अवियोगः अविच्छेदः । एतादृशेनापराधेन वैश्यानां प्राणदण्डो न कर्त्तव्य इति भावः । हृत-

❀ बालक्रीडा ❀

(उन्होंने कहा)—'राजन् ! यह वेश्याओंका धर्म नहीं है कि, वे दाताओंका नाम बतलावें । और यह भी बात नहीं है कि, जो धन वेश्याओंके यहां आता है वह न्यायार्जित ही हो, (क्योंकि) प्रायः अन्यायार्जित धनवाले पुरुष वेश्याओं पर आसक्त होते हैं—, और न्यायार्जित धनवाले ही पुरुष वेश्याओंके यहां आते हों ।' ऐसे वाक्योंसे बार-बार छिपाने पर भी जब भाग्यहीना उन वेश्याओंको कान-नाक काटनेकी धमकी दी गयी तो, उन लोगोंने डर करके निर्दोष अर्थपतिको चोर बतलाया ।

(५०) राजाने क्रोध करके उस अर्थपतिके लिए प्राणदण्डकी आज्ञा दे दी । ऐसी आज्ञापर धनमित्रने हाथ जोड़ करके आज्ञाका प्रतिरोध करते हुए राजासे कहा—'हे आर्य ! नीतिशास्त्रकर्ता महाराज चन्द्रगुप्त मौर्यका ऐसा मत

एषः' इति। तन्मूला च धनमित्रस्य कीर्तिरप्रथत। अप्रीयत च भर्ता। पटच्चरच्छेदशेषोऽर्थपतिरर्थमत्तः सर्वपौरजनसमक्षं निरवास्यत। तस्यैव द्रव्याणां तु केनचिद्वयवेन सा वराकी काममञ्जरी चर्मरत्नमृगतृष्णिकापविद्धसर्वस्वा सानुकम्पं धनमित्राभिनोदितेन भूपेनान्वगृह्यत। धनमित्रश्चाहनि गुणिनि कुलपालिकामुपायंस्त। तदेवं सिद्धसंकल्पो रागमञ्जरीगृहं हेमरत्नपूर्णमकरवम्।

❀ बालविबोधिनी ❀

सर्वस्वः गृहीतधनः। निर्वासनीयः देशान्निष्कासनीयः। तन्मूला—अर्थपतिप्राणरक्षणनिमित्ता। अप्रथत—विख्याताऽभवत्। भर्त्ता स्वामी—राजेत्यर्थः। पटच्चरेति—पटच्चरं जीर्णवस्त्रं तस्य च्छेदः खण्डः शेषोऽवशिष्टो यस्य सः। कौपीनमात्रावशेष इत्यर्थः। तस्यैव अर्थपतेरेव। द्रव्याणां धनानाम्। अवयवेन अंशेन। चर्मरत्नेति—चर्मरत्नस्य मृगतृष्णिकया मरीचिकया अपविद्धं नाशितं सर्वस्वं यया सा। सानुकंपं सकृपम्। धनमित्राभिनोदितेन धनमित्रप्रेरितेन। अन्वगृह्यत अनुगृहीता। गुणिनि प्रशस्ते अहनीत्यस्य विशेषणम्। उपायंस्त परिणीतवान्। सिद्धसंकल्पः सिद्धमनोरथः। अपहारवर्मेति शेषः।

❀ बालक्रीडा ❀

है कि, ऐसे अपराधोंके लिए वैश्योंके प्राणोंको न लेना चाहिये। अपितु, उनका सर्वस्वहरण करके उन्हें राज्यसे निर्वासित कर देना चाहिये।' यदि आप कुपित ही हैं, तो, इसका सर्वस्व अपहरण कर लें और इसे निर्वासित कर दें। यही इसके पापका दुष्परिणाम होगा। अर्थपतिके प्राण बचानेके कारण धनमित्रकी कीर्ति भी फैल गयी। और राजा भी धनमित्रपर प्रसन्न हो गया। कौपीनवेश बना करके सब पुरवासियोंके सामने ही अर्थपतिको राज्य-निर्वासित करा दिया। उसी अर्थपतिके धनका कुछ भाग उस तुच्छा काममञ्जरीको भी दिला दिया जो चर्मरत्नभस्त्रिकाकी दुहनेकी इच्छासे अपना सर्वस्व दान कर चुकी थी। धनमित्रकी प्रेरणासे राजाने प्रसन्नता प्रकट की। धनमित्रने शुभ दिवसमें कुलपालिकाके साथ पाणिग्रहण कर लिया। मैंने (अपहारवर्म्माने) भी इस प्रकारसे सिद्धमनोरथ होने पर रागमञ्जरीके गृहको सुवर्ण, रत्न आदिसे परिपूर्ण कर दिया।

(५१) अस्मिंश्च पुरे लुब्धसमृद्धवर्गस्तथा मुषितो यथा कपालपाणिः स्वैरेव धनैर्मद्विश्राणितैः समृद्धीकृतस्यार्थिवर्गस्य गृहेषु भिक्षार्थमभ्रमत् । न ह्यलमतिनिपुणोऽपि पुरुषो नियतिलिखितां लेखामतिक्रमितुम् । यतोऽहमेकदा रागमञ्जर्याः प्रणयकोपप्रशमनाय सानुनयं पायितायाः पुनःपुनः प्रणयसमर्पितमुखमधुगण्डूषमास्वादमास्वादं मदेनास्पृश्ये । शीलं हि मदोन्मादयोरमार्गेणाप्युचितकर्मस्वेव प्रवर्तनम् । यदहमुपोढमदः 'नगरीमदमेकयैव शर्वर्या निर्धनीकृत्य त्वद्भवनं पूरयेयम्' इति प्रव्यथितप्रियतमा-

❀ बालविबोधिनी ❀

(५१) लुब्धेति लुब्धानां धूर्त्तानां समृद्धानां धनिनां वर्गः समूहः । कपालपाणिः—खर्परहस्तः । स्वैरेव निजैरेव । मद्विश्राणितैर्मया दत्तैः । समृद्धीकृतस्य पुष्टस्य धनीकृतस्येति यावत् । लुब्धानां धनान्यपहृत्य मया याचकेभ्यो दत्तानि । साम्प्रतं लुब्धानां धनेनैव ये समृद्धा याचकास्तेषां गृहेष्वेव ते लुब्धा भिक्षार्थं गच्छन्तीति भावः । अलं समर्थः । अतिनिपुणः अतिचतुरः । नियतिलिखितां विधिनिर्दिष्टां लेखां गणनाम् । अतिक्रमितुमुल्लंघयितुम् । अहमपहारवर्मा । प्रणयकोपप्रशमनाय मानभञ्जनाय । पायितायाः कृतपानायाः सुरामिति शेषः । प्रणयेति—प्रणयेन प्रेम्णा समर्पितं दत्तं यन्मुखमधुनो मुखामृतस्य गण्डूषं तत् । आस्वादमास्वादम्—पुनः पुनरास्वाद्य । णमुल् । मदेन मत्ततया । अस्पृश्ये स्पृष्टोऽभवम् ।

❀ बालक्रीडा ❀

(५१) इस नगरमें जितने भी धूर्त्त धनिक समुदाय थे, उनके धनोंको इस रीतिसे आहरण करा दिया । जिससे उनके पास केवल एक-एक खर्परमात्र हाथोंमें अवशिष्ट रह गया । मेरे द्वारा वितरित किये हुए अपने ही धनको वे लोग उन याचकोंके घरपर मांगते डोलने लगे, जिन्हें मैंने समृद्ध कर दिया था । परम प्रवीण मनुष्य भी ब्रह्माकी लिखित रेखाको मिटाने में सर्वदा असमर्थ ही रहते हैं । एक दिनकी घटना है कि, मैंने रागमञ्जरीके प्रणयकोपके शमनार्थ प्रेमसे उसके मुखके अमृत गण्डूषका बार-बार आस्वादन किया । और मैं प्रेमसे पान करता हुआ, मदोन्मत्त हो गया । मद और उन्माद दोनोंका यही स्वभाव है कि, उनके वशीभूत होनेपर भी मनुष्य पूर्वकी अभ्यस्त उचित प्रवृत्तिकी ओर ही प्रवृत्त होता है । मैं उस कालमें अति मदोन्मत्त था । 'मैं एक ही रातमें इस नगरको निर्धन बना करके

प्रणामाञ्जलिशपथशतातिवर्ती मत्तवारण इव रभसच्छिन्नशृङ्खलः कयापि शाठ्या शृगालिकाख्ययानुगम्यमानो नातिपरिकरोऽसिद्वितीयो रंहसा परेणोदचलम् । अभिपततोऽपि नागरिकपुरुषानशङ्कमेव विगृह्य तस्कर इति तैरभिहन्यमानोऽपि नातिकुपितः क्रीडन्निव मदावसन्नहस्तपतितेन निस्त्रिंशेन द्वित्रानेव हत्वावघूर्णमानताम्रदृष्टिरपतम् ।

❀ बालविबोधिनी ❀

मत्तोऽभवमित्यर्थः । शीलं स्वभावः । मदोन्मादयोः–मदो मत्तता–उन्मादः क्षिप्तता तयोः शीलमित्यनेन सम्बन्धः । अमार्गेण विरुद्धमार्गेण । उचितकर्मसु अभ्यस्तकार्येषु । प्रवर्त्तनं प्रवृत्तिः । एतदेव शीलं मदोन्मादयोः । उपोढमदः अतिशयमत्तः । प्रव्यथितेति–प्रव्यथिता दुःखिता या प्रियतमा रागमञ्जरी तस्याः प्रणामाञ्जलिना यत् शपथशतं तदतिक्रम्य वर्त्तत इति । रभसच्छिन्नशृङ्खलः–रभसेन वेगेन च्छिन्ना शृङ्खला बन्धनरज्जुर्येन सः । नातिपरिकरः स्वल्पपरिजनः । असिद्वितीयः खड्गमात्रसहायः । रंहसा वेगेन । परेण अतिशयितेन । अभिपततः सन्मुखमागच्छतः । विगृह्य युद्धं कृत्वा । अभिहन्यमानस्ताड्यमानः । मदेति–मदेन मत्ततया अवसन्नः शिथिलो यो हस्तस्तस्मात् पतितेन भ्रष्टेन । निस्त्रिंशेन खड्गेन द्वित्रान्–द्वौ वा त्रयो वा परिमाणमेषामिति द्वित्रास्तान् । अवघूर्णेति–अवघूर्णमाना विह्वला ताम्रा रक्तवर्णा दृष्टिर्नयने यस्य सः । अपतम् भूमाविति शेषः ।

❀ बालक्रीडा ❀

तुम्हारे घरको घनसे पाट दूंगा ।' (आदि बक रहा था) । दुःखिता प्रियतमा रागमञ्जरी द्वारा बार-बार हाथ जोड़ करके प्रणाम करनेको तथा शपथादि खानेको न मान करके मैं उस मतवाले हाथीके समान हो गया जो बड़े वेगसे अपनी लोहेकी सीकड़ी आदि तोड़ देता है । कोई शृगालिका नामक दूती जो (मुझे समझाने) मेरे पीछे आ रही थी । उससे अनुगम्यमान मैं स्वल्पपरिजनवाला एक हाथमें तलवार लिये हुए वेगसे मार्गपर आ गया । नगररक्षक पुरुष जो मुझे चोर समझ करके पकड़ने आये उनसे युद्ध करके तथा उनमें से दो-तीनको ताड़ित कर दिया । मैं (अपहारवर्मा) मदके जोशमें विह्वल हो करके शिथिल हाथों युक्त तलवार रहित होकर एवं लाल-लाल नेत्रोंको किये हुए भूमिपर गिर पड़ा ।

(५२) अनन्तरमार्तरवान्विसृजन्ती शृगालिका ममाभ्यांशमगमत् । अवध्ये चाहमरिभिः । आपदा तु मदापहारिण्या सद्य एव बोधितस्तत्क्षणोपजातया प्रतिभया व्यचीचरम्—'अहो, ममेयं मोहमूला महत्यापदापतिता । प्रसृततरं च सख्यं मया सह धनमित्रस्य, मत्परिग्रहत्वं च रागमञ्जर्याः । मदेनसा च तौ प्रोर्णुतौ श्वो नियतं निग्रहीष्येते । तदियमिह प्रतिपत्तिर्यथानुष्ठीयमानया मन्नियोगतस्तौ परित्रास्येते । मां च कदाचिदनर्थादितस्तारयिष्यति' इति कमप्युपायमात्मनैव निर्णीय शृगालिकाम-

❁ बालविबोधिनी ❁

(५२) आर्त्तरवान्–पीडासूचकध्वनीन् । विसृजन्ती–मुञ्चन्ती । रुदतीत्यर्थः । अभ्यांशं समीपम् । अवध्ये वद्धोऽभवम् । वध्यतेः कर्मणि लङ् । मदापहारिण्या—मत्ततानाशिन्या । प्रतिभया—प्रज्ञया । व्यचीचरं विचारितवानस्मि । मोहमूला अज्ञाननिवन्धना । आपतिता आगता । प्रसृततरं प्रसिद्धतरम् । मत्परिग्रहत्वं मद्भार्यात्वम् । मदेनसा मदपराधेन तौ–रागमञ्जरीधनमित्रौ । प्रोर्णुतौ–आच्छादितौ अभिभूताविति यावत् । श्वः–आगामिदिने । निग्रहीष्येते निग्रहं प्राप्स्यतः । प्रतिपत्तिः कर्त्तव्यम् । यया–प्रतिपत्त्या । अनुष्ठीयमानया–क्रियमाणया । मन्नियोगतः–मदादेशात् । तौ–रागमञ्जरीधनमित्रौ । कदाचित्–पक्षान्तरेण । अनर्थात्–विपदः । इतः–अस्मात् । तारयिष्यति

❁ बालक्रीडा ❁

(५२) इसके अनन्तर पीड़ा सूचक शब्दोंको करती हुई शृगालिका भी मेरे पास आ गयी । मैं (अपहारवर्मा) शत्रुओं द्वारा (नगर–रक्षकों द्वारा) बांध लिया गया । उन्मादत्त्वको नाश करनेवाली आपत्तिने तत्क्षणमें ही मुझे बुद्धि दी और उसी उत्पन्न हुई प्रज्ञासे (बुद्धिसे) मैंने विचार किया । 'अहो ! मेरे अज्ञान निवन्धनसे यह विपुला आपत्ति आ पड़ी है । मेरे साथ धनमित्रकी प्रगाढ़ मित्रता और रागमञ्जरीका मेरे साथ पाणिग्रहणक्रिया प्रसिद्धि पा रही हैं । मेरे इस पापसे वे दोनों धनमित्र और रागमञ्जरी अपराधी हो जायेंगे ! (अरे !) कल वे लोग अवश्य पकड़े जायंगे ! इसलिए अब ऐसा कोई कर्त्तव्य करना चाहिये । जिसके करनेसे ये दोनों रागमञ्जरी और धनमित्र मेरे नियोग (आदेश) से बच जायं । क्योंकि—बचे रहनेसे कदाचित् वे लोग मुझे भी बचा सकें ।'

गादिषम्-'अपेहि जरतिके, या तामर्थलुब्धां दग्धगणिकां रागमञ्जरि कामजिनरत्नमत्तेन शत्रुणा मे मित्रच्छद्मना धनमित्रेण संगमितवती, सा हतासि। तस्य पापस्य चर्मरत्नमोषाद् दुहितुश्च ते साराभरणापहा रादहमद्य निःशल्यमुत्सृजेयं जीवितम्' इति।

(५३) सा पुनरुद्घट्टितज्ञा परमधूर्ता साश्रुगद्गदमुदञ्जलिस्तान्पुरुषान्स प्रणाममासादितवती सामपूर्वं मम पुरस्तादयाचत—'भद्रकाः, प्रती क्ष्यतां कंचित्कालं यावदस्मादस्मदीयं सर्वं मुषितमर्थजातमवगच्छेयम्

❀ बालविबोधिनी ❀

उद्धरिष्यति। आत्मनैव स्वयमेव। अपेहि-अपसर दूरङ्गच्छेति यावत्। जरति वृद्धे। सम्बोधनमेतत्। या त्वमित्यर्थः। अजिनरत्नमत्तेन-चर्मरत्नगर्वितेन। मित्र च्छद्मना-कपटमित्रेण। संगमितवती संयोजितवती। सा त्वम्। हता विनष्टा। पापस्य दुरात्मनो धनमित्रस्य। चर्मरत्नमोषात्-चर्मरत्नापहरणात्। दुहितुः कन्या या रागमञ्जर्या इत्यर्थः। सारेति-सारो मूलधनम् आभरणमलङ्कारस्तयोरपहारा दपहरणात्। निःशल्यं निर्बाधमवश्यमिति यावत्। उत्सृजेयं त्यजेयम्।

(५३) सा शृगालिका। उद्घट्टितज्ञा-उद्घट्टितं सूचितं जानातीति तथा प्रत्युत्पन्नमतिरिति भावः। उदञ्जलिर्बद्धाञ्जलिः। तान् ये खलु अपहारवर्मा मबध्नन् आसादितवती प्राप्तवती। सामपूर्वं सविनयम्। भद्रकाः सौम्याः सम्बो

❀ बालक्रीडा ❀

इस प्रकारकी कोई तरकीब अपने आप ही सोच करके शृगालिकासे बोला— 'ओ वृद्धे! दूर भाग। उस धनलोभिनी भाग्यहीना वेश्या रागमञ्जरीसे औ चर्मरत्न-भस्त्रिकासे उन्मत्त मेरे शत्रु धनमित्रसे मित्रता करानेके छलसे तुमने समागम कराया है। सो अब तुम मारी गयी। उस पापी धनमित्रकी चर्मरत्न भस्त्रिकाके चुरानेसे तथा तुम्हारी कन्या रागमञ्जरीके आभूषणोंके अपहरणरूप दोषसे मैं (अपहारवर्मा) आज अवश्य प्राणोंको विसर्जित करूंगा।'

(५३) वह सूचितज्ञा (प्रत्युत्पन्नमतिवाली) परम कुटिलप्रवीणा आँ भर करके और बद्धाञ्जलि होकर एवं प्रणाम करती हुई उन नगररक्षकों गद्गद् वाणीमें विनयके साथ मेरे सामने ही बोली—'हे सौम्यो! आप लो कुछ समय तक प्रतीक्षा करें जिससे मैं इस चोरसे अपने चोरी गये हुए

इति । तथेति तैः प्रतिपन्ने पुनर्मत्समीपमासाद्य 'सौम्य, क्षमस्वास्य दासीजनस्यैकमपराधम् । अस्तु स कामं त्वत्कलत्राभिमर्शी वैरास्पदं धनमित्रः । स्मरंस्तु चिरकृतां ते परिचर्यामनुग्रहीतुमर्हसि दासीं रागमञ्जरीम् । आकल्पसारो हि रूपाजीवाजनः । तद्ब्रूहि क निहितमस्या भूषणम्' इति पादयोरपतत् ।

(५४) ततो दयमान इवाहमब्रवम्—'भवतु, मृत्युहस्तवर्तिनः किं

॥ बालविबोधिनी ॥

धनम् । प्रतीक्ष्यताम्–अपेक्ष्यतां युष्माभिरिति शेषः । अस्मात् तस्करात् । मुषितं अपहृतम् । अवगच्छेयं जानीयाम् । तथा–तथास्तु । तैः पुरुषैः । प्रतिपन्ने स्वीकृते । अस्य दासीजनस्य ममेत्यर्थः । स धनमित्रः । कामं यथेष्टम् । त्वत्कलत्रेति–त्वत्कलत्रं तव भार्यां रागमञ्जरीमित्यर्थः अभिमृष्टवान् धर्षितवान् इति तथा । अत एव वैरास्पदं शत्रुताभाजनम् । चिरकृतां बहुकालविहिताम् । परिचर्यां सेवाम् । आकल्पसारः भूषणप्रधानः । हि यस्मात् । रूपाजीवाजनः–वेश्याजनः । रूपेण आजीवति जीविकां करोतीति रूपाजीवा । निहितं स्थापितम् । अस्या रागमञ्जर्याः ।

(५४) दयमानः कृपां कुर्वन् । भवतु यथावास्तु । श्रूयतां वा । संवादे वर्तमानमिदमव्ययम् । मृत्युहस्तवर्त्तिनः यमहस्तगतस्य । अमुष्या रागमञ्जर्याः ।

॥ बालक्रीडा ॥

धनका पता लगा लूं ।' उन रक्षकोंसे 'तथास्तु' ऐसी स्वीकृति पानेपर (वह) मेरे पास आयी और बोली—'हे सौम्य ! आप इस दासीका एक अपराध क्षमा करें । आपकी भार्या रागमञ्जरीका अभिगामी वह धनमित्र आपका पूर्ण शत्रु रहे । किन्तु, बहुकालसे परिचर्या करनेवाली (अपनी) दासी रागमञ्जरीके ऊपर तो, अनुग्रह करनेकी कृपा करें । 'रूपाजीवा—रूपसे जीवनवृत्ति चलानेवाली—वेश्याओंका अलंकार ही मुख्य होता है । अत एव आप बतायें कि, उस रागमञ्जरीका गहना (आभूषण) कहां पर धरा हुआ है ।' इतना कह करके वह मेरे पैरोंपर गिर पड़ी ।

(५४) तत्पश्चात् मैं (अपहारवर्मा) कृपालु पुरुषके समान बोला—'होगा, मैं (अपहारवर्मा) तो, अधुना, यमराजके हाथोंमें पड़ा हूं । अब मुझे

ममामुष्या वैरानुबन्धेन' इति तद्ब्रुवन्निव कर्णे एवैनामशिक्षयम्—'एव-मेवं प्रतिपत्तव्यम्' इति। सा तु प्रतिपन्नार्थेव जीव चीरम्, प्रसीदन्तु ते देवताः, देवोऽप्यङ्गराजः पौरुषप्रीतो मोचयतु त्वाम्, एतेऽपि भद्रमुखा-स्तव दयन्ताम्, इति क्षणादपासरत्। आनीये चाहमारक्षिकनायकस्य शासनाच्चारकम्।

(५५) अथोत्तरेद्युरागत्य दृष्टतरः सुभगमानी सुन्दरंमन्यः पितुरत्य-यादचिराधिष्ठिताधिकारस्तारुण्यमदादनतिपक्कः कान्तको नाम नागरिक

❀ बालविबोधिनी ❀

वैरानुबन्धेन-शत्रुताचरणेन। एनां शृगालिकाम्। प्रतिपत्तव्यम्-विधातव्यम्। सा शृगालिका। प्रतिपन्नार्था गृहीतार्था यत्तेनोक्तं तत् सर्वं तया बुद्धमिति भंग्या प्रकाशयन्तीत्यर्थः। पौरुषप्रीतः तव पुरुषकारेण सन्तुष्टः। एते नगररक्षकाः। दयन्तां कृपां कुर्वन्तु—रक्षन्तु इति यावत्। अपासरत् अपसृताऽभवत्। आनीये-आनीतः। आरक्षिकनायकस्य नगरपालाध्यक्षस्य। शासनादादेशात्। चारकं कारागृहम्।

(५५) उत्तरेद्युः परदिने। दृप्ततरः अतिगर्वितः। सुभगमानी-आत्मानं सुभगं मन्यतेऽसौ। सुन्दरम्मन्यः सौन्दर्याभिमानी। पितुरत्ययात् पितृमरणात्। अचिरेति-अचिरेण स्वल्पकालेन अधिष्ठितः प्राप्तः अधिकारो येन सः। तारुण्य-

❀ बालक्रीडा ❀

रागमञ्जरीसे शत्रुताका आचरण करनेसे क्या लाभ ?' ऐसा कहते हुए मैंने उस दासीके कानोंमें शिक्षा दी। कि-'इस इस प्रकारसे उपाय करो।' वह शृगा-लिका सब बातोंको ग्रहण करके (मुझे आशीर्वचन देने लगी) आप दीर्घायु हों! आपपर देवतागण प्रसन्न हों। अंगराज नृपति भी आपके पौरुषसे सन्तुष्ट होकर आपको छोड़ दें। ये भद्र पुरुषगण (नगररक्षकगण) आपपर दया करें।' ऐसा कह करके वह एक क्षणमें ही चली गयी। मैं (अपहारवर्मा) नगर-पालाध्यक्षकी आज्ञासे कारागारमें लाया गया।

(५५) इसके अनन्तर दूसरे दिन, अत्यन्त गर्वित अपनेको सुभग मानने वाला सौन्दर्याभिमानी कान्त नामक काराध्यक्ष जो अपने पिताकी मृत्युके कारण थोड़े ही दिनोंसे उस स्थानपर आरूढ़ हुआ था। जिसे यौवनगर्वके हेतुसे उस अधिकारमें स्वायत्त अधिकारकी परिपक्वतामयी जानकारी भी न थी। उसने तिर-

किंचिदिव भर्त्सयित्वा मां समभ्यधत्त—'न चेद्धनमित्रस्याजिनरत्नं प्रतिप्रयच्छसि, न चेद्वा नागरिकेभ्यश्चोरितकानि प्रत्यर्पयसि, द्रक्ष्यसि पारमष्टादशानां कारणानामन्ते च मृत्युमुखम्' इति ।

(५६) मया तु स्मयमानेनाभिहितम्—'सौम्य, यद्यपि दद्यामाजन्मनो मुषितं धनं न त्वर्थपतिदारापहारिणः शत्रोर्मे मित्रमुखस्य धनमित्रस्य चर्मरत्नप्रत्याशां पूरयेयम् । अदत्त्वैव तदयुतमपि यातनानामनुभवेयम् । इयं मे साधीयसी संधा' इति । तेनैव क्रमेण वर्तमाने सान्त्वनतर्जनप्राये

❀ बालविबोधिनी ❀

मदात् यौवनगर्वात् । अनतिपक्वः—अपरिणतः । नागरिकः काराध्यक्षः । माम्—अपहारवर्माणम् । समभ्यधत्त अकथयत् । प्रतिप्रयच्छसि—प्रत्यर्पयसि नागरिकेभ्यः पुरवासिभ्यः । चोरितकानि मुषितानि धनानि । कारणानां यातनानाम् । कारणातु यातना तीव्रवेदनेत्यमरः । मृत्युमुखमित्यस्य द्रक्ष्यसीत्यनेनान्वयः ।

(५६) मया अपहारवर्मणेत्यर्थः । स्मयमानेन ईषद्धास्यं कुर्वता । आजन्मनः—जन्मन आरभ्य । मुषितं चोरितम् । मित्रमुखस्य कपटमित्रस्य । जन्मन आरभ्यैतावत्कालं यन्मया चोरितं तत्सर्वं दातुं शक्नुयां किन्तु धनमित्रस्य चर्मरत्नप्राप्त्याशां न पूरयिष्यामीति भावः । तत्—चोरितधनम् । अयुतं दशसहस्रम् । साधीयसी दृढतरा । सन्धा प्रतिज्ञा । तेनैव क्रमेण—पूर्वोक्तप्रकारेण । वर्त्तमाने—

❀ बालक्रीडा ❀

स्कार करके मुझसे (अपहारवर्मासे) कहा—'यदि धनमित्रकी चर्मरत्न-भस्त्रिका न दोगे ?·········यदि पुरवासियोंके चोरी किये द्रव्यको न लौटाओगे, तो, अठारहो तरह की कारगारकी यातनाओंके भोगनेके पश्चात् मृत्युके मुखमें प्राप्त होगे ।'

(५६) मैंने (अपहारवर्माने) मुस्कराते हुए कहा—'हे सौम्य ! मैंने अपने जीवनभरमें जो कुछ चोरी करके प्राप्त किया है । वह सब तो, मैं दे दूंगा, परन्तु, अर्थपतिकी स्त्रीको हरण करनेवाले अपने (मेरे) कपटी मित्र धनमित्रकी चर्मरत्न-भस्त्रिकासे प्राप्त धनकी प्रत्याशाको पूरी न होने दूंगा । चाहे मुझे ऐसा करनेपर दश हजार कठिन वेदनाओंको क्यों न सहन करना पड़े । यह मेरी दृढ़ प्रतिज्ञा है ।' इसी रीतिसे नित्य सान्त्वना और तिरस्कारके प्रश्न

प्रतिदिनमनुयागव्यतिकरेऽनुगुणान्नपानलाभात्कतिपयैरेवाहोभिर्विरोपितव्रणः प्रकृतिस्थोऽहमासम् ।

(५७) अथ कदाचिदच्युताम्बरपीतातपत्विषि क्षयिणि वासरे हृष्टवर्णा शृगालिकोज्ज्वलेन वेषेणोपसृत्य दूरस्थानुचरा मामुपश्लिष्याब्रवीत्–'आर्य, दिष्ट्या वर्धसे । फलिता तव सुनीतिः । यथा त्वयादिश्ये तथा धनमित्रमेत्याब्रवम्–'आर्य, तवैवमापन्नः सुहृदित्युवाच–'अहमद्य वेशसंसर्गसुलभात्पानदोषाद्बद्धः । त्वया पुनरविशङ्कमद्यैव राजा विज्ञापनीयः–

❀ बालविबोधिनी ❀

चलति सति । सान्त्वनतर्जनप्राये सान्त्वनभर्त्सनबहुले । अनुयोगव्यतिकरे प्रश्नप्रकारे । अनुगुणेति–मदनुकूलभोज्यपेयप्राप्तेः । विरोपितव्रणः उपशान्तनागरिकप्रहारजनितक्षतः । प्रकृतिस्थः स्वस्थः ।

(५७) अच्युतेति—अच्युतस्य कृष्णस्य यदम्बरं वसनं तद्वत् पीता पिङ्गलवर्णा आतपस्य सूर्यालोकस्य त्विट् प्रभा यस्मिन् तस्मिन् । वासर इत्यस्य विशेषणम् । क्षयिणि क्षयं गच्छति । सायंकाले इत्यर्थः । हृष्टवर्णा प्रफुल्लाकृतिः । उपसृत्यागत्य । दूरस्थानुचरा व्यवधानस्थितपरिजना । कारागारे सर्वेषां प्रवेशाभावात् । उपश्लिष्य समीपमागत्य । फलिता सिद्धा । आदिश्ये आदिष्टाऽभवम् । एवम् अनेन प्रकारेण । आपन्नः विपन्नः । सुहृन्मित्रम् । अपहारवर्मेति

❀ बालक्रीडा ❀

विनिमय करते हुए, मेरे अनुकूल भोजनाच्छादन मिलनेसे कुछ दिनोंमें, मेरे घाव, जो नगररक्षकोंसे युद्धमें हो गये थे, अच्छे हो गये मैं स्वस्थ हो गया'।

(५७) स्वस्थ होनेके पश्चात् भगवान् कृष्णके पीले वस्त्रोंकी आभाके समान जिस समय सूर्यकी प्रभा पीली पड़ गयी थी तथा जिस समय सूर्यकी गति कम हो रही थी । ऐसे समय अर्थात् एक दिन सायंकालमें प्रफुल्लाकृतिवाली सुन्दर वेषको धारण किये हुए शृगालिकाने मेरे समीप आ करके, जिस समय कारागारके रक्षितजन कुछ दूर पर थे, कहा—'हे आर्य ! हर्षकी बात है । आपकी सुन्दर नीति सिद्ध हुई । जिस प्रकारसे आपने मुझे समझाया था । उसी प्रकारसे मैंने धनमित्रसे सब बातें समझा दीं । वे बातें इस प्रकारसे हैं–'हे आर्य ! (धनमित्र !) आपके मित्र अपहारवर्माने आपत्तिमें फंसकर ये बातें आपके पास

'देव, देवप्रसादादेव पुरापि तदजिनरत्नमर्थपतिमुषितमासादितम् । अथ तु भर्ता रागमञ्जर्याः कश्चिदक्षधूर्तः कलासु कवित्वेषु लोकवार्तासु चातिवैचक्षण्यान्मया समसृज्यत । तत्संबन्धाच्च वस्त्राभरणप्रेषणादिना तद्भार्यां प्रतिदिनमन्ववर्ते । तदसावशङ्किष्ट निकृष्टाशयः कितवः । तेन च कुपितेन हृतं तच्चर्मरत्नमाभरणसमुद्गकश्च तस्याः । स तु भूयः स्तेयाय

❀ बालविबोधिनी ❀

यावत् । इति वक्ष्यमाणम् । अहमपहारवर्मा । वेशसंसर्गसुलभात् वेशसंसर्गेण गणिकासम्पर्केण सुलभात् सहजसाध्यात् । बद्धो धृतः नागरिकैरिति शेषः । त्वया धनमित्रेण । अविशङ्कं निर्भयं यथा तथा पुरापि पूर्वमपि । आसादितं प्राप्तं मयेति शेषः । भर्त्ता पतिः । अक्षधूर्त्तः द्यूतनिपुणः । कलासु नृत्यगीतादिषु लोकवार्तासु लोकव्यवहारेषु । अतिवैचक्षण्यात्–अतिचतुरतया । समसृज्यत सम्मिलितोऽभवत् । तत्सम्बन्धात् अक्षधूर्त्तसम्पर्कात् । तद्भार्यां अक्षधूर्त्तपत्नीम् । रागमञ्जरीमित्यर्थः । अन्ववर्त्ते सङ्गतोऽभवम् । अशङ्किष्ट जारत्वेन सन्दिग्धवान् । निकृष्टाशयः नीचान्तःकरणः । कितवो धूर्त्तः । आभरणसमुद्गकः भूषण संपुटकः । पेटिकेति यावत् । तस्याः रागमञ्जर्याः । स्तेयाय–चौर्यं कर्त्तुम् । परिचारिकायै सेविकायै शृगालिकायै । पूर्वप्रणयानुवर्त्तिना पूर्वप्रणयमनुस्मृत्येत्यर्थः ।

❀ बालक्रीडा ❀

कहीं है ।'—'मैं (अपहारवर्मा) आज वेश्याके संसर्गदोषसे सहजसाध्य मद्यपानके अपराधमें बंध गया हूं । आप निर्भयतापूर्वक राजासे जाकर आज ही कहें ।'—'हे देव ! (अंगराज !) आपकी (स्वामीकी ही) कृपासे पूर्व–कालमें भी वह चर्मरत्नभस्त्रिका जो अर्थपतिद्वारा चुरायी गयी थी मैंने प्राप्त की थी । अब फिर रागमञ्जरी नामकी वेश्याका पति जो द्यूतनिपुण (जुआमें प्रवीण) है । नाचने–गानेकी कलामें, कवित्वशक्तिमें, लोकव्यवहारमें जो अतिप्रवीण है । उसने (अपनी उपर्युक्त) प्रवीणतासे ही मुझे अपने सम्पर्कमें मिला लिया । अर्थात् मुझसे उसने मित्रता कर ली । उसके सखापनके सम्बन्धसे मैं उसकी स्त्रीके पास रोज कपड़े, गहने आदि भेज देता था । इन उपहारोंके भेजनेके कारण उसने अपने नीचाशयद्वारा मुझे अपनी (द्यूतनिपुणकी) पत्नीका (रागमञ्जरीका) उपपति (जार) समझनेका सन्देह कर लिया है । और इसपर उस

भ्रमन्नगृह्यत नागरिकपुरुषैः। आपन्नेन चामुनानुसृत्य रुदत्यै रागमञ्जरीपरिचारिकायै पूर्वप्रणयानुवर्तिना तद्भाण्डनिधानोद्देशः कथितः। ममापि चर्मरत्नमुपायोपक्रान्तो यदि प्रयच्छेदिह देवपादैः प्रसादः कार्यः' इति। तथा 'निवेदितश्च नरपतिरसुभिर्मामवियोज्योपच्छन्दनैरेव स्वं ते दापयितुं प्रयतिष्यते। तन्नः पथ्यम्' इति।

(५८) श्रुत्वैव च त्वदनुभावप्रत्ययादनतित्रस्नुना तेन तत्तथैव संपादितम्। अथाहं त्वदभिज्ञानप्रत्ययिताया रागमञ्जर्याः सकाशाद्यथेप्सि-

❀ बालविबोधिनी ❀

तद्भाण्डेति—तस्या रागमञ्जर्याः यद्भाण्डं भूषणं तस्य निधानोद्देशः संरक्षणस्थानम्। उपायोपक्रान्तः—उपायेन केनचिदुपक्रान्तो वशीकृतः। इह अस्मिन् विषये। देवपादैः राज्ञा इत्यर्थः। तथा—तेन प्रकारेण। निवेदितः विज्ञापितः। अवियोज्य मत्प्राणदण्डमकृत्वा। उपच्छन्दनैः सान्त्वनावचनैः। स्वं धनम् चर्मरत्नरूपम्। ते—तुभ्यं धनमित्रायेत्यर्थः। नोऽस्माकम्। पथ्यं हितकरमनुकूलमिति शेषः।

(५८) त्वदनुभावप्रत्ययात्—त्वत्प्रतापज्ञानात्। धनमित्रोऽपहारवर्मणः प्रतापं

❀ बालक्रीडा ❀

अक्षधूर्त्त (द्यूतनिपुण) ने कुपित हो करके उस चर्मरत्न—भस्त्रिकाको तथा रागमञ्जरीके आभूषणोंकी पेटीको चुरा लिया। पुनः उसने चोरीकी अभिलाषासे इधर-उधर नगरमें फेरा लगाया और इसी फेरा लगाते समय वह नगररक्षकोंके द्वारा पकड़ लिया गया। उसका अनुसरण करती हुई तथा उसके पीछे रोती हुई रागमञ्जरीकी सेविका शृगाली भी उसी समय वहां आयी। पूर्व प्रेमका संस्मरण करके उसके आभूषणोंकी पेटिका कहां पर है वह स्थान उसने (अपहारवर्माने) उससे कह दिया। मेरी चर्मरत्नभस्त्रिका येनकेनप्रकारेण (किसी उपायसे) दे दे ऐसा उपाय कर देना आपकी (प्रभुकी) प्रसन्नतापर निर्भर है।' ऐसा निवेदन करनेसे अंगराज भी सान्त्वनासे ही मुझसे आपकी (धनमित्रकी) चर्मरत्नभस्त्रिका देनेके लिए आग्रह करेंगे तथा मेरे प्राणोंको भी न लेगें। वे सान्त्वनारूपी आदेश मेरे लिए हितकर होंगे।

(५८) यह श्रवण करके आपके (अपहारवर्माके) प्रतापके अभिमानसे

तानि वसूनि लभमाना राजदुहितुरम्बालिकाया धात्रीं माङ्गलिकां त्वदादिष्टेन मार्गेणान्वरञ्जयम् । तामेव च संक्रमीकृत्य रागमञ्जर्याश्चाम्बालिकायाः सख्यं परमवीवृधम् । अहरहश्च नवनवानि प्राभृतान्युपहरन्ती कथाश्चित्राश्चित्तहारिणीः कथयन्ती तस्याः परं प्रसादपात्रमासम् । एकदा

❀ बालविबोधिनी ❀

सम्यगेव जानातीति हेतोरिति भावः । अनतित्रस्नुना—नातिभीतेन । तेन धनमित्रेण । तत्—अपहारवर्मोक्तम् । तथैव—तत्कथितेनैव प्रकारेण । अहं—शृगालिका त्वदभीति—तव भवतोऽभिज्ञानेन विश्वासोत्पादकचिह्नेन प्रत्ययिताया विश्वासं गमितायाः । राजदुहितुः अङ्गदेशाधिपतिकन्यायाः । धात्रीमुपमातरम् । त्वदादिष्टेन भवत्प्रदर्शितेन । मार्गेणोपायेन । अन्वरञ्जयम् अनुरञ्जितवती—आकृष्टवतीति यावत् । ताम् माङ्गलिकाम् । संक्रमीकृत्य द्वारीकृत्य । अवीवृधम् अवर्धयम् वृधेर्णिजन्ताल्लुङ् । प्राभृतानि—उपायनानि । प्राभृतं तु प्रदेशनम् । उपायनमुपग्राह्यमित्यमरः । चित्रा नानाविधाः । चित्तहारिणीः मनोहारिणीः । परमत्यर्थम् । हर्म्यगतायाः प्रासादस्थितायाः । तस्या अम्बालिकायाः । स्थानस्थितं स्वस्थानस्थितम् । कर्णकुवलयं कर्णोत्पलम् । स्रस्तं भ्रष्टम् । समादधती संयोजयन्ती । प्रमत्तेव—अनवहितेव । प्रच्याव्य कर्णात् भ्रंशयित्वा । उत्क्षिप्य—उत्थाप्य । भूमे-

❀ बालक्रीडा ❀

उस धनमित्रने नातिशय भीतिसे आपके द्वारा कहा हुआ कार्य तथा आपके कथित-प्रकारके अनुसार ही सम्पादित कर दिया । इसके अनन्तर मैंने आपके विश्वसनीय चिह्न द्वारा रागमञ्जरीको सब बातोंका विश्वास करा करके उस रागमञ्जरीसे इच्छानुकूल धन प्राप्त किया । फिर अङ्गदेशाधिपतिकी राजकुमारी अम्बालिकाकी मांगलिका नामक धात्रीसे आपके आदेशानुसार उपायोंसे घनिष्ठता की । उसी मांगलिका धात्रीके द्वारा मैंने रागमञ्जरी और अम्बालिकामें परस्पर परममित्रत्व करा दिया । नित्यप्रति नये-नये उपहारोंको ले जाती हूँ और अनेकों मनोहर कथा-वार्ताओंके कथनसे उस अम्बालिका राजकुमारीकी कृपापात्री बन गयी हूँ । एक दिन प्रासादके ऊपर स्थित अम्बालिका कुमारीका कर्णफूल अपने स्थानपर रहनेपर भी गिरनेवाला है ऐसा कहती हुई मैंने असावधानता करके (पागलके सदृश) गिरा दिया । पुनः पृथिवीसे उठा करके किसी बहानेसे कन्याके अन्तः

च हर्म्यगतायास्तस्याः स्थानस्थितमपि कर्णकुवलयं स्त्रस्तमिति समादधती प्रमत्तेव प्रच्याव्य पुनरुत्क्षिप्य भूमेस्तेनोपकन्यापुरं कारणेन केनापि भवनाङ्गणं प्रविष्टस्य कान्तकस्योपरि प्रवृत्तकुहरपारावतत्रासनापदेशात्प्रहसन्ती प्राहार्षम्।

(५९) सोऽपि तेन धन्यंमन्यः किंचिदुन्मुखः स्मयमानो मत्कर्मप्रहासिताया राजदुहितुर्विलासप्रायमाकारमात्माभिलाषमूलमिव यथा संकल्पयेत्तथा मयापि संज्ञयैव किमपि चतुरमाचेष्टितम्। आकृष्टधन्वना च

❀ बालविबोधिनी ❀

भूतलात्। तेन-कर्णकुवलयेन। उपकन्यापुरं कन्यान्तःपुरसमीपे। केनापि-अज्ञातेनेत्यर्थः। कान्तकस्य-प्रागुक्तकाराध्यक्षस्य। प्रवृत्तेति-प्रवृत्तकुहरस्य प्रारब्धसुरतस्य पारावतस्य कपोतस्य त्रासनापदेशात् भयप्रदर्शनच्छलात्। प्राहार्षं प्रहारं कृतवती।

(५९) सोऽपि-कान्तकोऽपि। तेन कर्णोत्पलप्रहारेण। किञ्चिदुन्मुखः ईषदूर्ध्वमुखः। स्मयमानः ईषद्धसन्। मत्कर्मप्रहासितायाः—मम कर्मणा तत्प्रहाररूपेणाचरणेन प्रहासिताया हास्यं गमितायाः। विलासप्रायं कटाक्षादिबहुलम्। आकारं स्वरूपम्। आत्मेति-आत्मनि स्वस्मिन् योऽभिलाषः आकांक्षा स एव मूलं निदानं यस्य तम्। संकल्पयेत् चिन्तयेत्। मयापि शृगालिकयापि। संज्ञया इङ्गितेन। चतुरमाचेष्टितं-चातुर्यं प्रदर्शितम्। आकृष्टधन्वना-सज्यकार्मुकेण। आकृष्टं धनुर्येनेति

❀ बालक्रीडा ❀

पुरके भवनके आंगनमें प्रवेश करनेवाले कान्तकके (जो कारागाराध्यक्ष था) ऊपर, सुरतक्रीड़ामें प्रवृत्त हुए पारावतों (कबूतरों) को भय दर्शानेके छलसे, फेंककर मार दिया।

(५९) वह कान्तक भी उस कर्णोत्पलके प्रहारसे कृतकृत्य होता हुआ मुस्करा करके कुछ ऊर्ध्वमुख हो करके (देखने लगा)। मेरी कर्मक्रियाओंसे हास्य करनेवाली राजकुमारी (अम्बालिका) के विलासमय रूपको उस कान्तकने अपने लिए समझ लिया और चिन्तित हो गया। मैंने (शृगालिकाने) भी इशारेसे चातुर्य प्रदर्शित कर दिया। (कान्तकने समझा कुमारी मेरे पर राग करके हंसी तथा मैंने उसे और पुष्ट कर दिया)। उस मुग्ध कान्तकको सज्जित धनुषसे युक्त

मनसिजेन विद्धः सन्दिग्धफलेन पत्रिणातिमुग्धः कथंकथमप्यपासरत् । सायं च राजकन्याङ्गुलीयकमुद्रितां वासताम्बूलपट्टांशुकयुगलभूषणावयवगर्भां च वङ्गेरिकां कयाचिद्बालिकया ग्राहयित्वा रागमञ्जर्यां इति नीत्वा कान्तकस्यागारमगमम् ।

(६०) अगाधे च रागसागरे मग्नो नावमिव मामुपलभ्य परमहृष्यत । अवस्थान्तराणि व राजदुहितुः सुदारुणानि व्यावर्णयन्त्या मया स दुर्मतिः सुदूरमुदमाद्यत । तत्प्रार्थिता चाहं त्वत्प्रियाप्रहितमिति ममैव मुखताम्बूलोच्छिष्टानुलेपनं निर्माल्यं मलिनांशुकं चान्येद्युरुपाहरम् । तदी-

❀ बालविबोधिनी ❀

विग्रहः । विद्धो भिन्नः । सन्दिग्धफलेन—विषलिप्तमुखेन । पत्रिणा बाणेन । अपासरत् तत्स्थानान्निरगच्छत् । राजकन्येति—राजकन्याया अङ्गुलीयकेन मुद्रिकया मुद्रितां कृतचिह्नाम् । राजकन्ययैव प्रेषितमिति सूचनार्थं मुद्रया चिह्नितमकरोदिति भावः । वासेति—वासताम्बूलं कर्पूरादिना सुगन्धीकृतं ताम्बूलं पट्टांशुकयुगलं क्षौमवस्त्रयुगं भूषणावयवाः अलंकारभेदाश्च गर्भेऽभ्यन्तरे यस्यास्ताम् । वङ्गेरिकां वेत्रपुटिकाम् । वङ्गेरी वेत्रपुटिकेति वैजयन्ती । झांपीति प्रसिद्धाम् । रागमञ्जर्या इति—पेटिकेयं रागमञ्जर्यर्थं नीयत इति कपटेन कथयित्वेत्यर्थः ।

(६०) अगाधे अतिगभीरे । राग एव सागरस्तस्मिन् । अनुरागसमुद्रे । नावं नौकाम् । उपलभ्य प्राप्य । परमत्यर्थमहृष्यत हृष्टोऽभवत् कान्तक इति शेषः । अवस्थान्तराणि कामदशाविशेषान् । सुदारुणानि सोढुमशक्यानि । व्यावर्णयन्त्या विशेषेण कीर्त्तयन्त्या । स कान्तकः । सुदूरमत्यन्तम् । उदमाद्यत उन्म-

❀ बालक्रीडा ❀

कामदेवने विषलिप्त मुखवाले बाणोंसे ऐसा वेधा कि, वह कान्तक किसी प्रकारसे वहांसे हटनेमें समर्थ हुआ । सायंकालमें मैं, राजपुत्री (अम्बालिका) की अंगूठीकी मोहरके साथ एक बेंतकी पिटारीमें सुगन्धित पान, रेशमी साड़ी और चादर (ओढ़नी) तथा गहने रख करके एक बालिकाद्वारा उस पिटारीको कान्तकके गृह ले गयी ।

(६०) अति गम्भीर (गहिरे) अनुराग समुद्रमें निमग्न हुए उस कान्तकने मुझे नावके समान पा करके अत्यन्त हर्ष प्राप्त किया । राजकुमारी अम्बालिकाकी कामदेवकी अत्यन्त पीड़ितावस्था मेरे द्वारा वर्णन किये जाने पर वह दुर्मति

यानि च राजकन्यार्थमित्युपादाय च्छन्नमेवापोढानि। इत्थं च संधुक्षितमन्मथाग्निः स एवैकान्ते मयोपमन्त्रितोऽभूत्—'आर्य, लक्षणान्येव तवाविसंवादीनि। तथा हि मत्प्रातिवेश्यः कश्चित्कार्तान्तिकः 'कान्तकस्य हस्ते राज्यमिदं पतिष्यति, तादृशानि तस्य लक्षणानि' इत्यादिक्षत्।

(६१) तदनुरूपमेव च त्वामियं राजकन्यका कामयते। तदेकाप-

❀ बालविबोधिनी ❀

त्तीकृतः। तत्प्रार्थिता—तेन कान्तकेन याचिता। त्वत्प्रियेति—तव वल्लभया प्रेरितमित्युक्त्वा। मुखताम्बूलं चर्वितावशिष्टताम्बूलं, उच्छिष्टानुलेपनमुपभुक्तावशिष्टाङ्गरागम्। निर्माल्यं भुक्तावशिष्टपुष्पम्। मलिनांशुकं परिहितवस्त्रम्। अन्येद्युरपरदिवसे। उपाहरम् उपहृतवती तस्मै दत्तवतीत्यर्थः। तदीयानि कान्तकसम्बन्धीनि राजकन्यार्थं राजकन्यायाः कृते नयामीति कथयित्वेत्यर्थः। छन्नमेव गुप्तमेव। अपोढानि त्यक्तानि मयेति शेषः। इत्थमनेन प्रकारेण। संधुक्षितमन्मथाग्निः प्रज्वलितमदनानलः। स कान्तकः। उपमन्त्रितः उपदिष्टः। लक्षणानि हस्तपदादिचिह्नानि। अविसंवादीनि अविरुद्धानि शोभनानीति यावत्। प्रातिवेश्यः—प्रतिवेशी। कार्त्तान्तिकः सामुद्रिकः। आदिक्षत् अकथयत्।

(६१) तदनुरूपं कार्त्तान्तिकादेशानुकूलम्। तदेकापत्यः सा कन्यैव एक-

❀ बालक्रीडा ❀

अत्यन्त उन्मत्त हो गया। जब उस कान्तकने याचना की तब मैंने (शृगालिकाने) उसे यह बताया कि, आपकी वल्लभाने यह चर्वित पान, उपभुक्त किया हुआ लेपन जो देहमें लगाया जाता है कार्यमें उपभोग किये हुए पुष्प और काममें लाये हुए कपड़े दिये हैं। जिन्हें मैं ही अपने पाससे ले गयी थी। उस कान्तकके द्वारा प्रदत्त उपहार राजकन्याके लिये ला गुप्त रीतिसे छिपाकर फेंक दिया। इस रीतिसे उसकी कामाग्नि प्रज्वलित करके उस कान्तकसे ही एकान्तमें एक दिन मैंने उपदेश दिया। 'हे आर्य! (राजकन्याके) पद हस्त आदिके चिह्न आपके अनुकूल हैं। क्योंकि, मेरे सन्निकटमें रहनेवाले एक सामुद्रिकने यह कहा था (आपके विषयमें) कि 'यह राज्य कान्तकको मिलेगा, क्योंकि, उसको ऐसी रेखाएं पड़ी हैं।'

(६१) सामुद्रिकके कथनानुसार यह राजकन्या आपको चाहती है।

त्यश्च राजा तया त्वां समागतमुपलभ्य कुपितोऽपि दुहितुर्मरणभयान्नोच्छेत्स्यति । प्रत्युत प्रापयिष्यत्येव यौवराज्यम् । इत्थं चायमर्थोऽर्थानुबन्धी । किमिति तात, नाराध्यते । यदि कुमारीपुरप्रवेशाभ्युपायं नावबुध्यसे । ननु बन्धनागारभित्तेर्व्याममत्रयमन्तरालमारामप्राकारस्य केनचित्तु हस्तवतैकागारिकेण तावतीं सुरङ्गां कारयित्वा प्रविष्टस्योपवनं

❀ बालविबोधिनी ❀

मद्द्वितीयमपत्यं यस्य सः । तया राजकन्यया । समागतं सम्मिलितम् । उपलभ्य-ज्ञात्वा । नोच्छेत्स्यति तव प्राणान्न नाशयिष्यतीत्यर्थः । प्रत्युत वैपरीत्येन । अयमर्थः । इदं प्रयोजनम् । अर्थानुबन्धी प्रयोजनान्तरसाधकः । तातेति सप्रणयमामन्त्रणम् । आराध्यते सेव्यते क्रियत इति यावत् । नावबुध्यसे न जानासि । ननु तर्हीत्यर्थः बन्धनागारभित्तेः कारागृहकुड्यात् । व्यामत्रयं व्यामः परिमाणविशेषस्तस्य त्रयम् । व्यामो बाह्वोः सकरयोस्ततयोस्तिर्यगन्तरमित्यमरः । अन्तरालं व्यवधानम् । आरामप्राकारस्य–उपवनप्राचीरस्य । हस्तवता क्षिप्रकारिणा । ऐकागारिकेण चौरेण । चौरैका गारिकस्तेनदस्युतस्करमोषकाः इत्यमरः । तावतीं तत्प्रमाणाम् । सुरङ्गां बिलम् । उपरिष्टादग्रे–उपवनप्रवेशानन्तरमित्यर्थः । अस्मदायत्ता अस्मदधीना । रक्षा गुप्तिः । अनन्तरं वयमेव त्वां रक्षिष्याम इति भावः । रक्ततरः अतिशयेनानुरक्तः । तस्याः राजकन्यायाः । परिजनः सेवकवर्गः । रहस्यं

❀ बालक्रीडा ❀

राजाको एक ही सन्तान है अत एव उसके साथ समागमकी वार्ता जानने पर भी यदि राजा क्रोधित भी हुए तो आपको मारेंगे नहीं । क्योंकि, आपके मरणसे कन्यामरण हो जायगा । प्रत्युत, आपको युवराजपदाधिकारी नियुक्त कर देंगे । इस तरहसे यह बात राजरूपार्थसाधिका है । हे तात ! आप इसे आरम्भ क्यों नहीं करते ? यदि आप राजकुमारीके अन्तःपुर (रनिवास) के प्रवेश का मार्ग नहीं जानते हैं तो, (सुनिये) रनिवासके बागकी चहारदीवारी (दीवार) आपके कारागारकी दीवारसे केवल तीन हाथकी दूरी पर है । किसी क्षिप्रकारीमें कुशल चोरसे उतने स्थानकी पृथिवीमें बिल (सुरंग) लगवाओ । (और) प्रवेश करो । पुनः प्रवेश पानेके बाद वहां अन्तःपुरकी रक्षा तो, हम लोगोंके हाथोंमें है । (वहां हम लोग आपकी रक्षा कर लेंगी) । इस राजकुमारीके

तवोपरिष्टादस्मदायत्तैव रक्षा। 'रक्ततरो हि तस्याः परिजनो न रहस्यं भेत्स्यति' इति।

(६२) सोऽब्रवीत्—'साधु भद्रे, दर्शितम्। अस्ति कश्चित्तस्करः खननकर्मणि सगरसुतानामिवान्यतमः। स चेल्लब्धः क्षणेनैतत्कर्म साधयिष्यति' इति। 'कतमोऽसौ, किमिति न लभ्यते' इति मयोक्ते 'येन तद्धनमित्रस्य चर्मरत्नं मुषितम्' इति त्वामेव निरदिक्षत्। 'यद्येवमेहि, त्वयास्मिन्कर्मणि साधिते चित्रैरुपायैस्त्वामहं मोचयिष्यामीति शपथपूर्वं

❀ बालविबोधिनी ❀

गोपनीयम्। भेत्स्यति प्रकाशयिष्यति।

(६२) सः कान्तकः। साधु सम्यक्। सगरसुतानां सगरराजपुत्राणाम्। ये खलु यज्ञीयाश्वान्वेषणाय पृथ्वीं खनित्वा पातालं गतवन्तस्ते खननकर्मणि दक्षतमा इति भावः। लब्धः प्राप्तः स्यादिति शेषः। मया शृगालिकया। त्वामेव भवन्तमेव। अपहारवर्माणमित्यर्थः। निरदिक्षत् निर्दिष्टवान्। यद्येवमेहीत्यादि न त्ववती-त्यन्तं वाक्यं शृगालिकायाः। त्वया—चर्मरत्नचोरेणापहारवर्मणेत्यर्थः अस्मिन् कर्मणि खननकार्ये। तेन चोरेण। अभिसन्धाय प्रतिज्ञां कृत्वा। निगडयित्वा बद्ध्वा। उपक्रान्तः चिकित्सितः उपदेशादिना बोधितः। धाष्टर्यभूमिः धृष्टः। प्रगल्भ

❀ बालक्रीडा ❀

परिजनवर्ग इतने अनुकूल हैं कि, वे रहस्यको कभी प्रकट न करेंगे।

(६२) उस कान्तकने कहा—'हे कल्याणि! आपने ठीक कहा, एक चोर सुरंग लगानेमें राजा सगरके पुत्रोंके सदृश अद्वितीय है (जैसे—राजा सगरके पुत्रोंने पृथ्वी खोद डाली थी उन्हींके समान खोदनेमें निपुण) यदि वह मिल गया तो, यह कार्य क्षणभरमें हो जायगा।' 'वह कहां पर है, क्यों नहीं उसे प्राप्त करते हो?' मेरे ऐसे कहनेपर उस कान्तकने कहा—'जिसने धनमित्रकी उस चर्मरत्नभस्त्रिकाको चुराया है।' ऐसा कहते हुए उसने आपको (अपहारवर्माको) निर्देश किया है। यदि ऐसा है, तो, (शृगालिकाने उससे कहा) कि, आप उससे कहें तुम्हें (अपहारवर्माको) मैं (कान्तक) अनेक प्रकारके यत्नोंसे कारागार (जेलखाने) से मुक्त कर दूंगा, यदि तुम मेरा यह काम (सेंध लगाना) कर दोगे। इस प्रकारसे उससे शपथपूर्वक प्रतिज्ञा करा

तेनाभिसंधाय सिद्धेऽर्थे भूयोऽपि निगडयित्वा 'योऽसौ चोरः स सर्वथोपक्रान्तः, नतु धाष्टर्यभूमिः प्रकृष्टवैरस्तदर्जिनरत्नं दर्शयिष्यति' इति राज्ञे विज्ञाप्य 'चित्रमेनं हनिष्यसि, तथा च सत्यर्थः सिद्धयति, रहस्यं च न स्रवति' इति मयोक्ते सोऽतिहृष्टः प्रतिपद्य 'मामेव त्वदुपप्रलोभने नियुज्य बहिरवस्थितः । प्राप्तमितः परं चिन्त्यताम्' इति ।

(६३) प्रीतेन च मयोक्तम्—'मदुक्तमल्पम्, त्वन्नय एवात्र भूयान् । आनयैनम्' इति । अथानीतेनामुना सन्मोचनाय शपथः कृतः, अहं च

❀ बालविबोधिनी ❀

इत्यर्थः । प्रकृष्टवैरः बद्धवैरः । चित्रं विचित्रेणोपायेनेत्यर्थः । एनं चोरमपहारवर्माणम् । तथा च सति-एवं जाते । अर्थः प्रयोजनम् । स्रवति क्षरति प्रकाशत इति यावत् । मया शृगालिकया । सः कान्तकः । प्रतिपद्य स्वीकृत्य । मां शृगालिकाम् । त्वदुपप्रलोभने-तवापहारवर्मण उपप्रलोभने वशीकरणे । बहिः कारागृहबहिर्भागे । प्राप्तम् अनन्तरकरणीयम् ।

(६३) मया अपहारवर्मणा । मदुक्तमित्यादि-मया यदुक्तं तदल्पमेव किन्तु त्वन्नयस्त्वन्नीतिरेव भूयानधिक इति । एनं कान्तकम् । आनय मत्समीपमिति शेषः । अहमपहारवर्मा । रहस्यानिर्भेदाय रहस्याप्रकाशाय । विनिगडीकृतः

❀ बालक्रीडा ❀

करके कार्य हो जाने पर उसे फिर बांध करके अंगराजसे कहना कि, 'जो चोर जेलखानेमें है, उसे सदा उपदेश ही दिया जाता है । लेकिन, वह बड़ा प्रगल्भ है । धनमित्रसे पूरी शत्रुता रखता है । चर्मरत्नभस्त्रिकाके विषयमें कुछ नहीं कहता है ।' 'इसको विचित्र तरहसे प्राणदण्ड दिया जाय ।' ऐसा होने पर—उसके मर जानेपर—अपना काम भी सिद्ध हो जायगा और रहस्य भी न प्रकाशित होगा । इस रीतिसे, मेरी उक्ति पर, वह अति पुलकित हो गया और (मेरी राय) स्वीकार करके मुझे ही आपको (अपहारवर्माको) वशमें लानेके लिये, नियुक्त किया है । और स्वयं बाहर बैठा हुआ है । इसके विषयमें जो कर्त्तव्य आप समझें सो करें ।'

(६३) मैंने प्रसन्नतापूर्वक कहा—'मैंने तुमसे (शृगालिकासे) थोड़ा कहा था किन्तु, तुम्हारी नीतिने इसे अधिकरूपमें रच दिया । उस कान्तकको

रहस्यानिर्भेदाय विनिगडीकृतश्च स्नानभोजनविलेपनान्यनुभूय नित्यान्धकाराद्भित्तिकोणादारभ्योरगास्येन सुरङ्गामकरवम्। अचिन्तयं चैवम्—'हन्तुमनसैवामुना मन्मोचनाय शपथः कृतः। तदेनं हत्वापि नासत्यवाददोषेण स्पृश्ये' इति। निष्पततश्च मे निगडनाय प्रसार्यमाणपाणेस्तस्य पादेनोरसि निहत्य पातितस्य तस्यैवासिधेन्वा शिरो न्यकृन्तम्। अकथयं च शृगालिकाम्—'भण भद्रे, कथंभूतः कन्यापुरसंनिवेशः ? महानयं

❀ बालविबोधिनी ❀

वन्धनान्मोचितः। अनुभूय कृत्वा। नित्यान्धकारात् सततान्धकाराच्छन्नात्। उरगास्येन—सर्पमुखाकारास्त्रविशेषेण। हन्तुमनसा मां हन्तुकामेन। अमुना कान्तकेन। असत्यवाददोषेण मिथ्यावचनरूपापराधेन। स्पृश्ये स्पृष्टो भवामि। निष्पततः कारागृहान्निर्गच्छतः। प्रसार्यमाणपाणेः प्रसारितकरस्य। तस्य कान्तकस्य। पादेन मम चरणेन। पातितस्य भूमाविति शेषः। तस्यैव कान्तकस्यैव। असिधेन्वा छुरिकया। न्यकृन्तम्। अच्छिन्दम्। भण—कथय। कथम्भूतः कीदृशः। कन्यापुरसन्निवेशः कन्यान्तःपुरसंस्थानम्। प्रयासः श्रमः माभूत्—न भवतु। मा योवे

❀ बालक्रीडा ❀

वुला लाओ।' कान्तकके आनेके अनन्तर उसने मेरे लिये छोड़ देनेकी शपथ की। मैंने रहस्य न प्रकट करनेकी शपथ खायी। शपथादिके वाद उसने मेरी वेड़ियां खोल दी। स्नान, भोजन, तैल, इत्र आदिसे मेरा स्वागत सम्मान किया। मैंने भी सदा अन्धेरी रहनेवाली दीवालके कोनेमें सर्पमुखाकार कुदालसे खोदना प्रारम्भ किया और सेंध लगा दी। मनमें मैंने विचार किया कि 'इस कान्तकने मुझे मार डालनेकी इच्छासे ही यह शपथ, मुझे छोड़नेके बहाने से ली है। यदि मैं ही इसे मार डालूं, तो, मुझे मिथ्या वचनरूपापराधदोष न लगेगा।' (ऐसा सोच करके) ज्यों ही कारागाराध्यक्ष कान्तकने मुझे बांधने करनेके लिए हाथोंको वढ़ाया त्यों ही मैंने उसकी छातीमें लात मारी और उसे पटक दिया। उसके गिर पड़ने पर मैंने उसीकी छूरीसे उसका सिर काट डाला। शृगालिकासे कहा—'हे भद्रे ! वताओ, राजकुमारीका अन्तःपुरका कैसा सन्निवेश (स्थान) है। जिससे यह महान परिश्रम व्यर्थ न होवे। अर्थात्—ठी

प्रयासो मा वृथैव भूत्। अमुत्र किंचिच्चोरयित्वा निवर्तिष्ये' इति।

(६४) तदुपदर्शितविभागं चावगाह्य कन्यान्तःपुरं प्रज्वलत्सु मणिप्रदीपेषु नैकक्रीडाखेदसुप्तस्य परिजनस्य मध्ये महितमहार्घरत्नप्रसुप्तसिंहाकारदन्तपादे हंसतूलगर्भशय्योपधानशालिनि कुसुमलवच्छुरितपर्यन्ते पर्यङ्कतले दक्षिणपादपार्ष्ण्यधोभागानुवलितेतरचरणाग्रपृष्ठम्, ईषद्विवृत-

❀ बालविबोधिनी ❀

लुङ् अडागमप्रतिषेधश्च। अमुत्र कन्यान्तः पुरे। निवर्त्तिष्ये परावर्त्तितो भविष्यामि।

(६४) तदुपदर्शितविभागं शृगालिकाकथितप्रदेशम्। इदं कन्यान्तःपुरस्य विशेषणम्। अवगाह्य प्रविश्य। मणिप्रदीपेषु रत्नदीपेषु। नैकेति—नैकाभिः अनेकविधाभिः क्रीडाभिः केलिभिर्यः खेदः परिश्रमस्तेन सुप्तस्य निद्रितस्य। महितेति—महितैरुत्कृष्टैर्महार्घरत्नैर्बहुमूल्यहीरकादिभिः प्रसुप्ताः खचिताः सिंहाकाराः सिंहाकृतयो दन्तपादा गजदन्तनिर्म्मिताः पर्यङ्कपाददेशा यस्य तस्मिन्। हंसेति—हंसवत् शुभ्रास्तूलगर्भे-अभ्यन्तरे ययोस्तादृशाभ्यां शय्योपधानाभ्यामास्तरणोपवर्हाभ्यां शालते शोभते यत्तस्मिन्। कुसुमेति—कुसुमानां पुष्पाणां लवैर्लेशैश्छुरितो व्याप्तः पर्यन्तः प्रान्तभागो यस्य तस्मिन्। एतानि पर्यङ्कतलविशेषणानि। पर्यङ्कतले खट्वायाम्। दक्षिणेति—दक्षिणपादस्य पार्ष्णेः पश्चाद्भागस्याधोभागेन निम्नप्रदेशेन अनुवलितं युक्तं इतरचरणस्य वामपादस्याग्रपृष्ठमग्रभागोपरितलं यस्मिन् कर्मणि

❀ बालक्रीडा ❀

रास्ता बतादो, तो मैं वहां चला जाऊं। वहांसे कन्यान्तःपुरसे कुछ चुरा करके लौटना चाहिये।'

(६४) शृगालिकाद्वारा बताये हुए प्रदेशसे कन्यान्तःपुरमें पहुंच करके, (वहांका जो दृश्य देखा उसका वर्णन इस प्रकार है) देखा कि, रत्नप्रदीप प्रकाशित हो रहा है। अनेकों रीतिकी केलियों द्वारा उत्पन्न परिश्रमसे सोते हुए परिजनोंके बीचमें बहुमूल्य रत्न हीरकादिसे जटित सिंहाकार (सिंहके आकारवाले) हाथी दांतके पैरोवाले हंसके समान सफेद आस्तरण (चांदनी, तकिया तोषक) आदिसे शोभित फूलोंके किसलयोंसे परिव्याप्त पलंगके ऊपर दाहिने पैरके ऊपर बायें पैरका पिछला हिस्सा जिसमें थोड़ी मनोहर गुल्फोंकी टेहुनेकी सन्धि प्रकटित है। थोड़े संकुचित एवं परस्पर सटे हुए जंघास्तम्भोंसे युक्त और थोड़े संकुचित

मधुरगुल्फसंधि, परस्पराश्लिष्टजङ्घाकाण्डम्, आकुञ्चितकोमलोभयजानु, किंचिद्वेल्लितोरुदण्डयुगलम्, अधिनितम्बस्रस्तमुक्तैकभुजलताग्रपेशलम्, अपाश्रयान्तनिमिताकुञ्चितेतरभुजलतोत्तानतलकरकिसलयम्, आभुग्नश्रोणिमण्डलम्, अतिश्लिष्टचीनांशुकान्तरीयम्, अनतिवलिततनुतरोदरम्, अतनुतरनिःश्वासारम्भकम्पमानकठोरकुचकुड्मलम्, आतिरश्चीनबन्धुरशि-

※ बालविबोधिनी ※

तद् यथा—तथेति इदं वक्ष्यमाणानि च क्रियाविशेषणानि । ईषदिति—ईषद्विवृतः किञ्चित्प्रकटितो मधुरो मनोहरो गुल्फयोर्घुटिकयोः सन्धिः संयोगो यस्मिन् तद् यथा तथा । परस्परेति-परस्परमन्योन्यमाश्लिष्टः संलग्नो जंघाकाण्डो यस्मिंस्तद् यथा तथा । आकुञ्चितेति—आकुञ्चिते ईषद्वक्रीकृते कोमले उभयजानुनी यस्मिंस्तद् यथा तथा । किञ्चिदिति किञ्चिद्वेल्लितमीषत्सङ्कुचितमूरुदण्डयुगलं यस्मिंस्तद् यथा तथा । अधिनितम्बेति—अधिनितम्बं नितम्बस्योपरिस्रस्तं शिथिलं यथा स्यात्तथा मुक्तं निःक्षिप्तं यदेकस्या भुजलताया अग्रमग्रभागस्तेन पेशलं मनोज्ञं यथा तथा । अपाश्रयेति—अपाश्रयस्य पर्यङ्कशिरोभागस्यान्ते प्रान्ते निमितं निःक्षिप्तम् आकुञ्चितेतरायाः प्रसारिताया भुजलताया बाहुवल्ल्याः, उत्तानं तलं यस्य तादृशः करः किसलयमिव करकिसलयं यस्मिंस्तद् यथा तथा । आभुग्नश्रोणिमण्डलं ईषद्वक्रीकृतनितम्बम् । अतिश्लिष्टेति—अतिश्लिष्टं अतिशयेन शरीरलग्नं चीनांशुकस्य चीनदेशीयसूक्ष्मवस्त्रस्यान्तरीयमधोवस्त्रं यस्मिंस्तद् यथा तथा । अनतीति—अनतिवलितमीषत्कम्पितं तनुतरमतिक्षीणमुदरं कुक्षिदेशं यस्मिंस्तद्यथा तथा । अतनुतरेति—अतनुतरेण दीर्घेण निःश्वासारम्भेण कम्पमाने चंचले कठोरे अति दृढे कुचकुड्मले स्तनमुकुले यस्मिंतद्यथा तथा निद्रिताया निःश्वासाधिक्यादतनुतरेणेति । आतिरश्चीनेति आतिरश्चीने ईषद्वक्रे बन्धुरे

※ बालक्रीडा ※

कोमल दोनों जानुओं (घुटनों) से युक्त, एवं कुछ संकुचित उरु दण्ड (जाघों) परिव्याप्त तथा नितम्ब भागके ऊपर एक शिथिल लतारूपी हाथ बड़ा सुन्दर दीख रहा है । पलंगके शिरोभागमें संकुचित करके धरा हुआ दूसरा लतारूपी हाथ जिसका तल (हथेली) उत्तान है । पल्लवके समान सुन्दर

रोधरोद्देशदृश्यमाननिष्टप्ततपनीयसूत्रपर्यस्तपद्मरागरुचकम्, अर्धलक्ष्याधरकर्णपाशनिभृतकुण्डलम्, उपरिपरावृत्तश्रवणपाशरत्नकर्णिकाकिरणमञ्जरीपिञ्जरितविषमव्याविद्धाशिथिलशिखण्डबन्धम्, आत्मप्रभापटलदुर्लक्ष्यपाटलोत्तराधरविवरम्, गण्डस्थलीसंक्रान्तहस्तपल्लवदर्शितकर्णावतं-

❀ बालविबोधिनी ❀

उन्नतावनते शिरोधरोद्देशे ग्रीवाप्रदेशे दृश्यमानं लक्ष्यमाणं निष्टप्ते गलिते तपनीयसूत्रे सुवर्णतन्तौ पर्यस्तं लम्बमानं पद्मरागरुचकं पद्मरागनिर्मितग्रीवाभरणविशेषो यस्मिंस्तद् यथा तथा। अर्धलक्ष्येति–अर्धलक्ष्यः अर्धदृश्यमानः अधरः अधोभागो यस्य तादृशमिति कुण्डलविशेषणं कर्णपाशे शोभनकर्णे निभृतं निश्चलं कुण्डलं यस्मिन् कर्मणि तद् यथा तथा। उपरीति–उपरि उद्र्ध्वदेशे परावृत्तः समुत्तानो यः श्रवणपाशः कर्णपाशस्तस्य रत्नकर्णिकायाः रत्ननिर्मितकर्णाभरणस्य किरणमञ्जरीभिर्मयूखमालाभिः पिञ्जरितः पिशङ्गीकृतः विषमव्याविद्धः। विषमरूपेण वद्धः वेणीकृत इति यावत् अतएवाशिथिलः अस्रस्तः शिखण्डवन्धः केशकलापो यस्मिंस्तद्यथा तथा। आत्मप्रभेति–आत्मनः स्वस्यैव प्रभापटलेन कान्तिनिचयेन दुर्लक्ष्यमविभाव्यं पाटलस्य श्वेतरक्तस्य उत्तराधरस्योष्ठस्य विवरं छिद्रं यस्मिंस्तद्यथा तथा। गण्डस्थलीति–गण्डस्थल्यां कपोलदेशे संक्रान्तो मिलितो यः करपल्लवः करकिसलयं तेन दर्शितं प्रकटितं कर्णावतंसस्य कर्णभूषणस्य कृत्यं कार्यं यस्मिंस्तद्यथा तथा। कपोलसंक्रान्तकर एव

❀ बालक्रीडा ❀

दिखायी दे रहा है। जिसने अपना नितम्बस्थल थोड़ा संकुचित कर लिया है। जिसके शरीरके अधोभागमें अतिशय करके चीन देशके वारीक रेशमी वस्त्र शोभा दे रहे हैं। जिसका अतिक्षीण अक्षि प्रदेश कुछ कम्पित हो रहा है। दीर्घ निश्श्वासोंके आनेसे कठोर कुचमंडल कम्पमान हो रहा है। (क्योंकि सोनेमें सांस वेगसे चलती है) जिसके गलेमें पद्मराग मणिकी माला है जो सुवर्णके तारोंसे गूंथी हुई कुछ इधर-उधर तिरछी पड़ी हुई है। जिसके कानोंका आधा हिस्सा दिखाई दे रहा है ऐसे सुन्दर कानोंमें जिसने कुण्डल धारण किये हैं। जिसने अपने कानोंके ऊपरी भागमें रत्ननिर्मित्त कर्णिकाभूषण धारण किया है जिसकी किरण जालोंकी प्रभा से, विषम रूपसे बांधे गये जिससे कुछ ढीले भी

सकृत्यम्, उपरिकपोलादर्शतलनिषक्तचित्रवितानपत्रजातजनितविशेषकक्रियम्, आमीलितलोचनेन्दीवरम्, अविश्रान्तभ्रूपताकम्, उद्भिद्यमानश्रमजलपुलकभिन्नशिथिलचन्दनतिलकम्, आननेन्दुसंमुखालकलतं च विश्रब्धप्रसुप्तामतिधवलोत्तरच्छदनिमग्नप्रायैकपार्श्वतया चिरविलसनखेदनि-

❀ बालविबोधिनी ❀

तस्याः कर्णपल्लवोऽभवदिति भावः। उपरीति–उपरिकपोलः उत्तानगण्डप्रदेशः स एवादर्शो मुकुरस्तस्य तले निषक्तेन प्रतिविम्बितेन चित्रवितानस्य नानावर्णोल्लोचस्य पत्रजातेन पत्राकारचिह्नसमूहेन जनिता उत्पादिता विशेषकक्रिया तिलकक्रिया यस्मिंस्तद्यथा तथा। आमीलितेति–आमीलिते निमीलिते लोचने इन्दीवरे नीलोत्पले इव यस्मिंतद्यथा तथा। अविश्रान्तेति–अविश्रान्ते निश्चले भ्रुवौ पताके इव यस्मिन् तद्यथा तथा। उद्भिद्येति–उद्भिद्यमानेन निर्गच्छता श्रमजलपुलकेन धर्मजनितरोमाञ्चेन भिन्नं मिश्रितमत एव शिथिलं कपालाद् गलितं चन्दनतिलकं यस्मिंस्तद्यथा तथा। आननेति–आननेन्दोर्मुखचन्द्रस्य सम्मुखे अलकाश्चूर्णकुन्तला लता इव यस्मिंस्तद्यथा तथा। अत्रालकानां कलङ्कसाम्यं वोद्धव्यम्। विश्रब्धसुप्तां निःशङ्कनिद्रिताम्। अतिधवलेति–अतिधवलेऽतिशुभ्रे उत्तरच्छदे आस्तरणे निमग्नप्रायः वाहुल्येन मग्नः एकः पार्श्वो यस्या

❀ बालक्रीडा ❀

पड़ गये हैं ऐसे केशकलापोंकी, शोभा (कृष्णत्व) को पीला बना दिया है। जिसने अपनी कान्तिके पुञ्जसे पाटल (श्वेतरक्त) अपने ओष्ठविवरको दुर्लक्ष्य बना दिया है। जिसने गालोंपर रखे हुए पल्लवरूपी हाथोंसे अपने कर्णावतंसके कृत्यको प्रकट कर दिया है। (उसके कपोल संक्रान्त हाथ ही कर्णपल्लव थे)। जिसका ऊपरी कपोलप्रदेश ही मानो, सीसा हो, उसी सीसेके तलपर प्रतिविम्बित अनेकवर्णोंके उल्लोच वही मानो पत्र हों उसीपर उत्पन्न पत्राकार रूपमें समूहके जो तिलकक्रिया (ऐसी) जिसने अपने नीले कमलके समान नेत्र बन्द कर लिये हैं। जिसकी निश्चल भौंहें झण्डेके समान हैं। जिसके तिलकका चन्दन धर्मजनित रोमाञ्चसे उत्पन्न पसीनेके जलसे कुछ आर्द्र होकर बहने लगा। मुखचन्द्रके सम्मुख चूर्णकुन्तल वाल लताके समान है। अत्यन्त सफेद आस्तरणके ऊपर एक करवटसे घोर निद्रामें सोयी है। और जो अत्यन्त विस्फुरणके

श्चलां शरदम्भोधरोत्सङ्गशायिनीमिव सौदामनीं राजकन्यामपश्यम् ।

(६५) दृष्ट्वैव स्फुरदनङ्गरागश्चकितश्चोरयितव्यनिस्पृहस्तयैव तावच्चोर्यमाणहृदयः किंकर्तव्यतामूढः क्षणमतिष्ठम् । अतर्कयम् च—'न चेदिमां वामलोचनामाप्नुयां न मृष्यति मां जीवितुं वसन्तबन्धुः । असंकेतितपरामृष्टा चेयमतिबाला व्यक्तमार्तस्वरेण निहन्यान्मे मनोरथम् । ततोऽहमेवाहन्येय । तदियमत्र प्रतिपत्तिः' इति ।

❀ बालविबोधिनी ❀

स्तस्या भावः तया । चिरेति—चिरं दीर्घकालं विलसनेन स्फुरणेन यः खेदः श्रमस्तेन निश्चलां स्थिराम् । शरदिति–शरदम्भोधरस्य शारदमेघस्योत्सङ्गे क्रोड़े शेते तच्छीलाम् सौदामनीं विद्युतम् ।

(६५) स्फुरदनङ्गरागः स्फुरन् वर्धमानः अनङ्गस्य कामस्य राग आवेशो यस्य सः । चकितः सम्भ्रान्तः । चोरयितव्यनिस्पृहः चोरयितव्ये चौर्यकर्मणि निस्पृहो निरभिलाषः । तया राजकन्यया । चोर्यमाणहृदयः अपह्रियमाणचित्तः । किंकर्त्तव्यतामूढः–किंकर्त्तव्यतायां साम्प्रतं किं कर्त्तव्यमिति ज्ञानशून्यः । आप्नुयां लभेय । मृष्यति सहते । वसन्तबन्धुः मदनः । असंकेतितपरामृष्टा संकेतमकृत्वैव स्पृष्टा । व्यक्तं प्रकाशम् । आर्त्तस्वरेण आर्त्तस्वरं कृत्वेत्यर्थः । निहन्यान्नाशयेत्–विफलीकुर्यादिति यावत् । ततः—यदि मे मनोरथो नश्येत्तर्हि । आहन्येय–आहतो भविष्यामीत्यर्थः । आङ्पूर्वकात् हन्धातोः कर्मणि विधिलिङ्युत्तमपुरुषैकवचनम् । आघ्रीयेति पाठो न साधीयान् अर्थप्रतीतेरभावात् । इयमत्र प्रतिपत्तिः–इदमत्र विधेयम् ।

❀ बालक्रीडा ❀

परिश्रमसे निश्चलसी दीख रही है । वह मानो, शरत्कालीन मेघके उत्संग (गोद) में सोयी हुई विद्युत्के समान है । ऐसी राजकुमारीको देखा ।

(६५) देखते ही मैं कामदेवके रागसे विह्वल होकर चोरीकी इच्छा भूल गया और किंकर्त्तव्यविमूढ (ज्ञानशून्य) हो करके स्वयं ही अपने चित्तको चुराया हुआ जान करके क्षणभर बैठ गया । मैं (अपहारवर्मा) तर्कसे सोचने लगा—'यदि मैं इस सुन्दर नेत्रोंवाली स्त्रीको न पा सका तो, यह मदन मेरे जीवनको नाश कर देगा । यदि मैं विना संकेत किये हुए इसका स्पर्श करूं तो यह चिल्ला देगी और उस कारणसे मेरे मनोरथ ही नष्ट हो जायँगे । तथा

(६६) नागदन्तलग्ननिर्यासकल्कवर्णितं फलकमादाय मणिसमुद्गकाद्वर्णवर्तिकामुद्धृत्य तां तथाशयानां तस्याश्च मामाबद्धाञ्जलिं चरणलग्नमालिखमार्यां चैताम्—

'त्वामयमाबद्धाञ्जलिं दासजनस्तमिममर्थमर्थयते।
स्वपिहि मया सह सुरतव्यतिकरखिन्नैव मा मैवम्॥'

❁ बालविबोधिनी ❁

(६६) नागदन्तेति-नागदन्तेऽवलम्बनकाष्ठे लग्नं सम्बद्धं च तत् निर्यासकल्केन चिक्कणद्रव्यकाथेन वर्णितं रञ्जितं चेति कर्मधारयः। फलकं काष्ठपट्टिकाम्। आदाय गृहीत्वा। मणिसमुद्गकात्-रत्नसंपुटकात्। वर्णवर्त्तिकां तूलिकाम्। उद्धृत्य बहिष्कृत्य। तां राजकन्याम्। तथा पूर्वोक्तप्रकारेण। शयानां निद्रिताम्। मामपहारवर्माणम्। आवद्धाञ्जलिं कृतनमस्कारम्। चरणलग्नं पादपतितम्। तां राजकन्याम् आर्यां वक्ष्यमाणं पद्यं चेत्युभयमेव अलिखमिति क्रियायाः कर्म। त्वामिति-अयं दासजनः सेवकः अहमित्यर्थः। त्वां भवतीं राजकन्यकाम्। आवद्धाञ्जलि सप्रणामं इमं वक्ष्यमाणमर्थं अर्थयते याचते सुरतव्यतिकरखिन्नैव सुरतश्रान्तैव त्वं मया सह स्वपिहि। एवं सुरतखेदं विना मा मानस्वपिहीत्यर्थः। हेमकरण्डात्-सुवर्णपेटकात्। वासताम्बूलवीटिकां सुवासितताम्बूलम्। कर्पूरगुटिकां कर्पूरचूर्णम्। पारिजातकं सुवासितखदिरसारम्। उपयु

❁ बालक्रीडा ❁

मनोरथोंके नष्ट होने पर मैं ही मार डाला जाऊंगा। अत एव अब यह कर्त्तव्य है।'

(६६) वहीं खूंटीपर टंगी (लटकी) हुई रंगीन चिकनी लाहसे परिमार्जित एक काठकी पट्टीको उतार लिया और जड़ाऊं कलमदानसे कलमको निकाल करके (उसी पट्टीपर) मैंने उस राजपुत्रीका (उसी स्वप्नावस्थाका) ज्योंका त्यों चित्र खींचा और अपनेको उसके पैरोंके नीचे हाथ जोड़े हुए खींचा तथा वहीं पर आर्यावृत्त भी लिख दिया—यह सेवक (अपहारवर्मा) कृताञ्जलि हो करके आपसे इसी निमित्त प्रार्थना करता है कि, सुरतके खेदसे खिन्न हो करके मेरे पास सोवें और विना सुरतके नहीं सोवें।'

तत्पश्चात् सुवर्णकी पेटीसे सुवासित पान और कर्पूरके चूर्णको तथा कत्थे (खैर) को खा करकें महावरके रसके समान उस पानकी पीक (थूंक) को

हेमकरण्डकाच्च वासताम्बूलवीटिकां कर्पूरगुटिकां पारिजातकं चोपयुज्यालक्तकपाटलेन तद्रसेन सुधाभित्तौ चक्रवाकमिथुनं निरष्ठीवम् । अङ्गुलीयकविनिमयं च कृत्वा कथंकथमपि निरगाम् ।

(६७) सुरङ्गया च प्रत्येत्य बन्धागारं तत्र बद्धस्य नागरिकवरस्य सिंहघोषनाम्नस्तेष्वेव दिनेषु मित्रत्वेनोपचरितस्य 'एवं मया हतस्तपस्वी कान्तकः, तत्त्वया प्रतिभिद्य रहस्यं लब्धव्यो मोक्षः' इत्युपदिश्य सह शृगालिकया निरक्रामिषम् । नृपतिपथे च समागत्य रक्षिकपुरुषैरगृह्ये ।

❀ बालविबोधिनी ❀

ज्य-भक्षयित्वा । अलक्तकपाटलेन अलक्तकवत् रक्तवर्णेन । तद्रसेन तेषां ताम्बूलादीनां द्रवेण । सुधाभित्तौ-सुधाधवलितकुड्ये । चक्रवाकमिथुनं कोकद्वन्द्वम् । निरष्ठीवम्-निष्ठीवनेन चक्रवाकमिथुनं चित्रितवान् । अङ्गुलीयकविनिमयं-तस्या अङ्गुलीयकं गृहीत्वा तत्स्थाने स्वकीयमङ्गुलीयकं परिधाप्येत्यर्थः । कथंकथमपि-अतिकष्टेन ।

(६७) प्रत्येत्य-प्रतिनिवृत्य । तत्र बन्धनागारे । बद्धस्य निगडितस्य । तेष्वेव दिनेषु-यदाहमपि तत्र बद्धोऽभवमित्यर्थः । मित्रत्वेनोपचरितस्य-सुहृत्त्वेनारोपितस्य । मित्रभावं गतस्येति यावत् । एवं-एतादृशेनोपायेन । प्रतिभिद्य प्रकाश्य मोक्षः बन्धनमोचनम् । निरक्रामिषं निष्क्रान्तोऽभवम् । नृपतिपथे-राजमार्गे ।

❀ बालक्रीडा ❀

चूनेकी दीवालपर ऐसा थूंक करके रच दिया कि, वहां चित्रगत चक्रवाक दम्पती प्रतीत होने लगे । साथ ही मैंने अंगूठियों का आदान-प्रदान करके उस महलसे किसी प्रकार रास्ता लिया ।

(६७) सुरंगसे कारागार वापस आनेपर, वहांपरके एक कैदी सिंहघोषसे मेरी उन दिनों मित्रता हो गयी थी । मैंने निर्दोष कान्तकको इस तरह मारडाला है । और तुम इस तरहसे राजासे प्रार्थना करके मुक्ति पा लेना । ऐसा कह करके मैं शृगालिकाके साथ निकल आया । राजमार्गमें रक्षापुरुषोंने पकड़ लिया । मैंने विचार किया—'यद्यपि मैं इन लोगोंसे झगड़ करके बड़े वेगसे दौड़ करके भागनेमें समर्थ हूँ । परन्तु, यह निर्दोष शृगालिका पकड़ जायगी । अतः इस समय यह उपाय ठीक होगा ।' ऐसा सोच करके मैंने अपने दोनों हाथोंको

अचिन्तयं च—'अलमस्मि जवेनापसर्तुमनामृष्ट एवैभिः। एषा पुनर्वराकी गृह्येत। तदिदमत्र प्राप्तरूपम्' इति तानेव चपलमभिपत्य स्वपृष्ठसमर्पित-कूर्परः पराङ्मुखः स्थित्वा 'भद्राः, यद्यहमस्मि तस्करः, बध्नीत माम्। युष्माकमयमधिकारः, न पुनरस्या वर्षीयस्याः' इत्यवादिषम्।

(६८) सा तु तावतैवोन्नीतमदभिप्राया तान्सप्रणाममभ्येत्य 'भद्र-मुखाः, ममैष पुत्रो वायुग्रस्तश्चिरं चिकित्सितः। पूर्वेद्युः प्रसन्नकल्पः प्रकृतिस्थ एव जातः। जातास्थया मया बन्धनान्निष्क्रमय्य स्नापितोऽनु-

❀ बालविबोधिनी ❀

अगृह्ये गृहीतोऽभवम्। ग्रहधातोः कर्मणि लङ उत्तमपुरुषैकवचनम्। अलम् समर्थः। अपसर्तुं पलायितुम्। अनामृष्टः। अस्पृष्टः। एभिः-रक्षिकपुरुषैः। एषा-श्रृगालिका। वराकी तपस्विनी। गृह्येत ध्रियेत। अत्र अस्मिन् काले। प्राप्तरूपं युक्तम्। इति-एवं चिन्तयित्वा तान् रक्षिपुरुषान्। चपलं सत्वरम्। अभिपत्य समीपं गत्वा। स्वपृष्ठेति-स्वस्य पृष्ठे पृष्ठ देशे समर्पितौ निहितौ कूर्परौ कफोणी येन सः। स्यात्कफोणिस्तु कूर्परः इत्यमरः। पराङ्मुखः विपरीतमुखः। वर्षीयस्याः वृद्धायाः श्रृगालिकाया इत्यर्थः।

(६८) सा श्रृगालिका। तावता एतावन्मात्रवचनेन। उन्नीतेति-उन्नीत ऊहितः मदभिप्रायो यन्मेऽभिप्रेतमासीत्तद् यया सा। तान् रक्षिपुरुषान्। वायु-ग्रस्तः वातुलः। उन्मत्त इति यावत्। चिरं दीर्घकालम् पूर्वेद्युः गतदिने। प्रसन्न-कल्पः प्रायेण प्रसन्नः। प्रकृतिस्थः स्वभावस्थः। जातास्थया संजातादरया। मया श्रृगालिकयेत्यर्थः। निष्क्रमय्य मोचयित्वा। अनुलेपितः गन्धादिना सुवा-

❀ बालक्रीडा ❀

अपनी पीठकी ओर कर और उनके पास जाकर उनके पराङ्मुख खड़े हो करके कहा—'हे सौम्यो! (भद्रो!) यदि मैं चोर हूँ तो, मुझे बांधिये—क्योंकि, यह अधिकार आप लोगोंका है परन्तु, इस वृद्धाका नहीं है।'

(६८) उस श्रृगालिकाने मेरे अभिप्रायोंका विचार करके उन रक्षापुरुषोंके पास जा तथा उन्हें प्रणाम करके कहा—'हे सौम्यो! यह मेरा पुत्र उन्मत्त हो गया था, मैंने वहुत समयतक इसकी चिकित्सा करायी। गत दिन (कल) यह प्रायः प्रसन्न हो गया था और पूर्ववत् स्वस्थ दिखायी देने लगा। अच्छे

लेपितश्च परिधाप्य निष्प्रवाणियुगलमभ्यवहार्य परमान्नमौशीरेऽस्य कामचारः कृतोऽभूत् । अथ निशीथे भूय एव वायुनिघ्नः 'निहत्य कान्तकं नृपतिदुहित्रा रमेय इति रंहसा परेण राजपथमभ्यपतत् । निरूप्य चाहं पुत्रमेवंगतमस्यां वेलायामनुधावामि । तत्प्रसीदत । बद्ध्वैनं मह्यमर्पयत' इति यावदसौ क्रन्दति तावदहं 'स्थविरे, केन देवो मातरिश्वा बद्धपूर्वः । किमेते काकाः शौङ्गेयस्य मे निग्रहीतारः । शान्तं पापम्' इत्यभ्यधावम् ।

❀ बालविबोधिनी ❀

सितः । निष्प्रवाणि युगलं—नूतनवस्त्रयुग्मम् । अनाहतं निष्प्रवाणि तन्त्रकञ्च नवाम्बरे इत्यमरः । अभ्यवहार्य भोजयित्वा । परमान्नं पायसम् । औशीरे शयनासनविषये । कामचारः स्वेच्छाचारः । निशीथेऽर्द्धरात्रे । भूय एव पुनरपि । वायुनिघ्नः उन्मादरोगायत्तः । निहत्यादि—उन्मत्तस्य तस्य प्रलापोऽयम् । रंहसा वेगेन परेण महता । निरूप्य अवलोक्य एवं गतम्—एतदवस्थम् । अनुधावामि अनुसरामि । बद्ध्वा बन्धनं कृत्वा । एनं मत्पुत्रम् । असौ शृगालिका । अहमपहारवर्मा । स्थविरे वृद्धे । सम्बोधनम् । मातरिश्वा—वायुः । बद्धपूर्वः पूर्वं बद्धः । न केनापीति भावः । एते—रक्षिपुरुषाः । शौङ्गेयस्य विहङ्गानां शत्रोः पक्षिविशेषस्य ! यथा वायसाः शौङ्गेयं निग्रहीतुं न समर्थास्तथा एतेऽपि मां बन्धुं न शक्नुवन्तीति भावः । इति इत्युक्त्वा । अभ्यधावम् धावितवान् ।

❀ बालक्रीडा ❀

होनेका विश्वास करके मैंने (शृगालिकाने) इसे बन्धन मुक्त कर दिया । और स्नान कराकर तैल चन्दन आदिसे सुवासित कर दिया । इसे नये कपड़ेके जोड़े धारण कराये तथा खीर खिलायी और शयनासन (सज्जित पलंगपर) पर सोनेको स्वतन्त्र कर दिया । किन्तु, (सोनेके बाद) आधी रातमें यह फिर उन्माद रोगसे आक्रान्त हो गया ! 'कान्तकको मार करके राजकुमारीसे रमण करूंगा ।' ऐसा जोरोंसे बकते हुए राजमार्गमें आ गया । पुत्रकी ऐसी दशासे मैं, इसके पीछे दौड़ती हुई इस समय, (आधी रातमें) फिर रही हूं । इसलिये आप लोग कृपा करें और इसे बांध करके मुझे दे दें ।'

(६९) असावप्यमीभिः 'त्वमेवोन्मत्ता यानुन्मत्त इत्युन्मत्तं मुक्तवती। कस्तमिदानीं बध्नाति' इति निन्दिता कदर्थिता रुदत्येव मामन्वधावत्। गत्वा च रागमञ्जरीगृहं चिरविरहखेदविह्वलामिमां बहुविधं समाश्वास्य तं निशाशेषमनयम्। प्रत्यूषे पुनरुदारकेण च समगच्छे।

(७०) अथ भगवन्तं मरीचिं वेशकृच्छ्रादुत्थाय पुनः प्रतितप्ततपः

❀ बालविबोधिनी ❀

(६९) असौ शृगालिका अमीभिः रक्षिपुरुषैः। अनुन्मत्त इति उन्मत्तो न भवतीति कृत्वा मुक्तवती त्यक्तवती। कदर्थिता—तिरस्कृता। मामपहारवर्माणम्। चिरेति—चिरविरहेण दीर्घविच्छेदेन यः खेदो दुःखं तेन विह्वलां व्याकुलाम्। इमां रागमंजरीम्। निशाशेषं रात्रेरवशिष्टभागम्। अनयम् अयापयम्। उदारकेण—धनमित्रेण। समगच्छे संमिलितोऽभवम्।

(७०) भगवन्तम् ऐश्वर्यशालिनम्। मरीचिं तन्नामकमहर्षिम्। वेशकृच्छ्रात् वेश्याव्यसनात्। उत्थाय निर्मुक्तो भूत्वेत्यर्थः। पुनरिति—पुनः प्रतितप्तं पुनः समाचरितं यत्तपस्तपस्या तस्य प्रभावेण माहात्म्येन प्रत्यापन्नं पुनः प्राप्तं

❀ बालक्रीडा ❀

जब शृगालिका ऐसा कथन उन राजपुरुषोंसे कर रही थी, तब मैंने कहा—'अरे वृद्धे! क्या कभी पहिले भी पवनको किसीने पकड़ा है। क्या ये कौए मेरे ऐसे बाजको पकड़ सकते हैं। शान्त हो।' ऐसा कह करके मैं दौड़ गया।

(६९) तत्पश्चात्—यह शृगालिका उन रक्षितपुरुषोंके द्वारा फटकारी गयी—'तुम्हीं पगली हो। क्योंकि, तुमने पागलको बन्धन रहित किया। अब यह अभी कैसे बंध सकता है?' ऐसे वाक्योंसे डांटी जानेपर शृगालिका रोती हुई मेरे पीछे दौड़ी। दौड़ करके मैं रागमञ्जरीके घर पर आया और वहाँ रागमञ्जरीको जो बहुत दिनोंके विरह के खेदसे विह्वल हो रही (दुःखी हो रही) थी उसे समाश्वासन दे करके उस रात्रिके अवशिष्ट भागको वहीं पर विताया। फिर सवेरे उदारक (धनमित्र) के पास सम्मिलित हुआ!

(७०) इसके अनन्तर ऐश्वर्यवान् मरीचि नामक मुनिके समीप मैं गया। जो मरीचि मुनि वेश्याके व्यसनसे दुःखी हो करके, पुनः अपने तपके प्रभावसे दिव्य चक्षुत्वको प्राप्त कर चुके थे। उन्हीं मरीचि मुनीसे आपके (राजवाहनके)

प्रभावप्रत्यापन्नदिव्यचक्षुषमुपसंगम्य तेनास्म्यंवंभूतत्वद्दर्शनमवगमितः । सिंहघोषश्च कान्तकापचारं निर्भिद्य तत्पदे प्रसन्नेन राज्ञा प्रतिष्ठापितः तेनैव चारकसुरङ्गापथेन कन्यापुरप्रवेशं भूयोऽपि मे समपादयत् । समगंसि चाहं शृगालिकामुखनिस्सृतवार्तानुरक्तया राजदुहित्रा ।

(७१) तेष्वेव दिवसेषु चण्डवर्मा सिंहवर्मावधूतदुहितृप्रार्थनः कुपि-

❀ बालविबोधिनी ❀

दिव्यमार्षं चक्षुर्येन तादृशम् । तेन मरीचिना । एवंभूतमेवं प्रकारेण त्वद्दर्शनं तव राजवाहनस्यावलोकनम् । अवगमितः ज्ञापितः । अस्मि अहमिति शेषः । दिव्यदृष्ट्या विलोक्य मरीचिनैव एवमुक्तं यदेतादृशसमये एतादृशेन प्रकारेण भवद्दर्शनं मे भविष्यतीति भावः । सिंहघोषः कारागृहस्थो मम सुहृत् । कान्तकापचारं–कान्तकस्यापराधम् । निर्भिद्य प्रकाश्य । तत्पदे–कान्तकस्थाने । प्रतिष्ठापितः–काराध्यक्षः कृतः । तेनैव मत्कृतेनैव । चारकसुरङ्गापथेन–कारागृहस्थविलमार्गेण । भूयोऽपि पुनरपि । समपादयत् अकारयत् । तस्यैव साहाय्येन पुनरप्यहं कन्यान्तःपुरं प्रविष्टवानस्मि इत्यर्थः । समगंसि मिलितोऽभवम् । संपूर्वकाद् गम् धातोर्लुङि आत्मनेपदस्योत्तमपुरुषैकवचनम् । शृगालिकेति–शृगालिकाया मुखाद् वदनान्निःसृतया निर्गतया कथितयेत्यर्थः वार्त्तया वृत्तान्तेन अनुरक्तया आसक्तया राजदुहित्रा राजकन्यया समगंसि अहमिति शेषः ।

(७१) तेष्वेव दिवसेषु तदानीम् । चण्डवर्मा राजवाहनशत्रुः । सिंहवर्मेति–सिंहवर्मणा चम्पाधीश्वरेण अवधूता तिरस्कृता अस्वीकृतेति यावत् दुहितुः स्वकन्याया अम्बालिकायाः प्रार्थना यस्यासौ । अत एव क्रुद्धः । अभियुज्य आक्रम्य । पुरं सिंहवर्मनगरम् । अवारुणत् अवरुरोध । अमर्षणः असहनः । अङ्ग-

❀ बालक्रीडा ❀

दर्शनका समाचार ज्ञात किया । सिंहघोषने कान्तकको मार डाला और राजाने प्रसन्नतासे उसे काराध्यक्ष बना दिया । उसी कारागारकी सुरंगसे मैं फिर कन्यान्तपुरमें जाने–आने लगा । शृगालिकाके मुखसे निकली मेरी प्रशंसा पर राजकन्या मुझ पर अनुराग करने लगी ।

(७१) उन्हीं दिनों चण्डवर्माने जो राजवाहनका शत्रु था, चम्पानगरके स्वामी सिंहवर्मा पर क्रुद्ध हो करके उस सिंहवर्माके नगर पर आक्रमण करके उसके नगरको घेर लिया (क्रोधका कारण यह था कि, चण्डवर्माने अपना

तोऽभियुज्य पुरमवारुणत्। अमर्षणश्चाङ्गराजो यावदरिः पारग्रामिकं विधिमाचिकीर्षति तावत्स्वयमेव प्राकारं निर्भिद्य प्रत्यासन्नानपि सहायानप्रतीक्षमाणो निर्गत्याभ्यधिकबलेन विद्विषा महति संपराये भिन्नवर्मा सिंहवर्मा बलादगृह्यत। अम्बालिका च बलवदभिगृह्य चण्डवर्मणा हठात्परिणेतुमात्मभवनमनीयत। कौतुकं च स किल क्षपावसाने विवाह इत्यवध्नात्।

❀ बालविबोधिनी ❀

राजः सिंहवर्मा। अरिः शत्रु=श्चण्डवर्मा। पारग्रामिकं परराज्यास्कन्दनोचितं। विधिमनुष्ठानम्। चिकीर्षति कर्त्तुमिच्छति। यावत्तावदित्यनेन अतिशीघ्रता सूचिता। स्वयमेव सिंहवर्मैव। प्राकारं प्राचीरम्। प्रत्यासन्नान्—समीपमागतानपि। सहायान् साहाय्यकारिणो नृपतीन्। अप्रतीक्षमाणः अनपेक्षमाणः। अभ्यधिकबलेन बहुतरसैन्यसमन्वितेन विद्विषा शत्रुणा। संपराये युद्धे। भिन्नवर्मा छिन्नकवचः। अगृह्यत गृहीतश्चण्डवर्मणेति शेषः। अभिगृह्य बलात्कारेण गृहीत्वा। हठात् अविमृश्यकारित्वेन। परिणेतुं विवोढुम्। आत्मभवनं चण्डवर्मगृहम्। अनीयत नीता। अम्बालिकेति शेषः। कौतुकं—मङ्गलसूत्रम्। स चण्डवर्मा। क्षपावसाने—रात्रिशेषे। विवाहो भविष्यतीति हेतोः। अवध्नात् बबन्ध कौतुकमिति शेषः।

❀ बालक्रीडा ❀

विवाह सिंहवर्माकी पुत्री अम्बालिकासे करनेकी प्रार्थना सिंहवर्माके पास की थी, जिस प्रार्थनाको सिंहवर्माने अस्वीकार कर दिया था) अंगराज सिंहवर्मा इस बातको न सहन कर सका। जब तक शत्रु चण्डवर्मा परराज्यास्कन्दनोचित विधिको करनेकी इच्छा कर रहा था, तब तक सिंहवर्माने स्वयं ही प्राचीरको तोड़ करके तथा अपने सहायक राजाओंको, जो नगरके बहुत पास आ गये थे, उनकी प्रतीक्षा किये बिना ही बहुत बड़ी सेनावाले शत्रुसे जा करके युद्ध ठान दिया। युद्धमें छिन्नकवच सिंहवर्मा चण्डवर्मा द्वारा परिबद्ध कर लिया गया। राजकुमारी अम्बालिका भी चण्डवर्मा द्वारा बलात्कारसे परिबद्ध कर ली गयी। और बलपूर्वक विवाहके लिये चण्डवर्मा उसे अपने भवनमें ले आया। चण्डवर्माने मंगलसूत्र भी (यह समझते हुए) धारण कर लिया है कि, रात्रिसमाप्त होने पर विवाह होगा।

(७२) अहं च धनमित्रगृहे तद्विवाहायैव पिनद्धमङ्गलप्रतिसरस्तमेवमवोचम्—'सखे, समापतितमेवाङ्गराजाभिसरं राजमण्डलम् । सुगूढमेव संभूय पौरवृद्धैस्तदुपावर्तय । उपावृत्तश्च कृत्तशिरसमेव शत्रुं द्रक्ष्यसि' इति ।

(७३) 'तथा' इति तेनाभ्युपगते गतायुषोऽमुष्य भवनमुत्सवाकुलमुपसमाधीयमानपरिणयोपकरणमितस्ततः प्रवेशनिर्गमप्रवृत्तलोकसंबाध-

---

❀ बालविबोधिनी ❀

(७२) अहमपहारवर्मा । तद्विवाहाय—अम्बालिकापरिणयार्थम् । पिनद्धेति-पिनद्धो बद्धः मङ्गलप्रतिसरो माङ्गलिकहस्तसूत्रं येन सः । तं धनमित्रम् एवम् इत्थम् । समापतितं समागतम् । अङ्गराजाभिसरं अङ्गराजसाहाय्यकारि । राजमण्डलं नृपतिचक्रम् सुगूढं सुगुप्तम् । सम्भूय मिलित्वा । पौरवृद्धैरिति शेषः । तत्—राजमण्डलम् । उपावर्त्तय प्रतिनिवर्त्तय; भवतां साहाय्यं नापेक्ष्यते प्रागेव राज्ञा तत् कृतमतो भवन्तः प्रतिगच्छन्तु इति भावः । उपावृत्तः परावृत्तस्त्वमिति शेषः । कृत्तशिरसं छिन्नमस्तकम् । शत्रुं चण्डवर्माणम् ।

(७३) तेन धनमित्रेण । अभ्युपगते स्वीकृते । गतायुषः स्वल्पायुषः । अमुष्य चण्डवर्मणः । उत्सवाकुलं उत्सवपूर्णम् । उपसमाधीयेति—उपसमाधीयमानानि सम्पाद्यमानानि परिणयोपकरणानि विवाहोचितद्रव्यजातानि यत्र तत् । इतस्ततः समन्तात् । प्रवेशेति—प्रवेशनिर्गमेषु गमनागमनेषु प्रवृत्तैर्व्याप्तैर्लोकैर्जनैः

❀ बालक्रीडा ❀

(७२) मैंने (अपहारवर्माने) भी धनमित्रके गृहमें ही उस राजपुत्री अम्बालिकासे परिणय करनेके निमित्त मंगलसूत्र धारण करके धनमित्रसे कहा—'हे सखे ! अङ्गराजके सहायक राजागण अपने दल-बलके साथ चले आ रहे हैं । अतः तुम पौरवृद्धोंके साथ उन राजोंसे गुप्तरीतिसे मिल करके उन्हें रोक दो । और समझा दो । वे लोग थोड़ी देरमें आवें तो शत्रुको कटे हुए शिरमें पावेंगे ।'

(७३) धनमित्रके द्वारा 'तथा' (ठीक उसी प्रकारसे करूंगा) ऐसी स्वीकृति पाकर मैं (अपहारवर्मा) स्वल्पायुषवान् चण्डवर्माके अन्तःपुरमें चला गया । वहां देखा कि, राजभवन विवाहोचित अनेकों वस्तुओंसे परिपूर्ण है । इधर-उधर लोगोंके गमनागमनसे प्रवेशमार्गपर बड़ी कठिनता प्रतीत हो रही है । मैं भी गुप्त

मलक्ष्यशस्त्रिकः सह प्रविश्य मङ्गलपाठकैरम्बालिकापाणिपल्लवमग्नौ साक्षिण्याथर्वणेन विधिनार्प्यमाणमादित्समानस्यायामिनं बाहुदण्डमाकृष्य च्छुरिकयोरसि प्राहार्षम्। स्फुरतश्च कतिपयानन्यानपि यमविषयमगमयम्। हतविध्वस्तं च तद्गृहमनु विचरन्वेपमानमधुरगात्रीं विशाललोचनामभिनिशाम्य तदालिङ्गनसुखमनुबुभूषुस्तामादाय गर्भगृहमविक्षम्। अ-

❀ बालविबोधिनी ❀

संबाधं संकटम्। विशेषणद्वयमिदं भवनस्य। अलक्ष्यशस्त्रिकः अलक्ष्याऽदृश्या शस्त्रिका छुरिका यस्य सः गुप्तशस्त्र इत्यर्थः। मङ्गलपाठकैः स्तुतिपाठकैर्ब्राह्मणैः। अग्नौ साक्षिणि सति—अग्निसाक्षिकम्। आथर्वणेन अथर्ववेदोपदिष्टेन पुरोधसा वा। विधिना अनुष्ठानेन। पुरोधसेति पक्षे विधिपूर्वकम्। अर्प्यमाणं सम्प्रदीयमानम् अम्बालिकापाणिपल्लवमित्यस्य विशेषणम्! आदित्समानस्य ग्रहीतुमिच्छतः। चण्डवर्मण इति शेषः। आयामिनं दीर्घं प्रसारितमिति यावत्। प्राहार्षं प्रहृतवानहमिति शेषः। स्फुरतः चण्डवर्मविनाशजनितकोपेन ज्वलतः। कतिपयान् अल्पसंख्याकान् अन्यान् चण्डवर्मव्यतिरिक्तान्। यमविषयं यमालयम् अगमयम् प्रापितवान्। हतविध्वस्तं हता नष्टा विध्वस्ता इव जना यत्र तत्। तद्गृहं चण्डवर्मभवनम्। अनु विचरन् सर्वतो भ्रमन्। वेपमानमधुरगात्रीं कम्पमानकोमलावयवाम्। अभिनिशाम्य—श्रावयित्वा मत्परिचयमिति शेषः। अनुबुभूषुः अनुभवितुमिच्छुः। ताम् अम्बालिकाम्। गर्भगृहं गृहाभ्यन्तरम्।

❀ बालक्रीडा ❀

छुरीके सहित मंगलाचरण करनेवाले ब्राह्मणोंके झुण्डके साथ उस राजभवनमें चला गया। वहां प्रवेश करके मैंने देखा कि, अम्बालिका कुमारीके कोमलकरोंको अथर्ववेदकी रीतिसे अग्नि देवताके सम्मुख साक्षीभूत कराया जा रहा है और उसका पाणिग्रहण करनेके लिये चण्डवर्माने अपने विशाल हाथको उसी समय बढ़ाया। उसी क्षण मैंने उस चण्डवर्माको खींच करके उसके हृदयमें छुरी भोंक दी। और कुछ अन्योंको भी मार करके यमपुरी भेज दिया। जिस भवनमें प्राणी मारे गये उसी हतविध्वस्त राजभवनमें—चण्डवर्माके भवनमें—विचरण करते हुए मैंने, काँपती हुई सुन्दर शरीरवाली और दीर्घ नयनवाली, राजपुत्रीसे अपना परिचय सुना करके उसके साथ आलिंगन सुखकी अभिलाषासे उसको

स्मिन्नेव क्षणे तवास्मि नवाम्बुवाहस्तनितगम्भीरेण स्वरेणानुगृहीतः' इति ।

(७४) श्रुत्वा च स्मित्वा च देवोऽपि राजवाहनः 'कथमसि कार्कश्येन कर्णीसुतमप्यतिक्रान्तः' इत्यभिधाय पुनरवेक्ष्योपहारवर्माणम् आचक्ष्व, तवेदानीमवसरः इत्यभाषत ।

अविक्षम् प्रविष्टवान् । विश्प्रवेशे लुङ् । क्षणे अवसरे । तव भवतो राजवाहनस्येत्यर्थः । नवेति—नवाम्बुवाहस्य नूतनमेघस्य स्तनितं गर्जितं तद्वद् गम्भीरेण धीरेण स्वरेणेत्यस्य विशेषणम् । अनुगृहीतः अनुकम्पितोऽहमिति शेषः ।

(७४) श्रुत्वा एतद्वृत्तान्तमिति शेषः । स्मित्वा ईषद्विहस्य । कार्कश्येन—कठोरतया । कर्णीसूतं स्तेयशास्त्रप्रवर्त्तकम् । अतिक्रान्तः उल्लंघितस्त्वमिति शेषः । अवेक्ष्य दृष्ट्वा । आचक्ष्व कथय । तव उपहारवर्मणः । अवसरः समयः । सः उप-

---

ले करके गृहाभ्यन्तरमें रति-गृहमें प्रवेश किया । उसी क्षण नूतन मेघके गर्जन के सदृश गम्भीर स्वरसे आपने (राजवाहनने) मुझे अनुकम्पित कर दिया ।

(७४) इस वृत्तान्तको श्रवण करके तथा मुस्कुरा करके देव राजवाहनने कहा— 'आपने तो इस कठोरतासे कर्णीसुत (स्तेयशास्त्र-प्रवर्त्तक) को भी मात कर दिया ।' फिर उपहारवर्माको देख करके कहा—'आपका अब समय है ।' उस उपहारवर्माने भी

सोऽपि सस्मितं प्रणम्यारभताभिधातुम् ।

इति श्रीदण्डिनः कृतौ दशकुमारचरितेऽपहारवर्मचरितं नाम

द्वितीय उच्छ्वासः ।

—oo✠oo—

हारवर्मा । अभिधातुं कथयितुम् ।

इति श्रीताराचरणभट्टाचार्यकृतायां बालविबोधिनीसमाख्यायां

दशकुमारचरितव्याख्यायामपहारवर्मचरितं नाम

द्वितीयोच्छ्वासः ।

—oo✠oo—

हँसकर कहना प्रारम्भ किया ।

इस प्रकार दशकुमार-चरितके अपहारवर्मचरित नामक

द्वितीयोच्छ्वासकी बालक्रीड़ा नामक

हिन्दी टीका समाप्त हुई ।

दशकुमारचरितम्

तृतीयोच्छ्वासः

(१) एषोऽस्मि पर्यटन्नेकदा गतो विदेहेषु। मिथिलामप्रविश्यैव बहिः क्वचिन्मठिकायां विश्रमितुमेत्य कयापि वृद्धतापस्या दत्तपाद्यः क्षणमलिन्दभूमाववास्थिषि। तस्यास्तु मद्दर्शनादेव किमप्याबद्धधारमश्रु प्रावर्तत। 'किमेतदम्ब, कथय कारणम्' इति पृष्टा सकरुणमाचष्ट—'जैवातृक, ननु श्रूयते पतिरस्या मिथिलायाः प्रहारवर्मा नामासीत्। तस्य खलु मगधराजो राजहंसः परं मित्रमासीत्। तयोश्च वल्लभे बलशम्बलयोरिव वसुमतीप्रियंवदे सख्यमप्रतिममधत्ताम्। अथ प्रथमगर्भाभिनन्दितां तां

---

(१) एषोऽस्मीति—साम्प्रतमुपहारवर्मा स्वचरितं वर्णयति। एषः अहमुपहारवर्मेति शेषः। पर्यटन् इतस्ततो भ्रमन्। मिथिलां विदेहराजधानीम्। मठिकायां क्षुद्रमठे। दत्तं पाद्यं यस्मै सः-दत्तपादोदकः। पाद्यं पादाय वारिणि इत्यमरः। अलिन्दभूमौ-बहिर्द्वारप्रकोष्ठे। अवास्थिषि उपाविशम्। अवपूर्वकस्थाधातोर्लुङि आत्मनेपदस्य रूपम्। किमपि अज्ञातकारणम् आबद्धधारं सन्ततधारम्। जैवातृक-आयुष्मन् सम्बोधनमेतत्। जैवातृकः स्यादायुष्मानित्यमरः। तयोः राजहंसप्रहारवर्मणोः। वल्लभे दयिते पत्न्याविति शेषः। बलः शम्बलश्चेति द्वावसुरौ तयोरिव-तौ यथा परस्परमित्रतामापन्नौ तथैव एतावपि मित्रत्वमापन्नाविति भावः। वसुमतीप्रियंवदे-वसुमती राजहंसस्य, प्रियंवदा च प्रहारवर्मणः इत्यर्थः। अप्रतिमम् अतुल-

---

(१) एक समय मैं (उपहारवर्मा) पर्यटन करते हुए विदेहपुरीमें गया। (वहीं) विदेहपुरीमें प्रवेश करके उस पुरीके बाहर भागमें एक मठमें, विश्राम करनेके निमित्त गया। वहाँपर एक वृद्धाद्वारा मुझे पाँव धोनेके लिये पानी दिया गया, जिससे मैंने अपने पाँव धोये और मैं दरवाजेके समीप प्रकोष्ठकमें बैठ गया। वह वृद्धा मुझे देखते ही फूट-फूटकर (धाराप्रवाहरूपमें) रोने लगी। मैंने कहा—'हे मातः! यह क्या, आप किस कारणसे रोती हैं।' इस तरह पूछनेपर उस वृद्धाने करुणाक्रान्त होकर उत्तर दिया—'हे आयुष्मन्! ऐसा सुना जाता है कि, इस विदेहपुरीके स्वामी प्रहारवर्मा नामक राजा थे। उनकी प्रगाढ मित्रता मगधराज राजहंसके साथ हो गयी थी। उनकी वसुमती और प्रियंवदा नामक पत्नियोंमें भी, बल और शम्बलकी मित्रताके समान बड़ी मित्रता हो गयी थी। कुछ दिनोंके पश्चात् वसुमतीको प्रथम गर्भकी प्राप्ति हुई जिसके अभिनन्दनके

च प्रियसखीं दिदृक्षुः प्रियंवदा वसुमतीं सह भर्त्रा पुष्पपुरमगमत् ।

(२) तस्मिन्नेव च समये मालवेन मगधराजस्य महज्जन्यमजनि । तत्र लेशतोऽपि दुर्लक्षां गतिमगमन्मगधराजः । मैथिलेन्द्रस्तु मालवेन्द्रप्रयत्नप्राणितः स्वविषयं प्रतिनिवृत्तो ज्येष्ठस्य संहारवर्मणः सुतैर्विकटवर्मप्रभृतिभिर्व्याप्तं राज्यमाकर्ण्य स्वस्रीयात्सुह्मपतेर्दण्डावयवमादित्सुरटवीपथमवगाह्य लुब्धकलुप्तसर्वस्वोऽभूत् ।

(३) तत्सुतेन च कनीयसा हस्तवर्तिना सहैकाकिनी वनचरशरवर्ष-

नीयम् । प्रथमगर्भेण अभिनन्दितां सुशोभिताम् । तां वसुमतीम् । भर्त्रा स्वामिना प्रहारवर्मणेत्यर्थः । पुष्पपुरं राजहंसराजधानीम् ।

(२) मालवेन मालवदेशाधिपतिना मानसाराख्येन सह । मगधराजस्य राजहंसस्य । जन्यं युद्धम् । तत्र युद्धे । लेशतोऽपि दुर्लक्षां किञ्चिदपि निश्चेतुमशक्याम् । गतिं दशाम् । सारथिशून्यत्वाद् अश्वाः राजहंसस्य रथं कुत्र निन्युरिति न केनापि विदितमिति भावः । मैथिलेन्द्रः प्रहारवर्मा । मालवेन्द्रस्य मानसारस्य प्रयत्नेन चेष्टया प्राणितो जीवितो रक्षित इति यावत् । स्वविषयं स्वदेशम् । ज्येष्ठस्य भ्रातुरिति शेषः । व्याप्तमाक्रान्तम् । स्वस्रीयाद् भागिनेयात् । सुह्मपतेः सुह्माख्यदेशाधिपात् । दण्डावयवं दण्डस्य संग्रामस्यावयवमुपकरणं हस्त्यश्वादिकम् । आदित्सुर्ग्रहीतुमिच्छुः । अटवीपथमरण्यमार्गम् । अवगाह्य प्रविश्य लुब्धकैर्व्याधैर्लुप्तं हृतं सर्वस्वं यस्य तादृशः ।

(३) तत्सुतेन प्रहारवर्मपुत्रेण । हस्तवर्त्तिना मम हस्तस्थितेन । एकाकिनी

लिये प्रियंवदा अपने स्वामीके साथ पुष्पपुरको गयी ।

(२) उसी समय मालवदेशके अधिपति मानसारके साथ मगधराज राजहंसका युद्ध आरम्भ हो गया । उस युद्धमें मगधराज राजहंस कुछ भी वर्णन करनेकी अयोग्य परिस्थितिमें प्राप्त हुए । मगधराज राजहंसका सहायताकारी मैथिल देशका अधिपति प्रहारवर्मा मालवदेशके अधिपति मानसारकी दयासे येन-केन-प्रकारेण अपने जीवित प्राणोंको लेकर अपने देशको लौट गया । वहाँ लौटकर उसने (प्रहारवर्माने) सुना कि उसका राज्य उसके बड़े भाई संहारवर्माके पुत्र विकटवर्मा आदिने आक्रान्त कर लिया है । ऐसा ज्ञातकर उस प्रहारवर्माने अपने बहिनके पुत्र (भानजे), जिसका नाम सुह्मपति था, से सेना-सामग्री (हाथी-घोड़े आदि) की सहायता लेनेकी इच्छा की और अरण्यके मार्गसे अपने भानजेके पास जा रहा था कि अरण्यवासी कोल-भीलोंने उसके पास जो भी था लूट लिया ।

(३) मेरी गोदीमें प्रहारवर्माका छोटा शिशु था । कोल-भीलोंके बाणोंकी वर्षाके

भयपलायिता वनमगाहिषि । तत्र च मे शार्दूलनखावलीढनिपतितायाः पाणिभ्रष्टः स बालकः कस्यापि कपिलाशवस्य क्रोडमभ्यलीयत । तच्छवाकर्षिणश्च व्याघ्रस्यासूनिषुरिष्वसनयन्त्रमुक्तः क्षणादलिक्षत । भिल्लदारकैः स बालोऽपाहारि ।

(४) सा त्वहं मोहसुप्ता केनापि वृष्णिपालेनोपनीय स्वं कुटीरमावेश्य कृपयोपक्रान्तव्रणा स्वस्थीभूय स्वभर्तुरन्तिकमुपतिष्ठासुरसहायतया यावद्व्याकुलीभवामि तावन्ममैव दुहिता सह यूना केनापि तमेवोद्देशमागमत् ।

असहाया । वनचरेति–वनचराणां किरातानां शरवर्षात् बाणनिःक्षेपाद् भयेन पलायिता अहमिति शेषः । अगाहिषि प्राविशम् । तत्र वने । शार्दूलस्य व्याघ्रस्य नखैः अवलीढा विद्धा अतएव निपतिता भूमाविति शेषः, तस्यास्तथाभूतायाः । मे इत्यस्य विशेषणम् । पाणिभ्रष्टो हस्तच्युतः । कपिलाशवस्य मृतधेनोः । क्रोडं वक्षःस्थलम् । अभ्यलीयत तत्र लीनोऽभवत् । तच्छवं कपिलाशवं व्याकर्षतीति तस्य । असून् प्राणान् । इषुर्बाणः । इष्वसनेति–अस्यतेऽनेनेति असनम्–इषोरसनमिष्वसनं धनुस्तदेव यन्त्रस्तस्मान्मुक्तस्त्यक्तः । इषुरित्यस्य विशेषणम् । अलिक्षत् आस्वादयत्–प्राणान् जहारेत्यर्थः । लिह आस्वादे इत्यस्य धातोर्लुङ् । भिल्लदारकैः किरातबालकैः । अपाहारि अपहृतः ।

(४) मोहसुप्ता मोहेन मूर्च्छया सुप्ता निद्रिता । वृष्णिपालेन मेषपालेन । मेष वृष्णय एडका इत्यमरः । उपक्रान्तव्रणा चिकित्सितव्याघ्रकृतक्षता । स्वभर्तुर्विदेहराजस्य । उपतिष्ठासुर्गन्तुमिच्छुः । सार्थघाते संघभ्रंशे । राजपुत्रस्य विदेहराजापरपुत्रस्य । तेन वनचरेण । उपयन्तुं चिन्तितायाः परिणेतुमभिलषितायाः ।

भयसे मैं अकेली उसे (शिशुको) लिए हुए जंगलमें घुस गयी । उस जंगलमें मैं शेरके झपटनेसे–उसके नाखूनकी खरोंच आदिके लगनेसे–भूमिपर गिर पड़ी । मेरे हाथसे वह शिशु छूट करके किसी कपिला धेनु (गौ) के मृत शवकी गोदमें गिर पडा । जब वह शेर उस कपिला गौके मृत शवकी ओर आकर्षित हो रहा था, ठीक उसी समय किसीके धनुषसे निकले हुए बाणके द्वारा वह (शेर) मार डाला गया भीलके बालकोंके द्वारा वह शिशु भी अपहृत कर लिया गया ।

(४) मुझे, जो मैं शेरके आक्रमणसे मूर्छित हो गयी थी, एक गोप विश्चेष्टितावस्थामें ही अपनी कुटीमें ले गया । वहाँ ला करके उस गोपने दया करके मेरी चिकित्सा आदि की तथा सेवा-सुश्रूषा करके मुझे स्वस्थ कर दिया । स्वस्थ होनेपर मैं (वृद्धा) अपने स्वामी विदेहाधिपतिके समीप जानेके लिए सहायताहीन होनेसे जब व्याकुल हो रही थी,

सा भृशं रुरोद । रुदितान्ते च सा सार्थघाते स्वहस्तगतस्य राजपुत्रस्य किरातभर्तृहस्तगमनम्, आत्मनश्च केनापि वनचरेण व्रणविरोपणम्, स्वस्थायाश्च पुनस्तेनोपयन्तुं चिन्तिताया निकृष्टजातिसंसर्गवैक्लव्यात्प्रत्याख्यानपारुष्यम्, तदक्षमेण चामुना विविक्ते विपिने स्वशिरःकर्तनोद्यमः, अनेन यूना यदृच्छया दृष्टेन तस्य दुरात्मनो हननम्, आत्मनश्चोपयमनमित्यकथयत् ।

(५) स तु पृष्टो मैथिलेन्द्रस्यैव कोऽपि सेवकः कारणविलम्बी तन्मार्गानुसारी जातः । सह तेन भर्तुरन्तिकमुपसृत्य पुत्रवृत्तान्तेन श्रोत्र-

निकृष्टजातीति = नीचजातीयकिरातसंसर्गदोषदुष्टतया तद्विवाहस्य प्रत्याख्यानेनास्वीकारेण यत्पारुष्यं कार्कश्यम् । तया कृतमिति शेषः । तदक्षमेण तत्सोढुमशक्नुवता । अमुना किरातेन । विविक्ते निर्जने । स्वशिरःकर्तनोद्यमः मद्दुहितुर्मस्तकच्छेदनप्रयासः । यदृच्छया दैवगत्या सहसा वा । उपयमनं विवाहस्तेन यूना सहेत्यर्थः ।

(५) सः मद्दुहितुः परिणेता । मैथिलेन्द्रस्य विदेहाधिपप्रहारवर्मणः । सेवको भृत्यः । कारणविलम्बी प्रयोजनवशेन कृतविलम्बः । तन्मार्गानुसारी तस्य राज्ञो मार्गानुसारी येन मार्गेण राजा जगाम तेनैव सोऽपि तमनुससारेति भावः । भर्तुः प्रभोः ।

उसी समय मेरी पुत्री किसी युवकके साथ उस स्थान में आ पहुँची । वह आकर अत्यन्त रोने लगी । रोनेके पश्चात् उस पुत्रीने साथ छूटनेपर राजाके दूसरे पुत्रका किरातके पतिके हाथमें जाना, किसी वनेचरद्वारा अपनी सेवा-शुश्रूषाका होना तथा शेरके नखक्षतोंका उपचार होना, स्वस्थ होनेपर उसी वनेचरद्वारा विवाहका प्रस्ताव किया जाना, नीच जातिके संसर्गसे व्याकुल होना, विवाहके प्रस्तावका विरोध करनेसे उस वनेचरको स्वयं (पुत्रीद्वारा) कर्कश वचन कहा जाना, वनेचरद्वारा कर्कश वचनोंके प्रतिवादमें उसको निर्जन वनमें ले जा करके शिर काटनेका उद्योग करना, दैवगतिसे इस युवकका (जो साथ में था) उस जंगलमें आना तथा उस वनेचरका वध करना, एवं अपना विवाह उस युवकके साथ होनेका समाचार सुनाना आदि (सभी बातें अपनी मातासे कह सुनायीं)।

(५) इसके पश्चात् पूछे जानेपर उस कन्याके पतिने कहा कि मैं भी मैथिलेन्द्रका ही एक सेवक हूँ तथा किसी कारणवश विलम्ब करके उन्हीं मैथिलेन्द्र प्रहारवर्माके मार्गका अनुसरण करके जा रहा हूँ । उसी युवकके साथ हम दोनों स्वामी प्रहारवर्माके सन्निकट

मस्य देव्याः प्रियंवदायाश्चाददाव। स च राजा दिष्टदोषाज्ज्येष्ठभ्रातृपुत्रैश्चिरं विगृह्य पुनरसहिष्णुतयातिमात्रं चिरं प्रयुध्य बद्धः। देवी च बन्धनं गमिता। दग्धा पुनरहमस्मिन्नपि वार्धके हतजीवितमपारयन्ती हातुं प्रव्रज्यां किलाग्रहीषम्। दुहिता तु मम हतजीविताकृष्टा विकटवर्ममहादेवीं कल्पसुन्दरीं किलाशिश्रियत्। तौ चेद्राजपुत्रौ निरुपद्रवावेवावर्धिष्येताम्, इयता कालेन तवेमां वयोवस्थामस्प्रक्ष्येताम्। तयोश्च सतोर्न दायादा नरेन्द्रस्य प्रसह्यकारिणो भवेयुः' इति प्रमन्युरभिरुरोद।

(६) श्रुत्वा च तापसीगिरमहमपि प्रवृद्धबाष्पो निगूढमभ्यधाम्—

अस्य भर्तुः प्रहारवर्मणः। श्रोत्रं श्रवणेन्द्रियं कर्णौ वा। अददाव अप्रियवृत्तान्तकथनेन कर्णयोर्महतीं पीडामजनयाव आवामिति शेषः। दिष्टदोषात् भाग्यदोषात्। विगृह्य विग्रहं कृत्वा विरोध्येति यावत्। अतिमात्रम् अत्यर्थम्। चिरं दीर्घकालं यावत्। देवी प्रियंवदा। गमिता प्रापिता। दग्धा हतभाग्या। हतजीवितं व्यर्थजीवनम्। हातुं त्यक्तुम्। प्रव्रज्यां सन्यासम्। विकटवर्मणः प्रहारवर्मज्येष्ठभ्रातृपुत्रस्य महादेवीं पट्टमहिषीम्। अशिश्रियत् जीविकार्थमाश्रितवती। निरुपद्रवौ निर्विघ्नौ। अवर्धिष्येताम्। वर्द्धितौ अभविष्यताम्। इयता कालेन एतावद्भिर्दिवसैः, साम्प्रतमिति यावत्। वयोऽवस्थां त्वत्सदृशं वयः। अस्प्रक्ष्येतां स्पृष्टौ भविष्यतः। लृङि रूपद्वयम्। सतोः वर्तमानयोः। जीवतोरिति भावः। दायादाः भ्रातृपुत्रादयः। प्रसह्यकारिणो बलात्कारेण राज्यापहारिणः। प्रमन्युः प्रवृद्धशोका।

(६) प्रवृद्धबाष्पः रुदन्नित्यर्थः। निगूढं सुगुप्तम्। समाश्वसिहि आश्वस्ता

पहुँचीं। वहाँ पर देवी प्रियंवदासे तथा राजासे पुत्रके वृत्तान्तको कह करके उन दोनोंके कानोंको पीड़ाएँ दीं—क्योंकि अप्रिय कथनसे पीड़ा ही होती है। राजा प्रहारवर्मा भी भाग्यके दोषसे दीर्घकालतक ज्येष्ठ भ्राताके पुत्रोंके साथ युद्ध करके न जीते। फिर उन सबका अपकार न सह करके विकट युद्ध करनेसे स्वयं ही पकड़ लिये गये। रानी भी पकड़ ली गयीं। हतभागिनी मैं, इस वृद्धापनमें भी अपने जीवनको नष्ट करनेमें असमर्थ होकर संन्यस्तधारिणी हो गयी। मेरी पुत्री भी व्यर्थ जीवनके आकर्षणसे विकटवर्मा (प्रहारवर्माके ज्येष्ठ भाईका पुत्र) की पटरानी महादेवी कल्पसुन्दरीके आश्रयमें पड़ी है। यदि वे दोनों राजकुमार निर्विघ्नतापूर्वक पाल करके बढ़ाये जाते तो इस समय तक वे आपकी अवस्थाके हुए होते। और उन दोनोंके होनेसे, राजा प्रहारवर्माका कोई दायाद (पट्टीदार) बलात्कारसे राज्यापहरणकारी न रह पाता।' ऐसा कहकर वह वृद्धा घोर सन्तापसे जोर-जोरसे रोने लगी।

(६) इस वृत्तान्तको उस वृद्धा तापसीके मुखसे सुनकर मैंने गुप्तरीतिसे अपनी

'यद्येवमम्ब, समाश्वसिहि । नन्वस्ति कश्चिन्मुनिस्त्वया तदवस्थया पुत्राभ्युपपादनार्थं याचितस्तेन स लब्धो वर्धितश्च । वार्तेयमतिमहती । किमनया । सोऽहमस्मि । शक्यश्च मयासौ विकटवर्मा यथाकथंचिदुपश्लिष्य व्यापादयितुम् । अनुजाः पुनरतिबहवः, तैरपि घटन्ते पौरजानपदाः । मां तु न कश्चिदिहत्य ईदृक्तया जनो जानाति । पितरावपि तावन्मां न संविदाते, किमुतेतरे । तदेनमर्थमुपायेन साधयिष्यामि' इत्यगादिषम् ।

(७) सा तु वृद्धा सरुदितं परिष्वज्य मुहुः शिरस्युपाघ्राय प्रस्नुतस्तनी

भव । तदवस्थया तथा विपन्नया । पुत्रस्य बालकस्याभ्युपपादनार्थं पोषणार्थम् । तेन मुनिना । स बालः । अतिमहती सुदीर्घा । किमनया तद्वार्त्तावर्णनेनालमिति भावः । सोऽहमस्मि अहमेव स बाल इत्यर्थः । यथाकथञ्चित् केनापि प्रकारेण । उपश्लिष्य सन्निधानं गत्वा । व्यापादयितुं हन्तुम् । शक्य इत्यनेनान्वयः । अनुजाः विकटवर्मणो भ्रातरः । घटन्ते मिलितास्तिष्ठन्ति विकटवर्मणि हतेऽपि पौरजानपदैः सह संमिलितास्तदनुजा एव राज्यं करिष्यन्ति अतो मत्कृतं विकटवर्महननं वृथैव भविष्यतीति भावः । इहत्यः अत्रत्यः । अव्ययात्त्यविति त्यप् । ईदृशस्य भाव ईदृक्ता तया अहमेव प्रहारवर्मणः पुत्र इत्येवं रूपेणेत्यर्थः । न संविदाते न जानीतः । तत् तस्मात् ।

(७) प्रस्नुतस्तनी स्रवत्क्षीरपयोधरा वात्सल्यादिति भावः । भद्रं मङ्गलम् ।

आँखोंके आँसुओंको रोक करके वातचीत की । 'हे अम्ब ! यदि ऐसा वृत्तान्त है तो धीरज धरिये । कोई एक ऐसा ऋषि है जिस ऋषिसे आपने विपन्नावस्थामें पुत्रोंको पालने और संवर्धन करनेके लिए प्रार्थना की थी । उन ऋषिने आपके उन बच्चोंको प्राप्त करके पालन पोषण किया है । यह वार्त्ता अति विस्तारवाली है (अथवा) इससे क्या प्रयोजन ! वह वालक मैं ही हूँ । मुझे इतनी शक्ति है कि मैं विकटवर्माके समीप जाकर उसे मार डाल सकूँगा । परन्तु उस विकटवर्माके बहुतसे छोटे भाई हैं । वे सब पौर जानपदों (सामन्त आदिकों) से सहायता ले करके राज्यका उपभोग करने लगेंगे । इससे मेरा मारना व्यर्थ हो जायगा । मुझे तो यहाँके निवासी कोई भी उस तरीकेपर नहीं जानते हैं जिस तरीकेपर प्रहारवर्माके पुत्रोंको जानते हैं । माता-पिता भी मुझे नहीं जानते हैं । तो फिर अन्योंकी बात ही क्या है । इसलिये इस कार्यको उपायद्वारा साधूँगा (करूँगा) ।' ऐसे वाक्य उससे मैंने कहे ।

(७) उस वृद्धाने रोते हुए बार-बार आलिंगन किया और मेरा मस्तक सूंघने लगी

सगद्गदमगदत्—'वत्स, चिरं जीव । भद्रं तव । प्रसन्नोऽद्य भगवान्विधिः । अद्यैव प्रहारवर्मण्यधि विदेहा जाताः, यतः प्रलम्बमानपीनबाहुर्भवानपारमेतच्छोकसागरमद्योत्तारयितुं स्थितः । अहो, महद्भागधेयं देव्याः प्रियंवदायाः' इति हर्षनिर्भरा स्नानभोजनादिना मामुपाचरत् । अशिश्रियं चास्मिन्मठैकदेशे निशि कटशय्याम् । अचिन्तयं च 'विनोपधिनायमर्थो न साध्यः । स्त्रियश्चोपधीनामुद्भवक्षेत्रम् । अतोऽन्तःपुरवृत्तान्तमस्या अवगम्य तद्द्वारेण किंचिज्जालमाचरेयम्' इति ।

(८) चिन्तयत्येव मयि महार्णवोन्मग्नमार्तण्डतुरंगमश्वासरयावधूतेव व्यावर्तत त्रियामा । समुद्रगर्भवासजडीकृत इव मन्दप्रतापो दिवसकरः

प्रहारवर्मण्यधि प्रहारवर्माधीनाः मन्ये सर्वमेव विदेहराज्यं पुनरपि प्रहारवर्मणाधिकृतमिति भावः । 'अधिरीश्वरे' इत्यनेन यस्मादधिकं यस्येत्यादिना च कर्मप्रवचनीयतासप्तम्यौ । यतः यस्मात्कारणात् । प्रलम्बेति—प्रलम्बमानौ प्रसारितौ—दीर्घौ वा पीनौ मांसलौ बाहू भुजौ यस्य सः । भागधेयं भाग्यम् । हर्षनिर्भरा सातिशयहर्षवती । उपाचरत् असेवत । अशिश्रियम् आश्रितवान् । कटशय्यां तृणरचितशयनम् । उपधिना कपटेन । अर्थो विषयः । साध्यः साधयितुं शक्यः । उद्भवक्षेत्रम् उत्पत्तिस्थानम् । अस्या इति पञ्चम्यन्तम् वृद्धायाः सकाशादित्यर्थः । जालं कपटम् ।

(८) चिन्तयत्येव मयि—मच्चिन्तासमकालमेव । महार्णवेत्यादि महार्णवात् सागरात् उन्मग्नस्य उत्थितस्य मार्त्तण्डस्य सूर्यस्य तुरङ्गमाणामश्वानां श्वासरयेण

तथा स्तनोंसे दूध टपकाती हुई बोली—'हे वत्स ! दीर्घायु हो । तुम्हारा कल्याण हो । आज भगवान् ब्रह्मदेव प्रसन्न हुए । आजसे ही प्रहारवर्माके अधीन विदेहपुरीका राज्य हुआ । क्योंकि आपके प्रलम्बमान दीर्घ और मांसल बाहु प्रहारवर्माको इस शोकसमुद्रसे तारनेके लिए साक्षात् आविर्भूत हो गये । अहा ! देवी प्रियंवदाका कैसा जबर्दस्त भाग्य है ।' इस प्रकारसे हर्षके वेगसे उसने स्नान भोजन आदिसे मेरा स्वागत-सत्कार किया । मैंने भी रातमें उसी मठके अन्दर एक जगह तृणरचित शय्यापर आश्रय लिया और विचार किया कि विना छल किये यह कार्य सिद्ध न हो सकेगा । छलका मूल स्थान स्त्रियाँ होती हैं । अतः इस वृद्धासे अन्तःपुरका वृत्तान्त विदित करके कोई जाल (छल) रचूंगा ।'

(८) मैं इस प्रकारसे विचार कर रहा था कि महासमुद्रसे आविर्भूत होते हुए भगवान् सूर्यके घोड़ोंके निःश्वासोंसे कम्पित रात्रि मारे भयके व्यतीत हो गयी । समुद्रके

प्रादुरासीत्। उत्थायावसायितदिनमुखनियमविधिस्तां मे मातरमवादिषम्—'अम्ब, जाल्मस्य विकटवर्मणः कच्चिदन्तःपुरवृत्तान्तमभिजानासि' इत्यनवसितवचन एव मयि काचिदङ्गना प्रत्यदृश्यत । तां चावेक्ष्य सा मे धात्री हर्षाश्रुकुण्ठितकण्ठमाचष्ट—'पुत्रि पुष्करिके, पश्य भर्तृदारकम् । अयमसावकृपया मया वने परित्यक्तः पुनरप्येवमागतः' इति ।

(९) सा तु हर्षनिर्भरनिपीडिता चिरं प्ररुद्य बहु विलप्य शान्ता पुनः स्वमात्रा राजान्तःपुरवृत्तान्ताख्याने न्ययुज्यत । उक्तं च तया—'कुमार,

---

निःश्वासवायुवेगेन अवधूता कम्पितेवेत्युत्प्रेक्षा । त्रियामा रात्रिः । व्यावर्त्तत अपासरत् प्रभातेति यावत् । समुद्रेति—समुद्रगर्भे सागरमध्ये वासेन स्थित्या जडीकृतः शीतलीकृत इव । उदयसमये सूर्यस्य मन्दप्रतापत्वं प्रसिद्धमेव, समुद्रगर्भवासस्तु न तस्य, हेतुरित्यहेतोर्हेतुत्वेनोत्प्रेक्षणाद्धेतूत्प्रेक्षा । मन्दप्रतापः अनुष्णः । अवसायितेति—अवसायितः समापितो दिनमुखस्य प्रातःकालस्य नियमविधिर्नित्यकृत्यं येन तथाविधः । तां वृद्धां धात्रीम् । जाल्मस्य मूर्खस्य । अनवसितवचने असमाप्तवाक्ये । प्रत्यदृश्यत मया दृष्टाऽभवत् । हर्षाश्रुणा आनन्दजनितवाष्पेण कुण्ठितोऽवरुद्धः कण्ठो यस्मिंस्तद्यथा तथा । क्रियाविशेषणमेतत् । वाष्पगद्गदकण्ठमित्यर्थः । भर्तृदारकं प्रभुपुत्रम् । अकृपया निर्दयया । एवं एवम्प्रकारेण ।

(९) सा पुष्करिका । हर्षनिर्भरेण हर्षातिशयेन निपीडिता आक्रान्ता । चिरं दीर्घकालम् । शान्ता आश्वस्ता । स्वमात्रा पूर्वोक्तवृद्धया । तया पुष्करि-

---

अन्दर देरतक निवास करनेसे मानो सूर्यका तेज शीतल हो गया हो । प्रातःकालिक मन्द तेजवाले सूर्यका उदय हुआ । मैंने उठ करके प्रातःकालकी नित्य-क्रिया को और फिर अपनी धात्रीसे कहा—'हे मातः ! मूर्ख विकटवर्माके अन्तःपुरका कुछ वृत्तान्त आप जानती हैं ?' यह वाक्य समाप्त भी न कर पाया था कि कोई अंगना मुझको वहाँपर दिखायी पड़ी । उस वनिताको देखते ही मेरी धात्री आनन्दातिरेकसे अश्रुयुक्त रुद्ध कण्ठसे बोलने लगी—'हे पुत्रि ! पुष्करिके !! मेरे स्वामीके पुत्रको देखो । इस पुत्रको मैंने निर्दयतापूर्वक वनमें परित्यक्त कर दिया था । वही पुत्र इस युवकके रूपमें पुनः प्राप्त हुआ है ।'

(९) वह पुष्करिका पुत्रागमन सुनकर हर्षातिरेकसे विह्वल होकर, घोर विलाप करके रोने लगी । जब विलापके पश्चात् वह शान्त हुई तब उसकी वृद्धा माताने उसे राजाके अन्तःपुरका वृत्तान्त सुनानेके लिए नियुक्त किया । उस पुष्करिकाने कहा—

कामरूपेश्वरस्य कालिन्दवर्मनाम्नः कन्या कल्पसुन्दरी कलासु रूपे चाप्सरसोऽप्यतिक्रान्ता पतिमभिभूय वर्तते । तदेकवल्लभः, स तु बह्ववरोधोऽपि विकटवर्मा' इति ।

(१०) तामवोचम्–'उपसर्पैनां मत्प्रयुक्तैर्गन्धमाल्यैः । उपजनय चासमानदोषनिन्दादिना स्वभर्तरि द्वेषम् । अनुरूपभर्तृगामिनीनां च वासवदत्तादीनां वर्णनेन ग्राहयानुशयम् । अवरोधनान्तरेषु च राज्ञोविल सितानि सुगूढान्यपि प्रयत्नेनान्विष्य प्रकाशयन्ती मानमस्या वर्धय' इति । पुनरिदमम्बामवोचम्—'इत्थमेव त्वयाप्यनन्यव्यापारया नृपाङ्गनासावुपस्था-

---

कया । कलासु नृत्यगीतादिषु । रूपे कान्तौ । अतिक्रान्ता अत्युत्कृष्टेत्यर्थः । अभिभूय आक्रम्य सर्वथा तत्राधिपत्यं विस्तार्येति भावः । तदेकेति–सैव कल्पसुन्दर्येव एका अद्वितीया वल्लभा दयिता यस्य सः बह्ववरोधोऽपि बहुपत्नीकोऽपि ।

(१०) उपसर्प उपचर सेवस्वेतियावत् । एनां कल्पसुन्दरीम् । मत्प्रयुक्तैः मया प्रेषितैः । उपजनय उत्पादय । द्वेषमिति शेषः । असमानेति–असमानोऽसदृशो यो दोषस्तस्य निन्दादिना गर्हणादिना–स्त्रीपुरुषौ सदृशावेव भवितुमुचितौ—स्त्रिया असमानो यदि पुरुषः स्यात्तदा तयोर्विवाहो दोष एवेत्यादिकथनेनेति भावः । स्वभर्तरि निजपत्यौ विकटवर्मणीत्यर्थः । अनुरूपभर्तृगामिनीनां लब्धयोग्यपतिकानाम् । अनुशयं पश्चात्तापम् । अवरोधनान्तरेषु अन्यस्त्रीषु । राज्ञः विकटवर्मणः ।

'हे कुमार ! कामरूपदेशके कलिन्दवर्मानामक राजाकी लड़की जिसका नाम कल्पसुन्दरी है, जो नृत्यगीतादि कलाओंमें निपुण है, जिसने अपने रूपके लावण्यसे अप्सराओंको भी तिरस्कृत कर दिया है वही अपने पति विकटवर्मा को मोहित करके राज-प्रासादमें रहती है । यद्यपि विकटवर्मा नृपतिकी अनेक रानियाँ हैं, परन्तु वह इसीको अपनी पटरानी समझता है ।'

(१०) इसके अनन्तर मैंने उस पुष्करिकासे कहा—'हे देवि ! यह मेरी दी हुई सुगन्धित मालाको कल्पसुन्दरीके समीप जा करके धर दो और उसके पतिके दोषोंको उससे (कल्पसुन्दरीसे) निन्दाके रूपमें प्रकट करो कि यह पति तुम्हारे असदृश है, तुम सरूपा हो, वह कुरूप है आदि । तथा वासवदत्ता आदि सुयोग्य रमणियोंका अपने अनुकूल पति पानेका वर्णन करो एवं पश्चात्ताप कराओ । तथा राजा विकटवर्माका दूसरी रमणियोंसे अधिक विलास आदि करना इस बातको प्रयत्नके साथ खोज करके कल्पसुन्दरीको बता दो और उसके मनमें क्रोध उत्पन्न करा दो ।' फिर मैंने उस वृद्धा मातासे

तव्या । प्रत्यहं च यद्यत्तत्र वृत्तं तदस्मि त्वयैव बोध्यः, मदुक्त्या पुनरियमुदर्कस्वादुनोऽस्मत्कर्मणः प्रसाधनाय च्छायेवानपायिनी कल्पसुन्दरीमनुवर्तताम्' इति । ते च तमर्थं तथैवान्वतिष्ठताम् ।

(११) केषुचिद्दिनेषु गतेष्वाचष्ट मां मदम्बा 'वत्स, माधवीव पिचुमन्दाश्लेषिणी यथासौ शोच्यमात्मानं मन्येत तथोपपाद्य स्थापिता । किं भूयः कृत्यम्' इति । पुनरहमभिलिख्यात्मनः प्रतिकृतिम् 'इयममुष्यै नेया ।

विलसितानि विहारादीनि । अन्विष्य अनुसन्धानेन आविष्कृत्य । मानं कोपम् । अनन्येति–नास्ति अन्यो व्यापारो यस्यास्तया परित्यक्तान्यकार्यया । उपस्थातव्या सेव्या । वृत्तं सञ्जातम् । बोध्यः ज्ञापनीयः । इयं पुष्करिका । उदर्को भाविफलं स्वादु मधुरं यस्य तस्य–शुभपरिणामस्येत्यर्थः । प्रसाधनाय सम्पादनाय । अनपायिनी अविच्छिन्ना । अनुवर्ततामनुसरतु । ते वृद्धा–पुष्करिके । तथैव यथा मयोक्तं तेनैव प्रकारेण ।

(११) गतेषु व्यतीतेषु । मामुपहारवर्माणम् । माधवी वासन्तीलता । पिचुमन्दाश्लेषिणी–निम्बवृक्षाश्रिता । पिचुमन्दं निम्बवृक्षमाश्लिष्यतीति तथोक्ता । असौ कल्पसुन्दरी । शोच्यं शोचनीयम् । निम्बवृक्षाश्रयणेन माधवीलताया यथा शोचनीयता भवति तथा कल्पसुन्दर्या अपि विकटवर्मपत्नीत्वस्वीकारेणेति भावः । उपपाद्य सम्पाद्य भूयः पुनः अग्रे इति यावत् । कृत्यं कर्तव्यम् । अभिलिख्य चित्रयित्वा । प्रतिकृतिं प्रतिमूर्त्तिम् । इयं प्रतिकृतिः । अमुष्यै–कल्पसुन्दर्यै–तदर्थमित्यर्थः । नेया प्रापणीया । नीतां प्रापिताम् । एनां प्रतिकृतिम् । निर्वर्ण्य दृष्ट्वा ।

यह कहा—'हे मातः ! आप भी सभी दूसरे कर्मोंको त्याग करके केवल कल्पसुन्दरी रानीकी सेवा करें । प्रत्येक दिवस वहाँपर जो भी समाचार मिले उसे आप स्वयं मुझसे आ करके कहें । इस पुष्करिकाको मेरे कहे वचनोंपर छायाके समान सदा रानी कल्पसुन्दरीकी सेवामें अवच्छिन्नरूपेण आरूढ़ रहना चाहिये । क्योंकि इस कार्यसे अन्तमें सुन्दर परिणाम होनेवाला है ।' वे दोनों मेरे कहे वाक्योंपर दृढ़ रह करके वैसा ही करने लगीं ।

(११) कुछ दिवसोंके बीतनेपर मेरी वृद्धा माताने मुझसे (उपहारवर्मासे) आ करके कहा—'हे वत्स ! जैसे वासन्तीलताकी दशा नीमके वृक्षपर शोचनीया होती है उसी प्रकारसे मैंने रानी कल्पसुन्दरीकी शोचनीया दशा कर दी है । अब इसके पश्चात् मुझे जो आज्ञा हो वैसा कार्य मैं करूँ ।' तदनन्तर मैंने अपना चित्र खींच करके उसे दिया और कहा कि 'यह चित्र उस रानी कल्पसुन्दरीको दे दो । इस चित्रको अवलोकन

नीतां चैनां निर्वर्ण्य सा नियतमेवं वक्ष्यति । 'नन्वस्ति कश्चिदीदृशाकारः पुमान्' इति । प्रतिब्रूह्येनाम्––'यदि स्यात्ततः किम्' इति । तस्य यदुत्तरं सा दास्यति 'तदहमस्मि प्रतिबोधनीय' इति ।

(१२) सा 'तथा' इति राजकुलमुपसंक्रम्य प्रतिनिवृत्ता मामेकान्ते न्यवेदयत्––'वत्स, दर्शितोऽसौ चित्रपटस्तस्यै मत्तकाशिन्यै । चित्रीयमाणा चासौ भुवनमिदं सनाथीकृतं यद्देवेऽपि कुसुमधन्वनि नेदृशी वपुःश्रीः संनिधत्ते । चित्रमेतच्चित्रतरम् । न च तमवैमि य ईदृशमिदमिहत्यो निर्मिमीते । केनेदमालिखितम्' इत्यादृतवती व्याहृतवती च । मया च

सा कल्पसुन्दरी । नियतम् अवश्यम् । एवं वक्ष्यमाणम् । ईदृशाकारः ईदृश एवम्भूत आकार आकृतिर्यस्य सः । प्रतिब्रूहि–प्रत्युत्तरय । यदि स्यात्–ईदृशाकारः पुरुषो यदि लभ्येत । ततस्तर्हि । किम् भविष्यतीति शेषः । तस्य वचनस्य । उत्तरं प्रतिवचनम् । सा राजपत्नी । तद् प्रतिवचनम् । प्रतिबोधनीयः विज्ञापनीयः त्वयेति शेषः ।

(१२) सा वृद्धा तापसी । तथा–तथास्तु इति प्रतिज्ञाय । राजकुलं नृपतिमन्दिरम् । उपसंक्रम्य गत्वा । प्रतिनिवृत्ता प्रत्यागता राजकुलादिति शेषः । मामुपहारवर्माणमित्यर्थः । चित्रपटः प्रतिकृतिः । मत्तकाशिन्यै वराङ्गनायै । चित्रीयमाणा–आश्चर्यम्मन्यमाना । असौ राजपत्नी । सनाथीकृतं नाथवद् विहितम् । कुसुमधन्वनि–कामे । वपुः श्रीः–शरीरकान्तिः । न संनिधत्ते–न समीपमायाति, नास्तीत्यर्थः । चित्रं चित्रपटः । तं तादृशं पुरुषम् । अवैमि जानामि पश्यामीत्यर्थः । ईदृशं अतिसुन्दरमित्यर्थः । इदं चित्रम् । इहत्यः एतद्देशस्थः । निर्मिमीते चित्र-

करके वह रानी अवश्य कहेगी कि क्या इस प्रकारके रूपवाला कोई पुरुष है ?' तब तुम उस रानीको प्रत्युत्तर देना कि 'यदि हो तो. क्या करनेकी आज्ञा है ?' इस प्रत्युत्तरका जो उत्तर हो वह तुम मुझसे आ करके कहना ।

(१२) उस वृद्धा माताने 'तथा' ठीक है ऐसा स्वीकार किया और राजमन्दिरमें चली गई । और वहांसे लौटनेपर उस वृद्धाने मुझसे एकान्तमें निवेदन किया—'हे वत्स ! मैंने यह चित्रपट उस सुन्दर अङ्गोंवाली रानीको दिखाया । आश्चर्यमन्यमाना उस रानी कल्पसुन्दरीने कहा—'इस लोकको इस पुरुषने सनाथ कर दिया है तथा इसके मुकाबिले सौन्दर्य कामदेवके शरीरमें भी सन्निहित नहीं है । अथवा–चित्रपट देख करके रानीने अपने मनमें उस चित्रगत पुरुषको पतिके समान मान लिया । यह चित्र अत्यन्त आश्चर्यकारी है । मुझको मालूम नहीं होता कि ऐसे चित्रका रचयिता कोई पुरुष इस

स्मेरयोदीरितम्—'देवि, सदृशमाज्ञापयसि । भगवान्मकरकेतुरप्येवं सुन्दर इति न शक्यमेव संभावयितुम् । अथ च विस्तीर्णेयमर्णवनेमिः । क्वचिदीदृशमपि रूपं दैवशक्त्या संभवेत् । अथ तु यद्येवंरूपो रूपानुरूपशिल्पशीलविद्याज्ञानकौशलो युवा महाकुलीनश्च कश्चित्संनिहितः स्यात्, स किं लप्स्यते' इति ।

(१३) तयोक्तम्—'अम्ब, किं ब्रवीमि । शरीरं हृदयं जीवितमिति सर्वमिदमल्पमनर्हं च । ततो न किंचिल्लप्स्यते । न चेदयं विप्रलम्भस्तस्यामुष्य दर्शनानुभवेन यथेदं चक्षुश्चरितार्थं भवेत्तथानुग्रहः कार्यः' इति ।

यति । आदृतवती आदरं दर्शितवती । व्याहृतवती उक्तवती । मया वृद्धयेत्यर्थः । स्मेरया सहासया । सदृशं युक्तम् । मकरकेतुर्मदनः । एव एतादृशः । अर्णवनेमिः पृथिवी । क्वचित्–कुत्रापि । अथ तु–आस्ताम् । एवंरूपः एतादृशः । रूपानुरूपेति–रूपस्य सौन्दर्यस्यानुरूपं सदृशं शिल्पं कलाविद्या, शीलं स्वभावः, विद्या अष्टादश प्रकारा, ज्ञानं लिप्यादिज्ञानं कौशलं नैपुण्यञ्च यस्यासौ । युवा तरुणः । महाकुलीनः उच्चवंशोद्भवः । सन्निहितः निकटवर्त्ती । स तादृशो युवा । किं लप्स्यते—चित्रदर्शनसन्तुष्टाया भवत्याः सकाशात् कं पुरस्कारं प्राप्स्यतीत्यर्थः ।

(१३) तया राजपत्न्या । शरीरं मम देहं हृदयं चित्तं जीवितं प्राणांश्च, लप्स्यत इत्यनेनान्वयः । सर्वमिदं–यन्मया शरीरादिके दास्यते तदखिलं, अल्पं तुच्छं अनर्हं तस्यायोग्यञ्च । ततः—यतः शरीरादिकं मे तस्यायोग्यं तस्मात् । न किञ्चिल्लप्स्यते–किमपि न प्राप्स्यति । विप्रलम्भः वंचनम्–त्वं यदि मिथ्या न

लोकमें है । किसने इस चित्रको खींचा है ?' इस प्रकारसे इस चित्रका आदर करने लगी और मुझसे (वृद्धासे) पूछने लगी । मैंने मन्द हास्य करके कहा—'हे देवि ! आप युक्तियुक्त कहती हैं । क्योंकि भगवान् मकरकेतु (कामदेव) भी इतना सुन्दर है ऐसी सम्भावना करनेका सामर्थ्य भी किसीमें नहीं है । फिर यह पृथ्वी बड़ी विस्तीर्णा है । भाग्यवश कहीं पर ऐसा रूपवान् प्राप्त हो सकता है । और यदि ऐसा ही सौन्दर्यानुरूपवाला, शिल्पकलामें निपुण, शीलवान्, विद्यावान्, विज्ञानवेत्ता, कलाकौशलवाला, उच्चवंशवाला कोई युवक मिल गया तो वह क्या पुरस्कार पावेगा ?'

(१३) उस रानी कल्पसुन्दरीने उत्तर दिया—'हे अम्ब ! क्या कहूँ । मेरी देह, हृदय, जीवन, ये सब उसके लिये थोड़े और अनुरूप नहीं होंगे । इससे—शरीरादिसे अधिक और कुछ नहीं वह पा सकेगा । यह मैं प्रवञ्चना नहीं करती हूँ । अपितु, जिस रीतिसे हो उस रीतिसे उस पुरुषके दर्शन करा करके मेरी आँखोंको चरि-

भूयोऽपि मया दृढतरीकर्तुमुपन्यस्तम्—'अस्ति कोऽपि राजसूनुर्निगूढं चरन् । अमुष्य वसन्तोत्सवे सहसखीभिर्नगरोपवनविहारिणी रतिरिव विग्रहिणी यदृच्छया दर्शनपथं गतासि । गतश्चासौ कामशरैकलक्ष्यतां मामन्ववर्तिष्ट । मया च वामन्योन्यानुरूपैरन्यदुर्लभैराकारादिभिर्गुणातिशयैश्च प्रेर्यमाणया तद्रचितैरेव कुसुमशेखरस्रगनुलेपनादिभिश्चिरमुपासि-

कथयसि तर्हीति तात्पर्यम् । तस्य पूर्वोक्तस्य । अमुष्य—तरुणस्य । यथा—येन प्रकारेण । इदं चक्षुर्मम नयनम् । चरितार्थं सार्थकम् । कृतकृत्यमिति यावत् । तथा तेन प्रकारेण । अनुग्रहः—कृपा । कार्यः विधेयस्त्वयेति शेषः । मया वृद्धयेत्यर्थः । दृढतरीकर्त्तुं—त्वयि तस्या अनुरागं निश्चलीकर्त्तुम् । उपन्यस्तं कथितम् । निगूढं—सुगुप्तम् । अमुष्य—राजपुत्रस्य । नगरोपवनविहारिणी—पुरोद्यानविहरणशीला । विग्रहिणी—मूर्त्तिमती । यदृच्छया दैववशात् । दर्शनपथं—नयनमार्गं गतासि—दृष्टासीत्यर्थः । असौ राजपुत्रः । कामशरैकलक्ष्यतां मदनबाणवेध्यतताम् गतश्चेत्यनुषज्यते । मां वृद्धामित्यर्थः । अन्ववर्त्तिष्ट—अनुसृतवान् । वां युवयोः । राजपत्न्यास्तव चेत्यर्थः । अन्योन्यानुरूपैः तुल्यरूपैः । प्रेर्यमाणया नोद्यमानया । तद्रचितैः तेन राजसूनुना निर्मितैः । कुसुमेति—कुसुमशेखरः आपीडः, स्रक् माल्यं अनुलेपनं गन्धादि तैः । उपासिता सेविता । सादृश्यं प्रतिकृतिम् । स्वं स्वकीयम् । अनेन राजपुत्रेण । अभिलिख्य चित्रयित्वा । त्वदिति तव समाधेश्चित्तैकाग्रयस्य गाढत्वं गभीरत्वं द्रष्टुमित्यर्थः । एषः—यस्त्वया प्रागेवोक्तोऽर्थो विषयः । निश्चितः नियतो दृढ इति यावत् । अमुष्य राजसूनोः । अतिमानुषेति—अतिमानुषः

तार्थ करनेकी दया करो ।' तत्पश्चात् मैंने (वृद्धाने) उस बातको पुष्ट करनेके निमित्त रानीसे (अर्थात्—रानीका आप पर प्रेम है कि नहीं इसे जाननेके लिये) कहा—'हे रूपसुन्दरी ! इस नगरमें कोई राजपुत्र गुप्त वेषमें घूमता है । वसन्तोत्सवके समय अपनी सखी-सहेलियोंके सहित अपनी विरोधिनी रतिदेवीके सदृश सुन्दर रूपवाली अपनी इच्छासे नगरकी वाटिकाओंमें विचरण करनेवाली आप उस राजपुत्रद्वारा देखी गयी हैं । आपको देखते ही वह राजपुत्र कामबाणसे वेधित हो करके मेरे समीप आया । मैंने भी सोचा कि आप दोनोंके समान स्वरूप हैं, अन्योंमें अप्राप्य आकृतियाँ हैं, समान अतिशय गुण हैं, अतः उससे प्रेरित हो करके मैंने उस राजपुत्रके द्वारा रचित आपीड़, माला, गन्धादि अनुलेपनद्वारा आपकी दीर्घकालसे सेवा की है । अपनी प्रतिकृति आपको दिखानेके हेतु उस राजपुत्रने, अपने हाथोंसे अपनी तस्वीर खींच करके, आपके प्रति अपना गम्भीर प्रेम प्रकट करनेके लिए ही, मेरे द्वारा भेजी है । यदि आपका अभीष्ट निश्चितरूपसे

तासि । सादृश्यं च स्वमनेन स्वयमेवाभिलिख्य त्वत्समाधिगाढत्वदर्शनाय प्रेषितम् । एष चेदर्थो निश्चितस्तस्यामुष्यातिमानुषप्राणसत्त्वप्रज्ञाप्रकर्षस्य न किंचिद्दुष्करं नाम । तमद्यैव दर्शयेयम् । संकेतो देयः' इति ।

(१४) तया तु किंचिदिव ध्यात्वा पुनरभिहितम्—'अम्ब, तव नैतदिदानीं गोप्यतमम् । अतः कथयामि । मम तातस्य राज्ञा प्रहारवर्मणा सह महती प्रीतिरासीत् । मातुश्च मे मानवत्याः प्रियवयस्या देवी प्रियंवदासीत् । ताभ्यां पुनरजातापत्याभ्यामेव कृतः समयोऽभूत्–'आवयोः पुत्रवत्याः पुत्राय दुहितृमत्या दुहिता देया' इति । तातस्तु मां जातां प्रनष्टापत्या प्रियंवदेति प्रार्थयमानाय विकटवर्मणे दैवाद्दत्तवान् ।

मानुषमतिक्रान्तः अलौकिक इत्यर्थः । प्राणानां सत्त्वस्य पराक्रमस्य प्रज्ञाया बुद्धेश्च प्रकर्ष उत्कर्षो यस्य तथाभूतस्य । दुष्करं असाध्यम् । संकेतः इङ्गितं । देयस्त्वयेति शेषः ।

(१४) तया राजपत्न्या । ध्यात्वा विचिन्त्य । तव या खलु मदर्थं दुष्करमप्येतत्कार्यं साधयितुं प्रवृत्ता तथाविधायाः सम्बन्धे । गोप्यतमं अतिशयेन गोप्यमिति मम तातस्य–मत्पितुः । प्रियंवदा–प्रहारवर्ममहिषी, उपहारवर्मजननी च । ताभ्यां–मानवतीप्रियंवदाभ्याम् । अजातेति–न जातमुत्पन्नमपत्यं सन्ततिर्ययोस्ताभ्याम् मम जन्मतः प्रागेवेत्यर्थः । समयः शपथः प्रतिज्ञेति यावत् । आवयोर्द्वयोर्मध्ये । पुत्रवत्याः सञ्जातपुत्रायाः । दुहितृमत्या–कन्यकाजनन्या । प्रनष्टापत्या–मृतपुत्रा । इति इतिहेतोः । प्रार्थयमानाय याचमानाय ।

दृढ़ है तो उस अलौकिक राजपुत्रसे, जो, बल बुद्धि और दक्षतामें निपुण है, कोई भी कार्य असाध्य नहीं है । मैं आज ही उस राजपुत्रको ला सकती हूँ । आप संकेत तो दें ।'

(१४) वह रानी कल्पसुन्दरी कुछ देरतक ध्यानमग्ना होकर सोचने लगी और फिर बोली—'हे अम्ब ! तुमसे अब मेरी कोई भी वार्ता गुप्त नहीं है । इससे (कुछ पूर्वकथा) कहती हूँ । मेरे पिताकी प्रहारवर्मा नृपतिके साथ प्रगाढ़ मित्रता थी । मेरी माताकी मित्रता देवी प्रियम्वदाके साथ थी । (जो प्रियम्वदा प्रहारवर्माकी महिषी और उपहारवर्मा की जननी थीं) उन दोनों मानवती और प्रियम्वदाको जिस समय कोई सन्तान भी उत्पन्न न हुई थी उसी समय दोनों सखियोंने आपस में शपथ ले ली थी कि हम दोनोंमें जिसे पुत्र हो तथा जिसे पुत्री हो उन दोनों भावी सन्तानोंका विवाह परस्पर होवे । परन्तु मेरे पिताने देवी प्रियम्वदाके पुत्रको अरण्यमें नष्ट हुआ जान करके दैवयोगसे विवाहकी प्रार्थना करनेवाले विकटवर्माके साथ मेरा विवाह कर दिया ।

(१५) अयं च निष्ठुरः पितृद्रोही नात्युपपन्नसंस्थानः कामोपचारेष्वलब्धवैचक्षण्यः कलासु काव्यनाटकादिषु मन्दाभिनिवेशः शौर्योन्मादी दुर्विकत्थनोऽनृतवादी चास्थानवर्षी । नातिरोचते मे एष भर्ता विशेषतश्चैषु वासरेषु यदयमुद्याने मदन्तरङ्गभूतां पुष्करिकामप्युपान्तवर्तिनीमनादृत्य मयि बद्धसापत्न्यमत्सरामनात्मज्ञामात्मनाटकीयां रमयन्तिकां

(१५) अयं विकटवर्मा । निष्ठुरः–निर्दयः । पितृद्रोही–पितुरनिष्टकारकः । पितृव्यस्य पितृतुल्यत्वादत्र पितृपदम् । नात्युपपन्नेति–नात्युपपन्नं अननुगुणं संस्थानमवयवसन्निवेशो यस्यासौ । दुर्लक्षणयुक्तशरीरावयवः कुरूप इति यावत् । कामोपचारेषु मदनव्यापारेषु । अलब्धवैचक्षण्यः अप्राप्तनैपुण्यः । कलासु चतुःषष्टिप्रकारासु । मन्दाभिनिवेशः शिथिलाग्रहः । शौर्योन्मादी–बलदर्पोन्मत्तः । दुर्विकत्थनः–दुष्टः आत्मश्लाघानिरतश्च । अनृतवादी–मिथ्याभाषणशीलः । अस्थानवर्षी–अयोग्यपात्रे दानशीलः । नातिरोचते प्रीतिकरो न भवति । मे–मह्यम् रुच्यर्थप्रयोगे चतुर्थी । विशेषतश्च–इतोऽप्यधिकम् । एषु वासरेषु–साम्प्रतम् । यत्–यस्मात् । अयं विकटवर्मा । मदन्तरङ्गभूताम् आत्मीयाम् । पुष्करिकां एतन्नामिकाम् । उपान्तवर्त्तिनीं समीपस्थिताम् । अनादृत्य–अवज्ञाय । बद्धेति–बद्धः धृतः सापत्न्यस्य सपत्नीत्वस्य मत्सरोऽसहनीयता यया ताम् । धृतसापत्न्यविद्वेषामित्यर्थः । अनात्मज्ञां–स्वयोग्यताज्ञानरहिताम् । आत्मनाटकीयां स्वकीयनर्त्तकीम् । रमयन्तिकेति नर्त्तक्या नाम । अपत्यनिर्विशेषं स्वसन्तानवत् । मत्संवर्द्धितायाः–मया

(१५) यह विकटवर्मा अत्यन्त निष्ठुर है, बापके साथ द्रोह करनेवाला है, इसके शरीरकी बनावट भी अच्छी नहीं है । रति-लीलामें पटु नहीं है । चौसठ प्रकारकी कलाओंमें तथा काव्य-नाटकादिमें भी शिथिल है । वीरतामें मदोन्मत्त है । आत्मप्रशंसा करनेवाला है । असत्यवादी है और अयोग्योंको दान देनेवाला है । इस तरीकेका दुर्विनीत पति मुझे नहीं अच्छा लगता है । विशेष करके आजकलके दिनोंमें यह मेरा पति विकटवर्मा मेरी आत्मीया तथा सदा समीप रहनेवाली पुष्करिका का अनादर करता है । तथा जो मेरी समृद्धि नहीं पसन्द करती ऐसी एवं जो मुझसे सौतपना (सापत्न्यभाव) रखती है ऐसी और जो अपने स्वरूपके ज्ञानको भी नहीं जानती ऐसी रमयन्तिका नामक नर्त्तकीको चाहता है । जिस चम्पकलताको मैंने पुत्रके समान सींच करके बनाया है उसी चम्पकलताके फूलोंको अपने हाथोंसे चुन करके उस रमयन्तिका नर्त्तकी का शृंगार करता है । मेरे द्वारा उपभोग करके त्यागी हुई क्रीड़ा-पर्वतमें स्थित, मणियोंकी शय्यापर उस नर्त्तकी रमयन्तिकाके साथ रमण करता है । यह मेरा पति मूर्ख

नामापत्यनिर्विशेषं मत्संवर्धितायाश्चम्पकलतायाः स्वयमवचिताभिः सुमनोभिरलमकार्षीत् । मदुपभुक्तमुक्ते चित्रकूटगर्भवेदिकागते रत्नतल्पे तया सह व्यहार्षीत् । अयोग्यश्च पुमानवज्ञातुं च प्रवृत्तः । तत्किमित्यपेक्ष्यते । परलोकभयं चैहिकेन दुःखेनान्तरितम् । अविषह्यं हि योषितामनङ्गशरनिषङ्गीभूतचेतसामनिष्टजनसंवासयन्त्रणादुःखम् । अतोऽमुना पुरुषेण ममाद्योद्यानमाधवीगृहे समागमय । तद्वार्ताश्रवणमात्रेणैव हि ममातिमात्रं

संवर्द्धितायाः जलसेकादिना पुष्टिं गमितायाः । चम्पकलतेति वृक्षविशेषः । स्वयम् स्वहस्तेन । अवचिताभिः–लूनाभिः । सुमनोभिः कुसुमैः । सुमनःशब्दस्य स्त्रीलिङ्गत्वात्तद्विशेषणस्य स्त्रीत्वम् । अलमकार्षीत्–भूषयामास । मदुपभुक्तेति–मया आदौ उपभुक्तमनुभूतं पश्चान्मुक्तं त्यक्तं यत्तस्मिन् । चित्रकूटेति–चित्रकूटः क्रीडापर्वतस्तस्य गर्भे गुहायां या वेदिका परिष्कृतभूमिस्तत्र गतं तस्मिन् । रत्नतल्पे—रत्ननिर्मितशयने । तया रमयन्तिकया । व्यहार्षीत् विहारमकरोत् । अयोग्यश्चेति यः पुरुषः स्वयमयोग्यो मूर्खत्वादिदोषयुक्तः स पुनरन्यं तिरस्कर्तुं प्रवृत्तः एतदेवाश्चर्यमिति भावः । तत् तस्मात् कारणात् । किमिति–कथम् । अपेक्ष्यते–नैवापेक्ष्यते मयेति शेषः । तस्यापेक्षा न कार्येति भावः । परलोकभयमिति–योषितां पतिपरित्यागेन परलोकाद्भयमस्त्येव तथापि तद्भयं परलोकगमने सति भाव्यम् ऐहिकं दुःखमिहजन्मनि भोग्यमतः परलोकभयमैहिकेन दुःखेनान्तरितं व्यवधानीकृतमिति भावः । अविषह्यं सोढुमशक्यम् । अनङ्गेति–अनङ्गशराणां कामबाणानां निषङ्गीभूतं तूणीरीभूतं आधारभूतमितियावत् चेतश्चित्तं यासां तथाभूतानाम् । अनिष्टेति–अनिष्टजनेन अप्रियजनेन सह संवासश्चिरमेकत्रवसतिस्तस्य या यन्त्रणा नियमनं चिरमनेन सह त्वया वस्तव्यमित्येतद्रूपं तेन यद्दुःखं क्लेशः । अमुना त्वयोक्तेन । पुरुषेण युवकेन सहेति शेषः । मम मामित्यर्थः । उद्यानमाधवीगृहे–उद्यानस्थितवासन्तीलतागृहे । समागमय–सम्मेलय । अतिमात्रमत्यन्तम् ।

है और इसीसे अन्योंका तिरस्कार करनेमें प्रवृत्त हुआ है। मैं अब क्यों उसकी अपेक्षा करूँ। यदि यह कहा जाय कि परलोकके भयसे डरूँ तो इस लोकके दुःखोंसे परलोकका भय भी व्यवधानीभूत (बाधित) हो जाता है। कामदेवके बाणके आधारभूत अन्तःकरणवाली अबलाओंको अपनेको कष्ट देनेवाले पतिके सहवाससे जो यन्त्रणाएँ (व्यथाएँ) होती हैं वे असह्य होती हैं। अतएव इस चित्रगत पुरुषके साथ आज उपवनके माधवीलता-मण्डपमें मेरा संयोग करा दो। उस राजपुत्रकी वार्त्ताके श्रवणसे ही मेरा चित्त उसकी ओर अत्यधिक अनुरक्त हो गया है। यह जो धनकी राशि मेरे पास है

मनोऽनुरक्तम् । अस्ति चायमर्थराशिः । अनेनामुष्य पदे प्रतिष्ठाप्य तमेवात्यन्तमुपचर्य जीविष्यामि' इति । मयापि तदभ्युपेत्य प्रत्यागतम् । अतः परं भर्तृदारकः प्रमाणम्' इति ।

(१६) ततस्तस्या एव सकाशादन्तःपुरनिवेशमन्तर्वंशिकपुरुषस्थानानि प्रमदवनप्रदेशानपि विभागेनावगम्य, अस्तगिरिकूटपातक्षुभितशोणित इव शोणीभवति भानुबिम्बे, पश्चिमाम्बुधिपयःपातनिर्वापितपतङ्गाङ्गारधूमसंभार इव भरिततमसि नभसि विजृम्भिते, परदारपरामर्शोन्मु-

अस्ति मत्समीप इत्यर्थः । अर्थराशिः-धनसमूहः । अनेन-अर्थराशिना । अमुष्य—विकटवर्मणः । पदे-स्थाने भर्तृपद इत्यर्थः । तमेव-चित्रलिखितं युवानमेव । उपचर्य संसेव्य । इत्यन्तं कल्पसुन्दरीवाक्यम् । मया-वृद्धतापस्या । अभ्युपेत्य—एवं करिष्यामीति स्वीकृत्य । भर्तृदारको राजपुत्रः भवानित्यर्थः । प्रमाणं यदत्र विधेयं तत्क्रियतामित्यर्थः ।

(१६) तस्या एव-वृद्धाया एव । अन्तःपुरनिवेशम् अवरोधप्रदेशम् । अन्तर्वंशिकेति-अन्तर्वंशिकपुरुषाणाम् अवरोधाधिकृतानां रक्षिपुरुषाणां स्थानानि के कुत्र तिष्ठन्तीति भावः । प्रमदवनप्रदेशान् क्रीडोद्यानदेशान् । एतानि अवगम्येति क्रियायाः कर्मभूतानि । विभागेन पृथक् पृथग्रूपेण । अवगम्य-विदित्वा । अस्तगिरीति—अस्तगिरेरस्ताचलस्य कूटाच्छिखरात्पातेन पतनेन क्षुभितं निर्गतं शोणितं रुधिरं यस्य तस्मिन्निवेत्युत्प्रेक्षा । शोणीभवति-रक्तीभवति । भानुबिम्बे सूर्यमण्डले । पश्चिमेति-पश्चिमाम्बुधेः पश्चिमसमुद्रस्य पयसि जले पातेन निमज्जनेन निर्वापितः शान्तः पतङ्गः सूर्य एवाङ्गारो ज्वलत्काष्ठावयवस्तस्य धूमसम्भारो धूमराशिर्यस्मिन् तस्मिन्निवेत्यत्र रूपकोत्प्रेक्षयोः सङ्करः । भरिततमसि—भरितं पूर्ण-

इसी धनके समूहद्वारा मैं उस राजपुत्रको इस विकटवर्मा राजाके स्थानपर आरूढ़ करा करके उसी राजपुत्रकी सेवा-अर्चा करके जीवन व्यतीत करूँगी।' मैं भी (वृद्धा भी) उस रानीको स्वीकृति दे करके यहाँ आयी हूँ। अब इसके पश्चात् हे राजपुत्र! आप जो चाहें सो कार्य करें।

(१६) इसके अनन्तर मैंने उसी वृद्धासे अन्तःपुरका प्रदेश, अन्तःपुरके रक्षापुरुषोंके स्थानोंको और क्रीड़ोद्यानके प्रवेशस्थानको पृथक्-पृथक् रूपसे ज्ञात कर लिया। अस्ताचल की चोटीके ऊपरसे गिरनेके कारण निकले हुए शोणितके समान जब सूर्यबिम्ब लाल-लाल हो गया तब, तथा जब पश्चिमके समुद्रमें सूर्यके बिम्बरूपी अंगारेके बुझनेसे उत्पन्न जो धूम्र-पटल द्वारा आकाश परिव्याप्त हो गया तब, एवं जब दूसरेकी स्त्रीके साथ समागम

खस्य ममाचार्यकमिव कर्तुमुत्थिते गुरुपरिग्रहश्लाघिनि ग्रहाग्रेसरे क्षपाकरे, कल्पसुन्दरीवदनपुण्डरीकेणेव मद्दर्शनातिरागप्रथमोपनतेन स्मयमानेन चन्द्रमण्डलेन संधुक्षमाणतेजसि भुवनविजिगीषोद्यते देवे कुसुमधन्वनि, यथोचितं शयनीयमभजे । व्यचीचरं च—'सिद्धप्राय एवायमर्थः । किंतु परकलत्रलङ्घनाद्धर्मपीडा भवेत्, साप्यर्थकामयोर्द्वयोरुपलम्भे शास्त्रकारैरनुमतैवेति गुरुजनबन्धमोक्षोपायसंधिना मया चैष व्यतिक्रमः कृतः,

तमो यस्मिन्—पूर्णान्धकारे । नभसि गगने । विजृम्भिते—विकाशं गते । परदारेति—परस्य दाराः परस्त्री तस्याः परामर्शोऽभिगमनं तत्रोन्मुखस्य प्रवृत्तस्य । आचार्यकं—आचार्यकर्म—उपदेशकत्वमिति यावत् । उत्थिते—उदिते । गुरुपरिग्रहेति—गुरोर्बृहस्पतेः परिग्रहः स्त्री तारा तां श्लाघतेऽभिलषतीति तच्छीले । ग्रहाग्रेसरे—ग्रहप्रधाने । क्षपाकरे चन्द्रे । कल्पसुन्दरीति—कल्पसुन्दर्या राजपत्न्या वदनपुण्डरीकेण मुखकमलेनेवेत्युपमा । कीदृशेन—मद्दर्शनेति मद्दर्शनाय मदवलोकनाय योऽतिरागः प्रबलेच्छा तेन प्रथमोपनतेन प्रागेव उपस्थितेन । पुनः कीदृशेन स्मयमानेन—ईषद्धसता विकसतेति भावः । सन्धुक्षमाणतेजसि-प्रवृद्धप्रकाशे । भुवनेति—भुवनस्य जगतो विजिगीषया जयेच्छया उद्यते प्रवृत्ते । कुसुमधन्वनि—कामे । यथोचितं यथायोग्यम् । शयनीयं तल्पम् । अभजे आश्रितवानहमिति शेषः । व्यचीचरम् अचिन्तयम् । सिद्धप्रायः-प्रायेण बाहुल्येन सिद्धः सम्पन्नः । अर्थः प्रयोजनम् । कल्पसुन्दरीप्राप्तिपूर्वकपितृराज्यप्राप्तिरूपम् । परकलत्रलङ्घनात् परस्त्रीपरामर्शात् । धर्मपीडा—धर्मबाधा—धर्मनाशो वा । सापि धर्मपीडापि । उपलम्भे प्राप्तौ । शास्त्रकारैर्मन्वादिधर्मशास्त्रकारैः । अनुमता न निषिद्धा । गुरुजनेति गुरुजनयोः पित्रोर्बन्धाद्बन्धनान्मोक्षे मोचने सन्धिरभिसन्धिर्यस्य तेन तथाभूतेन । व्यतिक्रमः धर्मलङ्घनम् । तदपि पापं परस्त्रीधर्षणरूपम् । निर्हृत्य दूरीकृत्य । कियत्या स्वल्पया । धर्मकलया पितृ-

करनेमें निपुण मेरे आचार्यके समान (परस्त्रीगमनमें मेरे गुरुके सदृश) अपनी गुरुपत्नीके साथ व्यभिचार करनेका स्वभाव रखनेवाले ग्रहोंमें श्रेष्ठ चन्द्रमाका उदय हुआ तब, तथा मेरे दर्शनकी अभिलाषाके पूर्वमें ही प्राप्त कल्पसुन्दरी देवीके मुखकमलसे विस्मित चन्द्रमाके मण्डलसे वृद्धिको प्राप्त तेजवाला तथा तीनों लोकोंके विजयकी इच्छासे पूर्ण कुसुमधन्वा कामदेवके उद्यत होते ही मैंने यथोचित शय्याका ग्रहण किया । मैं विचारने लगा कि यह कार्य कल्पसुन्दरीकी प्राप्ति आदि तो अब बहुत करके सिद्ध है ही, परन्तु परस्त्रीगमनसे धर्मका नाश होगा । किन्तु मनु आदि शास्त्रवेत्ताओंने उस धर्मनाशको निषिद्ध नहीं माना है जिसमें अर्थ और कामकी प्राप्ति होती हो । मैं जननी-जनकको कारागारसे छुड़ानेके लिए यह धर्मनाश कर रहा हूँ । यह परस्त्रीगमन

तदपि पापं निर्हृत्य कियत्यापि धर्मकलया मां समग्रयेदिति ।

(१७) अपि त्वेतदाकर्ण्य देवो राजवाहनः सुहृदो वा किं नु वक्ष्यन्ति' इति चिन्तापराधीन एव निद्रया परामृश्ये । अदृश्यत च स्वप्ने हस्तिवक्त्रो*भगवान् । आहस्म च–'सौम्य उपहारवर्मन् , मा स्म ते दुर्विकल्पो भूत् । यस्त्वमसि मदंशः । † शङ्करजटाभारलालनोचिता सुरसरि-

-मोचरूपधर्मांशेन । समग्रयेत् पूरयेत् । समग्रयेदित्यस्याः क्रियायाः कर्तृपदम् 'एष व्यतिक्रम' इति ।

(१७) अपि तु–किन्तु । एतत्–मम परस्त्रीपरामर्शम् । चिन्तापराधीनः चिन्ताग्रस्तः । परामृश्ये अस्पृश्ये-निद्रितोऽभवमित्यर्थः । हस्तिवक्त्रः–गणेशः । आहस्म स्वप्ने गजाननः कथयामास । मास्म भूत्–न भवतु । मास्मयोगे लुङ् अडागमप्रतिषेधश्च । दुर्विकल्पः–दुर्विचारः मदंशः–ममावतारः । शङ्करेति–शङ्करस्य शिवस्य जटाभारेण जटाजूटेन यल्लालनं धारणं तत्रोचिता अभ्यस्ता । सुरसरित्–गङ्गा ।

रूपी पाप, मेरेद्वारा किये माता-पिताके उद्धाररूपी पुण्यके, स्वल्पांशसे धुल जायगा । और मुझे पुण्यशाली बनावेगा ।

(१७) परन्तु, यह परस्त्रीगमन आदिका वृत्त सुन करके देव राजवाहन तथा अन्य मित्रगण क्या कहेंगे । इसी विचार-विमर्शमें चिन्ताग्रस्त हो करके मैं निद्राके वशीभूत हो गया । और स्वप्नगत होकर मैंने श्रीगजानन भगवान् के दर्शन किये । उन गणेश भगवान्ने कहा—'हे सौम्य ! उपहारवर्मन् !! तुम दुर्विचारग्रस्त मत हो । तुम तो मेरे

* अदृश्यत च स्वप्ने भगवान् भर्गः । इति पाठान्तरम् ।

† मज्जटाभारलालनोचितामरसरिदसौ वरवर्णिनी, ताञ्च कदाचिद् गजाननो जलक्रीडां कुर्वन्नतिव्यगाहत । सा च सपत्नीतनयविहितां विलोडनामसहमाना तमशपत् एहि मर्त्यत्वमिति । सोऽपि अहेतुकशापप्रदानात् क्रुद्धस्तामशपत्–यथेह बहुभोग्या तथा प्राप्यापि मानुष्यकमनेकसाधारणी भवेति । ततस्तेन प्रतिशप्ता सा विलक्षेव मामुपसृत्य सगद्गदमगदत् स्वामिन् अहमनवरत भवच्चरणवरिवस्याविधायिनी न शापार्हेति । आकर्ण्य कृपाक्रान्तमनसा मयोक्तं प्रिये नास्य शापोऽन्यथा भवितुमर्हति, परं त्वदनुग्रहार्थमहमात्मनोऽशं द्विधा विभज्य विकटवर्मनृपरूपेण मिथिलापतिप्रहारवर्मात्मजोपहारवर्मात्मना च मर्त्यलोकेऽवतरिष्यामि त्वञ्च कामरूपाधिपतेः कलिङ्गवर्मनाम्नः कन्या कल्पसुन्दरी नाम भूत्वा ज्यायसा मदंशेन विकटवर्मणा प्रथममल्पीयांसमनेहसं संगता तस्मिन् विकटवर्मनि मन्मूर्त्तावेव लयमुपगते पुनरुपहारवर्मात्मकं कनीयांसं मदंशमुपलभ्य तेन साकं विविधसुखोपभोगमनुभविष्यसि । इति पा० ।

दसौ वरवर्णिनी। सा च कदाचिन्मद्विलोडनासहिष्णुर्मामशपत्—'एहि मर्त्यत्वम्' इति। अशप्यत मया च—'यथेह बहुभोग्या तथा प्राप्यापि मानुष्यकमनेकसाधारणी भव' इति। अभ्यर्थितश्चानया 'एकपूर्वा पुन-स्त्वामेवोपचर्य यावज्जीवं रमय' इति। तदयमर्थो भव्य एव भवता निरा-शङ्क्यः' इति। प्रतिबुध्य च प्रीतियुक्तस्तदहरपि प्रियासङ्केतव्यतिकरादि-स्मरणेनाहमनैषम्।

असौ वरवर्णिनी—कल्पसुन्दरी। सा—सुरसरित्। कदाचिदेकदा। मद्विलोडनासहिष्णुः—मया यद् विलोडनं क्रीडार्थमालोडनं तत्रासहिष्णुरसहनशीला। मां गजानन-मित्यर्थः। अशपत्—शापं दत्तवती। एहि प्राप्नुहि। मर्त्यत्वं—नरत्वम्। अशप्यत-मयापि तस्यै शापो दत्तः। यथा येन रूपेण। इह स्वर्गे। बहुभोग्या—नदीत्वेन स्नानपानादिभिरनेकजनसेव्या। तथा तेनैवरूपेण। मानुष्यकं नरजन्म। अनेकसाधारणी—अनेकभोग्या। अभ्यर्थितः—याचितोऽहमिति शेषः। अनया गङ्गया। एकपूर्वा—पूर्वमेकेन भुक्ता सती। पुनः—अनन्तरम्। त्वां द्वितीयमित्यर्थः। उपचर्य—सेवित्वा। यावज्जीवं आयुष्कालं यावत्। रमेय—क्रीडां कुर्याम्। तत् तस्मात् कारणात्। अयमर्थः विषयः कल्पसुन्दरीग्रहणरूपः। भव्यः क्षेमकरः। निराशङ्क्यः—नाशङ्कनीयः। प्रतिबुध्य—जागरित्वा। प्रीतियुक्तः—प्रफुल्लमनाः। तदहः तद्दिनम्। प्रियेति—प्रियायाः कल्पसुन्दर्याः सङ्केतव्यतिकरादीनां इङ्गितसम्मे-लनादीनां स्मरणेन चिन्तनेन अनैषम्—अयापयम्।

अवतार रूपमें प्रकट हुए हो। और यह उत्तमा कल्पसुन्दरी शङ्कर [] भगवान्के जटाजूटमें सदा रहनेवाली गङ्गा नदी है। उस गङ्गा नदीने किसी समयमें, जब मैं उसके प्रवाहको अपनी सूँड़से विलोड़ित कर रहा था तब, मुझे शाप दे दिया था कि '(हे गणेश!) तुम नरत्वको प्राप्त हो।' मैंने भी उस गङ्गा नदीको शाप दे दिया था कि '(हे गङ्गे!) जैसे तुम यहाँ स्वर्गमें बहुत जनोंसे उपभोग की जाती हो वैसे ही मृत्युलोकमें भी जा करके अनेक लोगोंद्वारा स्नानादिसे उपभोगित हो।' तदनन्तर उस गङ्गाने मुझसे प्रार्थना की कि '(हे गणेश!) मैं पूर्वमें एकसे उपभोगित हो करके पुनः यावदायु तुम्हारे साथ ही रमण करूँ।' इस कारणसे यह कल्पसुन्दरी रानीका ग्रहणरूप व्यापार कल्याणकारी है। इसमें शंका मत करो।" मैंने जाग करके वह दिन प्रिया कल्पसुन्दरीके संकेतादि स्मरण करनेमें बिता दिया।

[] नोटः—यहां भी अन्य पुस्तकसे पाठभेद है जो संस्कृतमें दर्शा दिया गया है। हिन्दीमें भी देखिये—

एक समय श्रीगणेशजी अपनी सूँड़से गंगाजीके प्रवाहमें जलक्रीड़ा कर रहे थे। उस समय

(१८) अन्येद्युरनन्यथावृत्तिरनङ्गो मय्येवेषुवर्षमवर्षत् । अशुष्यच्च ज्योतिष्मतः प्रभामयं सरः । प्रासरच्च तिमिरमयः कर्दमः । कार्दमिकनिवसनश्च दृढतरपरिकरः खड्गपाणिरुपसंभृतप्रकृतोपस्करः स्मरन्मातृदत्ता-

(१८) अन्येद्युः परदिवसे संकेतिते इत्यर्थः । अनन्यथावृत्तिः—न वर्त्ततेऽन्यथा अन्यप्रकारा वृत्तिर्व्यापारो यस्य सः मत्पीडनैकव्यग्रः । इषुवर्षं शरवृष्टिम् । अशुष्यत्—शुष्कतामभजत् । ज्योतिष्मतः—सूर्यस्य । प्रभामयं आलोकात्मकम् । सरः—कासारः । अस्तोन्मुखत्वात्सूर्यस्य तेजोह्रासः सञ्जात इति भावः । प्रासरत्—वृद्धिमगच्छत् । तिमिरमयः अन्धकाररूपः । कर्दमः पङ्कः । सरोवरे शुष्कतां गते यथा कर्दम एव सर्वतो निर्गच्छति तद्वत् सूर्येऽस्तङ्गते तमोऽपि सर्वत्र प्रसरतीति भावः । कार्दमिकनिवसनः कर्दमेन रञ्जितं कार्दमिकं नीलमित्यर्थः तादृशं निवसनं वस्त्रं यस्य सः । दृढतरपरिकरः स्थिरतरोद्योगः । उपसम्भृतेति—उपसम्भृतः संगृहीतः

(१८) दूसरे दिन तो कामदेवने अनन्यवृत्ति हो करके मेरे ऊपर ही बाणवर्षण करना आरम्भ कर दिया । भगवान् भास्करका प्रकाशमान् तालाव सूख गया । अन्धकाररूपी कीचड़ आकाशमें फैल गया । अर्थात्—सायंकाल हो गयी और चारों ओर अन्धकार छा गया । उसी समय मैंने नीले वस्त्रोंको धारण किया । मजबूत कच्छ बाँधा । हाथ में खड्ग धारण किया और उस कामके अनुरूप सभी आवश्यक चीजोंको लेकर तथा वृद्धाधात्रीद्वारा बताये हुए कल्पसुन्दरीके महलके चिह्नोंको (संकेतस्थलोंको) स्मरण

गंगाजी जो श्री गणेशजीकी माताकी सौतके समान मानी जाती हैं, अपने प्रवाहमें सौतके पुत्रकी जलक्रीड़ाको करना न सह सकीं । उन गंगाजीने गणेशजीको शाप दिया कि तुम 'नरत्वको प्राप्त करो ।' इस अहेतुक शापपर गणेशजी क्रोधित हो गये और उन्होंने गंगाजीको शाप दे दिया कि 'तुम मृत्युलोकमें जाकर बहुपतिगामिनी हो ।' इस शापपर गंगाजीने श्रीगणेशजीकी बड़ी स्तुति की तब गणेशजीने कहा कि 'मेरा शाप वृथा नहीं हो सकता है । पर तुम जो स्तुति करती हो कि यह शाप नष्ट हो जाय, सो इसपर तुम्हारे ऊपर मैं दया करके यही कर सकता हूं कि मैं तुम्हारे लिये अपने अंशके दो भाग करके पृथिवीपर अवतरित होऊँगा । एक अंश स्वल्प होगा दूसरा अंश कुछ अधिक । अतः स्वल्पांश से मैं विकटवर्मा और बृहदांशसे मिथिलापति प्रहारवर्मा का पुत्र उपहारवर्मा होऊँगा । उस समय तुम भी कामरूपाधिपति कालिंगवर्माकी पुत्री कल्पसुन्दरीके रूपमें पैदा होओगी तब प्रथम विकटवर्माके मरनेपर वह स्वल्पांश भी उपहारवर्माके रूपमें आ मिलेगा । उस समय तुम मेरे पूर्णरूप प्रहारवर्मासे उद्वाहित हो करके सदाके लिए इस शाप से मुक्त होओगी ।

न्यभिज्ञानानि राजमन्दिरपरिखामुदम्भसमुपातिष्ठम् । अथोपखातं मातृगृहद्वारे पुष्करिकया प्रथमसंनिधापितां वेणुयष्टिमादाय तया शायितया च परिखाम्, स्थापितया च प्राकारभित्तिमलङ्घयम् । अधिरुह्य पक्वेष्टकचितेन गोपुरोपरितलाधिरोहिणा सोपानपथेन भुवमवातरम् । अवतीर्णश्च बकुलवीथीमतिक्रम्य चम्पकावलिवर्त्मना मनागिवोपसृत्योत्तराहि करुणं चक्रवाकमिथुनरवमश्रृणवम् ।

(१९) पुनरुदीचा पाटलिपथेन स्पर्शलभ्यविशालसौधकुड्योदरेण

प्रकृतः योग्योभिसारस्येति शेषः । उपस्करः साधनं येन सः । साधनं स्यादुपस्करे इति कोषः । मातृदत्तानि—वृद्धया धात्र्या दत्तानि । अभिज्ञानानि—कल्पसुन्दरीगृहस्य चिह्नानि । राजमन्दिरपरिखां—नृपभवनस्य समन्ततोऽवस्थितं खातम् । उदम्भसं जलपूर्णाम् । उपातिष्ठं सन्निहितोऽभवमहमिति शेषः । उपखातं—परिखासमीपे । मातृगृहद्वारे पूर्वोक्तायाः वृद्धाया गृहद्वारे । प्रथमसन्निधापितां पूर्वमेव स्थापिताम् । वेणुयष्टिं—वंशदण्डम् । आदाय गृहीत्वा । तया—वेणुयष्ट्या । शायितया—खातस्योभयकूले स्थापितया । परिखाम् अलङ्घयमिति शेषः । स्थापितया—ऊर्ध्वीकृतया । वेणुयष्ट्येति शेषः । प्राकारभित्तिम् प्राचीरकुड्यम् । अधिरुह्य—आरुह्य । पक्वेष्टकचितेन—पक्वाभिर्भर्जिताभिरिष्टकाभिश्चितेन व्याप्तेन । गोपुरेति—गोपुरस्य-पुरद्वारस्य उपरितलमूर्ध्वभागमधिरोहतीति तेन विशेषणद्वयं सोपानपथेनेत्यस्य । सोपानपथेन—सोपानमार्गेण । अवातरम् अवतीर्णवान् । बकुलवीथीं बकुलवृक्षश्रेणीम् । चम्पकावलिवर्त्मना—चम्पकवृक्षश्रेणीपरिवृतमार्गेण । मनागिव·ईषद्दूरम् । उपसृत्य—गत्वा । उत्तराहि—उत्तरस्यां दिशि । अव्ययमेतत्—उत्तरशब्दादाहि· प्रत्ययः । करुणं दैन्यपूर्णम् । चक्रवाकमिथुनरवं—कोकद्वन्द्वकूजितम् ।

(१९) उदीचा—उत्तरदिग्गामिना । पाटलिपथेन—पाटलातरुराजिमार्गेण ।

करता हुआ मैं राजमन्दिरकी जलसे परिपूर्ण परिखाओंके समीप पहुँच गया । वहाँ परिखा (खाई) के पास पहुँचनेपर मैंने मातृगृहद्वारमें पहिलेसे ही पुष्करिकाके द्वारा धरी हुई बाँसकी छड़ी ले ली तथा उस छड़ीको बेड़ी करके (सुला करके) खाई पार कर ली । तदनन्तर उसी छड़ीको खड़ी करके चहारदीवारी (प्राचीर) की दीवाल पार कर ली । ऊपर चढ करके पक्के ईंटोंसे बनी हुई नगरफाटकके ऊपरकी सीढ़ियोंसे पृथ्वीपर आ गया । फिर बकुलके वृक्षोंकी कतारोंको लांघ करके, चम्पकोंके वृक्षोंसे परिवृत मार्गसे कुछ दूर होकर उत्तर दिशाकी ओर जा मैंने चक्रवाक दम्पतीके दयनीय शब्दोंको सुना । पुनः उत्तर दिशामें पाटलके तरुओंकी श्रेणियोंकी स्पर्शप्राप्तिसे जिस राजभवनकी विशाल

शरक्षेपमिव गत्वा पुनः प्राचा पिण्डीभाण्डीरषण्डमण्डितोभयपार्श्वेन सैकतपथेन किञ्चिदुत्तरमतिक्रम्य पुनरवाचीं चूतवीथीमगाहिषि। ततश्च गहनतरमुदरोपरचितरत्नवेदिकं माधवीलतामण्डपमीषद्विवृतसमुद्गकोन्मिषितभासा दीपवर्त्या न्यरूपयम्। प्रविश्य चैकपार्श्वे फुल्लपुष्पनिरन्तरकुरण्टपोतपङ्क्तिभित्तिपरिगतं गर्भगृहम्, अवनिपतितारुणाशोकलतामयमभि-

स्पर्शलभ्येति–स्पर्शेनलभ्यं लघ्यं विशालमतिमहत् यत् सौधकुड्यं प्रासादभित्तिस्तस्योदरेण मध्यभागेन। शरक्षेपमिव बाणक्षेपपरिमितभूमिपर्यन्तम्। प्राचा-पूर्वदिग्गामिना। पिण्डीभाण्डीरेति–पिण्डी–अशोकवृक्षो भाण्डीरो मल्लिका तयोः षण्डः समूहस्तेन मण्डितौ शोभितावुभयपार्श्वौ यस्य तेन तथाविधेन। सैकतपथेन-वालुकामयमार्गेण। उत्तरं-उत्तरदेशम्। अवाचीं-दक्षिणदिग्गामिनीम्। चूतवीथीं-रसालश्रेणीम्। अगाहिषि-प्राविक्षम्। गहनतरं-सान्द्रतरम्। उदरेति–उदरे मध्यभागे उपरचिता निर्मिता रत्नवेदिका यस्मिन् तम्। लतामण्डपस्य विशेषणम्। ईषदिति-ईषदल्पं विवृत उद्घाटितो यः समुद्गकः सम्पुटकस्तेनोन्मिषिता निर्गता भा दीप्तिर्यस्यास्तया। दीपवर्त्या–प्रदीपदशया। न्यरूपयम्–अवालोकयम्। एकपार्श्वे–एकस्मिन् प्रदेशे। फुल्लपुष्पेति–फुल्लं विकसितं पुष्पं कुसुमं येषां ते फुल्लपुष्पास्तेषां निरन्तराणां घनसन्निविष्टानां कुरुण्टपोतानां कुरवकभेदानां पंक्तिः श्रेणिरेव भित्तिरावरणं तया परिगतं व्याप्तम्। गर्भगृहम् अभ्यन्तरगृहम्। अवनिपतितेति अवनौ भूमौ पतिता संलग्ना अरुणा रक्तवर्णा या अशोकलता वञ्जुलवल्ली तन्मयं तद्रचितमित्यर्थः। अभिनवेति-अभिनवा नूतनाः कुसुमकोरकाः

दीवालें शोभायमान हैं उन दीवालोंके (ऊपर छाये हुए वृक्षोंकी शाखाओंके भीतरसे) बाणप्रक्षेप प्रमाण भूमिके समीप गया। तत्पश्चात् पूर्वदिशाकी ओर मैं चला। जिस पूर्वदिशामें वहाँकी भूमिपर दोनों ओर अशोकवृक्ष और मल्लिकावृक्षोंकी पक्तियाँ राज रही थीं। पुनः मैं वालुकामय मार्गसे कुछ उत्तर दिशाको अतिक्रमण करके फिर अवाची दिशा (दक्षिण) की ओर चला। जिस दिशामें आमोंकी तरुश्रेणियाँ शोभित हो रही थीं। इसके अनन्तर अति गहन एवं जिसके मध्यमें रत्नोंसे जड़ी हुई एक वेदी बनी है ऐसे माधवीलतामण्डपको मैंने उस राजभवनके उपवनमें स्थित वृक्षोंके सम्पुटोंमेंसे आये हुए थोड़े दीपकके प्रकाशसे देखा। उसमें प्रवेश करके मैंने अवलोकन किया कि उस मंडपके एक भागमें एक अभ्यन्तरगृह (वासगृह) है। जो वासगृह, अत्यन्त सान्द्र एवं प्रफुल्लित कुरवक वृक्षोंकी पंक्तियोंसे ढका हुआ है—जैसे आवरणसे कोई स्थान ढका रहता है। उस गर्भागारके किवाड़ कैसे हैं—भूमितक संलग्न लाल अशोकवृक्षोंकी

नवकुसुमकोरकपुलकलाञ्छितं प्रत्यग्रप्रवालपटलपाटलं कपाटमुद्घाट्य प्राविक्षम्।

(२०) तत्र चासीत्स्वास्तीर्णं कुसुमशयनम्, सुरतोपकरणवस्तुगर्भाश्च कमलिनीपलाशसम्पुटाः, दन्तमयस्तालवृन्तः, सुरभिसलिलभरितश्च भृङ्गारः। समुपविश्य मुहूर्तं विश्रान्तः परिमलमतिशयवन्तमाघ्रासिषम्। अश्रौषं च मन्दमन्दं पदशब्दम्। श्रुत्वैव सङ्केतगृहान्निर्गत्य रक्ताशोकस्कन्धपार्श्वव्यवहिताङ्गयष्टिः स्थितोऽस्मि।

पुष्पमुकुला एव पुलका रोमाञ्चास्तैर्लाञ्छितं चिह्नितम्। प्रत्यग्रेति–प्रत्यग्रं नवोद्गतं यत्प्रवालपटलं पल्लवसमूहस्तेन पाटलं श्वेतरक्तवर्णम्। कपाटविशेषणे एते। कपाटं द्वाराच्छादनम्। उद्घाट्य-उन्मोच्य।

(२०) तत्र माधवीलतामण्डपे। स्वास्तीर्णं-सुष्ठु यथा तथा आस्तीर्णं कृतास्तरणम्–सुस्थापितं वा कुसुमशयनं–पुष्परचितशय्या। सुरतेति-सुरतस्य रतिक्रीडाया उपकरणानि साधनानि वस्तूनि द्रव्याणि स्रक्चन्दनताम्बूलादीनि गर्भे मध्ये येषां ते तथाविधाः। कमलिनीपलाशसंपुटाः पद्मपत्ररचितद्रोण्यः। दन्तमयः-गजदन्तनिर्मितः। तालवृन्तः व्यजनम्। सुरभिसलिलभरितः सुगन्धोदकपूर्णः। भृङ्गारो जलपात्रविशेषः। मुहूर्त्तं क्षणकालम्। विश्रान्तः अपगतश्रमः। परिमलं गन्धम्। अतिशयवन्तम् अत्युत्कृष्टम्। आघ्रासिषम्-आघ्रातवान्। मन्दमन्दं-धीरम्। पदशब्दं चरणध्वनिम्। श्रुत्वैव श्रवणमात्रमेव। सङ्केतगृहात् अत्र माधवीलतामण्डपात्। रक्ताशोकेति-रक्ताशोकस्य स्कन्धः काण्डस्तस्य पार्श्वेन पार्श्वभागेन व्यवहिता तिरोहिता अङ्गयष्टिर्देहलता यस्य सः।

लताओंसे परिरम्भित एवं नवीन फूलोंके मुकुलोंसे पुलकित (रोमाञ्चित) चिह्नित हैं तथा नवोद्गत पल्लवोंके समुदायोंसे रक्तवर्णों हो रहे हैं ऐसे गर्भगृहके किवाड़ोंको खोल करके मैंने उसमें प्रवेश किया।

(२०) उस गर्भागारमें सुन्दर तोषक तकियासे सुसज्जित पुष्पशय्या पड़ी है। कमलिनीके पत्रोंके दोनोंमें चन्दन, पान, माला आदि रतिक्रीड़ाकी वस्तुएँ सजी धरी हुई हैं। हाथीदाँतके बने पंखे भी रखे हुए हैं। सुगन्धित जलसे परिपूर्ण जलपात्र (कलश) रखा हुआ है। उस गर्भागारमें मैंने प्रवेश करके क्षणभर विश्राम लिया। इत्र आदि सुगन्धियाँ खूब सूँघीं। धीर गम्भीर चरणध्वनि सुनाई पड़ी। चरणध्वनिके सुनते ही मैं उस गर्भागार (संकेतगृह) से निकला और लाल अशोकके झुण्डोंके बगलमें अपनी देहरूपी लताको छिपा करके खड़ा हो गया।

(२१) सा च सुभ्रूः सुषीमकामा शनैरुपेत्य तत्र मामदृष्ट्वा बलवद्व्यथिष्ट । व्यसृजच्च मत्तराजहंसीव कण्ठरागवल्गुगद्गदां गिरम्—'व्यक्तमस्मि विप्रलब्धा । नास्त्युपायः प्राणितुम् । अयि हृदय, किमिदमकार्यं कार्यवदध्यवसाय तदसम्भवेन किमेवमुत्ताम्यसि । भगवन् पञ्चबाण, कस्तवापराधः कृतो मया यदेवं दहसि; न च भस्मीकरोषि' इति ।

(२२) अथाहमाविर्भूय विवृतदीपभाजनः 'भामिनि, ननु बह्वपराद्धं

(२१) सा कल्पसुन्दरी । सुषीमकामा सुषीमं शिशिरं कामयते या तथा शैत्यार्थिनी । शनैर्मन्दम् । तत्र सङ्केतागारे । मामुपहारवर्माणमित्यर्थः । बलवत्-सातिशयम् । अव्यथिष्ट-पीडिताऽभवत् । कण्ठेति—कण्ठरागेण कण्ठस्वरेण वल्गुः सुन्दरो गद्गदोऽस्पष्टभाषणं यस्यां तादृशीम् । गिरं व्यसृजत् उक्तवती । व्यक्तः स्फुटम् । विप्रलब्धा-प्रतारिता । प्राणितुं-जीवितुम् । अयि हृदयेति स्वहृदयं सम्बोध्य ब्रवीति किमिदं किं प्रक्रान्तं त्वयेत्यर्थः । अकार्यम् अकरणीयम् । कार्यवत् कार्येण तुल्यम् अध्यवसाय निश्चित्य । तदसंभवेन-कार्यासम्भवेन किं कथम् । एवं एवंप्रकारेण । उत्ताम्यसि-खिद्यसे । तव-तव सकाशे । दहसि-तापयसि । भस्मीकरोषि भस्मसात्करोषि-प्राणान्नापहरसीति एतादृशात् तापान्मृत्युरपि श्रेयानिति भावः ।

(२२) अथ कल्पसुन्दरीपरिदेवनानन्तरम् । अहम् उपहारवर्मा । आविर्भूय—कल्पसुन्दर्याः पुरः प्रकटीभूय विवृतदीपभाजनः समुद्घाटितप्रदीपसंपुटकः । भामिनि

(२१) वह सुन्दर भौंहवाली कल्पसुन्दरी धीरे-धीरे उस गर्भागारमें शीतलताकी अभिलाषासे आयी और उस संकेतस्थलमें मुझे न देख करके अतिशय पीड़ित हुई । उन्मत्तावस्थाको प्राप्त राजहंसीके सदृश कण्ठस्वरसे सुन्दर अस्फुट वाणीसे कहने लगी । हन्त ! मैं निश्चय ही स्पष्ट रीतिसे प्रतारित हुई । अब जीवन रहनेका कोई साधन नहीं मालूम पडता है । (अपने चित्तको सम्बोधित करती हुई कहने लगी)—'हे चित्त ! तुमने इस अकरणीय कार्यमें करणीय कार्यके समान निश्चय करके मुझे प्रवृत्त कराया और उसके असम्भव होनेपर (असिद्ध होनेपर) मुझे क्यों ताप दे रहे हो । हे भगवन् ! हे पञ्चबाण !! आपका मैंने कौन सा अपराध किया है जो आप मुझे इस प्रकारसे दह रहे हैं किन्तु भस्म नहीं करते हैं ।' (हा ! ऐसे दुःखसे तो मृत्यु अच्छी होती है ।)

(२२) कल्पसुन्दरीकी ऐसी वेदनाओंके सुननेके अनन्तर मैं (उपहारवर्मा) उस गर्भागारसे प्रकट हो गया । और प्रदीपसम्पुटकको समुद्घाटित करके उस कल्पसुन्दरीसे बोला—'हे कोपने ! आपके द्वारा कामदेवके अनेक अपराध किये गये हैं । देखिये, आपकी

भवत्या चित्तजन्मनो यदमुष्य जीवितभूता रतिराकृत्या कदर्थिता, धनुर्यष्टिर्भ्रूलताभ्याम्, भ्रमरमालामयी ज्या नीलालकद्युतिभिः, अस्त्राण्यपाङ्गवीक्षितवृष्टिभिः, महारजनध्वजपटांशुकं दन्तच्छदमयूखजालैः, प्रथमसुहृन्मलयमारुतः परिमलपटीयसा निःश्वासपवनेन, परभृतमतिमञ्जुलैः प्रलापैः, पुष्पमयी पताका भुजयष्टिभ्याम्, दिग्विजयारम्भपूर्णकुम्भमिथुनमुरोजकुम्भयुगलेन, क्रीडासरो नाभिमण्डलेन, संनाह्यरथः श्रोणिमण्डलेन,

कोपने। सम्बोधनमेतत्। बहु-अत्यन्तम्। भवत्या-त्वया। चित्तजन्मनः कामस्य। यद् यतः। अमुष्य-कामस्य। जीवितभूता प्राणस्वरूपा। रतिः स्वपत्नी। आकृत्या आकारेण, स्वशरीरसौन्दर्येण। कदर्थिता-तिरस्कृता। धनुर्यष्टिर्धनुर्लता-अमुष्येति सर्वत्र सम्बध्यते। भ्रूलताभ्यां स्वभ्रूवल्लीभ्याम्-कदर्थितेति च सर्वत्र सम्बध्यते। भ्रमरमालामयी-भ्रमरपङ्क्तिरूपा। ज्या मौर्वी। नीलालकद्युतिभिः-स्वकृष्णकुन्तलकान्तिभिः। अस्त्राणि बाणाः। कदर्थितानीति विभक्तिविपरिणामेनात्रान्यत्राप्यन्वयः। अपाङ्गवीक्षितवृष्टिभिः-कटाक्षपातैः। भिन्नं स्यादस्य बाणैर्युवजनहृदयं स्त्रीकटाक्षेण तद्वदिति कविसमयप्रसिद्धेः। महारजनेतिमहारजनं कुसुम्भं तेन रञ्जितो ध्वजपटः पताकावस्त्रं तस्य अंशुरेवांशुकम् प्रभेति यावत्। 'स्यात्कुसुम्भं वह्निशिखं महारजनमित्यपी'त्यमरः। दन्तच्छदमयूखजालैः-ओष्ठाधरकिरणपटलैः। प्रथमसुहृत् कामस्य प्रधानमित्रम्। मलयवायुः दक्षिणपवनः परिमलेति-परिमलेन सौरभेण पटीयान् समर्थतरः-मलयानिलतिरस्कारक्षम इत्यर्थः। परभृतं-कोकिलम् अतिमञ्जुलैरतिमनोहरैः। प्रलापैः कण्ठध्वनिभिः। भुजयष्टिभ्यां बाहुलताभ्याम्। दिग्विजयेति-दिग्विजयारम्भे विजययात्रायां मङ्गलसूचकं पूर्णघटयुगलम्। उरोजकुम्भयुगलेन-स्तनकलशयुग्मेन। क्रीडासरः-लीलासरोवरम्। संनाह्यरथः-युद्धार्थं

आकृतिके सौन्दर्यके द्वारा कामप्रिया रति तिरस्कृत की गयी है। आपकी भ्रुकुटियोंकी लताओंके द्वारा कामधनुष तिरस्कृत किया गया है। आपके काले एवं चमकीले केशकलापोंके द्वारा कामकी भौंरोंकी श्रेणियोंवाली प्रत्यञ्चा अनादृत की गयी है। आपके कटाक्षोंकी पाँतोंसे काम-बाण अनादृत किये गये हैं। आपके ओष्ठाधरके पटलोंके द्वारा कामकी कुसुम्भी पताकाकी कान्ति तिरस्कृता की गयी है। आपके निःश्वासोंके पवनके द्वारा कामदेवका प्रधान मित्र मलयानिल दक्षिणपवन अनादृत किया गया है। आपकी कण्ठध्वनिके द्वारा अतिमनोहर कोकिल हराया गया है। आपकी बाहुवल्लियोंके द्वारा कामकी फूलोंके द्वारा गुम्फित ध्वजा तिरस्कृता की गयी है। आपके दोनों स्तनकलशोंके द्वारा कामके विजययात्राके मंगलसूचक दोनों पूर्ण कलश पराभूत किये गये हैं। आपकी गम्भीर नाभिके

भवनरत्नतोरणस्तम्भयुगलमूरुयुगलेन, लीलाकर्णकिसलयं चरणतलप्रभाभिः। अतः स्थान एव त्वां दुनोति मीनकेतुः। मां पुनरनपराधमधिकमायासयतीत्येष एव तस्य दोषः। तत्प्रसीद सुन्दरि, जीवय मां जीवनौषधिभिरिवापाङ्गैरनङ्गभुजङ्गदष्टम्' इत्याश्लिष्टवान्।

(२३) अरीरमं चानङ्गरागपेशलविशाललोचनाम्। अवसितार्थां चारक्तवलितेक्षणामीषत्स्वेदरेखोद्भेदजर्जरितकपोलमूलामनर्गलकलकलप्र-

सज्जीकृतस्यन्दनम्। श्रोणिमण्डलेन-नितम्बयुग्मेन। भवनेति-भवनस्य गृहस्य रत्ननिर्मितौ यौ तोरणस्तम्भौ बहिर्द्वारस्तम्भौ तयोर्युगलम्। लीलेति-लीलार्थं विलासार्थं यत् कर्णकिसलयं कर्णपल्लवम्। अतः-अस्माद्धेतोः-यतो भवदीयैराकृत्यादिभिः कामसम्बन्धिनो रत्यादयस्तिरस्कृता इत्यर्थः। स्थाने युक्तम्। त्वां भवतीं कल्पसुन्दरीम्। दुनोति तापयति। मीनकेतुः-कामः। आयासयति-पीडयति। तस्य कामस्य। जीवनौषधिभिः-जीवनोपायभूतैः अपाङ्गैः कटाक्षविक्षेपैः। अनङ्गेति-अनङ्गः काम एव भुजङ्गः सर्पस्तेन दष्टम्। मामिति शेषः। इति-इति उक्त्वा। आश्लिष्टवान् तामालिङ्गितवानहमिति शेषः।

(२३) अरीरमं-रमितवान्। रमुङ् क्रीडायामित्यस्य धातोर्णिजन्ताल्लुङ्। अनङ्गेति-अनङ्गरागेण कामरागेण पेशले मनोरमे विशाले विस्तृते लोचने यस्यास्ताम्। अवसितार्थां समाप्तरमणाम्। आरक्तेति-आरक्तं ईषद्रक्तं समन्ताद्रक्तं वा वलितं वक्रितमीक्षणं दृष्टिर्यस्यास्ताम्। ईषदिति—ईषत्स्वेदरेखायाः स्वल्पघर्मराजेः उद्भेदेन निर्गमेण जर्जरितं क्लिष्टं कपोलमूलं गण्डमूलं यस्यास्ताम्। अनर्गलकल-

मण्डलके द्वारा कामका लीलासरोवर तिरस्कृत किया गया है। आपके दोनों नितम्बोंके द्वारा कामदेवके युद्धका सुसज्जित रथ अनादृत हो गया है। आपकी दोनों जांघोंके द्वारा कामके भवनके रत्ननिर्मित तोरणके दोनों खम्भे तिरस्कृत किये गये हैं। आपके चरणतलोंकी प्रभाके द्वारा कामके विलासार्थ कर्णपल्लव पराजित किये गये हैं। अत एव कामदेव आपको ठीक ही सन्तापित कर रहा है। किन्तु, मुझ निरपराधीको जो वह कामदेव अधिक व्यथित कर रहा है—यही उसका अपराध है। इसलिए हे सुन्दरि! मेरे ऊपर कृपा कीजिये। मेरे जीवनोपायभूत अपने कटाक्षोंके विक्षेपोंके द्वारा कामदेवरूपी सर्पके द्वारा काटे हुए मुझको जिलाइये। इस प्रकार कहते हुए मैंने उस कल्पसुंदरीको आलिंगित कर लिया।

(२३) कामके रागसे जिसके बड़े-बड़े नेत्र मनोहर लग रहे थे उस कल्पसुन्दरीके साथ मैंने रमण किया। रमणसमाप्तिके अनन्तर वह रमणी मुझे लाल-लाल तिरछे नेत्रोंसे देखने लगी। रमणके पश्चात् उसके कपोलके मूलभाग (गण्डप्रदेश) से कुछ

लापिनीमरुणदशनकररुहार्पणव्यतिकरामत्यर्थपरिश्लथाङ्गीमार्तामिव लक्षयित्वा मानसीं शारीरीं च धारणां शिथिलयन्नात्मानमपि तया समानार्थमापादयम् । तत्क्षणविमुक्तसङ्गतौ रतावसानिकं विधिमनुभवन्तौ चिरपरिचिताविवातिगूढविश्रम्भौ क्षणमवातिष्ठावहि । पुनरहमुष्णमायतं च निःश्वस्य किञ्चिद्दीनदृष्टिः सचकितप्रसारिताभ्यां भुजाभ्यामेनामनतिपीडं परि-

कलप्रलापिनीम् निरन्तराव्यक्तध्वनिप्रलपनशीलाम् । अरुणेति-अरुणो रक्तो दशनानां दन्तानां कररुहाणां नखानाञ्चार्पणेन दानेन तज्जनितक्षतेनेत्यर्थः, व्यतिकरः सम्बन्धो यस्यास्ताम् । अत्यर्थपरिश्लथाङ्गीं-अतिशिथिलावयवाम् । आर्त्तां क्लान्ताम् । लक्षयित्वा निरूप्य । मानसीधारणा चित्तावेशरूपा, शारीरीधारणा स्थैर्यरूपा तामुभयविधां धारणामित्यर्थः । शिथिलयन् श्लथयन् । तया कल्पसुन्दर्या । समानार्थं तुल्यप्रयोजनमार्त्तिमित्यर्थः । समपादयम्-अकरवम् । तत्क्षणविमुक्तसङ्गतौ-तस्मिन् क्षणे समये विमुक्तं त्यक्तं संगतमाश्लेषो याभ्यां तौ । त्यक्तालिङ्गनव्यापाराविस्यर्थः । रतावसानिकं-सुरतसमाप्त्युचितम् । विधिं-व्यापारम् । चिरपरिचितेति-चिरपरिचितौ यथा विश्रम्भं भजतस्तद्वत् । अतिगूढविश्रम्भौ-अत्यन्तगुप्तविश्वासौ । अवातिष्ठावहि-अवस्थितावावामिति शेषः । अहमुपहारवर्मेत्यर्थः । दीनदृष्टिः दैन्यपूर्णनयनः । सचकितप्रसारिताभ्यां-सशङ्कविस्तृताभ्याम् । एनां-कल्पसुन्दरीम् । अनतिपीडं शिथिलं मन्दमिति यावत् । नातिविशदम्-नातिस्प-

पसीना बहने लगा । वह उस समय कुछ अस्फुट ध्वनि करने लगी । वह कल्पसुन्दरी उस समय अपने अरुण दाँतों तथा नाखूनोंके (नोंच-कचोट आदि) रतिव्यापारोंसे मुझे विभूषित करने लगी । रतिव्यापारके द्वारा अत्यन्त शिथिल शरीरवाली और क्लेशित उस कल्पसुन्दरीको मैंने देखा । देख करके मेरी चित्तावेशरूपा धारणा तथा स्थैर्यरूपा धारणा शिथिल पड़ गयीं । (मैं भी उसी कल्पसुन्दरीके समान कामदेवके सिद्ध मनोरथरूप रतिसे कृतकृत्य हो गया । जैसे वात्स्यायन ऋषिके शास्त्रानुसार स्त्री-मनोरथ पूर्ण होनेपर पुरुष भी तद्वत् हो जाते हैं । वैसे ही मैं भी उस समय हो गया ।) मैंने भी अपनेको उसी कल्पसुन्दरीके सदृश सम्पादित कर लिया । रतिके पश्चात् उस समय हम लोग आलिंगन त्याग करके रतिके अनन्तर जो उचित व्यापार होते हैं उनको अनुभव करने लगे । बहुत कालसे परिचित व्यक्तिके समान अत्यन्त गुप्त विश्वासी हो करके कुछ क्षणोंतक हम दोनों वहाँ बैठे रहे । पुनः मैंने गरम और लम्बी सांस लेकर कुछ दैन्य दृष्टिके साथ, विस्मयके साथ भुजाओंको फैला करके उस कल्पसुन्दरीका शिथिलता और और धीरताके साथ आलिंगन किया तथा धीरेसे चुम्बन भी लिया । आँखोंमें आँसू भर कर उस कल्पसुन्दरीने मुझसे कहा कि 'हे नाथ ! यदि आप जाना चाहते हैं तो

त्वज्य नातिविशदमचुम्बिषम्। अश्रुमुखी तु सा 'यदि प्रयासि नाथ, प्रयातमेव मे जीवितं गणय। नय मामपि। न चेदसौ दासजनो निष्प्रयोजनः' इत्यञ्जलिमवतंसतामनैषीत्।

(२४) अवादिषं च ताम्—'अयि मुग्धे, कः सचेतनः स्त्रियमभिकामयमानां नाभिनन्दति। यदि मदनुग्रहनिश्चलस्तवाभिसन्धिराचराविचारं मदुपदिष्टम्। आदर्शय रहसि राज्ञे मत्सादृश्यगर्भं चित्रपटम्। आचक्ष्व च किमियमाकृतिः पुरुषसौन्दर्यस्य पारमारूढा न वा' इति। 'बाढमारूढा' इति नूनमसौ वक्ष्यति। ब्रूहि भूयः—'यद्येवम्, अस्ति कापि

ष्टम्। अचुम्बिषम्-चुम्बितवान्। अश्रुमुखी-सबाष्पा-सा-कल्पसुन्दरी। प्रयातमेव-गतमेव। गणय-जानीहि। तव गमनेन ममापि प्राणा बहिर्गमिष्यन्तीति भावः। असौ दासजनः अहमित्यर्थः। निष्प्रयोजनः निरर्थकः। अवतंसतां-शिरोभूषणताम्। मस्तके अञ्जलिमबध्नादित्यर्थः।

(२४) तां कल्पसुन्दरीम्। सचेतनः—चेतनावान् पुरुषः। अभिकामयमानाम्—अभिलषन्तीम्। अभिनन्दति स्तौति आकाङ्क्षतीत्यर्थः। मदनुग्रहनिश्चलः मदनुग्रहे मामनुग्रहीतुं निश्चलः स्थिरः। अभिसन्धिरभिप्रायः। आचर—कुरु। अविचारं विना विचारेण। मदुपदिष्टं मदुक्तम्। आदर्शय—संदर्शय। राज्ञे—विकटवर्मणे। मत्सादृश्यगर्भं—मत्सदृशरूपवन्तम्। इयं—चित्रपटस्थिता। पुरुषसौन्दर्यस्य पुरुषे यत्सौन्दर्यं सम्भवति तस्य। पारं—पराकाष्ठाम्। आरूढा—प्राप्ता। बाढं—निश्चयेन। असौ—विकटवर्मा। यद्येवं—इयमाकृतिः सौन्दर्यस्य परां काष्ठां

आप यह भी समझिये कि आपके जानेके साथ ही मेरे प्राण भी चले जायँगे। मुझे भी अपने साथ ही लेते चलिये। नहीं तो इस दासी कल्पसुन्दरीको निष्प्रयोजन (मृत) ही समझियेगा'। ऐसा कह कर उस कल्पसुन्दरीने अपनी अञ्जलिको अपना शिरोभूषण बना लिया।

(२४) मैंने उस कल्पसुन्दरीसे कहा—'हे मुग्धे! कौन-सा ऐसा चेतनावान् पुरुष होगा जो अपने ऊपर अनुराग करनेवाली रमणीकी आकांक्षा न करेगा। यदि मेरे विषयमें आपका अनुग्रह स्थिर है एवं आपके अभिप्राय दृढ हैं तो आप शङ्का त्याग करके मेरे कथनानुसार आचरण करें। एकान्तमें आप राजाको, मेरे समानरूपवाले इस मेरे चित्रको दिखावें। और उस राजासे कहें क्या इस चित्रगत पुरुषके सौन्दर्यने अन्य पुरुषोंके सौन्दर्यको नहीं पार कर लिया है? ऐसा पूछे जानेपर वह राजा अवश्य ही कहेगा कि अवश्य ही इस आकृतिने सौन्दर्यका अतिक्रमण किया है। तब आप उस

तापसी देशान्तरभ्रमणलब्धप्रागल्भ्या मम च मातृभूता। तयेदमालेख्यरूपं पुरस्कृत्याहमुक्ता—'सोऽस्ति तादृशो मन्त्रो येन त्वमुपोषिता पर्वणि विविक्तायां भूमौ पुरोहितैर्हुतमुक्ते सप्तार्चिषि नक्तमेकाकिनी शतं चन्दनसमिधः, शतमगुरुसमिधः, कर्पूरमुष्टीः, पट्टवस्त्राणि च प्रभूतानि हुत्वा भविष्यस्येवमाकृतिः।

(२५) अथ चालयिष्यसि घण्टाम्। घण्टापुटक्वणिताहूतश्च भर्ता ते भवत्यै सर्वरहस्यमाख्याय निमीलिताक्षो यदि त्वामालिङ्गेत, इयमाकृतिर-

प्राप्ता चेदित्यर्थः। देशान्तरेति–देशान्तराणां अनेकदेशानां भ्रमणेन गमनेन लब्धं प्राप्तं प्रागल्भ्यं पटुत्वं अभिज्ञतेति यावद् यया सा। मातृभूता मातृस्वरूपा। तया–तापस्या। आलेख्यरूपं–चित्रसौन्दर्यम्। पुरस्कृत्य–विषयीकृत्य–अग्रे संस्थाप्येति वा। तादृशः–प्रभावसम्पन्नः। येन–मन्त्रेण। उपोषिता–निराहारा। पर्वणि–अमावास्यादौ। विविक्तायां–पवित्रायाम् निर्जनायां वा। हुतमुक्ते–आदौ हुतः पश्चान्मुक्तस्तस्मिन्। सप्तार्चिषि–अग्नौ। नक्तं–रात्रौ। चन्दनसमिधः चन्दनकाष्ठानि। अगुरुसमिधः अगुरुकाष्ठानि। कर्पूरमुष्टीः–कर्पूरचूर्णानि। पट्टवस्त्राणि–कौषेयवसनानि। एवमाकृतिः–एवमेतादृशी आकृतिर्यस्याः सा।

(२५) अथ–तादृशाकृतिप्राप्त्यनन्तरम्। चालयिष्यसि–वादयिष्यसि। घण्टां–वाद्यविशेषम्। घण्टापुटेति–घण्टापुटस्य क्वणितेन प्रतिशब्देनाहूत आकारितः। भर्ता–तव पतिः। भवत्यै तवसमीप इत्यर्थः। सर्वरहस्यं गुप्तविषयान्। आख्याय–कथयित्वा। निमीलिताक्षः–मुद्रितनेत्रः। त्वां–भवतीं कल्पसुन्दरीमिति यावत्।

नृपतिसे फिरसे कहें—'यदि ऐसा है तो कोई एक तपस्याशीला साध्वी है जिसने अनेक देश–देशान्तरोंमें पर्यटन करके पटुता प्राप्त की है तथा वह साध्वी मेरी माताके सदृश भी है। उसी साध्वीने यह चित्रपट मेरे सम्मुख रख करके कहा है—'मेरे पास एक ऐसा मन्त्र है जिसके द्वारा आप निराहार हो करके अमावास्याकी तिथिमें किसी निर्जन भूमिमें पुरोहितोंके द्वारा हवन करावें और उस हवनकी शेष अग्निमें रातके समय अकेली आकर एक सौ चन्दनकी लकड़ी, एक सौ अगुरुकी लकड़ी तथा कपूरके चूर्णसे एवं रेशमी वस्त्रोंसे प्रचुरमात्रामें हवन करेंगी तो आप भी इसी प्रकारकी आकृतिवाली हो जायंगी।

(२५) इसके पश्चात् घंटा बजा देंगी और घंटाके शब्दोंको श्रवण करके आपके पतिदेव आ करके अपने सभी गुप्तभेदोंको सुना करके यदि आँखें बन्द करके आपका आलिङ्गन करेंगे तो वे भी इसी चित्रपटकी आकृतिके समान हो जायँगे। और आपकी

मुमुपसंक्रामेत्। त्वं तु भविष्यसि यथापुराकारैव यदि भवत्यै भवत्प्रियाय चैवं रोचेत, न चास्मिन्विधौ विसंवादः कार्यः' इति। 'वपुश्चेदिदं तवाभिमतं सह सुहृन्मन्त्रिभिरनुजैः पौरजानपदैश्च संप्रधार्य तेषामप्यनुमते कर्मण्यभिमुखेन स्थेयम्' इति।

(२६) स नियतमभ्युपैष्यति। पुनरस्यामेव प्रमदवनवाटीशृङ्गाटिकायामाथर्वणिकेन विधिना संज्ञपितपशुनाभिहुत्य मुक्ते हिरण्यरेतसि तद्धूमशमनेन संप्रविष्टेन मयास्मिन्नेव लतामण्डपे स्थातव्यम्। त्वं पुनः प्रगाढायां प्रदोषवेलायामालपिष्यसि कर्णे कृतनर्मस्मिता विकटव

अमुं-तव भर्तारम्। उपसंक्रामेत्-संक्रान्ता भवेत्। यथापुराकारा यथापूर्वाकृतिः। भवत्प्रियाय-त्वद्भर्त्रे। एवं-पूर्वोक्तम्। रोचेत-यद्यभिमतं स्यात्। विधौ-प्रयोजने। विसंवादः-अन्यथाबुद्धिः। इदमेतादृशम्। अभिमतं-सम्मतम्। अनुजैः सहोदरैः। पौरजानपदैः नागरिकैः। सम्प्रधार्य-निश्चित्य। तेषां-सुहृन्मन्त्र्यादीनाम्। अनुमते संमते। अभिमुखेन-उद्युक्तेन। स्थेयं-स्थातव्यम्।

(२६) स विकटवर्मा। नियतम् अवश्यम्। अभ्युपैष्यति-स्वीकरिष्यति। प्रमदवनेति-प्रमदवनवाट्याः क्रीडोद्यानस्य शृङ्गाटिकायां-चतुष्पथे। आथर्वणिकेन-अथर्ववेदोपदिष्टेन विधिना अनुष्ठानेन। संज्ञपितपशुना-संज्ञपितो घातितः पशुश्छागादिर्यस्मिन् तेन-विधिविशेषणमेतत्। अभिहुत्य=होमं सम्पाद्य। मुक्ते-विसृष्टे। हिरण्यरेतसि-वह्नौ। तद्धूमशमनेन-तस्य धूमस्य शमनेन निवृत्त्या सहेति शेषः। मया-उपहारवर्मणेत्यर्थः। त्वं कल्पसुन्दरीत्यर्थः। प्रगाढायां सान्द्रतिमिरायाम्। प्रदोषवेलायां रजनीमुखे। आलपिष्यसि-कथयिष्यसि। कर्णे विकटवर्म-

---

(रानी कल्पसुन्दरीकी) आकृति फिर पूर्ववत् हो जायगी। यदि यह वार्ता आपके पतिदेवकी अभिमत हो तो इस विधिमें कोई सन्देह आदि न करें। 'यदि आपको ऐसे स्वरूपधारी बननेकी अभिलाषा है तो आप अपने मित्रों, मन्त्रियों, अनुजों और पुरवासियोंसे विचार करके उन सबकी अनुमतिसे इस कार्यमें प्रवृत्त होवें।'

(२६) वह नृपति विकटवर्मा अवश्य ही स्वीकार करेगा। फिर इसी क्रीडोद्यानके चतुष्पथके ऊपर अथर्ववेदके विधानद्वारा हनन किये हुए पशुका हवन करा करके अवशिष्ट अग्निके धूएँकी निवृत्तिके बाद मैं (उपहारवर्मा) लतामण्डपमें प्रविष्ट हो करके बैठा रहूँगा। आप भी घोर अन्धकारवाले प्रदोषकालमें अपने पतिके कानोंमें मुसकुरा करके कहियेगा कि (हे देव!) आप बड़े धूर्त हैं। आप बड़े अकृतज्ञ हैं। मेरे प्रसादसे

र्माणम्—'धूर्तोऽसि त्वमकृतज्ञश्च। मदनुग्रहलब्धेनापि रूपेण लोकलोचनोत्सवायमानेन मत्सपत्नीरभिरमयिष्यसि। नाहमात्मविनाशाय वेतालोत्थापनमाचरेयम्' इति।

(२७) श्रुत्वेदं त्वद्वचः स यद्वदिष्यति तन्मह्यमेकाकिन्युपागत्य निवेदयिष्यसि। ततः परमहमेव ज्ञास्यामि। मत्पदचिह्नानि चोपवने पुष्करिकया प्रमार्जय' इति। सा 'तथा' इति शास्त्रोपदेशमिव मदुक्तमादृत्यातृप्तसुरतरागैव कथंकथमप्यगादन्तःपुरम्। अहमपि यथाप्रवेशं निर्गत्य स्वमेवावासमयासिषम्।

(२८) अथ सा मत्तकाशिनी तथा तमर्थमन्वतिष्ठत्। अतिष्ठच्च

श्रवणे। कृतनर्मेति—कृतं विहितं नर्मस्मितं परिहासहसितं यया सा। धूर्तः—वञ्चकः। अकृतज्ञः—अस्मृतोपकारः। मदनुग्रहलब्धेन—मत्प्रसादाधिगतेन। रूपेण—आकारेण। लोकलोचनेति—लोकलोचनानां जननयनानामुत्सवमिवाचरता। आत्मविनाशाय-स्वमरणाय। वेतालोत्थापनं भूतविशेषोत्पादनम्।

(२७) स विकटवर्मा। ज्ञास्यामि—तदानीं यद्विधेयं तदहमेव करिष्यामीत्यर्थः। पुष्करिकया तन्नामकदास्या मार्जय—प्रोञ्छय। सा कल्पसुन्दरी। तथा—तथा भवतु। आदृत्य—सादरं स्वीकृत्य। अतृप्तसुखरागा असम्पूर्णसुरताभिलाषा। कथं कथमपि—अतिकृच्छ्रेण। यथाप्रवेशं—येन पथा प्रविष्टस्तेनैव पथा।

(२८) मत्तकाशिनी—वरवर्णिनी। तथा—यथा मयोक्तं तेन प्रकारेण। तं पूर्वकथितम्। अर्थं—विषयम्। अन्वतिष्ठत्—अकरोत्। तन्मते—कल्पसुन्दरीकथिते-

---

प्राप्त रूपसे जो रूप लोगोंके नयनों का उत्सव बढ़ानेवाला होगा उसी रूपसे आप मेरी सौतों (सपत्नीजनों) के साथ रमण करेंगे। अतः अपना विनाश करनेके लिये वेतालका आह्वान न करूँगी।

(२७) इन बातोंको सुन करके वह नृपति जो कहे वह आप मुझसे अकेली आ करके कह दीजियेगा। उसके अनन्तर जो कुछ होगा वह मैं समझ लूँगा। उपवनमें जो मेरे पैरोंके चिह्न हैं उन्हें पुष्करिकाद्वारा मिटवा दीजियेगा। उस रानी कल्पसुन्दरीने 'तथा' (स्वीकार है) कह करके शास्त्रोंके उपदेशोंके सदृश मेरे वचनोंको माना और रतिक्रीड़ासे अतृप्ति पाकर भी येनकेन प्रकारसे अन्तःपुरमें गयी। मैं भी उसी पूर्व मार्गसे निकल करके निवासस्थलपर आकरके विराम करने लगा।

(२८) तदनन्तर उस उत्तमाङ्गना रानीने मेरे कथनानुसार सब कार्य कर दिया। उस रानी कल्पसुन्दरीके आदेशानुसार वह दुर्मति राजा विकटवर्मा भी राजी हो गया।

तन्मते स दुर्मतिः। अभ्रमच्च पौरजानपदेष्वियमद्भुतायमाना वार्ता—'राजा किल विकटवर्मा देवीमन्त्रबलेन देवयोग्यं वपुरासादयिष्यति। नूनमेष विप्रलम्भो नातिकल्याणः। कैव कथा प्रमादस्य। स्वस्मिन्नेवान्तःपुरोपवने स्वाग्रमहिष्यैव संपाद्यः किलायमर्थः। तथाहि बृहस्पतिप्रतिमबुद्धिभिर्मन्त्रिभिरप्यभ्यूह्यानुमतः। यद्येवं भावि नान्यदतः परमस्ति किञ्चिदद्भुतम्। अचिन्त्यो हि मणिमन्त्रौषधीनां प्रभावः' इति प्रसृतेषु लोकप्रवादेषु प्राप्ते पर्वदिवसे, प्रगाढायां प्रौढतमसि प्रदोषवेलायामन्तःपुरोद्यानादुदैरयद्धूर्जटिकण्ठधूम्रो धूमोद्गमः। क्षीराज्यदधितिलगौरसर्षपवसामांसरु-

ऽभिप्राये। स विकटवर्मा। अभ्रमत्–प्रससार। अद्भुतायमाना–आश्चर्यवदाचरन्ती। देवीमन्त्रबलेन–पट्टमहिष्या मन्त्रप्रभावेण देवयोग्यं देवतोचितम्। आसादयिष्यति–प्राप्स्यति। नूनं निश्चयेन। विप्रलम्भः प्रतारणं, नेत्यनेन सम्बध्यते। अतिकल्याणः–अतिशुभप्रदः। कैव कथा प्रमादस्य–प्रमादस्य नात्र सम्भव इत्यर्थः। स्वस्मिन् स्वकीये। स्वाग्रमहिष्या–स्वभार्यया। बृहस्पतिप्रतिमबुद्धिभिः–वाचस्पतितुल्यमतिमद्भिः। अभ्यूह्य वितर्क्य विचार्येति यावत्। अनुमतः–अनुमोदितः। भावि–भविष्यति। अतः परम्–अस्मादप्यधिकम्। अचिन्त्यः–अभावनीयः। प्रसृतेषु–प्रचारितेषु। लोकप्रवादेषु–जनरवेषु। प्राप्ते–उपस्थिते। पर्वदिवसे–अमावास्यायाम्। प्रौढतमसि–घनान्धकारायाम्। उदैरयत्–उदगच्छत्। धूर्जटीति–धूर्जटेः शिवस्य कण्ठवद् गलवत् धूम्रो नीलः। धूमोद्गमः–धूमप्रवाहः। उदैरयदित्यस्य कर्तृपदमेतत्। क्षीराज्येति–क्षीरं दुग्धमाज्यं घृतं दधि क्षीरविकारः, तिलाः प्रसिद्धाः, गौरसर्षपाः सिद्धार्थाः वसा वपा, मांसं पललं

यह आश्चर्यकारिणी वार्त्ता पुरवासियों और नागरिकलोकसंघोंमें फैल गयी—'राजा विकटवर्मा अपनी पटरानी कल्पसुन्दरीके मन्त्रके प्रभावसे देवताओंके अनुरूप शरीरको प्राप्त करेंगे। निश्चय ही इसमें कपट नहीं है अपितु यह अतिशुभप्रद है। इसमें प्रमाद (कपट) की तो कोई बात ही नहीं मालूम पड़ती है क्योंकि अपने ही अन्तःपुरमें अपनी ही भार्याके द्वारा यह कार्य सम्पादित होगा। इसी कारणसे वाचस्पतिके सदृश बुद्धिमान् मन्त्रियोंने भी बहुत विचार करके अनुमोदन किया है। यदि यह बात सत्य हो गयी तो इससे अधिक आश्चर्यकी और कोई बात नहीं है। रत्न, ओषधि और मन्त्रोंका प्रभाव सदा अचिन्त्य होता है। इस तरहका लोकमें प्रवाद फैल गया तथा कुछ दिनमें अमावास्या भी आ गयी। उस दिन जब प्रदोषकालमें घनान्धकार छा गया तब अन्तःपुरके उद्यानसे महादेवजीके कण्ठके समान नीला (यहाँपर श्याम) धूम्रका आविर्भाव

धिराहुतीनां च परिमलः पवनानुसारी दिशि दिशि प्रावासीत् । प्रशान्ते च सहसा धूमोद्गमे तस्मिन्नहमविशम् ।

(२९) निशान्तोद्यानमगाच्च गजगामिनी । आलिङ्ग्य च मां सस्मितं समभ्यधत्त—'धूर्त, सिद्धं ते समीहितम् । अवसितश्च पशुरसौ । अमुष्य प्रलोभनाय त्वदादिष्टया दिशा मयोक्तम्—'कितव, न साधयामि ते सौन्दर्यम् । एवं सुन्दरो हि त्वमप्सरसामपि स्पृहणीयो भविष्यसि, किमुत मानुषीणाम् । मधुकर इव निसर्गचपलो यत्र क्वचिदासज्जति भवादृशो

रुधिरं शोणितं तेषां या आहुतयस्तासाम् । परिमलो गन्धः । पवनानुसारी पवनमनुसृत्य प्रसरणशीलः । प्रावासीत् प्रासरत् । प्रपूर्वकाद्गमनार्थकवाधातोर्लुङि रूपम् । प्रशान्ते अपगते दूरीभूते इति यावत् । प्रविशं प्रविष्टवान् ।

(२९) निशान्तोद्यानं गृहोपवनम् । गजगामिनी–गजवन्मन्दगमनशीला–कल्पसुन्दरीति शेषः । समभ्यधत्त–उक्तवती । धूर्त–कितव । सिद्धं सम्पन्नम् । समीहितम् ईप्सितम् । अवसितः समाप्तिं गतः आसन्नमरण इति भावः । पशुः पशुवद् विवेकरहितः । असौ–विकटवर्मा । अमुष्य–विकटवर्मणः । प्रलोभनाय–प्रलोभनार्थम् । त्वदादिष्टया–त्वत्प्रदर्शितया । दिशा–मार्गेण । मया–कल्पसुन्दर्या । कितव धूर्तेति सम्बोधनम् । साधयामि–सम्पादयामि । एवं–एतादृशः । अप्सरसां स्वर्वेश्यानाम् । स्पृहणीयः अभिलषणीयः । किमुत–किं वक्तव्यमित्यर्थः । मधुकरो भ्रमरः । निसर्गचपलः स्वभावचञ्चलः । यत्र क्वचित्–यत्र कुत्रापि । आसज्जति लगति–आसक्तो भवतीति यावत् । नृशंसः–निर्दयः । तेन–

हुआ । दूध, घी, दही और गौर सर्षप, वसा, मांस और शोणित (रक्त) की आहुतियोंके द्वारा उड़ी हुई गन्ध, पवनकी गतिसे प्रत्येक दिशामें फैल गयी । उस धूम्रके प्रशान्त होते ही सहसा मैंने उद्यानमें प्रवेश किया ।

(२९) हाथीके समान मन्द गमन करनेवाली वह रानी कल्पसुन्दरी भी उस गृह उपवनमें आ गयी । मेरा आलिङ्गन करके हँसती हुई मुझसे कहने लगी–'हे कितव ! तेरा ईप्सितार्थ (मनोरथ) सिद्ध हो गया । पशुके समान अविवेकी इस राजाकी मृत्यु भी समीप है । इस नृपतिके प्रलोभनके लिए मैंने आपके आदेशानुसार उसी रीतिसे कहा–'हे धूर्त्त ! तेरी सुन्दरता मैं नहीं सम्पादित करूंगी । इतनी उत्तम सुन्दरतापर तेरे ऊपर स्वर्गकी अप्सराएंतक मोहित हो जायंगी तब मृत्यु लोककी महिलाओंकी तो बात ही क्या । भौंरेके समान तू स्वभावसे ही चञ्चल है अतः जहां कहीं भी आसक्ति हुई वहीं चिपक जायगा क्योंकि तू निर्दय है ही—(और मैं बिलखा करूंगी) ऐसा

नृशंसः' इति । तेन तु मे पादयोर्निपत्याभिहितम्—'रम्भोरु, सहस्व मत्कृतानि दुश्चरितानि । मनसापि न चिन्तयेयमितःपरमितरनारीम् । त्वरस्व प्रस्तुते कर्मणि' इति ।

(३०) तदहमीदृशेन वैवाहिकेन नेपथ्येन त्वामभिसृतवती । प्रागपि रागाग्निसाक्षिकमनङ्गेन गुरुणा दत्तैव तुभ्यमेषा जाया । पुनरपीमं जातवेदसं साक्षीकृत्य स्वहृदयेन दत्ता इति प्रपदेन चरणपृष्ठे निष्पीड्योत्क्षिप्तपादपार्ष्णिरितरेतरव्यतिषक्तकोमलाङ्गुलिदलेन भुजलताद्वयेन कंधरां ममावेष्ट्य सलीलमाननमानमय्य स्वयमुन्नमितमुखकमला विभ्रान्तवि-

विकटवर्मणा । मे—कल्पसुन्दर्याः । सहस्व—क्षमस्व । दुश्चरितानि—अपराधान् । इतरनारीम्—अन्यस्त्रियम् । त्वरस्व—शीघ्रतां कुरु । प्रस्तुते—प्रारब्धे ।

(३०) तत् तस्मात् कारणात् । वैवाहिकेन—विवाहोचितेन । नेपथ्येन—वेषेण । त्वामुपहारवर्माणम् । अभिसृतवती—प्राप्तवती । प्राक्—पूर्वम् । रागाग्निसाक्षिकं—रागोऽनुराग एवाग्निः साक्षी द्रष्टा यस्मिन् कर्मणि तदिति क्रियाविशेषणम् । गुरुणा—आचार्येण । दत्ता—अर्पिता । एषा मद्रूपा । जाया भार्या । जातवेदसमग्निम् । स्वहृदयेनेति—पूर्वमनङ्गेन दत्ता अधुना तु निजहृदयेनेति—विशेषः । प्रपदेन—पादाग्रेण । निष्पीड्य—पीडयित्वा । उत्क्षिप्तपादपार्ष्णिः उत्क्षिप्तौ उद्धृतौ पादयोश्चरणयोः पार्ष्णी गुल्फदेशौ यया सा । इतरेतरेति—इतरेतरमन्योन्यं व्यतिषक्तानि मिलितानि कोमलानि अङ्गुलय एव दलानि पत्राणि यस्य तेन । कंधरां—ग्रीवाम् । आवेष्ट्य—आश्लिष्य । सलीलं सविलासम् । आननं मदीयं मुखम् । आनमय्य—आनतीकृत्य । उन्नमितमुखकमला—उद्ध्वींकृताननपद्मा । विभ्रान्तेति—

कहनेपर उस धूर्त्तने मेरे पैरोंपर गिरकरके कहा—'हे रम्भोरु ! आप मेरे किये हुए अपराधोंको क्षमा कीजिये । अब मनसे भी अन्य रमणियोंको स्मरण न करूंगा । इस प्रारम्भित कार्यके लिए शीघ्रता कीजिये ।'

(३०) इसी कारणसे मैं इस प्रकारके विवाहके समयानुरूप वस्त्रोंको धारण करके आपके समीप आयी हूं । पूर्वमें भी अनुरागरूपी अग्निको साक्षी बना करके कामदेवरूपी आचार्यने इस जायाको आपको सौंप दिया है । अब फिर भी इस अग्निकी साक्षी दे करके अपने हृदयसे (अपनेको) आपको सौंप रही हूं । ऐसा कहकर वह कल्पसुन्दरी रानी अपने चरणोंके अग्रिम भागोंसे मेरे चरणोंको दबाती हुई खड़ी हुई । परस्पर मिले हुए गुल्फोंसे तथा अन्योन्यमें संश्लिष्ट कोमल अङ्गुलिरूपी दलवाली (पत्रवाली) दोनों बाहुवल्लियोंसे मेरे गलेको परिवेष्टित करके उस रानीने विलाससे मेरे मुखको नीचे नवा

शालदृष्टिरसकृदभ्यचुम्बत् ।

(३१) अथैनाम् 'इहैव कुरण्टकगुल्मगर्भे तिष्ठ यावदहं निर्गत्य साधयेयं साध्यं सम्यक्' इति विसृज्य तामुपसृत्य होमानलप्रदेशमशोकशाखावलम्बिनीं घण्टामचालयम् । अकूजच्च सा तं जनं कृतान्तदूतीवाह्वयन्ती । प्रावर्तिषि चाहमगुरुचन्दनप्रमुखानि होतुम् । अयासीच्च राजा यथोक्तं देशम् । शङ्कापन्नमिव किञ्चित्सविस्मयं विचार्य तिष्ठन्तमत्रवम्—'ब्रूहि सत्यं भूयोऽपि मे भगवन्तं चित्रभानुमेव साक्षीकृत्य । न चेदनेन

विभ्रान्ते घूर्णिते विशाले दीर्घे दृष्टी नयने यस्याः सा । असकृत्–वारंवारम् । अभ्यचुम्बत्–चुम्बितवती मामिति शेषः ।

(३१) एनां–कल्पसुन्दरीम् । कुरण्टकगुल्मगर्भे–पीतकुरवकस्तम्बमध्ये । अहमुपहारवर्मा । साधयेयं सम्पादयेयम् । साध्यं कार्यम् । उपसृत्य–प्राप्य । होमानलप्रदेशं–होमाग्निस्थानम् । अशोकेति–अशोकशाखायामावद्धाम् । अचालयमवादयम् । अकूजत्–अध्वनत् । सा–घण्टा । तं जनं–विकटवर्माणम् । कृतान्तदूती–यमदूतिका । आह्वयन्ती–आकारयन्ती । यमदूती यथा आसन्नमृत्युं मानवं यमालयं नेतुमाह्वयति तद्वदित्यर्थः । प्रावर्त्तिषि—प्रवृत्तोऽभवम् । होतुं अग्नौ प्रक्षेप्तुम् अयासीदगच्छत् । राजा विकटवर्मा । यथोक्तं पूर्वकथितम् । शङ्कापन्नं सशङ्कितम् । येयं जुहोति सा कल्पसुन्दरी अन्या वा काचिदिति सन्दिहानमिति भावः । सविस्मयं–मन्त्रप्रभावादशक्यमपि सम्भवतीति साश्चर्यम् । विचार्य स्थिरीकृत्य । तिष्ठन्तमु·

दिया और अपने मुखकमलको, ऊंचा करके अपने विशाल नेत्रोंको बार-बार नचाते हुए मेरा मुख बार-बार चूमने लगी ।

(३१) इसके पश्चात् मैंने (उपहारवर्माने) उस रानीसे कहा-'तुम इसी पीले कुरवकके स्तम्बमध्यमें तबतक बैठो जबतक मैं यहांसे निकल करके अपने साध्यकार्यको सम्पादित करता हूं ।' इस तरहसे उसे वहीं छोड़ करके मैं होमाग्निस्थानके समीप जा पहुंचा और अशोक वृक्षकी डालीपर लटकी हुई घण्टीको बजा दिया । वह घण्टी ऐसी बजी मानो वह यमराजकी दूती हो और राजा विकटवर्माको बुला रही हो । मैं अगुरु चन्दन आदि प्रमुख होमकी सामग्रियोंको ले करके होम करनेमें प्रवृत्त हो गया । राजा विकटवर्मा भी वहांपर आ गया । सशङ्कित तथा कुछ विस्मित हो करके खड़े होनेवाले उस राजा विकटवर्मासे मैंने कहा-'सत्य कहिये, फिरसे भगवान् अग्निको साक्षी करके सत्य कहिये कि यह अनुपम सौन्दर्य पा करके आप मेरी सौतों (सपत्नीजनों) के

रूपेण मत्सपत्नीरभिरमयिष्यसि, ततस्त्वयीदं रूपं संक्रामयेयम्' इति ।

(३२) स तदैव 'देव्येवेयम् नोपधिः' इति स्फुटोपजातसंप्रत्ययः प्रावर्तत शपथाय । स्मित्वा पुनर्मयोक्तम्—'किं वा शपथेन । कैव हि मानुषी मां परिभविष्यति । यद्यप्सरोभिः सङ्गच्छसे, सङ्गच्छस्व कामम् । कथय कानि ते रहस्यानि । तत्कथनान्ते हि त्वत्स्वरूपभ्रंशः' इति । सोऽब्रवीत्—'अस्ति बद्धो मत्पितुः कनीयान्भ्राता प्रहारवर्मा । तं विषान्नेन व्यापाद्याजीर्णदोषं ख्यापयेयमिति मन्त्रिभिः सहाध्यवसितम् । अनुजाय

पविष्टम्–विकटवर्माणमिति शेषः । भूयोऽपि–पुनरपि । चित्रभानुं वह्निम् । अनेन–भाविना । ततः–तर्हि । संक्रामयेयं योजयेयम् ।

(३२) स विकटवर्मा । तदैव-श्रवणसमये एव । देवी महिषी कल्पसुन्दरीति यावत् । इयं–या एवं कथयति सा । उपधिः–कपटम् । स्फुटेति–स्फुटं व्यक्तमुपजात उत्पन्नः सम्प्रत्ययो विश्वासो यस्य सः । प्रावर्त्तत–प्रवृत्तोऽभवत् । शपथाय–शपथं कर्त्तुम् । मया–कल्पसुन्दरीरूपधारिणा उपहारवर्मणेत्यर्थः । किं–किं कार्यमित्यर्थः । कैव हीति–मानुषीषु कापि तादृशी नास्ति या मां परिभवितुमर्हतीति भावः । सङ्गच्छसे सङ्गतो भवसि । कामं–यथेष्टम् । रहस्यानि–गोपनीयविषयाः । तत्कथनान्ते–रहस्यप्रकाशानन्तरम् । त्वत्स्वरूपभ्रंशः–तव पूर्वाकारध्वंसः । भविष्यतीति शेषः । स विकटवर्मा । बद्धः कारागारे संयतः । कनीयान्–कनिष्ठः । तं प्रहारवर्माणम् । विषान्नेन–विषमिश्रितभोज्यद्रव्येण । व्यापाद्य–विनाश्य । अजीर्णदोषं प्रख्यापयेयम्–विसूचिकारोगेणायं मृत इति प्रकाशयिष्यामीत्यर्थः । अध्यवसितं–निर्णीतम् । इत्येकं रहस्यम् । अनुजाय—स्वकनिष्ठभ्रात्रे । दण्डचक्रं-सैनापत्यम् । पुण्ड्रेति–

साथ रमण न करेंगे, तो मैं आपमें इस रूपको संक्रमित करूं ।'

(३२) यह बात श्रवण करके उस राजाको विश्वास हो गया कि बोलने वाली मूर्त्ति रानी कल्पसुन्दरी ही है । इसमें जरा भी कपटजाल नहीं है । ऐसा प्रत्यक्ष विश्वास हो जानेपर वह शपथादि करनेके लिए प्रवृत्त हो गया । मैंने हंस करके कहा—'शपथसे क्या लाभ । कौनसी ऐसी नारी होगी जो मुझे पराजित कर सकेगी । यदि अप्सराओंसे रमण करना चाहें तो खूब करें । अब बताइये कि आपके कौन-कौन रहस्य भेद हैं (गुप्त बातें हैं) । इनको बतानेके बाद आपके स्वरूपका परिवर्त्तन होगा । उस नृपतिने कहा–'मेरे पिताके छोटे भाई प्रहारवर्मा कारागारमें बन्द हैं । उन्हें जहर मिला हुआ अन्न खिला करके मरवा डालूँगा और अजीर्ण दोषसे मर गये ऐसी प्रसिद्धि कर दूंगा । यह बात मन्त्रियोंके साथ निश्चित हो गयी है । यह प्रथम रहस्य है । अपने छोटे भाई

विशालवर्मणो दण्डचक्रं पुण्ड्रदेशाभिक्रमणाय दित्सितम्। पौरवृद्धश्च पाञ्चालिकः परित्रातश्च सार्थवाहः खनतिनाम्नो यवनाद्वज्रमेकं,वसुंधरामूल्यं लघीयसार्घेण लभ्यमिति ममैकान्तेऽमन्त्रयेताम्। गृहपतिश्च ममान्तरङ्गभूतो जनपदमहत्तरः शतहलिरलीकवादशीलमवलेपवन्तं दुष्टग्रामण्यमनन्तसीरं जनपदकोपेन घातयेयमिति दण्डधरानुद्धारकर्मणि मत्प्रयोगान्नियोक्तुमभ्युपागमत्। इत्थमिदमचिरप्रस्तुतं रहस्यम्।'

पुण्ड्रनामकदेशजयाय। दित्सितं दातुमभिलषितम्। इति द्वितीयं रहस्यम्। पौरवृद्धः—पौरेषु नागरिकेषु वृद्धो वर्षीयान्। पाञ्चालिक इति वृद्धस्य नाम। परित्रातः—संकटाद् रक्षितः। सार्थवाहः कश्चिद् वणिक् तन्नामधेयः कश्चिद् वा। एतौ अनन्तरोक्तक्रियापदस्य अमन्त्रयेतामित्यस्य कर्तृकारकौ। खनतिनाम्नः खनतिरिति नाम यस्य तस्मात्। वज्रं·हीरकम्। वसुन्धरामूल्यं·वसुन्धरा पृथ्वी मूल्यं यस्य तत्। वसुन्धराविनिमयेन लभ्यमित्यर्थः। लघीयसा·अत्यल्पेन। अर्घेण मूल्येन। एकान्ते·रहसि। अमन्त्रयेतां उक्तवन्तौ। इति तृतीयं रहस्यम्। गृहपतिर्ग्रामाध्यक्षः। अन्तरङ्गभूतः—आत्मीयः। जनपदमहत्तरः·प्रधाननागरिकः। शतहलिरिति ग्रामाध्यक्षस्य नाम। अलीकवादशीलं—मिथ्याभाषणरतम्। अवलेपवन्तं·गर्वितम्। दुष्टग्रामण्यं·दुष्टग्रामाध्यक्षम्। अनन्तसीरं·तन्नामकम्। जनपदकोपेन·तस्मिन् जनपदकोपमारोप्येत्यर्थः। घातयेयं विनाशयिष्यामि। दण्डधरान्·सेनानायकान्। उद्धारकर्मणि·अनन्तसीरस्य निर्यातनकार्ये। मत्प्रयोगात्·मन्नियोगात्। अभ्युपागमत्·अहमेव दण्डधरान्नियोक्ष्यामीति स्वीचकार। इति चतुर्थं रहस्यम्। इत्थं अनेन प्रकारेण। अचिरप्रस्तुतं साम्प्रतमेव प्रक्रान्तम्। रहस्यं गोप्यम्। एतावदेवेति शेषः।

विशालवर्माको पुण्ड्रदेशके आक्रमण करनेके हेतु दण्डचक्र (सेनापति) बनानेके लिए सोचा है। यह दूसरा रहस्य है। पुरवासियोंमें वृद्ध पाञ्चालिक और सार्थवाह नामक बनियेको रक्षक बना करके खनति नामके यवनसे एक बहुमूल्य हीरेको जिसका दाम सारी पृथ्वी हो सकता है, अति स्वल्प मूल्यसे खरीदनेका विचार किया है। यह तीसरा रहस्य है। गृहपति (ग्रामाध्यक्ष) मेरा आत्मीय जन है। सर्व देशोंमें श्रेष्ठ शतहली प्रधान नागरिक है। पर यह मिथ्यावादी तथा गर्विष्ठ है और अनन्तसीर नामक व्यक्ति भी दुष्ट ग्रामाध्यक्ष है। इन लोगोंपर जनपदकोप कराऊंगा और इनका विनाश कर दूंगा। सेनापतियोंको इस निर्याणकर्ममें मैं ही नियुक्त करूंगा यह तय हुआ है। यह चतुर्थ रहस्य है। यही मेरे वर्त्तमान रहस्य भेद हैं।'

(३३) इत्याकर्ण्य-तम् 'इयत्तवायुः । उपपद्यस्व स्वकर्मोचितां गतिम्' इति च्छुरिकया द्विधाकृत्य कृत्तमात्रं तस्मिन्नेव प्रवृत्तस्फीतसर्पिषि हिरण्यरेतस्यजूहवम् । अभूच्चासौ भस्मसात् । अथ स्त्रीस्वभावादीषद्विह्वलां हृदयवल्लभां समाश्वास्य हस्तकिसलयेऽवलम्ब्य गत्वा तद्गृहमनुज्ञयास्याः सर्वाण्यन्तःपुराण्याहूय सद्य एव सेवां दत्तवान् । सविस्मितविलासिनीसार्थमध्ये कञ्चिद्विहृत्य कालं विसृष्टावरोधमण्डलस्तामेव संहतोरुमूरूपपीडं भुजोपपीडं चोपगुह्य तल्पेऽभिरमयन्नल्पामिव तां निशामत्यनैषम् ।

(३३) तं विकटवर्माणम् । इयत्-एतावत् । आयुः जीवनम् । उपपद्यस्व प्राप्नुहि । स्वकर्मोचितां कर्मफलानुसारिणीम् । गतिं परिणतिम् । द्विधाकृत्य-खण्डयित्वा तमिति शेषः । कृत्तमात्रं छेदनसमकालम् । प्रवृत्तेति-प्रवृत्तं प्रदत्तं स्फीतं प्रचुरं सर्पिर्हविर्यस्मिन् तस्मिन् । हिरण्यरेतसि अग्नौ । अजूहवम्-प्रक्षिप्तवान् । असौ-विकटवर्मा । भस्मसात्-भस्मावशेषः । स्त्रीस्वभावात्-स्त्रीणां स्वभावः स्वत एवातिकोमलो भवतीति हेतोरित्यर्थः । ईषद्विह्वलां स्वल्पव्याकुलाम् । हृदयवल्लभां प्राणप्रियाम् । समाश्वास्य-सान्त्वयित्वा । करकिसलये-पाणिपल्लवे । अवलम्ब्य-गृहीत्वा तद्गृहं कल्पसुन्दरीमन्दिरम् । अनुज्ञया-अनुमत्या । अस्याः कल्पसुन्दर्याः । अन्तःपुराणि-अन्तःपुरिकावर्गान् सेवां भोज्यादिदानेन तासां सन्तोषम् । सविस्मितेति-सविस्मितः साश्चर्यो यो विलासिनीसार्थः स्त्रीसमूहस्तस्य मध्ये । कञ्चित्कालं-कियन्तं समयं यावत् । विहृत्य—विहारं कृत्वा । विसृष्टेति-विसृष्टं त्यक्तं अवरोधमण्डलमन्तःपुरिकाचक्रं येन सः । तां-कल्पसुन्दरीम् । संहतोरुं-विशालोरुदेशाम् । ऊरूपपीडम्-ऊरुभ्यामुपपीड्य । भुजोपपीडं भुजाभ्यामुपपीड्य । उपगुह्य—आलिंग्य । तल्पे शय्यायाम् । अभिरमयन् विहरन् । अल्पामिव-

(३३) इतना श्रवण कर मैंने उस नृपतिसे कहा कि इतने ही दिनोंका तुम्हारा जीवन है । अब अपने कर्मफलानुसारिणी गतिको प्राप्त करो और छूरीसे उस विकटवर्माको दो टुकड़ोंमें काट करके प्रचुरमात्रामें घीके साथ अग्निमें हवन कर दिया, वह भस्मसात् हो गया । तत्पश्चात् स्त्रीस्वभावके कारण स्वल्प व्याकुलीभूता प्राणप्रियाको आश्वासन दिया । पाणिपल्लव ग्रहण करके उस रानी कल्पसुन्दरीकी अनुमतिसे उसके मन्दिरमें प्रविष्ट हुआ एवं सभी अन्तःपुरचरोंको बुला कर उसी कालमें उचित पुरस्कार प्रदान किया । आश्चर्यमें अभिभूत अन्तःपुरकी रमणियोंके मध्यमें कुछ समय तक रमण करनेके पश्चात् उन अन्तःपुरकी रमणियोंको दूर करके उसी रानी कल्पसुन्दरीके साथ शय्याके ऊपर आनन्दोपभोग करने लगा—उस रानीको अपने ऊरुओंसे और भुजाओंसे

अलभे च तन्मुखात्तद्राजकुलस्य शीलम् ।

(३४) उषसि स्नात्वा कृतमङ्गलो मन्त्रिभिः सह समगच्छे । तांश्चाब्रवम्—'आर्याः, रूपेणैव सह परिवृत्तो मम स्वभावः । य एष विषान्नेन हन्तुं चिन्तितः पिता मे स मुक्त्वा स्वमेतद्राज्यं भूय एव ग्राहयितव्यः । पितृवदमुष्मिन्वयं शुश्रूषयैव वर्तामहे । न ह्यस्ति पितृवधात्परं पातकम्' इति । भ्रातरं च विशालवर्माणमाहूयोक्तवान्—'वत्स, न सुभिक्षाः सांप्रतं पुण्ड्राः । ते दुःखमोहोपहतास्त्यक्तात्मानो राष्ट्रं नो न सम्भृद्धमभिद्रवेयुः ।

दीर्घामपि शीघ्रम् । अत्यनैषम्-अत्यवाहयम् । अलभे ज्ञातवान् । तन्मुखात्-कल्पसुन्दरीमुखात् । राजकुलस्य राजकीयपुरुषवर्गस्य । शीलं चरित्रादिकम् ।

(३४) उषसि-प्रभाते । कृतमङ्गलः-अनुष्ठितमङ्गलाचारः । समगच्छे मिलितोऽभवम् । तान्-मन्त्रिणः । आर्याः माननीयाः सम्बोधनमेतत् । रूपेणाकारेण । परिवृत्तः-अन्यथाभूतः यो मम स्वभावः पूर्वमतिनिर्दय आसीत् सोऽद्य तद्विपरीतो जातः । रूपपरिवर्तनेन सह स्वभावस्यापि परिवर्तनं जातमिति भावः । चिन्तितः : । पिता पितृव्यस्तस्य पितृतुल्यत्वात् । मुक्त्वा बन्धनादपनीय । स्वं तदीयम् । भूयः पुनरपि । ग्राहयितव्यः यथा स राज्यं स्वीकरोति तथा विधेयमित्यर्थः । पितृवत्-पितृतुल्यम् । अमुष्मिन्-प्रहारवर्मणि । शुश्रूषया-सेवया । वर्त्तामहे-व्यवहरामः । पितृवधात् पितृहत्यायाः । परम् अधिकम् । भ्रातरं स्वकनीयांसम् । सुभिक्षाः-सम्पन्नशस्याः । पुण्ड्राः तदाख्यदेशाः । ते-पुण्ड्राः । दुःखमोहोपहताः-भोजनाद्यभावाद्दुःखं क्लेशः मोहः अज्ञानं ताभ्यामुपहता आक्रान्ताः ।

चिपटाते हुए एवं आलिङ्गन करते हुए वह बड़ी रात भी छोटी प्रतीत हुई । अर्थात् रातका बीतना ज्ञात न हुआ । उसी रानी कल्पसुन्दरीसे मैंने राजकीयपुरुषवर्गोंका स्वभाव चरित्र आदि भी ज्ञात कर लिया ।

(३४) प्रभात कालमें स्नान करके तथा मङ्गलाचार, पाठ-पूजन आदि करके मन्त्रियोंसे दरबारमें जा करके मिला । उन मन्त्रियोंसे मैंने कहा—'हे माननीयो ! मेरे रूपके परिवर्त्तन होनेके साथ ही मेरे स्वभावमें भी परिवर्त्तन हो गया है । जहरके अन्नसे जिन पितृव्य (चाचा) को मैंने मारनेके लिए सोचा था उनको कारागारसे निकाल कर फिरसे उन्हें उन्हींका राज्य सौंपा जाय और मैं उनकी सेवा-शुश्रूषा अपने पिताके सदृश करूँगा । पिताके मारनेसे अधिक पाप संसारमें कोई नहीं है । अपने छोटे भाई विशालवर्माको बुला कर कहा—'हे वत्स ! वर्त्तमान समयमें पुण्ड्देश सम्पन्न एवं धान्यादिसे परिपूर्ण नहीं है । अतः आप उक्त देशमें अभी चढ़ाई न करें । क्योंकि वे सब

अतो मुष्टिवधः शस्यवधो वा यदोत्पद्यते तदाभियास्यसि, नाद्य यात्रा युक्ता' इति ।

(३५) नगरवृद्धावप्यलापिषम्—'अल्पीयसा मूल्येन महार्हं वस्तु मास्तु मे लभ्यं धर्मरक्षायै, तदनुगुणेनैव मूल्येनादः क्रीयताम्' इति । शतहलिं च राष्ट्रमुख्यमाहूयाख्यातवान्–'योऽसावनन्तसीरः प्रहारवर्मणः पक्ष इति निनाशयिषितः, सोऽपि पितरि मे प्रकृतिस्थे किमिति नाश्येत,

---

त्यक्तात्मानः परित्यक्तजीवनाशाः । नः–अस्माकम् । राष्ट्रं–राज्यम् । समृद्धं–सम्पन्नशस्यम् । न अभिद्रवेयुर्न पीडयेयुरिति काकुः । अपि तु पीडयेयुः । तेन हानिरेवास्माकमिति भावः । अतः–अस्मात्कारणात् । मुष्टिवधः–मुष्टिपरिमितस्यान्नस्योपघातः । शस्यवधः शस्यमात्रस्योपघातः । उत्पद्यते–भविष्यतीत्यर्थः । यदा पुण्ड्रदेशे सुभिक्षं भविष्यति त्वदभियानेन च तेषां शस्यान्नहानिर्भविष्यति तदैव ते आक्रमणीया इत्याशयः । यात्रा–युद्धयात्रा युक्ता–उचिता ।

(३५) नगरवृद्धौ–पाञ्चालिकसार्थवाहौ । अलापिषम् अवोचम् । महार्हं–महामूल्यम् । धर्मरक्षायै–धर्मरक्षार्थम् । महार्हस्य वस्तुनोऽत्यल्पमूल्येन क्रयणे प्रतारणा भवतीत्यतो धर्मनाश इत्यर्थः । अनुगुणेन–समुचितेन । अदः वज्रम् । राष्ट्रमुख्यं जनपदप्रधानम् । पक्षः सहायभूतः । निनाशयिषितः–विनाशयितुमिष्टः आसीदिति शेषः । पितरि–पितृतुल्ये प्रहारवर्मणि । प्रकृतिस्थे–पूर्वभावमापन्ने । किमिति–कथम् । नश्येत–हन्येत ! नैव हन्येतेत्यर्थः । त्वया–शतहलिना । तस्मिन्–अन-

---

पुण्ड्रदेशके निवासी दुःख और मोहसे परिव्याप्त हो करके अपने प्राणोंको त्यागनेमें समुद्यत हो रहे हैं । ऐसी अवस्थामें वे मेरे समृद्धिशाली राज्यपर आक्रमण कर बैठेंगे । अत एव जब पुण्ड्रदेशमें मुष्टि परिमाणमें, शस्यप्रचुरतासे अन्न पैदा होने लगेगा अर्थात् पुण्ड्र जब सम्पत्तिशाली हो जाय । तब आक्रमण करना ठीक होगा । अभी आक्रमण करना अयुक्त है ।

(३५) नगर वृद्ध पाञ्चालिक और सार्थवाहको बुला कर कहा—'अल्प मूल्य दे कर महामणि लेनेका विचार छोड़ दिया गया । क्योंकि इसमें धर्मकी हानि हो सकती है । अतः धर्मरक्षाके विचारसे उस महामणिके अनुरूप मूल्य दे कर ही वह मणि खरीदी जाय ।' श्रेष्ठ नागरिक शतहलीको जो अनन्तसीर और प्रहारवर्माका सहायक भी था, बुला कर आज्ञा दी कि इनका भी विनाश न किया जाय । क्योंकि जब मेरे चाचाजी पूर्ववत् हो गये तो उनके सहायकगणोंका क्यों विनाश किया जाय । और कहा कि शतहलीको भी भविष्यमें अनन्तसीरके साथ विद्वेष न करना चाहिये । इन अभिज्ञानोंसे

तत्त्वयापि तस्मिन्संरम्भो न कार्यः' इति । त इमे सर्वमाभिज्ञानिकमुपलभ्य 'स एवायम्' इति निश्चिन्वाना विस्मयमानाश्च मां महादेवीं च प्रशंसन्तो मन्त्रबलानि चोद्घोषयन्तो बन्धनात्पितरौ निष्क्रामय्य स्वं राज्यं प्रत्यपादयन् अहं च तया मे धात्र्या सर्वमिदं ममाचेष्टितं रहसि पित्रोरवगमय्य प्रहर्षकाष्ठाधिरूढयोस्तयोः पादमूलमभजे ।

(३६) अभज्ये च यौवराज्यलक्ष्म्या तदनुज्ञातया । प्रसाधितात्मा देवपादविरहदुःखदुर्भगान्भोगान्निर्विशन्भूयोऽस्य पितृसखस्य सिंहवर्मणो

न्तसीरे । संरम्भः—कोपः । ते इमे—नगरवृद्धादयः । आभिज्ञानिकमभिज्ञानमिति स्वार्थे ठक् परिचयोत्पादकं चिह्नम् । उपलभ्य—ज्ञात्वा । अयं पुरो दृश्यमानः सः विकटवर्मैव । निश्चिन्वानाः निर्णयं कुर्वन्तः । विस्मयमानाः साश्चर्याः । महादेवीं कल्पसुन्दरीम् । मन्त्रबलानि—मन्त्रप्रभावान् । उद्घोषयन्तः—प्रचारयन्तः । बन्धनात्कारागृहात् । पितरौ—मातरं पितरञ्च । निष्क्रामय्य मोचयित्वा । प्रत्यपादयन्—प्रायच्छन् । तया—पूर्ववर्णितया । धात्र्या—वृद्धतापस्या । तद्द्वारेणेत्यर्थः । ममाचेष्टितं—मत्कृतं कार्यम् । पित्रोः मातापित्रोः अवगमय्य—ज्ञापयित्वा । प्रहर्षेति—प्रहर्षस्य आनन्दस्य काष्ठामवधिमधिरूढयोः प्राप्तवतोः । तयोः पित्रोः । पादमूलं—चरणतलम् । अभजे आश्रितवान् ।

(३६) अभज्ये—असेव्ये—आश्रितोऽभवमित्यर्थः. तदनुज्ञातया—ताभ्यां मातापितृभ्यामनुमतया । प्रसाधितात्मा सफलप्रयत्नः कृतकृत्य इति यावत् । 'आत्मा यत्नो धृतिर्बुद्धिरि'त्यमरः । देवपादेति—देवपादस्य भवच्चरणयुगलस्य विरहदुःखेन विच्छेदक्लेशेन दुर्भगान् अप्रियान् । भोगान् । उपभोग्यविषयान् । निर्विशन्—उपभुञ्जानः । पितृसखस्य तातमित्रस्य । लेख्यात्—पत्रात् । चम्पाभियोगं—चम्पा

वे नगर-निवासी मन्त्रिगण समझ गये कि 'यह वही राजा है।' ऐसा निश्चय होनेपर वे सब आश्चर्यान्वित हो कर मेरी और रानी कल्पसुन्दरीकी प्रशंसा करने लगे। मन्त्रके प्रभावका प्रचार करने लगे। मेरे माता-पिताको उन लोगोंने कारागारसे निकाल कर अपने प्राचीन राज्यपर अधिरूढ करा दिया। मैंने भी यह सब वृत्तान्त अपनी उस वृद्ध तापसी (धात्री) से एकान्तमें कह दिया। माता-पिताको भी यह समाचार जता दिया। जब माता-पिता आनन्दकी चरम सीमामें (अपना राज्य करने लगे) तब मैं उनके चरणों की सेवामें लगा।

(३६) उन पूज्य माता-पिताकी आज्ञासे, मैंने युवराज-पदरूपी लक्ष्मीको प्राप्त किया। कृतकृत्य हो करके भी मैंने आपके विरहसे उत्पन्न क्लेशसे उन सब सुखोंको

लेख्याच्चण्डवर्मणश्चम्पाभियोगमवगम्य 'शत्रुवधो मित्ररक्षा चोभयमपि करणीयमेव' इत्यलघुना लघुसमुत्थानेन सैन्यचक्रेणाभ्यसरम् । अभवं च भूमिस्त्वत्पादलक्ष्मीसाक्षात्क्रियामहोत्सवानन्दराशेः' इति ।

(३७) श्रुत्वैतद्देवो राजवाहनः सस्मितमवादीत्—'पश्यत पारतल्पिकमुपधियुक्तमपि गुरुजनबन्धव्यसनमुक्तिहेतुतया दुष्टामित्रप्रमापणाभ्युपायतया राज्योपलब्धिमूलतया च पुष्कलावर्थधर्मावप्यरीरधत । किं हि बुद्धिमत्प्रयुक्तं नाभ्युपैति शोभाम्' इति । अर्थपालमुखे निधाय

1969

क्रमणम् । शत्रुवधः—चण्डवर्मनिधनम् । मित्ररक्षा—सिंहवर्मणो रक्षणं करणीयमवश्यकर्त्तव्यम् । अलघुना—महता । लघुसमुत्थानेन—क्षिप्रगामिना । सैन्यचक्रेण—सेनासमूहेन । अभ्यसरम्—अभ्यगच्छम् । अभवं—जातः भूमिः पात्रं भाजनमिति यावत् । त्वत्पादेति—तव भवतो राजवाहनस्येत्यर्थः पादलक्ष्म्याश्चरणशोभायाः साक्षात्क्रिया प्रत्यक्षीकरणमेव महोत्सवस्तेन आनन्दराशिः प्रहर्षातिशयस्तस्य ।

(३७) एतत्—इमं वृत्तान्तम् । पारतल्पिकं—पारदारिकं—परदारापहरणमिति यावत् । अरीरधदित्यस्याः क्रियायाः कर्तृपदमेतत् । उपधियुक्तं छलपूर्णम् । गुरुजनेति—गुरुजनस्य पित्रादेर्बन्धः बन्धनमेव व्यसनं विपत् तस्माद् या मुक्तिर्मोक्षस्तस्य हेतुतया कारणत्वेन । दुष्टस्यामित्रस्य शत्रोः प्रमापणस्य वधस्य अभ्युपायतया साधनतया । राज्येति—राज्यस्योपलब्धिः प्राप्तिस्तस्या मूलतया निदानतया । पुष्कलौ—प्रचुरौ । अर्थधर्मौ—अर्थश्च धर्मश्च तौ धर्मार्थौ । अरीरधत्—साधयामास । राध् संसिद्धावित्यस्य लुङि रूपम् । भावार्थस्तु यदनेनोपहारवर्मणा विकटवर्माणं कपटेन निहत्य तत्पत्नी गृहीतां तत्तु पातकमेवाचरितं तेनेति सत्यम् किन्तु पितृबन्धनमोचनशत्रुनाशस्वराज्यप्राप्त्यादिबहुसत्कर्मसाधकतया दोषोऽपि गुणायैव संवृत्त इति । किं—किं वस्तु । बुद्धिमत्प्रयुक्तं बुद्धिमता कृतम् ।

अप्रिय जाना । पुनः पिताजीके मित्र सिंहवर्माके लेखसे चण्डवर्माका चम्पापुरीपर आक्रमण ज्ञात किया । शत्रुका वध और मित्रका रक्षण ये दोनों अवश्य करना चाहिये । इसी विचारसे मैं विपुल सैन्य बलके साथ अति शीघ्रतापूर्वक आपके पास आया हूँ । आपकी चरण शोभाके प्रत्यक्षीकरण से महोत्सवरूप आनन्दराशिका मैं पात्र बन गया हूँ ।

(३७) देव राजवाहन यह वृत्तान्त सुन कर बोले—'देखिये, परस्त्रीका अपहरण करना छलपूर्ण है । अर्थात्—छलियोंका कार्य है । परन्तु, माता-पिता आदि गुरु-जनोंको कारागार आदिके क्लेशसे छुड़ाना और दुष्ट शत्रुको योग्य उपायसे मारना तथा राज्य प्राप्त करना आदि बातोंके साधनमें धर्म और अर्थकी आराधना हुई है । (इससे—परस्त्री

स्निग्धदीर्घां दृष्टिम् 'आचष्टां भवानात्मीयचरितम्' इत्यादिदेश । सोऽपि बद्धाञ्जलिरभिदधे—

इति श्रीदण्डिनः कृतौ दशकुमारचरित उपहारवर्मचरितं नाम तृतीय उच्छ्वासः ।

—००:०:००—

अभ्युपैति–प्राप्नोति । अर्थपालमुखे–अर्थपालस्य कुमारेष्वन्यतमस्य मुखे आनने । निधाय–संस्थाप्य । स्निग्धदीर्घां–स्निग्धां स्नेहपूर्णामाग्रहातिशयेन दीर्घां च । आचष्टां–कथयतु । आङ्पूर्वाचक्षधातोर्लोटि रूपम् । आत्मीयचरितं स्ववृत्तान्तम् । सोऽपि–अर्थपालोऽपि । अभिदधे–उवाच ।

इति श्रीताराचरणभट्टाचार्यकृतायां बालविबोधिनीसमाख्यायां श्रीदशकुमारचरित-व्याख्यायामुपहारवर्मचरितं नाम तृतीयोच्छ्वासः ।

—००:०:००—

अपहरण पाप नहीं है ।) ठीक ही है, ऐसी कौनसी कृति है जो बुद्धिमान पुरुषोंके द्वारा की जानेपर शोभाको न प्राप्त करे । (–बुद्धिमानोंके द्वारा बुरा कार्य भी भले प्रकारसे होता है ।) इसके पश्चात् राजवाहनने आग्रहपूर्वक स्नेहपपूर्ण नेत्रोंसे अर्थपालकी ओर देखा और कहा—'आप भी अपनी चरितावली सुनायें ।'

इस प्रकार बालक्रीडानामक हिन्दी टीका समाप्त हुई ।

चतुर्थोच्छ्वासः

(१) देव, सोऽहमप्येभिरेव सुहृद्भिरेककर्मोर्मिमालिनेमि भूमिवलयं परिभ्रमन्नुपासरं कदाचित्काशीपुरीं वाराणसीम्। उपस्पृश्य मणिभङ्गनिर्मलाम्भसि मणिकर्णिकायामविमुक्तेश्वरं भगवन्तमन्धकमथनमभिप्रणम्य प्रदक्षिणं परिभ्रमन्पुरुषमेकमायामवन्तमायसपरिघपीवराभ्यां भुजाभ्यामाबध्यमानपरिकरमविरतरुदितोच्छूनताम्रदृष्टिमद्राक्षम्। अतर्कयं च–'कर्कशोऽयं पुरुषः, कार्पण्यमिव वर्षति क्षीणतारं चक्षुः, आरम्भश्च

(१) साम्प्रतमर्थपालनामा कुमारः स्वभ्रमणवृत्तान्तं वर्णयितुमारेभे देवेत्यादिना। देव–राजन्। सोऽहमर्थपाल इत्यर्थः। एभिः–अनन्तरोक्तैः। एककर्मा–एकं समानं कर्म भवदन्वेषणरूपं यस्यासौ। ऊर्मिमालीति–ऊर्मीणां तरङ्गाणां माला पंक्तिरस्यास्तीति ऊर्मिमाली समुद्रः नेमिः सीमा यस्य तत्–समुद्रवेष्टितमित्यर्थः। भूमिवलयं–भूमण्डलम्। उपासरमगच्छम्। काशीपुरीं–काशीप्रदेशस्य प्रधाननगरीम्। वाराणसीं तन्नामिकाम्। उपस्पृश्य–स्नात्वा। मणिभङ्गेति–मणीनां रत्नानां भङ्गः शकलस्तद्वन् निर्मलं स्वच्छमम्भस्तोयं यस्यास्तस्याम्। मणिकर्णिकायां–तन्नामकतीर्थे। अविमुक्तेति–अविमुक्तेति काशीक्षेत्रस्य नामान्तरं तस्येश्वरं प्रभुम्। अन्धकमथनमन्धकासुरसंहारकम्–महेशम्। प्रदक्षिणं परिभ्रमन्–परिक्रमं कुर्वन्। आयामवन्तं–दीर्घाकारम्। आयसेति–अयसा लोहेन निर्मितः आयसस्तादृशो यः परिघोऽर्गलस्तद्वत् पीवराभ्यां स्थूलाभ्याम्। भुजाभ्यां बाहुभ्याम्। आबध्येति–आबध्यमानो विरच्यमानः क्रियमाण इति यावत् परिकरः कक्षाबन्धो येन तम्। अविरतेति–अविरतं सन्ततं यद् रुदितं रोदनं तेनोच्छूने स्फीते ताम्रेऽरुणे दृष्टी नेत्रे यस्य तम्। एवंभूतं पुरुषमद्राक्षम् दृष्टवान्। अतर्कयं व्यचारयम्। कर्कशः कठोरः परुष इति यावत्। कार्पण्यं–दैन्यम्। वर्षति प्रकट-

अब अर्थपाल नामक कुमारने अपने पर्यटन वृत्तको सुनाना प्रारम्भ किया—

(१) हे देव! आपके अन्वेषणार्थ समानकर्ममें सुदृढ़ मित्रोंके साथ समुद्रान्त पृथिवीमण्डलपर पर्यटन करता हुआ मैं एकदा काशीप्रदेशकी वाराणसी नगरीमें पहुंचा। मणिकी कणिके सदृश निर्मलजल–(गङ्गाजल) वाले मणिकर्णिका तीर्थमें स्नान किया तथा काशीनाथ, अन्धकासुरसंहारक–(भगवान् विश्वनाथ–) को प्रणाम किया और प्रदक्षिणा (परिक्रमा) करने लगा। उसी समय मैंने लोहेके परिघ तुल्य (बेवड़ेके समान) स्थूल तथा अपने दोनों बाहुओंमें कक्ष कसे हुए एवं सदा रोदन करनेके कारण जिसके

साहसानुवादी, नूनमसौ प्राणनिःस्पृहः किमपि कृच्छ्रं प्रियजनव्यसनमूलं प्रतिपत्स्यते। तत्पृच्छेयमेनम्। अस्ति चेन्ममापि कोऽपि साहाय्यदानावकाशस्तमेनमभ्युपेत्येत्यपृच्छम्—'भद्र, संनाहोऽयं साहसमवगमयति। न चेद्गोप्यमिच्छामि श्रोतुं शोकहेतुम्' इति।

(२) स मां सबहुमानं निर्वर्ण्य 'को दोषः, श्रूयताम्' इति कचित्करवीरतले मया सह निषण्णः कथामकार्षीत्—'महाभाग, सोऽहमस्मि पूर्वेषु कामचरः पूर्वभद्रो नाम गृहपतिपुत्रः। प्रयत्नसंवर्धितोऽपि

यतीत्यर्थः। क्षीणतारं-दुर्बलकनीनिकम्। चक्षुरिति वर्षतीति क्रियायाः कर्तृ। आरम्भोऽध्यवसायः। साहसानुवादी-साहसानुकारी तत्सूचक इत्यर्थः। नूनं निश्चितम् असौ पुरुषः। प्राणनिस्पृहः जीवनस्पृहाशून्यः। किमपि-अनिर्वचनीयम्। कृच्छ्रं कष्टम्। प्रियजनेति-प्रियजनस्य व्यसनं विपदेव मूलं निदानं यस्य तत्। प्रियजनविपन्निमित्तकमित्यर्थः प्रतिपत्स्यते-प्राप्स्यति। साहाय्यदानावकाशः साहाय्यकरणावसरः, यदि मत्तः किमपि साहाय्यमिच्छति तदहं कर्तुमुद्यतोऽस्मीति भावः। एनं पुरुषम्। अभ्युपेत्य-सम्मुखमागत्य। इति-वक्ष्यमाणम्। भद्र सौम्येति सम्बोधनम्। संनाहः समुद्योगः। अयं-दृश्यमानः। अवगमयति सूचयति। गोप्यमप्रकाश्यम्। शोकहेतुं शोककारणम्।

(२) स पुरुषः। मामर्थपालम्। सबहुमानं साग्रहम्। निर्वर्ण्य दृष्ट्वा। करवीरतले-करवीरवृक्षस्याधस्तात्। निषण्णः समुपविष्टः। कथां वक्ष्यमाणाम्। पूर्वेषु पूर्वदेशेषु। कामचरो यथेच्छाचारी। गृहपतिपुत्रः ग्रामाध्यक्षतनयो गृहस्थपुत्रो वा। प्रयत्नसंवर्धितोऽपि-महता यत्नेन परिपालितोऽपि। दैवच्छन्दानुवर्ती अदृष्ट-

नेत्र लाल-लाल हो गये हैं, ऐसे लक्षणयुक्त एक पुरुषको देखा। मैंने विचार किया कि, यह पुरुष कठोर है। इसकी धंसी हुई आँखें दैन्यको बताती हुई आँसू बहा रही हैं। अध्यवसायसे यह साहसी ज्ञात होता है। अवश्य ही यह मनुष्य अपने जीवनसे निस्पृह हो करके किसी स्वात्मीय प्रियजनके कष्टदायक क्लेशको भोग रहा है। अतः इससे यह बात पूछनी चाहिये। यदि इसे मेरी किसी प्रकारकी सहायता चाहती हो सो भी पूछना चाहिये। 'हे भद्र! यह आपका समुद्योग साहसको बतला रहा है। यदि कोई गुप्त रखने योग्य बात न हो तो, मुझसे आप शोकका कारण बतावें'।

(२) उस पुरुषने मुझे सम्मानयुक्त दृष्टिसे देख करके कहा कोई दोष नहीं है, सुनिये! और एक कनेलके पेड़के नीचे मेरे साथ बैठ करके उसने कथा कहनी प्रारम्भ की। 'हे महाभाग! मैं पूर्व देशके एक स्वेच्छाचारी पूर्णभद्र ग्रामाध्यक्षका पुत्र हूँ।

पित्रा दैवच्छन्दानुवर्ती चौर्यवृत्तिरासम् । अथास्यां काशीपुर्यामर्यवर्यस्य कस्यचिद्गृहे चोरयित्वा रूपाभिग्राहितो बद्धः । वध्ये च मयि मत्तहस्ती मृत्युविजयो नाम हिंसाविहारी राजगोपुरोपरितलाधिरूढस्य पश्यतः कामपालनाम्न उत्तमामात्यस्य शासनाज्जनकण्ठरवद्विगुणितघण्टारवो मण्डलितहस्तकाण्डं समभ्यधावत् । अभिपत्य च मया निर्भयेन निर्भर्त्सितः परिणमन्दारुखण्डसुषिरानुप्रविष्टोभयभुजदण्डघटितप्रतिमानो भीतवन्न्यवर्तिष्ट ।

वशमापन्नः । चौर्यवृत्तिः–चौर्यं स्तेयमेव वृत्तिर्जीविका यस्य सः । आसम् अभवम् । अर्यवर्यस्य–वैश्यश्रेष्ठस्य । रूपाभिग्राहितः–रूपेण चौर्यलब्धवस्तुना अभिग्राहितो नागरिकैर्धृतः । वध्ये–वधार्हे । हिंसाविहारी हिंसायामन्यप्राणनाशे विहरतीत्येवं शीलः । राजगोपुरेति राज्ञस्तद्देशाधिपतेर्गोपुरस्य पुरद्वारस्योपरितलमूर्द्ध्वदेशमधिरूढस्याधिष्ठितस्य । उत्तमामात्यस्य प्रधानमन्त्रिणः । शासनादादेशात् । जनकण्ठेति–जनानां तत्रस्थमनुष्याणां कण्ठरवेण कण्ठध्वनिना द्विगुणितो वर्द्धितो घण्टारवो यस्य स इति मत्तहस्तिविशेषणम् । मण्डलितेति–मण्डलितो मण्डलाकारः कृतः हस्तकाण्डः शुण्डादण्डो यत्र तद् यथा तथेति क्रियाविशेषणम् । अभिपत्य–समीपमागत्य । निर्भर्त्सितः तर्जितः । परिणमन्–तिर्यग्दन्तप्रहारं कुर्वन् । तिर्यग्दन्तप्रहारस्तु गजः परिणतो मत इति कोषः । दारुखण्डेति–दारुखण्डस्य काष्ठशकलस्य सुषिरे छिद्रे अनुप्रविष्टाभ्यामन्तर्निहिताभ्यामुभयभुजदण्डाभ्यां घटितस्ताडितः प्रतिमानो दन्तयोरन्तरालभागो यस्यासौ । भीतवत्–भीत इव । न्यवर्तिष्ट-परावृत्तोऽभवत् स हस्तीति शेषः ।

पिताद्वारा लालन-पालन और महाप्रयत्नके साथ पोषण होनेपर भी अदृष्टवश चौर्यवृत्ति करने लगा । किसी समय इसी काशीपुरीमें एक धनिक वैश्यके घरमें मैंने चोरी की और चोरी की हुई वस्तुओंके साथ नागरिकोंद्वारा मैं पकड़ लिया गया । मेरे अपराधपर मुझे वधदण्ड योग्य आज्ञा दी गयी । मेरे ऊपर मृत्युविजय नामका हिंसा करनेवाला मत्त हाथी छोड़ा गया । नागरिक समूहोंकी कण्ठध्वनिसे द्विगुणित घण्टारवको करता हुआ वह मृत्युविजय हाथी मेरी ओर झपटा । उस समय कामपाल नामक राज्यके प्रधान मन्त्री इस नगरके मुख्यद्वारके ऊपर बैठ करके उस दण्डका अनुशासन कर रहे थे । जब वह हाथी मेरी ओर लपका तो, मैंने निडर हो करके उस हाथीकी खूब तर्जना की और अपने दोनों भुजदण्डोंद्वारा काष्ठके टुकड़ेको उठा करके उस हाथीके दोनों दातोंके अन्तरालमें ऐसा मारा कि, वह भयभीत हो करके पीछेको भागा ।

(३) भूयश्च नेत्रा जातसंरम्भेण निकामदारुणैर्वागङ्कुशपादपातैरभिमुखीकृतः। मयापि द्विगुणाबद्धमन्युना निर्भर्त्स्याभिहतो निवृत्यापाद्रवत्। अथ मयोपेत्य सरभसमाक्रुष्टो रुष्टश्च यन्ता 'हन्त, मृतोऽसि कुञ्जरापसद' इति निशितेन वारणेन वारणं मुहुर्मुहुरभिघ्नन्निर्याणभागे कथमपि मदभिमुखमकरोत्। अथावोचम्—'अपसरतु द्विपकीट एषः। अन्यः कश्चिन्मातङ्गपतिरानीयताम् येनाहं मुहूर्तं विहृत्य गच्छामि गन्तव्यां गतिम्' इति। दृष्ट्वैव स मां रुष्टमुद्गर्जन्तमुत्क्रान्तयन्तृनि-

(३) नेत्रा-हस्तिपकेन। जातसंरम्भेण-सञ्जातक्रोधेन। निकामदारुणैः-अतिकठोरैः। वागङ्कुशेति-वाग्वचनं संकेत इत्यर्थः अङ्कुशः सृणिः हस्तिनियन्त्रणार्थमस्त्रविशेषः, पादश्चरणस्तेषां पातैः पातनैराघातैरित्यर्थः। अभिमुखीकृतः मत्सम्मुखमानीतः। द्विगुणेति-द्विगुणं यथास्यात्तथा आबद्धः कृतो मन्युर्येन तेन-द्विगुणीकृतक्रोधेन। निर्भर्त्स्य सन्तर्ज्य। अभिहतस्ताडितः स गज इति शेषः। निवृत्य-विमुखीभूय। अपाद्रवत्-पलायिष्ट। अथ-गजपलायनानन्तरम्। उपेत्य समीपं गत्वा। सरभसं सवेगम्। आक्रुष्टस्तर्जितो निन्दित इति यावत्। अत एव मयि रुष्टः कुपितः। हन्तेति क्रोधसूचकमव्ययम् कुञ्जरापसद गजाधम। सम्बोधनम्। निशितेन तीक्ष्णेन। वारणेन अङ्कुशेन। वारणं हस्तिनम्। अभिघ्नन्-ताडयन्। निर्याणभागे-अपाङ्गदेशे अभिघ्नन्नित्यनेनास्य सम्बन्धः कथमपि-अतिकष्टेन। मदभिमुखं मत्सम्मुखीनम्। अवोचमकथयमहं पूर्णभद्र इति शेषः। अपसरतु-दूरं गच्छतु। द्विपकीटः कीटकल्पो गजः। अन्यः अपरः। येन मातङ्गपतिना। विहृत्य-क्रीडित्वा। गन्तव्यां प्राप्तव्यां गतिं मरणमित्यर्थः। स हस्ती। उद्गर्जन्तमुच्चैराक्रोशन्तम्। उत्क्रान्तेति-उत्क्रान्ता लङ्घिता यन्तुराधोरणस्य निष्ठुरा

(३) पुनः महावत अति रोषयुक्त हो करके अत्यन्त कठिन तेज अङ्कुशके प्रहारोंसे तथा परुष वचनोंसे एवं अपने पैरोंके दबावसे उस हाथीको मेरे अभिमुख ले आया। मैंने भी पहिलेसे द्विगुणित क्रोधकेद्वारा उस हाथीको कठोर वचनोंसे भर्त्सित किया। ललकारके डरसे तथा मेरे द्वारा उसी काष्ठसे प्रहारित हो करके वह हाथी फिर भागा। इसके बाद मैंने महावतके समीप जा करके उसे खूब फटकारा। मेरे फटकारनेपर महावतने क्रोधकर अपने हाथीको ललकारते हुए कहा—'अरे! गजाधम!! मरनेवाले!!! कहां भागते हो।' इत्यादि, और उस हाथीको बार-बार तीक्ष्ण अङ्कुशोंसे ताड़ना दे करके; किसी प्रकार मेरे सम्मुख फिर ले आया। मैंने कहा-इस कीड़ेके सदृश हाथीको यहांसे दूर करो और कोई दूसरा हाथी मेरे सामने लाओ। जिसके साथ मैं क्रीड़ा करके अपनी मरणगतिको

ष्ठुराज्ञः पलायिष्ट । मन्त्रिणा पुनरहमाहूयाभ्यधायिषि—'भद्र, मृत्युरेवैष मृत्युविजयो नाम हिंसाविहारी । सोऽयमपि तावत्त्वयैवंभूतः कृतः । तद्विरम्य कर्मणोऽस्मान्मलीमसात्किमलमसि प्रतिपद्यास्मानार्यवृत्त्या वर्तितुम्' इति ।

(४) 'यथाज्ञापितोऽस्मि' इति विज्ञापितोऽयं मया मित्रवन्मय्यवर्तिष्ट । पृष्टश्च मयैकदा रहसि जातविश्रम्भेणाभाषत स्वचरितम्—'आसीत्कुसुमपुरे राज्ञो रिपुंजयस्य मन्त्री धर्मपालो नाम विश्रुतधीः श्रुतऋषिः । अमुष्य पुत्रः सुमित्रो नाम पित्रैव समः प्रज्ञागुणेषु । तस्यास्मि द्वैमातुरः

कठोराज्ञा येन तथाभूतः । अभ्यधायिषि-अभिहितः । मृत्युरेव-साक्षात्कृतान्त एव । एवंभूतः-पलायनपरः । तत्तस्मात् । विरम्य-विरतो भूत्वा । अस्मात्कर्मणः-चौर्यात् । मलीमसात्-मलिनाद् गर्हितादिति यावत् । अलं समर्थः । प्रतिपद्य प्राप्य । अस्मान्-मादृशान् । आर्यवृत्त्या-सदाचारेण । वर्तितुं स्थातुम् ।

(४) यथाज्ञापितोऽस्मि-यथा भवता आदिष्टं तथैव करिष्यामीत्यर्थः । विज्ञापित उक्तः । अयं मन्त्री । मित्रवत्-सुहृदिव । अवर्तिष्ट-व्यवाहरत् । जातविश्रम्भेण-समुत्पन्नविश्वासेन-मयेत्यस्य विशेषणम् । स्वचरितं निजचरित्रम् । अमात्यस्येति शेषः । कुसुमपुरे-पाटलिपुत्रे । रिपुञ्जयस्य शत्रुदमनस्य राजहंसस्य विश्रुतधीः प्रख्यातमतिः श्रुतऋषिः-अधीतवेदः । अमुष्य-धर्मपालस्य । समस्तुल्यः । प्रज्ञागुणेषु-बुद्धिगुणेषु । तस्य सुमित्रस्य द्वैमातुरः वैमात्रेयः । वेशेषु-वेश्या-

प्राप्त करूं । क्रोधयुक्त उच्च स्वरसे मुझे गरजते हुए देख करके वह हाथी अपने महावतके अङ्कुशके प्रहारोंको न मान करके पीछेको ही भागने लगा । यह बात देख करके प्रधान मन्त्रीने मुझसे बुला करके कहा—'हे सौम्य ! यह हिंसाविहारी हाथी साक्षात् यमराज ही है । इस मृत्युविजय नामक हाथीकी भी आपने ऐसी दशा कर दी । अतः यदि आप इस गर्हित चौर्यवृत्तिको त्याग करके सदाचारयुक्त उत्तम कर्म करें और हम लोगोंसे व्यवहार करें तो, उचित हो ।

(४) मैंने उत्तर दिया-'जैसी आपकी आज्ञा हो वह मैं कर सकता हूं ।' मेरे इस प्रकारके कथनपर प्रधान मन्त्रीने मेरे साथ मित्रतुल्य व्यवहार करना आरम्भ किया । विश्वसित हो जानेपर मैंने उन प्रधान मन्त्रीसे एक बार एकान्तमें उनके जीवन चरित-वृत्तान्तको पूछा । तब उन्होंने कहा-'पाटलिपुत्रके शत्रुदमनकारी राजा राजहंसके विख्यात बुद्धिवाले वेदवेत्ता धर्मपाल नामक एक मन्त्री था । उन मन्त्री धर्मपालके एक पुत्र सुमित्र नामक था जो पिताके सदृश ही बुद्धिमान् एवं गुणवान् था । उसी सुमित्रका

कनीयान्भ्राताहम्। वेशेषु विलसन्तं मामसौ विनयरुचिरवारयत्। अवार्यदुर्नयश्चाहमपसृत्य दिङ्मुखेषु भ्रमन्यदृच्छयास्यां वाराणस्यां प्रमदवने मदनदमनाराधनाय निर्गत्य सह सखीभिः कन्दुकेनानुक्रीडमानां काशीभर्तुश्चण्डसिंहस्य कन्यां कान्तिमतीं नाम चकमे। कथमपि समगच्छे च।

(५) अथ छन्नं च विहरता कुमारीपुरे सा मयासीदापन्नसत्त्वा। कञ्चित्सुतं च प्रसूतवती। मृतजात इति सोऽपविद्धो रहस्यनिर्भेदभयात्परिजनेन क्रीडाशैले शबर्या च श्मशानाभ्याशं नीतः। तयैव निवर्तमानया निशीथे

गृहेषु। विलसन्तं विहरन्तम्। असौ सुमित्रः। विनयरुचिः विनीतस्वभावः। अवारयत्–तत्कर्म कर्त्तुं निषिद्धवान्। अवार्यदुर्नयः–अप्रतिविधेय-दुश्चेष्टः। अपसृत्य पलाय्य। दिङ्मुखेषु दिगन्तरेषु। यदृच्छया दैववशात्। प्रमदवने–क्रीडोद्याने। मदनदमनाराधनाय–शिवपूजार्थम्। कन्दुकेन–गेन्दुकेन। अनुक्रीडमानां–अनुखेलन्तीम्। काशीभर्त्तुः काशीपतेः। चकमे अभिलषितवान्। कथमपि केनापि प्रकारेण। समगच्छे–सम्मिलितोऽभवम्।

(५) छन्नं गुप्तम्। कुमारीपुरे कन्यान्तःपुरे। सा कान्तिमतीनाम्नी राजकन्या। आपन्नसत्त्वा सञ्जातगर्भा। प्रसूतवती जनयामास। मृतजातः गर्भे एव मृतः। इति इत्युक्त्वा। स बालकः। अपविद्धः परित्यक्तः। रहस्येति रहस्यस्य गोप्यस्य निर्भेदः प्रकाशस्तस्य भयाद् भीतेः। परिजनेन–सखीवर्गेण। क्रीडाशैले–क्रीडापर्वते। शबर्या भिल्ल्या। श्मशानाभ्याशं–श्मशानसमीपम्। तया–शबर्या

मैं छोटा सौतेला भाई हूं। उस विनीतरुचिवाले सुमित्रने वेश्याओंके घरोंमें विहार करनेवाले मुझको रोका। जब मैंने सोचा कि यह दुश्चरित्र मेरे विना परदेश गये न छूटेगा तब मैं वहांसे हटा और दिशा-विदिशाओंमें भ्रमण करते हुए भाग्यवश इस काशी नगरीमें आया। अपने प्रासादसे बाहर निकल करके भगवद्विश्वनाथ-पूजनके निमित्त क्रीडोद्यानमें सखियोंके साथ गेंद खेलती हुई काशिराज चण्डसिंहकी राजकुमारी कान्तिमतीको मैंने देखा और रमणकी अभिलाषा उत्पन्न हो गयी। किसी रीतिसे उस कुमारीके साथ समागम हो गया और मैं कन्यान्तःपुरमें गुप्त रीतिसे जा करके रमण करने लगा।

(५) कुछ दिनोंमें वह मेरे साथ रमण करनेसे गर्भवती हो गयी। और एक पुत्रको उत्पन्न किया। रहस्यका भेद प्रकाशित न हो जाय इस भयसे सखीवर्गने उस बालकको 'मरा हुआ' उत्पन्न हुआ है ऐसा प्रख्यात करके क्रीड़ापर्वतपर विसर्जित कर दिया। एक भीलनीद्वारा बालक श्मशानके समीप लाया गया। वह भीलनी जब आधी रातमें उस

राजवीथ्यामारक्षिकपुरुषैरभिगृह्य तर्जितया दण्डपारुष्यभीतया निर्भिन्नप्रायं रहस्यम् । राजाज्ञया निशीथेऽहमाक्रीडनगिरिदरीगृहे विश्रब्धप्रसुप्तस्तयोपदर्शितो यथोपपन्नरज्जुबद्धः श्मशानमुपनीय मातङ्गोद्यतेन कृपाणेन प्राजिहीर्ष्ये। नियतिबलाल्लूनबन्धस्तमसिमाच्छिद्यान्त्यजं तदन्यांश्च कांश्चित्प्रहृत्यापासरम् । अशरणश्च भ्रमन्नटव्यामेकदाश्रुमुख्या कयापि दिव्याकारया सपरिचारया कन्ययोपास्थायिषि ।

निवर्त्तमानया—श्मशानात्परावर्त्तमानया । निशीथेऽर्धरात्रे । राजवीथ्यां राजमार्गे । अभिगृह्य—धृत्वा । तर्जितया—भीषितया । दण्डपारुष्यभीतया—दण्डस्य पारुष्यं कठोरता तेन भीतया त्रस्तया । निर्भिन्नप्रायं—बाहुल्येन प्रकाशितम् । आक्रीडनेति—क्रीडापर्वतगुहायाम् । विश्रब्धप्रसुप्तः—विश्वासपूर्वकं निद्रितः । अहमिति शेषः । तया शबर्या । उपदर्शितः प्रदर्शितः । यथोपपन्नेति—यथोपपन्नया तत्काललब्धया रज्ज्वा श्रृंखलेन बद्धः संयतः । मातङ्गोद्यतेन—चाण्डालोत्थापितेन । कृपाणेन—खड्गेन प्राजिहीर्ष्ये—प्रहर्त्तुमिष्टः । प्रपूर्वकहृधातोः सन्नन्तात्कर्मणि लङ् । नियतिबलात् भाग्यप्रभावात् । लूनबन्धः—छिन्नबन्धनः । तमसिं खड्गं मयि प्रहृतमित्यर्थः । आच्छिद्य—मातङ्गहस्तादाकृष्य । अन्त्यजं—चण्डालम् अन्यान्—तत्साहाय्यकारिणः । अशरणो निराश्रयः । अटव्यामरण्ये । अश्रुमुख्या—साश्रुवदनया । कयापि—अनिर्दिष्टनामिकया । दिव्याकारया—दिव्यः स्वर्गीय आकार आकृतिर्यस्यास्तया । सपरिचारया—परिचरणं परिचारः शुश्रूषा, अत्र तु शुश्रूषोपकरणं तेन सह वर्त्तमानया । उपास्थायिषि—सङ्गतोऽभवम् ।

बालकको श्मशानमें धर करके लौट रही थी तब राजमार्गमें रक्षापुरुषोंद्वारा पकड़ ली गयी तथा डांटी-फटकारी गयी । भीषण दण्डके भयसे उस भीलनीने सब रहस्यकी बातें प्रकाशित कर दीं । राजाज्ञासे मैं क्रीड़ापर्वतकी गुफामें निश्शंक हो करके सो रहा था । उसी समय भीलनी द्वारा पथके प्रदर्शनसे आये हुए रक्षापुरुषोंने मुझे तत्काल प्राप्त की हुई रस्सीसे बाँधा और श्मशान ले आये । वहाँ मेरे ऊपर चाण्डालके द्वारा खड्गसे प्रहार कराया गया । दैववशात् उस चाण्डालके खड्गसे मेरे ऊपर की बँधी रस्सी कट गयी और स्वच्छन्द होकर मैंने उस चाण्डालसे खड्ग छीन लिया । उस चाण्डालको तथा उसके अन्य सहायकोंको मार करके भाग निकला । मैं निराश्रय हो करके अरण्योंमें घूमने लगा । एक समय अरण्यमें दिव्यरूपवाली अश्रुमुखी कोई एक कन्या मेरे समीप आयी जिसके साथ एक परिचारिका भी थी ।

(६) सा मामञ्जलिकिसलयोत्तंसितेन मुखविलोलकुन्तलेन मूर्ध्ना प्रणम्य मया सह वनवटद्रुमस्य कस्यापि महतः प्रच्छायशीतले तले निषण्णा, 'कासि वासु, कुतोऽस्यागता, कस्य हेतोरस्य मे प्रसीदसी'ति साभिलाषमाभाषिता मया वाङ्मयं मधुवर्षमवर्षत्—'आर्य, नाथस्य यक्षाणां मणिभद्रस्यास्मि दुहिता तारावली नाम। साहं कदाचिदगस्त्यपत्नीं लोपामुद्रां नमस्कृत्यापावर्तमाना मलयगिरेः परेतावासे वाराणस्याः कमपि दारकं रुदन्तमद्राक्षम्। आदाय चैनं तीव्रस्नेहान्मम पित्रोः संनिधिमनैषम्। अनैषीच्च मे पिता देवस्यालकेश्वरस्यास्थानीम्।

(६) सा कन्या। अञ्जलिकिसलयेति—अञ्जलिरेव किसलयः पल्लवस्तेनोत्तंसितो भूषितस्तेन। शिरस्यञ्जलिं बद्ध्वेत्यर्थः। मुखेति—मुखे वदने विलोलाश्चञ्चलाः कुन्तलाः केशा यस्य तादृशेन। विशेषणद्वयमिदं मूर्ध्नेत्यस्य। वनवटद्रुमस्यारण्यकवटवृक्षस्य। प्रच्छायशीतले—प्रच्छायेन विस्तृतच्छायया शीतले शिशिरे। तले अधःप्रदेशे। निषण्णा समुपविष्टा। का—किं-नामधेया कस्य वा कन्या। वासु—बाले। कुतः कस्मात्स्थानात्। कस्य हेतोः—केन प्रयोजनेन। अस्य मे—एतावदवस्थस्य मम। प्रसीदसि—प्रसन्ना भवसि। साभिलाषं—सानुरागम्। आभाषिता उक्ता सतीत्यर्थः। वाङ्मयं—वचनरूपम्। मधुवर्षं—मधुवृष्टिम्। यक्षाणां नाथस्य—यक्षाणां प्रधानस्य मणिभद्रस्य। साहं—मणिभद्रकन्या तारावली। अपावर्त्तमाना—प्रत्यागच्छन्ती। मलयगिरेः मलयपर्वतात्। दक्षिणात्येषु श्रीशैलेऽगस्त्यस्य निवास इति पुराणप्रसिद्धम्। परेतावासे—श्मशाने। कमपि—एकम्। दारकं—शिशुम्। रुदन्तं क्रन्दन्तम्। आदाय गृहीत्वा। एनं—दारकम्। तीव्रस्नेहात्—अत्यधिकवात्सल्यात्। पित्रोः—मातापित्रोः। अनैषं नीतवती। अलकेश्वरस्य—कुबेरस्य। आस्थानीं—सभाम्।

(६) उस कन्याने अपने दोनों करपल्लवोंकी अञ्जलिको शिरोभूषण बनाकरके अपने बिखरे बालोंवाले शिरसे मुझे प्रणाम किया। अरण्यके एक बड़े वट वृक्षके नीचे उसकी शीतल छायामें मेरे साथ बैठी। मैंने पूछा—हे बाले! आप कौन हैं? कहाँसे आगमन हुआ है! किस कारणसे आप मेरे ऊपर इतनी प्रसन्न हो रही हैं। इस प्रकार सानुराग पूछनेवाले पर अर्थात् मुझपर उस कन्याने अपने वचनरूपी मधुको बरसाया—'हे आर्य! मैं यक्षराज मणिभद्रकी तारावली नामकी पुत्री हूँ। एक समय मैं अगस्त्य ऋषिकी भार्या लोपामुद्राको प्रणाम करके मलयागिरिसे लौट रही थी कि काशीकी श्मशान-भूमिमें किसी एक शिशुको रोते हुए देखा। अत्यन्त वात्सल्य प्रेमके कारण मैं उस शिशुको उठा करके अपने माता-पिताके समीप ले आयी। मेरे पिताजी उस शिशुको राजराज (कुबेर) के दरबारमें ले गये।

(७) अथाहमाहूयाज्ञप्ता हरसखेन, 'बाले बालेऽस्मिन्कीदृशस्ते भावः' इति । 'औरस इवास्मिन्वत्से वत्सलता' इति मया विज्ञापितः 'सत्यमाह वराकी' इति तन्मूलामतिमहतीं कथामकरोत् । तत्रैतावन्मयावगतम् 'त्वं किल शौनकः शूद्रकः कामपालश्चाभिन्नः । बन्धुमती विनयवती कान्तिमती चाभिन्ना । वेदिमत्यार्यदासी सोमदेवी चैकैव । हंसावली शूरसेना सुलोचना चानन्या । नन्दिनी रङ्गपताकेन्द्रसेना चापृथग्भूता । या किल शौनकावस्थायामग्निसाक्षिकमात्मसात्कृता गोपकन्या सैव किलार्यदासी पुन-

(७) अहं तारावली । हरसखेन कुबेरेण । कुबेरस्त्र्यम्बकसख इत्यमरः । बाले-वत्से, सम्बोधनमेतत् । द्वितीयस्य 'बाले' इत्यस्य बालके इत्यर्थः । भावः-स्नेहः । औरसे-औरसपुत्रे इव । वत्से-बाले । वत्सलता-वात्सल्यं स्नेह इति यावत् । विज्ञापितः कथितः-कुबेरः इति शेषः । वराकी-अनुकम्पार्हा । तन्मूलां दारकः सम्बन्धिनीम् । तत्र तस्यां कथायाम् । एतावत्-एतदेव । त्वं किलेत्यादि-त्वमेव शौनकः शूद्रकः कामपालश्चैक एव । अस्मिन् जन्मनि यस्त्वं कामपालनामासि स एव पूर्वजन्मनि शूद्रकनामाऽभवस्तत्पूर्वजन्मनि च शौनकनामासीरतोऽभिन्न एवेत्यर्थः । बन्धुमत्यादयो द्वादश क्रमेण तवैव भार्या अभवन् । शौनकस्य बन्धुमती वेदिमती हंसावलीनन्दिन्याख्याश्चतस्रः, शूद्रकस्य विनयवत्यार्यदासीशूरसेना-रङ्गपताकाख्याश्चतस्रः, कामपालस्य च कान्तिमतीसोमदेवीसुलोचनेन्द्रसेनाख्याश्चतस्रो भार्या अभवन् । या खलु बन्धुमती जन्मान्तरे सैव जन्मान्तरे वेदिमती सैव पुनर्हंसावली सैव नन्दिनी । एवमेव विनयवत्यादयोऽपि अतस्ता अपि अभिन्ना एवेति तात्पर्यम् । शौनकावस्थायां शौनकजन्मनि । अग्निसाक्षिकम्-अग्निं साक्षीकृत्य । आत्मसात्कृता-विवाहिता त्वयेति शेषः । गोपकन्या-आभीरदुहिता । सैव गोपकन्यैव । आर्यदासी तव शूद्रकावस्थायामार्यदासीनाम्नी समभवदित्यर्थः ।

(७) महादेवके सखा कुबेरने मुझे बुला करके पूछा—'हे बाले ! इस शिशुपर तेरा क्या भाव है ?' मैंने उन्हें सूचित किया कि मुझे इस शिशुपर अपने औरस पुत्रके समान वात्सल्यप्रेम है । 'हे कृपापात्रि ! तुमने सत्य कहा । ऐसा कह कर उन कुबेर भगवान्ने उस शिशुसम्बन्धिनी एक बड़ी कथा कही । उस कथासे मुझे ये बातें विदित हुईं । आप ही शौनक, शूद्रक और कामपाल हैं—अर्थात् इस जन्ममें आप काम पाल हैं इसके पूर्वमें शूद्रक थे और उसके पूर्वमें आप शौनक रूपमें थे । इसी तरह बन्धुमती, विनयवती, और कान्तिमती भी क्रमसे वेदिमती, आर्यदासी और सोमदेवी थीं और इसके पूर्व हंसावली, शूरसेना और सुलोचना थीं एवं उसके पूर्व नन्दिनी, रङ्गपताका और इन्द्रसेना थीं । शौनकावस्थामें जिस गोप कन्यासे

श्राद्य तारावलीत्यभूवम्।

(८) बालश्च किल शूद्रकावस्थे त्वय्यार्यदास्यवस्थायां मय्युदभूत्। अवर्ध्यत च विनयवत्या स्नेहवासनया। स तु तस्यां कान्तिमत्यवस्थाया-मद्योदभूत्। एवमनेकमृत्युमुखपरिभ्रष्टं दैवान्मयोपलब्धं तमेकपिङ्गादेशा-द्वने तपस्यतो राजहंसस्य देव्यै वसुमत्यै तत्सुतस्य भाविचक्रवर्तिनो राज-वाहनस्य परिचर्यार्थं समर्प्य गुरुभिरभ्यनुज्ञाता कृतान्तयोगात्कृतान्तमुख-भ्रष्टस्य ते पादपद्मशुश्रूषार्थमागतास्मि' इति।

अद्य पुनरिदानीन्तु तारावलीनाम्नाहमभूवम्। आर्यदास्येव जन्मान्तरे तारावल्य-भवदिति भावः।

(८) बालः—पूर्ववर्णितः शिशुः। शूद्रकावस्थे–शूद्रकरूपधारिणि। त्वयि-कामपाले इत्यर्थः। आर्यदास्येति–आर्यदासीरूपायाम्। मयि–तारावल्यामित्यर्थः। उदभूत्–उत्पन्नः। अवर्ध्यत पोषितोऽभवत् विनयवत्या–शूद्रकस्य प्रथमपत्न्या। स्नेहवासनया–वात्सल्यभावेन स तु–स एव बालकः। तस्यां विनयवत्याम्। का-न्तिमत्यवस्थायां या खलु शूद्रकावस्थायां विनयवती सैवास्मिञ्जन्मनि कामपाला-वस्थायां कान्तिमती जातेत्यर्थः। एवम्–अनेन प्रकारेण। अनेकेति अनेकाद् बहो-र्मृत्युमुखात्कृतान्तवदनात्परिभ्रष्टं च्युतम्। तमित्यस्य विशेषणम्। दैवात् दैवसं-योगात्। मया–तारावल्या। उपलब्धं प्राप्तम्। तं बालम्। एकपिङ्गादेशात्–कुबेरा-ज्ञया। तपस्यतः तपस्यां कुर्वतः। देव्यै–महिष्यै। गुरुभिः पित्रादिभिः। अभ्यनु-ज्ञाता–आदिष्टा। कृतान्तयोगाद् दैववशात्। कृतान्तमुखभ्रष्टस्य–यमसुखाच्चिरं-तस्य कृतान्तो यमसिद्धान्तयोरिति कोषः। ते–तव–कामपालस्येति यावत्। इत्य-न्तं तारावलीवचनम्।

अग्निकी साक्षी दे करके आपने विवाह किया था वही आर्यदासी हुई और वही इस समय तारावली नामक मैं हूँ।

(८) जब मैं आर्यदासी थी और आप शूद्रक थे उस अवस्थामें यह पुत्र मुझसे उत्पन्न हुआ था। विनयवतीद्वारा यह बालक स्नेहसे पालन-पोषण किया गया। वही पुत्र इस समय कान्तिमती अवस्थामें उत्पन्न हुआ है। इसी रीतिसे अनेक बार मृत्युके मुखसे बच करके यह बालक भाग्यवश मुझे प्राप्त हुआ है। उस बालकको राजराज कुबेरके आदेशसे राजहंसके भावी पुत्र चक्रवर्ती राजवाहनकी परिचर्याके लिये राजहंसकी देवीको समर्पण कर दिया है जो राजवाहन इस समय वनमें तपस्या कर रहे हैं। गुरुवर्गकी आज्ञानुसार दैववश मैं यमराजके मुखसे बच करके आपके चरण-कमलोंकी सेवाके हेतु यहाँ पर आयी हूँ।

(६) श्रुत्वा तामनेकजन्मरमणीमसकृदाश्लिष्य हर्षाश्रुमुखो मुहुर्मुहुः सान्त्वयित्वा तत्प्रभावदर्शिते महति मन्दिरेऽहर्निशं भूमिदुर्लभान्भोगानन्वभूवम् । द्वित्राणि दिनान्यतिक्रम्य मत्तकाशिनीं तामवादिषम्—'प्रिये, प्रत्यपकृत्य मत्प्राणद्रोहिणश्चण्डसिंहस्य वैरनिर्यातनसुखमनुबुभूषामि' इति । तया सस्मितमभिहितम्—'एहि कान्त, कान्तिमतीदर्शनाय नयामि त्वाम्' इति । स्थितेऽर्धरात्रे राज्ञो वासगृहमनीये । ततस्तच्छिरोभागवर्तिनीमादायासियष्टिं प्रबोध्यैनं प्रस्फुरन्तमब्रवम्—'अहमस्मि भवज्जामाता । भवदनुमत्या विना तव कन्याभिमर्शी । तमपराधमनुवृत्त्या प्रमार्ष्टुमागत' इति ।

(९) तां तारावलीम् । अनेकेति–अनेकेषु जन्मसु पत्नीभूताम् । असकृद् वारं वारम् । हर्षाश्रुमुखः–प्रमोदबाष्पपूर्णाननः । सान्त्वयित्वा–आश्वास्य । तत्प्रभावेति—तस्यास्तारावल्याः प्रभावेण यक्षकन्यात्वात् तदुचितसामर्थ्येन दर्शिते प्रकटीकृते । भूमिदुर्लभान्–पृथिव्यामलभ्यान्–स्वर्गीयानित्यर्थः । द्वित्राणि कतिपयानि । अतिक्रम्य व्यतीत्य । तां तारावलीम् । प्रत्यपकृत्य–प्रत्यपकारं विधाय । मत्प्राणद्रोहिणः–मज्जीवितजिघांसोः । वैरनिर्यातनसुखं–वैरशुद्धिजनितमानन्दम् । अनुबुभूषामि–अनुभवितुमिच्छामि । तया–तारावल्या । कान्त–नाथेति सम्बोधनम् । स्थिते–अवशिष्टे । राज्ञः चण्डसिंहस्य । अनीये–नीतः अहमिति शेषः । तच्छिरोभागवर्त्तिनीं–राजशिरोदेशावस्थिताम् । प्रबोध्य जागरयित्वा । एनं राजानं चण्डसिंहम् । प्रस्फुरन्तम्=कम्पमानम् । अनुमत्या–सम्मत्या । कन्याभिमर्शी बलात्कारेण तव कन्यां परामृष्टवानहमिति शेषः । अनुवृत्त्या–परिचर्यया । प्रमार्ष्टुं–क्षालयितुम् ।

(९) तारावलीका अपनी अनेक जन्मोंकी रमणी श्रवण करके उसका बार-बार आलिंगन किया तथा आनन्दाश्रुओंको बहाते हुए उसे सान्त्वना दी एवं उसी यक्षकन्या तारावली द्वारा प्रदर्शित एक विशाल सदनमें रात-दिन स्वर्गीय सुख भोगने लगा । कुछ दिनोंको विता करके मैंने उस उत्तम वनिता से कहा—'हे प्रिये ! मेरे प्राणोंके साथ द्रोह करनेवाला जो चण्डवर्मा है उसके साथ अपकार कर वैरशुद्धिजनित आनन्दको प्राप्त करना चाहता हूँ' । उसने हँसकर उत्तर दिया 'हे कान्त ! यहाँ आओ ! कान्तिमतीको दिखानेके लिये मैं तुम्हें ले चलती हूँ ।' आधी रातके समय वह मुझे राजप्रासादमें ले गयी । तदनन्तर सोये हुये राजा चण्डसिंहके सिरहानेकी ओर रखी हुई तलवारको मैंने अपने हाथमें उठा लिया और राजाको जगा दिया । जगनेपर मुझे देखकर काँपनेवाले उस राजासे मैंने कहा—'मैं आपका दामाद हूं । मैंने आपकी आज्ञा विना जो आपकी पुत्रीसे सम्बन्ध कर लिया है उसको आपकी परिचर्या द्वारा मिटानेके लिये मैं यहाँ आया हूँ ।

(१०) सोऽतिभीतो मामभिप्रणम्याह—'अहमेव मूढोऽपराद्धः यस्तव दुहितृसंसर्गानुग्राहिणो ग्रहग्रस्त इवोत्क्रान्तसीमा समादिष्टवान्वधम्। तदास्तां कान्तिमती राज्यमिदं मम च जीवितमप्यद्यप्रभृति भवदधीनम्' इत्यवादीत्। अथापरेद्युः प्रकृतिमण्डलं संनिपात्य विधिवदात्मजायाः पाणिमग्राहयत्। अश्रावयच्च तनयवार्तां तारावली कान्तिमत्यै, सोमदेवीसुलोचनेन्द्रसेनाभ्यश्च पूर्वजातिवृत्तान्तम्। इत्थमहं मन्त्रिपदापदेशं यौवराज्यमनुभवन्विहरामि विलासिनीभिः' इति।

(११) स एवं मादृशेऽपि जन्तौ परिचर्यानुबन्धी बन्धुरेकः सर्व-

---

(१०) स चण्डसिंहः। मां कामपालम्। यः अहम्। दुहितृसंसर्गेति—दुहितुः कन्यायाः संसर्गेण संपर्केणागृह्णातीत्येवंशीलस्य कन्यासम्बन्धेन कृपापरस्येत्यर्थः। ग्रहग्रस्तः—ग्रहाविष्टः। उत्क्रान्तसीमा अतिक्रान्तमर्यादः। आस्तां तिष्ठतु। प्रकृतिमण्डलं प्रजावर्गम्। संनिपात्य—एकत्रीकृत्य प्रजानां समक्षमित्यर्थः। विधिवद् विध्युक्तमार्गेण। आत्मजायाः कन्यायाः कान्तिमत्याः। पाणिमग्राहयत्। विवाहमकारयत् मयेति शेषः। तनयवार्त्तां पुत्रवृत्तान्तम्। पूर्वजातिवृत्तान्तं पूर्वजन्मपरिचयादिकम्। इत्थमनेन प्रकारेण। मन्त्रिपदापदेशं मन्त्रिपदस्यापदेशश्छलं यत्र तदिति यौवराज्यविशेषणम्। मन्त्रिव्याजेन यौवराज्यमेव अनुभवामीत्यर्थः। विलासिनीभिः कामिनीभिरित्यन्तं कामपालवाक्यम्।

(११) स एवमित्यादि पुनः कथयति पूर्णभद्रः। स कामपालः। एवम् अनेन प्रकारेण। जन्तौ—जन्तुसदृशे निकृष्टे मयि। परिचर्यानुबन्धी—सेवापरायणः। बन्धुः

---

(१०) राजाने अत्यन्त भयभीत होकर मुझे प्रणाम किया और कहा—'मैं स्वयं ही मूर्ख हूँ। मैंने ही आपका अपराध किया है। क्योंकि कन्याके साथ सम्पर्क करनेवाले आपपर मैंने पागलकी तरह क्रोधाभिभूत हो कर अतिक्रान्तमर्यादावालेके सदृश व्यवहार किया—वधकी आज्ञा सुनायी। अब उस चर्चाको त्याग दीजिये और आजसे यह कान्तिमती कन्या, मेरा सम्पूर्ण राज्य तथा जीवन अपने ही अधीन समझिये। एवं ऐसा कहनेके पश्चात् उस राजा ने दूसरे दिन अपने प्रजावर्गको एकत्र करके अपनी कन्या कान्तिमतीका विवाह मेरे साथ शास्त्रानुसार सम्पन्न कर दिया। तारावलीने उस शिशु-वृत्तको कान्तिमती देवीसे कह सुनाया। सोमदेवी सुलोचना और इन्द्रसेना प्रभृतिको भी पूर्वजन्मका परिचय वृत्त सुना दिया। इस रीतिसे मैं सचिवपदके व्याज (छल) से यौवराज्यसुखोंको भोगता हुआ विलासिनियोंके साथ नित्य रमण किया करता हूं।

(११) पुनः पूर्णभद्रने कहना आरम्भ किया। मेरे श्वसुर राजा चण्डसिंहके स्वर्गा-

भूतानामलसकेन स्वर्गते श्वशुरे, ज्यायसि च श्याले चण्डघोषनाम्नि स्त्रीष्वतिप्रसङ्गात्प्रागेव क्षयक्षीणायुषि, पञ्चवर्षदेशीयं सिंहघोषनामानं कुमारमभ्यषेचयत् । अवर्धयच्च विधिनैनं स साधुः । तस्याद्य यौवनोन्मादिनः पैशुन्यवादिनो दुर्मन्त्रिणः कतिचिदासन्नन्तरङ्गभूताः । तैः किलासावित्थमग्राह्यत—'प्रसह्यैव स्वसा तवामुना भुजङ्गेन संगृहीता पुनः प्रसुप्ते राजनि प्रहर्तुमुद्यतासिरासीत् । तेनास्मै तत्क्षणप्रबुद्धेन भीत्यानुनीय दत्ता कन्या । तं च देवज्येष्ठं चण्डघोषं विषेण हत्वा बालोऽयमसमर्थ

मित्रभूतः । सर्वभूतानां सर्वप्राणिनाम् बन्धुरित्यनेनान्वयः । अलसकेन क्षयरोगेण । क्षयस्त्वलसको मत इति कोपः । स्वर्गते मृते । श्वशुरे चण्डसिंहे । ज्यायसि ज्येष्ठे । श्याले श्यालके पत्नीसहोदरे इति यावत् । अतिप्रसङ्गाद् अत्यासक्तेः प्रागेव पितृमरणात्पूर्वमेव । क्षयक्षीणायुषि-क्षयेण क्षयरोगेण क्षीणमल्पमायुर्जीवितकालो यस्य तस्मिन् । सतीति शेषः । अभ्यषेचयत् राज्येऽभिषेकमकारयत् । एनं सिंहघोषनामानं कुमारम् । स साधुर्महात्मा कामपालः । तस्य सिंहघोषस्य । अद्य साम्प्रतम् । यौवनोन्मादिनः-तारुण्यमदगर्वितस्य । पैशुन्यवादिनः—पैशुन्यं खलत्वं वदन्ति प्रकटयन्ति ये तथाभूताः दुर्जना इत्यर्थः । दुर्मन्त्रिणो दुष्टामात्याः । कतिचित् कतिपये जनाः । आसन् अभवन् । अन्तरङ्गभूताः आप्ततराः । तैर्दुर्मन्त्रिभिः । असौ सिंहघोषः । इत्थं वक्ष्यमाणप्रकारेण । अग्राह्यत-अबोध्यत । प्रसह्य-बलात् । स्वसा भगिनी-कान्तिमतीत्यर्थः । अमुना-कामपालेन । भुजङ्गेन विटेन धूर्त्तेनेति यावत् । प्रसुप्ते-निद्रिते । राजनि चण्डसिंहे तव पितरीत्यर्थः । प्रहर्त्तुं हन्तुम् । उद्यतासिः—उत्थापितखड्गः । तेन तव पित्रा । अस्मै कामपालाय । तत्क्षणप्रबुद्धेन-तत्कालजागरितेन । देवज्येष्ठं भवदग्रजम् । बालः शिशुरयं सिंहघोषः अतोऽसमर्थोयमिति कृत्वा । प्रकृतिविश्रम्भणाय-प्रजानां विश्वासोत्पादना-

वासी हो जानेपर, मेरे सदृश पुरुषके वर्त्तमान होनेपर भी, अपने स्वामीकी सेवामें परायण तथा सभी प्राणियोंके मित्रभूत सुयोग्य कामपालने पाँच बरससे भी छोटी अवस्थावाले सिंहघोष नामक राजकुमारको गद्दीपर बैठा दिया—राज्याभिषेक कर दिया । क्योंकि मेरा बड़ा साला चण्डघोष अतिस्त्रीप्रसङ्ग करनेके कारण क्षयरोगी हो गया था और उसीसे वह पिता के समान ही अल्पायु होकर मर गया । उस विवेकी महात्मा कामपालने सिंहघोषका यथाविधि पालन-पोषण करके उसे बड़ा किया । उक्त कुमार सिंहघोषके इस समय कई अन्तरंगभूत दुष्ट मन्त्री हैं जो उसे तारुण्यमें मदोन्मत्त कर रहे हैं तथा खलत्व सिखा रहे हैं । उन मन्त्रियोंके द्वारा उसने निम्नांकित बातें ज्ञात की हैं—

इति त्वमद्यापि प्रकृतिविश्रम्भणायोपेक्षितः। क्षिणोति च पुरा स कृतघ्नो भवन्तम्। तमेवान्तकपुरमभिगमयितुं यतस्व' इति।

(१२) स तथा दूषितोऽपि यक्षिणीभयान्नामुष्मिन्पापमाचरितुमशकत्। एषु किल दिवसेष्वयथापूर्वमाकृतौ कान्तिमत्याः समुपलक्ष्य राजमहिषी सुलक्षणा नाम सप्रणयमपृच्छत्—'देवि, नाहमायथातथ्येन विप्रलम्भनीया। कथय तथ्यं केनेदमयथापूर्वमाननारविन्दं तवैषु वासरेषु' इति। सा त्ववादीत्—'भद्रे, स्मरसि किमद्याप्यायथातथ्येन किंचिन्मयोक्तपूर्वम्। सखी मे तारावली सपत्नी च किमपि कलुषिताशया मद्गोत्रा-

---

र्थम्। उपेक्षितः त्यक्तः। क्षिणोति च पुरा—क्षयं नेष्यति। यावत्पुरा निपातयोरिति भविष्यत्सामीप्ये लट्। कृतघ्नः अकृतज्ञः। तं कामपालम्। अन्तकपुरं यमालयम्। अभिगमयितुं प्रापयितुम्।

(१२) स सिंहघोषः। दूषितः भेदं गमितः। यक्षिणीभयात्—तारावलीभयेन। अमुष्मिन् कामपाले। पापमाचरितुम् अनिष्टं विधातुम्। एषु वर्त्तमानेषु। अयथापूर्वं प्रागलक्षितं विकारभावम्। आकृतौ—आकारे। राजमहिषी—सिंहघोषपत्नी। आयथातथ्येन—अवास्तवकथनेन। विप्रलम्भनीया—प्रतारणीया। तथ्यं सत्यम्। केन—केन हेतुना। सा कान्तिमती। स्मरसि किमित्यादि—तव समीपे मया कदापि असत्यं नैवोक्तमिति भावः। उक्तपूर्वं—पूर्वमुक्तम्। किमपि—किञ्चित्। कलुषिताशया मलिनाभिप्राया—विरक्तभावेति यावत्। मद्गोत्रापदिष्टा—मदीयनाम्ना समाहूता। गोत्रस्खलनेन तु सपत्नीनामीर्ष्या संजायत इति प्रसिद्धम्। प्रणयम्—अस्मासु प्रीतिम्।

इस विट कामपालने आपकी बहिनको जबर्दस्ती ग्रहण किया है। पुनः सुप्तावस्थामें आपके पिता राजा चण्डसिंहको मारनेके लिये तैयार हुआ।

तब उन्होंने उस समय जाग कर मारे भयके अपनी पुत्री का इसके साथ विवाह कर दिया। आपके बड़े भाई चण्डघोषको जहर दे करके मरवा डाला। आपको बालक जान कर तथा प्रजाकी प्रतीतिप्राप्त्यर्थं छोड़ दिया। यह कृतघ्न आपका भी नाश करेगा—मार डालेगा। अतः इसीको यमपुरी पहुँचानेका प्रयत्न करना आपका कार्य है।

(१२) वह राजकुमार सिंहघोष गुप्त रहस्यको ज्ञात कर भी यक्षिणी तारावलीके भयसे कन्यादूषक उस कामपालको मारनेमें असमर्थ रहा। इन दिवसोंमें कान्तिमतीकी आकृतिमें विचित्र परिवर्त्तन देख कर राजा सिंहघोषकी रानी सुलक्षणाने विनम्र भावसे पूछा—'हे देवि! मुझे झूठ कहकर मत ठगो अपितु सत्य बताओ। किस कारणसे इन दिनों तुम्हारा मुखकमल मुरझा गया है?' वह कान्तिमती बोली—'हे सौम्ये! क्या

पदिष्टा प्रणयमप्युपेक्ष्य रहसि भर्त्रा प्रणम्यमानाप्यस्माभिरुपोढमत्सरा प्रावसत् । अवसीदति च नः पतिः । अतो मे दौर्मनस्यम्' इति ।

(१३) तत्प्रायेणैकान्ते सुलक्षणया कान्तया कथितम् । 'अथासौ निर्भयोऽद्य प्रियतमाविरहपाण्डुभिरवयवैर्धैर्यस्तम्भिताश्रुपर्याकुलेन चक्षुषोष्मश्वासशोषिताभिरिवानतिपेशलाभिर्वाग्भिर्वियोगं दर्शयन्तम्, कथमपि राजकुले कार्याणि कारयन्तम्, पूर्वसंकेतितैः पुरुषैरभिग्राह्यावन्धयत् । तस्य किल स्थाने स्थाने दोषानुद्घोष्य तथोद्धरणीये चक्षुषी यथा

उपेक्ष्य–अगणयित्वा । प्रणम्यमाना–सप्रणाममावेद्यमाना । उपोढमत्सरा–सञ्जातद्वेषा । प्रावसत्–देशान्तरं गतवती । अवसीदति–अवसादं गच्छति–क्लिश्यतीति यावत् । दौर्मनस्यं–दुःखितचित्तत्वम् ।

(१३) तत् कान्तिमत्या दौर्मनस्य कारणम् । प्रायेण–बाहुल्येन । कथितं सिंहघोषायेति शेषः । असौ सिंहघोषः । निर्भयः–तारावलीप्रवासाद् भीतिरहितः । प्रियतमेति–प्रियतमायास्तारावल्या विरहेण विच्छेदेन पाण्डुभिर्विवर्णैः । अवयवैरङ्गैः । धैर्येति–धैर्येण धीरतया स्तम्भितमवरुद्धं अश्रु नेत्रजलं तेनाकुलं व्याप्तं तेन । ऊष्मश्वासेति–ऊष्मश्वासेन दीर्घनिःश्वासवायुना शोषिताभिः क्षीणाभिः । अनतिपेशलाभिः–अनतिकोमलाभिः । वियोगं विरहम् । दर्शयन्तं प्रकटयन्तम् । कथमपि अतिकष्टेन । कारयन्तं साधयन्तं कामपालमिति शेषः । पूर्वसंकेतितैः । प्राक्सूचितैः । अभिग्राह्य ग्राहयित्वा । अवन्धयत्–बन्धनमनयत् । तस्य कामपालस्य । उद्घोष्य–प्रकटीकृत्य । तथा तेन प्रकारेण । उद्ध–

आपको स्मरण आता है कि मैं आपसे कभी भी झूठ बोली हूँ । मेरी सखी तारावली यक्षिणी जो मेरी सपत्नी भी है वह बड़ी मलिनाभिप्रायवाली है । कदाचित् एकान्तमें पतिद्वारा मेरे नामसे उसे सम्बोधित किया गया । बस, इसी बातपर वह रुष्ट हो गयी । इसपर पतिदेवने प्रणाम भी किया किन्तु उसका क्रोध शान्त न हुआ और मारे ईर्ष्याके वह कहीं दूर देश चली गयी । इस हेतु मेरे पति उदास रहते हैं और पतिकी उदासीसे मैं भी उदास रहती हूँ ।

(१३) इन बातोंको सुलक्षणाने अपने पतिसे बहुलतासे एकान्तमें कह दिया । तत्पश्चात् निर्भय हो करके राजा सिंहघोषने उस कामपालको प्राक्सूचित (पूर्वसंकेतित) राजपुरुषोंके द्वारा पकड़वा कर कारागारमें डाल दिया जो कामपाल अपनी प्रियतमा तारावलीके वियोगसे पाण्डुवर्णी शरीरवाला हो रहा था, धीरतासे रोके हुए आँसुओंसे व्याकुल नेत्रवाला तथा उष्ण श्वासोंसे सूखी काठीवाला एवं कठोरवाणीके बोलनेसे अपने

तन्मूलमेवास्य मरणं भवेत्' इति। अतोऽत्रैकान्ते यथेष्टमश्रु मुक्त्वा तस्य साधोः पुरः प्राणान्मोक्तुकामो बध्नामि परिकरम्' इति।

(१४) मयापि तत्पितृव्यसनमाकर्ण्य पर्यश्रुणा सोऽभिहितः—'सौम्य, किं तव गोपायित्वा। यस्तस्य सुतो यक्षकन्यया देवस्य राजवाहनस्य पादशुश्रूषार्थं देव्या वसुमत्या हस्तन्यासः कृतः सोऽहमस्मि। शक्यामि सहस्रमपि सुभटानामुदायुधानां हत्वा पितरं मोचयितुम्। अपि तु संकुले यदि कश्चित्पातयेत्तदङ्गे शस्त्रिकां सर्व एव मे यत्नो भस्मनि हुतमिव भवेत्' इति।

रणीये–उत्पाटनीये। यथा येन प्रकारेण। तन्मूलं–नेत्रोत्पाटनहेतुकम्। अस्य कामपालस्य। अतः अस्मात्कारणात्। एकान्ते निर्जने। यथेष्टं यथेच्छम्। तस्य साधोः–कामपालस्य। पुरोऽग्रे। परिकरं बध्नामि–उद्योगं करोमि। इत्यन्तं पूर्णभद्रवचनम्। इतः परमर्थपालवचनं बोद्धव्यम्।

(१४) मया–अर्थपालेन। पितृव्यसनं पितुर्विपदम्। पर्यश्रुणा–रुदता। सः पूर्णभद्रः। गोपायित्वा अपह्नुत्य। तव पुरो गोपनेनालमिति भावः। तस्य कामपालस्य। यक्षकन्यया–तारावल्या। हस्तन्यासः हस्ते निःक्षेपः। सः सुतः। सुभटानां सुयोद्धॄणाम्। उदायुधानां गृहीतशस्त्राणाम्। अपि तु किन्तु। संकुले–जनसंकटे। पातयेत्–निःक्षिपेत्। तदंगे–मत्पितुः शरीरे। भस्मनि हुतमिव–निरर्थकमित्यर्थः।

हृदयकी पीड़ाको दर्शानेवाला और येनकेनप्रकारेण राजकुलके राजकार्योंको करनेवाला दिखाई दे रहा था। उसके दोषोंको स्थान-स्थानपर उद्घोषित कराया गया। इन अपराधोंके बदले यह आज्ञा सुनाई गयी कि 'उसकी आँखें इस तरीकेसे निकाली जायँ जिससे उसकी मृत्यु हो जाय।' यह भी प्रयत्न किया गया।'

उस पूर्णभद्रने इस प्रकारसे वृत्तको सुना करके कहा—'इसी क्लेशके कारण यहाँ निर्जनमें खूब आँसुओंको बहाकर उस विवेकी कामपालके आगे अपने प्राणोंको त्यागनेका उद्योग कर रहा हूँ।

(१४) मैंने (अर्थपालने) अपने पिताजीके इन दुखोंको श्रवण करके रोते हुए उस पूर्णभद्रसे कहा—'हे भद्र! अब आपसे गुप्त रखनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। जिस बालकको यक्षकन्या तारावली देव राजवाहनकी पादशुश्रूषा करनेके लिए रानी वसुमतीके हाथमें धर आयी थी वह कामपालका पुत्र मैं ही हूँ। मुझमें इतनी शक्ति है कि सहस्रों

(१५) अनवसितवचन एव मयि महानाशीविषः प्राकाररन्ध्रेणोदैरयच्छिरः । तमहं मन्त्रौषधबलेनाभिगृह्य पूर्णभद्रमत्रवम्—'भद्र, सिद्धं नः समीहितम् । अनेन तातमलक्ष्यमाणः संकुले यदृच्छया पातितेन नाम ंशयित्वा तथा विषं स्तम्भयेयं यथा मृत इत्युदास्येत । त्वया तु मुक्तसाध्वसेन माता मे बोधयितव्या—'यो यदया वने देव्या वसुमत्या हस्तापितो युष्मत्सूनुः सोऽनुप्राप्तः पितुरवस्थां मृदुपलभ्य बुद्धिबलादित्थमाचरिष्यति । त्वया तु मुक्तत्रासया राज्ञे प्रेषणीयम्—'एष खलु क्षात्रधर्मो

(१५) अनवसितवचने-असमाप्तवाक्ये । आशीविषः सर्पः । प्राकाररन्ध्रेण-भित्तिच्छिद्रेणः । उदैरयत्-ऊर्ध्वीचकार । तं सर्पम् । मन्त्रौषधिबलेन-मन्त्रौषधिप्रभावेण । अभिगृह्य-धृत्वा । समीहितम्-अभिलषितम् । अनेनेति-संकुले जनसंबाधे अलक्ष्यमाणोऽन्यैरदृश्योऽहं यदृच्छया स्वेच्छया पातितेन निःक्षिप्तेनानेन सर्पेण तातं पितरं कामपालमित्यर्थः दंशयित्वा दष्टं कारयित्वा विषं तथा तेन प्रकारेण स्तम्भयेयं निश्चलं कुर्यां यथा येन प्रकारेण मृतो विनष्ट इति जनैरुदास्येतोपेक्ष्येत । त्वया पूर्णभद्रेण । मुक्तसाध्वसेन त्यक्तभयेन । माता कान्तिमती । यो युष्मत्सूनुः भवत्याः पुत्रः । यदया तारावल्या । वसुमत्याः राजहंसमहिष्याः । अनुप्राप्तः समागतः । मत् मम सकाशात् । बुद्धिबलाद् बुद्धिप्रभावात् । इत्थं-वक्ष्यमाणप्रकारम् । त्वया कान्तिमत्या । मुक्तत्रासया—त्यक्तशंकया । राज्ञे

शस्त्रसज्जित योधाओंको मारकर पिताको बचा सकता हूँ । किन्तु, जनसमूहमें यदि कोई मेरे पिताके शरीरपर प्रहार कर देगा तो मेरा यह प्रयास भस्ममें होमके सदृश विफल हो जायगा ।

(१५) मेरा वाक्य पूरा भी न हो पाया था कि प्राकार (चहार दीवारी) की दीवालके छेदमेंसे एक बड़े भारी साँपकी मूड़ी दिखाई दी । उस साँपको मैंने अपने मन्त्र और औषध बलसे पकड़ लिया और पूर्णभद्रसे कहा—'हे सौम्य ! अब मेरा अभिलषित मनोरथ सिद्ध हो गया । जिस समय जनसमूह एकत्र हो जायगा उसी समय मैं अदृश्य होकर स्वेच्छासे इस साँपको अपने पिता कामपालके ऊपर छोड़ करके उनको दंशित करा दूँगा । फिर उसके विषको स्तम्भित कराकर पिताको मृततुल्य प्रदर्शित करूँगा और इस कारणसे सभी उदास हो जायंगे । आप निर्भय होकर मेरी माता कान्तिमतीसे कह दीजियेगा कि आपका वह पुत्र जिसे राजवाहनकी परिचर्याके लिये रानी वसुमतीके हाथमें यक्षिणी सौंप आयी थी, इस जगहपर आ गया है तथा अपने पिताकी दशा, मेरे द्वारा, ज्ञात करके अपनी बुद्धिकी शक्तिसे उक्त रीतिसे व्यवहार करेगा ।

यद्बन्धुरबन्धुर्वा दुष्टः स निरपेक्षं निग्राह्य इति । स्त्रीधर्मश्चैष यद्दुष्टस्य दुष्टस्य वा भर्तुर्गतिर्गन्तव्येति । तदहममुनैव सह चिताग्निमारोद्यामि । युवतिजनानुकूलः पश्चिमो विधिरनुज्ञातव्यः' इति ।

(१६) स एवं निवेदितो नियतमनुज्ञास्यति । ततः स्वमेवागारमानीय काण्डपटीपरिक्षिप्ते विविक्तोद्देशे दर्भसंस्तरणमधिशाय्य स्वयं कृतानुमरणमण्डनया त्वया च तत्र संनिधेयम् । अहं च बाह्यकक्षागतस्त्वया प्रवेशयिष्ये । ततः पितरमुज्जीव्य तदभिरुचितेनाभ्युपायेन चेष्टिष्यामहे'

सिंहघोषाय । प्रेषणीयं वाचिकं सन्देष्टव्यम् । क्षात्रधर्मः क्षत्रियाणां नियमः । निरपेक्षं निर्विचारम् । निग्राह्यः निग्रहीतव्यः दण्डनीय इति यावत् । गतिः पदवी । गन्तव्या अनुसर्त्तव्या । अमुना मद्भर्त्रा कामपालेन । युवतिजनाकूलः स्त्रीजनोचितः । पश्चिमः अन्त्यश्चरम इति यावत् । विधिः दाहादिः । अनुज्ञातव्यः—आदेष्टव्यः ।

(१६) सः सिंहघोषः निवेदितः ज्ञापितः । नियतमवश्यम् । अनुज्ञास्यति-अनुमोदिष्यते । काण्डपटीति-जवनिकापरिवृते । विविक्तोद्देशे—निर्जनप्रदेशे । दर्भसंस्तरणं-कुशरचितशय्याम् । अधिशाय्य-शाययित्वा । स्वयंकृतेति-स्वयमेव नान्येन कृतं रचितमनुमरणस्य सहमरणस्य मण्डनं भूषणं यथा तथाभूतया । त्वया-कान्तिमत्या । संनिधेयं-संनिधौ स्थातव्यम् । अहं अर्थपालः । बाह्यकक्षागतः-बहिः प्रकोष्ठस्थितः । प्रवेशयिष्ये-प्रविष्टो भविष्यामि । प्रपूर्वकविशधातोर्णिजन्तात्कर्मणि लृट् । पितरं-कामपालम् । उज्जीव्य-जीवयित्वा । तदभिरुचितेन-

---

आप (माताजी) राजाके समीप निर्भय हो करके यह कहला दीजिये कि 'यह क्षत्रियोंका धर्म है कि बन्धु हो अथवा अबन्धु हो, जो भी दुष्ट कार्य करे उसे दण्ड देना चाहिये। महिलाओंका भी यह धर्म है कि उनका पति योग्य हो अथवा अयोग्य, उसकी मृत्युके पश्चात् उसीकी गतिका अनुगमन करें। अत एव मैं अपने पतिके साथ चिताग्निमें प्रवेश करूंगी । युवतियोंके लिये श्रेयस्कर इस पिछली विधि को करनेकी आप मुझे आज्ञा दें ।'

(१६) वह राजा ऐसे निवेदनपर अवश्य आज्ञा दे देगा। इसके अनन्तर सर्पसे दंशित पिताजीको अपने गृहमें ला करके परदेके अन्दर एकान्त स्थलमें कुशोंके आसनों पर सुला दूंगा । आप भी (माताजी) उस समय सती होनेवाले योग्य वेशको सजा करके उसी स्थलके समीपमें उपस्थित रहें । मैं भी उसी स्थलके बाहरी दरवाजेपर बैठा रहूंगा, आप मुझे भीतर करा लीजियेगा । तत्पश्चात् मैं पिताजीको जिला करके उनकी इच्छाके अनुसार जो उचित यत्न होगा सो करूँगा । वह पूर्णभद्र 'तथा' स्वीकार है ऐसा कह करके

इति । स 'तथा' इति हृष्टतरस्तूर्णमगमत् । अहं तु घोषणस्थाने चिञ्चावृक्षं घनतरविपुलशाखमारुह्य गूढतनुरतिष्ठम् । आरूढश्च लोको यथायथमुच्चैःस्थानानि । उच्चावचप्रलापाः प्रस्तुताः ।

(१७) तावन्मे पितरं तस्करमिव पश्चाद्बद्धभुजमुद्धुरध्वनिमहाजनानुयातमानीय मदभ्याश एव स्थापयित्वा मातङ्गस्त्रिरघोषयत्—'एष मन्त्री कामपालो राज्यलोभाद्भर्तारं चण्डसिंहम्, युवराजं चण्डघोषं च विषान्नेनोपांशु हत्वा पुनर्देवोऽपि सिंहघोषः पूर्णयौवन इत्यमुष्मिन्पापमाचरिष्यन्विश्वासाद्रहस्यभूमौ पुनरमात्यं शिवनागमाहूय स्थूणमङ्गारवर्षं च

पितुरभिमतेन । इत्यन्तं मातरमुद्दिश्य पूर्णभद्रं प्रति अर्थपालवचनम् । स पूर्णभद्रः । अहं–अर्थपालः । घोषणस्थाने-यत्र डिण्डिमेन घोषणा क्रियते तत्र । चिञ्चावृक्षं–तिन्तिड़ीवृक्षम् । घनतरविपुलशाखम्–सान्द्रतरविशालविटपम् । चिञ्चावृक्षविशेषणमेतत् । गूढतनुः–गुप्तशरीरः । लोकः–दर्शकजनः । उच्चावचप्रलापाः–नानाविधालापाः । प्रस्तुता आरब्धाः ।

(१७) तावत्-एतदभ्यन्तरे । उद्धुरेति–उद्धुरः संकुलो ध्वनिः शब्दो यस्य तादृशो यो महाजनो जनसमूहस्तेनानुयातमनुसृतम् । मदभ्याशे–मत्समीपे । मातङ्गः–चण्डालः । त्रिः–त्रिवारम् । उपांशु–निर्जने । अमुष्मिन्–सिंहघोषे । विश्वासात्–विश्वासमास्थायेति ल्यब्लोपे पंचमी । रहस्यभूमौ–निर्जनप्रदेशे । स्थूणोऽङ्गारवर्षश्चेति द्वौ राजानुचरौ उपजप्य–भेदयित्वा । तैः शिवनागादिभिः । विवृत-

तत्क्षण ही प्रसन्न वदन होकर उस जगहसे चला गया। मैं गुप्त रीतिसे साँपको लेकर एक विशाल तथा घनी शाखावाले तिन्तिडीवृक्षके ऊपर जा बैठा। इसी स्थानपर मेरे पिताके नेत्र निकालनेकी घोषणा की गयी थी। अनेक स्त्री पुरुष यथायोग्य ऊँचे-ऊँचे स्थानोंपर बैठकर तमाशा देखनेके लिये एकत्र हो गये थे। नाना रूपोंमें नाना वार्त्ताएँ सुनाई देती थीं।

(१७) इतनेमें ही भीड़के साथ आगे-आगे मेरे पिता कामपालको चोरके समान पीछे हाथ करके बाँधे हुए बड़े कोलाहलके साथ (चाण्डाल) वहाँपर मेरे समीपमें ही ले आये और वहाँपर पिताको खड़ा कर चाण्डालोंने तीन बार जोरसे चिल्लाकर कहा—'इस सचिव कामपालने राज्यके लोभसे राजा चण्डसिंह और उनके बड़े लड़के चण्डघोषको विषसे मिश्रित अन्न खिला करके मार डाला। अब इसने पूर्ण तरुणावस्थासे परिव्यास महाराज सिंहघोषको मारनेका पापाचरण किया और विश्वास दिलाकर महाराजके मन्त्री शिवनाग तथा अनुचर स्थूण अङ्गारवर्षका राजासे भेदभाव करा दिया और उन लोगोंसे

राजवधायोपजप्य तैः स्वामिभक्त्या विवृतगुह्यो 'राज्यकामुकस्यास्य ब्राह्मणस्यान्धतमसप्रवेशो न्याय्य' इति प्राड्विवाकवाक्यादक्ष्युद्धरणाय नीयते। पुनरन्योऽपि यदि स्यादन्यायवृत्तिस्तमप्येवमेव यथार्हेण दण्डेन योजयिष्यति देवः' इति।

(१८) श्रुत्यैतद्बद्धकलकले महाजने पितुरङ्के प्रदीप्तशिरसमाशीविषं व्यक्षिपम्। अहं च भीतो नामावप्लुत्य तत्रैव जनादनुलीनः क्रुद्धव्यालदष्टस्य तातस्य विहितजीवरक्षो विषं क्षणादस्तम्भयम्। अपतच्चैष भूमौ मृतकल्पः। प्रालपं च 'सत्यमिदं राजावमानिनं दैवो दण्ड एव स्पृशतीति।

गुह्यः-प्रकाशितगुप्तरहस्यः। कामपालविशेषणमेतत्। राज्यकामुकस्य राज्याभिलाषिणः। अन्धतमसप्रवेशः-अन्धतमसे घोरान्धकारे प्रवेशो मृत्युरित्यर्थः। न्याय्यः उचितः। प्राड्विवाकवाक्यात्। व्यवहारद्रष्टुरादेशात्। अक्ष्युद्धारणाय नयनोत्पाटनाय। नीयते बध्यभूमिमिति शेषः। अन्योऽपि-अपरोऽपि। अन्यायवृत्तिः-दुष्टाचारः। यथार्हेण-यथायोग्येन।

(१८) बद्धकलकले-आरब्धकोलाहले। प्रदीप्तशिरसं-उदीर्णफणम्। व्यक्षिपं विक्षिप्तवान्। भीतो नाम भीत इव। नामेत्यलीक सम्भावनायाम्। अवप्लुत्य-विड्वावृक्षादवरुह्य। जनादनु-जनस्य पश्चात् लीनः गुप्तः। क्रुद्धव्यालदष्टस्य-कुपितसर्पभक्षितस्य। विहितेति-विहिता कृता जीवस्य प्राणस्य रक्षा येन सः। एषः मत्पिता। मृतकल्पः-मृततुल्यः। प्रालपं-अकथयम्। सत्यमिदमित्यादि-इदं वक्ष्यमाणं वाक्यं सत्यं यथार्थं यत्-दैवो देवपातितो दण्ड एव राजावमानिनं राजा-

एकान्तमें राजाके वधरूप गुप्त रहस्यको प्रकट कर दिया। परन्तु, उन दोनों स्वामिभक्तोंने इस बातको अस्वीकार कर दिया और इस रहस्यका भण्डाफोड़ भी कर दिया। राज्याभिलाषी इस ब्राह्मणको घोरान्धकारमें प्रवेश कराकर मार डाला जाय। यही उचित है। अतः न्यायाधीशके आदेशानुसार इसकी आखें निकालनेके लिये हम लोग ले आये हैं। यदि भविष्यमें कोई भी ऐसा अपराध करेगा तो, वह भी इसी प्रकार राजदण्ड पावेगा।'

(१८) इस वृत्तको श्रवण करनेके पश्चात् ज्यों ही कोलाहल शुरू हुआ त्यों ही मैंने अपने पिता कामपालके शरीरपर विशाल फनवाले नागको गिरा दिया। उतरकर मैंने उन्हीं दर्शकोंकी भीड़में क्रुद्ध नागके द्वारा दंशित पिताको अपने मन्त्रौषधिके प्रभावसे उसी क्षण स्तम्भित कर दिया—जिससे नागका विष चढने न पावे। वे मेरे पिता पृथ्वीपर मृतकके तुल्य गिर पड़े वहाँ यह चर्चा (प्रलाप) भी मैंने प्रारम्भ कर दी कि, 'अवश्य इस कामपालने अपराध किया है और उसका प्रतिफल भी इसे ईश्वरने दे दिया। राजाने

यदयमक्षिभ्यां विनावनिपेन चिकीर्षितः, प्राणैरेव वियोजितो विधिना' इति । मदुक्तं च केचिदन्वमन्यन्त, अपरे पुनर्निनिन्दुः । दर्वीकरस्तु तमपि चण्डालं दष्ट्वा रूढत्रासद्रुतलोकदत्तमार्गः प्राद्रवत् ।

(१९) अथ मदम्बा पूर्णभद्रबोधितार्था तादृशेऽपि व्यसने नातिविह्वला कुलपरिजनानुयाता पद्भ्यामेव धीरमागत्य मत्पितुरुत्तमाङ्गमुत्सङ्गेन धारयन्त्यासित्वा राज्ञे समादिशत्—'एष मे पतिस्तवापकर्ता न वेति दैवमेव जानाति । न मेऽनयास्ति चिन्तया फलम् । अस्य तु पाणिग्राहकस्य गतिमननुप्रपद्यमाना भवत्कुलं कलङ्कयेयम्' । अतोऽनुमन्तुमर्हसि भर्त्रा

पथ्यकारिणं जनं स्पृशतीति । अयं मन्त्री कामपालः अवनिपेन राज्ञा अक्षिभ्यां विना नेत्ररहितश्चिकीर्षितः कर्त्तुमिष्टः । विधिना दैवेन पुनः प्राणैरेव वियोजितः पृथक् कृतः । मदुक्तं एतन्ममवचनम् केचित्–कतिपये अन्वमन्यन्त–अनुमोदितवन्तः । अपरे–केचन । दर्वीकरः सर्पः । दष्ट्वा दंशनं कृत्वा । रूढत्रासेति–रूढ उत्पन्नो यस्त्रासो भयं तेन द्रुतः पलायितो यो लोकस्तेन दत्तो मार्गो निर्गमनाय पन्था यस्य सः । प्राद्रवत् पलायिष्ट ।

(१९) पूर्णभद्रेति–पूर्णभद्रेण बोधितो ज्ञापितोऽर्थो विषयो यस्याः सा । तादृशे–तथाविधे दारुणे । व्यसने–विपदि । नातिविह्वला–नातिव्याकुला । कुलपरिजनानुयाता–स्ववंशीयसखीजनपरिवृता । धीरं-मन्दम् । उत्तमाङ्गं मस्तकम् । उत्संगेन–क्रोडदेशेन । आसित्वा–उपविश्य । अपकर्ता–अपकारी । फलं–प्रयोजनम् । पाणिग्राहकस्य–पत्युः । अननुप्रपद्यमाना–अनभिसरन्ती । भवत्कुलं–भवद्गोत्रम् । कलङ्कयेयं–मालिन्याङ्कितं कुर्याम् । एतत्कुलोत्पन्ना सती यदि मृतस्य पत्युरनुगमनं

तो, इसे नेत्रहीन बनानेकी आज्ञा दी थी, किन्तु, दैवने इसके प्राणोंको ही हर लिया ।' उपर्युक्त मेरे कथनका कोई अनुमोदन करते थे और कोई-कोई इस कथनकी निन्दा करते थे । उस भयङ्कर नागने चाण्डालको भी डस लिया और जब नागके डरसे भीड़ भागी तो, रास्ता पाकर वह नाग भी भाग गया ।

(१९) तदनन्तर मेरी माता कान्तिमती जिन्हें पूर्णभद्रद्वारा सारा वृत्त ज्ञात हो चुका था, ऐसे कष्टके समयमें भी नहीं घबड़ायी (व्याकुल न हुई) तथा अपने वंशके परिजनोंके साथ मन्द-मन्द पावोंसे आकर मेरे पिताके शिरको अपनी गोदमें धरकर बैठ गयीं । और राजाके समीप प्रार्थना भेजी कि, 'ये मेरे पति आपके अपकारी हैं अथवा नहीं, यह तो केवल परमेश्वर ही जानते हैं । इस बातकी चिन्ता करनेसे मुझे कोई फल नहीं । यदि मैं अपने इस पाणिग्रहण करनेवाले पतिकी गतिका अनुसरण न करूंगी तो, मैं आपके

सह चिताधिरोहणाय माम्' इति । श्रुत्वा चैतत्प्रीतियुक्तः समादिक्षत्क्षितीश्वरः—'क्रियतां कुलोचितः संस्कारः । उत्सवोत्तरं च पश्चिमं विधिसंस्कारमनुभवतु मे भगिनीपतिः' इति ।

(२०) चण्डाले तु मत्प्रतिषिद्धसकलमन्त्रवादिप्रयासे संस्थिते 'कामपालोऽपि कालदष्ट एव' इति स्वभवनोपनयनममुष्य स्वमाहात्म्यप्रकाशनाय महीपतिरन्वमंस्त । आनीतश्च पिता मे विविक्तायां भूमौ दर्भशय्यामधिशाय्य स्थितोऽभूत् ।

(२१) अथ मदम्बा मरणमण्डनमनुष्ठाय सकरुणं सखीरामन्त्र्य, मुहुरभिप्रणम्य भवनदेवता यत्ननिवारितपरिजनाक्रन्दिता पितुर्मे शयन-

---

न करिष्यामि तर्हि ऐहिकसुखासक्ता पातिव्रत्योचितं नानुष्ठितवतीति जना मां निन्दिष्यन्तीति भावः । अनुमन्तुं अनुज्ञातुम् । उत्सवोत्तरं-उत्सवप्रधानम् । पश्चिमम्—अन्त्यम् । विधिसंस्कारम्—अन्त्येष्टिपद्धत्युक्तदाहक्रियाम् ।

(२०) चण्डाले—पूर्वमेव सर्पदष्टे घोषणाकारिणि । मत्प्रतिषिद्धेति—मयाऽर्थपालेन प्रतिषिद्धो रुद्धः सकलानां मन्त्रवादिनां गारुडिकानां प्रयासो विषापहरणप्रयत्नो यस्मिन्—तथाभूते । संस्थिते—मृते सति । अमुष्य—कामपालस्य । स्वमाहात्म्यप्रकाशनाय—स्वीकीयोदारताप्रकटनार्थम् । अन्वमंस्त—अनुमोदितवान् ।

(२१) मरणमण्डनं—मृत्युकालोचितभूषणम् । सखीः—सहचरीः । भवनदेवताः गृहदेवताः । अभिप्रणम्येत्यस्य कर्म । यत्ननिवारितेति यत्नेन निवारितं परिजनस्य स्वजनवर्गस्याक्रन्दितं विलापो यया सा । वैनतेयतां गरुडताम् । गतेन प्राप्तेन ।

कुलको कलङ्कित करनेवाली कहलाऊँगी । अतएव आप पतिके साथ चितामें अधिरोहण करनेकी मुझे अनुमति देने योग्य हैं ।' इन बातोंको सुनकर राजाने प्रेमपूर्वक आदेश दिया कि, 'वंशके अनुकूल संस्कार करिये और उत्सव मनानेके अनन्तर कहा कि, मेरी बहिनके पतिका अन्तिम संस्कार विधिसे हो ।'

(२०) मुझे छोड़कर और सभी मन्त्रशास्त्रियोंने उस दंशित चाण्डालकी झाड़-फूंक की. किन्तु, वह सब व्यर्थ सिद्ध हुई । 'कामपालको भी कालने ही डस लिया है' ऐसा ज्ञातकर राजाने अपनी उदारता दिखानेके लिये कामपालको घर ले जानेकी अनुमति दे दी । लोगोंने मेरे पिताको लाकर एकान्त पृथ्वीतलपर कुशाकी शय्यापर लिटा दिया ।

(२१) तदनन्तर मेरी माता कान्तिमतीने मृत्युकालका वेष रचकर करुणायुक्त होकर सहचरीवर्गोंको बुलाया । वनदेवताको बार-बार प्रणाम किया । यत्नके साथ अपनी

स्थानमेकाकिनी प्राविक्षत् । तत्र च पूर्वमेव पूर्णभद्रोपस्थापितेन च मया वैनतेयतां गतेन निर्विषीकृतं भर्तारमैक्षत । हृष्टतमा पत्युः पादयोः पर्यश्रुमुखी प्रणिपत्य मां च मुहुर्मुहुः प्रस्नुतस्तनी परिष्वज्य सहर्षबाष्पगद्गदमगदत्—'पुत्र, योऽसि जातमात्रः पापया मया परित्यक्तः, स किमर्थमेवं मामतिनिर्घृणामनुगृह्णासि । अथवैष निरपराध एव ते जनयिता । युक्तमस्य प्रत्यानयनमन्तकाननात् । क्रूरा खलु तारावली या त्वामुपलभ्यापि तत्त्वतः कुबेरादसमर्प्य मह्यमर्पितवती देव्यै वसुमत्यै सैव वा सदृशकारिणी । नहि तादृशाद्भाग्यराशेर्विना मादृशो जनोऽल्पपुण्यस्तवार्हति कलप्रलापामृतानि कर्णाभ्यां पातुम् । एहि, परिष्वजस्व' इति

गारुडविद्यायां कुशलेनेत्यर्थः । निर्विषीकृतं विषशून्यम् । पर्यश्रुमुखी परिगतमश्रु नयनजलं यत्र तादृशं मुखं यस्याः सा । प्रणिपत्येत्यस्य पत्युः पादयोरित्यनेन सम्बन्धः । प्रस्नुतस्तनी क्षरत्पयोधरा । सहर्षेति—हर्षेणानन्देन सह यद्बाष्पमश्रु तेन गद्गदम् । जातमात्रः उत्पन्न एव । किमर्थं कथम् । एवं एतेन प्रकारेण पत्युः प्राणदानेनेति भावः । अतिनिर्घृणाम् अतिनिष्करुणाम् । जनयिता पिता कामपालः । युक्तमुचितम् । अस्य पितुः । अन्तकाननात् मृत्युमुखात् । क्रूरा निर्दया । उपलभ्य—ज्ञात्वा । तत्त्वतः—याथार्थ्येन । कुबेरादिति—कुबेरेणैवार्थपालस्य जन्मवृत्तान्तः प्रकाशित आसीदिति भावः । असमर्प्य—अदत्त्वा । सैव—तारावल्येव । सदृशकारिणी—उचितविधात्री । तादृशात्—वसुमतीरूपात् । भाग्यराशेः—प्रचुरसौभाग्यशालिजनात् । विनायोगे पञ्चमी । अल्पपुण्यः—अल्पं पुण्यं यस्यासौ । कलप्रलापेति—कलोऽव्यक्तमधुरो यः प्रलापो भाषणं तदेवामृतं सुधा तानि । पातुं—

सहचरियोंके विलापको रोका । मेरे पिताके शयनगृहमें प्रवेश किया । वहाँपर मैंने पहलेसे ही पूर्णभद्रके प्रबन्धसे गारुड़विद्याद्वारा पिताको विषरहित बना दिया । उन पिताजी के उन्होंने दर्शन किये । हर्षित होकर उन्होंने आँखोंमें आंसू भरकर अपने पतिके पैर पड़े । स्तनोंसे दूध टपकाती हुई (मेरी माता) मेरा बार-बार आलिङ्गन करके तथा हर्षाश्रुओंसे गदगद होकर बोलीं—'हे पुत्र ! तुम क्यों अति निष्करुणा करनेवाली मुझपर दया करते हो ? क्यों कि मुझ पापिनीने तो, तुम्हें उत्पन्न होते ही परित्याग दिया था । अथवा तुम्हारा पिता कामपाल निरपराधी है । इनको कालके मुखसे बचा लेना योग्य ही है । तारावली यक्षिणी भी बड़ी निठुर है । जिसने भगवान् कुबेरके द्वारा तुम्हारा पूर्ण परिचय पाकर भी मुझे समर्पित न किया । अपितु, देवी वसुमतीको समर्पण किया जो उसीके समान योग्य धात्री हैं । विना ऐसी भाग्य-

भूयोभूयः शिरसि जिघ्रन्त्यङ्कमारोपयन्ती, तारावलीं गर्हयन्त्यालिङ्गयन्त्यश्रुभिरभिषिञ्चती चोत्कम्पिताङ्गयष्टिरन्यादृशीव क्षणमजनिष्ट ।

(२२) जनयितापि मे नरकादिव स्वर्गम्, तादृशाद्व्यसनात्तथाभूतमभ्युदयमारूढः पूर्णभद्रेण विस्तरेण यथावृत्तान्तमावेदितो भगवतो मघवतोऽपि भाग्यवन्तमात्मानमजीगणत् । मनागिव च मत्संबन्धमाख्याय हर्षविस्मितात्मनोः पित्रोरकथयम्—'आज्ञापयतं काद्य नः प्रतिपत्तिः' इति । पिता मे प्राब्रवीत्—'वत्स, गृहमेवेदमस्मदीयमतिविशालप्राकार-

---

श्रोतुमित्यर्थः । जिघ्रन्ती-घ्राणं कुर्वती । अङ्कमारोपयन्ती-अर्थपालं उत्सङ्गे समुपवेशयन्ती । गर्हयन्ती-निन्दन्ती । अभिषिञ्चती-आर्द्रीकुर्वती मामिति-शेषः । उत्कम्पितेति-उत्कम्पिता जातोत्कम्पा अङ्गयष्टिः शरीरलता यस्याः सा । अन्यादृशी-अन्याकारा । क्षणं-मुहूर्त्तं व्याप्य । अजनिष्ट-जाता ।

(२२) नरकादिव स्वर्गमिति-यथा कश्चिन्नरकात्स्वर्गमारोहति तथा मे पिता कामपालोऽपि । तादृशात्-नरकसदृशात् । व्यसनात्-नेत्रोत्पाटनरूपाद् दुःखात् । तथाभूतं-तादृशं पुनर्जीवनपुत्रप्राप्तिरूपम् । अभ्युदयमभ्युन्नतिम् । आरूढः-प्राप्तः सन् । यथावृत्तान्तं-वृत्तान्तमनतिक्रम्य-यथायथरूपेणेत्यर्थः । आवेदितः-कथितः । मघवतः-इन्द्रात् । मनाक्-स्वल्पम् । मत्संबन्धं-स्वविषयम् । हर्षेति-हर्षेणानन्देन विस्मित आश्चर्यान्वित आत्मा ययोस्तादृशयोः । पित्रोः-मातापित्रोः समीपे इति शेषः । आज्ञापयतं युवामिति योज्यम् । का-कीदृशी । नोऽस्माकम् । प्रतिपत्तिः-इतिकर्त्तव्यता । अतिविशालेति-अतिविशालोऽतिविस्तीर्णः प्राकारवलयः प्राचीर-

---

शालिनीके मेरे समान अल्प पुण्यवाले व्यक्ति तुम्हारे अव्यक्त मधुर भाषणरूपी सुधाको कर्णोंद्वारा पान नहीं कर सकते हैं । यहाँ आओ आलिङ्गन दो । इस प्रकारसे उन्होंने पुनः पुनः मेरे शिरको सूंघते हुए मुझे गोदमें बिठाया । तारावलीकी निन्दा करते हुए मेरा आलिङ्गन किया । आसुओंसे मुझे भिंगाया । शरीर को कंपाते हुए क्षणभर अपूर्व आकृति दर्शायी ।

(२२) पूर्णभद्रके द्वारा मेरे पिताने सम्पूर्ण विस्तृत वृत्तको ज्ञातकर अपनेको उस कष्टसे रहित पाकर अपूर्व अभ्युदयकी प्राप्तिका अनुभव किया । जैसे नरकसे छूटकर उन्होंने स्वर्गका आनन्द प्राप्त किया हो । वे अपनेको भगवान् इन्द्रसे अधिक भाग्यशाली मानने लगे । थोड़ासा अपना समाचार सुनाकर मैंने हर्ष और आश्चर्यके साथ अपने जननी जनकसे कहा—'आज्ञा दीजिये कि, अब मेरा क्या कर्त्तव्य है ।' मेरे पिताने कहा—हे वत्स ! यहाँपर मेरा अत्यन्त विशाल भित्तिवलयवाला (चहारदीवारीसे घिरा) गृह है

वलयमक्षय्यायुधस्थानम् । अलङ्घ्यतमा च गुप्तिः । उपकृताश्च मयातिबहवः सन्ति सामन्ताः । प्रकृतयश्च भूयस्यो न मे व्यसनमनुरुध्यन्ते । सुभटानां चानेकसहस्रमस्त्येव ससुहृत्पुत्रदारम् । अतोऽत्रैव कतिपयान्यहानि स्थित्वा बाह्याभ्यन्तरङ्गान्कोपानुत्पादयिष्यामः । कुपितांश्च संगृह्य प्रोत्साह्यास्य प्रकृत्यमित्रानुत्थाप्य सहजांश्च द्विषः, दुर्दान्तमेनमुच्छेत्स्यामः' इति । 'को दोषः, तथास्तु' इति तातस्य मतमन्वमंसि ।

(२३) तथास्मासु प्रतिविधाय तिष्ठत्सु राजापि विज्ञापितोदन्तो

मण्डलं यस्य तत् । अक्षय्येति–अक्षय्याणामपरिमितानामायुधानामस्त्राणां स्थानं पात्रम् । विशेषणद्वयं गृहस्य । अलंघ्यतमा-अयिशयेनानतिक्रमणीया परैरिति शेषः । गुप्तिः रक्षा भूगृहं वा । उपकृताः कृतोपकाराः । सामन्ताः अधीननृपतयः । प्रकृतयः–प्रजाः । भूयस्योऽसंख्याः । व्यसनमनिष्टम् । अनुरुध्यन्ते–अनुमन्यन्ते । ममानिष्टं नेच्छन्तीत्यर्थः । सुभटानां सुयोद्धृणाम् । ससुहृत्पुत्रदारं स्वस्वमित्रपुत्रकुटुम्बादिसहितम् । अत्रैव–अस्मद्गृह एव । बाह्याभ्यन्तेति–बाह्यान् बहिरङ्गान् प्रकृतिसम्बन्धिनः तथा अभ्यन्तरङ्गान् अमात्यादिसम्बन्धिनः कोपान् क्रोधान् । संगृह्य–वशमानीय । प्रोत्साह्य धनमानादिना प्रोत्साहितान् कृत्वा । अस्य सिंहघोषस्य । प्रकृत्यमित्रान्–प्राकृतशत्रून् । सहजान् द्विषः–सहजशत्रून् । उत्थाप्य–तद्विरोधाय प्रोत्साह्य । दुर्दान्तं–दुर्द्धर्षम् दुर्विनीतं वा । एनं सिंहघोषम् । उच्छेत्स्यामः–समूलमुन्मूलयिष्यामः । मतमभिप्रेतम् । अन्वमंसि–अनुमोदितवान् ।

(२३) तथा तेन पूर्वोक्तेन प्रकारेण । प्रतिविधाय–प्रतिविधानं कृत्वा । राजा–सिंहघोषः । विज्ञापितोदन्तः–विदितवार्त्तः । जातानुतापः–कृतानुशोचनः । पार-

---

और नाश न होनेवाले शस्त्रोंके रखनेका भी स्थान है । अलंघनीय रक्षागृह (तहखानें) हैं । मेरेद्वारा उपकृत अनेकों सामन्तगण हैं । असंख्य प्रजावर्ग हैं जो मेरे दुःखको नहीं सहन कर सकते हैं । कई हजार योद्धा हैं जो अपने मित्र स्त्री पुत्रादिकों सहित (मेरी ओर) हैं । अतः इसी जगह कुछ दिनों रहकर बहिरङ्ग तथा अन्तरङ्ग व्यक्तियोंमें वैर कराऊँगा । और वैरियोंको (क्रोधी व्यक्तियोंको) एकत्र कर उन सबको प्रोत्साहन दूँगा । फिर इस राजा सिंहघोषके प्रकृत शत्रु तथा सहज वैरियोंको उभाड़ करके इस दुर्विनीत राजाको नष्ट करा दूंगा, क्या दोष है ।' स्वीकार है ऐसा कहकर मैंने पिताकी बातोंको अनुमोदन किया ।

(२३) जब हम लोगोंने ऐसा प्रतिविधान रचा और स्थिर हुए । तब राजा सिंहघोषने इन सब वृत्तान्तोंको ज्ञात करके अत्यन्त शोच प्रकट किया । और उसने पारिग्रामिक

जातानुतापः पारग्रामिकान्प्रयोगान्प्रायः प्रायुङ्क्त। ते चास्माभिः प्रत्यहमहन्यन्त। अस्मिन्नेवावकाशे पूर्णभद्रमुखाच्च राज्ञः शय्यास्थानमवगम्य तदैव स्वोदवसितभित्तिकोणादारभ्योरगास्येन सुरङ्गामकार्षम्। गता च सा भूमिस्वर्गकल्पमनल्पकन्यकाजनं कमप्युद्देशम्। अव्यथिष्ट च दृष्ट्वैव स मां नारीजनः।

(२४) तत्र काचिदिन्दुकलेव स्वलावण्येन रसातलान्धकारं निह्नुवाना, विग्रहिणीव देवी विश्वंभरा, हरगृहिणीवासुरविजयायावतीर्णा, पातालमागता गृहिणीव भगवतः कुसुमधन्वनः, राजलक्ष्मीरिवानेकदुर्नृपदर्श-

---

ग्रामिकान्-प्रयोगान्-परग्रामे परराष्ट्रे भवान् सैन्यादिप्रेषणेन नानाविधविनाशोपायान्। प्रायः-बाहुल्येन। प्रायुंक्त-प्रयुक्तवान्। ते-प्रयोगाः-सैन्यादय-इत्यर्थः। अहन्यन्त-हताः। अवकाशे-अवसरे। राज्ञः-सिंहघोषस्य। स्वोदवसिते स्वस्य उदवसितं वासगृहं तस्य भित्तिकोणात् कुड्यैकदेशात्। उरगास्येन-सर्पमुखाकारास्त्रविशेषेण सुरङ्गां विलम्। सा सुरङ्गा। भूमिस्वर्गकल्पं भूस्वर्गतुल्यम्। अनल्पकन्यकाजनं=बहुकन्याजनाश्रयम्। अनल्पः कन्यकाजनो यत्रेति विग्रहः। उद्देशमित्यस्य विशेषणद्वयम्। उद्देशं प्रदेशम्। अव्यथिष्ट भयादिना पीडितोऽभवत्।

(२४) तत्र नारीजनमध्ये। इन्दुकला-चन्द्रलेखा। रसातलान्धकारं-पातालस्थध्वान्तम्। निह्नुवाना-अपसारयन्ती। विग्रहिणी-मूर्त्तिमती। विश्वम्भरा-पृथ्वी। हरगृहिणी-पार्वती। कुसुमधन्वनः-गृहणी-कामस्य पत्नी रतिरित्यर्थः। राजलक्ष्मीः-राज्यश्रीः। अनेकेति-अनेकेषां दुर्नृपाणां दुष्टराज्ञां। दर्शनमवलोकनं परिहृ-

---

प्रयोग—शत्रु नगरोंमें सेना आदि भेज करके शत्रुनाश कराना-बहुलतासे आरम्भ किया। वे पारिग्रामिक प्रयोग हम लोगोंके द्वारा नित्य नष्ट कर दिये जाते थे। इसी बीचमें हम लोगोंने पूर्णभद्रके मुखसे राजा सिंहघोषके शयन स्थानका पता पा लिया। और उसी कालमें अपने घरकी दीवालके कोनेसे एक उरगास्य (कुदालीकी तरह) अस्त्रसे सुरङ्ग खोदना प्रारम्भ कर दिया। सुरङ्ग खोदते हुए हम उस स्थानपर प्रविष्ट हुए जहांपर अनेकों कन्याओंसे परिपूर्ण पृथिवीका स्वर्गके तुल्य प्रदेश था। वे सब रमणियां हमें देखते ही भयसे पीड़ित हो गयीं।

(२४) उस प्रदेशमें कोई एक रमणी थी जो अपने लावण्यसे पातालके अन्धकारको चन्द्रलेखाके समान अपसरण करनेवाली थी। साक्षात् मूर्त्तिमती पृथिवीके समान थी। दैत्योंके जीतनेके लिए उत्पन्न साक्षात् पार्वतीके तुल्य थी। पातालमें आई हुई भगवान् कामदेवकी. पत्नीके समान थी। अनेकों दुश्चरित्र राजाओंके दर्शनको न प्राप्त करूँ इसीसे

नपरिहाराय महीविवरं प्रविष्टा, निष्टप्तकनकपुत्रिकेवावदातकान्तिः कन्यका, चन्दनलतेव मलयमारुतेन, मद्दर्शनेनोदकम्पत । तथाभूते च तस्मिन्नङ्गनासमाजे, कुसुमितेव काशयष्टिः, पाण्डुशिरसिजा स्थविरा काचिच्चरणयोर्मे निपत्य त्रासदीनमब्रूत—'दीयतामभयदानमस्मा अनन्यशरणाय स्त्रीजनाय । किमसि देवकुमारो दनुजयुद्धतृष्णया रसातलं विविक्षुः । आज्ञापय कोऽसि कस्य हेतोरागतोऽसि' इति ।

(२५) सा तु मया प्रत्यवादि—'सुदत्यः, मास्म भवत्यो भैषुः । अहमस्मि द्विजातिवृषात्कामपालाद्देव्यां कान्तिमत्यामुत्पन्नोऽर्थपालो नाम ।

नुम् । महीविवरं–पातालम् । निष्टप्तेति–निष्टप्तं गलितं यत्कनकं सुवर्णं तेन निर्मिता पुत्तलिका । अवदातकान्तिः–गौरद्युतिः । चन्दनलतेव मलयमारुतेन–मलयवायुना यथा चन्दनलतिका कम्पिता भवति तद्वदित्यर्थः । तथाभूते–त्रासादिना कम्पमाने । अङ्गनासमाजे–नारीसमुदाये कुसुमिता–सञ्जातपुष्पोद्गमा । काशयष्टिः–शरलतिका । पाण्डुशिरसिजा–शुभ्रकेशी । स्थविरा वृद्धा । त्रासदीनं–सभयकरुणं यथा तथा । अस्मै अनन्यशरणाय–नास्ति अन्यः शरणं यस्य तस्मै–त्वदेकशरणायेत्यर्थः । देवकुमारः–देवपुत्रः कार्त्तिकेयो वा । दनुजयुद्धतृष्णया–असुरैः सह युद्धाभिलाषेण । आज्ञापय–कथय । कस्य हेतोः–किमर्थम् ।

(२५) सा वृद्धा । मया–अर्थपालेन । प्रत्यवादि–प्रत्युक्ता । सुदत्यः शोभनदन्ताः सम्बोधनमेतत् । मास्मभैषुः भयं माकार्षुः । भवत्यः यूयम् । द्विजाति-

मानों, पृथिवीके विवर (सुराख) में प्रविष्टा राजलक्ष्मीकी मूर्त्तिके तुल्य थी । अग्निमें तपायी हुई सुवर्णकी पुतलीके समान उज्ज्वल कान्तिवाली थी । उपर्युक्त वेषधारिणी रमणी हमें देख करके ऐसी काँपने लगी जैसी चन्दनकी लता मलयाचलके पवनके झकोरोंसे काँपने लगती है । वह नारीमण्डल भी हमें देखकर उसीके समान भयान्वित हो गया । ऐसी स्थिति होनेपर एक वृद्धाने, जिसके बाल सफेद हो गये थे और जिसकी आकृति पुष्पित काशयष्टिके समान थी, मेरे चरणोंमें पड़कर भययुक्त होकर कहा—'हे देव ! इन स्त्रीजनोंके केवल आप ही आश्रयदाता हैं (अनन्यशरणवाली—हम सब हैं) अतः आप हमें अभयदान दें । क्या आप देवपुत्र कार्त्तिकेय हैं और असुरोंको जीतनेकी अभिलाषासे पातालमें प्रविष्ट होना चाहते हैं । आज्ञा दें, कौन हैं ? किस निमित्त यहाँ आगमन हुआ ?'

(२५) मैंने (अर्थपालने) उत्तरमें उससे कहा—'हे सुदति ! (सुन्दर दाँतोंवाली) वृद्धे ! आप भय न करें । मैं ब्राह्मणोंमें उत्तम कामपालके योग द्वारा कान्तिमती देवीके

सत्यर्थे निजगृहान्नृपगृहं सुरङ्गयोपसरन्निहान्तरे वो दृष्टवान्। कथयत काः स्थ यूयम्। कथमिह निवसथ' इति प्राक्षवम्। सोदञ्जलिरुदीरितवती—'भर्तृदारक, भाग्यवत्यो वयम्, यास्त्वामेभिरेव चक्षुर्भिरनघमद्राक्ष्म। श्रूयताम्। यस्तव मातामहश्चण्डसिंहः, तेनास्यां देव्यां लीलावत्यां चण्डघोषः कान्तिमतीत्यपत्यद्वयमुदपादि। चण्डघोषस्तु युवराजोऽत्यासङ्गादङ्गनासु राजयक्ष्मणा सुरक्षयमगादन्तर्वत्न्यां देव्यामाचारवत्याम्। अमुया चेयं मणिकर्णिका नाम कन्या प्रसूता। अथ प्रसववेदनया मुक्तजीविताचारवती पत्युरन्तिकमगमत्।

(२६) अथ देवश्चण्डसिंहो मामाहूयोपह्वरे समाज्ञापयत्—'ऋद्धि-

वृषात्-ब्राह्मणश्रेष्ठात्। सत्यर्थे-अर्थे प्रयोजने सति=उपस्थिते। सुरङ्गया-बिलमार्गेण। उपसरन्-गच्छन्। अन्तरे मध्ये। वो युष्मान्। स्थ-भवथ। सा वृद्धा। भर्तृदारक-स्वामिकुमार। याः वयम्। अनघं निष्पापम्। अद्राक्ष्म-दृष्टवत्यः। देव्यां महिष्याम्। अपत्यद्वयं-सन्ततियुगलम्। उदपादि-जनितम्। अङ्गनासु कामिनीषु अत्यासङ्गात् अत्यासक्तेः कारणात्। राजयक्ष्मणा-रोगविशेषेण। सुरक्षयं-देवपुरं स्वर्गमितियावत्। अन्तर्वत्न्यां-गर्भवत्याम्। देव्यामाचारवत्यां-आचारवत्याख्यायां देव्याम्। अमुया-आचारवत्या। इयं-पुरो दृश्यमाना। मुक्तजीविता-त्यक्तप्राणा। पत्युरन्तिकं पतिसमीपं स्वर्गमिति भावः।

(२६) अथ-आचारवतीमरणानन्तरम्। मां वृद्धामित्यर्थः। उपह्वरे—रहसि।

गर्भसे उद्भूत अर्थपाल नामक कुमार हूं। किसी प्रयोजनके हेतु सुरङ्गके द्वारा अपने घरसे राजमन्दिरमें जा रहा हूँ रास्तेमें आपको देखा है। आप लोग बतायें कि, आप सब कौन है और क्यों यहाँ रहती हैं? इस बातपर वृद्धाने अञ्जलि बांधकर हमसे निवेदन किया—'हे स्वामिपुत्र! हम सब भाग्यशालिनी हैं जो इन्हीं आखोंके द्वारा आप ऐसे निष्कलङ्कित कुमारका दर्शन कर रही हैं। सुनिये! जो आपके नाना चण्डसिंह नामवाले थे, उन्होंने इस लीलावती देवीके द्वारा दो सन्तानें उत्पन्न कीं—एक पुत्र चण्डघोष तथा दूसरी कन्या कान्तिमती। चण्डघोषने युवराजपद प्राप्त किया और अनेकों नारियोंके साथ रमणकर राजयक्ष्मा रोगसे पीड़ित हो गया। तथा इसी कारणसे वह अपनी पत्नी आचारवतीको गर्भवती छोड़कर स्वर्गवासी हो गया। उसी आचारवती देवीने इस मणिकर्णिका कन्या को उत्पन्न किया है। और प्रसववेदनाके न सह सकनेके कारण वह आचारवती भी मुक्तजीवित होकर अपने पतिके समीप स्वर्गको चली गयी।

(२६) तत्पश्चात् (आचारवतीके स्वर्गागमनके अनन्तर) राजा चण्डसिंहने मुझ

मति, कन्यकेयं कल्याणलक्षणा । तामिमां मालवेन्द्रनन्दनाय दर्पसाराय विधिवद्वर्धयित्वा दित्सामि । बिभेमि च कान्तिमतीवृत्तान्तादारभ्य कन्यकानां प्रकाशावस्थापनात् । अत इयमरातिव्यसनाय कारिते महति भूमिगृहे कृत्रिमशैलगर्भोत्कीर्णनानामण्डपप्रेक्षागृहे प्रचुरपरिबर्हया भवत्या संवर्ध्यताम् । अस्त्यत्र भोग्यवस्तु वर्षशतेनाप्यक्षय्यम्' इति । स तथोक्त्वा निजवासगृहस्य द्व्यङ्गुलभित्तावर्धपादं किष्कुविष्कम्भमुद्धृत्य तेनैव द्वारेण स्थानमिदमस्मानवीविशत् । इह च नो वसन्तीनां द्वादशसमाः

ऋद्धिमतीति वृद्धाया नाम । कल्याणलक्षणा—शोभनावयवा । इमां कन्याम् । विधिवत्—यथाविधि । वर्धयित्वा—परिपाल्य । दित्सामि—दातुमिच्छामि । बिभेमि—शङ्के । कान्तिमती वृत्तान्तादारभ्य—यदैव कान्तिमत्याः गुप्तरूपेण कामपालसंसर्गात्पुत्रोत्पत्तिर्जाता तस्मादेव दिनादित्यर्थः । प्रकाशावस्थापनात्—प्रकाशं सर्वजनसमक्षं यदवस्थापनं संस्थापनं संरक्षणमिति यावत् तस्माद्—बिभेमीति भीत्यर्थानां भयहेतुरितिपञ्चमी । इयं—कन्या । अरातिव्यसनाय—अरातिभ्यः शत्रुभ्यो यद् व्यसनं विपत् तदर्थं—तन्निवारयितुमित्यर्थः । कारिते—निर्मापिते । महति—विशाले भूमिगृहे—भूतलान्तर्गेहे । कृत्रिमेति—कृत्रिमो रचितो यः शैलः पर्वतस्तस्य गर्भे मध्ये उत्कीर्णानि विन्यस्तानि नानाविधानि मण्डपानि प्रेक्षागृहाणि नर्त्तनशाला यत्र तस्मिन् । प्रचुरपरिबर्हया—प्रभूतपरिच्छदया । भवत्या—वृद्धयेत्यर्थः । संवर्ध्यताम् पाल्यताम् इयं कन्यकेति शेषः । अत्र—भूमिगृहे । भोग्यवस्तु—खाद्यपरिधेयादिकम् । अक्षय्यं—क्षयानर्हम् । स चण्डघोषः द्व्यङ्गुलभित्तौ अङ्गुलिद्वयपरिमितकुड्ये । अर्धपादं—पाषाणनिर्मितपिधानम् । किष्कुविस्कम्भं-वितस्तिमात्रपरिणाहम् । उद्धृत्य-उत्पाद्य ।

वृद्धाको एकान्तमें बुलाकर कहा—'हे वृद्धे ! (ऋद्धिमति !) इस पुत्रीमें सभी लक्षण अच्छे पड़े हुए हैं । अत एव इसका यथाविधि पालन-पोषणकर मालवाधिपतिके राजकुमार दर्पसारको इसे समर्पण करनेकी इच्छा करता हूं । कान्तिमतीके दुर्वृत्तान्तको ज्ञात करके (उसी कालसे) बालिकाओंको प्रकाशरूपेण बाहर रखनेमें मुझे डर लगता है । इस हेतुसे शत्रुगणोंके भयसे मेरेद्वारा बनवाया हुआ अत्यन्त विशाल भूमिगृह (भूतलान्तर्गृह) है । उस भूमिगृहके ऊपर एक बनावटी पर्वत है उस पर्वतको खोद करके उस गृहमें जाना होता है वहांपर नाना प्रकारके मण्डपगृह और नाचघर देखने योग्य बने हुए हैं । वहीं पर सपरिवार रहकर इस कुमारीका पालन आप उचित रीतिसे करें । वहाँपर भोग्य वस्तुएँ इतनी प्रचुरमात्रामें रखी हैं कि वे सौ वर्षों तक भी प्रयोगमें लानेसे समाप्त नहीं हो सकती हैं ।' ऐसा कहकर उस राजाने अपने वासगृहसे दो अंगुलकी दूरीपर बनी एक दीवालपरसे

समत्ययुः । इयं च वत्सा तरुणीभूता । न चाद्यापि स्मरति राजा । काम-मियं पितामहेन दर्पसाराय संकल्पिता । त्वदम्बया कान्तिमत्या चेयं गर्भस्थैव द्यूतजिता स्वमात्रा तवैव जायात्वेन समकल्प्यत । 'तदत्र प्राप्त-रूपं चिन्त्यतां कुमारेणैव' इति ।

(२७) तां पुनरवोचम्—'अद्यैव राजगृहे किमपि कार्यं साधयित्वा प्रतिनिवृत्तो युष्मासु यथार्हं प्रतिपत्स्ये' इति । तेनैव दीपदर्शितबिलपथेन गत्वा स्थितेऽर्धरात्रे तदर्धपादं प्रत्युद्धृत्य वासगृहं प्रविष्टो विश्रब्धसुप्तं सिंह-

---

अवीविशत्–प्रवेशयामास । इह भूमिगृहे । नः–अस्माकम् । वसन्तीनां–वासं कुर्वतीनाम् । द्वादशसमाः द्वादशवर्षाणि । समत्ययुः–समतीताः । सम् अति पूर्वक याधातोर्लङि रूपम् । इयं च वत्सा–मणिकर्णिका तरुणीभूता–यौवनमधिगता । राजा-सिंहघोषः । कामं यथेच्छम् । इयं–मणिकर्णिका । पितामहेन–चण्डसिंहेन । संकल्पिता–दातुमिष्टा । इयं कन्या । गर्भस्था–गर्भवर्तमाना । द्यूतजिता द्यूतलब्धा । स्वमात्रा–निजजनन्या–आचारवत्येति यावत् । तवैव–अर्थपालस्यैव । जायात्वेन पत्नीत्वेन । समकल्प्यत–संकल्पिता । तत्–तस्मात्कारणात् । अत्रास्मिन् विषये । प्राप्तरूपं–युक्तियुक्तम् । कुमारेण–भवता ।

(२७) तां–वृद्धाम् । साधयित्वा–सम्पाद्य । यथार्हं–यथायोग्यम् । प्रतिपत्स्ये–विधास्यामि । दीपप्रदर्शितबिलपथेन–दीपालोकप्रदर्शितसुरङ्गामार्गेण । अर्धपादं–पाषाणरचितपिधानम् । प्रत्युद्धृत्य उद्घाट्य । वासगृहं–राजभवनम् । विश्रब्धसुप्तं–विश्वासपूर्वकं निद्रितम् । जीवग्राहं–जीवं गृहीत्वा इति जीवग्राहम्-

---

एक बीता मोटा पत्थर हटा दिया और उसी मार्गसे हमें यहाँपर प्रवेशित करा दिया । यहाँ हम लोगोंको रहते बारह बरस बीत गये । यह कुमारी भी युवती हो गयी । परन्तु, वह अभीतक याद नहीं करता अर्थात् हमलोगोंकी खोज खबरतक नहीं लेता है । इस मणि-कर्णिकाके पितामहने तो इसे दर्पसारको देनेका संकल्प किया था । लेकिन जब यह कुमारी माताके गर्भमें ही थी उसी समयमें आपकी माता कान्तिमतीने आपके साथ विवाह करनेके लिए इसे जुएमें जीत लिया था । अब इस विषयमें जो भी विचार आपके हों वैसा करें ।'

(२७) मैंने उस बुढ़ियासे फिर कहा—'आज ही राजभवनमें जाकर कुछ कामकर जो भी यथायोग्य व्यवहार होगा वह आप लोगोंके साथ बरतूंगा । उसी दीप-दर्शित सुरङ्गके मार्गसे जाकर मैंने आधी रातमें उस पत्थरके ढक्कनको खोल लिया और राजाके वासगृहमें घुस गया । वहाँपर निश्शंक रीतिसे सोते हुए राजा सिंहघोषको जीते जी

घोषं जीवग्राहमग्रहीषम् । आकृष्य च तमहिमिवाहिशत्रुः स्फुरन्तमनुनैव भित्तिरन्ध्रपथेन स्त्रैणसंनिधिमनैषम् । आनीय च स्वभवनमायसनिगडसंदितचरणयुगलमवनमितमलिनवदनमश्रुबहलरक्तचक्षुषमेकान्ते जनयित्रोरदर्शयम् । अकथयं च बिलकथाम् ।

(२८) अथ पितरौ प्रहृष्टतरौ तं निकृष्टाशयं निशाम्य बन्धने नियम्य तस्या दारिकाया यथार्हेण कर्मणा मां पाणिमग्राहयेताम् । अनाथकं च तद्राज्यमस्मदायत्तमेव जातम् । प्रकृतिकोपभयात्तु मन्मात्रा मुमुक्षितोऽपि न मुक्त एव सिंहघोषः । तथास्थिताश्च वयमङ्गराजः सिंहवर्मा देवपादानां

णमुलू । अग्रहीषम्—आक्रान्तवान् । तं सिंहघोषम् । अहिं सर्पम् । अहिशत्रुर्गरुडः । स्फुरन्तं—जीवन्तम् । स्त्रैणसन्निधिं—स्त्रीणां समूहः स्त्रैणं तस्य समीपम् । स्वभवनमस्मद्गृहम् । आयसेति—आयसनिगडेन—लौहश्रृङ्खलेन सन्दितं बद्धं चरणयुगलं यस्य तम् । अवनमितमलिनवदनं—नम्रीकृतविवर्णमुखम् अश्रुबहलेति—अश्रुणा नयनजलेन बहलरक्तं अतिलोहितं चक्षुर्यस्य तम् । जनयित्रोः मातापित्रोः ।

(२८) तं सिंहघोषम् । निकृष्टाशयं—नीचचित्तम् । निशाम्य दृष्ट्वा—बन्धने—कारागृहे । दारिकायाः कन्यायाः मणिकर्णिकायाः । यथार्हेण कर्मणा—यथाविधि । अग्राहयेतां ग्राहितवन्तौ । अनाथकं—रक्षितृशून्यम् । अस्मदायत्तं—अस्मदधीनम् । प्रकृतिकोपभयात्—प्रजाविद्वेषशंकया । मन्मात्रा—कान्तिमत्या । मुमुक्षितः मोक्तुमिष्टः । तथास्थिताः—तदवस्थाः । कृतकर्मा—कृतकार्यः । इति—इति हेतोः । अमित्राभियुक्तं शत्रुणा—आक्रान्तम् । एनं सिंहवर्माणम् । अभ्यसराम—अभिमुख-

पकड़ लिया । वहाँसे फिर राजाको मैं ऐसे जकड़कर उसी सुरङ्ग मार्गसे उन स्त्रियोंके समूहतक ले आया जैसे साँपको उसका शत्रु गरुड़ ले आता है । तदनन्तर उस राजाको मैं अपने भवनमें ले आया और वहाँ ला करके उसे लोहेकी श्रृंखलासे उसके दोनों पाँव बाँध दिये । (मारे लज्जाके) उसका मुख मलिन और नीचा हो गया एवं अत्यन्त आँसू गिरनेसे उसकी आंखें लाल-लाल हो गयीं । तब मैंने अपने जननी जनकको उसे दिखाया और सुरङ्गकी सारी कथा कह सुनायी ।

(२८) तत्पश्चात् प्रसन्नमनसे मेरे जननी-जनकने उस राजा सिंहघोषको देखा और बन्दी बनाकर उसकी कन्या मणिकर्णिकाके साथ मेरा विवाह यथाशास्त्र कर दिया । वह राज्य भी नेतृहीन होनेसे मेरे ही हाथोंमें आ गया । प्रजावर्गके क्रोधके भयके कारण मेरी माता कान्तिमतीने उस राजाको छोड़ देना चाहा किन्तु, उस राजा सिंहघोषने मुक्त होना पसन्द न किया । जब हम लोग इस प्रकारसे रह रहे थे, तब अंगराज सिंहवर्मा,

भक्तिमान्कृतकर्मा चेत्यमित्राभियुक्तमेनमभ्यसराम । अभूवं च भवत्पादपङ्कजरजोनुग्राह्यः । स चेदानीं भवच्चरणप्रणामप्रायश्चित्तमनुतिष्ठतु सर्वदुश्चरितक्षालनमनार्यः सिंहघोषः' इत्यर्थपालः प्राञ्जलिः प्रणनाम । देवोऽपि राजवाहनः 'बहुपराक्रान्तम् , बहूपयुक्ता च बुद्धिः, मुक्तबन्धस्ते श्वशुरः पश्यतु माम्' इत्यभिधाय भूयः प्रमतिमेव पश्यन्प्रीतिस्मेरः 'प्रस्तूयतां तावदात्मीयं चरितम्' इत्याज्ञापयत् ।

इति श्रीदण्डिनः कृतौ दशकुमारचरितेऽर्थपालचरितं नाम चतुर्थ उच्छ्वासः ।

—ooःooo—

मागतवन्तः । भवत्पादेति–भवतस्तव पादपङ्कजस्य चरणकमलस्य रजसां परागाणामनुग्राह्यो दयनीयः । अभूवमित्यनेनान्वयः । स चेदानीमित्यादि-सचानार्यः दुष्टः सिंहघोषः इदानीं सर्वदुश्चरितानामखिलपापानां क्षालनं शोधकं भवच्चरणयोः प्रणाम एव प्रायश्चित्तं अनुतिष्ठतु–करोतु । अधुना भवच्चरणयोः शरणग्रहणमन्तरेण तस्य निष्कृतिर्नास्तीति भावः । बहुपराक्रान्तं–त्वया महान् पराक्रमः कृतः । बहुपयुक्ता बुद्धिः–बुद्धेर्बहूपयोगः कृतः, मुक्तबन्धः–बन्धनान्मुक्तस्ते श्वशुरः सिंहघोषः मां पश्यतु मम समीपमागच्छत्वित्यर्थः । भूयः पुनरपि । प्रमतिं–तदाख्यकुमारम् । प्रीतिस्मेरः–प्रीत्यास्नेहेन स्मेर ईषद्धसिताननः । प्रस्तूयतामारभ्यताम् ।

इति श्रीताराचरणभट्टाचार्य कृतायां बालविबोधिनी समाख्यायां दशकुमारचरितव्याख्यायाम्–अर्थपालचरितं नाम चतुर्थ उच्छ्वासः ।

—ooःooo—

आपका भक्त कृतकार्य यहाँ आया । और शत्रुओंसे आक्रान्त होकर निज साहाय्यके लिये हमें ले आया । यहाँपर आपके चरणकमलोंके परागोंकी दया हुई । वह दुष्ट सिंहघोष इस समय आपके चरणोंका प्रणामरूप प्रायश्चित्त विधानके अनुष्ठानसे अपने सभी दुराचणरणोंको प्रक्षालित करना चाहता है । ऐसा कह करके अर्थपालने बद्धाञ्जलि होकर प्रणाम किया । देव राजवाहनने भी कहा—'आपने बड़ा पराक्रम दर्शाया । बुद्धिका बहुत उपयोग किया । आपका श्वसुर बन्धन रहित होकर मुझसे मिले । इतना कहकर पुनः प्रमति नामक कुमारकी ओर स्नेहसे स्मित होकर देखते हुए आज्ञा दी कि आप भी अपने चरितको प्रारम्भ करें ।

इस प्रकारसे बालक्रीड़ा नामक हिन्दी टीका दशकुमारचरितके चतुर्थ उच्छ्वासकी समाप्त हुई ।

—ooःooo—

पञ्चमोच्छ्वासः

(१) सोऽपि प्रणम्य विज्ञापयामास—'देव देवस्यान्वेषणाय दिक्षु भ्रमन्नभ्रंकषस्यापि विन्ध्यपार्श्वरूढस्य वनस्पतेरधः, परिणतपतङ्गबालपल्लवावतंसिते पश्चिमदिगङ्गनामुखे पल्वलाम्भस्युपस्पृश्योपास्य संध्याम्, तमःसमीकृतेषु निम्नोन्नतेषु, गन्तुमक्षमः क्षमातले किसलयैरुपरचय्य शय्यां शिशयिषमाणः, शिरसि कुर्वन्नञ्जलिम्, 'यास्मिन्वनस्पतौ वसति देवता सैव मे शरणमस्तु शरारुचक्रचारभीषणायां शर्वगलश्यामशार्वरान्धका-

---

(१) सम्प्रति प्रमतिनामा कुमारः स्वचरितं वर्णयति। सोऽपि प्रमतिरपि। अभ्रंकषस्य-गगनस्पर्शिनः? अत्युन्नतस्येति भावः। वनस्पतेर्वृक्षस्य। विन्ध्येति-विन्ध्यस्य तदाख्यपर्वतस्य पार्श्वे पार्श्वभागे रूढस्य उत्पन्नस्य। परिणतेति-परिणतोऽस्तोन्मुखः पतङ्गः सूर्य एव बालपल्लवो नवकिसलयस्तेन अवतंसिते भूषिते। पश्चिमदिगेवाङ्गना कामिनी तस्या मुखे सायं समये इत्यर्थः। पल्वलाम्भसि-क्षुद्रसरोजले। उपस्पृश्य-आचम्य। निम्नोन्नतेषु-उच्चावचस्थानेषु तमः समीकृतेषु तमसान्धकारेण समीकृतेषु पूर्णीकृतेषु सत्सु। क्षमातले-भूतले। किसलयैः पल्लवैः। उपरचय्य-निर्माय। शिशयिषमाणः-शयितुमिच्छन्। अञ्जलिं कुर्वन्-प्रणमन्नित्यर्थः। शरणं-रक्षित्री। शरारुचक्रेति-शरारुचक्रस्य हिंस्रपशुमण्डलस्य चारेण सञ्चरणेन भीषणा भयङ्करी तस्याम्। महाटवीविशेषणम्। पुनश्च शर्वगलेति-शर्वस्य शिवस्य गलः कण्ठस्तद्वत् श्यामो नीलः शर्वर्या अयमिति शार्वरो रात्रिजनितः अन्धकारपूरस्तमः प्रवाहस्तेनाध्मातानि पूर्णानि गभीरगह्वराणि

---

(१) प्रमतिने प्रणाम करके विज्ञापित किया—'हे देव! मैं आपको अन्वेषण करता हुआ बादलोंको छूनेवाले विन्ध्यपर्वतके समीप एक अपुष्पवृक्षके नीचे जा पहुँचा। उस समय अस्तोन्मुख सूर्य भगवान् नवीन किसलयके समान आकृतिसे पश्चिम दिशारूपी कामिनीको भूषित कर रहे थे। (अर्थात् सायंकाल हो गया था।) वहाँ पहुँचकर मैंने एक अल्प जलाशयमें आचमन आदि किया और सायं सन्ध्या भी की। इतनेमें अन्धकारसे सभी ऊँचे और नीचे स्थान समान मालूम होने लगे। तब उस स्थानसे पृथ्वीतलपर अन्यत्र जाना असम्भव हो गया और मैंने वहींपर पल्लवोंको एकत्र करके एक शय्या रची तथा सोनेकी इच्छा करने लगा। सोनेके पूर्व मैं अपने दोनों हाथोंको शिरपर अञ्जलिरूपमें धरकर प्रार्थना की कि, 'जिस देवताका आवास इस वृक्षके ऊपर होवे वही मेरी रक्षयित्री (रक्षिका) होवे। इस समय मैं यहां अकेला हूँ और यह महावन

रपूराध्मातगभीरगह्वरायामस्यां महाटव्यामेककस्य मे प्रसुप्तस्य' इत्युपधाय वामभुजमशयिषि ।

(२) ततः क्षणादेवावनिदुर्लभेन स्पर्शेनासुखायिषत किमपि गात्राणि, आह्लादयिषतेन्द्रियाणि, अभ्यमनायिष्ट चान्तरात्मा, विशेषतश्च हृषितास्तनूरुहाः, पर्यस्फुरन्मे दक्षिणभुजः । 'कथं न्विदम्' इति मन्दमन्दमुन्मिषन्नुपर्यच्छचन्द्रातपच्छेदकल्पं शुक्लांशुकवितानमैक्षिषी ।

(३) वामतश्चलितदृष्टिः समया सौधभित्तिं चित्रास्तरणशायिनमति-

मध्यप्रदेशा यस्यास्तथाभूतायाम् । एकैकस्यैकाकिनः । इति-एवं ब्रुवन् । वामभुजं सव्यबाहुम् उपधाय-उपधानीकृत्य वामहस्तोपरि मस्तकं न्यस्येत्यर्थः । अशयिषि-शयितोऽभवम् अहमिति शेषः ।

(२) क्षणात्-तस्मिन्नेव मुहूर्त्ते । असुखायिषत-सुखितानि जातानि । किमपि-अनिर्वचनीयम् आह्लादयिषत-आह्लादितानि जातानि । इन्द्रियाणि-चक्षुरादीनि । अभ्यमनायिष्ट-अतिशयेन मुमुदे । विशेषतः-आधिक्येन । हृषिताः उदञ्चिताः । तनूरुहाः-लोमानि । पर्यस्फुरत् स्पन्दितोऽभवत् । इदं-भुजकम्पनम् । कथं-केन प्रकारेण सम्भाव्यते । वामेतरभुजस्पन्दो वरस्त्रीलाभसूचक इत्युक्तेः । मन्दमन्दं-स्वल्पम् । उन्मिषन्-चक्षुषी उन्मीलयन् । उपरि मदूर्ध्वप्रदेशे । अच्छेति-अच्छो-निर्मलश्चन्द्रस्यातप आलोकस्तस्य खण्डस्तत्सदृशम् । शुक्लांशुकवितानं-शुभ्रवस्त्रनिर्मितोल्लोचम् ऐक्षिषि-ईक्षितवान् ।

(३) वामतो वामभागे । चलितदृष्टिः दत्तचक्षुः । समया-समीपे । सौधभित्तिमित्यत्र समया योगे षष्ठ्यर्थे द्वितीया । चित्रास्तरणशायिनं-विचित्रशय्या-

---

शिवजीके नीले कण्ठके सदृश रात्रिसे परिव्याप्त घोर अन्धकारमय विशाल गुफाओंवाला है तथा घातक जन्तुओंके गमनागमनसे यह अति भयावना भी है ।' उपर्युक्त प्रार्थनाके पश्चात् मैं बायें हाथको तकियाके स्थानपर बनाकरके उसीपर अपना शिर धरकर सो गया।

(२) शिरके रखनेके पश्चात् ही उसी क्षणमें पृथिवीपर सोनेके अपूर्व आनन्दको प्राप्त करके मेरे सभी अङ्ग सुखी हो गये, सभी इन्द्रियां आह्लादित हो गयी, अन्तरात्मा पुलकित हो गयी, रोम प्रतिलोम विशेषरूपेण हर्षान्वित हो गये उसी समय मेरी दाहिनी भुजा फड़कने लगी । यह भुजाकी फड़कन क्यों हुई ? ऐसा सोचते हुए मैंने धीरे-धीरे आंखोंको खोलकर ऊपरकी ओर दृष्टि फेंकी तो, चन्द्रमाके समान स्वच्छ वस्त्रवाला वितान दिखलायी पड़ा ।

(३) तदनन्तर बाँयीं ओर दृष्टि डाली तो, अङ्गनाजनको देखा, जो चूनेसे पुती

विश्रब्धप्रसुप्तमङ्गनाजनमलक्ष्यम् । दक्षिणतो दत्तचक्षुरागलितस्तनांशुकाम्, अमृतफेनपटलपाण्डुरशयनशायिनीम्, आदिवराहदंष्ट्रांशुजाललग्नाम् अंसस्रस्तदुग्धसागरदुकूलोत्तरीयाम् भयसाध्वसमूर्च्छितामिव धरणिम्, अरुणाधरकिरणबालकिसलयलास्यहेतुभिराननारविन्दपरिमलोद्वाहिभिर्निःश्वासमातरिश्वभिरीश्वरेक्षणदहनदग्धं स्फुलिङ्गशेषमनङ्गमिव संधुक्षयन्तीम्, अन्तःसुप्तषट्पदमम्बुजमिव जातनिद्रमामीलितलोचनेन्दीवरमाननं दधा-

विन्यस्तदेहम् । अतिविश्रब्धप्रसुप्त–अतिविश्वासेन निद्रितम् । अलक्ष्यम्–अपश्यम् । दक्षिणतः–दक्षिणभागे । दत्तचक्षुः–प्रहितनयनः । आगलितेति–आगलितम् ईषद्भ्रष्टं स्तनांशुकं स्तनावरणं यस्यास्ताम् । अमृतेति–अमृतस्य सुधायाः फेनपटलं डिण्डीरसमूहस्तद्वत् पाण्डुरे शुभ्रे शयने शय्यायां शायिनीं शयिताम् । अतएव–आदिवराहस्य वराहरूपेणावतीर्णस्य विष्णोर्दंष्ट्राया दशनस्यांशुजाले मयूखमण्डले लग्नां सम्बद्धाम्—अंसात् स्कन्धदेशात् स्रस्तं गलितं दुग्धसागरः क्षीरसमुद्र एव दुकूलं पट्टवस्त्रं तदेवोत्तरीयं यस्यास्ताम् भयेन यत् साध्वसं सम्भ्रमस्तेन मूर्छितां सञ्जातमूर्च्छां धरणीं पृथिवीमिवेत्युत्प्रेक्षा । अरुणेति–अरुणस्य ताम्रवर्णस्याधरस्य किरणा मयूखा एव किसलयानि पल्लवानि तेषां लास्यस्य नृत्यस्य हेतुभिः कारणभूतैः अधरकम्पनकारणैरित्यर्थः । आननेति–आननमेवारविन्दं कमलं तस्य यः परिमलः सौगन्ध्यं तस्य वाहिभिर्वहनशीलैर्निःश्वासमातरिश्वभिर्निःश्वासवायुभिः करणभूतैरित्यर्थः । ईश्वरेक्षणदहनदग्धं धूर्जटिनयनानलभस्मीकृतम् । स्फुलिङ्गशेषं–अग्निकणमात्रावशेषम् । अनङ्गं कामम् । सन्धुक्षयन्तीम्–प्रज्वालयन्तीं वर्धयन्तीमिव । अन्तःसुप्ता अभ्यन्तरलीनाः षट्पदाः भ्रमरा यस्मिंस्तत् । अम्बुजं कमलमिव–जातनिद्रं निद्रितमत एवामीलिते ईषत्सङ्कुचिते

हुई दीवालके समीप विचित्र एवं उज्ज्वल बिछौनेके ऊपर अत्यन्त विश्वासपूर्वक सोयी हुई थी । दक्षिणकी ओर दृष्टि डाली तो देखा कि उस अङ्गनाके स्तनों (कुचों) परसे वस्त्र खिसके हुए हैं । और वह अमृतके फेनके टुकड़ों के समान अत्यन्त विमल (सफेद) पलङ्गपर सोयी हुई है । वह अंगना आदिवराह भगवान् (विष्णु) के दाँतोंकी किरण–प्रभासे परिव्याप्त अपने स्कन्धसे खिसकी हुई साड़ी (वस्त्र) को ऐसे धारण किये हुए है मानो, क्षीर–सागर शुभ्ररूपमें उसके स्कन्धप्रदेशमेंसे खिसक रहा हो । अर्थात् उसकी साड़ी दुग्धसमुद्रके सदृश स्वच्छ थी । भयके सम्भ्रमसे मूर्छित पृथिवीके समान तथा लाल अधर–किरणोंरूप रक्त किसलयोंको कंपानेवाली, अपने मुखकमलकी सुगन्धको लेकर उड़नेवाली निःश्वासोंके पवनसे परिव्याप्त भगवान् शङ्करके तृतीय नयनकी

नाम्, ऐरावतमदावलेपलूनापविद्धामिव नन्दनवनकल्पवृक्षरत्नवल्लरीं कामपि तरुणीमालोकयम्।

(४) अतर्क्यं च—'क्व गता सा महाटवी, कुत इदमूर्ध्वाण्डसम्पुटोल्लेखि शक्तिध्वजशिखरशूलोत्सेधं सौधमागतम्, क्व च तदरण्यस्थलीस-

लोचने नयने इन्दीवरे नीलोत्पले इव यत्र तथाभूतमाननं दधानां धारयन्तीम्। ऐरावतस्येन्द्रवाहनस्य मदेन योऽवलेपो गर्वस्तेनादौ लूना छिन्ना पश्चात् अपविद्धा निःक्षिप्ता त्यक्तेति यावत्-तथाभूताम्। नन्दनवने देवराजोद्याने यः कल्पवृक्षः पारिजाततरुस्तस्य रत्नमयी या वल्लरी मञ्जरी तामिव। कामपि-अनिर्वचनीयां तरुणीं-युवतीम्।

(४) अतर्क्यं-मनस्यचिन्तयम्। महाटवी-महारण्यम्। कुतः-कस्मात् स्थानात्। इदं-पुरोदृश्यमानम्। ऊर्ध्वाण्डेति-नखैर्हिरण्यगर्भः स तदण्डं बिभिदे समम्। ताभ्यां च सकलाभ्यां स दिवं भूमिञ्च निर्ममे इति मनूक्तेः ऊर्ध्वाण्डमूर्ध्वकपालं ब्रह्माण्डस्योर्ध्वदेश इति यावत्-तस्य यः सम्पुट आवरणं तदुल्लिखति स्पृशतीत्येवं शीलम्। गगनस्पर्शि इत्यर्थः। शक्तिध्वजेति-शक्तिध्वजः कार्त्तिकेयः। सेनानीः क्रौञ्चशत्रुश्च कुमारः शक्तिकेतन इति कोषात्। तस्य यच्छूलमस्त्रविशेषस्तस्य शिखरमग्रभागस्तद्वत् उत्सेध औन्नत्यं यस्य तत् अत्युन्नतमित्यर्थः। सौधस्य विशेषणद्वयम्। शिखरशूलमित्यत्र शूलस्य शिखरमित्यर्थे राजदन्तादिवत्पूर्वनिपातः। सौधं-राजसदनम्। आगतमुपस्थितम्। क्व गतमिति शेषः। तदरण्येति-तस्यां पूर्वोक्तायामरण्यस्थल्यां काननभूमौ समास्तीर्णं रचितम्। पल्लवशयनं किसलयतल्पम्। कुतस्त्यं-कुत आगतम्। इन्दुगभस्तीति-इन्दोश्चन्द्रस्य

ज्वालासे जले हुए कामदेवके कणमात्र अवशिष्ट भागको वर्द्धन करनेवाली अंगनाको देखा। जिस कमलकोशके भीतर भौंरा सोता हो ऐसे कमलके समान और निद्रासे परिव्याप्त होनेसे सम्पुटित नयनरूप नीले कमलवाले मुखको धारण करनेवाली तथा इन्द्रके ऐरावत हाथीकेद्वारा मदान्धमें तोड़कर त्यागी हुई नन्दनवनके कल्पवृक्षकी रत्नमञ्जरीके समान आभावाली उस युवती (अंगना) को मैंने देखा।

(४) मनमें चिन्तन करने लगा—वह गहन वन कहां चला गया? कहांसे यह अत्यन्त विशाल राजप्रासाद आ गया जो ब्रह्माण्डके ऊपरवाले भागको स्पर्शित करनेवाला है तथा कुमार कार्तिकेयके पर्वतकी चोटियोंके तुल्य अति उन्नत भागवाला है अर्थात् गगनस्पर्शी है। वह वनस्थली कहां गयी जहांपर मैंने पल्लवोंकी शय्या रची थी? कहांसे यह चन्द्रमाकी किरणसमूहके सदृश उज्ज्वल तथा हंसतूलके समान शुभ्र वस्त्रवाली,

मास्तीर्णं पल्लवशयनम्, कुतस्त्यं चेदमिन्दुगभस्तिसम्भारभासुरं हंसतूलदुकूलशयनम्, एष च को नु शीतरश्मिकिरणरज्जुदोलापरिभ्रष्टमूर्छित इवाप्सरोगणः स्वैरसुप्तः सुन्दरीजनः, का चेयं देवीवारविन्दहस्ता शारदशशाङ्कमण्डलामलदुकूलोत्तरच्छदमधिशेते शयनतलम् ।

(५) न तावदेषा देवयोषा, यतो मन्दमन्दमिन्दुकिरणैः संवाह्यमाना कमलिनीव सङ्कुचति । भग्नवृन्तच्युतरसबिन्दुशवलितं पाकपाण्डु चूतफलमिवोद्भिन्नस्वेदरेखं गण्डस्थलमालक्ष्यते, अभिनवयौवनविदाहनिर्भरो-

गभस्तीनां किरणानां सम्भारः समूहस्तद्वद्भासुरं देदीप्यमानम् । हंसतूलदुकूलशयनं-हंसतूलवच्छुभ्रं यद्दुकूलं वस्त्रं तेन रचितं शयनं शय्या । एष इति सुन्दरीजन इत्यनेन सम्बध्यते । शीतरश्मीति-शीतरश्मेः चन्द्रस्य किरणा एव रज्जवस्तासां या दोला हिन्दोलिका तस्याः परिभ्रष्टः पतितः अतएव मूर्च्छितः सञ्जातमोहस्तादृशः अप्सरोगणो दिव्यवाराङ्गणासमूह इव । स्वैरसुप्तः—स्वच्छन्दनिद्रितः । सुन्दरीजनः स्त्रीसमुदायः । अरविन्दहस्ता देवी-लक्ष्मीः सेव । शारदेति-शारदं शरदि भवं यत् शशाङ्कमण्डलं चन्द्रविम्बं तद्वदमलं स्वच्छं दुकूलं वस्त्रं तदेवोत्तरच्छदः आस्तरणं यस्य तत् । शयनतलस्य विशेषणम् ।

(५) एषा-शयाना स्त्री । देवयोषा-देवाङ्गना । न तावत्-नैव । यतो यस्मात् । संवाह्यमाना-मर्द्यमाना सेव्यमानेति यावत् । सङ्कुचति-यथा इन्दुकिरणैः स्पृश्यमाना कमलिनी सङ्कोचं प्राप्नोति तथा इयमपि निद्रया नेत्रसङ्कोचमधिगच्छतीति निद्रातीति भावः । अतो न देवी देवीनां स्वप्नाभावात् । भग्नवृन्तेति-भग्नवृन्तात् त्रुटितप्रसवबन्धनात् च्युतः क्षरितो यो रसस्तस्य बिन्दुभिः कणैः शबलितं कर्बुरितम् । तथा पाकपाण्डु-पाकेन परिणामेन पाण्डुवर्णं तादृशं चूतफलमाम्रमिव । उद्भिन्नेति-उद्भिन्ना निर्गता स्वेदरेखा घर्मधारा यत्र तादृशं गण्ड-

शय्या आ गयी ? चन्द्रमाकी किरणरूपी रस्सियोंद्वारा निर्मित हिंडोले (पालने) के ऊपरसे गिरकर अचेतनावस्थाको प्राप्त (मूर्छित) अप्सराओंके समान सुखपूर्वक शयन करनेवाली ये सुन्दरियाँ कौन हैं ? क्या यह कमलको हाथमें रखनेवाली लक्ष्मीके समान लक्ष्मी है ? अथवा कौन इस रीतिसे शरद्कालिक चन्द्रमण्डलके समान सफेद वस्त्रकी ओढ़नी (चादर) ओढ़े हुए इस पलङ्गपर सोया है ?

(५) यह सोयी हुई अंगना देवस्त्री नहीं है क्योंकि शनैः शनैः चन्द्रकिरणोंसे संसेव्यमान कमलिनीके सदृश संकुचित होकर सोती हुई दीख रही है, परन्तु देवगण सोते नहीं हैं । इसके कपोलोंपर पसीनेकी बूँदें इस तरह मालूम होती हैं जिस तरह

ष्मणि कुचतटे वैवर्ण्यमुपैति वर्णकम्। वाससी च परिभोगानुरूपं धूसरिमाणमादर्शयतः, तदेषा मानुष्येव।

(६) दिष्ट्या चानुच्छिष्टयौवना, यतः सौकुमार्यमागताः सन्तोऽपि संहता इवावयवाः, प्रस्निग्धतमापि पाण्डुतानुविद्धेव देहच्छविः, स्मरपीडानभिज्ञतया नातिविशदरागो मुखे, विद्रुमद्युतिरधरमणिः अनत्यापूर्ण-

स्थलं कपोलदेशः। आलक्ष्यते-दृश्यते मयेति शेषः। अभिनवेति-अभिनवस्य प्रत्यग्रस्य यौवनस्य तारुण्यस्य विदाहेन विशिष्टतापेन निर्भरः प्रगाढ ऊष्मा सन्तापो यत्र तादृशे। वैवर्ण्यं मालिन्यम्। उपैति प्राप्नोति। वर्णकमङ्गरागोऽनुलेपनमिति यावत्। वाससी-परिधेयवस्त्रद्वयम्। परिभोगानुरूपं-व्यवहारोचितम्। धूसरिमाणं मालिन्यम्। आ सम्यक् दर्शयतः प्रकाशयतः। तत्तस्मात्। एषा शयाना सुन्दरी। मानुषी मानवी।

(६) दिष्ट्या भाग्येन। अनुच्छिष्टेति-अनुच्छिष्टं अन्यैरनुपभुक्तं यौवनं यस्याः सा। यतः यस्मात् कारणात्। सौकुमार्यं कोमलत्वमागताः प्राप्ताः। संहताः सुश्लिष्टाः। अश्लथा इत्यर्थः। देहच्छविः शरीरकान्तिः प्रस्निग्धतमा-अतिशयेन स्निग्धा मनोरमेति यावत् तादृश्यपि पाण्डुतया वैवर्ण्येनानुविद्धा युक्तेव प्रतिभाति। स्मरपीडानभिज्ञतया-कामस्य पीड़ा कीदृशी भवतीति न ज्ञायते इति हेतोः मुखे वदने अतिविशदराग अत्यौज्ज्वल्यं न वर्त्तत इति शेषः। अधरमणिरधरबिम्बम्। विद्रुमद्युतिः प्रवालकान्तिः। अतिशयेनापूर्णमस्या पूर्णं तन्न भवतीति तथा। यौवनस्य पूर्णतायामेव सर्वेऽवयवाः पूर्णतां यान्ति। अतो यौवनप्रारम्भे वर्त्तमानाया अस्याः कपोलतलं न तथातिपूर्णतां गतमित्याशयः। आ-

पेड़से गिरा हुआ सरस और परिपक्व तथा पीला आम का फल दिखलायी पड़ता है। अभिनव तारुण्यकी प्राप्तिसे उद्‌भूत शरीरकी दाहजनित उष्णता (गरमी) से स्तनतट मलिन प्रतीत हो रहे हैं। इस स्त्रीके परिधान वस्त्र (पहिरनेके कपड़े) उपयोगमें होनेके कारण मैले दीख रहे हैं। अतः इन उपर्युक्त विचारोंके हेतु यह रमणी मानवी ही है-अन्या नहीं।

(६) भाग्यवशात् यह अभीतक किसीके द्वारा उपभोगित नहीं हुई है। क्योंकि इस रमणीके सब अवयव यद्यपि कोमल हैं तथापि सभी अवयव सुश्लिष्ट (मिले हुए) हैं। इसकी शरीरकान्ति मनोरम होनेपर भी पांडुवर्ण है-अतः अति सुन्दर है। कामदेवकी व्यथासे अनभिज्ञ होनेके कारण इसके मुखपर उज्ज्वल राग नहीं दिखाई पड़ता है। मूंगेकी लालिमाके तुल्य इसकी अधरमणि मनोरम है। अपूर्ण और कुछ-कुछ लाल

सारक्तमूलं चम्पककुड्मलदलमिव कठोरं कपोलतलम्, अनङ्गबाणपात-मुक्ताशङ्कं च विश्रब्धमधुरं सुप्यते, न चैतद्वक्षःस्थलं निर्दयविमर्दविस्तारितमुखस्तनयुगलम्, अस्ति चानतिक्रान्तशिष्टमर्यादचेतसो ममास्यामासक्तिः । आसक्त्यनुरूपं पुनराश्लिष्टा यदि, स्पष्टमार्तरवेणैव सह निद्रां मोक्ष्यति ।

(७) अथाहं न शक्ष्यामि चानुपश्लिष्य शयितुम् । अतो यद्भावि तद्भवतु । 'भाग्यमत्र परीक्षिष्ये' इति स्पृष्टास्पृष्टमेव किमप्याविद्ध-

रक्तं ईषद्रक्तं मूलं यस्य तत् । चम्पककुड्मलस्य चम्पककलिकायाः दलं पत्रमिव कठोरं कठिनं पूर्णमिति यावत् । कपोलतलं-गण्डस्थलम् । अनङ्गेति-क्रियाविशेषणम् । अनङ्गस्य कामस्य बाणपातात् शरपतनात् मुक्ता अपगता आशङ्का यस्मिंस्तद्यथा तथा अनूढायास्तस्याः कामशराद्भीतिरपि नास्तीति भावः । विश्रब्धं विश्वस्तमत एव मधुरं मनोरमं यथा तथा सुप्यते निद्रीयतेऽनयेति शेषः । न चेति-एतस्या वक्षःस्थलमुरोदेशः, निर्दयविमर्देन गाढालिङ्गनादिना विस्तारितं प्रकटितं मुखमग्रभागो यस्य तादृशं स्तनयुगलं यत्र तथाभूतं न भवति । अनतिक्रान्तेति—अनतिक्रान्ता अनुल्लङ्घिता शिष्टानां प्रामाणिकानां मर्यादा सीमा येन तादृशं चेतो हृदयं यस्य तथाभूतस्य ममास्यां कन्यायामासक्तिरभिलाषोऽस्तीति पूर्वेणान्वयः । आत्मतुष्टिप्रमाणेनास्यां मेऽनुरागो न दोषावह इति भावः । आसक्त्यनुरूपं आसक्तेरनुरागस्य सदृशम् । यदि पुनराश्लिष्टा आलिङ्गिता स्पष्टं निश्चितम् । आर्त्तरवेण-कातरस्वरेण सहैव सहितमेव निद्रां मोक्ष्यति त्यक्ष्यति ।

(७) अथ पक्षान्तरे । न शक्ष्यामि-न समर्थो भविष्यामि । अनुपश्लिष्य अनालिङ्ग्य । अतः-गत्यन्तराभावात् । भावि-भविष्यति । भाग्यमदृष्टम् । अत्र अस्मिन् विषये । परीक्षिष्ये भाग्यपरीक्षां करिष्यामीत्यर्थः । इति-एवं विचार्य । स्पृष्टास्पृष्टं-कियत् स्पृष्टं कियच्चास्पृष्टं यस्मिंस्तद्यथा तथा । आविद्धरागसाध्वसं-

इसके कपोलतल चम्पाकी कलीके समान कठोर हैं । कामशरोंके प्रहारका भीतिसे रहित होकर यह विश्वासपूर्वक सुन्दर रीतिसे शयन करती है । (अनूढा है) इसके वक्षःस्थलको निर्दय तथा गाढ आलिङ्गनका स्पर्श भी नहीं हुआ है—क्योंकि इसके स्तनतटका अग्रभाग प्रसारित नहीं है । शिष्टोंकी मर्यादाको अनुसरण करनेवाली मेरे मनकी आसक्ति इस बालाके ऊपर हुई है । यदि मैं अपनी आसक्तिके (अपने अनुरागके) अनुरूप इसका आलिङ्गन करूँ तो यह अवश्य कातरस्वरके साथ निद्राको त्यागेगी ।

(७) अस्तु, अब मैं इसका आलिङ्गन किये बिना सोनेमें भी असमर्थ हूँ । अतः जो भी होना होवे सो होवे । मैं अपने भाग्यकी यहाँ परीक्षा करूँगा ही । और मैंने उस

रागसाध्वसं लक्ष्मसुप्तः स्थितोऽस्मि । सापि किमप्युत्कम्पिना रोमोद्भेद-वता वामपार्श्वेन सुखायमानेन मन्दमन्दजृम्भिकारम्भमन्थराङ्गी, त्वङ्गद-ग्रपक्ष्मणोश्चक्षुषोरलसतान्ततारकेणानतिपक्वनिद्राकषायितापाङ्गपरभागेन युगलेनेषदुन्मिषन्ती, त्रासविस्मयहर्षरागशङ्काविलासविभ्रमव्यवहितानि व्रीडान्तराणि यानि कान्यपि कामेनाद्भुतानुभावेनावस्थान्तराणि कार्य-

आविद्धोऽनुस्यूतो राग आसक्तिः साध्वसं भयं च यस्मिंस्तद्यथा तथा । अपूर्वकन्या-लाभाद्रागः स्पृष्टा चेदार्त्तस्वरं कुर्यादिति साध्वसम् । लक्ष्मसुप्तः कपटनिद्रितः । कि-मियं करोतीति द्रष्टुं कपटनिद्रामधिगत इत्यर्थः । सा–कन्या । किमपि–किञ्चित् । उत्कम्पिना कम्पनशीलेन । रोमोद्भेदवता–रोमाञ्चयुक्तेन । सुखायमानेन-सुखमनु-भवता । वामपार्श्वेनेत्यस्य विशेषणम् । वामपार्श्वेनेत्यत्रोपलक्षणे तृतीया । मन्द-मन्देति–मन्दमन्दं स्वल्पं यथा तथा जृम्भिकाया गात्रमोटनस्य आरम्भेण मन्थर-मलसमङ्गं यस्याः सा । त्वङ्गदिति–त्वङ्गत् चलदग्रपक्ष्म पक्ष्माग्रं ययोस्तयोः । चक्षु-षोरित्यस्याग्रिमेण युगलेनेत्यनेन सम्बन्धः । अलसेति–अलसे–मन्थरे मद्दर्शनार्थ-मिति भावः । तथा तान्ते क्लान्ते निद्राया अपरिपक्वतयेति भावः, तारके कनीनिके यत्र तेन । अनतिपक्वेति–अनतिपक्वया असम्पूर्णया निद्रया कषायितो मलिनीकृतः अपाङ्गयोर्नेत्रप्रान्तयोः परभागो गुणोत्कर्षो यस्य तेन तादृशेन चक्षुषोर्युगलेन । ईषत्–मन्दं मन्दम् उन्मिषन्ती-नेत्रोन्मीलनं कुर्वाणा । त्रासेति–त्रासः अपरिचितोऽयं कथमागत इति भीतिः–विस्मयः–कथं सुरक्षितेऽपि गृहेऽस्यागम इति आश्चर्यम्, हर्षः तथाविधमनोहरवपुर्दर्शनादानन्दम्-रागः हर्षजनितोऽनुरागः, शङ्का–एवंविधां मां विलोक्य किं कथयिष्यन्ति जना इत्याशङ्का । विलासः स्त्रीणां सात्त्विको भाववि-शेषः । विभ्रमोऽपि तथा–अस्थाने वसनभूषणादीनां न्यासरूपः एतद्व्यवहितान्यनु-विद्धानि, व्रीडान्तराणि–व्रीडा लज्जा अन्तरा मध्ये येषां तानि । कानि कानि अनिर्वच-

कन्याको अनुरागसे जरा स्पर्श किया । पुनः इस शङ्कासे कि यह चिल्लायेगी कपटनिद्रासे सो गया, पुनः उसका स्पर्श किया आदि । वह रमणी भी स्वोत्पन्न कुछ रोमाञ्चोंसे अपने बायें पार्श्वसे सुखका अनुभव करती हुई, धीरे-धीरे आलस करती हुई अपने शरीरकी प्रक्रिया प्रारम्भ करने लगी । काँपते हुए पक्ष्मोंसे आलस्यपूर्ण नयनोंको खोलनेसे तथा उनमें पर्याप्त मात्रामें निद्रा न होनेके कारण व्यथित तथा अर्धविकसित नेत्रोंसे देखती हुई मालूम पड़ी । अपरिचित पुरुषको देखनेसे उसे भय उत्पन्न हुआ । यह पुरुष यहाँ किस तरह आया इसका ठीक ज्ञान न होनेसे उसे आश्चर्य हुआ । मेरे समान युवकके दर्शनलाभसे उसे हर्ष हुआ । उसी हर्षके कारण उसे प्रेम भी उत्पन्न हुआ । इस प्रकार

माणा, परिजनप्रबोधनोद्यतां गिरं कामावेगपरवशं हृदयमङ्गानि च साध्वसायाससम्बध्यमानस्वेदपुलकानि कथंकथमपि निगृह्य सस्पृहेण मधुरकूणितत्रिभागेन मन्दमन्दप्रचारितेन चक्षुषा मदङ्गानि निर्वर्ण्य, दूरोत्सर्पितपूर्वकायापि तस्मिन्नेव शयने सचकितमशयिष्ट ।

(८) अजनिष्ट मे रागाविष्टचेतसोऽपि किमपि निद्रा । पुनरननुकूलस्पर्शदुःखायत्तगात्रः प्राबुध्ये । प्रबुद्धस्य च सैव मे महाटवी, तदेव तरु-

नीयानि, अवस्थान्तराणीत्यस्य विशेषणानि । अद्भुतानुभावेन–विस्मयकरप्रभावेण । अवस्थान्तराणि–दशाविशेषान् । कार्यमाणा=अनुभाव्यमाना । णिजन्तात् कृधातोः कर्मणि शानच् । परिजनेति–परिजनानां सुप्तसहचरीणां प्रबोधनाय जागरणाय उद्यतां प्रवृत्तां गिरं वाचम् । निगृह्येति वक्ष्यमाणया क्रियया सम्बन्धः । तथा अग्रेऽपि । कामस्यावेग आवेशस्तस्य परवशमधीनम् तादृशं हृदयं चित्तं निगृह्येति शेषः । साध्वसेति-साध्वसेन भयेन य आयासः खेदस्तेन संबध्यमानानि जायमानानि स्वेदपुलकानि सघर्मरोमाञ्चानि येषु तानि । अङ्गानीत्यस्य विशेषणम् । निगृह्य निरुध्य सस्पृहेण–सतृष्णेन । मधुरेति–मधुरं यथा तथा कूणितः सङ्कुचितः त्रिभागः प्रान्तभागो यस्य तेन । मन्दमन्दप्रचारितेन–ईषदीषद् सञ्चारितेन । चक्षुर्विशेषणान्येतानि । निर्वर्ण्य–दृष्ट्वा । दूरोत्सर्पितेति–दूरमत्यन्तं उत्सर्पितं ऊर्ध्वीकृतं पूर्वकायं देहपूर्वभागो यया सा । सचकितं–सभयम् ।

(८) अजनिष्ट जाता । मे मम प्रमतेरित्यर्थः । रागाविष्टचेतसः–प्रेमपूर्णमानसस्य । किमपि अनिर्वाच्यहेतुका । पुनरिति पुनः पुनरपि अननुकूलः अप्रियो यः स्पर्शस्तेन यद्दुःखं खेदस्तेनायत्तमधीनं गात्रं शरीरं यस्य तादृशः । प्राबुध्ये—

मुझे देखकर लोग क्या कहेंगे इसपर शंका हुई । मुझे देखनेसे उसे जो सात्त्विकभाव उत्पन्न हुआ उस कारण वह अपने अलंकार आदिको यथास्थान स्थित होनेपर भी बीच-बीचमें उन्हें बजाकर सँवारती हुई तथा लज्जा दिखाती हुई और कामके बाणसे पराधीन होकर अनेक रीतिसे अपने विचित्र अनुभावोंको करने लगी । अपने सखीजनों को जगानेवाली उद्यत वाणीको, कामवेगसे परवश चित्तको, भयसे उत्पन्न जो खेद उससे उद्भूत जो पसीनेकी बूँदें उनको और अपने रोमाञ्चोंको दबाती हुई वह बाला दिखाई पड़ी । तृष्णाके साथ अपने नयनोंके तीन भागोंको बन्दकर चौथे भागसे धीरे-धीरे मेरे शरीरको देखकर वह बाला अपनी देहके ऊपरी भागको अत्यन्त दूरकर उसी पलङ्गपर भययुक्त हो सो गयी ।

(८) मेरे (प्रमतिके) अन्तःकरणमें उसका अनुराग प्रविष्ट हो गया । परन्तु मैं कुछ निद्रित हो गया । फिर वही शरीरको कष्टप्रद शयन प्रतीत होने लगा । जब मैं

तलम् , स एव पत्रास्तरो ममाभूत्। विभावरी च व्यभासीत्। अभूच्च मे मनसि किमयं स्वप्नः, किं विप्रलम्भो वा, किमियमासुरी दैवी वा कापि माया। यद्भावि तद्भवतु। नाहमिदं तत्त्वतो नावबुध्य मोक्ष्यामि भूमिशय्याम्। यावदायुरत्रत्यायै देवतायै प्रतिशयितो भवामि' इति निश्चितमतिरतिष्ठम्।

(९) अथाविर्भूय कापि रविकराभितप्तकुवलयदामतान्ताङ्गयष्टिः, क्लिष्टनिवसनोत्तरीया, निरलक्तकरूक्षपाटलेन निःश्वासोष्मजर्जरितत्विषा

जागरितः। सैव पूर्ववदेव। पत्रास्तरः–पर्णशयनम्। निद्रापगमे पूर्ववदेव दशा सञ्जातेति भावः। व्यभासीत्–प्रभाता। अयं–यन्मे महति प्रासादे तादृश्यास्तरुण्या दर्शनं तत्। विप्रलम्भः प्रतारणम्। केनापि वञ्चितोऽहमस्मि किमित्यर्थः। माया–छलना। तत्त्वतो–याथार्थ्येन। न अवबुध्य–अज्ञात्वा। मोक्ष्यामि–त्यक्ष्यामि। यावदायुः–यावज्जीवनम्। अत्रत्यायै अरण्यस्थितायै। देवतां द्रष्टुमित्यर्थः। प्रतिशयितः–यावद्देवतागत्य वृत्तान्तमिमं न प्रकाशयेत्तावदशनादिकं परित्यज्यात्रैव शयिष्ये इति प्रतिज्ञां कृत्वा शयितः। निश्चितमतिः–स्थिरबुद्धिः।

(९) आविर्भूय–सम्मुखमागत्य। कापीत्यादि विशेषणानि सीमन्तिन्याः। रविकरेति–रवेः सूर्यस्य करैः किरणैरभितप्तं सन्तप्तं यत्कुवलयदाम नीलोत्पलमाला तद्वत् तान्ता क्लान्ता अङ्गयष्टिः देहलता यस्याः सा। क्लिष्टे जीर्णे निवसनोत्तरीये परिधेयाच्छादने यस्याः सा। निरलक्तकोलक्तकरागशून्यः अत एव रूक्षः कर्कशः, पाटलः स्वभावरक्तश्च तेन। दन्तच्छदेनेत्यस्य विशेषणम्। निःश्वासोष्मणा तप्तनिःश्वासेन जर्जरिता म्लाना त्विट् कान्तिर्यस्य तेन। दन्तच्छदेन ओष्ठेन। वमन्तीव–

जगा तो अपनेको पुनः उसी अरण्यमें, उसी पेड़के नीचे, उस पत्र-शय्यापर सोया हुआ पाया। रात्रि बीत गयी। मेरे अन्तःकरणमें चिन्ता व्याप्त हुई कि क्या यह स्वप्न था, अथवा मैं प्रतारित किया गया, अथवा दैवी या आसुरी (राक्षसी) माया थी ? जो भी हो, सो हो। जबतक मैं इस रहस्यको न ज्ञात कर लूँगा तबतक इस भूमिपर सोना न छोड़ूँगा। अपने जीवनभर यहीं रहूँगा—अर्थात् जबतक यहाँकी देवी मुझे आकर यह रहस्य न बता देंगी तबतक यह स्थान न छोड़ूँगा। ऐसी दृढमतिकर मैं वहीं अवस्थित रहा।

(९) इतनेमें ही, भगवान् सूर्यकी किरणोंद्वारा परितप्त कमलोंकी मालाके समान क्लान्त और क्षीण देहवाली, एक अङ्गना दिखाई पड़ी। जिसके उत्तरीय वस्त्र जीर्ण (पुराने) थे। जिसके अधर अलक्त रागसे शून्य होनेसे किञ्चित् लाल दीख रहे थे।

दन्तच्छदेन वमन्तीव कपिलधूसधूम्रं विरहानलम्, अनवरतसलिलधाराविसर्जनाद्रुधिरावशेषमिव लोहिततरं द्वितयमक्ष्णोरुद्वहन्ती, कुलचारित्रबन्धनपाशविभ्रमेणैकवेणीभूतेन केशपाशेन नीलांशुकचीरचूलिकापरिवृता पतिव्रतापताकेव सञ्चरन्ती, क्षामक्षामापि देवतानुभावादनतिक्षीणवर्णावकाशा सीमन्तिनी, प्रणिपतन्तं मां प्रहर्षोत्कम्पितेन भुजलताद्वयेनोत्थाप्य पुत्रवत्परिष्वज्य शिरस्युपाघ्राय वात्सल्यमिव स्तनयुगलेन स्तन्यच्छलात्प्रक्षरन्ती, शिशिरेणाश्रुणा निरुद्धकण्ठी स्नेहगद्गदं व्याहार्षीत्—

उद्गिरन्तीव–प्रकटयन्तीवेति यावत् । कपिलः पिङ्गलः यो धूमस्तेन धूम्रमारक्तश्यामं तादृशं विरहानलं विच्छेदाग्निम् । अनवरतं निरन्तरं सलिलधाराया अश्रुधाराया विसर्जनात् त्यागात् निरन्तराश्रुवर्षणेनेत्यर्थः । रुधिरावशेषं शोणितमात्रमिव लोहिततरमतिरक्तमक्ष्णोश्चक्षुषोर्द्वितयं युगलमुद्वहन्ती धारयन्ती, कुलं वंशः चारित्रं पातिव्रत्यं तयोर्बन्धनाय पाशस्य रज्ज्वा इव विभ्रमो विलासो यस्य तेन, एकवेणीभूतेन एकवेण्याकारेण केशपाशेन चिकुरकलापेनोपलक्षिता । नीलं श्यामवर्णं यदंशुकचीरं वस्त्रखण्डं तन्निर्मिता या चूलिका कञ्चूलिका तया परिवृता व्याप्ता । अत एव सञ्चरन्ती भ्रमन्ती पतिव्रतायाः पताका वैजयन्तीव । पातिव्रत्यसूचिकेत्यर्थः । क्षामक्षामा–अतिकृशा । देवतानुभावात्–देवत्वप्रभावात् । अनतिक्षीणः–नातिमलिनो वर्णावकाशो वर्णौज्ज्वल्यं यस्याः सा प्रणिपतन्तं–नमस्कुर्वन्तम् । मां–प्रमतिमित्यर्थः । प्रहर्षोत्कम्पितेन आनन्दातिशयवशाद्वेपथुमता । उपाघ्राय आलिङ्ग्य । वात्सल्यं स्नेहरसम् । स्तन्यच्छलात्–स्तनदुग्धव्याजेन । शिशिरेण–शीतलेन । निरुद्धकण्ठी–स्तब्धकण्ठस्वरा । व्याहार्षीत् अवोचत् ।

गरम निःश्वासोंके पवनसे पीडित ओष्ठ कुछ लाल तथा धूमरङ्गके होकर विच्छेदाग्निको खूब वमन कर रहे थे । जिसके दोनों नेत्र निरन्तर अश्रुधारा बहानेके कारण लाल-लाल वर्णवाले दिखाई पड़ते थे । जो अपने वंशानुरूप चरित्रके सेवनके कारण बन्धन-विभ्रमके एकवेणी व्रतको पालन करती हुई नीले वस्त्र और नीले वस्त्रकी बनी हुई चोलीको धारण किये हुए पतिव्रताकी ध्वजाके सदृश दीख रही थी । जो शरीरसे अत्यन्त दुर्बला होनेपर भी देवताओंके प्रभाव से उज्ज्वल कान्तिवाली महिला दिखलायी पड़ती थी । जब उपर्युक्त लक्षणोंवाली महिला दिखायी पड़ी तो मैंने उसको प्रणाम करना चाहा । मुझे नतमस्तक होते अवलोकन करके उस मान्य महिलाने अत्यन्त हर्षान्वित होकर अपनी काँपती हुई भुजारूपी लताओंसे उठा लिया और पुत्रके तुल्य मेरे शिरको सूंघ करके

(१०) 'वत्स, यदि वः कथितवती मगधराजमहिषी वसुमती मम हस्ते बालमर्थपालं निधाय कथां च काञ्चिदात्मभर्तृपुत्रसखीजनानुबद्धां राजराजप्रवर्तितां कृत्वान्तर्धानमगादात्मजा मणिभद्रस्येति', साहमस्मि वो जननी। पितुर्वो धर्मपालसूनोः सुमन्त्रानुजस्य कामपालस्य पादमूलान्निष्कारणकोपकलुषिताशया प्रोष्यानुशयविधुरा स्वप्ने केनापि रक्षोरूपेणोपेत्य शप्तास्मि—'चण्डिकायां त्वयि वर्षमात्रं वसामि प्रवासदुःखाय' इति ब्रुवतैवाहमाविष्टा प्राबुध्ये। गतं च तद्वर्षं वर्षसहस्रदीर्घम्।

(१०) वः-युष्मभ्यं युष्माकं सकाशे इत्यर्थः। मम-वसुमत्याः। बालं शिशुम्। निधाय-समर्प्य। कथां-वृत्तान्तम्। आत्मनः स्वस्य तारावल्या इत्यर्थः, भर्तुः स्वामिनः, पुत्रस्य तनयस्य, सखीजनस्य सुहृद्वर्गस्यानुबद्धां सम्बन्धिनीम्। राजराजप्रवर्तितां-कुबेरप्रोक्ताम्। कृत्वा कथयित्वा। अन्तर्धानं-तिरोधानम्, अगात्-जगाम। आत्मजा कन्या तारावलीति यावत्। सा वसुमतीकथिता तारावली। वो युष्माकम्। जननी-मातृस्थानीया-पितृव्यपत्नीत्वात्। पादमूलात्-चरणाश्रयात्। निष्कारणेति-निष्कारणेन सपत्नीर्ष्यावशादनर्थकेन कोपेन कलुषितः मलिन आशयश्चित्ताभिप्रायो यस्याः सा। प्रोष्य प्रवासं गत्वा। अनुशयविधुरा-पश्चात्तापक्लिष्टा। रक्षोरूपेण-राक्षसमूर्त्या। चण्डिकायां-अतिकोपनायाम्। वर्षमात्रं-संवत्सरमेकम्। वसामि-अधितिष्ठामि। प्रवासदुःखोत्पादनार्थम्। ब्रुवता-कथयता। आविष्टा तेन कृतावेशा। प्राबुध्ये-जागरिताऽभवम्। गतं व्यतीतम्। वर्षसहस्रदीर्घं-अतिमहत्।

आलिङ्गनादि किया। वात्सल्य-प्रीतिके कारण अपने स्तनोंसे दूधको टपकाती हुई तथा आँखोंसे आंसू बहाती हुई निरुद्ध कण्ठवाली वह महिला मुझसे कहने लगी।

(१०) हे वत्स! जो वार्त्ता आप लोगोंसे मगधराज राजहंसकी देवी वसुमतीने कही थी कि एक अंगना इस शिशुको निद्रावस्थामें मेरी गोदमें धर कर बोली—राजराज कुबेरकी आज्ञासे राजवाहनकी सेवाके लिये मैं इस शिशुको आपको दे रही हूँ तथा अपनी सखी आदि परिजनोंकी कथा आदि कह करके जो तिरोहित हो गयी थी। वही मणिभद्र नामक यक्षकी कन्या तारावली मैं आपकी माँ हूँ। धर्मपालके लड़के और सुमन्त्रके छोटे भाई कामपाल जो आपके जनक (पिता) हैं उनपर मैंने अकारण ही क्रोध किया था और क्रोधके कारण मैं मलिन हृदय हो कर उन्हें छोड़कर प्रवासमें चली गयी थी। तदनन्तर पश्चात्ताप करती हुई वियोगिनीकी दशामें मैं एक रात्रिमें स्वप्नगता थी कि किसी राक्षसरूपकी एक प्रतिकृतिने मुझे शाप दे दिया—'प्रवासमें (परदेशमें) दुःख देनेके लिये मैं तेरे शरीरमें एक बरसतक निवास करूँगी।' ऐसा

(११) अतीतायां तु यामिन्यां देवदेवस्य त्र्यम्बकस्य श्रावस्त्यामुत्सवसमाजमनुभूय बन्धुजनं च स्थानस्थानेभ्यः सन्निपातितमभिसमीक्ष्य मुक्तशापा पत्युः पार्श्वमभिसरामीति प्रस्थितायामेव मयि, त्वमत्राभ्युपेत्य 'प्रतिपन्नोऽस्मि शरणमिहत्यां देवताम्' इति प्रसुप्तोऽसि । एवं शापदुःखाविष्टया तु मया तदा न तत्त्वतः परिच्छिन्नो भवान् अपि तु शरणागतमविरलप्रमादायामस्यां महाटव्यामयुक्तं परित्यज्य गन्तुमिति मया त्वमपि स्वपन्नेवासि नीतः । प्रत्यासन्ने च तस्मिन्देवगृहे पुनरचिन्तयम्—'कथमिह तरुणेनानेन सह समाजं गमिष्यामि' इति ।

(११) अतीतायां यामिन्यां—पूर्वदिवसीयरात्रौ । श्रावस्त्यां तदाख्यनगर्याम् । उत्सवसमाजं—उत्सवगोष्ठीम् । अनुभूय—उपभुज्य । बन्धुजनं—मदीयसुहृद्वर्गम् । स्थानस्थानेभ्यः—विभिन्नप्रदेशेभ्यः । संनिपातितं समागतम् । अभिसमीक्ष्य दृष्ट्वा । मुक्तशापा-विगतशापा । पत्युः—कामपालस्य । अभिसरामि गच्छामि । प्रस्थितायां चलितायाम् । त्वं—प्रमतिः । अत्राटव्याम् । शापदुःखेन आविष्टया—विह्वलया । तदा तस्मिन् काले तत्त्वतो याथार्थ्येन भवांस्त्वं न परिच्छिन्नः ज्ञातः । अपितु—किन्तु । शरणागतं शरणापन्नं त्वामिति शेषः अविरलप्रमादायां—निरन्तरविपत्सङ्कुलायाम् । अयुक्तमनुचितम् । स्वपन् निद्राण एव मयानीतोऽसीत्यन्वयः । प्रत्यासन्ने—समीपवर्त्तिनि । तस्मिन् पूर्वोक्ते । देवगृहे देवमन्दिरे । तरुणेन युवकेन । समाजमुत्सवसभाम् ।

कहकर उस प्रतिकृतिने मेरे शरीरमें प्रवेश कर लिया और उससे आविष्ट एक वर्षको मैंने एक हजार बरसोंके समान व्यतीत किया ।

(११) गत रात्रिमें श्रावस्ती नामक नगरीमें देवदेव त्र्यम्बक महादेवजीके मन्दिरमें महोत्सव हो रहा था । वहांपर उत्सवको देखने विभिन्न प्रदेशोंसे आये हुए बन्धुवर्गोंके समुदायको ज्ञात करके मैं भी शापरहित होकर पतिदेव कामपालके समीप जानेकी इच्छा कर रही थी । इतनेमें ही आपने (प्रमतिने) इस वनमें आकर यहांकी निवासिनी देवीके प्रति शरणार्थी होनेकी प्रार्थना की और प्रार्थनानन्तर आप सो भी गये । यद्यपि शापके दुःखोंसे विह्वला मैं आपको ठीक-ठीक पहिचान तो न सकी किन्तु शरणार्थीजनको भयावने जङ्गलमें अकेले छोड़ कर जाना मैंने अयुक्त समझा । अतः मैं आपको निद्रावस्थामें ही उठा कर यहांसे ले गयी । उन त्र्यम्बक भगवान्के मन्दिरके पास जाकर सोचने लगी । मैं इस युवकके साथ इस उत्सवगोष्ठीमें कैसे जाऊँगी ।'

(१२) अथ राज्ञः श्रावस्तीश्वरस्य यथार्थनाम्नो धर्मवर्धनस्य कन्यां नवमालिकां घर्मकालसुभगे कन्यापुरविमानहर्म्यतले विशालकोमलतलं शय्यातलमधिशयानां यदृच्छयोपलभ्य 'दिष्ट्येयं सुप्ता, परिजनश्च गाढनिद्रः। शेतामयमत्र मुहूर्तमात्रं ब्राह्मणकुमारो यावत्कृतकृत्या निवर्तेय' इति त्वां तत्र शाययित्वा तमुद्देशमगमम् । दृष्ट्वा चोत्सवश्रियम्, निविश्य च स्वजनदर्शनसुखमभिवाद्य च त्रिभुवनेश्वरमात्मालीकप्रत्याकलनोपारूढसाध्वसं च नमस्कृत्य भक्तिप्रणतहृदया भगवतीमम्बिकाम् , तया गिरिदुहित्रा देव्या सस्मितम् 'अयि भद्रे, मा भैषीः। भवेदानीं भर्तृपार्श्वगामिनी। गतस्ते शापः' इत्यनुगृहीता सद्य एव प्रत्यापन्नमहिमा प्रतिनिवृत्त्य

(१२) यथार्थनाम्नः-सार्थकनामवतः । घर्मकालसुभगे-ग्रीष्मसमयमनोरमे। कन्यापुरे यद् विमानं सप्ततलगृहं तस्य हर्म्यतले कुट्टिमे। यदृच्छया-दैवयोगेन। उपलभ्य प्राप्य। दिष्ट्या भाग्येन। इयं नवमालिका। परिजनः सहचरीवर्गः। गाढा सान्द्रा निद्रा यस्य सः। शेतां शयनं करोतु। शयनार्थकशीधातोर्लोटि रूपम्। अयं तरुणः प्रमतिरिति यावत्। कृतकृत्या-सम्पादितस्वकार्या अहमिति शेषः। तत्र कन्यान्तःपुरे। तमुद्देशं उत्सवसमाजम्। निविश्य-उपभुज्य। अभिवाद्य प्रणम्य। आत्मेति आत्मनः स्वस्यालीकमपराधः तस्य प्रत्याकलनेन ज्ञानेनोपारूढं सञ्जातं साध्वसं लज्जा यस्मिंस्तद्यथा तथा। भक्त्या प्रणतं नम्रं हृदयं यस्याः सा अहमिति शेषः। गिरिदुहित्रा-हिमालयकन्यया। अनुगृहीतेति क्रियायाः कर्तृपदमेतत्। सद्यस्तत्क्षणम्। प्रत्यापन्नमहिमा-पुनः प्राप्तदैवप्रभावा। यथावत्-तत्त्वतः।

(१२) तदनन्तर दैवयोगसे मैंने श्रावस्ती नगरीके राजा यथार्थनामा महाराज धर्मवर्धनकी पुत्री नवमालिकाको देखा। जो नवमालिका ग्रीष्मकालके लिये सुखदायी राजभवनमें बड़ी भारी चारपायीपर प्रगाढ़ निद्रामें सो रही थी। भाग्यवशात् यह भी सोयी हुई है और यह परिजन भी गाढ़ी नींदमें सोये हुए हैं। ऐसा विचार कर मैंने आपको तबतकके लिये वहीं सुला दिया। जबतक मैं लौट न आऊँ। अर्थात्—मैंने सोचा—यह ब्राह्मणका बालक मुहूर्त्तमात्र यहांपर सोवे और तबतक मैं दर्शनादिसे कृतकृत्य होकर लौटती हूँ।' ऐसी व्यवस्था करके-आपको सुलाकर—मैं उस मन्दिरमें गयी। वहां महोत्सवकी शोभा देखी और अपने परिजनोंके दर्शन-सुखका अनुभव प्राप्त किया। अकारण ही आत्मकृत अपराधके स्मरण होनेसे उत्पन्न लज्जाके वश होकर मैंने तीनों लोकोंके स्वामी शिवको प्रणाम किया। फिर भक्तिसे प्रणतहृदय होकर मैंने भगवती अम्बिकाको प्रणाम किया। ततः वे गिरिनन्दिनी देवी हँस कर बोलीं—'हे सौम्ये!

दृष्ट्वैव त्वां यथावदभ्यजानाम्—'कथं मत्सुत एवायं वत्सस्यार्थपालस्य प्राणभूतः सखा प्रमतिरिति पापया मयास्मिन्नज्ञानादौदासीन्यमाचरितम् । अपि चायमस्यामासक्तभावः । कन्या चैनं कामयते युवानम् । उभौ चेमौ लक्षसुप्तौ त्रपया साध्वसेन वान्योन्यमात्मानं न विवृण्वाते । गन्तव्यं च मया । कामाघ्रातयाप्यनया कन्यया रहस्यरक्षणाय न समाभाषितः सखीजनः परिजनो वा । नयामि तावत्कुमारम् । पुनरपीममर्थं लब्धलक्षो यथोपपन्नैरुपायैः साधयिष्यति' इति मत्प्रभावप्रस्वापितं भवन्तमेतदेव पत्रशयनं प्रत्यनैषम् ।

(१३) एवमिदं वृत्तम् । 'एषा चाहं पितुस्ते पादमूलं प्रत्युपसर्पेयम्'

अभ्यजानाम्–ज्ञातवती । औदासीन्यं–उचितयत्नाभावः । अयं प्रमतिः । अस्यां नवमालिकायाम् । आसक्तभावः–अनुरक्तचित्तः । लक्षसुप्तौ–कपटनिद्रितौ । त्रपया–लज्जया । साध्वसेन भयेन । विवृण्वाते प्रकाशयतः । कामाघ्रातया–मदनस्पृष्टया । रहस्यरक्षणाय–गोप्यसंवरणार्थम् । समाभाषितः कथितः । नयामि–इतोऽन्यत्र प्रापयामि । कुमारं–प्रमतिम् । इममर्थम्–नवमालिकाप्राप्तिरूपम् । लब्धलक्षः–प्राप्तावसरः । यथोपपन्नैः–युक्तियुक्तैः । मत्प्रभावप्रस्वापितं–मन्मायया निद्रापितम् । भवन्तं त्वाम् । अनैषम्–नीतवती ।

(१३) एवम्–एतावत् । पितुः–पितृव्यस्य पित्रा तुल्यत्वात् कामपालस्ये-

मत डरो, अब अपने पतिके समीप जाओ । तुम्हारा शाप नष्ट हो गया ।' अम्बिकाके इस प्रसादसे तत्क्षण ही मुझे सभी बातोंका ज्ञान ठीक-ठीक होने लगा । 'अरे ! पापात्मा होनेके कारण पूर्वमें मैंने अपनी अज्ञतावश इसे नहीं पहिचाना और उदासीनता दिखायी । यह तो मेरे लड़के अर्थपालका प्राणके समान सखा प्रमति है । तथा यह प्रमति इस कन्यापर आसक्त है और यह कन्या नवमालिका भी इसे चाहती है । ये दोनों कपटनिद्रामें सो रहे हैं । लज्जा और भयसे अपने-अपने अभिप्रायोंको प्रकाशित नहीं कर रहे हैं । मुझे जाना भी है । यद्यपि यह राजकन्या नवमालिका भी कामपीडिता हो गयी है, परन्तु रहस्य प्रकट न हो जाय इसी कारण सखी आदि परिजनोंसे प्रकाशित नहीं कर रही है । अब मैं राजकुमार प्रमतिको ले जाती हूँ । फिरसे इस अर्थकी सिद्धिके लिये अर्थात् नवमालिकाको प्राप्त करनेके लिये यह राजकुमार उचित उपायोंकी युक्तियोंसे इस कुमारीको प्राप्त कर लेगा । बस, इस रीतिसे मैंने अपने प्रभावसे आपको सुला करके (निद्रित करके) पुनः इस अरण्यकी पत्र-शय्यापर ला दिया ।

(१३) इसी प्रकार यह वृत्त जानिये । अब मैं आपके पिता कामपालके चरणोंके

इति प्राञ्जलिं मां भूयोभूयः परिष्वज्य शिरस्युपाघ्राय कपोलयोश्चुम्बित्वा स्नेहविह्वला गतासीत्। अहं च पञ्चबाणवश्यः श्रावस्तीमभ्यवर्तिषि।

(१४) मार्गे च महति निगमे नैगमानां ताम्रचूडयुद्धकोलाहलो महानासीत्। अहं च तत्र सन्निहितः किञ्चिदस्मेषि। सन्निधिनिषण्णस्तु मे वृद्धविटः कोऽपि ब्राह्मणः शनकैः स्मितहेतुमपृच्छत्। अब्रवं च—'कथमिव नारिकेलजातेः प्राच्यवाटकुक्कुटस्य प्रतीच्यवाटः पुरुषैरसमीक्ष्य बलाकाजातिस्ताम्रचूडो बलप्रमाणाधिकस्यैव प्रतिविसृष्टः' इति। सोऽपि

स्यर्थः। उपसर्पेयं गच्छेयम्। प्राञ्जलिं-प्रणतम्। कपोलयोर्गण्डयोः। स्नेहविह्वला-वात्सल्यरसाविष्टा। पञ्चबाणवश्यः कामपरतन्त्रः। अभ्यवर्तिषि-तदभिमुखमगच्छम्।

(१४) मार्गे-श्रावस्त्याः पथि। निगमे वणिजां ग्रामे। निगमो विषये वेदे पुरे पथि वणिक्पथे इति कोशः। नैगमानां वणिजाम्। नैगमो वणिजो वणिक् इत्यमरः। ताम्रेति-ताम्रचूडानां कुक्कुटानां युद्धेन कोलाहलः कलरवः। सन्निहितः समीपवर्त्ती सन्। किञ्चिदीषत्। अस्मेषि स्मितमकरवम्। सन्निधिनिषण्णः समीपोपविष्टः। वृद्धविटः-स्थविरधूर्त्तः। शनकैः मन्दं मन्दम्। स्मितहेतुं हासकारणम्। अब्रवमहमिति शेषः। नारिकेलजातेः-नारिकेलजातीयस्य। प्राच्यवाटकुक्कुटस्य पूर्वदेशीयकुक्कुटस्य। प्रतीच्यवाटः-पश्चिमदेशीयः। असमीक्ष्य-अविचार्य। बलाकाजातिः-बलाकाजातीयः। बलप्रमाणाधिकस्य बलेन शक्त्या प्रमाणेनाकारेण चाधिकस्य महतः। एवमनेन प्रकारेण। प्रतिविसृष्टः-युद्धार्थं प्रहितः। सोऽपि-वृद्ध

समीप जा रही हूँ। ऐसा कह कर उस महिलाने मुझे बेर-बेर आलिङ्गित किया। फिर मेरे शिरको सूँघकर तथा गालोंको भी चूमा एवं स्नेहसे विह्वल होकर मुझसे बिदा ले ली। मैं भी कामपीड़ित हो गया था। अतः उस कुमारी नवमालिकाकी प्राप्तिके लिये श्रावस्तीकी ओर चल पड़ा।

(१४) श्रावस्ती नगरीके मार्गमें एक जगह वणिकोंकी एक विशाल बस्ती थी। वहांपर वे सब एकत्र होकर कुक्कुटोंका (मुर्गोंका) युद्ध करा रहे थे। जिस कारण अत्यन्त कलरव मचा हुआ था। मैं भी वहां गया और उस युद्धको देखकर कुछ मुसकुराने लगा। मेरे समीप बैठे हुए एक वृद्ध धूर्त्तने हँसनेका कारण धीरेसे पूछा। मैंने उत्तर दिया कि पूर्वदेशीय नारिकेल जातिके कुक्कुटके साथ पश्चिमदेशीय बलाका जातिके कुक्कुटका युद्ध कराना पुरुषोंकी अज्ञतामात्र है। क्योंकि इस पश्चिमदेशीय कुक्कुटको पूर्वोकी अपेक्षा बल अधिक होता है और आकार भी इसका बड़ा होता है

तज्ज्ञः 'किमज्ञैरेभिर्व्युत्पादितैः । तूष्णीमास्व' इत्युपहस्तिकायास्ताम्बूलं कर्पूरसहितमुद्धृत्य मह्यं दत्त्वा चित्राः कथाः कथयन्क्षणमतिष्ठत् । प्रायुध्यत चातिसंरब्धमनुप्रहारप्रवृत्तस्वपक्षमुक्तकण्ठीरवरवं विहङ्गमद्वयम् । जितश्चासौ प्रतीच्यवाटकुक्कुटः ।

(१५) सोऽपि विटः स्ववाटकुक्कुटविजयहृष्टः, मयि वयोविरुद्धं सख्यमुपेत्य तदहरेव स्वगृहे स्नानभोजनादि कारयित्वोत्तरेद्युः श्रावस्तीं प्रति यान्तं मामनुगम्य 'स्मर्तव्योऽस्मि सत्यर्थे' इति मित्रवद्विसृज्य

विटोऽपि । तज्ज्ञः–कुक्कुटविशेषज्ञः । किम्–किम्प्रयोजनम् । अज्ञैर्मूर्खैः । एभिः–पुरुषैः । व्युत्पादितैर्विज्ञापितैः । तूष्णीम् आस्स्व–मौनमवलम्ब्य तिष्ठ । एते खलु पुरुषाः कुक्कुटानां जातिविभागं न जानन्ति–अत एतेषु तज्ज्ञापनेन किमपि फलं न भविष्यतीति भावः । उपहस्तिकायाः ताम्बूलाधारचर्मपेटिकायाः अत्र पञ्चमी विभक्तिः । उद्धृत्य निष्कास्य । चित्रा नानाविधाः । प्रायुध्यत योद्धुमारभत । अतिसंरब्धं अतिक्रुद्धम् । अनुप्रहारेति–अनुप्रहारे प्रतिप्रहारे प्रवृत्ताभ्यामुद्यताभ्यां स्वपक्षाभ्यां निजपतत्राभ्यां मुक्तो विसृष्टः कृत इति शेषः, कण्ठीरवस्य सिंहस्येव रवो नादो येन तदिदं विशेषणद्वयं विहङ्गमद्वयमित्यस्य । जितः पराजितः ।

(१५) स्ववाटकुक्कुटस्य स्वदेशीयकुक्कुटस्य प्राच्यवाटस्येत्यर्थः विजयेन हृष्टः सन्तुष्टः । मयि–प्रमतौ । वयोविरुद्धं–वयसोऽननुरूपम् । अवस्थाविसदृशमिति यावत् । तुल्यबलवित्तयोर्मैत्री प्रसिद्धा । सख्यं मैत्रीम् । उपेत्य–प्राप्य । तदहः–तस्मिन्नेव दिने । स्वगृहे–वृद्धस्य गृहे । उत्तरेद्युः परदिने । यान्तं गच्छन्तम् ।

तथा इसकी शिखा लाल होती है । वह वृद्ध भी उस कुक्कुट युद्धक्रियाको जानता था । अतः उसने कहा–मौन रहिये । क्योंकि इन मूर्खोंसे विवाद करना व्यर्थ होगा । ततः उसने अपने पानके डब्बेसे कर्पूरवासनायुक्त पान निकालकर दिये और अनेक विचित्र वार्त्ताएँ करता हुआ वह समय व्यतीत किया । परस्पर युद्ध करते हुए वे दोनों मुर्गे भी क्रोधमें आकर अपनी चोंचोंसे तीक्ष्ण-तीक्ष्ण पञ्जोंसे लड़े । शेरकी ध्वनिको मानो अपनी ध्वनिसे मात कर देंगे इस तरहसे पंख फैलाकर वे लड़े । अन्ततोगत्वा पश्चिमदेशीय मुर्गेने हार खायी ।

(१५) वह वृद्ध धूर्त्त भी अपने पक्षवाले मुर्गेकी विजय होनेपर आनन्दित हुआ । फिर उस वृद्धने मेरे साथ अवस्था अनुकूल न होनेपर भी मित्रता कर ली [मित्रता बराबरीवाले की ही हुआ करती है] और उसने उसी दिन अपने गृहपर ले जाकर मेरा सत्कार किया तथा मुझे भोजन कराया । दूसरे दिन जब मैं श्रावस्तीपुरी जाने

प्रत्ययासीत्। अहं च गत्वा श्रावस्तीमध्वश्रान्तो बाह्योद्याने लतामण्डले शयितोऽस्मि। हंसरवप्रबोधितश्चोत्थाय कामपि क्वणितनूपुरमुखराभ्यां चरणाभ्यां मदन्तिकमुपसरन्तीं युवतीमद्राक्षम्।

(१६) सा त्वागत्य स्वहस्तवर्तिनि चित्रपटे लिखितं मत्सदृशं कमपि पुंरूपं मां च पर्यायेण निर्वर्णयन्ती सविस्मयं सवितर्कं सहर्षं च क्षणमवातिष्ठत। मयापि तत्र चित्रपटे मत्सादृश्यं पश्यता तद्दृष्टिचेष्टितमनाकस्मिकं मन्यमानेन 'ननु सर्वसाधारणोऽयं रमणीयः पुण्यारामभूमिभागः।

अर्थे प्रयोजने सति। मित्रवद् सुहृदमिव। विसृज्य—मां परित्यज्य। प्रत्ययासीत् प्रतिगतवान्। अहं प्रमतिः। हंसरवप्रबोधितः हंसध्वनिजागरितः। नूपुरध्वनेर्हंसरवतुल्यत्वादित्यर्थः। क्वणितेति—शब्दायमानमञ्जीरवाचालाभ्याम्। मदन्तिकं मम समीपम्। उपसरन्तीमागच्छन्तीम्।

(१६) सा युवती। स्वहस्तवर्त्तिनि-निजकरस्थिते। लिखितं चित्रितम्। मत्सदृशं मदाकारम्। पुंरूपं पुरुषस्वरूपम्। पर्यायेण क्रमेण—प्राक् चित्रस्थं पुरुषं दृष्ट्वा परतश्च मां पश्यतीत्यर्थः। निर्वर्णयन्ती साभिनिवेशं पश्यन्ती। सविस्मयं-कथमस्य चित्रस्थस्य च तुल्येवाकृतिरिति साश्चर्यम्। सवितर्कं—कथमेतादृशस्य तरुणस्य कन्यान्तःपुरे प्रवेश इति तर्कसहितम्। सहर्षं सख्या मनोरथप्राप्तिरचिराद्भविष्यतीति सानन्दम्। तद्दृष्टिचेष्टितं—तस्याः समागताया युवत्याः दृष्टिचेष्टितं मम चित्रपटस्य च दर्शनरूपमवलोकनव्यापारम्। अनाकस्मिकं—न निष्कारणम्। सर्वसाधारणः सर्वेषां समानोपभोग्यः। पुण्यारामभूमिभागः पवित्रोद्यान-

---

लगा तो वह मुझे कुछ दूरतक मित्रके समान पहुँचाने आया और बोला कि जब कार्य पड़े तब मुझे स्मरण कीजियेगा। इस तरीकेसे भले मित्रके समान मेरे साथ व्यवहार करके वह लौट गया। मैं श्रावस्ती नगरीमें पहुँचा और पहुँचनेके पश्चात् मार्गके परिश्रमसे थककर बाहर ही एक बगीचेमें लतामण्डपके नीचे सो गया। हंस की ध्वनिके समान ध्वनि सुनकर मैं कुछ देरमें उठ बैठा। उठकर देखा कि एक युवती अपने चरणोंके भूषित नूपुरको बजाती हुई मेरे समीप आ रही है।

(१६) वह तरुणी अपने हाथमें लिये हुए एक चित्रपटसे मेरी आकृतिको मिलाती हुई और मुझे अपने समीप पा करके मेरे समीप आकर विस्मययुक्त विचार करती हुई कुछ क्षणके लिए हर्षान्वित होकर खड़ी गयी। मैंने भी उस चित्रपटमें अपने सादृश्य चित्र (फोटो) को देखा। और उस तरुणीकी तत्काल चेष्टनक्रिया भी देखना आवश्यक समझा। तत्पश्चात् मैंने उस बालासे कहा—'हे बाले! यह पवित्र भूमिभाग अति-

किमिति चिरस्थितिक्लेशोऽनुभूयते। ननूपवेष्टव्यम्' इत्यभिहिता सा सस्मितम् 'अनुगृहीतास्मि' इति न्यषीदत्। संकथा च देशवार्तानुविद्धा काचनावयोरभूत्। कथासंश्रिता च सा 'देशातिथिरसि। दृश्यन्ते च तेऽध्वश्रान्तानीव गात्राणि। यदि न दोषो मद्गृहेऽद्य विश्रमितुमनुग्रहः क्रियताम्' इत्यशंसत्।

(१७) अहं च 'अयि मुग्धे, नैष दोषः, गुण एव' इति तदनुमार्गगामी तद्गृहगतो राजार्हेण स्नानभोजनादिनोपचरितः, सुखं निषण्णो रहसि पर्यपृच्छ्ये-'महाभाग, दिगन्तराणि भ्रमता कच्चिदस्ति किञ्चिदद्भुतं भवतोपलब्धम्' इति। ममाभवन्मनसि 'महदिदमाशास्पदम्। एषा खलु निखि-

प्रदेशः। किमिति-किमर्थं चिरस्थितिक्लेशः-दीर्घकालावस्थानायासः। अनुभूयते त्वयेति शेषः। सा युवती। न्यषीदत्-उपाविशत्। संकथा-आलापः। देशवार्त्तानुविद्धा-देशवृत्तान्तसम्बन्धिनी। आवयोः तस्या मम च। कथासंश्रिता-आलापनिविष्टा। सा युवती अशंसदित्यनेनान्वयः। देशातिथिः-अस्मद्देशे आगतोऽसि त्वमतोऽस्माकमतिथिरसि। अध्वश्रान्तानि-मार्गलङ्घनक्लान्तानि विश्रमितुमवस्थातुम्।

(१७) अहं प्रमतिरित्यर्थः। एषः-त्वद्गृहे ममावस्थानम्। गुणः अनुकूलः तदनुमार्गेति-तस्या युवत्याः पश्चाद् गच्छन्। राजार्हेण राजोचितेन। उपचरितः-सम्यक् सत्कृतः। पर्यपृच्छ्ये-परिपृष्टोऽहं तयेति शेषः। दिगन्तराणि-नानादेशान्। कच्चिदिति प्रश्नार्थकमव्ययम्। उपलब्धं-दृष्टं ज्ञातं वा। मम मनसि अभवत्-अहमित्थमचिन्तयम्। आशास्पदं-आशाजनकम्। एषा युवती। निखिलेति-

नयनाभिराम तथा रमणीय है और सभीके विश्रान्ति योग्य है अतः आप खड़े होनेके कष्टको क्यों सहती हैं—यहां बैठ जाइये।' मेरे ऐसे कथनपर उसने हँसीके साथ उत्तर दिया—'मैं आपकी अनुगृहीत हूँ' और वह बैठ गयी। हम दोनोंमें देश-देशान्तरोंकी तथा देवताओंकी कथा-वार्ताएं होने लगीं। फिर उस तरुणीने मुझसे कहा—'आप इस देशके अतिथिरूपमें हैं। अतः यदि आपको कोई आपत्ति न होवे तो आप मेरे गृहपर चलकर विश्राम करनेकी कृपा करें क्योंकि आपका शरीर मार्गश्रमसे परिव्याप्त दीख रहा है।

(१७) मैंने उत्तर दिया—'अयि मुग्धे! आपके यहाँ चलनेमें मुझे कोई आपत्ति नहीं दीखती अपितु, सुख ही मालूम होता है। पश्चात् मैं उसके मार्गका अनुसरण करता हुआ उस बालाके गृहपर आ पहुँचा। उस बालाने अपने घरपर मेरा राज्योचित स्वागत किया और स्नान भोजन आदिका सुन्दरतासे प्रबन्ध कराया। फिर आनन्दमें उसने मुझसे एकान्तमें पूछा—'हे महाभाग! देश-देशान्तरोंमें पर्यटन करते हुए आपने

लपरिजनसम्बाधसंलक्षितायाः सखी राजदारिकायाः। चित्रपटे चास्मिन्नपि तदुपरि विरचितसितवितानं हर्म्यतलम्, तद्गतं च प्रकामविस्तीर्णं शरदभ्रपटलपाण्डुरं शयनम्, तदधिशायिनी च निद्रालीढलोचना ममैवेयं प्रतिकृतिः।

(१८) अतो नूनमनङ्गेन सापि राजकन्या तावतीं भूमिमारोपिता। यस्यामसह्यमदनज्वरव्यथितोन्मादिता सती सखीनिर्बन्धपृष्टविक्रियानिमित्तचातुर्येणैतद्रूपनिर्माणेनैव समर्थमुत्तरं दत्तवती। रूपसंवादाच्च संशया-

निखिलपरिजनानां सुप्तानां सम्बाधे सङ्घमध्ये संलक्षिताया मया दृष्टायाः। राजदारिकायाः राजकन्यायाः। तत् पूर्वदृष्टम्। उपरीति–उपरि ऊर्ध्वदेशे विरचितं निर्मितं सितवितानं शुभ्रोल्लोचो यस्मिन् तादृशं हर्म्यतलम्। तद्गतं हर्म्यतलस्थितम्। प्रकामविस्तीर्णं–दीर्घविस्तारम्। शरदिति शारदमेघधवलम्। तस्मिन् शयने अधिशेते इति तदधिशायिनी। निद्रालीढलोचना–निद्रामुद्रितनयना। प्रतिकृतिः प्रतिमूर्त्तिः।

(१८) नूनं निश्चितम्। तावतीं–तथाविधमदनपारवश्यरूपाम्। भूमिं अवस्थाम्। आरोपिता·नीता। यस्यां भूमौ–अवस्थायामिति यावत्। असह्येति–असह्येन सोढुमशक्येन मदनज्वरेण कामजनितसन्तापेन व्यथिता पीडिता तथा उन्मादिता उन्मत्तीकृता सती। सखीभिः सहचरीभिः निर्बन्धेनाग्रहातिशय्येन पृष्टमनुयुक्तं विक्रियानिमित्तं विकारकारणं यस्याः सा। चातुर्येण कौशलेन। एतस्य रूपस्य मत्प्रतिकृतेर्निर्माणेन रचनेन। समर्थं योग्यम्। मद्दर्शनमेव तस्या विकारकारणमा-

कौन-सी आश्चर्यकारिणी वस्तु देखी ?' यह श्रवण करके मेरे मनमें अति विस्तीर्ण आशा बँधी कि यह बाला उन्हीं महिलाओंमेंसे एक है जिन्हें मैंने उस राजकुमारीके राजप्रासादमें (स्वप्नमें) देखा था। इस चित्रपटमें भी उसी राजकुमारीकी प्रतिकृति मेरे साथ स्वच्छ बिछौनेके ऊपर पड़ी हुई उस विस्तीर्ण पलंगपर दिखायी गयी है। जो शरत्कालिक स्वच्छ मेघके समान सफेद और कोमल पलंग उस विशाल राजभवनके विस्तीर्ण छतपर पड़ा हुआ दीख रहा है जिसपर प्रगाढ़ निद्रामें राजकुमारी सोयी हुई है।

(१८) अत एव यह स्पष्ट प्रतीत हो रहा है कि वह राजकुमारी भी कामदेवके द्वारा कामपीडित अवस्थाको प्राप्त हो गयी है। उसकी असह्य कामपीड़ाको जानकर सहचरियोंने अतिशय आग्रहपूर्वक चतुरतासे उस राजकुमारीसे सब वृत्तान्त ज्ञात किया है और उसी कुमारीके कथनानुसार उसकी सखियोंने अपने कौशलसे यह चित्रपट तैयार किया है जिससे उसका मन बहले। इसी हेतुसे वे सखियाँ उस पुरुषके भी

दनया पृष्टो भिन्द्यामस्याः संशयं यथानुभवकथनेन' इति जातनिश्चयोऽब्रवम्—'भद्रे, देहि चित्रपटम्' इति । सा त्वर्पितवती मद्धस्ते । पुनस्तमादाय तामपि व्याजसुप्तामुल्लसन्मदनरागविह्वलां वल्लभामेकत्रैवाभिलिख्य 'काचिदेवम्भूता युवतिरीदृशस्य पुंसः पार्श्वशायिन्यरण्यानीप्रसुप्तेन मयोपलब्धा । किलैष स्वप्नः' इत्यालपं च ।

(१९) हृष्टया तु तया विस्तरतः पृष्टः सर्वमेव वृत्तान्तमकथयम् । असौ च सख्या मन्निमित्तान्यवस्थान्तराण्यवर्णयत् । तदाकर्ण्य च यदि तत्र सख्या मदनुग्रहोन्मुखं मानसम् । गमय कानिचिदहानि । कमपि कन्यापुरे निराशङ्कनिवासकरणमुपायमाचय्यागमिष्यामि' इति कथञ्चि-

---

सीदिति भावः । रूपसंवादात्—आकारसादृश्यात् । संशयात् सन्देहमाश्रित्य । अनया युवत्या । भिन्द्यां निरस्येयम् । यथानुभवकथनेन—यथादृष्टस्य प्रकाशनेन । तं चित्रपटम् आदाय गृहीत्वाऽहमिति शेषः । तां राजकन्याम् । व्याजसुप्तां कपटनिद्रिताम् । उल्लसदिति—उल्लसता वृद्धिं गच्छता मदनरागेण विह्वलां व्याकुलाम् । वल्लभां प्रियाम् । एकत्र चित्रपटस्यैकस्मिन् स्थाने । अभिलिख्य चित्रयित्वा । एवंभूता एतादृशी । ईदृशस्य चित्रितानुरूपस्य । अरण्यानीप्रसुप्तेन महाटव्यां निद्रितेन । उपलब्धा दृष्टा ज्ञाता वा । किलैष स्वप्नः—परं तु एष स्वप्न एव भवितुमर्हतीत्यर्थः ।

(१९) तया युवत्या । विस्तरतः विस्तारेण कथयितुम् । असौ युवतिः । सख्याः राजकन्यायाः । मन्निमित्तानि—मद्दर्शनजनितानि । अवर्णयत् अकथयत् । मदनुग्रहोन्मुखं मयि अनुग्रहं कर्तुमुत्कण्ठितम् । गमय यापय । कानिचित् कियन्ति । अहानि दिनानि । निराशङ्केति—निराशङ्कं निर्भयं निवासस्यावस्थानस्य

अन्वेषणमें व्यग्र पड़ी हुई हैं और यह चित्रपट वही है। मेरी आकृति मिलाकर अपने सन्देहको दूर करना चाहती है। अतः इसकी भ्रान्ति हटा देनी चाहिए। ऐसा निश्चय करके मैंने कहा—'हे सौम्ये! मुझे यह चित्रपट दीजिये तो।' उसने मेरे हाथमें वह चित्रपट दे दिया। मैंने उस चित्रपटको लेकर उसके एकदेशमें, कपटनिद्रित और कामबाण से व्याकुल राजकुमारीकी ठीक-ठीक प्रतिकृति लिख दी और कहा 'ऐसी आकृतिवाली महिला को ऐसी आकृतिवाले पुरुषके साथ सोते हुए अरण्यमें स्वप्नावस्थामें मैंने देखा था।

(१९) मेरे इस कथन पर उस चित्रपटधारिणी बालाने हर्षसे मुझसे संपूर्ण वृत्त पूछा तो मैंने उससे सारा हाल कह सुनाया। उसने भी मेरे कारण राजकुमारीको कामकी पीड़ासे जो क्लेश हो रहा था, उसका वर्णन कर दिया। उसकी कामव्यथाको सुनकर

देनामभ्युपगमय्य गत्वा तदेव खर्वटं वृद्धविटेन समगंसि। ससम्भ्रमं सोऽपि विश्रमय्य तथैव स्नानभोजनादि कारयित्वा रहस्यपृच्छत्—'आर्य, कस्य हेतोरचिरेणैव प्रत्यागतोऽसि'।

(२०) प्रत्यवादिषमेनम्—'स्थान एवाहमार्येणास्मि पृष्टः। श्रूयताम्। अस्ति हि श्रावस्तीनाम नगरी। तस्याः पतिरपर इव धर्मपुत्रो धर्मवर्धनो नाम राजा। तस्य दुहिता, प्रत्यादेश इव श्रियः, प्राणा इव कुसुमधन्वनः, सौकुमार्यविडम्बितनवमालिका, नवमालिका नाम कन्यका। सा मया समापत्तिदृष्टा कामनाराचपङ्क्तिमिव कटाक्षमालां मम मर्मणि व्यकिरत्।

करणं कारकम्। आरचय्य—कृत्वा। एनां युवतिम्। अभ्युपगमय्य—सम्यग् बोधयित्वा-प्रतिज्ञायेति यावत्। तदेव पूर्वोक्तम्। खर्वटं ग्रामम्। समगंसि सङ्गतोऽभवम्। ससम्भ्रमं-सचकितम्। सः वृद्धविटः। विश्रमय्य विश्रामं कारयित्वा मामिति शेषः। रहसि एकान्ते। कस्य हेतोः—किमर्थम्। अचिरेण—अतिसत्वरम्।

(२०) प्रत्यवादिषं प्रत्युत्तरमदाम्। एनं वृद्धविटम्। स्थाने—युक्तम्। आर्येण—भवता। तस्याः श्रावस्त्याः। धर्मपुत्रः युधिष्ठिरः। प्रत्यादेशः निराकृतिः प्रत्याख्यानमिति यावत्। लक्ष्म्या अपि विजेत्रीत्यर्थः। प्राणाः—जीवनम्। सौकुमार्येति—सौकुमार्येण कोमलतया विडम्बिता कदर्थिता नवमालिका यया सा। समापत्तिदृष्टा—यदृच्छावलोकिता। कामनाराचपङ्क्तिं मदनबाणपरम्पराम्। मर्मणि—हृदयादिमर्मस्थले। व्यकिरत्—विक्षिप्तवती। तच्छल्येति—तस्य शल्यस्य कीलस्यो-

मैंने कहा—'यदि आपकी सखीका प्रेम मनसे मेरे ऊपर है तो वे कुछ दिन और इसी तरह बितावें। फिर मैं कन्यापुरमें निवास करनेका कोई निश्शंक उपाय रचकर वहाँपर आऊँगा। इस प्रकारसे उस बालाको समझाकर मैं पुनः उसी वृद्धके गाँव लौट आया। आश्चर्यके साथ उस वृद्धने मेरा पूर्वकी तरह स्नान-भोजनादि द्वारा स्वागत सत्कार करके एकान्तमें पूछा—'हे आर्य! किस कारणसे इतनी जल्दी ही लौट आये?'

(२०) मैंने उस वृद्धको उत्तर दिया—'आपने मुझसे उचित रीतिसे और योग्य अवसरपर यह प्रश्न किया—सुनिये, श्रावस्ती नामकी नगरी है। उसका स्वामी, दूसरे धर्मपुत्रके समान, धर्मवर्धन नामक राजा है। उसकी पुत्री लक्ष्मी के समान है जो कामदेवकी प्राणोंके समान प्रिया है। जिसका नाम नवमालिका है। जो अपनी सुकुमारतासे नवीन लताओंको भी तिरस्कृत करनेवाली है। वह मुझे अकस्मात् दिखलायी पड़ी। उसने मुझे देखकर अपने कामबाणोंके समान कटाक्षोंसे मेरे वक्षःस्थलको वेध डाला है।

तच्छल्योद्धरणाक्षमश्च धन्वन्तरिसदृशस्त्वदृते नेतरोऽस्ति वैद्य इति प्रत्यागतोऽस्मि । तत्प्रसीद कञ्चिदुपायमाचरितुम् ।

(२१) अयमहं परिवर्तितस्त्रीवेषस्ते कन्या नाम भवेयम् । अनुगतश्च मया त्वमुपगम्य धर्मासनगतं धर्मवर्धनं वक्ष्यसि—'ममेयमेकैव दुहिता । जातमात्रायां त्वस्यां जनन्यस्याः संस्थिता । माता च पिता च भूत्वाहमेव व्यवर्धयम् । एतदर्थमेव विद्यामयं शुल्कमर्जितुं गतोऽभूदवन्तिनगरीमुज्जयिनीमस्मद्वैवाह्यकुलजः कोऽपि विप्रदारकः । तस्मै चेयमनुमता दातुमितरस्मै न योग्या । तरुणीभूता चेयम् । स च विलम्बितः । तेन तमानीय

द्धरणे निष्कासनेऽक्षमोऽसमर्थः । धन्वन्तरिसदृशः-धन्वन्तरितुल्यः । त्वद् भवतः । ऋते विना । इतरः अन्यः कोऽपि । वैद्यः-चिकित्सकः । प्रसीद-प्रसन्नो भव । आचरितुं कर्तुम् ।

(२१) अयमहं-अहमेव । परीति-परिवर्त्तितो धृतः स्त्रियाः कामिन्या वेषः स्वरूपं येन सः, नामेत्यलीके । अनुगतः अनुसृतः । त्वं वृद्धविटः इत्यर्थः । धर्मासनगतं विचारासनोपविष्टम् । जातमात्रायां त्वस्यां-जन्मसमये एव । संस्थिता-मृता । व्यवर्धयमपालयमेनामिति शेषः । एतदर्थं-इमां कन्यां परिणेतुम् । विद्यामयं-विद्यारूपम् । शुल्कं पणम् । विदुषे एव कन्या समर्पणीया भवतीति हेतोः तां विद्यामर्जितुं अध्येतुम् । गतोऽभूत् गतवान् । अस्मदिति-अस्माकं वैवाह्ये विवाहयोग्ये कुले वंशे जातः । कोऽपि-अनिर्दिष्टनामा । विप्रदारकः ब्राह्मणकुमारः । तस्मै विप्रदारकाय । दातुं-सम्प्रदानार्थम् । इयं-कन्या । अनुमता-अभिलषिता । इतरस्मै-अन्यजामात्रे न योग्या दातुमिति शेषः । तरुणीभूता-यौवनमधिगता । स जामाता । विलम्बितः-विद्याध्ययनार्थं विलम्बं करोतीत्यर्थः । तेन-तेन

उन बाणोंको निकालनेमें केवल आप ही एक धन्वन्तरिके तुल्य वैद्य हैं—अन्य कोई है ही नहीं । इसी हेतु मैं आपके पास आया हूँ । अतः प्रसन्न होकर उपाय कीजिये ।

(२१) और मैंने कहा-मैं अपने रूपको बदलकर आपकी पुत्रीरूपमें हो जाता हूँ । जब राजा धर्मासनपर आरूढ़ रहे तब आप मुझे लेकर उसके सम्मुख उपस्थित होइये और कहिये कि मेरी केवल यही एक पुत्री है । इसके जन्मकालमें ही इसकी जननी परलोक सिधार गयी । मैंने माता-पिता दोनों बनकर इसे पाला है । मैंने अवन्तिका (उज्जयिनी) नगरीमें जाकर अपनी जाति और कुलके अनुरूप एक विद्वान् ब्राह्मण कुमारको इसके विवाहके लिये राजी किया है, परन्तु वह कुमार नियतकाल हो जानेपर भी यहां नहीं आया है अतः मैं चिन्तित हो रहा हूं । मैं चाहता हूं कि

पाणिमस्या ग्राहयित्वा तस्मिन्न्यस्तभारः संन्यसिष्ये । दुरभिरक्षतया तु दुहितॄणां मुक्तशैशवानाम् , विशेषतश्चामातृकाणाम् , इह देवं मातृपितृस्थानीयं प्रजानामापन्नशरणमागतोऽस्मि ।

(२२) यदि वृद्धं ब्राह्मणमधीतिनमगतिमतिथिं च मामनुग्राह्यपक्षे गणयत्यादिराजचरितधुर्यो देवः, सैषा भवद्भुजतरुच्छायामखण्डितचारित्रा तावदध्यास्तां यावदस्याः पाणिग्राहकमानयेयम्' इति । स एवमुक्तो

हेतुना । तं जामातरम् । अस्याः कन्यायाः पाणिं ग्राहयित्वा विवाहं कारयित्वा । तस्मिन् जामातरि । न्यस्तभारः-दत्तरक्षणभारः । संन्यसिष्ये संन्यासाश्रममाश्रयिष्ये अहमिति शेषः । मुक्तशैशवानां प्राप्तयौवनानां दुहितॄणां कन्यानां दुरभिरक्षतया-अतिकष्टेन रक्षणीयतया । अमातृकाणां-जननीरहितानाम् । इह भवतः समीपे । देवं भवन्तम् । किम्भूतं ? प्रजानां मातृपितृस्थानीयं-येषां माता पिता च नास्ति तेषां भवानेव माता पिता चेति भावः । पुनः किम्भूतम् ? आपन्नशरणं विपन्नानां त्राता ।

(२२) अधीतिनं-कृतशास्त्राध्ययनम् । अगतिं निरुपायम् । अतिथिं गृहागतम् । अनुग्राह्यपक्षे-अनुग्रहणीयकोटौ कृपास्थानीये इति यावत् । गणयति-मन्यते । आदिराजानां मनुमान्धातृप्रभृतीनां यच्चरितं चरित्रं तस्य धुर्यो वाहकः । देवः भवान् । सा पूर्वोक्ता । एषा मम कन्या । अखण्डितचारित्रा अभ्रष्टचारित्रा । भवदिति-भवतस्तव भुज एव तरुस्तस्यच्छायामाश्रयम् । तावत्-तावत्कालपर्यन्तं । अध्यास्तामधितिष्ठतु । यावत्-यावता कालेन । अस्याः कन्यायाः । पाणिग्राहकं परिणेतारम् । आनयेयमानेष्यामीत्यर्थः । स राजा धर्मवर्धनः । उक्तो निवेदितो

उस ब्राह्मणकुमारको जाकर बुला लाऊं और इस कन्याको जो युवती हो गयी है उससे विवाह दूं । और तत्पश्चात् उसे यह कन्या सौंपकर मैं संन्यास ग्रहण करूं । मातृहीना युवती पुत्री की रक्षा ऐसे समयमें असाध्य है । अत एव हे देव ! आप हीके समीप इस समय इसकी रक्षा हो सकती है । क्योंकि जिसके माता-पिता नहीं होते तथा जो दुखी होता है उसके राजा ही माता-पिता एवं त्रातास्वरूप हैं । इसीसे आपके समीप आया हूं ।

(२२) हे देव ! मनु-मान्धातादि राजाओंके चरित्रानुसारियोंमें अग्रणी ! यदि आप मुझ पठित विप्रके प्रति कृपाकटाक्ष करें तो, इस कन्याको अपने भुजारूपी वृक्षके नीचे आश्रय दें ताकि इस कन्याका चरित्र अखण्डित रहे । तबतक मैं इसके परिणेताको यहाँपर बुला लाऊँ । ऐसी प्रार्थनापर वह राजा अवश्य मुझे अपनी राजकुमारीके साथ

नियतमभिमनायमानः स्वदुहितृसन्निधौ मां वासयिष्यति । गतस्तु भवानागामिनि मासि फाल्गुने फल्गुनीषूत्तरासु राजान्तःपुरजनस्य तीर्थयात्रोत्सवो भविष्यति । तीर्थस्थानात्प्राच्यां दिशि गोरुतान्तरमतिक्रम्य, वानीरवलयमध्यवर्तिनि कार्तिकेयगृहे करतलगतेन शुक्लाम्बरयुगलेन स्थास्यसि ।

(२३) स खल्वहमनभिशङ्क एवैतावन्तं कालं सहाभिविहृत्य राजकन्यया भूयस्तस्मिन्नुत्सवे गङ्गाम्भसि विहरन्विहारव्याकुले कन्यकासमाजे मग्नोपसृतस्त्वदभ्याश एवोन्मङ्क्ष्यामि । पुनस्त्वदुपहृते वाससी परिधायापनीतदारिकावेषो जामाता नाम भूत्वा त्वामेवानुगच्छेयम् । नृपात्मजा

भवतेति शेषः । नियतमवश्यम् । अभिमनायमानः अनुमोदमानः । स्वदुहितृसन्निधौ–राजकन्यासमीपे । मां कन्यावेषधारिणं प्रमतिमित्यर्थः । वासयिष्यति–स्थापयिष्यति । फल्गुनीषु उत्तरासु–उत्तरफल्गुनीनक्षत्रे । तीर्थस्थानात्–तीर्थक्षेत्रात् । प्राच्यां पूर्वस्यां दिशि । गोरुतान्तरं–गवां शब्दो यावत्पर्यन्तं गच्छति तावत्परिमितं स्थानं गोरुतान्तरं कथ्यते–तावत्परिमितं स्थानमतिक्रम्य अतीत्य किञ्चिद्दूरे इत्यर्थः । वानीरवलयमध्यवर्त्तिनि–वेतसतरुमण्डलमध्यस्थिते करतलगतेन–हस्तस्थितेन ।

(२२) स खलु अहं–कन्यावेषधारी प्रमतिरित्यर्थः । अनभिशङ्कः–निर्भयः । एतावन्तं कालं–उत्सवसमयं यावत् । अभिविहृत्य–समन्ततः क्रीडित्वा । तस्मिन्–पूर्वकथिते । विहारव्याकुले क्रीडानिरते । कन्यकासमाजे–कन्यावर्गे । मग्नोपसृतः–जलमग्नः सन् उपसृतश्चलितः । त्वदभ्यासे–तव समीपे । उन्मङ्क्ष्यामि–जलादुत्थितो भविष्यामि । त्वदुपहृते त्वया दत्ते । वाससी वस्त्रे । अपनीतदारिकावेषः–

रहनेकी आज्ञा देगा । फिर आप मुझे वहां छोड़कर लौट आइयेगा । ततः फाल्गुन महीनेके उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रको राजाके अन्तःपुरके सभी व्यक्ति तीर्थयात्राको जायंगे । उस तीर्थस्थानसे पूर्वकी ओर इतनी दूरपर जहांतक गोका शब्द सुनायी पड़े वेतके लतामण्डपके मध्यमें कार्त्तिकेय मन्दिरमें दो सफेद वस्त्रोंके साथ ठहरे रहियेगा ।

(२३) मैं निश्शंक होकर राजकुमारीके साथ जलक्रीड़ा करता हुआ उस उत्सवमें गङ्गामें पुनः डुबकी लगाऊँगा और जब कन्यकाजन जलविहार करती हुई डुबकियाँ लेती रहेंगी तब मैं डुबकी मारकर आपके समीप निकल आऊँगा । वहांपर आपके दिये हुए कपड़े पहनकर कन्यावेषको छोड़ दूँगा । मुझे जलमें डूबा हुआ जानकर सभी सखियां और राजकुमारी दुःखी हो जांयगी । राजपुत्री मुझे इधर-उधर खोजेगी और

तु मामितस्ततोऽन्विष्यानासादयन्ती 'तया विना न भोक्ष्ये' इति रुदन्त्येवावरोधने स्थास्यति ।

(२४) तन्मूले च महति कोलाहले, क्रन्दत्सु परिजनेषु, रुदत्सु सखीजनेषु, शोचत्सु पौरजनेषु, किंकर्तव्यतामूढे सामात्ये पार्थिवे, त्वमास्थानीमेत्य मां स्थापयित्वा वक्ष्यसि—'देव स एष मे जामाता तवार्हति श्रीभुजाराधनम् । अधीतिश्चतुर्ष्वाम्नायेषु, गृहीती षट्स्वङ्गेषु, आन्वीक्षिकीविचक्षणः, चतुःषष्टिकलागमप्रयोगचतुरः, विशेषेण गजरथतुरङ्गतन्त्रवित्,

परित्यक्तकन्यकावेषः । जामाता नाम—जामातेव । नृपात्मजा—राजकन्या । अन्विष्य—अनुसन्धाय । अनासादयन्ती—अप्राप्नुवती । तया कन्यकया । भोक्ष्ये—भक्षयिष्यामि । अवरोधने—अन्तःपुरे ।

(२४) तन्मूले—तदेव कन्यान्तर्धानमेव मूलं निदानं यस्य तस्मिन् । कोलाहले कलरवे । क्रन्दत्सु—विलपत्सु । परिजनेषु—सेवकवर्गेषु । सखीजनेषु—सहचरीषु । शोचत्सु—शोकं कुर्वत्सु । पौरजनेषु—नागरिकेषु । किङ्कर्त्तव्यतामूढे—अप्रतिपत्तिमुग्धे । सामात्ये—मन्त्रिसहिते । पार्थिवे—नृपे । त्वं वृद्धविट इत्यर्थः । आस्थानीं राजसभाम् । मां—जामातृवेषधारिणं प्रमतिम् । स्थापयित्वा—राज्ञः पुरतः संस्थाप्य । स एषः—यो विद्यामध्येतुमुज्जयिन्यां गत आसीत् । श्रीभुजाराधनम्—श्रीमद्भ्यां भुजाभ्यामाराधनं सत्कारम् । यतोऽयं सर्वशास्त्रनिष्णातो मे जामाताऽतो भवत्सकाशात्पूजामर्हतीति भावः । अधीती—अधीतवान्—कृतश्रम इत्यर्थः । आम्नायेषु—वेदेषु । गृहीती—कृतश्रमः । अङ्गेषु—शिक्षाकल्पादिषु । उभयत्र क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपसङ्ख्यानमिति सप्तमी । आन्वीक्षिकीविचक्षणः—तर्कविद्यानिष्णातः । चतुःषष्टीति—चतुर्षष्टिकलाः नृत्यादयस्तद्रूप आगमः शास्त्रं तस्य प्रयोगेऽनुष्ठाने चतुरो दक्षः । गजरथेति—गजरथतुरङ्गशास्त्रज्ञः । इष्वसनास्त्रकर्मणि—इष्वसनं धनु·

मेरा पता न पाकर खूब रोदन करेगी—तथा कहेगी कि 'मैं ब्राह्मणीकी पुत्रीके बिना भोजन नहीं करूँगी एवं रोती हुई अन्तःपुरमें पड़ी रहेगी ।

(२४) 'ब्राह्मणपुत्री डूब गयी' ऐसा शोरगुल मचनेपर उस राजपुत्रीके परिजन और सखियां सब रोती हुई क्रन्दन करेंगी । राजसचिवगण किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जायँगे, पुरवासी शोक करने लगेंगे । उसी समय आप मुझे राजसभामें उपस्थित करके कहियेगा—'हे देव ! यह मेरा जामाता (दामाद) है । आपकी भुजाओंद्वारा इसका स्वागत-सत्कार होना उचित है क्योंकि इसने चारों वेदोंका अध्ययन किया है । वेदके छहों अङ्गोंको शिक्षा-कल्पादि यथाविधि पढ़ा है । तर्कविद्यामें निष्णात हैं । नृत्यादि

इष्वस्त्रसनाखकर्मणि गदायुद्धे च निरुपमः, पुराणेतिहासकुशलः, कर्ता काव्यनाटकाख्यायिकानाम्, वेत्ता सोपनिषदोऽर्थशास्त्रस्य, निर्मत्सरो गुणेषु, विश्रम्भी सुहृत्सु, शक्तः, संविभागशीलः, श्रुतधरः, गतस्मयश्च। नास्य दोषमणीयांसमप्युपलभे। न च गुणेष्वविद्यमानम्। तन्मादृशस्य ब्राह्मणमात्रस्य न लभ्य एष सम्बन्धी। दुहितरमस्मै समर्प्य वार्धकोचितमन्त्यमाश्रमं सङ्क्रमेयम्, यदि देवः साधु मन्यते' इति।

(२५) स इदमाकर्ण्य वैवर्ण्याक्रान्तवक्त्रः परमुपेतो वैलक्ष्यमारप्स्यतेऽनुनेतुमनित्यतादिसङ्कीर्तनेनात्रभवन्तं मन्त्रिभिः सह। त्वं तु तेषामद-

स्त्रस्य तथा अस्त्राणां बाणादीनां कर्मणि प्रयोगे निरुपमः अद्वितीयः। कर्त्ता-रचयिता। वेत्ता-ज्ञाता। सोपनिषदः-सरहस्यस्य। अर्थशास्त्रस्य कामन्दकीयादिनीतिशास्त्रस्य। निर्मत्सरः-द्वेषरहितः। विश्रम्भी-विश्वासवान्। शक्तः-प्रियंवदः। शक्तः प्रियंवदः प्रोक्त इति हलायुधः। संविभागशीलः-धनानां यथोचितविनियोगपटुः-सुविवेचको वा। श्रुतधरः-श्रवणमात्रेण शास्त्रार्थधारणसमर्थः। गतस्मयो निरहङ्कारः। अस्य जामातुः। अणीयांसं-लेशमात्रम्। उपलभे—पश्यामि। गुणेषु अविद्यमानं-गुणानां मध्ये अवर्त्तमानं कमपि गुणं नोपलभे इति योजना। तत्-तस्मात्। ब्राह्मणमात्रस्य-धनादिरहितस्य अवशिष्टब्राह्मणस्य। एष-एतादृशः। सम्बन्धी-जामाता। वार्धकोचितं-वृद्धकालोचितम्। अन्त्यम्-आश्रमम्-संन्यासम्। संक्रमेयम्-आश्रयेयम्। देवः भवान्। साधु-समीचीनम्।

(२५) स राजा। इदं-वृद्धोक्तं वचनम्। वैवर्ण्येति तस्याः कन्याया अदर्शननिमित्तकेनानुतापेन यद्वैवर्ण्यं मालिन्यं तेनाक्रान्तं वक्त्रं मुखं यस्यासौ। पर-

चौसठ कलाओंमें दक्ष है। गजरथअश्वशास्त्रज्ञ है। धनुर्बाणविद्या तथा गदायुद्धमें प्रवीण है। पुराण और इतिहासमें विचक्षण है। काव्य, नाटक और आख्यायिकाओंके रचयिता हैं। उपनिषत्सहित अर्थशास्त्रके ज्ञाता हैं। द्वेषरहित गुणज्ञ हैं। मित्रोंमें विश्वास रखनेवाले हैं। प्रियभाषी हैं। धनके व्ययमें यथोचित स्वभाववाले हैं। श्रवणमात्रसे शास्त्रोंके अर्थको धारण करनेवाले हैं। निरहंकारी हैं। इस जामातामें लेशमात्र भी दुर्गुण नहीं है। ऐसा कोई भी गुण नहीं है जो इनमें वर्त्तमान न हो। सर्वगुण-सम्पन्न हैं। मेरे ऐसे ब्राह्मणमात्रके लिये ऐसा योग्य जामाता मिलना कठिन है। अतः ऐसे योग्य वरको मैं अपनी कन्या समर्पण करके अपने वृद्धत्वकालमें संन्यास ग्रहण करना चाहता हूँ। हे देव! यदि आपकी अनुमति हो।

(२५) वह राजा ऐसा सुनकर मलिनमुख होकर विलक्षणता प्रकट करेगा। फिर

त्तश्रोत्रो मुक्तकण्ठं रुदित्वा चिरस्य बाष्पाकुण्ठकण्ठः काष्ठान्याहृत्याग्निं सन्धुक्ष्य राजमन्दिरद्वारे चिताधिरोहणायोपक्रमिष्यसे। स तावदेव त्वत्पादयोर्निपत्य सामात्यो नरपतिरनूनैरर्थैस्त्वामुपच्छन्द्य दुहितरं मह्यं दत्त्वा मद्योग्यतासमाराधितः समस्तमेव राज्यभारं मयि समर्पयिष्यति। सोऽयमभ्युपायोऽनुष्ठेयो यदि तुभ्यं रोचते' इति। सोऽपि पटुर्विटानामग्रणीरसकृदभ्यस्तकपटप्रपञ्चः पाञ्चालशर्मा यथोक्तमभ्यधिकं च निपुणमुपक्रान्तवान्।

मत्यन्तं वैलक्ष्यं सलज्जत्वमुपेतः प्राप्तः। अनुनेतुं खेदमपनेतुम्। अनित्यतेति-शरीरस्य क्षणभङ्गुरत्वादिवर्णनेन। अत्रभवन्तं त्वां वृद्धविटमित्यर्थः। अदत्तश्रोत्रः-कर्णपातमकृत्वा अश्रुत्वेत्यर्थः। बाष्पेति-रोदनजनितबाष्पेण आसमन्तात् कुण्ठो रुद्धः कण्ठो यस्यासौ। आहृत्य-सञ्चित्य। संधुक्ष्य-प्रज्वाल्य। चिताधिरोहणाय-चितामधिरोढुम्। उपक्रमिष्यसे आरप्स्यसे। स नरपतिरित्यनेन योज्यः। सामात्यः समन्त्रिकः। अनूनैरधिकैः। उपच्छन्द्य सन्तोष्य। दुहितरं स्वकन्याम्। मद्योग्यतेति-मम योग्यतया पटुतया समाराधितो वशीभूतः। अनुष्ठेयो विधेयः। यदि तुभ्यं रोचते—यदि तवाभिमतं स्यादित्यर्थः। पटुश्चतुरः। विटानां धूर्तानाम्। अग्रणीः श्रेष्ठः। असकृदिति-असकृदनेकवारं अभ्यस्तः परिचितः कपटप्रपञ्चनश्छलरचना यस्य सः यथोक्तं मया यावत्कथितं, ततोऽपि अभ्यधिकं यन्मया नोक्तं तदपीत्यर्थः। निपुणमतिकौशलेन उपक्रान्तवान्-सम्पादितवान्।

मन्त्रियोंके साथ आपके प्रति बहुत विनय करते हुए संसारकी नश्वरता दिखाते हुए बड़ी प्रार्थनापूर्वक स्तुति करेगा। किन्तु आप उन सब स्तुतियोंको अनसुनी करके मुक्तकंठसे आँसुओंसे रुद्ध गलेके साथ रोना प्रारम्भ कर देना। रोते हुए राजाके दरवाजेपर ही काष्ठ (लकड़ी) एकत्र कर एक चिता बनाना एवं उसमें अग्नि जलाकर आप प्राण विसर्जन करनेको अधिरूढ़ होनेको उद्यत होना। तब वह राजा अवश्य अपने सचिवोंके साथ आकर आपके पैरोंपर गिरेगा एवं मेरी योग्यता पर मुग्ध होकर अपनी राजकुमारीकी शादी मेरे साथ कर देगा। सभी राज्यका भार भी मुझे ही समर्पित कर देगा। यही सुन्दर उपाय मैंने सोचा है। यदि आपको रुचे तो आप इसे कार्यान्वित करें। उपर्युक्त वार्ता श्रवण करके उस धूर्त विटोंके अग्रणीने जो अनेक बार ऐसे प्रपंचयुक्त छल कपट कर चुका था। जिसे ऐसे जाल करने का अभ्यास था। उस पांचालशर्मा नामक विटने मेरे कहे हुए छलोंसे भी अधिक छल करके मेरा यह कार्य निपुणतासे सम्पादित किया।

(२६) आसीच्च मम समीहितानामहीनकालसिद्धिः । अन्वभवं च मधुकर इव नवमालिकामार्द्रसुमनसम् । अस्य राज्ञः सिंहवर्मणः साहाय्यदानं सुहृत्सङ्केतभूमिगमनमित्युभयमपेक्ष्य सर्वबलसन्दोहेन चम्पामिमामुपगतो दैवाद्देवदर्शनसुखमनुभवामि' इति ।

(२७) श्रुत्वैतत्प्रमतिचरितं स्मितमुकुलितमुखनलिनो विलासप्रायमूर्जितम् , मृदुप्रायं चेष्टितम् , इष्ट एष मार्गः प्रज्ञावताम् , 'अथेदानीमत्र-

---

(२६) समीहितानां–मदभीप्सितानाम् । अहीनकालसिद्धिः–अचिरकालेन लाभः । मधुकरो भ्रमरः नवमालिकां नवमालिका मालतीव नवमालिका तां राज्ञो धर्मवर्धनस्यात्मजाम् । आर्द्रसुमनसं एकत्र आर्द्राः सरसाः सुमनसः पुष्पाणि यस्यास्तामपरत्र आर्द्रं कोमलं सुष्ठु मनो यस्यास्तामित्युभयविशेषणम् । मधुकरो यथा सरसकुसुमां मालतीमनुभवति तथाहमपि तां नवमालिकामन्वभवमिति भावः । सुहृदिति–सुहृदामस्मन्मित्राणां संकेतभूमौ मिलनस्थाने गमनम् । सर्वबलसन्दोहेन–सर्वेषां बलानां हस्त्यश्वादीनां सन्दोहः समूहस्तेन सहेति शेषः, युक्तो वा । देवदर्शनसुखं भवदवलोकनानन्दम् ।

(२७) स्मितेति–स्मितेन हास्येन मुकुलितं संकुचितं मुखनलिनं वदनकमलं यस्य सः । विलासप्रायं विलासबहुलम् । ऊर्जितं पराक्रमः । मृदुप्रायं–प्रायेण कोमलम् । इष्टोऽभिमतः । एष मार्गः–प्रमतिनाचरितः पन्थाः । प्रज्ञावतां–बुद्धिमताम् ।

---

(२६) इन जालोंके द्वारा मेरा अभीष्ट कार्य शीघ्र ही सम्पन्न हो गया । जैसे भौंरा नवमालिका फूलकी कलियोंमें आर्द्ररसोंको चूसता है । तद्वत् मैं भी कोमल मनवाली नवमालिका कुमारीके तारुण्यरसका आस्वादन करने लगा । तत्पश्चात् इस राजा सिंहवर्माकी सहायताके लिये मित्रों द्वारा प्रेरित मैं (प्रमति) अपने दल-बलके साथ इस चम्पापुरीमें आ पहुँचा हूँ । दैववश यहाँपर आपका भी दर्शन प्राप्त हो गया ।

(२७) इस प्रमतिकुमारके चरितको श्रवण करके हाससे जिनका मुखकमल विकसित हो गया ऐसे राजवाहनने कहा—प्रमति ! यह आपका परिश्रम विलासयुक्त है ।

भवान्प्रविशतु' इति मित्रगुप्तमैक्षत क्षितीशपुत्रः ।

इति श्रीदण्डिनः कृतौ दशकुमारचरिते प्रमतिचरितं नाम

पञ्चम उच्छ्वासः ।



इत्यन्तमुक्त्वा इति । अथ प्रमतिचरितश्रवणानन्तरम् । अत्रभवान्–मित्रगुप्त इत्यर्थः । प्रविशतु स्वचरितं वर्णयितुमिति शेषः । क्षितीशपुत्रः–राजपुत्रो राजवाहनः ।

इति श्रीताराचरणभट्टाचार्यकृतायां बालविबोधिनीसमाख्यायां

दशकुमारचरितव्याख्यायां प्रमतिचरितं नाम

पञ्चमोच्छ्वासः ।



बड़ी कोमलतासे चेष्टाएँ की गयी हैं । आपका यह आदर्श मार्ग बुद्धिमानों द्वारा अनुकरणीय है । राजपुत्र राजवाहनने कहा—अब हे मित्रगुप्त ! आप अपना चरित कहना आरम्भ करें ।

इस प्रकार दशकुमारचरितके प्रमतिचरितकी पञ्चमोच्छ्वासकी

हिन्दी टीका बालक्रीडा समाप्त हुई ।



षष्ठोच्छ्वासः

(१) सोऽप्याचचक्षे—देव, सोऽहमपि सुहृत्साधारणभ्रमणकारणः सुह्मेषु दामलिप्ताह्वयस्य नगरस्य बाह्योद्याने महान्तमुत्सवसमाजमालोकयम्। तत्र क्वचिदतिमुक्तकलतामण्डपे कमपि वीणावादेनात्मानं विनोदयन्तमुत्कण्ठितं युवानमद्राक्षम्। अप्राक्षं च—'भद्र, को नामायमुत्सवः, किमर्थं वा समारब्धः, केन वा निमित्तेनोत्सवमनादृत्यैकान्ते भवानुत्कण्ठित इव परिवादिनीद्वितीयस्तिष्ठति' इति।

(२) सोऽभ्यधत्त—सौम्य, सुह्मपतिस्तुङ्गधन्वनामानपत्यः प्रार्थित-

---

(१) साम्प्रतं मित्रगुप्तः स्ववृत्तान्तं वर्णयति। स मित्रगुप्तः। यथाऽन्ये कुमाराः स्वस्वचरितान्यश्रावयंस्तथेति अपिशब्दार्थः। आचचक्षे आख्यातवान्। चक्षिङ् कथने इत्यस्य धातोर्लिटि रूपम्। सुहृदिति-सुहृदां मित्राणां कुमारान्तराणामिति यावत् साधारणं समानं भ्रमणस्य भूपर्यटनस्य कारणं निदानं यस्यासौ। सुह्मेषु देशविशेषेषु। दामलिप्ताह्वयस्य दामलिप्तनामकस्य। उत्सवसमाजं उत्सवगोष्ठीम्। तत्रोत्सवसमाजे। क्वचिद् एकदेशे। अतिमुक्तकेति-माधवीलतामण्डपे। वीणावादेन विपञ्चीवादनेन। विनोदयन्तमानन्दयन्तम्। उत्कण्ठितं उत्कण्ठायुक्तं व्याकुलितमिति यावत्। अप्राक्षं पृष्टवान्। प्रच्छधातोर्लुङि रूपम्। किमर्थं-कस्मै प्रयोजनाय। निमित्तेन-कारणेन। अनादृत्य उपेक्ष्य विहायेति यावत्। परिवादिनीद्वितीयः-वीणासहायः।

(२) स युवा। अभ्यधत्त अकथयत्। सुह्मपतिः सुह्मदेशस्य राजा। तुङ्गेति-

---

[अब मित्रगुप्त अपना वृत्तान्त सुनाना आरम्भ कर रहे हैं।]

(१) उस मित्रगुप्तने कहा—'हे देव! सभी सुहृदोंके समान मैं भी पृथिवीकी परिक्रमा करता हुआ सुह्मप्रान्तके अन्तर्गत दामलिप्त नामक नगरके बाहरी बगीचेमें जा पहुँचा। उस समय वहांपर, एक बृहद् उत्सवके निमित्त, बहुतसे लोग एकत्र हुए थे। उस उत्सवगोष्ठीको मैंने देखा। उस उत्सवगोष्ठीसे विरक्त एकान्त स्थलमें माधवीलता-मण्डपके नीचे बैठे हुए एक उत्कंठित युवकको मैंने देखा जो आत्मविनोदार्थ वीणाको बजा रहा था। मैंने उससे पूछा—'हे सौम्य! इस उत्सवका क्या नाम है, किस प्रयोजनके हेतु यह प्रारम्भ हुआ है, और किस कारणसे आप उत्सवगोष्ठी त्याग करके यहां (एकान्तमें) वीणा द्वारा अपने चित्तको अतिरञ्जित करते हुए बैठे हैं?'

(२) उस वीणाधारी युवकने उत्तर दिया—'हे भद्र! सुह्मप्रान्तके अधिपति सन्तान-

वानमुष्मिन्नायतने विस्मृतविन्ध्यवासरागं वसन्त्या विन्ध्यवासिन्याः पादमूलादपत्यद्वयम्। अनया च किलास्मै प्रतिशयिताय स्वप्ने समादिष्टम्—समुत्पत्स्यते तवैकः पुत्रः, जनिष्यते चैका दुहिता। स तु तस्याः पाणिग्राहकमनुजीविष्यति। सा तु सप्तमाद्वर्षादारभ्याऽपरिणयनात्प्रतिमासं कृत्तिकासु कन्दुकनृत्येन गुणवद्भर्तृलाभाय मां समाराधयतु। यं चाभिलषेत्सामुष्मै देया। स चोत्सवः कन्दुकोत्सवनामास्तु इति।

तुङ्गधन्वेति नाम यस्यासौ। अनपत्यः निःसन्तानकः। अमुष्मिन् पुरो दृश्यमाने। आयतने-मन्दिरे। विस्मृतेति-विस्मृतो विन्ध्ये विन्ध्यपर्वते वासस्य वसतेः रागोऽनुरागो यत्र तद्यथा तथेति क्रियाविशेषणम्। विन्ध्यवासिन्या भगवत्या दुर्गायाः। पादमूलात्-चरणप्रान्तात्। अपत्यद्वयं सन्ततियुगलम्। प्रार्थितवानित्यनेन सम्बन्धः। अनया भगवत्या। अस्मै-तुङ्गधन्वने। प्रतिशयिताय-यावद्भगवती न प्रत्यादेक्ष्यति तावन्नाहमुत्थास्यामीति प्रतिज्ञापूर्वकं निद्रिताय। समुत्पत्स्यते-जनिष्यते। स पुत्रः। तु किन्तु। तस्या दुहितुः। पाणिग्राहकं-भर्त्तारम् भगिनीपतिमित्यर्थः। अनुजीविष्यति-तदधीनो भूत्वा स्थास्यति। सा कन्या। आपरिणयनात्-आविवाहात् विवाहपर्यन्तमित्यर्थः। कृत्तिकासु कृत्तिकानक्षत्रयुक्तदिने। कन्दुकनृत्येन-कन्दुकक्रीडासहितनृत्येन। गुणवदिति-गुणवतः प्रशस्यगुणयुक्तस्य भर्त्तुः पत्युर्लाभाय प्राप्तये। मां विन्ध्यवासिनीमित्यर्थः। समाराधयतु-मदाराधनं करोतु। यं युवानम्। अभिलषेदिच्छेत् पतिरूपेण प्राप्तुमिति शेषः। सा कन्या। अमुष्मै-अभिलषिताय। युवकाय। देया दातव्या तेन विवाह्येत्यर्थः।

हीन थे। अतः उन्होंने इस मन्दिरमें निवास करनेवाली देवीसे सन्तानके लिये प्रार्थना की थी। जो भगवती इस मन्दिरमें बसनेके कारण अपने विन्ध्यपर्वतके वासको भूलसी गयी है। उन्हीं देवी विन्ध्यवासिनीके चरणोंमें राजा तुङ्गधन्वाने प्रार्थना की थी। जिस प्रार्थनाके फलस्वरूप भगवती विन्ध्यवासिनीने राजाको उस रात्रिके स्वप्नमें (जिसमें राजाने प्रतिज्ञा कर ली थी कि, आज रातको यदि देवीके दर्शन न कर लूंगा तो कल उठूँगा भी नहीं।) दर्शन देकर आदेश दिया—'हे तुङ्गधन्वा! तुम्हें एक पुत्र होगा और एक पुत्री होगी। वह पुत्र तुम्हारी उस पुत्रीके पतिका अनुजीवक होगा—अर्थात् उसके अधीन होकर रहेगा। वह आपकी पुत्री अपने जीवनके सातवें बरससे विवाह हो जानेके समयतक प्रत्येक कृत्तिका नक्षत्रमें कन्दुकनृत्यसे (गेंदके खेलसे) सुयोग्य गुणवान् पतिकी प्राप्तिके निमित्त मेरी आराधना किया करेगी। वह पुत्री जिस युवकको चाहे उसीसे आप उसका परिणय कर देना। उस उत्सवका नाम 'कन्दुकोत्सव' होगा।

(३) ततोऽल्पीयसा कालेन राज्ञः प्रियमहिषी मेदिनी नामैकं पुत्रमसूत । समुत्पन्ना चैका दुहिता । साद्य नाम कन्या कन्दुकावती सोमापीडां देवीं कन्दुकविहारेणाराधयिष्यति । तस्यास्तु सखी चन्द्रसेना नाम धात्रेयिका नाम प्रियासीत् । सा चैषु दिवसेषु राजपुत्रेण भीमधन्वना बलवदनुरुद्धा । तदहमुत्कण्ठितो मन्मथशरशल्यदुःखोद्विग्नचेताः, कालेन वीणारवेणात्मानं किञ्चिदाश्वासयन्विविक्तमध्यासे इति ।

(४) अस्मिन्नेव च क्षणे किमपि नूपुरक्वणितमुपातिष्ठत् । आगता च काचिदङ्गना । दृष्ट्वैव स एनामुत्फुल्लदृष्टिरुत्थायोपगूढकण्ठश्च तया

(३) अल्पीयसा–अचिरेण । कन्दुकावतीति कन्याया नाम । सोमापीडां सोमश्चन्द्र आपीडः शेखरो यस्यास्ताम् । चन्द्रशेखरां देवीं भगवतीम् । कन्दुकविहारेण–कन्दुकनृत्येन । तस्याः कन्दुकावत्याः । धात्रेयिका–धात्रीकन्या । प्रिया वल्लभा । सा चन्द्रसेना । एषु दिवसेषु–साम्प्रतम् । भीमधन्वेति राजपुत्रस्य नाम । बलवत्–दृढम् । अनुरुद्धा–अनुरुध्य वशं नीता । तत्–तस्मात्कारणात् । मन्मथेति–मन्मथस्य कामस्य शरो बाणः शल्यमिव तेन यद्दुःखं तेनोद्विग्नं व्याकुलं चेतो हृदयं यस्यासौ । कलेन–मधुरेण । आश्वासयन्–सान्त्वयन् । विविक्तं निर्जनदेशम् । अध्यासे अधितिष्ठामि ।

(४) किमपि–अनिर्वचनीयम् । नूपुरक्वणितं–मञ्जीरध्वनिः । उपातिष्ठत्–अश्रूयत । दृष्ट्वा विलोक्य तामङ्गनाम् । स–पूर्वोक्तयुवा । एनामङ्गनाम् । उत्फुल्लदृष्टिः उल्लसितलोचनः । तया अङ्गनया । उपगूढकण्ठः–कृतकण्ठग्रहः । अशं-

(३) इसके कुछ ही दिनोंके पश्चात् राजा तुङ्गधन्वाकी प्यारी पटरानी मेदिनीको एक पुत्र उत्पन्न हुआ और एक पुत्री उत्पन्न हुई । वही राजकुमारी कन्दुकावती आज चन्द्रशेखरा (सोमपीडा) देवीकी अर्चना करने आवेगी । उसी राजकुमारी कन्दुकावतीकी सखी चन्द्रसेना जो उसकी धात्रीकी पुत्री है मेरी वल्लभा हो गयी है । उस चन्द्रसेनाको राजकुमार भीमधन्वाने आजकल जबर्दस्तीसे रोक रखा है । इसी उपर्युक्त प्रेमके बन्धनसे तथा कामदेवके बाणोंसे पीड़ित होकर मैं उद्विग्नचित्त हो गया हूँ, और इस वीणाकी ध्वनिसे एकान्तमें उसका ध्यान करके चित्त बहला रहा हूँ ।

(४) उसी क्षणमें मञ्जीरोंकी अनिर्वचनीय ध्वनि सुनायी पड़ी । कोई अंगना वहाँपर आयी । वह युवक उस अङ्गनाको देखते ही उल्लसित नेत्रोंसे उसके लिये खड़ा हो गया । उस अङ्गनाने उस युवकको गले लगा लिया और वहीं बैठ गयी । उस युवकने मुझसे

तत्रैवोपाविशत्। अशंसच्च—सैषा मे प्राणसमा, यद्विरहो दहन इव दहति माम्। इदं च मे जीवितमपहरता राजपुत्रेण मृत्युनेव निरुष्मतां नीतः। न च शक्ष्यामि राजसूनुरित्यमुष्मिन्पापमाचरितुम्। अतोऽनयात्मानं सुदृष्टं कारयित्वा त्यक्ष्यामि निष्प्रतिक्रियान्प्राणान् इति। सा तु पर्यश्रुमुखी समभ्यधात्—'मा स्म नाथ, मत्कृतेऽध्यवस्यः साहसम्। यस्त्वमुत्तमात्सार्थवाहादर्थदासादुत्पद्य कोशदास इति गुरुभिरभिहितनामधेयः पुनर्मदत्यासङ्गाद्वेशदास इति द्विषद्भिः प्रख्यापितोऽसि, तस्मिंस्त्व-

सत्–अकथयत् मामिति शेषः। सा मया पूर्वमुक्ता। यद्विरहः–यस्याः प्राणसमाया विरहो विच्छेदः। दहनः अनलः। जीवितं प्राणान्। अपहरता–विनाशयता। राजपुत्रेण–भीमधन्वना। निरुष्मतां–निष्प्राणताम्। नीतः प्रापितः अहमिति शेषः। राजसूनुः राजपुत्र इति हेतोः। अमुष्मिन्–राजपुत्रे। पापमनिष्टम्। आचरितुं विधातुम्। अतः–प्रतीकारासमर्थत्वात्। अनया मत्प्राणसमया। आत्मानं सुदृष्टं कारयित्वा–एतस्यां मेऽनन्यसाधारणोऽनुरागो वर्त्तत इति विश्वासमुत्पाद्येति भावः। निष्प्रतीति–निर्नास्ति प्रतिक्रिया प्रतीकारो येषां तान्। इत्यन्तं युवकवचनम्। सा त्वित्यादि पुनर्मित्रगुप्तस्योक्तिः। सा चन्द्रसेनानाम्नी अङ्गना। पर्यश्रुमुखी-वाष्पपूर्णवदना रुदतीति यावत्। समभ्यधादकथयत्। मास्मेत्यस्य अध्यवस्य इति क्रियया सम्बन्धः। नाथेति सम्बोधनम्। मत्कृते मदर्थम्। अध्यवस्यः साहसं मा कार्षीः। मदर्थं त्वया प्राणा न त्यक्तव्या इति भावः। अध्यवस्य इति अधि–अवपूर्वक सो धातोर्लङि रूपम्। उत्तमात्–श्रेष्ठात्। सार्थवाहात्–वणिजः। अर्थदास इति युवकस्य पितुर्नाम। उत्पद्य–जन्म लब्ध्वा। कोशदास इति युवकस्य नाम। गुरुभिः-पित्रादिभिः। अभिहितनामधेयः कृतनामकरणः। मदत्यासङ्गात्–मयि अत्यासक्तेः कारणात्। वेशदासः–वेश्यादासः। द्विषद्भिः–तव शत्रुभिः। प्रख्यापितः–

कहा—'यही मेरी प्राणप्यारी है जिसका वियोग मुझे अग्निके सदृश जलाता था। मेरे इस जीवनके अपहरण द्वारा राजकुमारने मुझे निष्प्राण बना दिया था। राजकुमार होनेके कारण मैं उसका कुछ भी अनिष्ट नहीं कर सकता हूँ। अत एव मैं अपना दर्शन इस अङ्गनाको कराकर अब अपने प्राणोंको त्याग दूँगा क्योंकि इसके अतिरिक्त मेरे पास कोई प्रतिक्रिया नहीं। उपर्युक्त बातें श्रवणकर रोती हुई चन्द्रसेना बोली—'हे नाथ! मेरे लिये आप ऐसा साहसका काम न करें क्योंकि श्रेष्ठ सार्थवाहसे आप उत्पन्न हुए हैं और आपके बड़े लोगोंने आपका नाम कोशदास रखा है। फिर मेरे ऊपर आपकी आसक्ति होनेके हेतु आपका नाम 'वेशदास' प्रख्यात किया है। ऐसे मुझपर अनुरक्त

व्युपरते यद्यहं जीवेयं नृशंसो वेश इति समर्थयेयं लोकवादम् । अतोऽद्यैव नय मामीप्सितं देशम् इति ।

(५) स तु मामभ्यधत्त—'भद्र, भवद्दृष्टेषु कतमत्समृद्धं संपन्नसस्यं सत्पुरुषभूयिष्ठं च' इति । तमहमीषद्विहस्याब्रवम्—'भद्र, विस्तीर्णेयमर्णवाम्बरा । न पर्यन्तोऽस्ति स्थानस्थानेषु रम्याणां जनपदानाम् । अपितु न चेदिह युवयोः सुखनिवासकारणं कमप्युपायमुत्पादयितुं शक्नुयाम् ततोऽहमेव भवेयमध्वदर्शी' । तावतोदैरत रणितानि मणिनूपुराणाम् । अथासौ जातसंभ्रमा 'प्राप्तैवेयं भर्तृदारिका कन्दुकावती कन्दुकक्रीडितेन

प्रसिद्धीकृतः । तस्मिन् तादृशे । उपरते-मृते । जीवेयं-प्राणिस्यामि । नृशंसः-क्रूरः । वेशः-वेश्याजनः । समर्थयेयं-दृष्टान्तेन दृढीकरिष्यामि । लोकवादं जनोक्तिम् । नय-प्रापय । अभीप्सितं-स्वन्मनोगतम् ।

(५) स कोशदासः । मां मित्रगुप्तमित्यर्थः । राष्ट्रेषु-जनपदेषु । समृद्धं-प्रचुरधनम् । सम्पन्नशस्यं-पर्याप्तधान्यम् । सत्पुरुषभूयिष्ठं-सज्जनबहुलम् । तं-कोशदासम् । अहं-मित्रगुप्तः । विस्तीर्णा-विशाला । अर्णवाम्बरा-पृथ्वी । पर्यन्तः शेषः । अपितु-किन्तु । इह-दामलिप्तनगरे । सुखेति-सुखेन निवासो वसतिस्तस्य कारणं जनकम् । उत्पादयितुं कर्तुम् । ततस्तर्हि । अध्वदर्शी-मार्गदर्शकः । अहमेव युवामन्यत्र नेष्यामीति भावः । तावता-तस्मिन् काले । उदैरत-उत्पन्नानि बभूवुः । ईण् गतौ कम्पने चेत्यस्य धातोर्लङि आत्मनेपदस्य बहुवचने रूपम् । रणितानि-शब्दाः । असौ-चन्द्रसेना । जातसम्भ्रमा-उत्पन्नसंवेगा । प्राप्ता-आगता । भर्तृदा-

आपकी मृत्युपर यदि मैं जीवित रहूँ तो सब लोग मुझे क्रूर वेश्या कहेंगे । और मैं इस लोकापवादको दृढ़ करनेवाली हो जाऊँगी कि 'वेश्याएँ क्रूर होती हैं ।' अत एव आज ही आप मुझे चाहे जिस देशमें ले चलिये ।'

(५) उसने उस चन्द्रसेनाकी बातें श्रवणकर मुझसे कहा—'हे सौम्य ! आपने अनेक देशोंको पर्यटनकर देखा है । कृपया बताइये कि कौनसा देश धनसे तथा धान्यसे परिपूर्ण एवं भले मनुष्योंसे विभूषित है ।' उस कोशदाससे मैंने (मित्रगुप्तने) हँसकर कहा—'हे सौम्य ! यह समुद्रपरिधाना पृथिवी अति विशाल है । इसमें स्थान-स्थानपर रमणीय नगर बसे हैं जिनका परिगणन नहीं हो सकता । यदि आपलोग इस दामलिप्त नगरमें सुखसे रहनेमें असमर्थ हैं तो मैं कोई उपाय रचूँ और आप लोगोंका मार्गदर्शक होकर कहीं दूसरे स्थलमें ले चलूँ ।' इसी क्षणमें मणि-नूपुरोंकी बजती हुई ध्वनि मालूम पड़ी । तत्क्षण ही वह चन्द्रसेना सम्भ्रमित होकर बोली 'ये राजकुमारी कन्दुकावती

देवीं विन्ध्यवासिनीमाराधयितुम्। अनिषिद्धदर्शना चेयमस्मिन्कन्दुकोत्सवे। सफलमस्तु युष्मच्चक्षुः। आगच्छतं द्रष्टुम्। अहमस्याः सकाशवर्तिनी भवेयम्' इत्ययासीत्।

(६) तामन्वयाव चावाम्। महति रत्नरङ्गपीठे स्थितां प्रथमं ताम्रोष्ठीमपश्यम्। अतिष्ठच्च सा सद्य एव मम हृदये। न मयान्येन वान्तराले दृष्टा। चित्रीयाविष्टचित्तश्चाचिन्तयम्—'किमियं लक्ष्मीः। नहि नहि। तस्याः किल हस्ते विन्यस्तं कमलम्, अस्यास्तु हस्त एव कमलम्। अभुक्तपूर्वा चासौ पुरातनेन पुंसा पूर्वराजैश्च, अस्याः पुनरनवद्यमयातयामं

रिका राजपुत्री। अनिषिद्धदर्शना—अनिवारितदर्शना। सर्व एवैनां द्रष्टुमर्हन्तीत्यर्थः। सफलं—कृतार्थम्। आगच्छतं युवामिति शेषः। अस्याः कन्दुकावत्याः। सकाशवर्त्तिनी समीपस्था। इति—एवमुक्त्वा। अयासीत्—अचलत्।

(६) तां चन्द्रसेनाम्। अन्वयाव—अनुगतवन्तौ। आवाम्—मित्रगुप्तकोशदासौ। रत्नरङ्गपीठे रत्ननिर्मितासने। प्रथमं प्रागेव। ताम्रोष्ठीं—रक्ताधरबिम्बाम्। कन्दुकावतीमिति शेषः। अतिष्ठत्—अधिष्ठिताऽभवत्। सद्यस्तत्क्षणम्। अन्तराले—मध्ये—पूर्वमिति भावः। चित्रीयेति—चित्रीया विस्मयस्तया आविष्टमाक्रान्तं चित्तं यस्यासौ। तस्याः लक्ष्म्याः। विन्यस्तं—स्थितम्। अस्याः कन्दुकावत्याः। हस्ते कमलमित्यनेन हस्तकमलयोर्भेदः। हस्त एव कमलमित्यनेन च तयोरभेदः सूचितः। अभुक्तपूर्वा—पूर्वमभुक्ता। असौ—राजपुत्री। पुरातनेन पुंसा—नारायणेन।

कन्दुक नृत्यसे भगवती विन्ध्यवासिनी अष्टभुजादेवीकी आराधना करनेके लिये आ गयीं। इस समय (कन्दुकोत्सवकालमें) सब लोग इनका दर्शन कर सकते हैं (क्योंकि बिना देखे हुए वे अभिलषित पतिका कैसे वरण करेंगी यद्यपि 'असूर्यम्पश्या राजदाराः' होती हैं पर इनके लिये देवीका वर अपवादरूपमें है) अपनी दृष्टियोंको कृतार्थ कीजिये। आप लोग आइये और इनका दर्शन कीजिये। मैं उनकी पार्श्वभूता (सहचरी) रहूँगी। ऐसे वाक्य कहकर वह चन्द्रसेना वहाँसे राजकुमारीके समीप चली गयी।

(६) हम दोनोंने (कोशदास और मित्रगुप्तने) उस चन्द्रसेनाकी गति का अनुसरण किया। मैंने विशाल रत्नासन पर बैठी हुई, रक्ताधरबिम्बोष्ठी, राजकुमारी कन्दुकावतीको प्रथम ही देखा। वह उसी समय मेरे मनमें बस गयी। मेरे और राजकुमारीके बीचमें कोई व्यवधान नहीं दिखाई देता था। मैं आश्चर्यान्वित हृदयसे सोचने लगा—'क्या यह लक्ष्मी है। नहीं, नहीं, उन लक्ष्मीजीके हाथोंमें तो कमल होते हैं। इस राजकुमारीके तो हाथ ही कमल हैं। वे पूजनीय लक्ष्मीजी तथा मान्या राज्यलक्ष्मी यथाक्रम भगवान्

च यौवनम्' इति चिन्तयत्येव मयि, सानघसर्वंगात्री व्यत्यस्तहस्तपल्लवाग्रस्पृष्टभूमिरालोलनीलकुटिलालका सविभ्रमं भगवतीमभिवन्द्य कन्दुकममन्दरागरूषिताक्षमनङ्गमिवालम्बत । लीलाशिथिलं च भूमौ मुक्तवती । मन्दोत्थितं च किञ्चित्कुञ्चिताङ्गुष्ठेन प्रसृतकोमलाङ्गुलिना पाणिपल्लवेन समाहत्य हस्तपृष्ठेन चोन्नीय, चटुलदृष्टिलाञ्छितं स्तबकमिव भ्रमरमालानुविद्धमवपतन्तमाकाश एवाग्रहीत् । अमुञ्चच्च ।

पूर्वराजैः पूर्ववर्त्तिभिर्नृपैः । लक्ष्मीर्नारायणेनोपभुक्ता-राजलक्ष्मीरपि पूर्वनृपैरुपभुक्ता । इयन्तु केनापि नोपभुक्ता अतो नेयं प्रसिद्धा लक्ष्मीरिति तात्पर्यम् । अनवद्यमनिन्द्यम् । अयातयामं-प्रत्यग्रं अनुपभुक्तमिति यावत् । अनघसर्वगात्री-अनघं निर्दोषं सर्वं निखिलं गात्रं शरीरं यस्याः सा । व्यत्यस्तेति-व्यत्यस्तेन परावर्त्तितेन हस्तपल्लवाग्रेण करकिसलयाग्रेण स्पृष्टा चुम्बिता भूमिः पृथ्वी यया सा । आलोलेति-आलोला ईषच्चञ्चलाः नीलाः कृष्णवर्णाः कुटिला वक्रा अलकाश्चूर्णकुन्तलाः यस्याः सा । सविभ्रमं सविलासम् । अमन्देति-अमन्देनातिशयितेन रागेण रक्तिम्ना-रूषिते भूषिते अक्षिणी नयने यस्य तथाविधमनङ्गं काममिव । आलम्बत गृहीतवती । लीलेति-लीलया विलासेन शिथिलं श्लथम् । क्रियाविशेषणम् । मुक्तवती क्षिप्तवती । मन्दोत्थितमीषदुन्नतम् कन्दुकमिति शेषः । किञ्चिदिति-किञ्चिदीषत् कुञ्चितो वक्रीकृतोऽङ्गुष्ठोऽङ्गुलिविशेषो यत्र तेन । प्रसृतेति-प्रसृता विस्तारिताः कोमला अङ्गुलयो यत्र तेन । विशेषणद्वयं पाणिपल्लवेनेत्यस्य । समाहृत्य ताडयित्वा । उन्नीय-उद्ध्वींकृत्य । चटुलेति-चटुलया चञ्चलया दृष्टया दृष्टिपातेन लाञ्छितं शोभितम् । अतएव भ्रमरमालया मधुकरपंक्त्या अनुविद्धमनुसृतं स्तवकं पुष्पगुच्छमिवावपतन्तमधोगच्छन्तम् । आकाशे मध्ये । अग्रहीत् कन्दुकमिति शेषः ।

विष्णु और पूर्ववर्त्ती राजाओंसे उपभुक्त हैं । किन्तु यह राजकुमारी तो किसीसे भी उपभुक्त नहीं है । इसके अनिन्द्य अवयव हैं और नूतन अनुपभुक्त तारुण्यशालिनी है । मैं ऐसे तर्क-वितर्क कर ही रहा था कि उस निर्दोष अङ्गवाली (सर्वाङ्गसुन्दरी) ने अपने परिवर्तित हस्तरूपी किसलयोंके अग्रभागसे पृथिवीको स्पर्शित किया । कुछ चंचल तथा काले टेढ़े बालोंकी चोटीसे विलासपूर्वक अष्टभुजादेवीको प्रणाम किया । फिर अतिशय रागसे विभूषित नेत्रवाली उसने कामदेवके समान कन्दुकको उठा लिया । पुनः विलाससे श्लथ गेंदको पृथिवीपर फेंक दिया । ततः ऊपर की ओर उछलते हुए कन्दुकको कुछ संकुचित अँगूठे तथा फैली हुई अङ्गुलियोंवाले करकिसलयसे ताडित कर हाथके पिछले भागसे ऊपर-

(७) मध्यविलम्बितलये द्रुतलये च मृदुमृदु प्रहरन्ती तत्क्षणं चूर्णपदमदर्शयत्। प्रशान्तं च तं निर्दयप्रहारैरुदपातयत्। विपर्ययेण च प्राशमयत्। पक्षमृज्वागतं च वामदक्षिणाभ्यां कराभ्यां पर्यायेणाभिघ्नती शकुन्तमिवोदस्थापयत्। दूरोत्थितं तं च प्रपतन्तमाहृत्य गीतमार्गमारचयत्। प्रतिदिशं च गमयित्वा प्रत्यागमयत्।

(८) एवमनेककरणमधुरं विहरन्ती रङ्गगतस्य रक्तचेतसो जनस्य

(७) मध्येति-मध्यः साधारणो विलम्बितः अतिशिथिलो लयः पतनं यस्य तस्मिन्-द्रुतं शीघ्रं लयः पतनं यस्य तस्मिन् तथाभूते कन्दुके। मृदुमृदु-मन्दं मन्दम्। प्रहरन्ती-ताडयन्ती। चूर्णपदं-कन्दुकतन्त्रोक्तः क्रियाविशेषः, उक्तं च—गत्यागत्योरानुलोम्यं न्यूनाधिक्यक्षेपणं तच्चूर्णपदमिति। प्रशान्तं निश्चलं स्थितं कन्दुकम्। निर्दयप्रहारैः कठोरताडनैः। उदपादयत् उदक्षिपत्। विपर्ययेण-वैपरीत्येन। प्राशमयत् निश्चलमकरोत्। कन्दुकावतीति सर्वत्र कर्तृपदम्। पक्षं वशमागतम्। ऋज्वागतं-सारल्येनोपगतं कन्दुकमिति शेषः। पर्यायेण क्रमेण। अभिघ्नती-प्रहरन्ती। शकुन्तं-पक्षिणम् उदस्थापयत्-उदपातयत्। आहृत्य-मध्ये आकृष्य। गीतमार्गं-दशपदचंक्रमणरूपं गतिविशेषम्। आरचयत् कृतवती। गमयित्वा भ्रामयित्वा। प्रत्यागमयत्-पुनस्तत्रैवानयत्।

(८) एवमनेन प्रकारेण। अनेकेति-अनेककरणेन नानाविधव्यापारेण मधुरं रमणीयम् यथा तथा। रङ्गगतस्य-क्रीडास्थानस्थितस्य। रक्तचेतसः सानुराग-

की ओर उछाल दिया। फिर चपल दृष्टियोंसे चिह्नित उस कन्दुकको भौंरोंकी श्रेणियोंसे परिपूर्ण फलोंके गुच्छेके सदृश बीचमें ही पकड़ लिया-जमीनपर न गिरने दिया।

(७) वह राजकुमारी कन्दुकावती उस समय गेंदसे खूब खेल रही थी। कभी गेंदको ऊपर फेंकती थी। कभी उसकी गति बीचमें कम कर देती थी। कभी उसे नीचे पटकती थी, कभी उसपर धीरे-धीरे कराघात करती हुई कन्दुकतन्त्रानुसार कन्दुकक्रीड़ा करती थी। उपर्युक्त कन्दुककी गतिका नाम चूर्णपद है। अतः वह सभीको चूर्णपद क्रीड़ा दिखा रही थी। जब गेंद निश्चल हो जाती थी तब कन्दुकावती उसे कठोर प्रहारोंसे ऊपरको उछाल देती थी। फिर वैपरीत्य गतिसे उस गेंद को निश्चल कर देती थी। जब गेंद निश्चल होकर वशमें हो जाता था तब उसे सरलतासे बायें और दाहिने हाथोंसे ताड़न कर पक्षीकी तरह ऊपरकी ओर उछाल दिया करती थी। बहुत ऊपरकी ओर उछले हुए कन्दुकको, वह कुमारी बीचमें ही पकड़कर, 'दशपदचंक्रमणरूप' गतिसे क्रीड़ा करती थी। प्रत्येक दिशामें कन्दुकको उछालकर वह अपनी ओर खींच लेती थी।

(८) इस प्रकार नाना विधियोंसे रमणीय कंदुकक्रीड़ा करती हुई उस राजकुमारी-

प्रतिक्षणमुच्चावचाः प्रशंसावाचः प्रतिगृह्णती, प्रतिक्षणारूढविभ्रमं कोशदासस्यांसेऽवलम्ब्य कण्टकितगण्डमुत्फुल्लेक्षणं च मय्यभिमुखीभूय स्थिते तत्प्रथमावतीर्णकंदर्पकारितकटाक्षदृष्टिस्तदनुमार्गविलसितलीलाञ्चितभ्रूलता, श्वासानिलवेगान्दोलितैर्दन्तच्छदरश्मिजालैर्लीलापल्लवैरिव मुखकमलपरिमलग्रहणलोलानलिनस्ताडयन्ती,

(९) मण्डलभ्रमणेषु कन्दुकस्यातिशीघ्रप्रचारतयाविशन्तीव मद्दर्श-

---

हृदयस्य । जनस्य-द्रष्टृवर्गस्य । उच्चावचाः स्थूलसूक्ष्माः । प्रशंसावाचः स्तुतिभाषणानि । प्रतिगृह्णती-स्वीकुर्वती । प्रतिक्षणेति-प्रतिक्षणं प्रतिमुहूर्त्तं आरूढ उत्पन्नो विभ्रमो विलासो यस्मिंस्तद् यथा तथा । अंसे स्कन्धदेशे । अवलम्ब्य गृहीत्वा । कण्टकितगण्डं-रोमाञ्चितकपोलं यथा तथा । उत्फुल्लेक्षणं विकसितनयनं यथा तथा । मयि-मित्रगुप्ते । अभिमुखीभूय-कन्दुकावत्याः सम्मुखीनो भूत्वा । तिष्ठति-वर्त्तमाने सति । तत्प्रथमेति-तदेव प्रथमं नूतनं अवतीर्णः समुपागतो यः कन्दर्पस्तेन कारिता कटाक्षदृष्टिर्यस्याः सा । कन्दुकावत्या या कटाक्षदृष्टिः सा कामेनैव कारितेत्यर्थः । तदनुमार्गेति-तदनु तदनन्तरं कटाक्षपातनानन्तरमित्यर्थः । मार्गे पथि विलसितया स्फुरन्त्या लीलया विलासेन अञ्चिते वक्रीकृते भ्रुवौ लते इव यया सा । श्वासानिलेति-श्वासानिलस्य निःश्वासमारुतस्य वेगेन जवेनान्दोलितैः कम्पितैः दन्तच्छदस्याधरस्य रश्मिजालैः प्रभापुञ्जैः, किम्भूतैः लीलार्थं क्रीडार्थं नवपल्लवैरिव । मुखकमलेति-मुखकमलस्याननारविन्दस्य यः परिमलो गन्धस्तस्य ग्रहणाय ग्रहणार्थं लोलांश्चञ्चलान् । अलिनो भ्रमरान् । ताडयन्ती निवारयन्ती ।

(९) मण्डलभ्रमणेषु-चक्राकारगतिविशेषेषु । कन्दुकस्यातिशीघ्रप्रचारतया अतिवेगभ्रमणेन मद्दर्शनलज्जया मदवलोकनह्रिया पुष्पमयं कुसुमनिर्मितं पञ्जरं

ने, क्रीड़ास्थलमें आये हुए अनुरागवान् दर्शकोंद्वारा स्थूल और सूक्ष्मरूपेण वर्णित अपनी स्तुति प्रतिश्रवण की । मैं कोशदासके कंधेके सहारे खड़ा था । मुझे प्रतिक्षण विलास उत्पन्न हो रहा था । मेरे कपोल रोमाञ्चित हो रहे थे, मेरे नेत्र प्रफुल्लित हो रहे थे । उपर्युक्त लक्षणोंसे लक्षित मेरे ऊपर कटाक्ष कर रही थी । अतः मैं जहांपर खड़ा हुआ था वहींपर आकर उस राजकुमारीने प्रथमोत्पन्न कामदेवप्रेरित कटाक्ष दृष्टि फेंकी । तत्पश्चात्—कटाक्षोंके विक्षेपके पश्चात्-टेढ़ी-मेढ़ी लतारूपी भ्रुकुटियोंद्वारा श्वासोच्छ्वासके वेगसे कम्पित और लीलापल्लवके समान धीरे धीरे कँपाती हुई अधरप्रभापुंजोंसे मुखकमलकी सुगन्धको ग्रहण करनेमें अति चंचल भौंरों को ताड़ित कर रही थी ।

(९) चक्राकार गतिसे उछलनेवाले कन्दुकको अत्यन्त शीघ्रतासे प्रक्षेपित करती

नलज्जया पुष्पमयं पञ्जरम्, पञ्चबिन्दुप्रसृतेषु पञ्चापि पञ्चबाणबाणान्युगपदिवाभिपततस्त्रासेनावघट्टयन्ती, गोमूत्रिकाप्रचारेषु घनदर्शितरागविभ्रमां विद्युल्लतामिव विडम्बयन्ती,

(१०) भूषणमणिरणितदत्तलयसंवादिपादचारम्, अपदेशस्मितप्रभानिषिक्तबिम्बाधरम्, अंसस्रंसितप्रतिसमाहितशिखण्डभारम्, समाघ-

सुरक्षितस्थानमाविशन्ती निलीयमानेवेत्युत्प्रेक्षा। पञ्चबिन्दुप्रसृतेषु कन्दुकक्रीडायां तदाख्यगतिविशेषेषु। तदुक्तं पञ्चावर्त्तप्रहारस्तु पञ्चबिन्दुरुदाहृत इति। पञ्च पञ्चसंख्याकान्। 'अरविन्दमशोकञ्च चूतञ्च नवमल्लिका। नीलोत्पलञ्च पञ्चैते पञ्चबाणस्य सायका' इत्युक्तेः पञ्चबाणबाणान्–कामशरान्। युगपदिव–मन्ये समकालमेव। अभिपततः–कन्दुकावस्थायाः सम्मुखमागच्छतः। पञ्चबाणबाणानित्यस्य विशेषणम्। त्रासेन भयेन। अवघट्टयन्ती सन्ताड्य निरस्यन्ती। गोमूत्रिकाप्रचारेषु–गोमूत्रिकावत् सरलवक्रगतिविशेषास्तेषु। घनदर्शितेति–घनं सान्द्रं यथा तथा दर्शितः प्रकटितो रागस्यानुरागस्य विभ्रमो विलासो यया सा। अत एव विद्युल्लतां सौदामिनीं विडम्बयन्ती अनुकुर्वतीव। विद्युल्लतां कीदृशीम् इति पक्षान्तरे विभक्तिविपरिणामेन–घने मेघे दर्शितो रागस्य रक्तिम्नो विभ्रमो यया तामिति।

(१०) भूषणेति—भूषणमणीनामलङ्काररत्नानां रणितेन शब्दितेन दत्तस्य लयस्य साम्यस्य संवादी अनुकारी पादचारः पादन्यासो यत्र तद्यथा तथा। इत आरभ्य सर्वाण्येव पर्यक्रीडतेति क्रियाविशेषणानि। अपदेशेति–अपदेशेन छलेन यत् स्मितमीषद्धसितं तस्य प्रभया कान्त्या निषिक्तो व्याप्तो बिम्बाधरो यत्र तत्। अंसेति—अंसे स्कन्धदेशे स्रंसित आदौ पतितः पश्चात् प्रतिसमाहितः स्व-

हुई और उसी क्षण मेरे दर्शनकी कारणीभूता उत्पन्न लज्जासे विलज्जित होकर वह राजकुमारी मानो, कुसुमनिर्मित सुरक्षित स्थानमें प्रवेश करती हुई दीख रही थी। पञ्चबिन्दु (पंचावर्त्तप्रहार) गतिसे कन्दुकक्रीड़ा करती हुई वह राजकुमारी एक ही समयमें कामदेवके पांचों कुसुमनिर्मित बाणोंका, भयद्वारा, प्रतीकार करती हुई मालूम हो रही थी। गोमूत्रिका नामक गतिसे कन्दुकक्रीड़ा (सरल और वक्र गतिसे) करती हुई वह राजपुत्री प्रगाढ़ प्रीतिको झलकाती हुई बिजलीको भी तिरस्कृत कर रही थी। अथवा, बादलोंके प्रति जिसने रागके विलासको प्रकट किया है ऐसी बिजलीको भी तिरस्कृत करती हुई वह दिखाई दी।

(१०) वह राजकुमारी अपने अलङ्कारोंके रत्नोंकी ध्वनियोंसे जो उसके पैरमें भूषित ये ताल (लय) को सम्पादित कर रही थी। उसके रक्त अधर कपटकी हँसीसे परिपूर्ण

ट्टितक्वणितरत्नमेखलागुणम् , अञ्चितोत्थितपृथुनितम्बविलम्बितविचलदंशुकोज्ज्वलम् , आकुञ्चितप्रसृतवेल्लितभुजलताभिहतललितकन्दुकम् , आवर्जितबाहुपाशम् , उपरिपरिवर्तितत्रिकविलग्नलोलकुन्तलम् ,

(११) अवगलितकर्णपूरकनकपत्रप्रतिसमाधानशीघ्रतानतिक्रमितप्रकृतक्रीडनम् , असकृदुत्क्षिप्यमाणहस्तपादबाह्याभ्यन्तरभ्रान्तकन्दुकम् ,

---

स्थानं प्रापितः शिखण्डभारः केशकलापो यत्र तद्यथा। समाघट्टितेति–समाघट्टितः सञ्चालितोऽत एव क्वणितः शब्दायमानो रत्नमेखलागुणः काञ्चीदाम यत्र तद्यथा। अञ्चितेति–अञ्चितं शोभनं यथा तथा उत्थितः पृथुर्विशालो यो नितम्बस्तत्र विलम्बितं लग्नं विचलच्चञ्चलं यदंशुकं वसनं तेन उज्ज्वलं मनोज्ञं यथा तथा। आकुञ्चितेति–आकुञ्चितया कदाचित् संक्षिप्यमाणया–प्रसृतया कदाचित् प्रसार्यमाणया, वेल्लितया कदाचिच्च वक्रीकृतया भुजलतया बाहुयष्ट्या अभिहतस्ताडितो ललितः सुन्दरः कन्दुको यत्र तद्यथा। आवर्जितेति–आवर्जितौ आनमितौ बाहू भुजौ पाशाविव यस्मिंस्तद्यथा तथा। उपरीति–उपरि ऊर्ध्वदेशे परिवर्त्तिते स्थिते त्रिके पृष्ठवंशाधोभागे विलग्नाः संबद्धा लोलाश्चञ्चलाः कुन्तलाः केशा यस्मिंस्तद्यथा तथा।

(११) अवगलितेति–अवगलितस्य स्वस्थानात् भ्रष्टस्य कर्णपूरस्यावतंसभूतस्य कनकपत्रस्य तदाख्याभरणस्य प्रतिसमाधाने स्वस्थाननयने या शीघ्रता क्षिप्रहस्तता तया अनतिक्रमितमनुल्लङ्घितं प्रकृतं प्रारब्धं क्रीडनं यत्र यद्यथा तथा। असकृदिति—असकृद् वारंवारमुत्क्षिप्यमाणयोर्हस्तपादयोर्बाह्याभ्यन्तरयोर्भ्रान्तः

थे। वह राजकुमारी अपने कन्धेपर गिरे हुए केश कलापोंको यथास्थान धर रही थी। उस राजकुमारीकी रत्नजटित करधनीके दाने सञ्चालन करनेसे बज रहे थे। उस राजकुमारीके सुशोभित तथा उन्नत एवं विशाल नितम्बस्थलमें जो चञ्चल वस्त्र लटक रहा था उससे वह मनोज्ञ दीख रही थी। वह राजकुमारी अपनी भुजलताद्वारा जो कभी फैलती थी, कभी सिमटती थी, कभी तिरछी होती थी उसके द्वारा वह सुन्दर गेंदको ताड़ित करती थी। वह राजकुमारी कभी कभी अपने भुजपाशोंको आनमित करती थी। वह राजकुमारी अपने हाथोंको ऊपर परिवर्त्तित करती थी, जिसके कारण उसकी चञ्चल बालोंकी चोटियां जो उसके नितम्बभागतक लटक रही थीं चञ्चलायमान दीख रही थीं।

(११) वह राजपुत्री अपने कानके अलङ्कारको जिसमें सुवर्ण पत्र लगे थे उन्हें अपने स्थानसे गिरनेपर फिर यथास्थान सजा लेती थी तथा उसे ऐसा करते हुए अपने कन्दुकके खेलमें जरा भी देर नहीं होती थी। बेर-बेर उस कन्दुकको हाथ पैरोंसे

अवनमनोन्नमननैरन्तर्यनष्टदृष्टमध्ययष्टिकम् , अवपतनोत्पतननिर्व्यवस्थमुक्ताहारम् , अङ्कुरितघर्मसलिलदूषितकपोलपत्रभङ्गशोषणाधिकृतश्रवणपल्लवानिलम् , आगलितस्तनतटांशुकनियमनव्यापृतैकपाणिपल्लवं च निषद्योत्थाय निमील्योन्मील्य स्थित्वा गत्वा चैवातिचित्रं पर्यक्रीडत राजकन्या। अभिहत्य भूतलाकाशयोरपि क्रीडान्तराणि दर्शनीयान्येकेनैव वानेकेनैव कन्दुकेनादर्शयत् । चन्द्रसेनादिभिश्च प्रियसखीभिः सह विहृत्य विहृतान्ते

कन्दुको यत्र तद्यथा । अवनमनेति—अवनमनमवनतीकरणमुन्नमनमूर्ध्वीकरणं तयोर्नैरन्तर्येण सातत्येन नष्टदृष्टा अवनमनेन नष्टाऽदर्शनं गता—उन्नमनेन च दृष्टा मध्ययष्टिः शरीरमध्यभागो यस्मिंस्तद्यथा । अवपतनेति—अवपतनोत्पतनाभ्यां निर्व्यवस्थश्चञ्चलो मुक्ताहारो यस्मिंस्तद्यथा । अङ्कुरितेति—अङ्कुरितेन ईषद् संजातेन घर्मसलिलेन स्वेदवारिणा दूषितयोर्व्याप्तयोः कपोलयोर्गण्डयोः पत्रभङ्गानां पत्ररचनानां स्वेदबिन्दुसिक्तानामित्यर्थः शोषणे शुष्ककरणे अधिकृतो नियुक्तः श्रवणपल्लवानिलः कर्णकिसलयवायुर्यत्र तद्यथा तथा । आगलितेति—आगलितस्य स्रस्तस्य स्तनतटांशुकस्य कुचतटावरणस्य नियमने बन्धने व्यापृतो नियुक्त एकः पाणिपल्लवः करकिसलयो यस्मिंस्तद्यथा तथा । निषद्य—उपविश्य । निमील्य चक्षुरिति शेषः । अतिचित्रं—नानाविधम् । अभिहत्य ताडयित्वा । भूतलाकाशयोः—भूतले दर्शनीयानि आकाशे च दर्शनीयानि । क्रीडान्तराणि—नाना क्रीडाः । दर्शनीयानि—द्रष्टुं योग्यानि—मनोहराणीत्यर्थः । विहृत्य—क्रीडित्वा । विहृतान्ते—

उछलती हुई बाहर–भीतर घूमनेवाला कन्दुक बना रहा थी। उस राजपुत्रीकी देहका मध्यभाग, कभी दिखाता था और कभी नहीं भी दिखाता था। ऊपर और नीचे नमित और अनमित होनेसे उस राजकन्याकी मोतीकी माला चञ्चलायमान हो रही थी। उस राजकुमारीके कपोलोंपर जो पत्र रचनाएं, (चन्दनादिकी) थीं, वे गेंद खेलनेके कारण उत्पन्न हुए पसीनेकी बूंदोंसे भींगती थीं; परन्तु, तुरन्त ही उस राजपुत्रीके कानोंपर सजे हुए नूतन किसलय अपनी हवासे उन्हें सुखा भी देते थे। उस राजपुत्रीका एक हाथ (कर किसलय) उसके कुचोंपरसे खिसकते हुए वस्त्रको (अञ्चलको) सम्भालनेमें व्यस्त दीख रहा था। वह राजकन्या उठकर, खड़ी होकर, आंखें बन्द कर तथा आंखें खोल कर, कभी ठहरकर, कभी चलकर अतिविचित्र प्रकारकी कन्दुक क्रीड़ा कर रही थी। वह राजकुमारी कभी पृथिवीपर, कभी आकाशकी ओर, कभी एक प्रकारसे और कभी-कभी अनेक प्रकारसे एक ही गेंदसे क्रीड़ा कर रही थी। अर्थात् कभी वह एक गेंदको अनेक गेंदोंके समान लोगोंको प्रतीति कराती थी और कभी एक ही गेंदकी प्रतीति करा रही थी। अपनी प्रिय सखी चन्द्र-

चाभिवन्द्य देवीं मनसा मे सानुरागेणेव परिजनेनानुगम्यमाना, कुवलयशरमिव कुसुमशरस्य मय्यपाङ्गं समर्पयन्ती, सापदेशमसकृदावर्त्यमानवदनचन्द्रमण्डलतया स्वहृदयमिव मत्समीपे प्रेरितं प्रतिनिवृत्तं न वेत्यालोकयन्ती, सह सखीभिः कुमारीपुरमगमत् ।

(१२) अहं चानङ्गविह्वलः स्ववेश्म गत्वा कोशदासेन यत्नवदत्युदारं स्नानभोजनादिकमनुभावितोऽस्मि । सायं चोपसृत्य चन्द्रसेना रहसि मां प्रणियत्य पत्युरंसमंसेन प्रणयपेशलमाघट्टयन्त्युपाविशत् । आचष्ट च हृष्टः

क्रीडासमाप्तौ । देवीं–भगवतीम् । मनसेत्यादि–मे मम सानुरागेणानुरक्तेन मनसा हृदयेनेव परिजनेन तत्सखीवर्गेण अनुगम्यमाना; यथा तस्याः परिजनोऽनुगच्छतिस्म तथा मे हृदयमपि तामन्वगच्छदिति भावः । कुसुमशरस्य कामस्य कुवलयशरं कुवलयाख्यं बाणमिव अपाङ्गं कटाक्षमित्यर्थः मयि समर्पयन्ती प्रेरयन्ती । सापदेशं सव्याजम् । असकृद् वारंवारम् । आवर्त्येति–आवर्त्यमानं पुनः पुनः प्रतिनिवर्त्त्यमानं वदनमेव चन्द्रमण्डलं यस्यास्तस्या भावस्तया । स्वहृदयेत्यादि–मत्समीपे प्रेरितं स्वहृदयं प्रतिनिवृत्तं न वेति पश्यन्तीत्युत्प्रेक्षा ।

(१२) अहं मित्रगुप्तः । अनङ्गविह्वलः–मदनाविष्टः । स्ववेश्म–निजगृहम् । यत्नवत् सयत्नम् अत्युदारम्–अत्युत्कृष्टम् । अनुभावितः–अनुभवविषयीकृतः । उपसृत्य–आगत्य । पत्युः कोशदासस्य । अंसं–स्कन्धदेशम् । अंसेन स्वस्कन्धेन । प्रणयपेशलं–प्रेममधुरं यथा तथा । आघट्टयन्ती स्पृशन्ती । भूयासं भविष्यामि ।

सेना तथा अन्योंके साथ इस तरीकेसे अनेक रीतिसे उस राजकुमारीने कन्दुक क्रीडाएँ कीं और तदनन्तर देवीजीका स्तवनकर मेरे अनुराग युक्त अन्तःकरणके साथ एवं अपने परिजन वर्गके सहित वहाँसे रवाना हुई । जाते हुए उस राजकुमारीने कामदेवके कमल-बाणके समान अपने कटाक्षोंका विक्षेप मेरे ऊपर किया । किसी-किसी बहानेसे वह अपने मुख चन्द्रमण्डलको बार-बार पीछे फेरती थी अर्थात् पीछे मुख करके वह देखती जाती थी । उसका देखना मालूम पड़ता था कि उसने (कुमारीने) अपना हृदय मेरे समीप भेज दिया हो । और इसीलिये वह बार-बार मुझे देख भी लेती थी कि वह (मित्रगुप्त) मुझे देख रहा है या चला गया । ऐसी चेष्टाएँ करती हुई वह राजपुत्री सखियोंके साथ अन्तःपुरमें चली गयी ।

(१२) कामदेव पीड़ित मैं भी अपने स्थानपर जाकर उदार चित्तवाले कोशदासद्वारा यत्नपूर्वक स्नान, भोजन आदि प्राप्तकर आराम करने लगा । सायंकालमें चन्द्रसेना आयी

कोशदासः—'भूयासमेवं यावदायुरायताक्षि, त्वत्प्रसादस्य पात्रम्' इति। मया तु सस्मितमभिहितम्—'सखे, किमेतदाशास्यम्। अस्ति किञ्चिदञ्जनम्। अनया तदक्तनेत्रया राजसूनुरुपस्थितो वानरीमिवैनां द्रक्ष्यति, विरक्तश्चैनां पुनस्त्यक्ष्यति' इति। तया तु स्मेरयास्मि कथितः—'सोऽयमार्येणाज्ञाकरो जनोऽत्यर्थमनुगृहीतः, यदस्मिन्नेव जन्मनि मानुषं वपुरपनीय वानरीकरिष्यते। तदास्तामिदम्। अन्यथापि सिद्धं नः समीहितम्।

(१३) अद्य खलु कन्दुकोत्सवे भवन्तमपहसितमनोभवाकारमभिलषन्ती रोषादिव शम्बरद्विषातिमात्रमायास्यते राजपुत्री। सोऽयमर्थो

एवं-एवं रूपेण। यावदायुः-यावत्कालं जीविष्यामीत्यर्थः। आयते दीर्घे अक्षिणी नेत्रे यस्यास्तत्सम्बुद्धौ। त्वत्प्रसादस्य तवानुग्रहस्य। पात्रं-भाजनम्। मया-मित्रगुप्तेन। आशास्यम्-आशंकनीयम्। अत्राशंकायाः सम्भव एव नास्तीत्यर्थः। अञ्जनं कज्जलम्। तदक्तनेत्रया-तेनाञ्जनेन अक्ते रञ्जिते नेत्रे यस्यास्तया। अनया चन्द्रसेनया हेतुभूतयेत्यर्थः। वानरीमिव-वानराकृतिम्। एनां चन्द्रसेनाम्। तया चन्द्रसेनया। स्मेरया-स्मितं कुर्वत्या। आर्येण पूज्येन भवता। आज्ञाकरः सेवकः। सोऽयं जनः-अहमित्यर्थः। अत्यर्थमत्यन्तम्। मनुष्यस्येदमिति मानुषम्। वपुः शरीरम्। अपनीय-दूरीकृत्य। आस्तां तिष्ठतु अलमनेनेत्यर्थः। अन्यथा मनुष्यस्य वानरीकरणं विनाऽन्येनाप्युपायेन। सिद्धं सम्पन्नम्। नोऽस्माकम्। समीहितमभीष्टम्।

(१३) भवन्तमित्यादि-अपहसितस्तिरस्कृतो मनोभवस्य कन्दर्पस्याकारो येन ताहशं भवन्तं मित्रगुप्तमित्यर्थः अभिलषन्ती आकांक्षन्ती राजपुत्री रोषात्क्रोधा-

और मुझे प्रणामकर एकान्तमें अपने पतिके कंधेसे कंधा मिलाकर प्रेमपूर्वक बैठ गयी। प्रसन्नतासे कोशदासने कहा—'हे विशालाक्षि! यावज्जीवन पर्यन्त मुझे आप इसी तरह प्रेमपात्र बनाये रखियेगा!' मैंने हँसकर कहा—'हे मित्र! ऐसी आशङ्का ही क्यों करनी चाहिये। एक तरहका अञ्जन (मेरे पास) है। उस अंजनसे परिरंजित होनेपर यह चन्द्रसेना राजपुत्रको बन्दरियाकी तरह दिखायी पड़ेगी। और उस कारणसे राजकुमार विरक्त होकर इसे नहीं देखेगा। उसने हंसकर मुझसे कहा—'हे आर्य! यह जन (चन्द्रसेना) आपकी आज्ञाकारिणी आपसे अत्यन्त अनुग्रहीत है। क्योंकि आप इसी जन्ममें इसे मानुषी देहसे बन्दरियाके रूपमें परिणत करनेवाले हैं अस्तु, यह कृपा रहने दीजिये। अन्य उपायोंद्वारा भी यह कार्य सम्पन्न हो जायगा।

(१३) आज कन्दुकक्रीडामें कामदेवको तिरस्कृत करनेवाले आपको राजकुमारी

विदितभावया मया स्वमात्रे तया च तन्मात्रे, महिष्या च मनुजेन्द्राय, निवेदयिष्यते। विदितार्थस्तु पार्थिवस्त्वया दुहितुः पाणिं ग्राहयिष्यति। ततश्च त्वदनुजीविना राजपुत्रेण भवितव्यम्। एष हि देवतासमादिष्टो विधिः। त्वदायत्ते च राज्ये नालमेव त्वामतिक्रम्य मामवरोद्धुं भीमधन्वा। तत्सहतामयं त्रिचतुराणि दिनानि' इति मामामन्त्र्य प्रियं चोपगूह्य प्रत्ययासीत्।

(१४) मम च कोशदासस्य च तदुक्तानुसारेण बहुविकल्पयतोः

दिव शम्बरद्विषा कामेनातिमात्रमत्यर्थम् आयास्यते पीड्यते। अयमर्थः विषयः। विदितभावया–ज्ञाताशयया। स्वमात्रे–निजजनन्यै–चन्द्रसेनाया मात्रे इत्यर्थः। तया चन्द्रसेनाजनन्या। तन्मात्रे तस्याः कन्दुकावत्या जनन्यै। महिष्या–राज्ञ्या। मनुजेन्द्राय राज्ञे। निवेदयिष्यते–कथयिष्यते। विदितार्थः–ज्ञातवृत्तान्तः। त्वया मित्रगुप्तेन। दुहितुः स्वकन्यायाः कन्दुकावत्याः। पाणिं ग्राहयिष्यति–विवाहं कारयिष्यतीत्यर्थः। ततः विवाहानन्तरम्। त्वदनुजीविना त्वदायत्तेन। देवतासमादिष्टः–दैवनिर्दिष्टः। विधिर्विधानम् त्वदायत्ते–भवदधीनीकृते। अलं समर्थः। त्वां भवन्तं मित्रगुप्तमित्यर्थः। अतिक्रम्योल्लंघ्य। मां चन्द्रसेनामित्यर्थः। अवरोद्धुं बलान्निरोद्धुम्। तत् तस्मात्। सहतां अपेक्षताम्। अयं–कोशदासः। मां मित्रगुप्तम्। आमन्त्र्य आभाष्य। प्रियं–दयितं कोशदासमिति यावत्। उपगूह्य आलिंग्य। प्रत्ययासीत् प्रतिगता।

(१४) तदुक्तानुसारेण–चन्द्रसेनावचनानुसारेण। बहु अनेकप्रकारम्। विकल्पयतोः–जल्पतोः विशेषणमिदम् मम च कोशदासस्य चेत्यनेन चकाराक्षिप्तस्य

अभिलाष कर रही थी, इसी कारण कामदेव क्रोधसे राजकन्याको पीड़ित कर रहा है। राजकुमारीके भावको जाननेवाली मैं इन बातोंको अपनी मातासे कहूंगी, मेरी माता राजकुमारीकी मातासे कहेंगी और वे राजमाता अपने पतिसे निवेदित करेंगी। इन बातोंको ज्ञातकर राजा अपनी पुत्रीका विवाह आपसे कर देंगे। तत्पश्चात् यह राजपुत्र आपके ही अधीन हो जायगा। क्योंकि देवताने यही विधानकी आज्ञा दी है। जब यह राज्य आपके अधिकारमें हो जायगा, तब यह राजपुत्र भीमधन्वा आपकी आज्ञाका उल्लंघन करके मुझे रोक नहीं सकता—विवाह करनेसे। अत एव तीन–चार दिनोंके कष्टोंको और झेलना चाहिये। ऐसे वाक्य मुझसे कहकर तथा अपने प्रियका आलिङ्गन करके वह चन्द्रसेना चली गयी।

(१४) हम लोगोंने, उसी चन्द्रसेनाके कथनानुसार उसके वाक्योंपर विचार विनिमय

कथंचिदक्षीयत क्षपा। क्षपान्ते च कृतयथोचितनियमस्तमेव प्रियादर्शनसुभगमुद्यानोद्देशमुपागतोऽस्मि। तत्रैव चोपसृत्य राजपुत्रो निरभिमानमनुकूलाभिः कथाभिर्मामनुवर्तमानो मुहूर्तमास्त। नीत्वा चोपकार्यामात्मसमेन स्नानभोजनशयनादिव्यतिकरेणोपाचरत्। तल्पगतं च स्वप्नेनानुभूयमानप्रियादर्शनालिङ्गनसुखमायसेन निगडेनातिबलवद्बहुपुरुषैः पीवरभुजदण्डोपरुद्धमबन्धयन्माम्।

(१५) प्रतिबुद्धं च सहसा मामभ्यधात्—'अयि दुर्मते, श्रुतमालपितं

द्विवचनस्य। कथंचित्केनापि प्रकारेण-अतिकष्टेनेति भावः। अक्षीयत-प्रभातोऽभवत्। क्षपा रात्रिः। क्षपान्ते निशावशाने। कृतेति-कृताः सम्पादिता यथोचिता विहिता नियमाः प्रातःकृत्यादिक्रिया येन सः। तं पूर्वदृष्टम्। प्रियेति-प्रियायाः कन्दुकावत्या दर्शनेनावलोकनेन सुभगं मनोरमम्। उद्यानोद्देशम् उपवनप्रदेशम्। उपागतः प्राप्तः। तत्रैव उपवने। राजपुत्रः भीमधन्वा। निरभिमानमहङ्कारशून्यं यथा तथा। अनुकूलाभिः मदभिलषिताभिः। कथाभिर्वार्त्तालापैः। अनुवर्तमानः-मामुपचरन्। आस्त अतिष्ठत्। नीत्वा प्रापय्य मामिति शेषः। उपकार्यां राजसदनम्। आत्मसमेन स्वानुरूपेण। स्नानेति-स्नानभोजनशयनादीनां व्यतिकरः प्रबन्धस्तेन। उपाचरत्-मामसेवत। तल्पगतं शय्यास्थं शयितमिति यावत्। स्वप्नेन स्वप्नावस्थया। अनुभूयमानमनुभवविषयीकृतं प्रियायाः कन्दुकावत्या दर्शनालिङ्गनयोः सुखं येन तथाभूतम्। मामित्यस्य विशेषणद्वयम्। आयसेन लोहमयेन। निगडेन श्रृङ्खलेन। अतिबलवद्भिर्महाशक्तिशालिभिर्बहुभिरनेकैः पुरुषैः करणभूतैः। पीवरेति-पीवराभ्यां मांसलाभ्यां भुजदण्डाभ्यामुपरुद्धं निरुद्धं यथा तथा। अबन्धयत् बन्धनं प्रापितवान्।

(१५) प्रतिबुद्धं जागरितं मामिति शेषः। दुर्मते दुष्टबुद्धे। सम्बोधनपदमे-

---

करते हुए, रात व्यतीत की। प्रभात होनेपर मैं यथाविधि नित्यकृत्य करके उसी बगीचेमें जा पहुंचा जहाँपर राजपुत्रीके दर्शन हुए थे। उसी बगीचेमें राजपुत्र भीमधन्वा भी आ गया और मेरे अनुकूल कथाएं सुनाता हुआ मेरे पास निरभिमान होकर कुछ समयतक बैठा रहा। फिर मुझे राजसदनमें ले जाकर अपने सदृश स्नान, भोजन और शयन आदिसे मेरा राजकुमारोचित स्वागत किया। शय्यापर सो जानेपर मैंने स्वप्नमें देखा कि मैंने राजकन्याके साथ रमणकर उसके आलिंगन सुखको प्राप्त किया। तथा लोहेकी हथकड़ियोंसे मैं बहुत बलवान् राजपुरुषों द्वारा, जिनकी भुजाएं बड़ी मोटी हैं, बन्दी बना दिया गया हूं।

(१५) जागनेपर मैं सम्बोधित किया गया—'हे दुर्बुद्धे! मन्दभाग्या चन्द्रसेनाकी

हतायाश्चन्द्रसेनाया जालरन्ध्रनिःसृतं तच्चेष्टावबोधप्रयुक्तयानया कुब्जया, त्वं किलाभिलषितो वराक्या कन्दुकावत्या तव किलानुजीविना मया स्थेयम, त्वद्वचः किलानतिक्रमता मया चन्द्रसेना कोशदासाय दास्यते' इत्युक्त्वा पार्श्वचरं पुरुषमेकमालोक्याकथयत्—'प्रक्षिपैनं सागरे' इति। स तु लब्धराज्य इवातिहृष्टः 'देव, यदाज्ञापयसि' इति यथादिष्टमकरोत्।

(१६) अहं तु निरालम्बनो भुजाभ्यामितस्ततः स्पन्दमानः किमपि काष्ठं दैवदत्तमुरसोपश्लिष्य तावदप्लोषि, यावदपासरद्वासरः शर्वरी च सर्वा। प्रत्युषस्यदृश्यत किमपि वहित्रम्। अमुत्रासन्यवनाः ते मामुद्धृत्य

तत्। आलपितं भाषितम्। हताया मन्दभागिन्याः। जालरन्ध्रनिःसृतं गवाक्षच्छिद्रनिर्गतम् आलपितमित्यस्य विशेषणम्। कथमिति? तच्चेष्टेति। तस्याश्चन्द्रसेनायाश्चेष्टावबोधाय ईहितज्ञानाय प्रयुक्तया नियुक्तया। कुब्जया—हीनाङ्गया कयाचित् स्त्रिया। किं श्रुतमिति चेत्—त्वं किलेत्यादि। वराक्या हतभाग्यया। अनुजीविना—त्वदायत्तजीवितेन। मया भीमधन्वना। स्थेयं स्थातव्यम्। त्वद्वचः तव मित्रगुप्तस्य वाक्यम्। अनतिक्रमता—अलङ्घयता। मया भीमधन्वनेत्यर्थः। अत्र किल शब्दा असम्भाव्यार्थबोधकाः। पार्श्वचरं—समीपवर्त्तिनम्। एनं मित्रगुप्तम्। सः पुरुषः। यथादिष्टमादेशानुरूपं सागरप्रक्षेपम्।

(१६) अहं मित्रगुप्तः। निरालम्बनः निराश्रयः। स्पन्दमानः—सञ्चलन्। उरसा वक्षसा। उपश्लिष्य आलिङ्ग्य। तावत्—तावत्कालपर्यन्तम्। अप्लोषि—प्लवमानोऽभवम्। 'प्लुङ्' प्लवने इत्यस्य धातोर्लुङि उत्तमपुरुषैकवचने रूपम्। यावत्—यावता कालेन। अपासरत्—अत्यक्रामत्। सर्वा शर्वरी निखिला रात्रिश्चापासरदिति शेषः। प्रत्युषसि प्रभाते। अदृश्यत—दृष्टमभवत्। वहित्रं जलयानम्।

बातोंको मैंने एक कुब्जाद्वारा सुना, जिसने खिड़कीके छेदोंसे चन्द्रसेनाकी बातें श्रवण की थीं कि, हतभागिनी कन्दुकावती मेरी भगिनी तुम्हें चाहती है। अतः मैं तेरे अधीन होकर रहूँगा। और तेरे कथनानुसार मैं चन्द्रसेनाको कोशदाससे उद्वाहित कर दूंगा।' ऐसा कह कर उसने अपने समीपके एक नौकरको देखकर कहा—'इस मित्रगुप्तको समुद्रमें फेंक दो।' उस राजभक्त नौकरने (सेवकने) राज्यप्राप्तिके सदृश प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा—'जैसी प्रभुकी (आपकी) आज्ञा।' और मुझे यथादेश समुद्रमें फेंक दिया।

(१६) निराश्रित होकर मैं बंधी हुई भुजाओंको सञ्चालित करता हुआ समुद्रमें इधर-उधर डूबता हुआ बह रहा था कि, दैववशात् मुझे एक काठ मिल गया। उस काठको वक्षःस्थलसे लगाकर मैं एक दिन और एक रात तैरता ही रह गया। दूसरे दिन

रामेषु नाम्ने नाविकनायकाय कथितवन्तः–'कोऽप्ययमायसनिगडबद्ध एव जले लब्धः पुरुषः। सोऽयमपि सिञ्चेत्सहस्रं द्राक्षाणां क्षणेनैकेन' इति। अस्मिन्नेव क्षणे नैकनौकापरिवृतः कोऽपि मद्गुरभ्यधावत्। अबिभयुर्यवनाः। तावदतिजवा नौकाः श्वान इव वराहमस्मत्पोतं पर्यरुत्सत। प्रावर्तत संप्रहारः। पराजयिषत यवनाः। तानहमगतीनवसीदतः समाश्वास्यालपिषम्—'अपनयत मे निगडबन्धनम्। अयमहमवसादयामि वः सपत्नान्' इति।

अमुत्र-अस्मिन् वहित्रे। आसन्-अतिष्ठन्। यवना म्लेच्छाः। ते यवनाः। उद्धृत्य जलादुत्थाप्य। नाविकनायकाय–नाविकाधिपतये। आयसनिगडबद्धः लौहशृङ्खलनियमितः। सोऽयं–पुरुषः। द्राक्षाणां मृद्वीकालतानां सहस्रं एकेन क्षणेन सिञ्चेत् आर्द्रीकुर्यात्। अयं यावान् बलिष्ठो दृश्यते तथा तर्कयामः क्षणमात्रेणायं द्राक्षाणां सहस्रं सेक्तुं समर्थ इति भावः। अथवा–अस्य विनिमयेनास्माभिर्द्राक्षाणां सहस्रं लप्स्येतेति भावः। नैकनौकापरिवृतः–अनेकक्षुद्रतरणीवेष्टितः। मद्गुः युद्धपोतः। अबिभयुः भयं प्रापुः। ञिभी भये इत्यस्य भीधातोर्लङि रूपम्। अतिजवाः वेगवत्यः। श्वानः कुक्कुराः। वराहं शूकरम्। कुक्कुरा यथा वराहं रुन्धन्ति तद्वदित्यर्थः। अस्माकं पोतं वहित्रम्। पर्यरुत्सत समन्तात् रुरुधुः। परिपूर्वकाद् रुधधातोर्लुङ् प्रावर्त्तत प्रारभत। सम्प्रहारो युद्धम्। पराजयिषत-पराजिता अभूवन्। तान् यवनान् पराजीयमानानिति शेषः। अहं मित्रगुप्त इत्यर्थः। अगतीन् अशरणान्। अत एव अवसीदतः–नैराश्यं गतान्। आलपिषम्। अवोचम्। अपनयत-अपसारयत दूरीकुरुतेति यावत्। अवसादयामि–नाशयामि। सपत्नान् शत्रून्।

उषाकालमें मुझे एक नाव (नौका) दिखायी दी। उस नावके ऊपर यवन लोग बैठे हुए थे। उस यवनोंने मुझे जलसे बाहर निकालकर राम नामके नाविकोंके अधिपतिसे कहा—"लोहेकी सिकड़ियोंसे परिबद्ध यह मनुष्य जलमें बह रहा था, इसको हम लोगोंने निकाला है। इसे इतनी शक्ति है कि यह एक ही क्षणमें हजार द्राक्षाकी लताओंको सींच सकता है। उसी समय अनेक नावोंके साथ एक युद्धक नौका, जिसका नाम 'मद्गु' था, अनेक योधाओंके सहित वहांपर आ गयी। उन योधाओंको देखकर वे सब यवन भयान्वित हो गये। और उन वीर पुरुषोंसे युक्त नावोंने मेरी नावको ऐसे चारों ओरसे घेर लिया जैसे शिकारी कुत्ते सूअरको घेर लिया करते हैं। संग्राम भी होने लगा। यवन लोग पराजित हो गये। नैराश्यको प्राप्त होनेवाले तथा शरणहीन उन यवनोंको

(१७) अमी तथाकुर्वन् सर्वांश्च तान्प्रतिभटान्भल्लवर्षिणा भीमटंकृतेन शार्ङ्गेण लवलवीकृताङ्गानकार्षम् । अवप्लुत्य हतविध्वस्तयोधमस्मत्पोतसंसक्तपोतममुत्र नाविकनायकमनभिसरमभिपत्य जीवग्राहमग्रहीषम् । असौ चासीत्स एव भीमधन्वा । तं चाहमवबुध्य जातव्रीडमब्रवम्-'तात, किं दृष्टानि कृतान्तविलसितानि' इति ।

(१८) ते तु सांयात्रिका मदीयेनैव शृङ्खलेन तमतिगाढं बद्ध्वा

(१७) अमी यवनाः । तथा अकुर्वन्-मदुक्तमाचरितवन्तः मम बन्धनमपानयन्नित्यर्थः । तान् पूर्वोक्तान् । प्रतिभटान् प्रतियोद्धॄन् शत्रूनिति यावत् । भल्लवर्षिणा-बाणवृष्टिं कुर्वता । भीमटंकृतेन-भीमं भयङ्करं टङ्कृतं टङ्कारध्वनिर्यस्य तेन । विशेषणद्वयं शार्ङ्गेणेत्यस्य । शार्ङ्गेण धनुषा । लवलवीकृताङ्गान्-खण्डखण्डीकृतदेहान् । अकार्षं कृतवानहमिति शेषः । अवप्लुत्य निपत्य । हतेति-हता मारिता विध्वस्ताः पातिता योधा भटा यस्मिंस्तत् । अस्मदिति-अस्माकं पोते वहित्रे संसक्तं लग्नं पोतं शत्रुपक्षीयं वहित्रम् । अवप्लुत्येत्यस्य कर्म । अमुत्र पोते । अनभिसरमसहायम् । अभिपत्य आक्रम्य । जीवग्राहं जीवन्तमेव गृहीत्वेति णमुल् । असौ नाविकनायकः । स एव पूर्वोक्त एव । अवबुध्य ज्ञात्वा । जातव्रीडं लज्जितम् । तातेति सोपहाससम्बोधनम् । कृतान्तविलसितानि-दैवचेष्टितानि । कृतान्तो यमसिद्धान्त दैवाकुशलकर्मस्वित्यमरोक्तेः ।

(१८) सांयात्रिकाः पोतवणिजो यवनाः मदीयेनैव-येन शृङ्खलेन मामबध्नं-

मैंने आश्वासन देकर कहा—'मेरी लोहेकी सिकड़ी काट दो । मैं आपके शत्रुओंका विनाश कर दूंगा ।'

(१७) उन यवनोंने मुझे बन्धन रहित कर दिया । बन्धनहीन होकर मैंने उन शत्रुओंके योधाओंपर घोर एवं भयंकर धनुष टंकारोंसे बाणवर्षा की और बाणोंद्वारा उनकी देह खण्ड-खण्ड कर डाली । जब शत्रुपक्षी योधागण आहत हो गये और उनकी नाव मेरी नावके समीप आ गयी (पास आकर युद्ध करने लगी) तब मैं अपनी नावसे उनकी नावपर कूद पड़ा तथा उनकी नावपर से नाविकोंके अधिपतिको असहाय करके जीवित पकड़कर ले आया । यह पकड़ा हुआ शत्रुनायक वही भीमधन्वा था जिसने मुझे देखकर लज्जान्वित होकर कहा—'हे तात ! आपने दैवी विचित्र गतिको देखा ।'

(१८) नावपरके यवन व्यापारियोंने, मेरे ही बन्धनसे मुक्त लौह शृंखलासे उस भीमधन्वाको बन्दी बना लिया और हर्षसे उत्कास ध्वनि करते हुए मेरी पूजा की ।

हर्षकिलकिलारवमकुर्वन्मां चापूजयन्। दुर्वारा तु सा नौरननुकूलवातनुन्ना दूरमभिपत्य कमपि द्वीपं निबिडमाश्लिष्टवती। तत्र च स्वादु पानीयमेधांसि कन्दमूलफलानि संजिघृक्षवो गाढपातितशिलावलयमवातराम। तत्र चासीन्महाशैलः। सोऽहम् 'अहो रमणीयोऽयं पर्वतनितम्बभागः, कान्ततरेयं गन्धपाषाणवत्युपत्यका, शिशिरमिदमिन्दीवरारविन्दमकरन्दबिन्दुचन्द्रकोत्तरं गोत्रवारि, रम्योऽयमनेकवर्णकुसुममञ्जरीभरस्तरुवनाभोगः' इत्यतृप्ततरया दृशा बहुबहु पश्यन्नलक्षिताध्यारूढक्षोणीधरशि-

स्तेनैवेत्यर्थः। तं भीमधन्वानम्। हर्षकिलकिलारवं-हर्षजनिताव्यक्तध्वनिम्। दुर्वारा अप्रतिरोध्या। नौः तरिः। अननुकूलेति-अननुकूलेन प्रतिकूलेन वातेन वायुना नुन्ना प्रेरिता। अभिपत्य उपेत्य। द्वीपं समन्ततो जलवेष्टितं भूमिभागम्। आश्लिष्टवती प्राप्तवती। तत्र द्वीपे। स्वादु मधुरम्। पानीयं जलम्। एधांसि काष्ठानि। सञ्जिघृक्षवः संग्रहीतुकामाः। गाढेति-गाढमतिदृढं पातितानि जले निःक्षिप्तानि शिलावलयानि वलयाकारपाषाणानि 'लङ्गर' इति भाषाप्रसिद्धानि यस्मिंस्तद् यथा तथेति क्रियाविशेषणम्। अवातराम-अवतीर्णा द्वीपे इति शेषः। तत्र द्वीपे। महाशैलः विशालः पर्वतः। पर्वतनितम्बभागः शैलमध्यप्रदेशः कटक इति यावत्। कान्ततरा अतिमनोरमा। गन्धपाषाणवती मनःशिलादिधातुमयी। उपत्यका पर्वतासन्नभूमिः। उपत्यकाद्रेरासन्ना भूमिरूर्ध्वमधित्यकेति कोषः। शिशिरं शीतलम्। इन्दीवरेति-इन्दीवराणां नीलकमलानामरविन्दानां कमलानाञ्च मकरन्दबिन्दुभिर्मधुकणैश्चन्द्रकोत्तरं मेचकप्रचुरम्। जले तैलादिपतनेन मयूरबर्हवन्नानावर्णं तज्जलं भवतीति प्रसिद्धम्। गोत्रवारि पर्वतनिर्झरसलिलम्। अनेकवर्णेति-अनेकवर्णानां नानाविधानां कुसुममञ्जरीणां पुष्पवल्लरीणां भरोऽतिशयो यत्र सः। तरुवनाभोगः वृक्षप्रधानारण्यविस्तारः। अतृप्ततरया सतृष्णया। दृशा चक्षुषा।

प्रतिकूल वायु चलनेसे वह मेरी नाव अप्रतिरोधित होकर बहती हुई एक द्वीपके किनारेपर लगी। उस द्वीपसे स्वादिष्ट जल और काठ तथा कन्द-मूल-फलोंको एकत्रकर नावपर धरनेकी इच्छासे नाविकों (मल्लाहों) ने एक बड़ा भारी लंगर डालकर नाव रोक दी और उस द्वीपमें उतर पड़े। उस द्वीपमें एक विशाल पर्वत था। मैंने कहा—'इस पर्वतका मध्य प्रदेश अति रमणीय है। इस पर्वतकी उपत्यका गन्ध-पाषाणवती है तथा अति मनोरम है। इस पर्वतका जल शीतल है तथा कमलों एवं नीलकमलोंसे परिपूर्ण होते हुए नानावर्णवाला स्वच्छ है। अर्थात्-इसके झरनोंका जल अत्यन्त विशद है। इस शैलमें, अनेक वर्णोंके पुष्पोंकी मञ्जरियोंसे परिपूर्ण तथा मनोहर वृक्षावलीसे युक्त वनस्थल हैं।' ऐसी पर्वतीय शोभाको देखती हुई मेरी आंखें तृप्ति नहीं पा रही

खरः शोणीभूतमुत्प्रभाभिः पद्मरागसोपानशिलाभिः किमपि नालीकपराग-धूसरं सरः समध्यगाम् ।

(१९) स्नातश्च कांश्चिदमृतस्वादून्बिसभङ्गानास्वाद्य, अंसलग्नकह्लारस्तीरवर्तिना केनापि भीमरूपेण ब्रह्मराक्षसेनाभिपत्य 'कोऽसि, कुतस्त्योऽसि' इति निर्भर्त्सयताभ्यधीये । निर्भयेन च मया सोऽभ्यधीयत-'सौम्य, सोऽहमस्मि द्विजन्मा । शत्रुहस्तादर्णवम् , अर्णवाद्यवननावम् , यवननावश्चित्रग्रावाणमेनं पर्वतप्रवरं गतः, यदृच्छयास्मिन्सरसि विश्रान्तः, भद्रं

बहुवहु असकृत्=वारंवारमिति यावत् । अलक्षितेति-अलक्षितमविदितं यथा तथा अध्यारूढं शोणीधरस्य पर्वतस्य शिखरं येन सः । शोणीभूतं रक्तीकृतम् । उत्प्रभाभिः उद्गतकान्तिभिः । पद्मरागसोपानशिलाभिः मरकतमयसोपानपंक्तिभिः । शोणीभूतमित्यनेनान्वयः । किमपि-अनिर्वाच्यम् । नालीकेति-नालीकानां पद्मानां परागैः किञ्जल्कैर्धूसरं धूम्रवर्णं सरः सरोवरम् । समध्यगाम् प्राप्तवान् ।

(१९) स्नातः तत्र कृतस्नानः । अहमिति शेषः । अमृतस्वादून् सुधामधुरान् । बिसभङ्गान्-मृणालखण्डान् । आस्वाद्य उपभुज्य । अंसेति-अंसयोः स्कन्धयोर्लग्नं सक्तं कल्हारं जलजविशेषो यस्य सः । तादृशोऽहं तीरवर्त्तिना सरस्तीरस्थितेन । भीमरूपेण-भीषणमूर्त्तिना ब्रह्मराक्षसेन देवयोनिविशेषेण । अभिपत्य आगत्य । कुतस्त्यः कुत आगतः । निर्भर्त्सयता-तर्जयता । अभ्यधीये उक्तोऽस्मि । स ब्रह्मराक्षसः । अभ्यधीयत उक्तः । द्विजन्मा-ब्राह्मणः । शत्रुहस्तात् वैरिकरात् । अर्णवं समुद्रं गत इति प्रत्येकं सम्बध्यते । यवननावं यवनपोतम् । यवननावः यवनपोतात् । चित्रग्रावाणं-चित्रा मनोहरा ग्रावाणः प्रस्तरा यत्र तादृशम् ।

थीं । अतः मैं पुनः-पुनः उसी शोभाको देखता हुआ अज्ञात पर्वतके शिखर भागपर चढ़ गया । वहांपर, पद्मरागमणिकी शिलाओंकी उत्कृष्ट प्रभासे रक्तीभूत तथा कमलोंके किञ्जल्कोंसे धूसरीभूत एक तालावपर मैं पहुंचा ।

(१९) उस तालावमें स्नान करके मैंने सुधाके समान मधुर मृणालखण्डोंका आस्वादन किया । कन्धेपर जलजविशेषको धारण करनेवाले, मुझसे उस तालावके तीरवर्त्ती किसी भयंकररूपधारी ब्रह्मराक्षसने आकर कहा—'तुम कौन हो, कहांसे आये हो ?' इस प्रकार जब उसने मुझे भयान्वित करते हुए पूछा तो मैंने निःशंक होकर उत्तर दिया—'हे भद्र ! मैं ब्राह्मण हूं । वैरीके हाथसे समुद्रमें फेंका गया । समुद्रसे यवनोंकी नावमें आया गया । यवन नावसे इस श्रेष्ठ पर्वतपर आया हूं । जिसके पत्थर बड़े मनोहर हैं ।

तव' इति । सोऽब्रूत—'न चेद्ब्रवीषि प्रश्नान्, अश्नामि त्वाम्' इति । मयोक्तम्—'पृच्छ तावत् । भवतु' इति ।

(२०) अथावयोरेकयार्ययासीत्संलापः—

किं क्रूरं स्त्रीहृदयं किं गृहिणः प्रियहिताय दारगुणाः ।
कः कामः संकल्पः किं दुष्करसाधनं प्रज्ञा ॥

तत्र धूमिनीगोमिनीनिम्बवतीनितम्बवत्यः प्रमाणम्' इत्युपदिष्टो मया सोऽब्रूत—'कथय, कीदृश्यस्ताः' इति ।

पर्वतप्रवरं शैलश्रेष्ठम् । यदृच्छया स्वेच्छया । भद्रं कुशलमस्तु इति शेषः । ब्रवीषि उत्तरयसि । अश्नामि भक्षयामि ।

(२०) अथ तदनन्तरम् । आवयोः ब्रह्मराक्षसस्य मम च । आर्यया आर्यानामकच्छन्दसा । संलापः परस्परभाषणम् । किं क्रूरमित्यादि—संसारे क्रूरं निष्ठुरं किमिति प्रश्नः । स्त्रीहृदयं कामिनीनां चित्तमेव निष्ठुरमित्युत्तरम् । गृहिणो गृहस्थस्य प्रियं च हितञ्च तस्मै प्रियहिताय गृहस्थानां प्रीतिकरं हितकरञ्च किमिति प्रश्नः । दारगुणाः भार्यागुणाः—गुणवद्भार्यालाभेन गृहस्थानां प्रीतिर्हितञ्च भवतीत्यर्थं इत्युत्तरम् । कामः इष्टसाधनं क इति प्रश्नः । संकल्पो निश्चय इत्युत्तरम् । दुष्करसाधनं दुष्करस्य दुःसाध्यस्य विषयस्य साधनं साधकं किमिति पुनः प्रश्नः । प्रज्ञा बुद्धिरित्युत्तरम् । तत्र तस्मिन् विषये । धूमिनीति-तदाख्याः स्त्रियः । प्रमाणं प्रमाणभूताः । चतुर्णां प्रश्नानां यानि उत्तराणि मया दत्तानि तत्रैता धूमिनीप्रभृतयः प्रमाणमिति भावः । उपदिष्टः कथितः । स ब्रह्मराक्षसः । कीदृश्यः किम्भूताः । ताः धूमिन्यादयः ।

स्वेच्छासे मैंने इस तालावपर विश्रान्ति ली । कहिये, आप तो कुशलसे हैं ?' उस राक्षसने कहा—'यदि इन प्रश्नोंके उत्तर न दोगे तो, मैं तुम्हें खा जाऊँगा ।' मैंने कहा—'कृपया पूछिये, जो होगा देखा जायगा ।'

(२०) तदनन्तर हम दोनोंका सम्भाषण एक आर्यावृत्तसे प्रारम्भ हुआ । उस राक्षसने पूछा—'संसारमें निष्ठुर कौन है ?' मैंने उत्तरमें कहा—'स्त्रीका हृदय ।' 'गृहस्थोंको हितकर क्या है ?' 'गुणवती स्त्री ।' 'इष्टसाधन क्या है' 'संकल्प ।' 'दुःसाध्यसाधनको कौन करता है ?' 'बुद्धि ।' इन उपर्युक्त उदाहरणोंके प्रमाण धूमिनी, गोमिनी, निम्बवती, नितम्बवती नामक स्त्रियां हैं ।' मेरे ऐसे उत्तरपर वह राक्षस फिर बोला—'कहो वे सब कैसे हुई ?'

(२१) अत्रोदाहरणम्—'अस्ति त्रिगर्तो नाम जनपदः। तत्रासन्गृहिणस्त्रयः स्फीतसारधनाः सोदर्या धनकधान्यकधन्यकाख्याः। तेषु जीवत्सु न ववर्ष वर्षाणि द्वादश दशशताक्षः, क्षीणसारं शस्यम्, ओषध्यो वन्ध्याः, न फलवन्तो वनस्पतयः, क्लीबा मेघाः, क्षीणस्रोतसः स्रवन्त्यः, पङ्कशेषाणि पल्वलानि, निर्निस्यन्दान्युत्समण्डलानि, विरलीभूतं कन्दमूलफलम्, अवहीनाः कथाः, गलिताः कल्याणोत्सवक्रियाः, बहुलीभूतानि तस्करकुलानि, अन्योन्यमभक्षयन्प्रजाः, पर्यलुठन्नितस्ततो बलाकापाण्डु-

(२१) अत्र विषये। तत्र त्रिगर्त्ते। गृहिणो गृहस्थाः। आसन्-वसन्ति स्म। स्फीतसारधनाः-स्फीतं प्रचुरं सारं उत्कृष्टं काञ्चनरत्नादिधनं येषां ते। सोदर्याः सहोदराः। धनकेति-धनकः धान्यकः धन्यकश्चेति तेषां नामानि। तेषु धनकादिषु। जीवत्सु तेषां जीवनकाल इत्यर्थः। द्वादशवर्षाणि द्वादशवर्षाणि यावत्। अत्यन्तसंयोगे द्वितीया। दशशताक्षः सहस्रनेत्र इन्द्र इति यावत्। न ववर्ष-अनावृष्टिरासीत्। क्षीणसारं-क्षीणो नष्टः सारः स्थिरांशो यस्य तत्। ओषध्यो व्रीह्यादयः। वन्ध्याः निष्फलाः। न फलवन्तः फलरहिताः। वनस्पतयो वृक्षाः। क्लीबाः निर्जलाः। क्षीणस्रोतसः-अत्यल्पप्रवाहाः। स्रवन्त्यो नद्यः। पङ्कशेषाणि पङ्कमात्रावशिष्टानि। पल्वलानि तडागानि। निर्निस्यन्दानि-क्षरणरहितानि। उत्समण्डलानि निर्झरसमूहाः। विरलीभूतं स्वल्पीभूतम् अवहीनाः क्षीणाः। कथाः भाषितानि जनानामिति शेषः। गलिताः नष्टाः। कल्याणोत्सवक्रियाः मङ्गलजनकानि उत्सवानुष्ठानानि। बहुलीभूतानि-वृद्धिंगतानि। अन्योन्यं परस्परमभक्षयन् प्रजाः प्रजास्वेकोऽन्यस्य मांसमत्तिस्मेत्यर्थः। पर्यलुठन् लुठन्तिस्म। बलाकापाण्डु-

(२१) मैंने कहा—'इनके उदाहरण सुनाता हूं। एक त्रिगर्त नामका नगर है। उस नगरमें प्रचुर धनशाली तीन सगे भाई रहते थे जिनके नाम धनक, धान्यक और धन्यक थे। उनके जीवनकालमें ही इन्द्रने बारह वर्षोंतक निरन्तर (लगातार) वृष्टि न की। धानकी खेती क्षीण (नष्ट) हो गयी। व्रीह्यादि ओषधियां निष्फल (वन्ध्या) हो गयीं। वृक्षोंमें फल-फूल न रह गये। मेघ जलहीन हो गये। नदियोंका प्रवाह अत्यन्त अल्प हो गया। तालाब आदिमें केवल पंकमात्र (कीचड़) अवशिष्ट रह गया। झरनोंका बहना बन्द हो गया। कन्दमूल-फल आदि की उत्पत्तिमें कमी हो गयी। कथा-पुराण कम पढ़े जाने लगे। मंगलाचारयुक्त श्रेयस्कर अनुष्ठान आदि बन्द हो गये। चोरोंकी वृद्धि हो गयी। प्रजा प्रजाका ही मांस खाने लगी। मनुष्योंके मुण्ड बलाका पंक्तिके तुल्य इधर-उधर पड़े हुए दिखायी देने लगें। बुभुक्षित कौओंका समूह

राणि नरशिरः कपालानि, पर्यहिण्डन्त शुष्काः काकमण्डल्यः, शून्यीभूतानि नगरग्रामखर्वटपुटभेदनादीनि ।

(२२) त एते गृहपतयः सर्वधान्यनिचयमुपयुज्याजाविकं गवलगणं गवां यूथं दासीदासजनमपत्यानि ज्येष्ठमध्यमभार्ये च क्रमेण भक्षयित्वा 'कनिष्ठभार्या धूमिनी श्वो भक्षणीया' इति समकल्पयन्। अथ कनिष्ठो धन्यकः प्रियां स्वामत्तुमक्षमस्तया सह तस्यामेव निश्यपासरत् । मार्ग-

राणि—बलाकावद् बकपंक्तिवत्पाण्डुराणि—शुभ्राणि । नरशिरःकपालानि—मृतमनुष्यमस्तकास्थीनि । पर्यहिण्डन्त—इतस्ततो धावन्तिस्म । शुष्काः निराहारत्वात् क्षीणाः । काकमण्डल्यः वायससमूहाः । नगरं बहुजनावासः, ग्रामः स्वल्पजनस्थानम्, खर्वटं क्षुद्रग्रामः, पुटभेदनं पल्ली ।

(२२) ते एते पूर्ववर्णिताः । गृहपतयः गृहिणो धनकादयः । सर्वधान्यनिचयं निखिलधान्यराशिम् । उपयुज्य भक्षयित्वा । अजाविकम्—अजाश्च अवयश्च तेषां समूहोऽजाविकम् । गृहपालितानजान् छागान् अवीन् मेषांश्चेत्यर्थः । गवलगणं महिषान् । गवां धेनूनां यूथं समूहम् । अपत्यानि पुत्रकन्यादीन् । ज्येष्ठेति-ज्येष्ठस्य धनकस्य मध्यमस्य च धान्यकस्य भार्ये पत्नीद्वयम् । कनिष्ठभार्या कनिष्ठस्य धन्यकस्य पत्नी । श्वः आगामिदिने । समकल्पयन् निर्द्धारितवन्तः । अथ तच्छ्रवणानन्तरम् । प्रियां पत्नीं स्वां स्वकीयाम् अत्तुं भक्षयितुम् । अक्षमः अनुरागादसमर्थः । तया स्वपत्न्या धूमिन्या । निशि रात्रौ । अपासरत् पलायिष्ट । मार्गक्लान्ताम् अध्वश्रान्ताम् । पत्नीमिति शेषः । उद्वहन् स्कन्धे कृत्वा । जगाहे प्रविवेश । स्वमांसेति—स्वस्य निजस्य मांसासृग्भ्यां मांसरुधिराभ्यामपनीते दूरीकृते क्षुत्पिपासे क्षुधातृष्णे यस्यास्ताम् । तां धूमिनीम् । नयन् वहन् । अन्तरे मार्गमध्ये । कमपि—अपरिचि-

इधर-उधर घूमने लगा । नगर, ग्राम, छोटे ग्राम और कसबे सभी वीरान (शून्य) दीखने लगे ।

(२२) उन तीनों गृहपतियोंने (धनक आदिने) अपने घरोंमें धरी हुई अन्न राशिको खा डाला । तदनन्तर भेड़, बकरी, बकरोंको खा डाला । पुनः भैंस, भैंसोंको फिर गौ, बच्छोंको पश्चात् दास, दासियोंको, उसके बाद बच्चे-बच्चियोंको और आखिरीमें बड़े भाईकी स्त्री तथा मझले भाईकी स्त्रीको खा डाला । 'अब छोटे भाईकी औरतको कल खायेंगे' ऐसा निर्धारण किया । परन्तु, छोटे भाई धन्यकने अपनी स्त्रीका भक्षण करना नापसन्द किया और वह धन्यक उसी रातमें स्त्रीके साथ वहांसे भाग निकला । मार्गमें चलनेके परिश्रमसे थकी हुई अपनी प्रियाको वह यदा-कदा कंधे आदिपर

क्रान्तां चोद्वहन् वनं जगाहे । स्वमांसासृगपनीतक्षुत्पिपासां तां नयन्नन्तरे कमपि निकृत्तपाणिपादकर्णनासिकमवनिपृष्ठे विचेष्टमानं पुरुषमद्राक्षीत् ।

(२३) तमप्यार्द्राशयः स्कन्धेनोद्वहन्कन्दमूलमृगबहुले गहनोद्देशे यत्नरचितपर्णशालश्चिरमवसत् । अमुं च रोपितव्रणमिङ्गुदीतैलादिभिरामिषेण शाकेनात्मनिर्विशेषं पुपोष । पुष्टं च तमुद्रिक्तधातुमेकदा मृगान्वेषणाय च प्रयाते धन्यके सा धूमिनी रिरंसयोपातिष्ठत । भर्त्सितापि तेन

तम् । निकृत्तेति–निकृत्तं छिन्नं पाणिपादकर्णनासिकं यस्य तम् । प्राण्यङ्गत्वात् समाहारः । अवनिपृष्ठे भूतले । विचेष्टमानं लुठन्तम् ।

(२३) तं पुरुषम् आर्द्राशयः दयायत्तचित्तः । कन्देति–कन्दानि मूलानि मृगाश्च तैर्बहुले प्रचुरे पूर्णे इत्यर्थः । गहनोद्देशे काननप्रदेशे । यत्नेति–यत्नेन प्रयासेन रचिता निर्मिता पर्णशाला पर्णकुटी येन सः । चिरं दीर्घकालम् । अवसत् धन्यक इति शेषः । अमुं पुरुषम् । इङ्गुदीति–इङ्गुदी फलविशेषस्तस्य तैलं तदादिद्रव्येण रोपितव्रणं शुष्कक्षतम् । आमिषेण मांसेन । आत्मनिर्विशेषम् आत्मतुल्यम् । पुपोष वर्धयामास । उद्रिक्तधातुं पुष्टशरीरम् । रिरंसया रन्तुमिच्छया । उपातिष्ठत–तस्य पुरुषस्य समीपं गतवती । भर्त्सिता–सक्रोधं निवारिता । तेन पुरुषेण । बलात्कारं–बलपूर्वकम् । अरीरमत्–सुरतक्रीडामकरोत् । निवृत्तं वनात्प्रत्यागतम् । उदका-

ढोकर किसी तरह एक गहन वनमें प्रविष्ट हुआ । रास्तेमें जब उसकी प्रियाको भूख-प्यास लगती थी, तो, वह धन्यक उसे अपने मांस–रक्तद्वारा यथाक्रम उसकी क्षुधा–तृषाकी शान्ति करता था । इसी प्रकार जब वह अपनी स्त्रीको लादे हुए चला जाता था, तब मार्गमें उसे एक अपरिचित लूला (पंगु) आदमी दिखायी दिया जो भूमिपर इधर–उधर लुढ़क रहा था ।

(२३) उस दयालु धन्यकने उस पंगुको भी कंधेपर लाद लिया और यत्नसे निर्मित फल–फूल और प्रचुर कन्दमूलवाले अरण्यकी कुटियामें उसे ले आया । वहांपर उसकी, इंगुदीके तैल आदि लगाकर, उसने पूरी तरहसे, सेवा–शुश्रूषा की जिससे उसके शरीरपरके सभी घाव (व्रण) सूख गये । साथ ही मांस और शाकादि वन्य खाद्य पदार्थों द्वारा उसका पालन–पोषण भी किया । एक दिन जब उस धूमिनीका पति हिरणोंकी गवेषणामें वनमें गया हुआ था, तब वह धूमिनी उस पुष्ट शरीर तथा स्तम्भित वीर्यवाले पंगुके समीप आयी और मैथुन (रति) करनेके लिये उससे कहने लगी । उस पंगुद्वारा तिरस्कृता होनेपर भी उस धूमिनीने उससे जबर्दस्ती रति क्रीड़ा की । जब उसका पति धन्यक वनसे लौटकर आया तब उसने (धन्यकने) उससे पीनेके लिये जल मांगा ।

बलात्कारमरीरमत्। निवृत्तं च पतिमुदकाभ्यर्थिनम् 'उद्धृत्य कूपात्पिब, रुजति मे शिरः शिरोरोगः' इत्युदञ्चनं सरज्जुं पुरश्चिक्षेप।

(२४) उदञ्चयन्तं च तं कूपादपः, क्षणात्पृष्ठतो गत्वा प्रणुनोद। तं च विकलं स्कन्धेनोद्वह्य देशाद्देशान्तरं परिभ्रमन्ती पतिव्रताप्रतीतिं लेभे, बहुविधाश्च पूजाः। पुनरवन्तिराजानुग्रहादतिमहत्या भूत्या न्यवसत्। अथ पानीयार्थिसार्थजनसमापत्तिदृष्टोद्धृतमवन्तिषु भ्रमन्तमाहारार्थिनं भर्तारमुपलभ्य सा धूमिनी 'येन मे पतिर्विकलीकृतः स दुरात्मायम्' इति

भ्यर्थिनं जलं याचमानं पातुमिति शेषः। उद्धृत्य निष्कास्य पिब जलमिति शेषः। रुजति पीडयति। इति एवं कथयित्वा। उदञ्चनं जलनिष्कासनपात्रम्। सरज्जुं रज्जुसहितम्। पुरः पत्युरग्रतः। चिक्षेप-प्रक्षिप्तवती।

(२४) उदञ्चयन्तं निष्कासयन्तम्। तं धन्यकम्। अपः जलानि। क्षणात्-अतिसत्वरम्। पृष्ठतः-धन्यकस्य पश्चात्। प्रणुनोद प्रेरितवती। कूपे पातयामासेत्यर्थः। तं पुरुषम्। विकलं हीनाङ्गम्। उद्वह्य-गृहीत्वा। पतिव्रताप्रतीतिं-सतीत्वख्यातिम्। पूजाः सम्मानम्। अवन्तिराजानुग्रहात् उज्जयिन्यधिपतिप्रसादात्। भूत्या समृद्ध्या। पानीयेति-पानीयार्थिनो जलप्रार्थिनो ये सार्थजना वणिजस्तेषां समापत्त्या समागमेन आदौ दृष्टः पश्चादुद्धृत उत्थापितश्च तम्। धन्यकमिति शेषः। अवन्तिषु तदाख्यनगरे। भर्त्तारं पतिं धन्यकमिति यावत्। उपलभ्य दृष्ट्वा। येन

इसपर उस कुलटाने (धूमिनीने) पतिसे कहा—'कुएंसे निकालकर पियो, मेरे शिरमें दर्द है।' और ऐसा कहकर उस धूमिनीने रस्सीके सहित जलपात्रको धन्यकके सम्मुख फेंक दिया।

(२४) जब धन्यक कुंएसे जलपात्रद्वारा जल खींच रहा था। तब उस दुष्टा धूमिनीने उसी समय धीरेसे जाकर अपने पतिकी पीठमें धक्का देकर कुंएमें ढकेल दिया। तदन्तर उस हीनांग (पंगु) को लादे हुए देश-देशान्तर पर्यटन करती हुई उस कुलटाने पति-सेवापरायणाकी ख्याति प्राप्त की। तथा (अनेकों व्यक्तियोंद्वारा) धनादिकी सेवाएं भी प्राप्त कीं—प्रचुर धन भी प्राप्त किया। इसके बाद उज्जयिनीके राजाकी कृपासे प्रभूत ऐश्वर्यवती होकर वहीं रहने लगी। वह कुएँमें गिरा हुआ धन्यक, जलाभिलाषी वणिकोंके द्वारा, उस कुएंसे निकाला गया। कुंएसे निकाले जानेके बाद वह बेचारा भीख मांगता हुआ उज्जयिनीमें पहुँचा। वहांपर आये हुए अपने पति धन्यकको देखकर उस दुष्टाने राजासे प्रार्थना की कि हे राजन्! मेरे पतिको जिस व्यक्तिने लूला-लंगड़ा बनाया

तस्य साधोश्चित्रवधमज्ञेन राज्ञा समादेशयाञ्चकार ।

(२५) धन्यकस्तु दत्तपश्चाद्बन्धो वध्यभूमिं नीयमानः सशेषत्वादायुषः 'यो मया विकलीकृतोऽभिमतो भिक्षुः, स चेन्मे पापमाचक्षीत, युक्तो मे दण्डः' इत्यदीनमधिकृतं जगाद । 'को दोषः' इत्युपनीय दर्शितेऽमुष्मिन्स विकलः पर्यश्रुः पादपतितस्तस्य साधोस्तत्सुकृतमसत्याश्च तस्यास्तथाभूतं दुश्चरितमार्यबुद्धिराचचक्षे । कुपितेन राज्ञा विरूपितमुखी सा दुष्कृत-

जनेनेत्यर्थः । विकलीकृतः हीनाङ्गः कृतः । साधोर्निरपराधस्य । चित्रवधं विचित्रप्रकारेण मरणम् । अज्ञेन तद्वृत्तान्तमजानता । समादेशयाञ्चकार आज्ञापितवती ।

(२५) दत्तेति–दत्तोऽर्पिता पश्चात् पृष्ठे बन्धो बन्धनं यस्य सः । वध्यभूमिं श्मशानम् । सशेषत्वात्–अवशिष्टत्वात् । मया धन्यकेनेत्यर्थः । अभिमतः निर्णीतः । पापमपराधम् । आचक्षीत–कथयेत् । युक्तः उचितः । अदीनं निर्भयं यथा तथा । अधिकृतं–दण्डाधिकारिणम् । जगाद–यो मयेत्यादि दण्ड इत्यन्तं वचनमकथयत् । को दोषः–एवं करणे दोषो नास्तीति उपनीय–त विकलाङ्गमानीय । अमुष्मिन् धन्यके । पर्यश्रुः–परिगतं व्याप्तमश्रुनयनजलं यस्य सः रुदन् इत्यर्थः । सुकृतं उपकारम् । असत्याः पुंश्चल्याः । दुश्चरितं असदाचरणम् । आर्यबुद्धिः निष्पापमतिः । कुपितेन रुष्टेन । विरूपितमुखी–विरूपितं नासाच्छेदनादिना कुत्सितीकृतं

है, वह दुष्ट व्यक्ति आपके नगरमें आजकल आया हुआ है । और उस साधुचरित्र वाले धन्यककी चित्र-वधकी दण्डाज्ञा अवन्तीश्वरसे करवा दी (किन्तु वे राजा उसके पूर्ववृत्तसे अविदित थे) ।

(२५) जब धन्यकके हाथोंको पीछेकी ओर बांधकर राजपुरुषगण श्मशान भूमिपर ले आये, तब आयुके कुछ अवशिष्टताके कारण धन्यकने दण्डाधिकारियों से निःशंक होकर कहा—'हे आर्यगण ! जिस भिक्षुकको मैंने हीनांग (पंगु) बनाया है वह भिक्षु, यदि आकर कह दे कि 'मैंने (धन्यकने) उसे पंगु बनानेका पाप किया है तो मैं दण्ड पानेके योग्य हूं ।' उन दण्डाधिकारियोंने कहा—'इसमें क्या हानि है ।' और वे लोग उस पंगुको वहांपर ले आये । उस पंगुने उस साधुचरितवान धन्यकको देखते ही आंखोंमें आंसू भरकर एवं व्याकुल होकर उसके (धन्यकके) चरणोंको पकड़ लिया–पैरोंमें पड़ गया । और धन्यकके उपकारोंको, उस श्रेष्ठ बुद्धिवाले भिक्षुकने, ज्योंके त्यों उन दण्डाधिकारियोंके सम्मुख कह सुनाया तथा उस पुंश्चली धूमिनीके सम्पूर्ण दुराचरणों को भी कह सुनाया । भिक्षुके कथनके पश्चात्—राजाने क्रोध करके उस दुष्टा

कारिणीकृता श्वभ्यः पाचिका । कृतश्च धन्यकः प्रसादभूमिः । तद्ब्रवीमि—'स्त्रीहृदयं क्रूरम्' इति ।

(२६) पुनरनुयुक्तो गोमिनीवृत्तान्तमाख्यातवान्—'अस्ति द्रविडेषु काञ्ची नाम नगरी । तस्यामनेककोटिसारः श्रेष्ठिपुत्रः शक्तिकुमारो नामासीत् । सोऽष्टादशवर्षदेशीयश्चिन्तामापेदे—'नास्त्यदाराणामननुगुणदाराणां वा सुखं नाम । तत्कथं नु गुणवद्विन्देयं कलत्रम्' इति । अथ परप्रत्ययाहृतेषु दारेषु यादृच्छिकीं संपत्तिमनभिसमीक्ष्य कार्तान्तिको नाम

मुखं यस्याः सा । सा धूमिनी । दुष्कृतकारिणी—असदाचारा । श्वभ्यः कुक्कुरेभ्यः । पाचिका पाककर्त्री । हीनकर्मणि नियुक्तेत्यर्थः । प्रसादभूमिः अनुग्रहपात्रम् ।

(२६) अनुयुक्तः पृष्टः । आख्यातवान् वर्णितवान् मित्रगुप्त इति शेषः । द्रविडेषु मद्रमण्डलान्तर्गतदेशविशेषेषु । तस्यां—काञ्चीनगर्याम् । अनेककोटिसारो बहुकोटिसंख्यकमूलधनवान् । श्रेष्ठिपुत्रः वणिक्तनयः । अष्टादशवर्षदेशीयः अष्टादशवर्षवयस्कः । आपेदे—प्राप्तवान् । अदाराणामपत्नीकानाम् । अननुगुणेति—अननुगुणाः प्रतिकूला दारा येषां तथाभूतानाम् । सुखं नाम नास्ति—'न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणीगृहमुच्यते' 'भार्या चाप्रियवादिनी' इत्याद्युक्तेः—गृहस्थानां भार्याभावे तत्सत्त्वेऽपि तस्याः प्रतिकूलत्वे च गृहसौख्यस्यासम्भव इति प्रसिद्धमिति भावः । तत् तस्मात् । कथं केन प्रकारेण । गुणवत्—गुणवतीम् । विन्देयं लभेय । कलत्रं भार्याम् । परेति—परस्यान्यस्य प्रत्ययेन विश्वासेन आहृतेषु संगृहीतेषु परिणीतेषु इति यावत् । दारशब्दस्य पुंलिङ्गत्वात् बहुवचनान्तत्वाच्चात्र पुंल्लिङ्गत्वं बहुवचनञ्च । यादृच्छिकीं स्वेच्छानुरूपाम् सम्पत्तिं प्रीतिम् । अनभि-

धूमिनीको कुत्सिताङ्गी करके कुत्तोंकी पाचिका (भोजन बनानेवाली) नियुक्त किया । धन्यकको अपना कृपापात्र बनाया । अतएव कहता हूं कि 'स्त्रीका चित्त निष्ठुर होता है' ।

(२६) तत्पश्चात् उस ब्रह्मराक्षसद्वारा पूछे जानेपर मैंने (मित्रगुप्तने) गोमिनीवृत्त-वर्णन करना आरम्भ किया । 'द्रविड़ प्रदेशमें एक कांची नामकी नगरी है उस कांची नगरीमें कई करोड़ोंकी संपत्तिवाला शक्तिकुमार नामक एक वैश्यपुत्र रहता था । वह जब अठारह वर्षका हुआ तब विचारने लगा कि विना स्त्रीके भी सुख नहीं होता तथा विना गुणवती स्त्रीके भी सुख नहीं होता है । इसलिये कैसे गुणवती स्त्री प्राप्त की जाय ? दूसरे पर विश्वास करूं तो उसके द्वारा गुणवती आत्मानुकूल मिले या न मिले—विवाहके पश्चात् कुछ नहीं कर सकता । अतः हस्तरेखाविद् (लक्षणज्ञ) का वेष बनाकर वह

भूत्वा वस्त्रान्तपिनद्धशालिप्रस्थो भुवं बभ्राम । 'लक्षणज्ञोऽयम्' इत्यमुष्मै कन्याः कन्यावन्तः प्रदर्शयांबभूवुः । यां काञ्चिल्लक्षणवतीं सवर्णां कन्यां दृष्ट्वा स किल स्म ब्रवीति—'भद्रे, शक्नोषि किमनेन शालिप्रस्थेन गुणवदन्नमस्मानभ्यवहारयितुम्' इति । स हसितावधूतो गृहाद्गृहं प्रविश्याभ्रमत् ।

(२७) एकदा तु शिविषु पट्टने सह पितृभ्यामवसितमहर्धिमवशीर्णभवनसारां धात्र्या प्रदर्श्यमानां काञ्चन विरलभूषणां कुमारीं ददर्श । अस्यां संसक्तचक्षुश्चातर्कयत्—'अस्याः खलु कन्यकायाः सर्व एवावयवा

समीक्ष्य-अदृष्ट्वा । कार्त्तान्तिकः-कृतान्तं दैवं जानातीति तथा सामुद्रिकः । कार्त्तान्तिको लक्षणज्ञ इति कोषः । नाम भूत्वा-तद्व्याजेन । वस्त्रान्तेति-वस्त्रान्तेन वसनप्रान्तभागेन पिनद्धो बद्धः शालिप्रस्थो धान्यसमुदायो येन सः । भुवं देशान्तरम् । अमुष्मै शक्तिकुमाराय । कन्यावन्तः कन्यापितरः । लक्षणवतीं सुलक्षणाम् । सवर्णां समानजातीयाम् । स शक्तिकुमारः । गुणवत् सुस्वादु । अभ्यवहारयितुं खादयितुम् । हसितावधूतः-कृतोपहासस्तिरस्कृतश्च । अभ्रमत् भ्रमितुमारेभे ।

(२७) शिविषुकावेरीदक्षिणतीरस्थदेशविशेषेषु । पट्टने नगरे । पितृभ्यां जननीजनकाभ्याम् सह साकं अवसिता निःशेषिता महती ऋद्धिः सम्पद् यस्यास्ताम् । मातापितृहीनां नष्टसम्पदञ्चेत्यर्थः । अवशीर्णभवनसारां-जीर्णगृहमात्रावशेषां विनष्टगृहसारधनां वा । धात्र्या उपमात्रा । विरलभूषणां स्वल्पालङ्काराम् । अस्यां कुमार्याम् । संसक्तचक्षुः आबद्धदृष्टिः । मनसि विचारयामास ।

शक्तिकुमार अपने वस्त्रमें प्रस्थपरिमाण धान बांधकर पृथिवीपर घूमने लगा । 'यह हस्तरेखाविशारद है' ऐसा ज्ञात करके कन्याके अभिभावकगण अपनी-अपनी कन्याओंकी हस्तरेखा आदि उसे दिखाने लगे । किसी एक अपने जातिकी (वर्णकी) लक्षणवती कन्याकी हस्तरेखा देखकर उसने कहा—'हे सौम्ये ! क्या इस प्रस्थ परिमाण धानद्वारा आप स्वाद युक्त भोजन बनाकर मुझे खिला सकती हैं ।' उस कन्याने उसपर हंस दिया तथा तिरस्कृत (उपहासित) होकर वह शक्तिकुमार इस घरसे उस घरमें प्रवेश करते हुए भ्रमण करने लगा ।

(२७) भ्रमण करते हुए एक दिन उस शक्तिकुमारने कावेरी नदीके दक्षिण भागके एक नगरमें उपमाता द्वारा प्रदर्शित एक कन्या देखी । जिस कन्याके माता-पिता मर चुके थे और उसके गृहकी सम्पत्ति भी विनष्ट हो चुकी थी, केवल एक टूटा-फूटा घर बचा था और एक-दो आभूषण उसके शरीरपर अलंकृत थे । उस कन्याके ऊपर आबद्ध-

नातिस्थूला नातिकृशा नातिह्रस्वा नातिदीर्घा न विकटा मृजावन्तश्च रक्ततलाङ्गुली यवमत्स्यकमलकलशाद्यनेकपुण्यलेखालाञ्छितौ करौ, समगुल्फसंधी मांसलावशिरालौ चाङ्घ्री, जङ्घे चानुपूर्ववृत्ते पीवरोरुग्रस्ते इव दुरुपलक्ष्ये जानुनी, सकृद्विभक्तश्चतुरस्रः कुकुन्दरविभागशोभी रथाङ्गाकारसंस्थितश्च नितम्बभागः, तनुतरमीषन्निम्नं गम्भीरं नाभिमण्डलम् ,

(२८) वलित्रयेण चालंकृतमुदरम्, उरोभागव्यापिनावुन्मग्नचूचुकौ विशालारम्भशोभिनौ पयोधरौ, धनधान्यपुत्रभूयस्त्वचिह्नलेखालाञ्छि-

---

अवयवा अङ्गानि । विकटाः कर्कशाः । मृजावन्तः—स्वच्छाः । रक्ततलेति—रक्तमरुणं तलं यासां तादृश्योऽङ्गुलयो ययोस्तादृशौ । यवमत्स्येति—यवः शस्यविशेषः मत्स्यो मीनः कमलमब्जं कलशो घटस्तदाद्यनेकपुण्यलेखाभिः शुभसूचकरेखाभिर्लाञ्छितौ चिह्नितौ । समेति—समौ समानौ गुल्फयोः संधी ययोस्तौ । मांसलौ पुष्टौ । अशिरालौ शिरारहितौ । अंघ्री चरणौ जंघे जंघाद्वयम् । आनुपूर्ववृत्ते क्रमशः स्थूले गोपुच्छाकारे । पीवरेति—पीवराभ्यामूरुभ्यां ग्रस्ते आक्रान्ते इव दुरुपलक्ष्ये दुर्दर्शे। तादृशं जानुद्वयमिति शेषः । नितम्बभागः कटिपश्चाद्भागः सकृद्विभक्तः समविभागेन निर्मितः चतुरस्रः सर्वतः शोभमानः । तथा कुकुन्दरयोः नितम्बस्थावर्त्ताकारगर्त्तयोर्विभागेन शोभते एवं शीलः । रथाङ्गस्य चक्रस्याकारेण संस्थितः संनिवेशितः । तनुतरं सूक्ष्मतरम् । ईषन्निम्नं किञ्चिदवनतम् ।

(२८) वलित्रयेण—त्रिवल्या । अलंकृतं शोभितम् । उरोभागव्यापिनौ—समस्तं वक्षोदेशं व्याप्य वर्त्तमानौ । उन्मग्नचूचुकौ—उद्गतकुचाग्रौ । विशालारम्भशो-

---

दृष्टि देखकर मैंने विचार किया—'निश्चय है कि, इस कन्याके अङ्ग न तो मोटे हैं न दुर्बल हैं। यह न नाटी है न लम्बी है। न कठिन स्वभाववाली ही है। और शरीरका रंग भी स्वच्छ है। इसके हाथकी अङ्गुलियोंका तलप्रदेश लाल है। इसके हाथमें यव, मछली, कमल और कलश आदि पुण्य रेखाएं पड़ी हैं। इसके चरण शिरा रहित हैं तथा मांसल (पुष्ट) हैं और इसके गुल्मभाग सन्धिहीन एवं समान हैं। इसकी दोनों जाँघें गोपुच्छाकार हैं। सुश्लिष्ट, मोटे मोटे इसके ऊरू हैं। इसके दोनों घुटने दुर्लक्ष्य हैं। इसका कटिपश्चाद्भाग (नितम्ब भाग) समान भागोंमें विभक्त सब ओर शोभायमान नितम्बस्थित कूपोंसे सुशोभित और चक्राकार रूपमें हैं। कुछ गम्भीर तथा सूक्ष्मतर इसका नाभिमण्डल है।

(२८) इसका उदरदेश त्रिवलियोंसे मनोहर है। समस्त वक्षःस्थलको परिव्याप्त करनेवाले और विस्तीर्णतासे शोभावाले इसके दोनों स्तन हैं। इस कन्याकी लतारूपी

ततले स्निग्धोदरकोमलनखमणी ऋज्वनुपूर्ववृत्तताम्रांगुली संनतांसदेशे सौकुमार्यवत्यौ निमग्नपर्वसंधी च बाहुलते, तन्वी कम्बुवृत्तबन्धुरा च कंधरा, वृत्तमध्यविभक्तरागाधरम् असंक्षिप्तचारुचिबुकम् आपूर्णकठिनगण्डमण्डलं सङ्गतानुवक्रनीलस्निग्धभ्रूलतम् अनतिप्रौढतिलकुसुमसदृशनासिकम्—

(२९) अत्यसितधवलरक्तत्रिभागभासुरमधुरधीरसञ्चारमन्थरायते-

भिनौ-विशालारम्भेणातिविस्तारेण शोभमानौ। पयोधरौ कुचौ। धनधान्येति-धनं वसु च धान्यं शस्यं च पुत्राः सन्ततयश्च तेषां यद्भूयस्त्वं बाहुल्यं तस्य सूचिका याः चिह्नलेखाः रेखाकाराणि चिह्नानि ताभिर्लाञ्छितं शोभितं तलं तलप्रदेशो ययोस्तादृशौ, तथा स्निग्धं मसृणमुदरं मध्यभागो येषां तादृशाः कोमला मृदुला नखा मणय इव ययोस्ते, तथा ऋजवः सरलाः अनुपूर्ववृत्ताः क्रमवर्त्तुलाः ताम्रा रक्तवर्णा अङ्गुलयो ययोस्ते, तथा सन्नतौ नम्रौ अंसदेशौ स्कन्धौ ययोस्तादृशौ, सौकुमार्यवत्यौ मनोहरे तथा निमग्ना ईषदवनताः पर्वणां सन्धयो ययोस्ते। एतानि बाहुलते इत्यस्य विशेषणानि। तन्वी क्षीणा तथा कम्बुवत् शङ्खवत् वृत्ता वर्त्तुला बन्धुरा नतोन्नता कन्धरा ग्रीवा। वृत्तमध्येत्यादि-वृत्तं वर्त्तुलं यन्मध्यं मध्यदेशस्तत्र विभक्तः पृथक्कृतो रागो रक्तिमा यस्मिंस्तादृशोऽधरो यस्मिन् तादृशम्। एतदारभ्य सर्वमाननकमलविशेषणम्। असंक्षिप्तमनल्पं चारु सुन्दरं चिबुकं हनुदेशो यत्र तादृशं तथा आपूर्णं सम्यक्पुष्टं कठिनमशिथिलं गण्डमण्डलं कपोलदेशो यत्र तादृशं तथा संगते परस्परमिलिते अनुवक्रे वक्राकारे नीले कृष्णवर्णे स्निग्धे मसृणे भ्रूलते यत्र तादृशं तथा अनतिप्रौढं नातिविकसितं यत्तिलकुसुमं तत्सदृशी नासिका यत्र तथाविधं तथा—

(२९) अत्यसितो गाढकृष्णः धवलः शुभ्रः, रक्तोऽरुणश्चैवंभूता ये त्रयो-

भुजाएँ अवनत कंधके समीपकी मनोहर सन्धि (जोड़) से निमग्न हैं। जिन भुजाओंमें सीधी, गोल और लाल रङ्गकी अंगुलियाँ हैं। जिन अङ्गुलियोंमें चिकने कोमल नख मणिके समान मालूम पड़ते हैं। धन-धान्य, सन्तानको प्रचुरमात्रामें सूचित करनेवाली रेखाएँ इसके तलप्रदेश (हस्ततल) में विराजमान हैं। इसकी ग्रीवा क्षीण तथा शंखके समान आकारवाली है। गोल मध्यदेशमें विभक्त लाल इसके अधर हैं। बहुत सुन्दर इसकी हनु (चिबुक) है। इसका कपोल प्रदेश अशिथिल (कठिन) है। परस्पर मिली हुई वक्राकार तथा नीली चिकनी इसकी भ्रूलताएं हैं। अविकसित तिलके फूलके समान इसकी नासिका है।

(२९) अत्यन्त कृष्ण, सफेद और लाल तीन भागोंसे देदीप्यमान मधुर, गम्भीर

क्षणम् इन्दुशकलसुन्दरललाटम् इन्द्रनीलशिलाकाररम्यालकपङ्क्ति द्विगुणकुण्डलितम्लाननालीकनाललतितलम्बश्रवणपाशयुगलमाननकमलम् , अनतिभङ्गुरो बहुलः पर्यन्तेऽप्यकपिलरुचिरायामवानेकैकनिसर्गसमः स्निग्धनीलो गन्धग्राही च मूर्धजकलापः। सेयमाकृतिर्न व्यभिचरति शीलम् आसज्जति च मे हृदयमस्यामेव। तत्परीक्ष्यैनामुद्वहेयम्। अविमृश्यकारिणां हि नियतमनेकाः पतन्त्यनुशयपरम्पराः' इति।

भागास्तैर्भासुरे उज्ज्वले मधुरे मनोहरे धीरसञ्चारे अचञ्चलव्यापारे अत एव मन्थरे मन्दे आयते दीर्घे ईक्षणे नेत्रे यत्र तथाभूतं तथा इन्दुशकलमर्धचन्द्रस्तद्वत् सुन्दरं ललाटमलिकं यत्र तादृशं तथा इन्द्रनीलशिला नीलकान्तमणिस्तदाकारा तत्सदृशी रम्या रमणीया अलकपंक्तिः चूर्णकुन्तलश्रेणिर्यत्र तथाभूतं तथा द्विगुणं द्विरावृत्तं यथा तथा कुण्डलितेन कुण्डलीकृतेन म्लानेन ईषन्मलिनेन नालीकनालेन पद्मवृन्तेन ललितं सुन्दरं लम्बं लम्बमानं श्रवणपाशयोः कर्णपाशयोः युगलं द्वयं यत्र तादृशमस्या आननकमलम्। अनतिभङ्गुरः नातिकुटिलः। बहुलः सान्द्रः। पर्यन्ते प्रान्तभागेऽपि। अकपिलरुचिः अपिङ्गलकान्तिः। आयामवान् दैर्घ्ययुक्तः। एकैकेति—एकैकं प्रत्येकं निसर्गेण स्वभावेन समस्तुल्यः तथा स्निग्धो मसृणो नीलः कृष्णश्च। गन्धग्राही सौगन्ध्ययुक्तः। मूर्धजकलापः केशपाशः। सा तादृशी। इयं दृश्यमाना। आकृतिः स्वरूपम्। व्यभिचरति विसंवदति विपर्यासयतीत्यर्थः। शीलं स्वभावम्। आकृतेरनुरूपः स्वभावो भविष्यतीति भावः। आसज्जति—लगति। अस्यां कन्यायाम्। तत्—तस्मात्। परीक्ष्य अशेषतो विमृश्य। एनां कन्याम्। उद्वहेयम् परिणेष्यामीत्यर्थः। यतः अविमृश्यकारिणां हठकारिणाम्। नियतमवश्यम् अनुशयपरम्पराः पश्चात्तापाः। पतन्ति भवन्तीत्यर्थः।

और मन्द गतिसे सुशोभित इसके विशाल नेत्र हैं। अर्धचन्द्रके तुल्य इसका ललाट है। नीलकान्तमणिसे मनोहर इसकी केशश्रेणी हैं। द्विगुणित कुण्डलीकृत, ईषन्मलिन कमलोंसे सुशोभित एवं लम्बमान दोनों कानोंसे परिपूर्ण इसका मुखपद्म है। कुछ टेढ़ा तथा सान्द्र अपिङ्गल कान्तिवान एवं दीर्घ और स्वभावसे ही प्रत्येक स्निग्ध तथा नील द्युतिवाले और सुगन्धिशाली इसके केशकलाप हैं। ऐसी आकृतिवाली स्वभावसे भी बुरी नहीं होती हैं। भली होती है। मेरा हृदय इस कन्यापर आसक्त हो रहा है। अतः इसकी परीक्षा कर इससे परिणय करना चाहिए। अविचारियोंको पीछे अनेकों तरहके पश्चात्ताप करने पड़ते हैं।

(३०) स्निग्धदृष्टिराचष्ट—'भद्रे, कच्चिदस्ति कौशलं शालिप्रस्थेनानेन संपन्नमाहारमस्मानभ्यवहारयितुम्' इति । ततस्तया वृद्धदासी साकूतमालोकिता । तस्य हस्तात्प्रस्थमात्रं धान्यमादाय क्वचिदलिन्दोद्देशे सुसिक्तसंमृष्टे दत्तपादशौचमुपावेशयत् । सा कन्या तान्गन्धशालीन्संक्षुद्य मात्रया विशोष्यातपे मुहुर्मुहुः परिवर्त्य स्थिरसमायां भूमौ नालीपृष्ठेन मृदु-मृदु घट्टयन्ती तुषैरखण्डैस्तण्डुलान्पृथक्चकार । जगाद च धात्रीम्—'मातः एभिस्तुषैरर्थिनो भूषणमृजाक्रियाक्षमैः स्वर्णकाराः । तेभ्य इमान्दत्त्वा

(३०) स्निग्धदृष्टिः स्नेहपूर्णनयनः । आचष्ट आख्यातवान् शक्तिकुमार इति शेषः । भद्रे कल्याणि । कच्चिदिति प्रश्ने । अनेन मत्करस्थेन शालिप्रस्थेन धान्यराशिना सम्पन्नं सम्पादितमाहारं भोज्यम् अभ्यवहारयितुं भोजयितुं मामिति शेषः कौशलं नैपुण्यमस्ति किमिति प्रश्नः । ततः प्रश्नानन्तरम् । तया कन्यया । साकूतं साभिप्रायम् । आलोकिता दृष्टा । तस्य शक्तिकुमारस्य । आदाय गृहीत्वा । अलिन्दोद्देशे—द्वारोपान्तप्रदेशे । सुसिक्तसंमृष्टे—सुसिक्तो जलेनार्द्रीकृतः संमृष्टः शुद्धीकृतस्तादृशे । दत्तेति—दत्तमर्पितं पादशौचं पादप्रक्षालनार्थंजलं यस्मै तम् । तादृशं शक्तिकुमारमुपावेशयत् । उपवेशितवती वृद्धदासीति शेषः । गन्धशालीन्—गन्धयुक्तान् व्रीहीन् । संक्षुद्य कुट्टयित्वा । मात्रया अंशेन—कियत्परिमाणेनेत्यर्थः । विशोष्य नीरसीकृत्य । आतपे सूर्यकिरणे । परिवर्त्य इतस्ततः सञ्चाल्य । स्थिरसमायां स्थिरायां कठिनायां समायामवन्धुरायाञ्च । नालीपृष्ठेन मुसलविशेषेण । मृदुमृदु मन्दंमन्दम् । घट्टयन्ती मर्दयन्ती । अखण्डैः अभग्नैस्तुषैः धान्यत्वग्भिः । पृथक् चकार तण्डुलान् सम्पादयामास । धात्रीं तां वृद्धदासीम् । एभिरित्यादि—भूषणानामलंकाराणां मृजाक्रियायां परिष्करणे क्षमैः समर्थैरेभिस्तुषैः स्वर्णकाराः भूषणनिर्मातारः अर्थिनः प्रार्थिनः । अलङ्कारशोधनार्थं स्वर्णकारास्तुषान्

(३०) ऐसा सोचकर उस शक्तिकुमारने प्रेमपूर्ण दृष्टिसे उस कन्यासे कहा—'हे कल्याणि ! मेरे समपी एक प्रस्थ परिमाण धान्यराशि है, क्या आपमें इन धान्योंको पकाकर मुझे खिला देनेका नैपुण्य है ? इस प्रश्नपर उस कन्याने अपनी वृद्धा उपमाताको साभिप्राय देखा । तब धात्रीने उस शक्तिकुमारसे प्रस्थ परिमाण धान्य ले लिया तथा अपने द्वारके समीप (दहलीज) में एक जगह जल छिड़ककर, एवं उस जगहको पवित्र बनाकर उस अतिथिको हाथ-पांव धोनेके जलको देकर वहीं बैठा दिया । फिर उस कन्याने उन सुगन्धित धानोंको लेकर कूट डाला और थोड़ी देरतक उन्हें धूपमें फैलाकर इधर-उधर चलाकर सुखा डाला । पुनः ओखलीमें धरकर हलके हाथोंद्वारा मूसलसे कूट-

लब्धाभिः काकिणीभिः स्थिरतराण्यनत्यार्द्राणि नातिशुष्काणि काष्ठानि मितंपचां स्थालीमुभे शरावे चाहर' इति ।

(३१) तथाकृते तया तांस्तण्डुलाननतिनिम्नोत्तानविस्तीर्णकुक्षौ ककुभोलूखले लोहपत्रवेष्टितमुखेन समशरीरेण विभाव्यमानमध्यतानवेन व्यायतेन गुरुणा खादिरेण मुसलेन चतुरललितक्षेपणोत्क्षेपणायासितभुज-

गृह्णन्तीति प्रसिद्धिः। तेभ्यः स्वर्णकारेभ्यः। इमान्–तुषान्। लब्धाभिः तन्मूल्यत्वेन प्राप्ताभिः। काकिणीभिः कपर्दिकाभिः। स्थिरतराणि–सारवन्ति। अनत्यार्द्राणि अनतिसरसानि। किञ्चिदार्द्राणि काष्ठानि मन्दं मन्दं ज्वलन्तीति भावः। नातिशुष्काणि–अतिशुष्ककाष्ठानां शीघ्रदाहभयादनतिनीरसानि। काष्ठानि इन्धनानि। मितम्पचां मितं स्वल्पं पचतीति मितनखे चेति खश्। स्वल्पपाचिनीमित्यर्थः। स्थालीं पाकपात्रम्। उभे शरावे–वर्धमानकद्वयम्। मृत्पात्रयुग्ममिति शेषः। आहर आनय।

(३१) तथाकृते कथनानुसारेण अनुष्ठिते, तत्तद्द्रव्ये आनीते सतीत्यर्थः। तया धात्र्या। अनतीति–अनतिनिम्नो नातिनम्रः उत्तानः ऊर्ध्वमुखो विस्तीर्णश्च कुक्षिरभ्यन्तरभागो यस्य तादृशे। ककुभोलूखले–ककुभेन अर्जुनवृक्षेण निर्मिते उलूखले तण्डुलोत्पादकयन्त्रविशेषे लोहपत्रेति–लोहपत्रेण पत्राकारलोहेन वेष्टितं मुखमग्रभागो यस्य तेन। समशरीरेण तुल्यावयवेन। विभाव्येति–विभाव्यमानं अनुभूयमानं मध्ये मध्यभागे तानवं तनुत्वं कृशत्वमिति यावत्, यस्य तेन। व्यायतेन दीर्घेण। गुरुणा स्थूलेन। खादिरेण खदिरकाष्ठनिर्मितेन। एतत्सर्वं मुसलेनेत्यस्य विशेषणम्। मुसलेन दण्डविशेषेण। चतुरेति–चतुरं चपलं ललितं

दिया। खड़े-खड़े (साबित) चावलके दाने अलग कर डाले और टूटे हुए अलग कर डाले तथा भूसी अलग कर दी। ततः अपनी धात्रीसे बोली—'हे अम्ब! यह भूसी सुनारोंको बेंच दीजिये। क्योंकि वे लोग इससे अपने गहने साफ करते हैं, अतः खरीद लेंगे। इस भूसीके बदले उनसे जो कौड़ी (द्रव्य) प्राप्त होवे उससे न बहुत गीली तथा न बहुत सूखी लकड़ी (ईंधनके लिये) और स्वल्पपाचिनी हडिया एवं दो मिट्टीके ढक्कन ले आइए।'

(३१) वृद्धा उपधात्रीद्वारा उपयुक्त व्यापार सम्पादित होनेपर उस कन्याने उन चावलोंको कुछ गहिरी और ऊर्ध्वमुखवाली ककुभकी (अर्जुन वृक्षकी) बड़ी ओखलीमें रख दिया फिर जिस मूसलमें मुखके ऊपर लोहेकी सामी लगी थी तथा जो बीचमें क्षीण था और ऊपर नीचे सम अवयवी था, जो खदिरकी लकड़ीका बना था। जो लम्बा

मसकृदङ्गुलीभिरुद्धृत्योद्धृत्यावहत्यशूर्पशोधितकणकिंशारुकांस्तण्डुलानसकृदद्भिः प्रक्षाल्य क्वथितपञ्चगुणे जले दत्तचुल्लीपूजा प्राक्षिपत्। प्रश्लथावयवेषु प्रस्फुरत्सु तण्डुलेषु मुकुलावस्थामतिवर्तमानेषु संक्षिप्यानलमुपहितमुखपिधानया स्थाल्यान्नमण्डमगालयत्। दर्व्या चावघट्य मात्रया परिवर्त्य समपक्केषु सिक्थेषु ताम् स्थालीमधोमुखीमवातिष्ठिपत्। इन्धनान्यन्तःसाराण्यम्भसा समभ्युक्ष्य प्रशमिताग्नीनि कृष्णाङ्गारीकृत्य तद्-

यत् क्षेपणं अधःपातनमुत्क्षेपणमूर्ध्वोत्तोलनं ताभ्यामायासितौ क्लेशितौ भुजौ यत्र तद्यथा तथा। असकृद् वारं वारम्। उद्धृत्योद्धृत्य–सञ्चाल्य। अवहत्य संपिष्य। शूर्पेति–शूर्पेण शोधिता दूरीकृताः कणाः क्षुद्रावयवाः किंशारुकाः शस्यशूकानि च येषां तान्–तथाभूतान् तण्डुलान्। असकृत्पुनः पुनः। अद्भिर्जलैः। क्वथितेति–क्वथिते उष्णीकृते पञ्चगुणे तण्डुलापेक्षया पञ्चगुणाधिके। दत्तचुल्लीपूजा–दत्ता अर्पिता चुल्लीपूजा महानसपूजा यया सा। प्राक्षिपत् निक्षिप्तवती। प्रश्लथेति–प्रश्लथाः शिथिलाः क्लिन्ना इति यावत् अवयवा येषां तेषु। प्रस्फुरत्सु–स्पन्दमानेषु। मुकुलावस्थां कठिनभावमतिवर्तमानेषु अतिक्रामत्सु। संक्षिप्य–मन्दीकृत्य। उपहितेति—उपहितं स्थापितं मुखे पिधानमाच्छादनं यस्यास्तया तादृश्या स्थाल्या अन्नमण्डमन्नरसम् अगालयत् निरकासयत्। दर्व्या खजाकया हस्ताकृतिलोहादिदण्डेनेत्यर्थः। अवघट्य आलोड्य। मात्रया अंशेन। परिवर्त्य ऊर्ध्वाधोभावेन सञ्चाल्य। समपक्वेषु समानक्लिन्नेषु। सिक्थेषु भक्तेषु अवातिष्ठिपत्–अवस्थापयामास। इन्धनानि काष्ठानि। अन्तःसाराणि अदग्धान्तराणि। समभ्युक्ष्य आर्द्रीकृत्य। प्रशमिताग्नीनि–निर्वापितानलानि। एतादृशानि काष्ठानि कृष्णाङ्गारीकृत्य अङ्गारान् सम्पाद्य। तदर्थिभ्यः अङ्गारक्रेतृभ्यः। प्राहि-

और भारी भी था। उस मूसलसे उन चावलोंको चपल और ललित कुटान (अधःपतन, ऊर्ध्वतोलन) से बार-बार क्लेशित हाथोंसे—चलाते हुए उन्हें विदारित किया। तत्पश्चात् सूपसे उन्हें पछोरकर कन्ना खुदीको (कण, शस्यशूकोंको) अलग कर चावलोंको खूब धोया। और चावलसे पचगुने तप्त जलमें चूल्हेकी पूजाकर चावल छोड़ दिया। अर्थात् गरम पचगुने जलमें चावलको डाल दिया ताकि पक जायँ। जब चावल पकते हुए ऊपरको उठे और मुकुलावस्था (कोमलावस्था) चुर जानेकी दशाको प्राप्त हुए तब उसने अग्निको मन्दकर चावलकी हड़ियापर ढक्कन ढाँककर चावलके माड़को हड़ियासे पसाकर निकाल दिया। करछुली द्वारा उन चावलोंको नीचे ऊपर चलाकर उस हड़ियाको अधोमुखी कर रख दिया। और आगको पानीसे शान्तकर (बुझाकर) कोयलेको उनके ग्राहकोंको बेचवा दिया। उन कोयलोंके बदले प्राप्त कौड़ियोंको

र्थिभ्यः प्राहिणोत्। 'एभिर्लब्धाः काकिणीर्दत्त्वा शाकं घृतं दधि तैलमामलकं चिञ्चाफलं च यथालाभमानय' इति।

(३२) तथानुष्ठिते च तया द्वित्रानुपदंशानुपपाद्य तदन्नमण्डमार्द्रवालुकोपहितनवशरावगतमति मृदुना तालवृन्तानिलेन शीतलीकृत्य सलवणसंभारं दत्ताङ्गारधूपवासं च संपाद्य, तदप्यामलकं श्लक्ष्णपिष्टमुत्पलगन्धि कृत्वा धात्रीमुखेन स्नानाय तमचोदयत्। तया च स्नानशुद्धया दत्ततैलामलकः क्रमेण सस्नौ। स्नातः सिक्तमृष्टे कुट्टिमे फलकमारुह्य पाण्डुह-

णोत्–अङ्गारार्थिसकाशे विक्रयार्थमङ्गारान् प्रेरितवतीत्यर्थः। एभिरङ्गारैः। लब्धाः विक्रयलब्धाः। काकिणीः कपर्दिकाः। दत्त्वा समर्प्य–तद्विनिमयेन। चिंचाफलं तिन्तिड़ीफलम्। यथालाभं ताभिः काकिणीभिर्यावल्लभ्यं तावदित्यर्थः।

(३२) तया धात्र्या। द्वित्रान् द्वित्रिप्रकारान्। उपदंशान्–व्यञ्जनानि। उपपाद्य सम्पाद्य पक्त्वेति यावत्। आर्द्रेति–आर्द्रवालुकाभिः सरससिकताभिः उपहितं युक्तं यन्नवशरावं तत्र गतं स्थितमिति तदन्नमण्डमित्यस्य विशेषणम्। अतिमृदुना मन्दसञ्चारितेन। शीतलीकृत्य–अनुष्णीकृत्य तदन्नमण्डमिति शेषः। तथा सलवणसंभारं–लवणाद्युपकरणद्रव्यसहितं तथा दत्तः अङ्गारधूपस्य हिङ्ग्वादिधूमस्य वासः सौगन्ध्यं यत्र तत्। तथा सम्पाद्य कृत्वा। तदपि आमलकं यदङ्गारविनिमयेनानीतमित्यर्थः। श्लक्ष्णपिष्टं सम्यक्तया पिष्टम्। तथा उत्पलगन्धि पद्मगन्धयुक्तम्। धात्रीमुखेन धात्रीं संप्रेष्य। स्नानाय–स्नानं कर्तुम्। तं शक्तिकुमारम्। अचोदयत् प्रेषितवती। स्नानशुद्धया स्वयं स्नानं कृत्वा तया कन्यया। दत्तेति–दत्तमर्पितं तैलमामलकं च यस्मै तादृशः स शक्तिकुमार इति शेषः। सस्नौ स्नातवान्। सिक्तमृष्टे आदौ सिक्तं जलेनार्द्रीकृतं पश्चात् मृष्टं शोधितं तस्मिन्। कुट्टिमे बद्धभूमौ गृहाभ्यन्तरे इत्यर्थः। फलकं पीठम्। आरुह्य तत्रोपविश्य।

(धात्रीको) देकर उस कन्याने शाक, घृत, दही, तेल, आंवला, इमली, आदि चीजें जो द्रव्यसे मिल सकीं उतनी मंगा लीं।'

(३२) उस वृद्धाद्वारा उपर्युक्त चीजें लायी जानेपर कई तरहके शाक बना दिये। उस रखे हुए अन्नके माड़को जो सरस वालूके नवीन पात्रमें धरा हुआ था, पंखेकी धीमी हवासे ठण्डा कर दिया। उसमें फिर नमक आदि मिलाकर हींग जीरे आदिसे बघार दिया। उस आंवले आदिको भी पीसकर कमल की सुगन्धिसे परिपूर्ण कर दिया। और इन चीजोंके तैयार हो जानेपर उस कन्याने अपनी धात्रीके मुखसे उस अतिथिको स्नान करनेके लिये कहला दिया। उस कन्याने स्वयं भी स्नान कर उस अतिथिको तेल, आंवला

रितस्य त्रिभागशेषलूनस्याङ्गणकदलीपलाशस्योपरि दत्तशरावद्वयमार्द्रमभिमृशन्नतिष्ठत् । सा तु तां पेयामेवाग्रे समुपाहरत् । पीत्वा चापनीताध्वक्लमः प्रहृष्टः प्रक्लिन्नसकलगात्रः स्थितोऽभूत् । ततस्तस्य शाल्योदनस्य दर्वीद्वयं दत्त्वा सर्पिर्मात्रां सूपमुपदंशं चोपजहार ।

(३३) इमं च दध्ना च त्रिजातकावचूर्णितेन सुरभिशीतलाभ्यां च

पाण्डुहरितस्य—ईषत्पक्वस्य । त्रिभागेति—त्रयो भागा अंशाः शेषा अवशिष्टा यस्मिन् कर्म्मणि तद् यथा तथा लूनस्य छिन्नस्य । अङ्गणेति—अंगणे गृहचत्वरे या कदली रम्भावृक्षः तस्याः पलाशस्य पत्रस्य । आर्द्रं जलक्षालितम् । दत्तं भोजनार्थमर्पितं यत् शरावद्वयं तद् अभिमृशन् हस्तेन स्पृशन् । सा कन्या । पेयां ससिक्थां मण्डमित्यर्थः । पेया सिक्थसमन्वितेति वैद्यकशास्त्रम् । अग्रे आदौ । समुपाहरत् परिवेषितवती । अपनीताध्वक्लमः—दूरीकृतमार्गश्रमः । प्रहृष्टः पानेन तुष्टः । प्रक्लिन्नसकलगात्रः—उष्णमण्डपानात् स्वेदव्याप्तनिखिलावयवः । तस्य पूर्वपाचितस्य । शाल्योदनस्य तण्डुलभक्तस्य । दर्वीद्वयं दर्वीद्वयपरिमाणम् । सर्पिर्मात्रां स्वल्पं घृतम् । सूपं पक्वद्विदलम् । उपदंशं व्यञ्जनम् शाकादीति यावत् । उपजहार—अर्पितवती ।

(३३) इमं शक्तिकुमारम् । त्रिजातकेति—त्रिजातकं सुगन्धिद्रव्यविशेषः—त्रिकटु वा तेनावचूर्णितमालोडितं तेन तादृशेन दध्ना । सुरभिशीतलाभ्यां सुग-

---

आदि अर्पित किया जिन्हें उसने देहमें मर्दनकर स्नान किया । स्नानकर उसने अपनी देह पोंछकर घरके भीतर प्रवेश किया । वहाँपर उसे उसने काष्ठासन (पीढ़ा) पर बैठाया । फिर आंगनमें उत्पन्न हुए पके केलेके पत्तोंको तीन भागोंमें तोड़ लायी अर्थात् पत्तेका एक चौथाई भाग छोड़ दिया । उन पत्तोंके ऊपर जल छिड़क उसने उन मिट्टीके पात्रोंमें रखे हुए माड़को हाथसे स्पर्शित करते हुए परोसना आरम्भ किया और परोसकर उस पेय पदार्थ (माड़) को अतिथिके आगे धर दिया [वैद्यकके अनुसार पेय पदार्थ कुछ उष्ण होना चाहिये ।] उस माड़को पीनेसे अतिथिका सारा मार्गश्रम दूर हो गया और उसके शरीरके सारे अवयव रोमांचित हो गये, चित्त प्रफुल्लित हो गया । तदनन्तर उसने उस अतिथिको पके चावल दो कलछुल पत्तेपर परोस दिये । एवं थोड़ा घी, दाल, शाकादि भी परोस दिया ।

(३३) इस रीतिसे उस कन्याने उस अतिथिको, त्रिकटु अथवा त्रिजातकी सुगन्धि से युक्त पदार्थ, दही, सुगन्धित और शीतल काञ्जी (एक पीनेवाली वस्तु) तथा मट्ठा परोसा जिससे उस अतिथिने खूब भोजन किया । वह अतिथि इन उपकरणोंसे—

कालशेयकाञ्जिकाभ्यां शेषमन्नमभोजयत् । सशेष एवान्धस्यसावतृप्यत् । अयाचत च पानीयम् । अथ नवभृङ्गारसंभृतागुरुधूपधूपितमभिनवपाटलाकुसुमवासितमुत्फुल्लोत्पलग्रथितसौरभं वारि नालीधारात्मना पातयांबभूव । सोऽपि मुखोपहितशरावेण हिमशिशिरकणकरालितारुणायमानाक्षिपक्ष्माधारारवाभिनन्दितश्रवणः स्पर्शसुखोद्भिन्नरोमाञ्चकर्कशकपोलः परिमलप्रवालोत्पीडफुल्लघ्राणरन्ध्रो माधुर्यप्रकर्षावर्जितरसनेन्द्रियस्तदच्छं पानीयमाकण्ठं पपौ ।

निभ्याममनुष्णाभ्यां च । कालशेयं तक्रं काञ्जिकाम्लद्रव्यविशेषः—ताभ्याम् । शेषमवशिष्टम् । सशेषे किञ्चिदवशिष्टे । अन्धसि अन्ने । असौ शक्तिकुमारः । अतृप्यत् तृप्तोऽभवत् । नवभृङ्गारेति—नवे नूतने भृङ्गारे जलपात्रविशेषे सम्भृतं पूरितं तथा अगुरुधूपेन गन्धद्रव्यविशेषेण धूपितं सुगन्धीकृतं अभिनवैः प्रत्यग्रविकसितैः पाटलाकुसुमैर्वासितं सुरभीकृतं तथा उत्फुल्लैर्विकसितैरुत्पलैः ग्रथितं सम्पादितं सौरभं सौगन्ध्यं यस्य तत् । वारि विशेषणमेतत् । भृङ्गारस्य जलनिर्गमनमार्गो नाली तस्या धारात्मना धारारूपेण । पातयाम्बभूव निःक्षिप्तवती । सोऽपि शक्तिकुमारोऽपि । मुखेति—मुखे स्ववदने उपहितो लग्नो यः शरावस्तेन । मुखलग्नशरावे जलं पातितवतीत्यर्थः । हिमशिशिरेत्यादि—हिमवत् तुषारवत् शिशिरैः शीतलैः कणैर्जलबिन्दुभिः करालितानि व्याप्तानि अरुणायमानानि रक्तीभूतानि अक्षिपक्ष्माणि नेत्ररोमाणि यस्य तादृशस्तथा धारारवेण जलपतनशब्देन अभिनन्दिते मुदिते श्रवणे कर्णौ यस्य तादृशस्तथा जलस्पर्शसुखेन उद्भिन्नैः प्रादुर्भूतैः रोमाञ्चैः रोमविकारैः कर्कशौ अमसृणौ कपोलौ गण्डौ यस्य तथाभूतस्तथा परिमलस्य सौरभस्य यः प्रवालोत्पीडः लक्षणया विस्तारस्तेन फुल्ले विकसिते आमोदिते इत्यर्थः घ्राणरन्ध्रे नासाविवरे यस्य तादृशस्तथा माधुर्यस्य भोज्यस्वादस्य प्रकर्षेणाधिक्येन आवर्जितं वशीभूतं रसनेन्द्रियं जिह्वा यस्य तादृशः शक्तिकुमारः । अच्छं निर्मलम् । आकण्ठं कण्ठं यावत् ।

पदार्थोंसे—इतना प्रसन्न हुआ कि उसने पेटभर खाकर भी कुछ थोड़ा अन्न छोड़ दिया—अर्थात् उसकी उतने प्रस्थ परिमाण चावलोंसे खूब तृप्ति हो गयी । ततः उस अतिथिने पानी मांगा । तब उसने अगुरु और पाटल कुसुमों से सुवासित शीतल जल नये घड़ेसे निकालकर करोआकी टोंटीसे देना शुरू किया । वह अतिथि अपने मुंहमें मिट्टीके वर्तनको लगाकर पानी पीने लगा और वह कन्या उस पात्रमें करोआसे पानी डालने लगी । तदनन्तर जलके शीतल स्पर्श सुखके अनुभवसे रोमाञ्चित होकर उसके कपोल प्रदेश कर्कश हो गये । नासिकाके छेद भी सुवासित पदार्थके संसर्गसे प्रमुदित हो उठे ।

(३४) शिरःकम्पसंज्ञावारिता च पुनरपरकरकेणाचमनमदत्त कन्या। वृद्धया तु तदुच्छिष्टमपोह्य हरितगोमयोपलिप्ते कुट्टिमे स्वमेवोत्तरीयकर्पटं व्यवधाय क्षणमशेत। परितुष्टश्च विधिवदुपयम्य कन्यां निन्ये। नीत्वैतदनपेक्षः कामपि गणिकामवरोधमकरोत्। तामप्यसौ प्रियसखीमिवोपाचरत्। पतिं च दैवतमिव मुक्ततन्द्रा पर्यचरत्। गृहकार्याणि चाहीनमन्वतिष्ठत्। परिजनं दाक्षिण्यनिधिरात्माधीनमकरोत्। तद्गुणवशीकृतश्च

(३४) शिरःकम्पेति–शिरसः कम्पेन धूननेन या संज्ञा सङ्केतस्तया वारिता निषिद्धा कन्या अपरकरकेण अन्यभृङ्गारेण आचमनं मुखप्रक्षालनार्थं जलम्। वृद्धया धात्र्या। अपोह्य दूरीकृत्य। हरितगोमयोपलिप्ते प्रत्यग्रगोमयसंमृष्टे। स्वमेव स्वकीयमेव। उत्तरीयकर्पटं उत्तरीयवस्त्रम्। व्यवधाय आस्तीर्य। अशेत निद्रां कृतवान्। विधिवत्–स्वजात्युक्तविधिना। उपयम्य परिणीय। निन्ये स्वगृहं नीतवान्। एतदनपेक्षः एतस्यां कन्यायामनपेक्षः अपेक्षारहित–एतामनादृत्येत्यर्थः। गणिकां वेश्याम्। अवरोधं पत्नीम्। तां गणिकाम्। असौ कन्या। प्रियसखीमिव स्वसहचर्या तुल्यम्। उपाचरत्–व्यवहृतवती। दैवतमिव देवतावत्। मुक्ततन्द्रा–आलस्यरहिता। पर्यचरत् असेवत। अहीनं सुचारु सम्यगिति यावत्। अन्वतिष्ठत् सम्पादयामास। दाक्षिण्यं परच्छन्दानुवर्त्तनं तस्य निधिराधारः–दाक्षिण्यपरायणेत्यर्थः। आत्माधीनं स्ववशीभूतम्। तद्गुणेति–तस्या गुणेन वशीकृत आ-

शीतल जलके माधुर्यातिशयसे जिह्वा तृप्त हो गयी। इस प्रकारके सुवासित स्वच्छ और शीतल जलको उस अतिथिने कण्ठतक पी लिया।

(३४) जब उस अतिथिने, जो अपने मुखमें मिट्टीके पात्रको लगाकर जल पी रहा था और कन्या उस पात्रमें जल गिरा रही थी, अपने शिरको हिलाकर उसे रोका, तब उस कन्याने दूसरे हाथसे दूसरे बरतनसे उसे हाथ धोनेको जल दिया। उसकी धात्रीने उसकी जूठनको हटाकर वहांकी पृथिवीको हरे गोवर से लीप दिया। फिर उस अतिथिने अपने उत्तरीय (दुपट्टे) को बिछा दिया और कुछ देरतक सो गया। इस रीतिकी अतिथि-सेवापर मुग्ध होकर मैंने उस कन्याके साथ यथाशास्त्र विवाह किया और उसको अपने साथ ले आया। ले आने के पश्चात् उस कन्याकी उपेक्षा करके उस शक्तिकुमारने एक वेश्याको पत्नीरूपमें लाकर अपने घरमें बैठा दिया। उस वेश्या के साथ भी उस कन्याने अपनी प्रिय सखीके समान सद्व्यवहार करना प्रारम्भ कर दिया। पतिकी (इतने अपराधपर भी) अपने देवताके तुल्य आलस्यहीना होकर सेवा करती थी। घरेलू धन्धोंको सुचारुरूपेण किया करती थी। दाक्षिण्यपरायणा होकर सभी परिजनोंको

भर्ता सर्वमेव कुटुम्बं तदायत्तमेव कृत्वा तदेकाधीनजीवितशरीरस्त्रिवर्गं निर्विवेश । तद्ब्रवीमि—'गृहिणः प्रियहिताय दारगुणाः' इति ।

(३५) ततस्तेनानुयुक्तो निम्बवतीवृत्तमाख्यातवान्—'अस्ति सौराष्ट्रेषु वलभी नाम नगरी । तस्यां गृहगुप्तनाम्नो गुह्यकेन्द्रतुल्यविभवस्य नाविकपतेर्दुहिता रत्नवती नाम । तां किल मधुमत्याः समुपागम्य बलभद्रो नाम सार्थवाहपुत्रः पर्यणैषीत् । तयापि नववध्वा रहसि रभसविघ्नितसुरतसुखो झटिति द्वेषमल्पेतरं बबन्ध । न तां पुनर्द्रष्टुमिष्टवान् । तद्गृहागमनमपि सुहृद्वाक्यशतातिवर्ती लज्जया परिजहार । तां च दुर्भगां तदा-

---

यत्तीकृतः । कुटुम्बं परिवारम् । तदायत्तं तस्या अधीनम् । तदेकेति—तस्या एकस्या अधीनमायत्तं जीवितं प्राणाः शरीरञ्च यस्य तादृशः । त्रिवर्गं धर्मार्थकामान् । निर्विवेश बुभुजे । तत् तस्मात् । ब्रवीमि कथयामि । गृहिणो गृहस्थस्य । प्रियहिताय प्रियं हितञ्च कर्त्तुम् । दारगुणाः पत्नीगुणा इति ।

(३५) ततः गोमिनीवृत्तान्तश्रवणानन्तरम् । तेन ब्रह्मराक्षसेन । अनुयुक्तः पृष्टः । आख्यातवान् अहमिति शेषः । तस्यां वलभ्याम् । गुह्यकेति—गुह्यकानां यक्षाणामिन्द्रो राजा कुबेरस्तेन तुल्यो विभवो धनं यस्य तादृशस्य । नाविकपतेः पोतवणिजामधिपतेः । तां रत्नवतीम् । मधुमत्याः तदाख्यनगरात् । सार्थवाहपुत्रः वणिक्तनयः । पर्यणैषीत् ऊढवान् । तया पूर्वोक्तया । नववध्वा नवोढया । रभसेति—रभसेन वेगेन बलात्कारेणेति यावत् विघ्नितं व्याहतं सुरतसुखं यस्य सः । मुग्धा सा बलात्कारेण रन्तुं नानुमोदितवतीति भावः । अल्पेतरं अत्यधिकम् । बबन्ध दधार । तद्गृहागमनं रत्नवतीगेहगमनम् । सुहृद्वाक्येति—सुहृदां मित्राणां

वशमें कर लिया । उस पतिपरायणाके गुणोंपर मुग्ध होकर उसके पतिने सम्पूर्ण कुटुम्बका भार उसपर सौंप दिया और उसीके अधीन स्वयं भी होकर धर्म, अर्थ, कामसुखों को भोगने लगा । अतः कहता हूं कि 'गृहस्थोंके प्रियको गुणवती स्त्री कर सकती है ।'

(३५) इसके पश्चात् उस ब्रह्मराक्षस द्वारा पूछे जाने पर मैंने निम्बवतीके चरितको सुनाना प्रारम्भ किया—'सौराष्ट्र प्रदेशमें वलभी नामकी एक पुरी है । इस पुरीमें राजराज कुबेरके समान धनवान् जहाजके व्यापारियोंका एक मुखिया रहता था । जिसकी एक रत्नवती नामकी पुत्री थी । उस कन्याके साथ, मधुमती नामकी नगरी से आये हुए एक बलभद्र नामक वैश्यपुत्रने विवाह कर लिया । उस नवविवाहिता स्त्रीके साथ एकान्तमें [illegible] वह बलभद्र रतिक्रीड़ा करने चला, तो नवीना होनेसे उसने रतिक्रीड़ामें कुछ [illegible] । उस अल्प अपराधने बृहद् रूप धारण कर लिया । यहां तक कि

प्रभृत्येव 'नेयं रत्नवती, निम्बवती चेयम्' इति स्वजनः परजनश्च परिबभूव ।

(३६) गते च कस्मिंश्चित्कालान्तरे सा त्वनुतप्यमाना 'का मे गतिः' इति विमृशन्ती कामपि वृद्धप्रव्राजिकां मातृस्थानीयां देवशेषकुसुमैरुपस्थितामपश्यत् । तस्याः पुरो रहसि सकरुणं रुरोद । तयाप्यश्रुमुख्या बहुप्रकारमनुनीय रुदितकारणं पृष्टा त्रपमाणापि कार्यगौरवात्कथंचिदब्रवीत्–'अम्ब, किं ब्रवीमि, दौर्भाग्यं नाम जीवन्मरणमेवाङ्गनानाम्, विशेषतश्च

वाक्यशतमतिवर्त्तते अतिक्रामतीति तथा । सुहृद्वाक्यमशृण्वन्नित्यर्थः । परिजहार तत्याज । दुर्भगां दौर्भाग्यवतीं भर्त्तुरप्रियामित्यर्थः । तदाप्रभृति–तद्दिनादारभ्य । स्वजनः आत्मीयवर्गः परिबभूव तिरश्चकार ।

(३६) सा निम्बवती । अनुतप्यमाना अनुतापं भजन्ती । विमृशन्ती विचारयन्ती । मातृस्थानीयां मातृतुल्याम् । वृद्धप्रव्राजिकां स्थविरसंन्यासिनीम् । देवशेषकुसुमैः निर्माल्यपुष्पैरुपलक्षिताम् । उपस्थितां तत्रागताम् । तस्याः वृद्धप्रव्राजिकायाः । पुरः अग्रे । रुरोद विललाप । तया प्रव्राजिकया । अश्रुमुख्या बाष्पपूर्णवदनया । अनुनीय सान्त्वयित्वा । रुदितकारणं रोदनहेतुम् । पृष्टा सा निम्बवती । त्रपमाणा लज्जावती । कार्यगौरवात् स्वप्रयोजनस्यावश्यवक्तव्यत्वात् । कथञ्चित् केनापि प्रकारेण । जीवन्मरणं मृत्युतुल्यम् । तस्य दौर्भाग्यस्य । उदाहरणभूता दृष्टान्त-

---

वह वैश्यपुत्र बलभद्र उस रत्नवतीको देखना भी नहीं पसन्द करता था । उस वैश्यपुत्रने उस रत्नवती के घरपर आना जाना भी छोड़ दिया और मित्रोंके सैकड़ों बार समझाने पर भी धृष्टतासे उनकी बातें न सुनता था । फिर उस मन्दभाग्या रत्नवतीको परिजन और स्वजन सभी घृणाकी दृष्टिसे देखने लगे और कहने लगे कि 'यह रत्नवती नहीं, अपितु निम्बवती है ।'

(३६) कुछ समय बीतनेके पश्चात् सन्तप्ता वह रत्नवती 'अब मेरी क्या दशा होगी' ऐसा विचार करती हुई एक वृद्धा संन्यासिनीसे मिली जो देवताओंके चढ़े फूलोंको लिये हुए वहांपर आयी थी । उस संन्यासिनीके आगे वह रत्नवती करुणस्वरसे विलाप करने लगी । उस रोती हुई संन्यासिनीने इसे बहुत तरहसे समझाकर रोनेका कारण पूछा । लज्जान्वित होकर उस रत्नवतीने आवश्यक बात समझकर उस संन्यासिनीसे कहा—'हे माता ! क्या कहूं, महिलाओंको दुर्भाग्यसे रहना जीतेजी मरनेके तुल्य है, प्रधानतः कुलवतियोंके लिये तो और भी । उन्हीं कुलवतियोंके उदाहरणमें मैं एक हूं । माता आदि प्रमुख जन तथा जातिके लोग मेरा तिरस्कार करते हैं । अतः

कुलवधूनाम् । तस्याहमस्म्युदाहरणभूता । मातृप्रमुखोऽपि ज्ञातिवर्गो मामवज्ञयैव पश्यति । तेन सुदृष्टां मां कुरु । न चेत्त्यजेयमद्यैव निष्प्रयोजनान्प्रणान् । आविरामाच्च मे रहस्यं न श्राव्यम्' इति पादयोः पपात ।

(३७) सैनामुत्थाप्योद्बाष्पोवाच—'वत्से माध्यवस्यः साहसम् । इयमस्मि त्वन्निदेशवर्तिनी । यावति मयोपयोगस्तावति भवास्यनन्याधीना । यद्येवासि निर्विण्णा तपश्चर त्वं मदधिष्ठिता पारलौकिकाय कल्याणाय । नन्वयमुदर्कः प्राक्तनस्य दुष्कृतस्य, यदनेनाकारेणेदृशेन शीलेन

स्वरूपा । मातृप्रमुखः जनन्यादिः । अवज्ञयैव अनादरेणैव । यदा जनन्यपि मामुपेक्षते तदा का कथाऽन्येषामिति भावः । तेन ज्ञातृवर्गेण स्वभर्त्रा वा । सुदृष्टां सौमनस्येनावलोकिताम् । यथाहं पत्युर्ज्ञातृवर्गस्य च वल्लभा भवेयं तथा विधेहीति भावः न चेत्—अन्यथा । यदि तथा न करिष्यसीत्यर्थः । त्यजेयं त्यक्ष्यामि । निष्प्रयोजनान् अकिञ्चित्करान् । आविरामात्—यावत्कालपर्यन्तं मे विरामः प्राणत्यागो न भवेत्तावत् । रहस्यं गोप्यम् । न श्राव्यं न कस्यापि पुरतः श्रावणीयं न कथनीयमिति यावत् । पादयोः प्रव्राजिकायाश्चरणयोः ।

(३७) सा प्रव्राजिका । एनां निम्बवतीम् । उद्बाष्पा उद्गताश्रुः । मा अध्यवस्यः मा कार्षीः । अधि-अवपूर्वक सो धातोर्लङि रूपमडागमाभावश्च मा योगात् । साहसं प्राणत्यागरूपं साहसकर्म । इयम्—अहम् । त्वन्निदेशवर्त्तिनी—तवाज्ञाकारिणी । यत्त्वं वदिष्यसि तदेव करिष्यामीत्यर्थः । यावति यत्पर्यन्ते प्रयोजने इति शेषः । मयोपयोगः—मदुपयोगित्वम् । तावति तत्पर्यन्ते । अनन्याधीना—अन्यस्याधीना न भवतीति तथा । त्वन्मात्राधीनेति भावः । निर्विण्णा विरागवती । तपश्चर तपस्यां कुरु । मदधिष्ठिता—मयोपदिष्टा । पारलौकिकाय—परलोके भवं पारलौकिकं तस्मै । कल्याणाय मङ्गलार्थम् । अयं एतादृशः । उदर्कः परिणामः । प्राक्तनस्य—पूर्वजन्मकृतस्य । दुष्कृतस्य पापस्य । अनेन—एतादृशेन । आकारेण स्वरू-

अपनी कृपादृष्टि मुझपर डालें, अन्यथा मैं इन निष्फल प्राणोंको त्याग दूँगी। मैं मरनेतक अपने और रहस्य (गुप्त) बातोंको न सुनाऊंगी ।' ऐसा कहकर वह संन्यासिनीके पैरों पड़ गयी ।

(३७) उस संन्यासिनीने उसे उठाकर अपनी आँखोंमें आँसू भरकर कहा—हे पुत्री ! ऐसा आत्महत्यारूपी साहसका कार्य मत करो । यह मैं तुम्हारी आज्ञाकारिणी हूँ । जब तक तुम्हारा कार्य मेरे द्वारा हो सकेगा तबतक मैं तुम्हारे अधीन ही हूं । यदि तुम्हें विराग ही उत्पन्न हो गया हैं, तो तुम परलोकके कल्याणप्राप्त्यर्थ मेरे साथ मेरे

जात्या चैवंभूतया समनुगता सती अकस्मादेव भर्त्तुर्द्वेष्यतां गतासि। यदि कश्चिदस्त्युपायः पतिद्रोहप्रतिक्रियायै दर्शयामुम् , मातर्हि ते पटीयसी'इति ।

(३८) अथासौ कथञ्चित्क्षणमधोमुखी ध्यात्वा दीर्घोष्णश्वासपूर्वमवोचत्—'भगवति, पतिरेकदैवतं वनितानाम् , विशेषतः कुलजानाम् । अतस्तच्छुश्रूषणाभ्युपायहेतुभूतं किंचिदाचरणीयम् । अस्त्यस्मत्प्रातिवेश्यो वणिगभिजनेन विभवेन राजान्तरङ्गभावेन च सर्वपौरानतीत्य वर्तते । तस्य कन्या कनकवती नाम मत्समानरूपावयवा ममातिस्निग्धा सखी ।

पेण । शीलेन स्वभावेन । जात्या वंशेन । समनुगता युक्ता । भर्तृद्वेष्यतां पत्युरप्रियताम् । पतिद्रोहप्रतिक्रियायै भर्तृद्वेष्यतादूरीकरणाय । अमुम् उपायम् । मतिर्बुद्धिः । पटीयसी–अतिनिपुणा ।

(३८) असौ रत्नवती । दीर्घोष्णश्वासपूर्वं–दीर्घमुष्णञ्च निःश्वस्य । एकदैवतं एकमात्रदेवता । वनितानां स्त्रीणाम् । कुलजानां सत्कुलोत्पन्नानाम् । तच्छुश्रूषणेति–तस्य पत्युः शुश्रूषणस्य सेवनस्य यः अभ्युपायस्तस्य हेतुभूतं कारणभूतम् येन मे पतिशुश्रूषा भवेदिति भावः । आचरणीयं विधातव्यम् त्वयेति शेषः । अस्मत्प्रातिवेश्यः अस्माकं प्रतिवेशी । अभिजनेन वंशेन । विभवेन धनेन । राजान्तरङ्गभावेन–राजवल्लभतया । अतीत्य–अतिक्रम्य । तस्य प्रतिवेशिनः । मत्समानेति मया समानं तुल्यं रूपं सौन्दर्यमवयवमङ्गञ्च यस्याः सा । अतिस्निग्धा अतिशयस्नेहशालिनी । तया कनकवत्या । तद्विमानहर्म्यतले तस्याः सौधकुट्टिमे । ततोऽपि

कथनानुसार तप करो। निश्चय ही यह तुम्हारे प्राचीन पापोंके फल हैं कि इतनी सुन्दर आकृति, अच्छा स्वभाव, अच्छी जाति प्राप्त करके भी पतीकी सहसा अप्रिया हो गई हो । यदि पतिके द्रोहको दूर करनेका कोई यत्न होवे तो मुझसे कहो, क्योंकि तुम्हारी बुद्धि प्रखर है ।

(३८) तत्पश्चात् रत्नवती कुछ देरतक नीचे मुंह करके विचार करने लगी और फिर लम्बी और गरम सांस खींचकर बोली—'हे भगवति ! स्त्रियोंको केवल एक पतिही परमेश्वर हैं । प्रधानतः कुलवतियोंके अधिकरूपेण । अतः ऐसा कोई उपाय करना चाहिये जिससे मेरे पतिकी मुझसे सेवा हो सके । एक वैश्य मेरा पड़ोसी है जो वंशसे, धनसे और राजाका पार्श्ववर्ती होनेसे सभी नगरवासियोंसे बढ़ चढ़कर है। उस वैश्यकी एक पुत्री कनकवती नामकी है जो मेरे अनुरूप अंगवाली है तथा मेरी घनिष्ठ सहचरी भी है। उसके साथ गगनचुम्बी गृहकी छतपर उससे द्विगुणित सजकर विहार करूंगी। आप

तया सह तद्विमानहर्म्यतले ततोऽपि द्विगुणमण्डिता विहरिष्यामि। त्वया तु तन्मातृप्रार्थनं सकरुणमभिधाय मत्पतिरेतद्गृहं कथञ्चनानेयः। समीपगते च युष्मासु क्रीडामत्ता नाम कन्दुकं भ्रंशयेयम्। अथ तमादाय तस्य हस्ते दत्त्वा वक्ष्यसि—'पुत्र, तवेयं भार्यासखी निधिपतिदत्तस्य सर्वश्रेष्ठिमुख्यस्य कन्या कनकवती नाम। त्वामियमनवस्थो निष्करुणश्चेति रत्नवतीनिमित्तमत्यर्थं निन्दति। तदेष कन्दुको विपक्षधनं प्रत्यर्पणीयम्' इति। स तथोक्तो नियतमुन्मुखीभूय तामेव प्रियसखीं मन्यमानो मां बद्धाञ्जलिं याचमानायै मह्यं भूयस्त्वत्प्रार्थितः साभिलाषमर्पयिष्यति। 'तेन रन्ध्रे-

कनकवत्यपेक्षयापि। द्विगुणमण्डिता—समधिकविभूषिता। त्वया—परिव्राजिकया। तन्मातृप्रार्थनं तस्याः कनकवत्या मातुर्जनन्याः प्रार्थनं याचनम्। कनकवत्या जननी त्वां द्रष्टुमिच्छतीति सकरुणमभिधाय तमुक्त्वा। एतद्गृहं कनकवतीगेहम्। कथञ्चन—येन केनापि प्रकारेण। आनेयः आनेतव्यः। समीपगते निकटवर्तिनि मत्पत्याविति शेषः। युष्मासु युष्माकमुपरि। क्रीडामत्ता नाम—क्रीडोन्मादिनीव भूत्वा। भ्रंशयेयं पातयिष्यामि। तं कन्दुकम्। तस्य मत्पत्युर्बलभद्रस्य। इयं कनकवती। अनवस्थः अव्यवस्थः चञ्चलमतिरित्यर्थः। तत्तस्मात्। विपक्षधनं विरोधिजनद्रव्यम्। स बलभद्रः। तथा तेन प्रकारेण कथितः। नियतमवश्यम्। उन्मुखीभूय ऊर्ध्वमुखो भूत्वा। मां तामेव प्रियसखीं कनकवतीं मन्यमानः जानन्। याचमानायै कन्दुकं प्रार्थयमानायै। भूयः पुनरपि। त्वत्प्रार्थितः त्वया याचितः। साभिलाषं सस्पृहम्। रन्ध्रेण व्याजेन। उपश्लिष्य आलिंग्य। रागमनुरागम्।

उसकी (कनकवती की) मातासे करुणापूर्वक प्रार्थना करके मेरे पतिको (कनकवतीकी माता तुम्हें देखना चाहती हैं) किसी प्रकार उस मेरी सखीके घरपर ले आना। जब आप लोग कनकवतीके गृहके समीप आ जायंगी तब मैं आप लोगोंके ऊपर क्रीड़ोन्मत्ताके समान गेंद फेंक दूंगी (गिरा दूंगी)। आप उस गेंदको लेकर मेरे पतिके हाथमें देकर कहियेगा—"हे पुत्र! सब वणिकोंमें श्रेष्ठ निधिपति नामक सेठकी पुत्री यह कनकवती तुम्हारी पत्नीकी सखी है। यह कनकवती निष्करुण, चंचल स्वभाववाली होनेके कारण तुम्हारी रत्नवतीके प्रेमके बहाने बड़ी निन्दा करती है। अतः इस विपक्षी धनको (गेंदको) उसे वापस कर दीजिये।' इस प्रकारसे कथन करनेपर वह अवश्य ऊपरकी ओर मुख करके मुझे कनकवती समझकर देखेगा। तब मैं बद्धाञ्जली होकर उससे गेंद फेरनेकी प्रार्थना करूंगी और आप भी उससे गेंद फेरनेको कहेंगी ही तो वह सस्पृह होकर मुझे गेंद दे देगा। फिर मैं उसका व्याज (कपट) के साथ आलिंगन करूंगी एवं प्रेमको

णोपश्लिष्य रागमुज्ज्वलीकृत्य यथासौ कृतसंकेतो देशान्तरमादाय मां गमिष्यति तथोपपादनीयम्' इति ।

(३९) हर्षाभ्युपेतया चानया तथैव संपादितम् । अथैतां कनकवतीति:वृद्धतापसीविप्रलब्धो बलभद्रः सरत्नसाराभरणामादाय निशि नीरन्ध्रे तमसि प्रावसत् । सा तु तापसी वार्तामापादयत्—'मन्देन मया निर्निमित्तमुपेक्षिता रत्नवती, श्वशुरौ च परिभूतौ, सुहृदश्चातिवर्तिताः । तदत्रैव संसृष्टो जीवितुं जिह्रेमीति बलभद्रः पूर्वेद्युर्मामकथयत् । नूनमसौ तेन

उज्ज्वलीकृत्य—वर्धयित्वा । असौ बलभद्रः । कृतसंकेतः—दत्तेङ्गितः । उपपादनीयं विधेयम् ।

(३९) हर्षेति—हर्षेणानन्देन अभ्युपेतया तथाकर्तुं स्वीकृतया । अनया प्रव्राजिकया । एतां रत्नवतीं कनकवतीति कृत्वा वृद्धतापसीविप्रलब्धः वृद्धप्रव्राजिकाप्रतारितः । सरत्नसाराभरणाम्—रत्नालङ्काराद्युत्कृष्टधनसहिताम् । नीरन्ध्रे तमसि—गाढान्धकारे । प्रावसत्—देशान्तरमगच्छत् । वार्त्तामापादयत्—वक्ष्यमाणरूपां कथां प्राचारयत् । कीदृशीमित्याह—इत्यन्तेन । मन्देन मूढेन । मया—बलभद्रेण । निर्निमित्तं निष्कारणम् । उपेक्षिता त्यक्ता । श्वशुरौ—श्वश्रूश्च श्वशुरश्चेत्येकशेषः । परिभूतौ तिरस्कृतौ । अवमानिताविति यावत् । अतिवर्त्तिताः अतिक्रान्ताः तेषां वचनमपि मयोपेक्षितमिति भावः । अत्रैव अस्मिन्नेव नगरे । संसृष्टः श्वशुरादिभिः सङ्गतः । जिह्रेमि लज्जे । पूर्वेद्युः गतदिवसे । मां वृद्धतापसीमित्यर्थः । नूनं निश्चितम् । असौ रत्नवती । तेन बलभद्रेण । नीता देशान्तरमिति शेषः । व्यक्तिः प्रकाशः एतद्वृत्तान्तप्रकटनमिति यावत् । अचिरात् शीघ्रम् । इत्यन्ता वार्त्ता तापस्या प्रचा-

बढ़ाकर उसे देशान्तर चलनेके लिए संकेत करूंगी तथा जिस रीतिसे वह मुझे लेकर अन्य देशमें भाग चले ऐसे प्रयत्नोंको करूंगी ।

(३९) आनन्दके साथ उस संन्यासिनी द्वारा वह कार्य मेरे कथनानुसार सम्पादित कर दिया गया । तदनन्तर संन्यासिनी द्वारा वंचित होकर वह बलभद्र रत्नवतीको ही कनकवती समझकर मणि, सुवर्ण आदिसे युक्त होकर गाढान्धकारवाली आधी रातमें वहांसे अन्य देशको चला गया । उस संन्यासिनी द्वारा लोगोंमें बात प्रचारित हुई कि उस बलभद्रने कल मुझसे कहा—'हे अम्ब ! निष्कारणही मुझ मूर्खजनके द्वारा रत्नवती उपेक्षिता हुई । श्वशुर सास आदि भी तिरस्कृत हुए । मित्रोंकी भी सम्मतियां न मानीं । अतः अब यहां इन लोगोंके संग मुझे रहनेमें लज्जा आती है ।' इस कारणसे वही बलभद्र अपनी स्त्री रत्नवतीको साथ लेकर परदेश चला गया है । यह बात शीघ्र ही प्रकाशित भी

नीता व्यक्तिश्चाचिराद्भविष्यति' इति । तच्छ्रुत्वा तद्बान्धवास्तदन्वेषणं प्रति शिथिलयत्नास्तस्थुः । रत्नवती तु मार्गे कांचित्पण्यदासीं संगृह्य तयोह्यमानपाथेयाद्युपस्करा खेटकपुरमगमत् ।

(४०) अमुत्र च व्यवहारकुशलो बलभद्रः स्वल्पेनैव मूलेन महद्धनमुपार्जयत् । पौराग्रगण्यश्चासीत् । परिजनश्च भूयानर्थवशात्समाजगाम । ततस्तां प्रथमदासीम् 'न कर्म करोषि, दृष्टं मुष्णासि, अप्रियं ब्रवीषि' इति परुषमुक्त्वा बह्वताडयत् । चेटी तु प्रसादकालोपाख्यातरहस्यस्य वृत्तान्तैकदेशमात्तरोषा निर्बिभेद । तच्छ्रुत्वा लुब्धेन तु दण्डवाहिना पौरवृद्धसं-

---

रिता । तद्बान्धवाः रत्नवत्याः पित्रादयः । तदन्वेषणं प्रति रत्नवत्याः अनुसन्धानविषये । शिथिलयत्नाः मन्दचेष्टाः । पण्यदासीम्—पण्यं गृहीत्वा या दासी भवति सा ताम् । तया दास्या । उह्यमानेति–उह्यमानः नीयमानः पाथेयाद्युपस्करो भोजनादिसामग्री यस्याः सा । खेटकपुरं तन्नामकनगरम् ।

(४०) अमुत्र खेटकनगरे । व्यवहारकुशलः वाणिज्यनिपुणः । मूलेन मूलधनेन । पौराग्रगण्यः–पौराणां नागरिकाणामग्रगण्यः श्रेष्ठः । परिजनः सेवकादिः । भूयान् बहुसंख्यकः । अर्थवशात् धनप्रभावात् । प्रथमदासीं पण्यक्रीताम् । दृष्टं प्रत्यक्षीभूतं वस्तु । मुष्णासि चोरयसि । परुषं कर्कशवचनम् । अताडयत्–अतर्जयत् । प्रसादेति–प्रसादकाले रत्नवत्याः प्रसन्नतासमये आख्यातं कथितं यद्रहस्यं गोप्यं वस्तु तस्य । वृत्तान्तस्य रत्नवतीकथितस्य चरितस्यैकदेशं नतु समग्रम् । आत्तरोषा सकोपा । निर्बिभेद प्रकाशितवती । दण्डवाहिना दण्डाधिकारिणा ।

हो जायगी । इसमें सन्देह नहीं है । ऐसी बातें सुनकर रत्नवतीके पिता आदि उसके अन्वेषण करनेमें ढिलाई करने लगे । रत्नवतीने मार्गमें एक नौकरानीको द्रव्यसे खरीद लिया और उसीसे अपने भोजन आदिकी वस्तुको ढुलवाती हुई खेटकपुरमें पहुँची ।

(४०) उस खेटकपुरमें व्यापारकुशल बलभद्रने थोड़े मूलधनसे विशाल सम्पत्ति अर्जित की । उस नगरका प्रधान नागरिक बन गया । धनके कारण उसके बहुतसे नौकर चाकर हो गये । इसके बाद रत्नवतीने खरीदी हुई प्रथम नौकरानीको कठोर कठोर शब्द सुनाने प्रारम्भ किये—'तुम काम नहीं करती हो, प्रत्यक्ष वस्तुको चुरा लेती हो, कटु भाषण करती हो इत्यादि' और ऐसी झिड़कियां देकर उसे कठोर ताड़ना देने लगी । उस नौकरानीने क्रोधके कारण उन सभी गुप्त रहस्योंको प्रकाशित कर दिया जो गुप्त रहस्य अंशमात्रमें रत्नवती द्वारा प्रसन्नताके समय सुनाये गये थे । नौकरानी द्वारा प्रसिद्ध की हुई इन बातोंको जानकर लोभी दण्डविधायकोंने नगरमें बसनेवाले बूढ़ोंसे

निधौ निधिपतिदत्तस्य कन्यां कनकवतीं मोषेणापहृत्यास्मत्पुरे निवसत्येष दुर्मतिर्बलभद्रः । तस्य सर्वस्वहरणं न भवद्भिः प्रतिबन्धनीयम्' इति नितरामभत्स्र्यत ।

(४१) भीतं च बलभद्रमभिजगाद रत्नवती—'न भेतव्यम् । ब्रूहि, नेयं निधिपतिदत्तकन्या कनकवती । वलभ्यामेव गृहगुप्तदुहिता रत्नवती नामेयं दत्ता पितृभ्यां मया च न्यायोढा । न चेत्प्रतीथ प्रणिधिं प्रहिणुतास्याः बन्धुपार्श्वम्' इति । बलभद्रस्तु तथोक्त्वा श्रेणीप्रातिभाव्येन तावदवातिष्ठत यावत्तत्पुरलेख्यलब्धवृत्तान्तो गृहगुप्तः खेटकपुरमागत्य सह जामात्रा दुहितरमतिप्रीतः प्रत्यनैषीत् । तथा दृष्ट्वा रत्नवतीं कनकवतीति भावयतस्तस्यैव

पौरेति-पौरेषु नागरिकेषु ये वृद्धास्तेषां समीपे । मोषेण चौर्येण । प्रतिबन्धनीयं व्याहन्तव्यम्-मया तस्य सर्वस्वहरणरूपो दण्डो विधास्यते तत्र भवद्भिर्विरुद्धैर्न भवितव्यमित्याशयः । अभत्स्र्यत-अतर्ज्यत बलभद्र इति शेषः ।

(४१) मया बलभद्रेण । न्यायोढा न्यायेन विधिना ऊढा विवाहिता । प्रतीथ-विश्वसिथ यूयमिति शेषः । प्रणिधिं गूढचरम् । प्रहिणुत-प्रेषयत । अस्याः रत्नवत्याः । बन्धुपार्श्वं पित्रादेः सकाशम् । तथा-रत्नवत्या यथोक्तं तेन प्रकारेण । श्रेणीप्रातिभाव्येन-श्रेण्याः स्वजातीयवणिग्वर्गस्य प्रतिभूत्वेन प्रतिनिधित्वेनेति यावत् । तत्पुरेति-तत्पुरस्य वलभीनगरस्य लेख्येन पत्रेण लब्धो वृत्तान्तो येन

पूछा कि 'यह बलभद्र दुर्बुद्धिवाला है । निधिपतिकी पुत्री कनकवतीको चुराकर लाया है और इसी खेटकपुरमें रहता है । अतः उसकी सब सम्पत्ति नष्ट होनेमें आप लोग जरा भी प्रतिबन्ध न करें । और ऐसा कहकर उन लोगोंने उसे खूब डरवाया ।

(४१) भयान्वित बलभद्रको देखकर रत्नवतीने कहा—'भय मत करिये, उन दंडविधायकोंके प्रति जाकर कहिये कि यह निधिपतिदत्तकी पुत्री कनकवती नहीं है । वलभी नगरके गृहगुप्तकी पुत्री रत्नवती नामकी यह महिला है और इसका विवाह इसके माता-पिता आदिने मेरे साथ किया है । यदि आप लोगोंको विश्वास नहीं है तो आप अपने गुप्तचरोंको इसके माता-पिता आदिके समीप भेजकर पूछताछ करा लें । इन बातोंपर सहमत होकर दंडाधिकारियोंने उसे अन्य वणिकोंकी जमानतपर उसी नगरमें रहने दिया तथा वलभी नगरसे लिखित वृत्तान्त भी इस विषयमें मंगवाया । सूचना पाकर गृहगुप्त भी खेटकपुरमें आया और जामाताके साथ अपनी पुत्रीको अति स्नेहके सहित लिवा ले गया । इस रीतिसे कनकवतीको रत्नवती माननेवाले उस बलभद्रके द्वारा

बलभद्रस्यातिवल्लभा जाता । तद्ब्रवीमि—'कामो नाम सङ्कल्पः' इति ।

(४२) तदनन्तरमसौ नितम्बवतीवृत्तान्तमप्राक्षीत् । सोऽहमब्रवम्—'अस्ति शूरसेनेषु मथुरा नाम नगरी । तत्र कश्चित्कुलपुत्रः कलासु गणिकासु चातिरक्तः मित्रार्थं स्वभुजमात्रनिर्व्यूढानेककलहः, कलहकण्टक इति कर्कशैरभिख्यापिताख्यः प्रत्यवात्सीत् । स चैकदा कस्यचिदागन्तोश्चित्रकारस्य हस्ते चित्रपटं ददर्श । तत्र काचिदालेख्यगता युवतिरालोकमात्रेणैव कलहकण्टकस्य कामातुरं चेतश्चकार । स च तमब्रवीत्—'भद्र, विरुद्धमिवैतत्प्रतिभाति यतः कुलजादुर्लभं वपुः, आभिजात्यशंसिनी च नम्रता,

सः । प्रत्यनैषीत् स्वगृहं नीतवान् । भावयतः मन्यमानस्य । अतिवल्लभा अतिप्रिया ।

(४२) असौ ब्रह्मराक्षसः । सोऽहं–मित्रगुप्तः । शूरसेनेषु तदाख्यदेशेषु । तत्र मथुरायाम् । कुलपुत्रः–सत्कुलोत्पन्नः । कलासु–नृत्यगीतादिषु । गणिकासु वेश्यासु अतिरक्तः–अधिशयासक्तः । मित्रार्थं सुहृन्निमित्तम् । स्वभुजेति–स्वभुजमात्रेण बाहुबलेनैव निर्व्यूढः कृतः अनेकैः बहुभिर्जनैः सह कलहो विवादो येनासौ । कलहकण्टक इति नाम्ना ख्यात इत्यर्थः । कर्कशैः–कठिनहृदयैः । अभिख्यापिताख्यः–कृतनामधेयः । प्रत्यवात्सीत्–प्रतिवसतिस्म । सः कुलपुत्रः । आगन्तोः देशान्तरादागतस्य । तत्र चित्रपटे । आलेख्यगता चित्रस्थिता । आलोकमात्रेण–दर्शनमात्रेण । चेतः चित्तम् । स कुलपुत्रः । तं चित्रकारम् । विरुद्धं असदृशम् । प्रतिभाति दृश्यते । कुलजादुर्लभं गणिकासुलभमित्यर्थः । आभिजात्यशंसिनी–कौलीन्यसूचिका । नम्रता

वह रत्नवती अति प्रेमपूर्वक चाही जाने लगी । इसी कारणसे कहता हूं कि 'काम क्या है ! संकल्प है' ।

(४२) तदनन्तर उस ब्रह्मराक्षस द्वारा नितम्बवतीका वृत्तान्त पूछा गया । जिसके उत्तरमें मैंने कहा—'शूरसेन प्रदेशमें एक मथुरा नामकी नगरी है । उस नगरीमें रहनेवाला कोई एक उत्तम कुलोत्पन्न युवक नृत्यगीत आदि कलाओंमें तथा वेश्याओंमें बहुत आसक्त था । वह अपने मित्रोंके लिए अपनी भुजाओंके द्वारा अनेक प्रकारके उपद्रव-विवाद आदि अनेक जनोंके साथ करता था । जिस कारण उस नगरके कर्कशोंने (कठिन पुरुषोंने) उसका नाम ही 'कलहकण्टक' रख दिया था । उसने एक दिन किसी दूसरे देशसे आये हुए रंगाजीव (चित्रकार) के हाथमें एक चित्रपट देखा । उस चित्रमें चित्रित युवतीको देखते ही कलहकण्टकके मनमें कामदेवने आघात कर दिया । उसने उस चित्रकारसे कहा—'हे सौम्य ! यह बात प्रतिकूल मालूम होती है कि इस चित्रगता युवतीका शरीर कुलांगनाओंसे प्रतिकूल है । अर्थात् वेश्याओंके समान है । कुलीनता

पाण्डुरा च मुखच्छविः, अनतिपरिभुक्तसुभगा च तनुः, प्रौढतानुविद्धा च दृष्टिः। न चैषा प्रोषितभर्तृका, प्रवासचिह्नस्य वेण्यादेरदर्शनात्। लक्ष्म चैतद्दक्षिणपार्श्ववर्ति। तदियं वृद्धस्य कस्यचिद्वणिजो नातिपुंस्त्वस्य यथार्हसंभोगालाभपीडिता गृहिणी त्वयातिकौशलाद्यथादृष्टमालिखिता भवितुमर्हति' इति।

(४३) स तमभिप्रशस्याशंसत्—'सत्यमिदम्। अवन्तिपुर्यामुज्जयिन्यामनन्तकीर्तिनाम्नः सार्थवाहस्य भार्या यथार्थनामा नितम्बवती नामैषा

विनीतता। पाण्डुरा शुभ्रा। मुखच्छविः मुखकान्तिः। अनतीति—नातिपरिभुक्ता स्वल्पपरिभुक्ता अतएव सुभगा मनोहारिणी। प्रौढतेति—प्रौढतया प्रागल्भ्येन अनुविद्धा युक्ता-उत्तीर्णबालभावतया अचञ्चला। प्रोषितभर्तृका-प्रोषितः प्रवासङ्गतः भर्त्ता यस्याः सा। कार्यान्तरवशाद् यस्या दूरदेशं गतः पतिः। तदनागमदुःखार्ता सा स्यात्प्रोषितभर्तृकेति तल्लक्षणम्। अदर्शनादभावात्। यथा लक्ष्म चिह्नं नखक्षतरूपम्। तत्-तस्मादनुमीयते। नातिपुंस्त्वस्य शिथिलपुरुषत्वस्य। यथार्हेति-यथार्हस्य तदुचितस्य संभोगस्यालाभेन अप्राप्त्या पीडिता दुःखिता। गृहिणी भार्या। त्वया चित्रकारेण। अतिकौशलात्-नैपुण्यातिशयात्। यथादृष्टं-यथा दृष्टा तथैव।

(४३) सः चित्रकारः। तं कुलपुत्रम्। अभिप्रशस्य प्रशंसां कृत्वा। अशंसत् अकथयत्। इदं त्वया यद् यत् कथितम्। यथार्थनामा-नितम्बस्य पृथुत्वान्नितम्ब-

सूचित करनेवाली इसमें नम्रता है। इसके मुखकी कान्ति शुभ्र है। इसकी मनोहारिणी देह स्वल्पभोगित है। इसकी दृष्टि प्रौढत्वको वेध चुकी है अर्थात् अचञ्चल है। यह प्रोषितभर्तृका भी (परदेश गये हुए पतिकी पत्नी) नहीं है क्योंकि प्रवासमें गये हुए पतिकी स्त्रीके चिह्न, एक वेणी आदि, उसमें नहीं दिखायी देते हैं। इसके दाहिने हाथमें नखक्षत दीखता है जिससे ज्ञात होता है कि यह किसी वृद्ध वैश्यकी वनिता है। जो वृद्ध वैश्यके द्वारा कामेच्छा पूर्ण नहीं प्राप्त कर सकती है अर्थात् पौरुषहीन होनेसे वह ठीक-ठीक सम्भोग नहीं कर सकता, अत एव यह रमणी, सम्भोगक्रीड़ाकी यथोचित प्राप्तिसे वंचित दीखती है। मुझे तो ऐसा ज्ञात होता है कि तुमने (चित्रकारने) जैसी इसकी आकृति देखी है ठीक वैसी ही फोटो अपने नैपुण्यसे खींच ली है—चित्रमें चित्रित कर दी है।'

(४३) उस चित्रकारने, उस कलहकंटकी प्रशंसाकर कहा—'यह बात सत्य है। अवन्तिका नगरी (उज्जयिनी) में बसनेवाले सार्थवाह अनन्तकीर्ति नामक व्यक्तिकी पत्नी यह नितम्बवती अनुरूप नामको धारण करनेवाली है। इसके सौन्दर्यगुणको देखकर

सौन्दर्यविस्मितेन मयैवमालिखिता' इति। स तदैवोन्मनायमानस्तद्दर्शनाय परिवव्राजोज्जयिनीम्। भार्गवो नाम भूत्वा भिक्षानिभेन तद्गृहं प्रविश्य तां ददर्श। दृष्ट्वा चात्यारूढमन्मथो निर्गत्य पौरमुख्येभ्यः श्मशानरक्षामयाचत। अलभत च। तत्र लब्धैश्च शवावगुण्ठनपटादिभिः कामन्दयर्हन्तिकां नाम श्रमणिकामुपासाञ्चक्रे। तन्मुखेन च नितम्बवतीमुपांशु मन्त्रयामास। सा चैनां निर्भर्त्सयन्ती प्रत्याचचक्षे।

(४४) श्रमणिकामुखाच्च दुष्करशीलभ्रंशां कुलस्त्रियमुपलभ्य रहसि दूतिकामशिक्षयत्—'भूयोऽप्युपतिष्ठ सार्थवाहभार्याम्। ब्रूहि चोपह्वरे

वतीति तन्नाम यथार्थमिति भावः। सौन्दर्यविस्मितेन—तत्सौन्दर्यमवलोक्याश्चर्यान्वितेन। सः कुलपुत्रः उन्मनायमानः उत्कण्ठितः। तद्दर्शनाय तस्या नितम्बवत्या दर्शनार्थम्। परिवव्राज जगाम। भार्गवः दैवज्ञः भार्गवौ शुक्रदैवज्ञाविति वैजयन्ती। नामेत्यलीके। भिक्षानिभेन—भिक्षाच्छलेन। तद्गृहं नितम्बवतीमन्दिरम्। अत्यारूढमन्मथः—प्रवृद्धमदनः। श्मशान रक्षां श्मशानरक्षकताम्। तत्र—श्मशाने। शवेति—शवानां मृतानां यानि अवगुण्ठनपटादीनि शववेष्टनवस्त्रादीनि तैः। श्रमणिकां बौद्धप्रव्राजिकाम्। उपासांचक्रे सिषेवे। तन्मुखेन—श्रमणिकामुखेन। उपांशु निर्जने। मन्त्रयामास—प्रलोभयामास। सा नितम्बवती। एनां श्रमणिकाम्। प्रत्याचचक्षे—प्रत्याख्यातवती।

(४४) दुष्करेति—दुष्करोऽशक्यः शीलस्य चारित्रस्य भ्रंशो नाशो यस्यास्तादृशीम्। कुलस्त्रियं—कुलवधूम्। उपलभ्य ज्ञात्वा। भूयोऽपि पुनरपि। उपतिष्ठ

मैं आश्चर्यान्वित हो गया और यह चित्र मैंने चित्रित किया।' वह कलहकण्टक उसी समय उत्कण्ठित चित्तसे उस नितम्बवतीके दर्शनार्थ उज्जैन चला गया। भार्गव नामक दैवज्ञ बनकर भिक्षाके बहाने वह नितम्बवतीके घरमें गया और उसको देखा। उसे देखकर अतिकामातुर होकर वह कलहकंटक वहांसे निकल आया और नगरीके मुख्य-मुख्य लोगोंसे श्मशानरक्षककी नौकरी मांगी। नौकरी प्राप्त भी कर ली। वहां श्मशानपर मिलनेवाले मृतकोंके कफन आदिसे उसने एक बौद्ध संन्यासिनीको अपने अनुकूल कर लिया। उसी संन्यासिनीके द्वारा उसने एकान्तमें नितम्बवतीके प्रति सन्देश कहलाया। परन्तु उस नितम्बवतीने उस संन्यासिनीको फटकार दिया।

(४४) उस संन्यासिनीके मुखसे यह जानकर (कि यह नितम्बवती कुलांगना है और) कुलांगनाओं द्वारा सुचरित्रका नाश होना कठिन है। फिरसे एकान्तमें उसने उस संन्यासिनी से कहा—'हे संन्यासिनि! तुम फिर एक बार सार्थवाहकी भार्या नितम्बवती

संसारदोषदर्शनात्समाधिमास्थाय मुमुक्षमाणो मादृशो जनः कुलवधूनां शीलपातने घटत इति क्व घटते । एतदपि त्वामत्युदारया समृद्ध्या रूपेणातिमानुषेण प्रथमेन वयसोपपन्नां किमितरनारीसुलभं चापलं स्पृष्टं न वेति परीक्षा कृता । तुष्टास्मि तथैवमदुष्टभावतया । त्वामिदानीमुत्पन्नापत्यां द्रष्टुमिच्छामि । भर्ता तु भवत्याः केनचिद्ग्रहेणाधिष्ठितः पाण्डुरोगदुर्बलो भोगे चासमर्थः स्थितोऽभूत् । न च शक्यं तस्य विघ्नमप्रतिकृत्यापत्यमस्माल्लब्धुम् । अतः प्रसीद । वृक्षवाटिकामेकाकिनी प्रविश्य मदुपनीतस्य कस्यचिन्मन्त्रवादिनश्छन्नमेव हस्ते चरणमर्पयित्वा तदभिमन्त्रि-

गच्छ । सार्थवाहभार्यां नितम्बवतीम् । उपह्वरे–निर्जने । संसारदोषदर्शनात्–संसारासारतावलोकनात् । समाधिं योगम् । आस्थाय–आश्रित्य । मुमुक्षमाणः–मुक्तिमिच्छन् । मादृशः–मत्सदृशो मुमुक्षुः । शीलपातने चरित्रभ्रंशने । घटते यतते । क्व घटते–कथं सम्भवति । एतदपि–यत्तन्मुखेन त्वामकथयत् तदपि । उदारया समधिकया समृद्ध्या सम्पदा । अतिमानुषेण अलौकिकेन रूपेण सौन्दर्येण । प्रथमेन वयसा यौवनेन उपपन्नां युक्ताम् । त्वामपीत्यस्य विशेषणम् । इतरनारीसुलभम्–अन्यस्त्रीसदृशम् । चापलं चञ्चलता । अदुष्टभावतया–शोभनस्वभावतया तवेति शेषः । उत्पन्नापत्यां जातसन्तानाम् । ग्रहेणाधिष्ठितः–दुष्टग्रहेणाक्रान्तः । पाण्डुरोगेण रोगविशेषेण दुर्बलः शक्तिहीनः । भोगे विषयोपभोगे । तस्य भर्तुः । विघ्नं ग्रहजनितं दोषम् । अप्रतिकृत्य–प्रतीकारमकृत्वा । अपत्यं सन्तानम् । अस्मात् भर्तृसकाशात् । मदुपनीतस्य मया आनीतस्य । मन्त्रवादिनः मन्त्रज्ञस्य । छन्नं गुप्तम् । चरणं स्वकीयं पदम् । तदभिमन्त्रितेन–तन्मन्त्रपूतेन चर-

के समीप जाओ तथा एकान्त में उससे कहो कि सांसारिक असारताके कारणको जानकर मैं समाधि लगाकर मुक्तिकी इच्छा कर रही हूँ । क्या मेरी जैसी मुक्तिकी इच्छुकाएं संन्यासिनियां कुलांगनाओंके सुचरित्रको नष्ट करनेका उपाय कर सकती हैं ! यह सम्भव कैसे हो सकता है ? मैंने यह जाननेकी चेष्टारूपमें तुम्हारी परीक्षा की थी कि तुम्हारी नयी जवानोकी अवस्था है और तुम अलौकिक सुन्दरी हो, खूब पैसेवाली हो, अतः तुममें अन्य अंगनाओंकी तरह चञ्चलता भी है कि नहीं । परन्तु यह जानकर परम प्रसन्न हूं कि तुममें असतीत्वके दुर्गुण नहीं हैं । अब मैं तुम्हें सन्तानवती देखना चाहती हूँ । तुम्हारे पति किसी दुष्टग्रहसे आक्रान्त हैं । पाण्डुरोगसे शक्तिहीन होकर विषय करनेमें असमर्थ हैं । अतः अपने पतिके रोगको दूर किये बिना या ग्रहदोषका निवारण किये बिना आपके पतिसे आपको सन्तान कहीं हो सकती है । अतः प्रसन्न हो । वृक्षवाटिकामें अकेली चलो और मेरेद्वारा बुलाये हुए एक मन्त्रशास्त्रीके हाथमें गुप्तरूपसे

तेन प्रणयकुपिता नाम भूत्वा भर्तारमुरसि प्रहर्तुमर्हसि उपर्यसावुत्तमधातुपुष्टिमूर्जितापत्योत्पादनक्षमामासादयिष्यति। अनुवर्तिष्यते देवीमिवात्रभवतीम्। नात्र शङ्का कार्या' इति।

(४५) सा तथोक्ता व्यक्तमभ्युपेष्यति नक्तं मां वृक्षवाटिकां प्रवेश्य तामपि प्रवेशयिष्यसि तावतैव त्वयाहमनुगृहीतो भवेयम्' इति। सा तथैवोपग्राहितवती। सोऽतिप्रीतस्तस्यामेव क्षपायां वृक्षवाटिकायां गतो नितम्बवतीं निर्ग्रन्थिकाप्रयत्नेनोपनीतां पादे परामृशन्निव हेमनूपुरमेकमा-

णेन। प्रणयकुपिता—मानिनीव। नामेत्यलीकसम्भावनायाम्। उपरि—तदनन्तरम्। असौ तव पतिः। उत्तमधातुपुष्टिं—उत्तमस्योत्कृष्टस्य धातोः शुक्रस्य पुष्टिं वृद्धिम्। ऊर्जितेति—ऊर्जितस्य बलवतः अपत्यस्य सन्ततेरुत्पादने जनने क्षमां समर्थाम्। धातुपुष्टिमित्यस्य विशेषणम्। आसादयिष्यति प्राप्स्यति। अनुवर्तिष्यते अनुसरिष्यति त्वदासक्तो भविष्यति तव पतिरिति शेषः। अत्रभवतीं त्वामित्यर्थः। शङ्का संशयः।

(४५) सा नितम्बवती। तथोक्ता श्रमणिकया। तथा कथिता। व्यक्तं असन्दिग्धम्। अभ्युपेष्यति—स्वीकरिष्यति—तथा कर्तुमिति शेषः। वृक्षवाटिकां गृहोद्यानम्। प्रवेश्य प्रवेशं कारयित्वा। ताम् नितम्बवतीम्। तावता एतावता कर्मणा। सा श्रमणिका। उपग्राहितवती—नितम्बवतीं स्वीकारयामास। स कलहकण्टकः। निर्ग्रन्थिकाप्रयत्नेन—श्रमणिकाचेष्टया। निर्ग्रन्थिका बौद्धभिक्षुकी। उपनीताम् उपस्थापिताम्। पादे नितम्बवत्याश्चरणे। परामृशन् हस्तं चालयन्।

अपने चरणोंको अर्पित कर देना। उसके द्वारा अभिमन्त्रित होकर तुम अपने पतिके ऊपर मान करके बैठ जानना। और पतिकेद्वारा मान निवारणपर उसके वक्षःस्थलमें एक लात मारना। तदनन्तर तुम्हारा पति उत्तम धातुपुष्टिको प्राप्त कर लेगा और बलवती सन्तान उत्पन्न करनेकी शक्तिवाला हो जायगा। तुम्हारा पति तुम्हें देवीकी तरह मानेगा। इसमें शंका मत करो।'

(४५) ऐसा कहनेपर वह नितम्बवती निःसन्देह इस प्रक्रियाको स्वीकार कर लेगी। तब आप (संन्यासिनी) रातमें मुझे उस वृक्षवाटिकामें प्रवेशित कराकर फिर उसे भी प्रवेशित करा देना। आपके द्वारा यह कार्य होनेसे मैं आपका अति आभारी रहूँगा। उस संन्यासिनीने उसी तरहसे उस नितम्बवतीको राजी कर लिया। वह उसी रातमें प्रमुदित होकर वृक्षवाटिकामें गया। संन्यासिनीके प्रयत्न से आयी हुई नितम्बवतीके चरणपर हाथ लगाते हुए उसने एक सुवर्णका नूपुर (पैरका भूषण) खींच लिया और

क्षिप्य छुरिकयोरुमूले किंचिदालिख्य द्रुततरमपासरत् । सा तु सान्द्रत्रासा स्वमेव दुर्णयं गर्हमाणा जिघांसन्तीव श्रमणिकां तद्व्रणं भवनदीर्घिकायां प्रक्षाल्य दत्त्वा पटबन्धनं सामयापदेशापरं चापनीय नूपुरं शयनपरा त्रिचतुराणि दिनान्येकान्ते निन्ये । स धूर्तः 'विक्रेष्ये' इति तेन नूपुरेण तमनन्तकीर्तिमुपाससाद । स दृष्ट्वा 'मम गृहिण्या एवैष नूपुरः, कथमयमुपलब्धस्त्वया' इति तमब्रुवाणं निर्बन्धेन पप्रच्छ ।

(४६) स तु 'वणिग्ग्रामस्याग्रे वक्ष्यामि' इति स्थितोऽभूत् । पुनरसौ

आक्षिप्य अवतार्य । छुरिकया शस्त्रिकया । आलिख्य क्षतं कृत्वा । अपासरत् पलायिष्ट । सा नितम्बवती । सान्द्रत्रासा अतिभीता । स्वं निजम् । दुर्णयं अनुचिताचारम् । गर्हमाणा निन्दन्ती—कथं मया श्रमणिकाविश्वासेन एवं कृतमिति भावः । जिघांसन्तीव हन्तुमिच्छन्तीव । तद्व्रणं तत्क्षतम् । भवनदीर्घिकायां गृहान्तर्गतजलाशये । पटबन्धनं—पट्टिकाम् । सामयापदेशा—सामया सरोगा इति अपदेशः छलं यस्याः सा । पादे कश्चन रोगः सञ्जात इति कपटमाश्रित्येति भावः । अपरं अन्यचरणस्थितं नूपुरमपि । अपनीय—अपसार्य । शयनपरा—शयित्वैव । निन्ये यापयामास । स धूर्त्तः कलहकण्टकः । विक्रेष्ये—नूपुरविक्रयं करिष्यामीति कथयन्नित्यर्थः । अनन्तकीर्त्तिं नितम्बवतीभर्त्तारम् । उपाससाद—तत्समीपं जगाम । सः अनन्तकीर्त्तिः । उपलब्धः प्राप्तः । तं कलहकण्टकम् । अब्रुवाणं नूपुरप्राप्तिवृत्तान्तमकथयन्तम् । निर्बन्धेन—आग्रहातिशयेन ।

(४६) स कलहकण्टकः । वणिग्ग्रामस्य—वणिक्समुदायस्य । अग्रे पुरतः ।

छूरीसे उसकी जाँघमें हल्का प्रहारकर भाग गया । जांघमें प्रहारके पश्चात् वह नितम्बवती अतिभयान्वित हुई और वह अपने अनुचित आचारकी निन्दा करती हुई तथा उस संन्यासिनीको मारने की इच्छा करती हुई (घर) लौटी । (घर आकर) उसने अपने घावको बावलीमें धोया तथा पट्टी बाँधी । बीमारीका बहाना कर दूसरे नूपुरको दूर करके तीन–चार दिन एकान्तमें पड़ी रही । वह धूर्त्त कलहकंटक 'मैं नूपुरको बेंचता हूं' ऐसा कहते हुए उस अनन्तकीर्तिके समीप उपस्थित हुआ । उसने देखकर कि 'यह नूपुर तो मेरी पत्नीका ही है, इसे इसने कैसे प्राप्त किया ?' ऐसा सोचकर उस कलहकंटकको बुलाकर आग्रहसे उससे नूपुरप्राप्तिका वृत्तान्त पूछा ।

(४६) उसने उत्तर दिया कि 'मैं वणिकसमूहके समक्ष इस वृत्तान्तको कहूंगा ।' फिर उस अनन्तकीर्तिने अपनी पत्नीसे दोनों नूपुरोंको भेजनेके लिये सन्देश भेजा ।

गृहिण्यै 'स्वनूपुरयुगलं प्रेषय' इति संदिदेश। सा च सलज्जं ससाध्वसं चाद्य रात्रौ विश्रामप्रविष्टायां वृक्षवाटिकायां प्रभ्रष्टो ममैकः प्रशिथिलबन्धो नूपुरः। सोऽद्याप्यन्विष्टो न दृष्टः। स पुनरयं द्वितीय इत्यपरं प्राहिणोत्। अनया च वार्तयामुं पुरस्कृत्य स वणिक् वणिग्जनसमाजमाजगाम। स चानुयुक्तो धूर्तः सविनयमावेदयत्—'विदितमेव खलु वः, यथाहं युष्मदाज्ञया पितृवनमभिरक्ष्य तदुपजीवी प्रतिवसामि। लुब्धाश्च कदाचिन्मद्दर्शनभीरवो निशि दहेयुरपि शवानीति निशास्वपि श्मशानमधिशये। अपरेद्युर्दग्धादग्धं मृतकं चितायाः प्रसभमाकर्षन्तीं श्यामाकारां नारीमपश्यम्। अर्थलोभात्तु निगृह्य साध्वसं सा गृहीता शङ्खिकयोरुमूले यदृच्छया

असौ अनन्तकीर्त्तिः। गृहिण्यै—भार्यासकाशे। सन्दिदेश—वार्त्तां प्रेषितवान्। सा नितम्बवती। ससाध्वसं सभयम्। विश्रामेति—विश्रमार्थं प्रविष्टायाम्। प्रभ्रष्टः चरणान्निपतितः। प्रशिथिलबन्धः शरीरकार्श्यात् श्लथबन्धनः। स नूपुरः। अपरं अन्यं नूपुरम्। अनया वार्त्तया—अनेन वृत्तान्तेन। अमुं नूपुरम्। पुरस्कृत्य गृहीत्वा। अनुयुक्तः पृष्टः। स धूर्त्तः कलहकण्टकः। आवेदयत् अकथयत्। विदितं ज्ञातम्। वः युष्माकम् वणिजामिति शेषः। युष्मदाज्ञया भवतामादेशेन। पितृवनं श्मशानम्। तदुपजीवी—तेन श्मशानरक्षणेन उपजीवति जीविकां करोतीत्येवंशीलः। लुब्धाः धूर्त्ताः। मद्दर्शनभीरवः मदवलोकनभयशीलाः। निशि रात्रौ। अधिशये तिष्ठामि। अपरेद्युः अन्यस्मिन् दिने। दग्धादग्धं—किंयद्दग्धं कियच्चादग्धमेतादृशं मृतकं शवम्। चितायाः चितामध्यात्। प्रसभं बलात्। श्यामाकारां कृष्णवर्णाकृतिम्। साध्वसं भयं निगृह्य परित्यज्य सा नारी। मया गृहीता धृता।

उसने लज्जा और भयके साथ कहा कि आज रातको मैं विश्रान्तिके लिये वृक्षवाटिकामें गयी थी। वहांपर एक नूपुर, शरीरके कृश होनेके कारण ढीला पड़ गया था, गिर गया। उसे आज भी मैंने खोजा, किन्तु नहीं मिला। अस्तु, यह दूसरा नूपुर मेरे पास है इसे ले जाओ। इस उपर्युक्त कथनके साथ उस अनन्तकीर्तिने उस धूर्तको वणिक्समुदायके समीप उपस्थित किया। वणिकोंद्वारा पूछे जानेपर उस धूर्तने विनयसे कहा—'आप लोगोंको ज्ञात ही है कि मैं आप लोगोंकी आज्ञासे श्मशानमें रक्षक बनकर उसीसे प्राप्त द्रव्यद्वारा अपना जीवन निर्वाह करता हूँ। मेरी उपस्थितिसे डरनेवाले धूर्त्त लोग कदाचित् रातमें शव न जला डालें इसी कारण मैं रातमें भी श्मशान हीमें सोता हूँ। गत दिनकी रातमें मैंने चितापर जलनेवाले एक अर्धदग्ध शवको जबर्दस्तीसे खींचती हुई कृष्णवर्णवाली स्त्री देखी। धनके लोभसे भयको त्यागकर मैंने उसे पकड़ा

किञ्चिदुल्लिखितम् । एष च नूपुरश्चरणादाक्षिप्तः । तावत्येव द्रुतगतिः सा पलायिष्ट । सोऽयमस्यागमः । परं भवन्तः प्रमाणम्' इति ।

(४७) विमर्शेन च तस्याः शाकिनीत्वमैकमत्येन पौराणामभिमतमासीत् । भर्त्रा च परित्यक्ता तस्मिन्नेव श्मशाने बहु विलप्य पाशेनोद्बध्य मर्तुकामा तेन धूर्तेन नक्तमगृह्यत । अनुनीता च 'सुन्दरि, त्वदाकारोन्मादितेन मया त्वदावर्जने बहूनुपायान्भिक्षुकीमुखेनोपन्यस्य तेष्वसिद्धेषु पुनरयमुपायो यावज्जीवमसाधारणीकृत्य रन्तुमाचरितः । तत्प्रसीदानन्यशरणायास्मै दासजनाय' इति मुहुर्मुहुश्चरणयोर्निपत्य, प्रयुज्य सान्त्वशता-

---

शस्त्रिकया छुरिकया । ऊरुमूले तस्या इति शेषः । यदृच्छया स्वेच्छया ।; तावति तस्मिन्नेव समये । अस्य नूपुरस्य । आगमः प्राप्तिः । परं अतः परम् ।

(४७) विमर्शेन-विचारेण । तस्या नितम्बवत्याः । शाकिनीत्वं पिशाचत्वम् । ऐकमत्येन अविसंवादितत्वेन । पाशेन रज्वा । उद्बध्य आत्मानं बद्ध्वा । तेन-कलहकण्टकेन । अगृह्यत गृहीता नितम्बवतीति शेषः । त्वदाकारेति-तव आकारेण आकृत्या उन्मादितेन उन्मादप्रस्तेन । त्वदावर्जने तवायत्तीकरणे भिक्षुकीमुखेन श्रमणिकाद्वारेण । उपन्यस्य कृत्वा । तेषु उपायेषु । असिद्धेषु निष्फलेषु सत्सु । असाधारणीकृत्य-अन्यवैलक्षण्येनेत्यर्थः । रन्तुं विहर्तुम् । अनन्यशरणाय अनन्यगतिकाय । अस्मै मह्यमित्यर्थः । प्रयुज्य उक्त्वा । अगत्यन्तरां न विद्यते गत्य-

---

और मेरे हाथमेंकी छूरीसे उसके जांघमें कुछ चोट भी आ गयी । (मैंने जांघमें जानकर छूरी नहीं मारी थी अपितु सहज हीमें लग गयी थी) यह नूपुर मैंने उसके चरणमेंसे खींच लिया । तब वह तेज चालसे भाग गयी । यही इस नूपुरप्राप्तिका वृत्त है । इसके अतिरिक्त मैं कुछ नहीं जानता, आप लोग ही जानें ।

(४७) सब पुरवासियोंने इस वृत्तसे ऐक्यमत होकर यही निश्चय किया कि यह नितम्बवती पिशाचयोनिकी है । उसके पतिने भी उसे त्याग दिया । उसी श्मशानपर जाकर वह बहुत विलाप करके अपनेको रस्सीसे बांधकर मरनेकी इच्छा करने लगी-फांसी लगाकर मरना चाहती थी कि उसी धूर्तने उसे आकर पकड़ लिया । और अनुनय करके कहने लगा-'हे सुन्दरी ! आपकी आकृति और सुन्दरतासे मैं उन्मत्त हो गया था । और आपकी प्राप्तिके लिये भिक्षुकी आदिके मुखद्वारा सन्देश कहलाया । अनेक यत्न किये, परन्तु वे सभी निष्फल हो गये । तब मैंने यह उपाय सोचा कि 'जबतक मैं जीता रहूंगा तबतक तुम्हें ही रमणी बनाये रहूंगा।' ऐसा विचारकर उक्त

नि, तामगत्यन्तरामात्मवश्यामकरोत् । तदिदमुक्तम्—'दुष्करसाधनं प्रज्ञा' इति।

(४८) इदमाकर्ण्य ब्रह्मराक्षसो मामपूपुजत्। अस्मिन्नेव क्षणे नातिप्रौढपुंनागमुकुलस्थूलानि मुक्ताफलानि सह सलिलबिन्दुभिरम्बरतलादपतन्। अहं तु 'किं न्विदम्' इत्युच्चक्षुरालोकयन्कमपि राक्षसं काञ्चिदङ्गनां विचेष्टमानगात्रीमाकर्षन्तमपश्यम्। कथमपहरत्यकामामपि स्त्रियमनाचारो नैर्ऋतः इति गगनगमनमन्दशक्तिरशस्त्रश्चातप्ये। स तु मत्संबन्धी ब्रह्मराक्षसः 'तिष्ठ तिष्ठ पाप, क्वापहरसि' इति भर्त्सयन्नुत्थाय राक्षसेन समसृज्यत।

न्तरमन्यागतिर्यस्यास्ताम्। दुष्करसाधनं प्रज्ञा बुद्धिबलेन दुष्करमपि साधयितुं शक्यते इति भावः।

(४८) नातिप्रौढेति-नातिप्रौढानि अनतिपुष्टानि यानि पुंनागमुकुलानि बकुलकलिकाः तद्वत् स्थूलानि। मुक्ताफलानि मौक्तिकानि। अहं मित्रगुप्तः। उच्चक्षुः-ऊर्ध्वीकृतनेत्रः। विचेष्टमानगात्रीं वेपमानावयवाम्। अकामां अनिच्छन्तीम्। अनाचारः दुराचारः नैर्ऋतः राक्षसः। गगनेति-गगनगमने आकाशतलारोहणे मन्दा हीना शक्तिः सामर्थ्यं यस्य सः। अतप्ये तापमभजम्। मत्सम्बन्धी-मत्सम्पर्कितः सुहृद्भूत इति यावत्। उत्थाय गगनतले इति शेषः। समसृज्यत-संसृष्टोऽभवत् अयुध्यतेति शेषः।

उपायको रचा। अतः हे प्रिये! इस सेवकपर अनन्यगति होकर प्रसन्न हो। ऐसा कहकर वह कलहकंटक उस नितम्बवतीके चरणोंपर बार-बार शीश धरने लगा। बहु प्रकारसे सान्त्वना देकर उस रमणीको जिसकी दूसरी गति नहीं थी, अपने वशमें कर लिया। इसीसे कहा है-'दुष्कर साधन भी बुद्धिसे साधे जा सकते हैं।'

(४८) इन बातोंको श्रवण करके उस ब्रह्मराक्षसने मेरी पूजा की। उसी समय आकाशसे अनतिप्रौढ़ बकुलकी कलीके सदृश मोतीके दाने, जलबिन्दुओंके सहित गिरे। मैंने (मित्रगुप्तने) 'यह क्या है' ज्ञात करनेके लिये ऊपर नेत्रोंको किया तो देखा कि कोई एक राक्षस किसी कम्पित अङ्गवाली अङ्गनाको पकड़े लिये जा रहा है। यह राक्षस इस अनिच्छित महिलाको क्योंकर जबर्दस्ती पकड़े लिये जा रहा है?' ऐसा सोचते हुए तथा आकाशमें जानेकी शक्तिसे हीन एवं शस्त्ररहित मैं सन्ताप करने लगा। मेरे सुहृद् उस ब्रह्मराक्षसने कहा—'ठहरो, ठहरो, पापी! कहां लिये जाते हो?' इस प्रकारसे डराते हुए वह आकाशकी ओर उड़ा। और वहां उसके साथ संश्लिष्ट हो युद्ध करने लगा।

(४९) तां तु रोषादनपेक्षापविद्धाममरवृक्षमञ्जरीमिवान्तरिक्षादापतन्तीमुन्मुखप्रसारितोभयकरः कराभ्यामग्रहीषम् । उपगृह्य च वेपमानां सम्मीलिताक्षीं मदङ्गस्पर्शसुखेनोद्भिन्नरोमाञ्चां तादृशीमेव तामनवतारयन्नतिष्ठम् । तावत्तावुभावपि शैलशृङ्गभङ्गैः पादपैश्च रभसोन्मूलितैर्मुष्टिपादप्रहारैश्च परस्परमक्षपयेताम् । पुनरहमतिमृदुनि पुलिनवति कुसुमलवलाञ्छिते सरस्तीरेऽवरोप्य सस्पृहं निर्वर्णयंस्तां मत्प्राणैकवल्लभां राजकन्यां कन्दुकावतीमलक्षयम् ।

(५०) सा हि मया समाश्वास्यमाना तिर्यङ्मामभिनिरूप्य जातप्र-

(४९) तां अपह्रियमाणां स्त्रियम् । रोषात् क्रोधात् अनपेक्षयेति—अनपेक्षया निरपेक्षतया अपविद्धां त्यक्ताम् । अमरवृक्षमञ्जरीं कल्पतरुमञ्जरीम् । उन्मुखेति—उन्मुखौ प्रसारितौ आतलीकृतौ उभयकरौ येन सः । उपगृह्य गृहीत्वा । वेपमानां कम्पमानाम् । संमीलिताक्षीम्—निमीलितनयनाम् । मदंगेति—मदङ्गस्य मद्देहस्य स्पर्शेन यत् सुखं तेन । उद्भिन्नरोमाञ्चां उद्गतपुलकाम् । तादृशीं तदवस्थाम् । अनवतारयन्—भूमावस्थापयन् । उभौ—राक्षसब्रह्मराक्षसौ । शैलशृंगभंगैः पर्वतशिखरशकलैः । पादपैः वृक्षैः । रभसोन्मूलितैः—वेगादुत्पाटितैः । मुष्टिपादप्रहारैः मुष्टिप्रहारैः पादप्रहारैश्च । परस्परमन्योन्यम् । अक्षपयेतां नाशितवन्तौ । अतिमृदुनि—अतिकोमले । पुलिनवति—सिकतामये । कुसुमलवलाञ्छिते—पुष्पशकलशोभिते । अवरोप्य स्वभुजादवतार्य तामिति शेषः । सस्पृहं सानुरागम् । निर्वर्णयन् निरूपयन् । मत्प्राणैकवल्लभां ममहृदयैकदयिताम् । अलक्षयम्—अपश्यम् ।

(५०) सा कन्दुकावती । समाश्वास्यमाना सान्त्वयमाना । तिर्यक्—वक्री-

(४९) युद्धके समय रोषके साथ उपेक्षित भावसे परित्यक्त आकाशसे गिरती हुई उस महिलाको कल्पवृक्षकी मञ्जरीके समान ऊपरकी ओर मुख करके तथा दोनों हाथोंको फैलाकर मैंने लोक लिया । लोकनेके पश्चात् निमीलित नयनवाली एवं काँपती हुई तथा मेरे शरीरके स्पर्शसुखसे रोमाञ्चित होनेवाली उस महिलाको मैं उसी दशामें अपने हाथोंपर लिये हुए खड़ा रहा । वे दोनों (राक्षस-ब्रह्मराक्षस) परस्पर वेगसे उखाड़े हुए पहाड़ोंके शिखरोंके टुकड़ोंसे, पेड़ोंसे, मुष्टियोंसे, लातोंसे लड़ते हुए विनष्ट हो गये । फिर मैंने अत्यन्त कोमल बालुकापर जहाँपर पुष्पांश पड़े हुए थे, तालाबके किनारे उस रमणीको सानुराग देखा तो प्रतीति हुई कि वह रमणी मेरी हृदयवल्लभा राजपुत्री कन्दुकावती है ।

(५०) मेरे द्वारा समाश्वासित होनेपर उस रमणीने तिरछी दृष्टिसे जरा मुझे देखा

त्यभिज्ञा सकरुणमरोदीत्। अवादीच्च-'नाथ, त्वद्दर्शनादुपोढरागा तस्मिन्कन्दुकोत्सवे पुनः सख्या चन्द्रसेनया त्वत्कथाभिरेव समाश्वासितास्मि। त्वं किल समुद्रमध्ये मज्जितः पापेन मद्भ्रात्रा भीमधन्वना इति श्रुत्वा सखीजनं परिजनं च वञ्चयित्वा जीवितं जिहासुरेकाकिनी क्रीडावनमुपागमम्। तत्र च मामचकमत कामरूप एष राक्षसाधमः। सोऽयं मया भीतयावधूतप्रार्थनः स्फुरन्तीं मां निगृह्यास्यधावत्। अत्रैवमवसितोऽभूत्। 'अहं च दैवात्तवैव जीवितेशस्य हस्ते पतिता। भद्रं तव इति।

(५१) श्रुत्वा च तया सहावरुह्य, नावमध्यारोहम्। मुक्ता च नौः प्रतिवातप्रेरिता तामेव दामलिप्तां प्रत्युपातिष्ठत्। अवरूढाश्च वयमश्रमेण

कृतग्रीवा। अभिनिरूप्य समन्ततो दृष्ट्वा। जातेति-जाता उत्पन्ना प्रत्यभिज्ञा स एवायमिति ज्ञानं यस्याः सा। उपोढरागा-सञ्जातानुरागा। परिजनं दासीवर्गम्। जिहासुः त्यक्तुमिच्छुः। अचकमत-कामयामास। कामरूपः मायावी। अवधूतप्रार्थनः-अवधूता तिरस्कृता प्रार्थना यस्य सः। स्फुरन्तीं वेपमानाम्। निगृह्य बलादाकृष्य। अत्र अस्मिन् पर्वते एवं-ब्रह्मराक्षसेन सह युद्धं कृत्वा। अवसितः समाप्तिं गतः निहत इति यावत्। दैवात् अदृष्टवशात्। जीवितेशस्य पत्युः। भद्रं मङ्गलम्।

(५१) तया कन्दुकावत्या। अवरुह्य पर्वतशिखरादवतीर्य। मुक्ता परिचलिता। प्रतिवातप्रेरिता अनुकूलवायुचालिता। उपातिष्ठत्-उपाजगाम। अव-

---

तो पूर्वपरिचितकी स्मृति आ गयी। तब वह करुणस्वरसे रोकर कहने लगी 'हे स्वामिन्! उस कन्दुकक्रीड़ामें आपके दर्शनसे उद्भूत रागवती होकर मैं अपनी प्रियसखी चन्द्रसेनाद्वारा आपकी कथा-वार्ताओंसे समाश्वासित की गयी। मेरे पापी भाई भीमधन्वाद्वारा आप समुद्रमें डुबवाये गये। यह वृत्त सुनकर मैं अपने परिजन और सहचरियोंको छलकर अपनी आत्महत्याके लिये अकेली क्रीड़ावनमें भाग आयी। उस क्रीड़ावनमें इस मायावी राक्षसाधमने मेरे साथ कामेच्छा प्रकट की। भयान्वित मेरेद्वारा उसकी प्रार्थना तिरस्कृता होनेपर यह राक्षस मुझ काँपती हुई गात्रवालीको जबर्दस्ती पकड़कर ले भागा। वह इस पहाड़पर इस तरह लड़कर मर भी गया। सौभाग्यसे मैं अपने पतिके (आपके) हाथोंमें ही आ पड़ी। आप तो कुशलतासे हैं?'

(५१) इन वार्तोको श्रवणकर मैं उस कन्दुकावतीके साथ पहाड़परसे नीचे उतर आया तथा नावपर सवार हो गया। चलायी हुई नाव अनुकूल पवनके कारण सीधी उसी दामलिप्ता नगरीमें पहुंची। हम लोग विना परिश्रमके किनारे पर उतर गये।

'तनयस्य च तनयायाश्च नाशादनन्यापत्यस्तुङ्गधन्वा सुह्मपतिर्निष्कलः स्वयं सकलत्र एव निष्कलङ्कगङ्गारोधस्यनशनेनोपरन्तुं प्रतिष्ठते। सह तेन मर्तुमिच्छत्यनन्यनाथोऽनुरक्तः पौरवृद्धलोकः' इत्यश्रुमुखीनां प्रजानामाक्रन्दमश्रृणुम ।

(५२) अथाहमस्मै राज्ञे यथावृत्तमाख्याय तदपत्यद्वयं प्रत्यर्पितवान् । प्रीतेन तेन जामाता कृतोऽस्मि दामलिप्तेश्वरेण । तत्पुत्रो मदनुजीवी जातः । मदाज्ञप्तेन चामुना प्राणवदुज्झिता चन्द्रसेना कोशदासमभजत्। ततश्च सिंहवर्मसाहाय्यार्थमत्रागत्य भर्तुस्तव दर्शनोत्सवसुखमनुभवामि' इति ।

रूढा तीरमागता। तनयस्य पुत्रस्य भीमधन्वनः। तनयायाः कन्दुकावत्याः। अनन्यापत्यः अनपत्यः। निष्कलो वृद्धः। सकलत्रः सदारः। निष्कलङ्केति निष्कलङ्के निष्पापे गङ्गारोधसि गङ्गातटे। अनशनेन उपवासेन। उपरन्तुं मर्त्तुम् । प्रतिष्ठते यात्रां करोति। तेन राज्ञा तुङ्गधन्वना। अनन्यनाथः अशरणः। अश्रुमुखीनां सबाष्पवदनानाम् । आक्रन्दं विलापम् ।

(५२) अहं मित्रगुप्तः। यथावृत्तं यावत्संघटितम् । तदपत्यद्वयं–भीमधन्वानं कन्दुकावतीञ्च । तेन तुङ्गधन्वना। तत्पुत्रः राजपुत्रो भीमधन्वा। मदाज्ञप्तेन–मदादिष्टेन । अमुना भीमधन्वना । उज्झिता–त्यक्ता ।

नावसे उतरकर हम लोगोंन आँखोंमें आँसू भरे हुए प्रजाजनोंको विलाप करते हुए देखा। बात यह थी कि वृद्ध सुह्मपति महाराज तुंगधन्वा अपने पुत्र भीमधन्वा और पुत्री कन्दुकावतीकी मृत्युसे बड़े दुःखी हुए। साथ ही अन्य सन्तान न होने से उन्होंने निष्कलंकिनी गंगाके किनारे जाकर अपनी रानीके सहित अनशन (उपवास) करके प्राणोंको त्यागनेकी ठानी थी। उनके साथ नगरके वृद्ध लोगोंने भी अपने प्राणोंको अनाथ होनेके कारण तथा राजभक्तिके कारण त्यागना ठाना था।

(५२) विलाप सुननेके पश्चात् मैंने महाराज तुंगधन्वाको उनकी दोनों सन्तानें अर्पणकर दीं और सभी घटनाएँ भी बतला दीं। उन महाराज दामलिप्तेश्वरने प्रीतिसे मुझे जामाता बनाया। उनका पुत्र भीमधन्वा मेरा अनुजीवी हुआ। मेरी आज्ञासे उसने प्राणके समान चन्द्रसेनाको त्याग दिया जो कोशदासकी सेविका हो गयी। इसके बाद राजा सिंहवर्माकी सहायताके लिये मैं (मित्रगुप्त) यहांपर आया और हे स्वामिन् ! आपके दर्शनसुखके उत्सवका अनुभव कर रहा हूं।'

(५३) श्रुत्वा 'चित्रेयं दैवगतिः। अवसरेषु पुष्कलः पुरुषकारः' इत्यभिधाय भूयः स्मिताभिषिक्तदन्तच्छदो मन्त्रगुप्ते हर्षोत्फुल्लं चक्षुः पातयामास देवो राजवाहनः। स किल करकमलेन किञ्चित्संवृताननो ललितवल्लभारभसदत्तदन्तक्षतव्यसनविह्वलाधरमणिर्निरोष्ठ्यवर्णमात्मचरितमाचचक्षे—

इति श्रीदण्डिनः कृतौ दशकुमारचरिते मित्रगुप्तचरितं
नाम षष्ठ उच्छ्वासः।



(५३) चित्रा विस्मयोत्पादिका। अवसरेषु—योग्यसमयेषु। पुष्कलः प्रचुरः महान् इति यावत्। स्मितेति—स्मितेन मन्दहास्येन अभिषिक्तौ लिप्तौ दन्तच्छदौ ओष्ठाधरौ यस्य सः। मन्त्रगुप्ते तन्नामककुमारे। पातयामास अर्पयामास। स मन्त्रगुप्तः। किञ्चित्संवृताननः-ईषदावृतमुखः। ललितेति—ललितवल्लभया प्रियदयितया रभसेनौत्सुक्येन पौर्वापर्यमविचार्यैव वा दत्तं यद्दन्तक्षतं तेन यद् व्यसनं पीडा तेन विह्वलश्चञ्चलोऽधरमणिरधरबिम्बं यस्य सः। निरोष्ठ्यवर्णं तदोष्ठे क्षतसत्त्वात् ओष्ठ्यवर्णरहितम्।

इति श्रीताराचरणभट्टाचार्यकृतायां बालविबोधिनीसमाख्यायां
दशकुमारचरितव्याख्यायां मित्रगुप्तचरितं
नाम षष्ठ उच्छ्वासः।



(५३) राजवाहनने इन बातोंको सुनकर कहा—'दैवगति बड़ी विस्मयकारिणी होती है तथा समयपर पुरुषार्थ भी अति उपकारी होता है।' तत्पश्चात् मन्द मुसकानद्वारा दोनों अधरोंको अनुलिप्त करके देव राजवाहनने हर्षयुक्त विस्फारित नयनोंसे मन्त्रगुप्तकुमारको देखा। तब उस मन्त्रगुप्तने भी अपने कमलरूपी हाथोंसे ओठको थोड़ा आच्छादित करते हुए अपना वृत्तान्त कहना आरम्भ किया। उसके ओठपर उसकी सुन्दरी कामिनीद्वारा दन्तक्षत कर दिया गया था। जिस दन्तक्षतकी व्यथासे उसके अधरबिम्ब व्याकुल थे। अतः उस मन्त्रगुप्तने ओष्ठ्यवर्ण रहित वर्णोंमें अपना वर्णन प्रारम्भ किया।

इस प्रकारसे दशकुमारचरितके मित्रगुप्तचरितके षष्ठ उच्छ्वासकी
हिन्दी टीका बालक्रीड़ा समाप्त हुई।



सप्तमोच्छ्वासः

(१) राजाधिराजनन्दन, नगरन्ध्रगतस्य ते गतिं ज्ञास्यन्नहं च गतः कदाचित्कलिङ्गान्। कलिङ्गनगरस्य नात्यासन्नसंस्थितजनदाहस्थान-संसक्तस्य कस्यचित्कान्तारधरणिजस्यास्तीर्णसरसकिसलयसंस्तरे तले निषद्य निद्रालीढदृष्टिरशयिषि। गलति च कालरात्रिशिखण्डजालकान्ध-कारे, चलितरक्षसि क्षरितनीहारे निजनिलयनिलीननिःशेषजने नितान्त-

---

(१) अस्मिन् मन्त्रगुप्तचरिते ओष्ठ्यवर्णान् विहायैव पदानि निबद्धानि कविनेति द्रष्टव्यम्। नगरन्ध्रगतस्य पर्वतगुहाप्रविष्टस्य। ते राजवाहनस्य। अहं मन्त्रगुप्तः। कलिङ्गान् तदाख्यप्रदेशान्। नात्यासन्नेति-नात्यासन्ने किञ्चिद्दूरे संस्थितमवस्थितं यत् जनदाहस्थानं श्मशानं तत्संसक्तस्य लग्नस्य। कान्तारधरणिजस्य आरण्यकभूरुहस्य। आस्तीर्णेति-आस्तीर्णः विस्तारितः सरसकिसलयानां नवीनपल्लवानां संस्तरः शयनीयं यत्र तस्मिन्। तले इत्यस्य विशेषणमेतत्। निषद्य उपविश्य। निद्रालीढदृष्टिः निद्राक्रान्तनयनः। अशयिषि निद्रितोऽभवम्। गलति-भ्रश्यति-अतिक्रामति सतीति यावत्। कालरात्रीति-कालरात्र्याः संहार-रजनीरूपाया भगवत्याः कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणेति सप्तशत्युक्तेः। शिखण्डजालकं केशसमूहस्तद्वत् अन्धकारं यस्मिन् तत्र। चलितानि इतस्ततः सञ्चरणशीलानि रक्षांसि राक्षसा यस्मिन् तत्र। क्षरितो गलितः नीहारो हिमं यस्मिन् तत्र। निजनिलये स्वस्वगृहे निलीनाः स्थिता निःशेषा अखिला जना यस्मिन् तत्र। नितान्तं समधिकं शीतं यत्र तादृशे निशीथेऽर्धरात्रे। घनतरेति

---

(१) [इस मन्त्रगुप्तके चरितवर्णनमें दण्डि कविने ओष्ठ्यवर्ण रहित वर्णोंमें वर्णन किया है। ऐसा सुन्दर प्रयास शायद ही किसी अन्य उन्नत भाषामें दृष्टिगत हो, आश्चर्य तो यह है कि ओष्ठ्य वर्ण रहित होनेपर भी कथापाठमें कुछ भी अरोचकता वा कठिनताकी प्रतीति नहीं होती है] मन्त्रगुप्तका चरित—राजाधिराजनन्दन! जब आप पर्वतगुहामें प्रविष्ट हो गये तब आपकी गतिके जाननेके हेतु मैं (मन्त्रगुप्त) कलिंगदेशमें पर्यटन करते हुए पहुँचा। उस कलिंगदेशके समीपमें ही श्मशानकी भूमिसे सटे हुए एक वृक्षके नीचे नूतन पल्लवोंको एकत्र करके उनका बिछौना बनाकर मैं बैठ गया। और निद्रासे भरी आंखोंसे वहीं सो गया। कालरात्रिके केशसमूहके सदृश अन्धेरा होनेपर, राक्षसोंके इधर-उधर गमन करनेसे बरफके गिरनेपर, अपने-अपने गृहोंमें सभी जनोंके सो जानेपर, खूब ठण्ड पड़नेपर आधी रातमें, अत्यन्त सान्द्र तरुओंकी डालियोंके

शीते निशीथे घनतरसालशाखान्तरालनिर्ह्लादिनि नेत्रनिंसिनीं निद्रां निगृह्णन्, कर्णदेशं गतं 'कथं खलेनानेन दग्धसिद्धेन रिरंसाकाले निदेशं दित्सता जन एष रागेणानर्गलेनार्दित इत्थं खलीकृतः । क्रियेतास्याणकनरेन्द्रस्य केनचिदनन्तशक्तिना सिद्ध्यन्तरायः' इति किंकरस्य किंकर्याश्चातिकातरं रटितम् ।

(२) तदाकर्ण्य 'क एष सिद्धः, का च सिद्धिः, किं चानेन किङ्करेण करिष्यते' इति दिदृक्षाक्रान्तहृदयः किंकरगतया दिशा किंचिदन्तरं गत-

---

घनतराणां सान्द्रतराणां सालानां वृक्षाणां शाखान्तरालानि निर्ह्लादयति अव्यक्तशब्दं कारयतीत्येवंशीले, एतदपि निशीथे इत्यस्य विशेषणम् । नेत्रनिंसिनीं नयनचुम्बिनीम् । आगतप्रायामिति भावः । णिसि चुम्बने इत्यस्य धातो रूपमेतत् । निगृह्णन् निवारयन् । कर्णदेशं गतं श्रवणे प्रविष्टम् । खलेन दुष्टेन दग्धसिद्धेन हततापसेन । रिरंसाकाले रमणसमये । निदेशमाज्ञां दित्सता कुर्वता । एष जनः-अहमिति कश्चित् कथयति । रागेण प्रेम्णा । अनर्गलेन अप्रतिबन्धेन । अर्दितः पीडितः वशीकृत इति यावत् । इत्थमनेन प्रकारेण, असमये निदेशदानेनेति भावः । खलीकृतः उपद्रुतः । क्रियेत कर्तुं शक्येत सम्भावनायां विधिलिङ् । आणकनरेन्द्रस्य-आणकानां कुत्सितानां नरेन्द्रस्य श्रेष्ठस्य-पापस्य विषवैद्यस्य वा । अनन्तशक्तिना-समधिकशक्तिशालिना । सिद्ध्यन्तरायः कार्यसिद्धेर्विघ्नः । क्रियेतेत्यस्य कर्मपदमेतत् । किङ्करस्य दासस्य । किङ्कर्याः दास्याः । अतिकातरं अतिदीनम् । रटितं विलपितम् ।

(२) तदाकर्ण्य अहं मन्त्रगुप्त इति शेषः । दिदृक्षेति-दिदृक्षया दर्शनेच्छया आक्रान्तं व्याप्तं हृदयं यस्य सः । किङ्करगतया शब्दानुमितया किङ्कराध्यासितया ।

अन्तरालोंसे अस्पष्ट ध्वनि निकलनेपर, नयन-चुम्बिनी निद्राको रोकनेपर, मेरे कानोंमें सुनायी दिया कि—'कौन ऐसा दुष्ट तपस्वी (हततापस) है जो हम लोगोंके रमणके समय भी ऐसी-ऐसी आज्ञाएं दिया करता है कि 'इस जनको अप्रतिबद्धप्रेमसे वशीभूत करो' ऐसी बुरी आज्ञाद्वारा वह हमें रमणकालमें तंग करता है । हाय ! ऐसा कोई नहीं जो इस कुत्सित पापी विषवैद्यको अपनी अधिक शक्तिसे इसकी कार्यसिद्धिमें विघ्न करता !' उपर्युक्त वार्ता दास-दासीमें अति दीनतासे हो रही थी ।

(२) इन कथनोंको सुनकर मैं (मन्त्रगुप्त) 'यह सिद्ध कौन है, इसकी सिद्धि क्या है, इस किंकरद्वारा क्या किया जाता है ? आदि' । कौतूहलको देखनेके लिये आक्रान्त हृदयसे किंकरकी ध्वनिवाली दिशामें चला । कुछ दूर

स्तरलतरनरास्थिशकलरचितालंकाराक्रान्तकायम्, दहनदग्धकाष्ठनिष्ठाङ्गाररजःकृताङ्गरागम्, तडिल्लताकारजटाधरम्, हिरण्यरेतस्यरण्यचक्रान्धकारराक्षसे क्षणगृहीतनानेन्धनग्रासचञ्चदर्चिषि दक्षिणेतरेण करेण तिलसिद्धार्थकादीन्निरन्तरचटचटायितानाकिरन्तं, कंचिदद्राक्षम् । तस्याग्रे स कृताञ्जलिः किंकरः 'किं करणीयम्, दीयतां निदेशः' इत्यतिष्ठत् । आदिष्टश्चायं तेनातिनिकृष्टाशयेन—'गच्छ, कलिङ्गराजस्य कर्दनस्य कन्यां कनकलेखां कन्यागृहादिहानय' इति ।

किञ्चिदन्तरं क्रियद्दूरम् । तरलेति—तरलतरैरतिचञ्चलैः नरास्थिशकलैर्मनुष्यास्थिखण्डैः रचितेन निर्मितेन अलङ्कारेण भूषणेन आक्रान्तः व्याप्तः कायः शरीरं यस्य तादृशम् । दहनेति—दहनेन अग्निना दग्धं यत्काष्ठमिन्धनं तन्निष्ठ तत्र स्थितं यदङ्गाररजः भस्म तेन कृतः अङ्गरागः अङ्गलेपनं येन तादृशम् । तडिदिति—तडिल्लताकारां विद्युल्लतासदृशीं जटां धरतीति । तादृशम् । हिरण्यरेतसि अग्नौ । अरण्येत्यादि—विशेषणद्वयं हिरण्यरेतसीत्यस्य । अरण्येति—अरण्यचक्रे काननमण्डले ये अन्धकारास्तेषां राक्षसे भक्षके नाशके इति यावत् । तथा क्षणेन स्वल्पसमयेन गृहीतानां धृतानां नानेन्धनानां विविधकाष्ठानां ग्रासेन भक्षणेन दहनेनेति यावत् चञ्चन्ती स्फुरन्ती अर्चिः शिखा यस्य तादृशे । दक्षिणेतरेण वामेन । सिद्धार्थाः श्वेतसर्षपाः । तदादीन् तण्डुलयवांश्चेत्यर्थः । निरन्तरचटचटायितान्—अजस्रं चटचटेति अव्यक्तशब्दं कुर्वतः । आकिरन्तं क्षिपन्तम् । कञ्चित्पुरुषमिति शेषः । तस्य होमं कुर्वतः पुरुषस्य । स पूर्वोक्तः । अयं किङ्करः । तेन पुरुषेण । अतिनिकृष्टाशयेन—अत्यन्तनीचप्रकृतिना । कर्दन इति कलिङ्गराजस्य नाम ।

गया था कि मैंने देखा—'एक आदमी, मनुष्योंकी हड्डियोंके टुकड़ोंसे बने हुए अति चंचल अलंकारोंको अपनी देह भरमें पहने हुए हैं। आगमें जले हुए काष्ठ आदिकी अंगारभस्मको अपने शरीर भरमें पोते हुए है। जिसकी जटा बिजलीकी लताके समान (चमकदार) है अर्थात् विद्युल्लताके समान जटाओंको धारण किये हुए है। जो काननमण्डल (वनसमूह) के अन्धकारको नाश करनेमें अग्निके समान है। क्षण-क्षणमें काष्ठ, ईंधन आदिसे अग्नि प्रज्वलित हो रही थी। जो अपने बायें हाथसे तिल, सफेद सरसों, यव, चांवल आदिसे लगातार हवन कर रहा है। जिससे अग्निमें लगातार चट-चट शब्द हो रहा है ऐसे हवन करनेवाले, एक आदमीको मैंने देखा। उस हवनकर्ताके सम्मुख वह किंकर बद्धाञ्जलि होकर पूछ रहा था—'क्या करना है, आज्ञा दें।' इस प्रकारसे हाथ जोड़े खड़े हुए उस किंकरको उस नीच बुद्धिवाले हवन-

(३) स च तथाकार्षीत् । ततश्चैनां त्रासेनालघीयसास्रजर्जरेण च कण्ठेन रणरणिकागृहीतेन च हृदयेन 'हा तात, हा जननि' इति क्रन्दन्तीं कीर्णग्लानशेखरस्रजि शीर्णनह्ने शिरसिजानां संचये निगृह्यासिना शिलाशितेन शिरश्छिकर्तिषयाचेष्टत । झटिति चाच्छिद्य तस्य हस्तात्तां शस्त्रिकां तया निकृत्य तस्य तच्छिरः सजटाजालम्, निकटस्थस्य कस्यचिज्जीर्णसालस्य स्कन्धरन्ध्रे न्यदधाम् । तन्निध्याय हृष्टतरः स राक्षसः क्षीणाधिरकथयत्—'आर्य, कदर्यस्यास्य कदर्थनान्न कदाचिन्निद्रायाति नेत्रे । तर्ज-

(३) स किङ्करः । तथा तत्कथनानुरूपम् । एनां कनकलेखाम् । अलघीयसा महता । अस्रजर्जरेण–वाष्पगद्गदेन । रणरणिकेति–रणरणिकया उद्वेगातिशयेन गृहीतम्–आक्रान्तं तेन । कीर्णेति–कीर्णा विक्षिप्ता अतश्च म्लाना शेखरस्रक् शिरोभूषणभूतमाल्यं यस्य तथाविधे, शीर्णनह्ने शिथिलबन्धने शिरसिजानां केशानां सञ्चये कलापे निगृह्य सुदृढमाकृष्य असिना खड्गेन शिलया पाषाणेन शितस्तीक्ष्णीकृतस्तेन शिरश्छिकर्त्तिषया मस्तकच्छेदनेच्छया अचेष्टत उद्यतोऽभवत् । आच्छिद्य आकृष्य । तस्य पुरुषस्य । तया शस्त्रिकया निकृत्य छित्वा । तस्य पुरुषस्य । सजटाजालं जटामण्डलमण्डितम् । जीर्णसालस्य पुरातनवृक्षस्य । स्कन्धरन्ध्रे कोटरे । न्यदधाम् न्यक्षिपम् अहं मन्त्रगुप्त इति शेषः । निध्याय विलोक्य । स पूर्वोक्तः किङ्कर एव राक्षसः । क्षीणाधिः अपगतमनोव्यथः । कदर्यस्य पापस्य । अस्य तापसवेषधारिणः कदर्थनात् पीडनात् । निद्रा नेत्रे न आयाति, अस्य पीड-

कर्त्ताने आदेश दिया—'जाओ, कलिंगके राजा कर्दनक की पुत्री कनकलेखाको कन्यागृहसे यहांपर ले आओ ।'

(३) उस किंकरद्वारा वह कार्य यथाशा सम्पादित कर दिया गया । जब कन्या वहां आ गयी, तो वह बड़े भयसे आंसुओंको गिराती हुई रुँधे गलेसे तथा अत्यन्त उद्वेगसे आक्रान्त हृदय होकर हा ! तात, हा ! जननि, चिल्लाती हुई रोने लगी। रोनेके कारण इधर-उधर होकर उस कन्याके शिरपर अलंकारके समान धारण की हुई माला भी म्लान हो गयी, बन्धन शिथिल हो गये । तब उस हवनकर्त्ताने, उसके केशकलापोंको पकड़कर पत्थरके ऊपर तेज की हुई तलवारसे ज्योंही उस कन्याके शिरको काटनेकी चेष्टा की त्योंही उसके हाथसे मैंने उस तलवारको छीनकर उसी हवनकर्त्ताके जटामण्डलमण्डित शिरको काट डाला । वहीके एक पुराने वृक्षके कोटर(खोखला) में उसके शिरको फेंक दिया । उसकी मृत्युसे प्रसन्नचित्त तथा मानसी पीड़ा रहित होकर वह किंकर कहने लगा 'हे आर्य ! इस पापी हवनकर्त्ताकी पीड़ासे मेरे नेत्रोंमें कभी

शति त्रासयति च, अकृत्ये चाज्ञां ददाति । तदत्र कल्याणराशिना साधीयः कृतम् । यदेष नरकाकः कारणानां नारकिणां रसज्ञानाय नीतः शीतेतरदीधितिदेहजस्य नगरम्, तदत्र दयानिधेरनन्ततेजसस्तेऽयं जनः कांचिदाज्ञां चिकीर्षति । आदिश, अलं कालहरणेन' इत्यनंसीत् ।

(४) आदिशं च तम्—सखे, सैषा सज्जनाचरिता सरणिः, यदणीयसि कारणेऽनणीयानादरः संदृश्यते । न चेदिदं नेच्छसि सेयं संन्न-

नभयेन निद्रातुमपि न शक्यत इति भावः । अकृत्ये कर्तुमनुचिते विषये । अत्र अस्य विषये । कल्याणराशिना-मङ्गलालयेन त्वया साधीयः यथोचितम्, अति साधु वा । नरकाकः नरेषु काक इव-नराधम इत्यर्थः । कारणानां यातनानाम् । कारणा तु यातना तीव्रवेदनेत्यमरः । नारकिणां नरकपतितानाम् । नरकवासिनां याः यातना भवन्ति तासां रसज्ञानाय आस्वादग्रहणाय नीतः प्रापितः त्वयेति शेषः । शीतेतरा उष्णा दीधितिर्मरीचिर्यस्य स शीतेतरदीधितिः सूर्यस्तस्य देहज आत्मजो यमस्तस्य-नगरं यमालयमित्यर्थः । अनन्ततेजसः-अमितशक्तेः । अयं जनः-अहम् इत्यर्थः । चिकीर्षति-आज्ञामनुष्ठातुमिच्छति । कालहरणेन-कालविलम्बेन । अनंसीत् प्रणनाम ।

(४) आदिशम् आज्ञातवानहमिति शेषः । तं राक्षसम् । सैषा प्रसिद्धा । सरणिः पद्धतिः मार्ग इति यावत् । अणीयसि अणुतरे अत्यल्पे इति यावत् । कारणे आदरहेतौ । अनणीयान्-महान् । सज्जना यत्र कुत्रापि जने स्वल्पेनापि कारणेन समधिकमादरं प्रदर्शयन्तीति तेषां पद्धतिः । ततश्च मयाद्य यत्कृतं तत्तुच्छमेव तदर्थं त्वया नाहमुच्चैः प्रशंसनीय इति भावः । न चेदिदमिति-यदि इदं मदुप-

भी निद्रा नहीं आती थी । यह मुझे डराया और धमकाया करता था । अतः आप ऐसे मांगलिक पुरुषद्वारा यह कार्य अतीव सुन्दर हुआ । आपद्वारा यह नराधम नरककी यातना भोगनेके लिये सूर्यपुत्र (यम) की नगरीमें भेज दिया गया । हे दयानिधे ! आप ऐसे अमित शक्तिवाले पुरुषकी आज्ञा पालनेके लिये यह जन (किंकर) इच्छा करता है । आज्ञा दें, कालक्षेपसे क्या लाभ ।' उपर्युक्त वार्त्ता विज्ञापितकर उसने मुझे प्रणाम किया ।

(४) मैंने उससे कहा—'हे सखे ! यही सज्जनों द्वारा आचरित मार्ग है कि अणुमात्र उपकारको भी सज्जनवृन्द महान् उपकार मानते हैं । तुम भी क्या ऐसा नहीं चाहते, नहीं अवश्य चाहते हो । अस्तु, इस राजपुत्रीको जो यौवनभारसे नम्र देहलतावाली है, जो दुःखोंको सहन करनेमें असमर्था है, जो दुष्कर्मी हवनकर्त्ताद्वारा

ताङ्गयष्टिरक्लेशार्हा सत्यनेनाकृत्यकारिणात्यर्थक्लेशिता, तन्नयैनां निज-निलयम्। नान्यदितः किंचिदस्ति चित्ताराधनं नः' इति ।

(५) अथ तदाकर्ण्य कर्णशेखरनिलीननीलनीरजायितां धीरतरलतारकां दृशं तिर्यक्किंचिदञ्चितां संचारयन्ती, सलिलचरकेतनशरासनानतां चिल्लिकालतां ललाटरङ्गस्थलीनर्तकीं लीलालसं लालयन्ती, कण्टकितरक्तगण्डलेखा, रागलज्जान्तरालचारिणी, चरणाग्रेण तिरश्चीननखार्चिश्चन्द्रिकेण धरणितलं साचीकृताननसरसिजं लिखन्ती,

कारकरणं न नेच्छसि अपि तु अवश्यमिच्छसि तदा सेयं राजकन्या सन्नताङ्गयष्टिः यौवनभरेण नम्रदेहलतिका अक्लेशार्हा क्लेशसहनायोग्या अनेन तापसवेशधारिणा दुष्टेन अकृत्यकारिणा दुष्टकर्मणा क्लेशिता आयासिता तत्तस्मात् नय प्रापय एनां राजकन्यां निजनिलयं स्वगृहम् । अन्यदपरम् । इतः अस्मात् राजकन्यायाः स्वगृहप्रेषणात् । चित्ताराधनं मनःसन्तोषकरम् । नः अस्माकम् ।

(५) कर्णशेखरेति—कर्णशेखरे कर्णाग्रभागे निलीनं निविष्टं यत् नीलनीरजं नीलकमलं तद्वदाचरति या ताम् तथा धीरतरला ईषच्चञ्चला तारका कनीनिका यस्यां ताम् एवम्भूतां दृशं नयनम् पुनः कथम्भूतां तिर्यक् किञ्चिदञ्चितां-तिर्यक् वक्रं यथा तथा किञ्चिदीषत् अञ्चितां चलिताम् । सञ्चारयन्ती इतस्ततो भ्रमयन्ती । सलिलेति सलिलचरो मीनः केतनं ध्वजो यस्य तस्य मदनस्य शरासनं धनुस्तदिव आनतां कुटिलाम् चिल्लिकालतां भ्रूवल्लीं ललाटमेव रङ्गस्थलं नृत्यशाला तस्य नर्त्तकीमित्यपि चिल्लिकालताविशेषणम् । लीलालसं विलासमन्दं यथा तथा। लालयन्ती चालयन्ती । कण्टकितेति—कण्टकिता सञ्जातरोमाञ्चा रक्ता च गण्डलेखा कपोलपाली यस्याः सा । रागेति—रागोऽनुरागः लज्जा त्रपा च तयोरन्तरालचारिणी मध्यवर्त्तिनी; इच्छा वर्त्तते किन्तु लज्जा तां प्रतिबध्नातीति भावः। तिरश्चीनेति—तिरश्चीनाः वक्राकारा नखानामर्चिषः किरणा एव चन्द्रिका यत्र तेन चरणाग्रेणेत्यस्य विशेषणं । साचीति साचीकृतं वक्रीकृतं आननसरसिजं मुखकमलं यत्रैतादृशं धरणितलं लिखन्ती कुट्टयन्ती ।

बहुत क्लेशित की गयी है, अपने (राजकन्याके) घर पर पहुँचा दो । इससे बढ़कर मेरे मनको सन्तोष देनेवाला कोई कार्य नहीं है ।'

(५) ऐसी वाक्यावली सुननेके पश्चात्—कानोंके अग्रभागमें सन्निविष्ट नीलकमलके सदृश बड़ी तथा ईषत् चंचल तारकावाली आंखोंको कुछ टेढ़ी-मेढ़ी इधर-उधर घुमाती हुई, मकरध्वजके धनुषके तुल्य कुछ कुटिल भ्रूलताओं को ललाटरूपी नृत्यशालाकी नर्त्तकी बनाती हुई, उस नर्त्तकी द्वारा मन्द विलास करवाती हुई, रोमाञ्चित रक्त कपोल-

(६) दन्तच्छदकिसलयलङ्घिना हर्षास्रसलिलधाराशीकरकणजालक्लेदितस्य स्तनतटचन्दनस्याद्रतां निरस्यतास्यान्तरालनिःसृतेन तनीयसानिलेन हृदयलक्ष्यदलनदक्षिणरतिसहचरशरस्यदायितेन तरङ्गितदशनचन्द्रिकाणि कानिचिदेतान्यक्षराणि कलकण्ठीकलान्यसृजत्—'आर्य, केन कारणेनैनं दासजनं कालहस्तादाच्छिद्यानन्तरं रागानिलचालितरणरणिकातरङ्गिण्यनङ्गसागरे क्षिपसि । यथा ते चरणसरसिजरजःकणिका तथाहं

(६) दन्तच्छदेति—दन्तच्छदः अधरः स एव किसलयस्तं लंघयति कम्पयत्येवंशीलेन ओष्ठाधरकम्पिनेति यावत् । एतत्तु अनिलेनेत्यस्य विशेषणमेवमग्रेऽपि । हर्षास्रेति—हर्षेण निर्गता या अस्रसलिलधारा अश्रुजलपरम्परा तस्याः शीकरकणजालेन बिन्दुलवनिवहेन क्लेदितस्यार्द्रीकृतस्य—एतादृशस्य स्तनतटचन्दनस्य वक्षःस्थितचन्दनलेपस्य आर्द्रतां सरसतां निरस्यता अपनयता तथा आस्यान्तरालनिःसृतेन मुखविवरनिर्गतेन तथा तनीयसा मृदुना । मुखनिःसृतेन अत एवोष्णेन मन्दसमीरेण हृदयचन्दनलेपः शुष्कतां गत इति भावः । पुनः कीदृशेन ? हृदयेति—हृदयं कामिजनचित्तमेव लक्ष्यं वेध्यं तस्य दलने भेदने दक्षिणो दक्षः पटुर्वा यो रतिसहचरः कामस्तस्य शरस्यदो बाणवेगस्तद्वदाचरितेन—एतदपि अनिलविशेषणम् । तरङ्गितेति—तरङ्गिता स्फुरिता दशनानां दन्तानां चन्द्रिका ज्योत्स्ना यैस्तादृशानि । एतानि वक्ष्यमाणानि । कलकण्ठीति—कलकण्ठी कोकिला तस्या इव कलानि मधुराणि अक्षराणीत्यस्य विशेषणम् । असृजत् उच्चारितवती । आर्य पूज्य । एनं दासजनं मामित्यर्थः । कालहस्तात् मृत्युकरात् । आच्छिद्य अपकृष्य । रागेति रागोऽनुराग स एवानिलो वायुस्तेन चालिताश्चञ्चलीकृताः रणरणिका उत्कण्ठा एव तरङ्गा विद्यन्ते यस्मिंस्तादृशि अनङ्गः काम एव सागरः समुद्रस्तस्मिन् । क्षिपसि क्षिपसि । यथा यादृशी । ते तव । चरणसरसिजरजःकणिका

रेखा बनाती हुई, अनुराग और लज्जायुक्त दोनोंमें रहती हुई, वक्राकार नाखूनकी ज्योति की चन्द्रिकावाले चरणकी अंगुलिसे तथा अपने मुखकमलको नम्रकर भूमिपर लिखती हुई,

(६) हर्षके आंसुओंकी जलधाराके लव समुदायसे अभिषिक्त अधररूपी किसलयको कँपाती हुई, अपने मुखविवरसे निकली हुई उष्ण मन्द पवनसे कुचों परके चन्दनके लेपको सुखाती हुई, कामीजनोंके चित्तोंको लक्ष्य मानकर भेदन करनेमें प्रवीण कामदेवके बाणके वेगके समान आचरण करती हुई, दांतोंकी ज्योत्स्नाको स्फुरित करती हुई निम्नांकित कुछ अक्षरोंको कोयलकी वाणीके समान मधुर कण्ठसे बोली—'हे आर्य !

चिन्तनीया। यद्यस्ति दया तेऽत्रजने, अनन्यसाधारणः करणीयः स एव चरणाराधनक्रियायाम्। यदि च कन्यागाराध्यासने रहस्यक्षरणादनर्थं आशङ्कयेत, नैतदस्ति। रक्ततरा हि नस्तत्र सख्यश्चेटयश्च। यथा न कश्चिदेतज्ज्ञास्यति तथा यतिष्यन्ते' इति।

(७) स चाहं देहजेनाकर्णाकृष्टसायकासनेन चेतस्यतिनिर्दयं ताडितस्तत्कटाक्षकालायसनिगडगाढसंयतः किंकराननिहितदृष्टिरगादिषम्—

पादपद्मधूलिकणाः। तथा तादृशी। अत्र जने मयि। अनन्यसाधारणः अनन्यसदृशः। स एव-अहमेव। चरणाराधनक्रियायां-पदसेवाकार्ये। कन्यागाराध्यासने-कन्यान्तःपुरवासे। रहस्यक्षरणात्-गुह्यप्रकटनात्। अनर्थो विपत्तिः। आशङ्कयेत भवतेति शेषः। नैतदस्ति-शङ्का नास्तीत्यर्थः। रक्ततराः अतिशयेन अनुरक्ताः। नः अस्माकम्। सख्यः सहचर्यः। चेटयः दास्यः। न कश्चित्-नान्यः कोऽपि। एतत्-भवदत्रस्थानम्। यतिष्यन्ते चेष्टिष्यन्ते ता इति शेषः।

(७) स चाहं-मन्त्रगुप्त इत्यर्थः। देहजेन मदनेन। आकर्णेति-आकर्णं श्रवणपर्यन्तं आकृष्टं आयतीकृतं सायकासनं कार्मुकं येन तेन। देहजेनेत्यस्य विशेषणमिदम्। अथवा आकर्णाकृष्टं यत् सायकासनं धनुस्तेनेति करणे तृतीया। अतिनिर्दयमतिकठोरम्। तत्कटाक्षेति-तस्याः राजकन्यायाः कटाक्ष एव कालायसनिगडः लोहशृङ्खलं तेन गाढं दृढं संयतो बद्धः। किङ्करेति किङ्करस्य राक्षसस्यानने मुखे निहिता अर्पिता दृष्टिर्येन तादृशोऽहम्। अगादिषं-कथितवान्। यथा यादृक्।

आप किस हेतु इस दासीको कालके गालसे (हाथ से) बचाकर, फिर अनुरागरूपी पवनसे चञ्चल तथा उत्कण्ठारूपी तरङ्ग (लहर) वाले कामदेवरूपी समुद्रमें ढकेल रहे हैं ? आप मुझे अपने कमलकी रजके तुल्य ही जानें। यदि आपकी इस तुच्छ जनपर दया है, तो आप मुझे अपने पादसेवाकार्यमें नियुक्त करें और अपनी अनन्य सेविका बनावें। यदि आप यह सोचें कि कन्यान्तःपुरमें जानेसे गुप्त बातें प्रकट हो जाँयगी तो इसकी आप जरा भी शंका न करें—अर्थात् निःशंक होकर मेरे साथ वहां चलकर रहें। क्योंकि वहांपर सब सहचरी और दासियां मेरी प्रगाढ स्नेहवती हैं और वे भी मुझपर अति अनुराग करती हैं। आपका अन्तःपुरमें निवास कोई भी न जानें ऐसा ही उद्योग वे सब करेंगी।'

(७) वही मैं (मन्त्रगुप्त) कामदेवद्वारा कानतक खींचकर धनुषसे वेधित हृदयवाला, उस राजपुत्रीके कटाक्षरूपी लोहेकी जंजीरोंसे परिबद्ध होकर, उस किंकरके मुखपर दृष्टि डालकर बोला—'हे किंकर ! जैसा यह प्रशस्तजघना राजपुत्री कहती है वैसा यदि

'यथेयं रथचरणजघना कथयति तथा चेन्नाचरेयम्, नयेत नक्रकेतनः क्षणेनैकेनाकीर्तनीयां दशाम् । जनं चैनं सह नयानया कन्यया कन्यागृहं हरिणनयनया' इति । नीतश्चाहं निशाचरेण शारदजलधरजालकान्ति कन्यकानिकेतनम् । तत्र च कांचित्कालकलां चन्द्राननानिदेशाच्चन्द्रशालैकदेशे तद्दर्शनचलितधृतिरतिष्ठम् ।

(८) सा च स्वच्छन्दं शयानाः करतलालससंघट्टनापनीतनिद्राः काश्चिदधिगतार्थाः सखीरकार्षीत् । अथागत्य ताश्चरणनिहितशिरसः क्षर-

रथचरणजघना रथचरणः चक्रं तदाकारे जघने यस्याः सा, प्रशस्तजघनेति यावत् । तथा तादृक् । आचरेयं अनुतिष्ठेयम् । नयेत प्रापयेत् । नक्रकेतनः मकरध्वजः । क्षणेन एकेन मुहूर्त्तेन । अकीर्त्तनीयां अकथनीयाम् । दशां मरणदशामिति भावः । एनं जनं मामित्यर्थः । नय प्रापय । नीतः प्रापितः । शारदेति–शरदि भवः शारदस्तादृशो यो जलधरो मेघस्तस्य जालं मण्डलं तस्येव कान्तिर्यस्य तादृशम् सुधासितमित्यर्थः । कन्यकानिकेतनं कन्यागृहम् । तत्र कन्यागृहे । काञ्चित्–कियत्परिमिताम् । कालकलां कालस्य समयस्य कलामंशम् । चन्द्राननानिदेशात्–राजकन्यादेशात् । चन्द्रशालैकदेशे चन्द्रशाला शिरोगृहं तस्या एकदेशे एकस्मिन् विभागे । तद्दर्शनेति—तस्या राजकन्याया दर्शनेन चलिता च्युता धृतिर्धैर्यं यस्य सः ।

(८) सा राजकन्या । स्वच्छन्दं प्रकामम् । शयानाः निद्रामधिगताः । करतलेति–करतलेन अलसं मन्दं यत् संघट्टनं प्रेरणं तेन अपनीता दूरीभूता निद्रा यासां ताः एवम्भूताः काश्चित् सखीः सहचरीः अधिगतार्थाः अधिगतः सम्यक् ज्ञातः अर्थः मदागमनरूपो विषयो याभिस्ताः । अथ निद्रापगमनान्तरं ताः सख्यः । किम्भूताः, चरणनिहितशिरसः—मत्पादसंस्थापितमस्तकाः प्रणता इति

आचरण न करूँगा तो, कामदेव एक ही क्षणमें अवर्णनीया परिस्थिति ला देगा । अर्थात् मरणावस्था प्राप्त करा देगा । अत एव इस जन (मुझ) को इसी मृगनयनी राजपुत्रीके साथ अन्तःपुरमें ले चलो ।' मैं (तथा वह राजपुत्री) उस निशाचर (किंकर) द्वारा शरत्कालिक मेघोंके समान सुन्दर छविवाले (सफेद) कन्यान्तःपुरमें पहुंचा दिया गया । उस कन्यान्तःपुरमें कुछ कालतक उस चन्द्रमुखी राजकन्याके आदेशसे अट्टालिका (शिरोगृह) के एक स्थलमें 'फिर उस चन्द्रमुखीका दर्शन होगा' इस आशासे अधीरबुद्धि होकर बैठ गया ।

(९) वह चन्द्रमुखी, घोर निद्रामें सोती हुई कई सखियोंको, हाथकी धीमी थपकियोंसे जगाकर, तथा मेरे आगमन रूपी समाचारको ज्ञात कराकर वहां बुलाकर

दस्रकरालितेक्षणा निजशेखरकेसराग्रसंलग्नषट्चरणगणरणितसंशयितकलगिरः शनैरकथयन्–'आर्य, यदत्यादित्यतेजसस्त एषा नयनलक्ष्यतां गता, ततः कृतान्तेन न गृहीता। दत्ता चेयं चित्तजेन गरीयसा साक्षीकृत्य रागानलम्। तदनेनाश्चर्यरत्नेन नलिनाक्षस्य ते रत्नशैलशिलातलस्थिरं रागतरलेनालंक्रियतां हृदयम्। अस्याश्चरितार्थं स्तनतटं गाढालिङ्गनैः

यावत्। तथा स्नरदस्रेति–स्नरता निःसरता अस्रेण अश्रुणा करालिते व्याप्ते ईक्षणे नेत्रे यासां ताः। तथा निजशेखरेति–निजशेखरे स्वशिरोभूषणे यानि केसराणि वकुलपुष्पाणि तेषामग्रे पुरोभागे संलग्नानां स्थितानां षट्चरणानां भ्रमराणां गणस्य यद् रणितं गुञ्जितं तेन संशयिता भ्रमरगुञ्जितं वा कण्ठस्वरो वेति सञ्जातसंदेहा कला मधुरा गीर्वाग् यासां ताः। शनैर्मन्दं मन्दम्। यद् यतः। अत्यादित्यतेजसः–आदित्यमतिक्रान्तमत्यादित्यं तादृशं तेजो यस्य तस्य विजितसौरप्रतापस्येत्यर्थः। ते तव एषा अस्मत्सखी नयनलक्ष्यतां दृष्टिगोचरताम्। ततः तस्मादेव कारणात् कृतान्तेन मृत्युना न गृहीता त्वद्दर्शनादेव कृतान्तेन त्यक्तेति भावः। दत्ता तुभ्यमिति शेषः। गरीयसा अतिगुरुणा चित्तजेन कामेन रागानलं प्रेमाग्निं साक्षीकृत्य दत्तेति सम्बध्यते। तदनेनेति–तत्तस्मात् अनेन रागतरलेन प्रेमविह्वलेन कनकलेखारूपेण आश्चर्यरत्नेन श्रेष्ठमणिना नलिनाक्षस्य कमलनयनस्य ते रत्नशैलस्य सुमेरोः शिलातलवत् पाषाणपट्टवत् स्थिरं सुदृढं हृदयं वक्षःस्थलं अलंक्रियतां भूष्यताम्। यथा कौस्तुभमणिर्विष्णोर्वक्षोऽलंकरोति तथेयमपि तव हृदयमलंकरोतु इति भावः। अस्या इति–सदृशतरस्य योग्यतरस्य सहचरस्य दयितस्य तव गाढालिङ्गनैर्निर्दयाश्लेषैः अस्याः कनकलेखायाः स्तनतटं वक्षःस्थलं

ले आयी। आनेके अनन्तर उन सखियोंने अपने शिरोंको मेरे चरणोंपर धर कर प्रणाम करने और आखोंसे अश्रुपात करने लगीं। अपने शिरोभूषणोंके ऊपर लगे हुए पुष्पोंके परागोंपर गुंजायमान भ्रमरोंकी अस्पष्ट मधुर ध्वनिसे सन्देहमयी मधुर वाणी धीरे-धीरे बोलीं—'हे आर्य! यह मेरी सखी, भगवान् सूर्यके तेजको भी जीतनेवालेसे, आपके नेत्रोंकी लक्ष्यभूता हुई है—आपद्वारा देखी गयी है। इसी हेतुसे यमराजने भी इसे नहीं ग्रहण किया–क्योंकि वह सूर्य पुत्र है और आप सूर्यको जीतनेवाले तेजको धारण किये हुए हैं। अतिबलशाली कामदेवने इस राजपुत्रीको रागरूपी अग्निको साक्षी बनाकर, आपके हाथोंमें समर्पित कर दिया है। अतः प्रेमसे विह्वल इस कनकलेखारूपी श्रेष्ठमणिद्वारा आप ऐसे कमलनेत्रका सुमेरु पर्वतके प्रस्तरके समान सुदृढ हृदय अलंकृत किया जाय। आप ऐसे योग्यतर प्रीतमकेद्वारा इस कनकलेखाका कुच-

सहशतरस्य सहचरस्य च' इति। ततः सखीजनेनातिदक्षिणेन दृढतरीकृतस्नेहनिगलस्तया संनताङ्ग्या संगत्यारंसि।

(६) अथ कदाचिदायासितजायारहितचेतसि, लालसालिलङ्घनग्लानघनकेसरे, राजदरण्यस्थलीललाटलीलायिततिलके, ललितानङ्गराजाङ्गीकृतनिनिद्रकर्णिकारकाञ्चनच्छत्रे, दक्षिणदहनसारथिरयाहृतसहकारचञ्चरीककलिके, कालाण्डजकण्ठरागरक्तरक्ताधराररतिरणाग्रसंनाहशा-

चरितार्थं कृतार्थं जायतामिति शेषः। तत इति—अतिदक्षिणेन अतिनिपुणेन अतिसरलेन वा सखीजनेन सहचरीवृन्देन दृढतरीकृतः सुश्लिष्टीकृतः स्नेहनिगडः प्रेमपाशो यस्यैवं भूतोऽहं सन्नताङ्ग्या कोमलशरीरया तया कनकलेखया सह संगत्य मिलित्वा अरंसि क्रीडितवान्।

(९) अथेति—अथ तया सह संगत्यनन्तरम् कदाचित् कस्मिन्नपि काले। तमेव कालं विशिनष्टि—आयासितेति—आयासितानि खेदितानि जायारहितानां भार्यावियुक्तानां चेतांसि हृदयानि यत्र तादृशे तथा लालसाः मधुलोलुपा ये अलयो भ्रमरास्तेषां लंघनेन विदलनेन ग्लानाः क्लान्ताः घनाः निविडाः केसराः पुंनागवृक्षा यत्र तादृशि तथा राजत् शोभमानं अरण्यस्थल्या वनभूमिरूपाया नायिकायाः ललाटे भाले लीलायितं विलासवदाचरितं तिलकं तिलकुसुमं यत्र तादृशे तथा ललितेन सुन्दरेण अनङ्ग एव राजा अनङ्गराजस्तेन अङ्गीकृतं स्वीकृतं धृतमिति यावत् निर्निद्रो विकसितः कर्णिकारो वृक्षविशेष एव काञ्चनच्छत्रं हेमातपत्रं यत्र तादृशे तथा दक्षिणो मलयपर्वतादागतो यो दहनसारथिरग्निसहायः अनिल इत्यर्थस्तस्य रयेण वेगेन आहृता आनीता उत्पादिताश्च सहकारेषु आम्रतरुषु चञ्चरीका भ्रमराः कलिकाः कोरकाश्च यत्र तादृशि तथा कालाण्डजाः कोकिला-

प्रान्त प्रगाढ़तासे आलिंगित किया जाय।' तत्पश्चात् अति निपुण अथवा अति सरल सहचरियोंकेद्वारा मैं प्रेमपरिबद्ध किया गया। एवं प्रेमपाशमें सम्बद्ध होकर मैंने उस कृशांगीसे लिपटकर खूब रमण किया।

(९) रमण करते हुए कुछ समय बीतनेके पश्चात्—रमणीहीन पुरुषोंके चित्तोंको क्लेशित करनेवाला, मधुलोलुपभ्रमरों द्वारा निविड पुंनाग वृक्षोंको क्लान्त करानेवाला, शोभायमान वनभूमिरूपा नायिकाके भालमें विलाससे तिलकुसुम धारण करानेवाला, सुन्दर कामदेव रूपी राजाद्वारा स्वीकृत विकसित कर्णिकारवृक्षरूपी स्वर्णछत्रवाला, मलयपर्वतसे आनेवाले अग्निके सहायक पवनवेग द्वारा उत्पादित आमकी कलियोंपर विराजमान भ्रमरोंवाला, कोयलोंकी मधुर कूक (वाणी) से अनुरागवाली रक्ताधरोष्ठियोंके रतिसंग्रामके प्रथम प्रयास में अग्रसर स्वभाववाला, अप्रगल्भ कन्याओंके हृदयोंमें प्रेम

लिनि, शालीनकन्यकान्तःकरणसंक्रान्तरागलङ्घितलज्जे, दर्दुरगिरितटचन्दनाश्लेषशीतलानिलाचार्यदत्तनानालतानृत्यलीले काले, कलिङ्गराजः सहाङ्गनाजनेन सह च तनयया सकलेन च नगरजनेन दश त्रीणि च दिनानि दिनकरकिरणजालालङ्घनीये, रणदलिसङ्घलङ्घितनतलताग्रकिसलयालीढसैकततटे, तरलतरङ्गशीकरासारसङ्गशीतले सागरतीरकानने क्रीडारसजातासक्तिरासीत् ।

स्तेषां कण्ठरागेण मधुरस्वरेण रक्तानां कान्तं प्रति अनुरागवतीनां रक्ताधराणां शोणदशनच्छदानां कामिनीनां रतिरेव रणः सुरतयुद्धं तस्य अप्रसंनाहेन प्रथमोद्यमेन शालते शोभते तस्मिन् । तथा शालीनानामप्रगल्भानां कन्यकानां अन्तःकरणेषु हृदयेषु संक्रान्तेन समुदितेन रागेण प्रेम्णा लंघिता अतिक्रान्ता लज्जा यत्र तादृशे तथा दर्दुरगिरेः तदाख्यपर्वतस्य तटे ये चन्दनाश्चन्दनवृक्षास्तेषामाश्लेषेण सम्पर्केण शीतलो योऽनिलः स एवाचार्यः शिक्षागुरुस्तेन दत्ता अर्पिता नानालताभ्यो नृत्यलीला यत्र तादृशे काले समये वसन्ते इति शेषः। कलिङ्गराजः कर्दनभूपतिः । तनयया दुहित्रा कनकलेखयेति यावत् । दश त्रीणि च दिनानि त्रयोदशदिनानि । दिनकरेति-दिनकरस्य सूर्यस्य किरणजालेन मयूखमण्डलेन अलंघनीये अनतिक्रमणीये—सागरतीरकानने इत्यस्य विशेषणम् । काननं घनसन्निविष्टैः पादपैस्तथा आवृतं यथा सूर्यकिरणानामपि तत्र प्रवेशो न भवतीत्यर्थः। तथा रणदलीति-रणन्तो गुञ्जन्तो ये अलयो भ्रमरास्तेषां सङ्घेन समूहेन लङ्घिता आक्रान्ता अतएव नता नम्रीभूता या लताः व्रतत्यस्तासां अग्रकिसलयैः पल्लवाग्रैः आलीढं व्याप्तं सैकततटं सिकतामयस्थानं यत्र तथाभूते । तथैव तरलेति-तरलतरङ्गाणां वायुवशाच्चञ्चललहरीणां शीकरासारस्य जलकणवर्षणस्य संगेन सम्पर्केण शीतले एवंभूते सागरतीरकानने समुद्रतटस्थवने। क्रीडेति-स राजा कर्दनः क्रीडायां विहारे यो रसोऽनुरागस्तत्र जाता समुत्पन्ना आसक्तिरावेशो यस्य तादृश आसीत् ।

उत्पन्न करके उन्हें लज्जा रहित बनानेवाला, दुर्दर नामक पर्वतके तटमें (पासमें) लगे हुए चन्दनके पेड़ों से आश्लिष्ट होकर शीतल पवनरूपी आचार्य (शिक्षक) द्वारा नाना लताओंको नृत्यलीला दिलानेवाला वसन्तका समय आ गया। तब कलिगराज अपनी अंगनाओं, पुत्री, नगरनिवासियोंके साथ समुद्रके तीरवाले आराम बागमें विहारकी इच्छामें वशीभूत होकर गये—वह आरामबाग वहांकी बालुकामयी भूमिपर लताओंके पल्लवोंसे आच्छादित कर लिया गया था और वे लताएं भी गुंजायमान भ्रमरसमूहोंके आरोहणसे झुकी हुई थीं। उस भूमिपर चंचलायमान लहरों (तरंगों) के

(१०) अथ संततगीतसंगीतसंगताङ्गनासहस्रशृङ्गारहेलानिरर्गलानङ्गसंघर्षहर्षितश्च। रागतृष्णैकतन्त्रस्तत्र रन्ध्र आन्ध्रनाथेन जयसिंहेन सलिलतरणसाधनानीतेनानेकसंख्येनानीकेन द्रागागत्यागृह्यत सकलत्रः। सा चानीयत त्रासतरलाक्षी दयिता नः सह सखीजनेन कनकलेखा। तदाहं दाहेनानङ्गदहनजनितेनान्तरिताहारचिन्तश्चिन्तयन्दयितां गलितगात्रकान्तिरित्यतर्कयम्—'गता सा कलिङ्गराजतनया जनित्रा जनयित्र्या

(१०) सन्ततेति—सन्ततगीतेषु निरन्तरप्रवृत्तेषु सङ्गीतेषु गानेषु संगतानां मिलितानामङ्गनानां कामिनीनां सहस्रस्य शृङ्गारहेलया निधुवनलीलया निरर्गलः अप्रतिहतो यः अनङ्गसङ्घर्षः कामोद्रेकस्तेन हर्षितः तथा रागतृष्णयोः अनुरागभोगेच्छयोः एकतन्त्रः पराधीनः स राजा कर्दन इति शेषः। तत्र तस्मिन् रन्ध्रे अवकाशे। आन्ध्रनाथेन आन्ध्रदेशाधिपेन। सलिलतरेति—सलिलतरणसाधनं नौकारूपं तेन आनीतेन तद्देशं प्रापितेन अनेकसंख्येन बहुना अनीकेन सैन्येन द्राग् झटिति आगत्य तत्रैव सागरतीरवने इति शेषः अगृह्यत गृहीतोऽभवत् सकलत्रः सपरिवारः। सा च कनकलेखाऽपि। अनीयत जयसिंहेन स्वनगरं नीता। त्रासतरलाक्षी भयचञ्चलनयना। दयिता—वल्लभा नः अस्माकम्। तदाहमित्यादि—तदा अहं मन्त्रगुप्त इत्यर्थः अनङ्गदहनजनितेन—मदनानलोत्पादितेन दाहेन तापेन अन्तरिता अपगता आहारचिन्ता यस्य सः गलितगात्रकान्तिः भ्रष्टदेहशोभः। इति—वक्ष्यमाणप्रकारम्। अतर्कयम् व्यचारयम्। सा कनकलेखा। जनित्रा पित्रा।

छोटे छोटे बिन्दु पवनके झोकोंसे आ रहे थे जिससे वह भूमि अति शीतल थी।

(१०) आरामबागमें पहुंचनेपर-निरन्तर संगीत और गानमें प्रवृत्त सहस्रों रमणियोंकी निधुवनलीलासे अप्रतिहत कामोद्रेकसे हर्षित होकर तथा अनुराग और भोगेच्छायुक्त होकर पराधीन (विलासीसा पराधीन) हो रहा था उसी कालमें आंध्रदेशाधिपति जयसिंह, नावोंद्वारा अनेक सैन्यदलके साथ वहां आया और उसने शीघ्रतासे सागर तीरवाले बागमें विहार करनेवाले उस राजाको स्त्रियोंके सहित पकड़ लिया। वह भयसे चञ्चलनयनी मेरी प्राणप्रिया कनकलेखा भी सखियोंके सहित उस राजा जयसिंह द्वारा उसके यहां ले जायी गयी। तब मैं (मन्त्रगुप्त) भी कामदेवरूपी आगसे उत्पन्न दाहसे दग्ध होकर भूख-प्यासकी चिन्ता त्यागकर उसी प्यारीकी चिन्तामें लीन हो गया। चिन्ताग्रस्त होनेसे क्षीणकान्तिवाला होकर मैंने विचार किया—'वह मेरी प्यारी कनकलेखा अपने माता-पिताके साथ शत्रुके हाथमें चली गयी। वह आंध्रराज (आंध्रेश) अवश्य उसे अपने वशमें लानेकी कोशिश करेगा। वह कन्या इस बातको

च सहारिहस्तम् । निरस्तधैर्यस्तां स राजा नियतं संजिघृक्षेत् । तदसहा च सा सती गररसादिना सद्यः संतिष्ठेत । तस्यां च तादृशीं दशां गतायां जनस्यास्यानन्यजेन हन्येत शरीरधारणा । सा का स्याद्गतिः' इति ।

(११) अत्रान्तर आन्ध्रनगरादागच्छन्नग्रजः कश्चिदैक्ष्यत । तेन चेयं कथा कथिता—'यथा किल जयसिंहेनानेकनिकारदत्तसंघर्षणजिघांसितः स कर्दनः कनकलेखादर्शनैधितेन रागेणारक्ष्यत । सा च दारिका यक्षेण केनचिदधिष्ठिता न तिष्ठत्यग्रे नरान्तरस्य । आयस्यति च नरेन्द्रसार्थसंग्र-

---

जनयिष्या जनन्या । अरिहस्तं शत्रुवशम् । निरस्तधैर्यः—अधीरः । स राजा—आन्ध्रराजः । नियतमवश्यम् । सञ्जिघृक्षेत् संग्रहीतुमिच्छेत् स्ववशीकर्तुमिच्छेदिति यावत् । सम्पूर्वक ग्रहधातोः सन्नन्ताद् विधिलिङ् । तदसहा—तस्य वशीभावं सोढुमसमर्था । सा कनकलेखा । गररसादिना विषादिभक्षणेन । सद्यस्तत्क्षणात् । संतिष्ठेत-म्रियेत । तस्यां कनकलेखायाम् । तादृशीं दशां मृत्युम् । जनस्य अस्य-ममेत्यर्थः । अनन्यजेन कामेन । कुसुमेषुरनन्यज इत्यमरः । हन्येत नाश्येत । शरीरधारणा देहस्थितिः जीवनमित्यर्थः । गतिरभ्युपायः ।

(११) अत्रान्तरे एतस्मिन् समये । अग्रजो ब्राह्मणः । ऐक्ष्यत—दृष्टोऽभवत् । तेन-अग्रजेन । कथा वार्त्ता । अनेकेति—अनेकैर्नानाविधैर्निकारैर्यातनाभिर्दत्तेन संघर्षणेन पराभवेण जिघांसितो हन्तुमिष्टः । कनकलेखाया दर्शनेन अवलोकनेन एधितो वर्धितस्तेन । रागेण प्रेम्णा । अरक्ष्यत रक्षितोऽभवत् । कनकलेखायां जनितानुरागत्वादेव तत्पितरं कर्दनं न हतवानिति भावः । दारिका कन्या । यक्षेण गुह्यकेन । अधिष्ठिता आक्रान्ता । अग्रे सम्मुखे । नरान्तरस्य अन्यपुरुषस्य । आयस्यति-सम्यक् चेष्टते । यसु प्रयत्ने इत्यस्य रूपम् । नरेन्द्रेति नरेन्द्रसार्थस्य तन्त्रमन्त्रवित्समाजस्य संग्रहेण समाहरणेन । तत्-यक्षा-

---

पसन्द न करके तुरत ही अपने प्राणोंको, विषरस पान करके, त्याग देगी । उसकी ऐसी दुर्दशा होनेपर इस जनकी (मेरी) क्या दशा होगी—कामदेवसे मेरी देह नष्ट कर दी जायगी—कामदेव मुझे मार डालेगा । हा ! यह कैसी भयप्रद दशा होगी !'

(११) इसी विचारके समय आंध्र नगरसे आता हुआ एक ब्राह्मण दिखलायी दिया । उसकेद्वारा यह कथा कही गयी—'यद्यपि राजा जयसिंह अनेक यातनाओं तथा अपमानोंसे कलिंगाधिपतिको मारना चाहता था, परन्तु, उसने उसकी पुत्री कनकलेखाका अवलोकन किया और उसपर (कनकलेखापर) आसक्त हो गया । (उत्पन्नहुए विपुलानुरागसे) अभीतक उसे मारा नहीं । किन्तु, उस कन्यापर कोई यक्ष सवार है ।

हयोन तन्निराकरिष्यन्नरेन्द्रो न चास्ति सिद्धिः' इति । तेन चाहं दर्शिताशः शंकरनृत्यरङ्गदेशजातस्य जरत्सालस्य स्कन्धरन्ध्रान्तर्जटाजालं निष्कृष्य तेन जटिलतां गतः कन्थाचीरसंचयान्तरितसकलगात्रः कांश्चिच्छिष्यानग्रहीषम् । तांश्च नानाश्चर्यक्रियातिसंहिताज्जनादाकृष्टान्नचेलादित्यागान्नित्यहृष्टानकार्षम् । अयासिषं च दिनैः कैश्चिदान्ध्रनगरम् ।

(१२) तस्य नात्यासन्ने सलिलराशिसदृशस्य कलहंसगणदलितन-

धिष्ठानम् । निराकरिष्यन् दूरीकरिष्यन् । नरेन्द्रो जयसिंहः । न चास्ति सिद्धिः—महता प्रयत्नेनापि तत्कार्यं न सिद्धमित्यर्थः । तेन अग्रजेन । दर्शिताशः प्रदर्शितमार्गः । दर्शिता आशा दिक् यस्मै स इति समासः । शंकरेति—शंकरस्य शिवस्य नृत्यं ताण्डवं तस्य रङ्गदेशः रङ्गभूमिः श्मशानं तत्र जातस्योत्पन्नस्य । जरत्सालस्य जीर्णवृक्षस्य । स्कन्धेति-स्कन्धानां रन्ध्रस्य कोटरस्य अन्तर्मध्ये स्थितं यज्जटाजालं शिफासमूहस्तत् निष्कृष्य आकृष्य तेन जटाजालेन जटिलतां जटाधरत्वं गतः प्राप्तः । कन्थेति-कन्थाचीरस्य जीर्णवस्त्रखण्डस्य सञ्चयेन संग्रहेण अन्तरितं आच्छादितं सकलं गात्रं शरीरं येन तादृशोऽहम् । शिष्यान् भक्तानित्यर्थः अग्रहीषं संगृहीतवान् । तान्-शिष्यान् । नानेति—नानाभिर्बहुविधाभिः अद्भुतकर्मभिः अतिसंहितात् प्रतारितात् जनात् लोकात् आकृष्टानि संगृहीतानि लब्धानीति यावत् यानि अन्नचेलादीनि भोज्यवस्त्रादीनि तेषां त्यागात् तेभ्यो दानात् नित्यहृष्टान् सर्वदासन्तुष्टान् अकार्षं कृतवान् । अयासिषं-गतवान् । कैश्चित् कतिपयैः ।

(१२) तस्य आन्ध्रनगरस्य । नात्यासन्ने किञ्चिद्दूरे । सलिलराशिसदृशस्य

जिससे वह कन्या अन्य किसी पुरुषके सम्मुख नहीं आती है। राजा (आंध्रेश) उस कन्या पर यक्ष दूर करानेके अनेकों उपाय मान्त्रिकों-तान्त्रिकोंसे करा रहे हैं, परन्तु, अभीतक कोई सिद्धि नहीं प्राप्त हुई है।' उस विप्रकेद्वारा प्रदर्शित मार्ग पाकर (आशान्वित होकर) मैंने भगवान् शङ्करके तांडवके रंगस्थलमें (श्मशानमें) उत्पन्न एक जीर्ण वृक्षके तने (स्कन्धदेश) के कोटर (खोखला) से जटा समूहको निकाल लिया और अपने शिरपर धारणकर, जटाधारी रूपको बना लिया। अपने शरीरको फटे-पुराने वस्त्रोंसे आच्छादित कर लिया। कुछ भक्तोंको भी एकत्र कर लिया। अनेक प्रकारके अद्‌भुतकर्म दिखाकर दर्शकोंको मुग्धकर जो अन्न-वस्त्र उनसे प्राप्त करता वह सब भक्तोंमें वितरित कर देता, जिससे मेरे सभी भक्तगण सन्तुष्ट थे। मैं कुछ भक्तोंके साथ कुछ दिनोंमें आंध्र देशमें गया।

(१२) आंध्र देशके समीपमें ही (थोड़ी दूरीपर), समुद्रके तुल्य, और कलहंसो-

लिनदलसंहतिगलितकिञ्जल्कशकलशारस्य सारसश्रेणिशेखरस्य सरसस्तीरकानने कृतनिकेतनः स्थितः शिष्यजनकथितचित्रचेष्टाकृष्टसकलनागरजनाभिसंधानदक्षः सन्दिशि दिशीत्यकीर्त्ये जनेन—'य एष जरदरण्यस्थलीसरस्तीरे स्थण्डिलशायी यतिस्तस्य किल सकलानि सरहस्यानि सषडङ्गानि च छन्दांसि रसनाग्रे संनिहितानि, अन्यानि च शास्त्राणि येन यानि न ज्ञायन्ते स तेषां तत्सकाशादर्थनिर्णयं करिष्यति। असत्येन नास्यास्यं संसृज्यते। सशरीरश्चैष दयाराशिः। एतत्संग्रहेणाद्य चिरं

समुद्रोपमस्य तथा कलहंसानां राजहंसनां गणैः समूहैर्दलितानां खण्डितानां नलिनदलानां कमलपत्राणां संहतिभ्यः संघेभ्यो गलितानां निःसृतानां किञ्जल्कानां केशराणां शकलैः खण्डैः शारस्य कर्बुरस्य तथा सारसानां पक्षिविशेषाणां श्रेणिः पंक्तिरेव शेखरः शिरोभूषणं यस्य तस्यैवंभूतस्य सरसः सरोवरस्य तीरकानने तटोद्याने कृतनिकेतनः रचितगृहः। शिष्येति–शिष्यजनेन भक्तवृन्देन कथिताभिः प्रकाशिताभिः चित्रचेष्टाभिः आश्चर्यजनकक्रियाभिः आकृष्टानां मुग्धानां सकलनागरजनानां निखिलपौरवृन्दानां अभिसन्धाने प्रतारणे दक्षः पटुः। दिशि दिशि–सर्वत्र। इति—वक्ष्यमाणप्रकारं जनेन लोकेन अकीर्त्यै कीर्त्तितोऽभवम्। किमिति तदाह य एष इत्यादि। य एष इत्यस्य यतिरित्यनेन सम्बन्धः। जरदिति–जरदरण्यस्थल्यां जीर्णवनभूमौ स्थितस्य सरसस्तडागस्य तीरे। स्थण्डिलशायी—दर्भशयनः। यतिः सन्यासी। वर्त्तते इति शेषः। तस्य यतेः। सरहस्यानि उपनिषत्सहितानि। सषडङ्गानि-शिक्षाकल्पादीन्यङ्गानि तैः सहितानि। छन्दांसि वेदाः। रसनाग्रे जिह्वाग्रे। सन्निहितानि निविष्टानि। येन जनेन। यानि शास्त्राणि। स जनः। तेषां शास्त्राणाम्। तत्सकाशात् तस्य यतेः सकाशात्समीपात्। अर्थनिर्णयं अर्थज्ञानम्। असत्येन अनृतेन। अस्य यतेः। आस्यं मुखम्। न संसृज्यते कदापि मिथ्या न वदतीति भावः। सशरीरः मूर्त्तिमान्। एष यतिः।

केद्वारा विदलित कमलपत्रोंके समुदायोंसे निःसृत (गिरे हुए) किञ्जल्कोंके टुकड़ोंसे चित्रित, (अनेक रंगवाला), सारस पक्षियोंकी पंक्तियोंको शिरोभूषण बनाये हुए, एक तालाबपर मैं गया और उसी तालाबके किनारे एक बागमें एक कुटी बनायी तथा उसी कुटीमें निवास करने लगा। भक्तोंद्वारा प्रचारित तथा अनेकों प्रकारकी अद्भुत लीलाओंके द्वारा आकर्षित सभी पुरवासियोंके प्रतारण (ठगनेमें) निपुण (जो मैं) मेरी कीर्ति जनोंके द्वारा प्रत्येक दिशामें फैल गयी–'यह यति जो जीर्ण वनभूमिमें तालाबके किनारे कुशासनपर बैठा रहता है। उसके जिह्वापर, उपनिषद् सहित वेद तथा शिक्षा, कल्प

चरितार्था दीक्षा। तच्चरणरजःकणैः कैश्चन शिरसि कीर्णैरनेकस्यानेक आतङ्कश्चिरं चिकित्सकैरसंहार्यः संहृतः। तदङ्घ्रिक्षालनसलिलसेकैर्निष्कलङ्कशिरसां नश्यन्ति क्षणेनैकेनाखिलनरेन्द्रयन्त्रलङ्घिनश्चण्डताराग्रहाः। न तस्य शक्यं शक्तेरियत्ताज्ञानम्। न चास्याहंकारकणिका' इति।

(१३) सा चेयं कथानेकजनास्यसंचारिणी तस्य कनकलेखाधिष्ठा-

दयाराशिःकरुणाखानिः। एतत्सङ्ग्रहेण एतस्य यतेः सङ्ग्रहेण प्राप्त्या। एतत्सकाशादर्थग्रहेणेत्यपि पाठान्तरं तत्र एतस्य सकाशादर्थग्रहेण मन्त्रार्थज्ञानेनेत्यर्थः। चरितार्था-सफला। दीक्षा-शिक्षाग्रहणम्। तच्चरणरजःकणैः तस्य पदधूलिलेशैः। कैश्चन अनिर्वाच्यैरित्यर्थः। शिरसि मस्तके कीर्णैः निःक्षिप्तैः। अनेकस्य असंख्यस्य लोकस्य। आतङ्कः भयम्। यस्तु चिरं दीर्घकालं चिकित्सित्वापि चिकित्सकैर्भिषग्भिः असंहार्यः अपनेतुमशक्यः सोऽप्यातङ्कः संहृतः अपनीतः। तदंघ्रीति-तस्य यतेः अंघ्रिक्षालनस्य चरणधावनस्य यत् सलिलं पादप्रक्षालनजलं तस्य सेकैरभिषेचनैः निष्कलङ्कं निष्पापं शिरो येषां तेषां जनानाम् अखिलनरेन्द्रान् सकलमन्त्रवादिनश्चिकित्सकान् यन्त्राणि च लङ्घयन्ति अतिक्रामन्ति ये तादृशाः चण्डताराग्रहाः कुपितनक्षत्रग्रहगणाः एकेन क्षणेन मुहूर्त्तमात्रेण नश्यन्ति शाम्यन्ति। तस्य यतेः। शक्तेः सामर्थ्यस्य इयत्ताज्ञानं परिमाणबोधः न शक्यं कर्त्तुमशक्यम्। अहङ्कारकणिका अहमेतावान् शक्तिसम्पन्न इत्याकारकाभिमानलेशः।

(१३) सा पूर्ववर्णिता। कथा वार्त्ता। अनेकजनास्यसञ्चारिणी-निखिललोक

आदि, नाचा करते हैं। जिस व्यक्तिको जो शास्त्र नहीं आता हो उसे चाहिये कि, वह उस यतिसे अर्थज्ञान सहित प्राप्त कर ले। इस यतिका मुख, असत्यसे तो स्पर्शतक नहीं किये हुए है—कभी झूठ नहीं बोलता है। यह यति साक्षात् करुणाका कोष है। इस यतिके द्वारा प्राप्त की हुई दीक्षा सफल होगी। इस यतिके चरणकी रजके कणोंको शिरपर धारण करनेसे कई एक व्यक्तियोंके भय-व्याधि, पागलपन दूर हो गये। जिनकी चिकित्सा चिरकालतक करके बड़े-बड़े वैद्यराट थक गये थे। जो व्याधियां, दुष्ट ग्रह, भूत-प्रेत यक्ष, ब्रह्मराक्षस आदि बड़े-बड़े मान्त्रिकों-तान्त्रिकों, वैद्यों-हकीमों, डाक्टरों और ओझाओंके द्वारा नष्ट नहीं होते हैं उन उपर्युक्तरोग-आदिको इस यतिके चरणके प्रक्षालित जलसे एक क्षणमें लाभ होता है। अर्थात् इस यतिके चरणके अंगुष्ठका प्रक्षालित जल माथेपर लगानेसे सब व्याधियोंको नष्ट कर देनेवाला है। इस यतिकी कितनी शक्ति है इसका ज्ञान किसीको नहीं है इसमें अभिमानका लेश भी नहीं है।'

(१३) इस प्रकारसे मेरी कीर्ति-कथाको सभी लोगोंके मुखसे निकलनेपर वह

नधनदाज्ञाकरनिराक्रियातिसक्तचेतसः क्षत्रियस्याकर्षणायाशकत् । स चाहरहरागत्यादरेणातिगरीयसार्चयन्नर्थैश्च शिष्यान्संगृह्णन्नधिगतक्षणः कदाचित्काङ्क्षितार्थसाधनाय शनैरयाचिष्ट । ध्यानधीरः स्थानदर्शितज्ञानसंनिधिश्चैनं निरीक्ष्य निचाय्याकथयम्—'तात, स्थान एष हि यत्नः । तस्य हि कन्यारत्नस्य सकलकल्याणलक्षणैकराशेरधिगतिः क्षीरसागररशनालङ्कृताया गङ्गादिनदीसहस्रहारयष्टिराजिताया धराङ्गनाया एवासाद-

मुखनिर्गता तस्य क्षत्रियस्य जयसिंहस्य । कथम्भूतस्येत्याह—कनकेति—कनकलेखा अधिष्ठानमाश्रयो यस्य तादृशस्य धनदाज्ञाकरस्य कुबेरकिङ्करस्य यक्षस्य निराक्रियायां निराकरणे अतिसक्तं लग्नं चेतो यस्य तस्य । आकर्षणाय वशीकरणाय । अशकत् समर्थोऽभवत् । स जयसिंहः । अहरहः प्रतिदिनम् । अतिगरीयसा—अत्यधिकेन । अर्थैः धनैः । संगृह्णन् आयत्तीकुर्वन् । अधिगतक्षणः प्राप्तावसरः काङ्क्षितार्थसाधनाय—अभीष्टसिध्यर्थम् । शनैः मन्दं मन्दम् । अयाचिष्ट प्रार्थयामास । ध्यानधीरः समाधिस्थिरः । स्थानेति—स्थाने योग्यपात्रे दर्शितः प्रकटितः ज्ञानस्य प्रज्ञायाः सन्निधिः सान्निध्यं येन सः । एनं जयसिंहम् । निचाय्य विचार्य । तात वत्स । स्थाने—युक्तः । यत्नः उद्यमः त्वया क्रियमाण इति शेषः । कन्यारत्नस्य कन्यासु रत्नं श्रेष्ठं तस्य । सकलेति—सकलानां सर्वेषां कल्याणलक्षणानां शुभचिह्नानां एकराशेरेकाश्रयस्य सर्वप्रकारमङ्गललक्षणाधारस्येत्यर्थः । कन्यारत्नस्य विशेषणमेतत् । अधिगतिः प्राप्तिर्लाभ इति यावत् । क्षीरेति—क्षीरसागरो दुग्धाब्धिरेव रशना मेखला तया अलंकृतायाः भूषितायाः । तथा गङ्गादीनां नदीनां सहस्रमेव हारयष्टिर्हारलता तया राजितायाः शोभितायाः धरा वसुमत्येवाङ्गना कामिनी तस्याः । आसादनाय प्राप्तये । साधनमुपायः । येनैतादृशं कन्यारत्नं लप्स्यते तेन ससागराधरापि प्राप्स्यत इति भावः । न चेति—तदधिष्ठायी तां

क्षत्रिय राजा जयसिंह भी मेरी कथाके वशीभूत हुआ । जिसका चित्त, कनकलेखाके ऊपर रहनेवाले कुबेरके सेवक उस यक्षको दूर भगानेमें, आसक्त हो रहा था । उस राजा जयसिंहने नित्य आकर अति आदरसे प्रचुर द्रव्यसे मेरी पूजा करके तथा मेरे भक्तोंको द्रव्यादिसे अपने अनुरूप कर लिया । एक दिन अवसर पाकर उस राजाने अपनी अभीष्ट साधनाके हेतु मुझसे धीरेसे निवेदन किया समाधिस्थिर होकर मैंने, योग्यपात्रमें प्रज्ञाके सानिन्ध्यको लगाते हुए, उस राजा को देखकर कहा—'हे तात ! आपके द्वारा किया हुआ यह उद्योग युक्त ही है । उस कन्यारत्नकी प्राप्ति करना जो सम्पूर्ण मांगलिक चिह्नोंकी निधिके समान है, वैसा ही शुभप्रद है जैसे दुग्धसमुद्ररूपी करधनीको पहने

नाय साधनम् । न च स यक्षस्तदधिष्ठायी केनचिन्नरेन्द्रेण तस्या लीलाञ्चितनीलनीरजदर्शनाया दर्शनं सहते, तदत्र सह्यतां त्रीण्यहानि, यैरहं यतिष्येऽर्थस्यास्य साधनाय' इति ।

(१४) तथादिष्टे च हृष्टे क्षितीशे गते निशि निशि निर्निशाकरार्चिषि नीरन्ध्रान्धकारकणनिकरनिगीर्णदशदिशि निद्रानिगडितनिखिलजनदृशि निर्गत्य जलतलनिलीनगाहनीयं नीरन्ध्रं कृच्छ्राच्छिद्रीकृतान्तरालं तदे-

---

कन्यामधितिष्ठतीति तथा । तत्राविष्ट इत्यर्थः स यक्षः नरेन्द्रेण मन्त्रतन्त्रज्ञेन लीलया विलासेन कटाक्षादिना अञ्चितं शोभितं नीलनीरजवत् नीलकमलवत् दर्शनं नयनं यस्यास्तादृश्यास्तस्याः कन्याया दर्शनमवलोकनं न सहते नाभिलषति । तत्तस्मात् । अत्र विषये । सह्यतां अपेक्ष्यताम् । अहानि दिनानि । यैर्दिनैः । यतिष्ये चेष्टिष्ये । अर्थस्य प्रयोजनस्य । साधनाय सम्पादनाय ।

(१४) तथा तेन रूपेण । आदिष्टे उपदिष्टे । हृष्टे सन्तुष्टे । निशि निशि प्रतिरात्रम् । किम्भूतायां निशीत्याह निर्निशाकरार्चिषि-निर्नास्ति निशाकरस्य चन्द्रस्य अर्चिः तेजो यस्यां तथाभूतायां तथा नीरन्ध्राणां सान्द्राणां अन्धकाराणां तमसां कणनिकरैः कणसमूहैर्निगीर्णाः अवच्छादिता दश दिशो यस्यां तादृश्यां पुनश्च निद्रया निगडिताः बद्धाः निखिलजनानां दृशो नयनानि यस्यां तथाभूतायाम् । निर्गत्य स्वस्थानाद्बहिर्भूय । जलतलेत्यादि-तस्य सरसः एकतः एकस्यां दिशि जलतले सलिलाधःप्रदेशे निलीनेन निविष्टेन जनेन गाहनीयं प्रवेश्यम् तथा नीरन्ध्रं निश्छिद्रं तथा कृच्छ्रात् अतिकष्टेन छिद्रीकृतं शून्यीकृतमन्तरालं मध्यभागो यस्य

हुए तथा गङ्गा आदि सहस्रों नदियोंकी माला धारण किये हुए पृथिवीको प्राप्त करना है । (जो यह कन्या प्राप्त करेगा वह आसमुद्रान्त राज्य करेगा) परन्तु, उस कन्यापर अधिवासकर्ता वह यक्ष उस कन्याके विलाससे शोभित नीलकमलके समान नेत्रोंको किसी मन्त्रज्ञको दर्शित कराना, सहन नहीं करता है । अतः आप तीन दिनकी और इसके लिये प्रतीक्षा करें । इन दिनोंमें मैं आपके अर्थसाधनके लिये प्रयत्न करूँगा ।

(१४) ऐसी राय देनेपर जब राजा जयसिंह प्रसन्न होकर चला गया, तब मैंने चन्द्रकी प्रभाहीन रात्रियोंमें, जब गहन अन्धकारके कणोंसे दशों दिशाएं व्याप्त हो जाती थीं, निद्रासे सभी जनोंकी आंखे मुंद जाती थीं, कुटीसे निकलकर उस तालाबके एक ओर जलके अधः प्रवेशमें जनके निलीन योग्य, प्रवेश योग्य, छेद रहित, बड़े कष्टसे एक छेदको कुदारसे खोदकर सुरंग नामा तैयार किया । जिसके मध्यमागमें एक सुराख था जो सीढ़ियोंसे दूर था । उस सुरङ्गके प्रवेशद्वारवाले छेदको बड़ी-बड़ी शिलाओं और

कृतः सरस्तटं तीर्थासन्निकृष्टं केनचित्खननसाधनेनाकार्षम्। घनशिलेष्टिकाच्छन्नच्छिद्राननं तत्तीरदेशं जनैरशङ्कनीयं निश्चित्य, दिनादिस्नाननिर्णिक्तगात्रश्च नक्षत्रसंतानहारयष्ट्यग्रग्रथितरत्नम्, क्षणदान्धकारगन्धहस्तिदारणैककेसरिणम्, कनकशैलशृङ्गरङ्गलास्यलीलानटम्, गगनसागरघनतरङ्गराजिलङ्घनैकनक्रम्, कार्याकार्यसाक्षिणम्, सहस्रार्चिषं सहस्राक्षदिगङ्गनाङ्गरागरागायितकिरणजालम्, रक्तनीरजाञ्जलिनाराध्य निजनिकेतनं न्यशिश्रियम्।

तादृशम् तथा तीर्थानां जलावतरणसोपानानां असन्निकृष्टं दूरवर्त्ति एवम्भूतं सरस्तटं केनचित् खननसाधनेन खनित्रेणाकार्षं कृतवाहनम्। घनेति—घनाभिर्निबिडाभिः शिलाभिः पाषाणैः इष्टिकाभिश्च छन्नमाच्छादितं छिद्रस्य सुरङ्गाया आननं मुखं यस्य तादृशं तत्तीरदेशं जनैर्लोकैः अशङ्कनीयं जनानां शङ्का न भविष्यतीत्येवं निश्चित्य अवधार्य दिनादौ प्रभाते निर्णिक्तं स्नानेन शुद्धीकृतं गात्रं शरीरं येन तादृशोऽहं सहस्रार्चिषं दिवाकरं किम्भूतं तमित्याह नक्षत्रेत्यादि—नक्षत्राणां सन्तानः समूह एव हारयष्टिर्मौक्तिकलता तस्या अग्रग्रथितं सम्मुखगुम्फितं यद् रत्नं तत्स्वरूपं, तथा क्षणदाया रजन्याः अन्धकार एव गन्धहस्ती मत्तगजस्तस्य दारणे भेदने एककेसरिणं अद्वितीयसिंहस्वरूपम्, तथा कनकशैलस्य सुमेरुपर्वतस्य शृङ्गं शिखरमेव रङ्गः नृत्यशाला तत्र या लास्यलीला नृत्यादिक्रिया तस्या नटं नर्त्तकस्वरूपं, तथा गगनमेव सागरस्तस्य घना मेघा एव तरङ्गाणामूर्मीणां राजिः तस्य लङ्घने अतिक्रमणे एकनक्रं अद्वितीयग्राहस्वरूपं, कार्याणां कृत्यानामकार्याणामकृत्यानाञ्च साक्षिणं सर्वद्रष्टारम्। तथा सहस्राक्षस्य इन्द्रस्य दिक्पूर्वा सैवाङ्गना कामिनी तस्या अङ्गरागेण अङ्गविलेपनेन रागायितं रक्तवदाचरितं किरणजालं स्वमयूखसमूहो येन तादृशं रक्तनीरजानां कोकनदानां अञ्जलिना अर्घ्यदानेनेत्यर्थः—आराध्य सम्पूज्य निजनिकेतनं स्वगृहं न्यशिश्रियं गतवानहमिति शेषः।

ईंटोंसे ऐसा बन्द कर दिया जिसमें लोगोंको शङ्का भी न होवे। इस तरीकेकी यह सुरङ्ग लोगोंसे न जानी जायगी ऐसा निश्चय हो जाता अर्थात्—जब सुरङ्गका छिद्र खूब ढक जाता तब प्रभात कालमें ही स्नान करके देह धोकर मैं, नक्षत्र समूहरूपी मौक्तिकलताके मुख्य मणि, रात्रिके अन्धकाररूपी मत्तगजके विदारणमे अद्वितीय सिंह, सुमेरु पर्वतके शिखररूपी नृत्यलीलाके नर्त्तकरूप, आकाशरूपी सागरकी मेघरूपी तरङ्गोंको लांघनेमें मकर (ग्राह), कार्य और अकार्यके द्रष्टा, सहस्रदीधिति, इन्द्रकी प्राचीदिशारूपी

(१५) याते च दिनत्रये, अस्तगिरिशिखरगैरिकतटसाधारणच्छायतेजसि, अचलराजकन्यकाकदर्थनयान्तरिक्षाख्येन शंकरशरीरेण संसृष्टायाः संध्याङ्गनायाः रक्तचन्दनचर्चितैकस्तनकलशदर्शनीये दिनाधिनाथे, जनाधिनाथः स आगत्य जनस्यास्य धरणिन्यस्तचरणनखकिरणच्छादितकिरीटः कृताञ्जलिरतिष्ठत् । आदिष्टश्च—'दिष्ट्या दृष्टेष्टसिद्धिः । इह जगति हि न निरीहं देहिनं श्रियः संश्रयन्ते । श्रेयांसि च सकलान्यन-

(१५) याते व्यतीते । अस्तगिरीति—अस्तगिरेरस्ताचलस्य शिखरे श्रृङ्गे यत् गैरिकतटं गैरिकमयप्रदेशः तत्साधारणी तत्तुल्या छाया कान्तिर्यस्य तथाभूतं तेजो यस्य तादृशे आरक्तमयूखे इत्यर्थः । अचलेति—अचलराजो हिमालयस्तस्य कन्यका पार्वती तस्याः कदर्थनया पीडनेन सपत्नीबुद्धयेति भावः अन्तरिक्षाख्येन शङ्करशरीरेण शिवस्याकाशमूर्त्या संसृष्टायाः सङ्गतायाः सन्ध्यैवाङ्गना कामिनी तस्याः रक्तचन्दनेन रक्तानुलेपनेन चर्चितः रञ्जितो य एकः स्तनकलशः कुचकुम्भस्तद्वत् दर्शनीये विलोकनीये । अस्तमनसमये सूर्यस्य तादृशरूपवत्त्वात् । दिनाधिनाथे सूर्ये । जनाधिनाथः राजा । सः जयसिंहः । जनस्य अस्य—ममेत्यर्थः । धरणिन्यस्तेति—धरण्यां भूमौ न्यस्तयोः स्थापितयोः चरणयोः पादयोः नखानां किरणैर्मयूखैः छादितं व्याप्तं किरीटं मुकुटं यस्यासौ । मच्चरणनिपतित इत्यर्थः । आदिष्ट उक्तो मयेति शेषः । दिष्ट्या भाग्येन । दृष्टा मयावलोकिता । इष्टसिद्धिः—अभीष्टलाभः । जगति संसारे निरीहं निस्पृहं देहिनं नरं श्रियः सम्पदः न संश्रयन्ते नाश्रयन्ति निःस्पृहाणां सम्पल्लाभो न भवतीत्यर्थः । श्रेयांसि शुभानि । अनलसानां

अंगनाके अङ्गरागसे लाल किरणोंवाले, सूर्यको लाल कमलोंद्वारा पूजकर अपनी कुटीमें चला जाता था ।

(१५) तीन दिन बीत जानेपर, अस्ताचलके शिखरपर जो गेरू आदि धातु हैं उनकी प्रभाके समान तेजवाले, भवानीकी कदर्थनासे अन्तरिक्ष (व्योम) रूप शिवकी देहमें संश्लिष्ट सन्ध्यारूपी महिलाके लाल चन्दनसे व्याप्त एक स्तन कलशके सदृश दर्शनीय, अस्त होनेवाले सूर्यके समय (सायंकालमें) वह राजा (आंध्रेश) आया और इस जनके (मेरे) भूमिपर धरे हुए चरणके नाखूनकी प्रभासे अपने मुकुटको आच्छादित करता हुआ बद्धाञ्जलि होकर बैठा । मैंने आदेश दिया—'भाग्यवशात् आपकी इष्ट सिद्धि मालूम हो गयी । इस संसारमें अनुद्योगीके समीप लक्ष्मी नहीं आती । उद्योगियोंके समीप कल्याणकारी कार्य आते रहते हैं—उद्योगी लक्ष्मीवान् होता है । अस्तु, आपके सदाचारसे, साधुसदृश आचरणसे तथा निष्पाप भावसे

लसानां हस्ते नित्यसांनिध्यानि। यतस्ते साधीयसा सच्चरितेनानाकलितकलङ्केनार्चितेनात्यादररचितेनाकृष्टचेतसा जनेनानेन सरस्तथा संस्कृतम्, यथेह तेऽद्य सिद्धिः स्यात्।

(१६) तदेतस्यां निशि गलदर्धायां गाहनीयम्। गाहनानन्तरं च सलिलतले सततगतीनन्तःसंचारिणः संनिगृह्य यथाशक्ति शय्या कार्या। ततश्च तटस्खलितजलस्थगितजलजषण्डचलितदण्डकण्टकाग्रदलितदेहराजहंसत्रासजर्जररसितसंदत्तकर्णस्य जनस्य क्षणादाकर्णनीयं जनिष्यते

उद्यमवतां हस्ते पाणौ नित्यसांनिध्यानि नित्यं सान्निध्यं येषां तानीति विग्रहः। सदा सन्निहितानि भवन्तीति शेषः। ते तव। साधीयसा साधुतरेण सच्चरितेन सदाचरणेन। अनाकलितकलंकेन पापस्पर्शरहितेन—सच्चरितेनेत्यस्य विशेषणमेतत्। अत्यादररचितेन श्रद्धातिशयकृतेन। अर्चितेन—मम सत्कारेण। आकृष्टमावर्जितं चेतो यस्य तादृशेन अनेन जनेन—मया। सरः सरोवरम्। तथा तेन रूपेण। संस्कृतं—मन्त्रादिना शुद्धीकृतम्। यथा येन रूपेण। सिद्धिः अभीष्टलाभः।

(१६) तत् तस्मात्। एतस्यां अद्यतन्याम्। निशि—रजन्याम्। गलदर्धायां गलदर्धं यस्यास्तस्यां—निशीथावसानायाम्। गाहनीयं प्रवेष्टव्यम्। सलिलतले जलमध्ये अन्तःसञ्चारिणः शरीरान्तःस्थितान् सततगतीन् वायून् प्राणानिति यावत्। सन्निगृह्य कुम्भकेन सन्निरोध्य। यथाशक्ति—शक्त्यनुसारेण तदा यावती शक्तिस्तिष्ठेत्तदनुसारेणेति भावः। शय्या कार्या—शयनं करणीयं त्वयेति शेषः। तटेति—तटात्तीरदेशात् स्खलितं पतितं यज्जलं तेन स्थगितमाच्छादितं यज्जलजषण्डं पद्मसमूहस्तस्य चलितं कम्पितं यद्दण्डं नालं तस्य कण्टकाग्रेण कण्टकाशिखया दलितं विद्धं देहं शरीरं यस्य तथाभूतस्य राजहंसस्य त्रासजर्जरे भयमन्दे रसिते

जो मेरी अति आदरके साथ पूजाकी है उससे आसक्त होकर मैंने इस तालावको ऐसा सुसंस्कृत कर दिया है कि, जिस कारण आज ही आपकी सिद्धि हो जायगी।

(१६) अतः आज ही आधी रातमें इस तालावमें प्रवेश करना चाहिये (आपको)। फिर उस तालावमें प्राणादि वायुका निरोध करके पानीके नीचेभागवाली भूमिपर यथाशक्ति शयन कीजिये। तब तीरदेशके संलग्न जलसे आच्छादित होनेपर क्रान्त कमलसमुदायोंके चपल नालके (कमलनाल) कण्टकाग्रभागोंसे विदलित शरीरवाले राजहंसोंके, भयसे अत्यन्त मन्दध्वनिमें कानोंको लगानेवाले किसी व्यक्तिकी, एक क्षणमें, श्रवणीय जलसमूहकी ईषत् ध्वनि सुनायी पड़ेगी। ततः उस ध्वनिके निवृत्त हो जानेपर

जलसंघातस्य किंचिदारटितम् । शान्ते च तत्र सलिलरटिते क्लिन्नगात्रः किञ्चिदारक्तदृष्टिर्येनाकारेण निर्यास्यति निचाय्य तं निखिलजननेत्रानन्दकारिणं न यक्षः शक्ष्यत्यग्रतः स्थितये । स्थिरतरनिहितस्नेहशृङ्खलानिगडितं च कन्यकाहृदयं क्षणेनैकेनासहनीयदर्शनान्तरायं स्यात् । अस्याश्च धराङ्गनाया नात्यादृतनिराकृतारिचक्रं चक्रं करतलगतं चिन्तनीयं न तत्र

रटिते दत्तौ अर्पितौ कर्णौ येन तादृशस्य जनस्य पुरुषस्य । कर्णनीयं श्रवणीयं आरटितमित्यस्य विशेषणम् । जनिष्यते उत्पत्स्यते । जलसङ्घातस्य जलसमूहस्य किञ्चित् स्वल्पम् । आरटितं ध्वनिः । येन जनेन प्राक् त्रासमन्दरसितराजहंसध्वनिः आकर्णितः स एवानायासेन जलसंघातस्यारटितमपि श्रोतुमर्हति नान्यः द्वयोः सादृश्यात् । जलसंघातध्वनिः त्रासजर्जरहंसध्वनितुल्य इति फलितमिति भावः । शान्ते निवृत्ते । तत्र तस्मिन् पूर्वोक्ते जलशब्दे । क्लिन्नगात्रः जलार्द्रशरीरः । किञ्चिदारक्तेति—किञ्चित्स्वल्पं आरक्ता ईषल्लोहितवर्णा दृष्टिर्नयनं यस्य सः । येन आकारेण—यत् स्वरूपमादायेत्यर्थः । निर्यास्यति—जलादुत्थास्यति । निचाय्येत्यादि—निखिलजनानां नेत्रयोरानन्दकारिणं आनन्दजनकं तं आकारं निचाय्य दृष्ट्वा यक्षः कन्याधिष्ठितः अग्रतः स्थितये सम्मुखे स्थातुं न शक्ष्यति । स्थिरतरेति—स्थिरतरमचञ्चलं यथा तथा निहितः अर्पितो यः स्नेहः स एव शृङ्खला तया निगडितं बद्धम् । कन्यकाहृदयं कनकलेखाया मनः । असहनीयेति—असहनीयः सोढुमशक्यः दर्शनस्य तव विलोकनस्य अन्तरायो विघ्नो यस्य येन वेति तदिति हृदयविशेषणम् । सा खलु कन्या क्षणमपि तव विरहं सोढुमसमर्था भविष्यतीति भावः । धराङ्गनायाः पृथ्वीरूपकामिन्याः । चक्रं मण्डलं किम्भूतमित्याह नात्यादृतेति—नात्यादृतं नातिप्रयासं यथा तथा निराकृतं पराजितं अरिचक्रं शत्रुमण्डलं यस्य तत् । करतलगतं तव हस्तस्थितं चिन्तनीयं मन्तव्यं त्वयेति शेषः । तत्—यन्मया कथितम् । इच्छसि चेत्—कर्त्तुं अभिलषसि यदि । अनेकेति

उस जलमेंसे एक भींगा शरीरवाला तथा कुछ लाल आंखोवाला व्यक्ति जलसे बाहर निकलेगा । सम्पूर्ण मनुष्योंके नेत्रोंको आनन्ददायक उस व्यक्तिको साक्षात् देखकर कन्याके ऊपर जो यक्ष है वह ठहर नहीं सकता है—भाग जायगा । गम्भीर भावसे प्रेमरूपी जञ्जीरोंद्वारा आबद्ध उस राजपुत्रीका चित्त आपको एक क्षण भी न देखनेसे दुःखी होगा । इस भूमिरूपी अंगनाकी उपलब्धि भी आपको बिना परिश्रमके हो जायगी । अगर सभी शत्रुमण्डलसे रहिता इस पृथ्वीचक्रका राज्य भी आपको हस्तगत हो जायगा । अगर आपको उपर्युक्त लाभकी अभिलाषा हो, तो, अनेक शास्त्रवेत्ताओंसे, जिनकी बुद्धि शास्त्रज्ञानसे गम्भीर हो गयी हो, मन्त्रिगणोंसे, हितूजनोंसे, अन्य पौरवृद्धों आदिसे विचार

संशयः । तच्चेदिच्छस्यनेकशास्त्रज्ञानधीरधिषणैरधिकृतैरितरैश्च हितैषिगणैराकलय्य जालिकशतं चानाय्य, अन्तरङ्गनरशतैर्यथेष्टदृष्टान्तरालं सरः क्रियते, रक्षा च तीरात्त्रिंशद्दण्डान्तराले सैनिकजनेन सादरं रचनीया। कस्तत्र तज्जानाति यच्छिद्रेणारयश्चिकीर्षन्ति' इति ।

(१७) तत्त्वस्य हृदयहारि जातम्, तदधिकृतैश्च तत्र कृत्ये रन्ध्रदर्शनासहैरिच्छां च राज्ञः कन्यकातिरागजनितां नितान्तनिश्चलां निश्चित्यार्थं

अनेकशास्त्राणां ज्ञानेनाभ्यासेन धीरा अविचलिता धिषणा बुद्धिर्येषां तैस्तादृशैः अधिकृतैः तव सचिवादिकार्याधिकारिभिः । इतरैरन्यैश्च हितैषिगणैः तव हिताकांक्षिभिः । आकलय्य-तैः सह विचार्य । जालिकशतं-जालोपजीविधीवरवर्गम् । आनाय्य आकार्य संगृह्येति यावत् । अन्तरङ्गेति-अन्तरङ्गाणामात्मीयानां नराणां शतैः । यथेष्टेति—यथेष्टं यथाकामं दृष्टं परीक्षितमन्तरालं मध्यभागो यस्य तथाभूतम् । सरः जलाशयः । रक्षा चेति-तीरात् तटप्रदेशात् त्रिंशद्दण्डान्तराले—दण्डश्चतुर्हस्तप्रमाणो लगुडविशेषः त्रिंशत्परिमितानां दण्डानामन्तराले व्यवधाने तीरात् विंशत्यधिकशतहस्तपरिमितदूरवर्त्तिनि स्थाने इत्यर्थः सादरं सावधानं सैनिकजनेन रक्षा रक्षास्थानं रचनीया करणीया। कथमिति चेत्-तदाह यत् छिद्रेण रन्ध्रेणारयः शत्रवः चिकीर्षन्ति कर्त्तुमिच्छन्ति तत् को ज्ञातुं प्रभवेत् अतः सर्वतो रक्षा विधातव्येति ।

(१७) तत् मद्वचनम् । तु-किन्तु । अस्य जयसिंहस्य । हृदयहारि मनो मतम् । तदधिकृतैः राज्याधिकारिवर्गैः । तत्र कृत्ये तस्मिन् जलप्रवेशेन रूपान्तरप्राप्तिरूपकर्मणि । रन्ध्रदर्शनासहैः दोषावलोकनाक्षमैः । इच्छां कन्याप्राप्त्यभिलाषम् । कन्यकायामतिरागेण अत्यन्तप्रेम्णा जनितामुत्पादिताम् तथा नितान्तनिश्चलाम् । अतिदृढाम् । विशेषणद्वयं इच्छायाः । निश्चित्य-अवधार्य । अर्थं

कर लीजिये । फिर जालोपजीवी (धीवर) वर्गोंको एकत्र करके तथा अपने आत्मीय जनोंसे तालाबके अन्तरालको; यथारुचि परीक्षित कराकर, तालाबके तीरसे १२० हाथकी दूरीपर सावधानीपूर्वक अपने सैनिकोंसे रक्षा कराकर तालाबमें प्रवेश करियेगा । क्योंकि—यह कौन जान सकता है कि, शत्रु कहां पर है । वे शत्रुगण सुराखमेंसे प्रवेश कर लेते हैं।

(१७) यह राय उस राजाके मनको हरणकर्त्री हुई । उस राजाके अधीनस्थ सेवकगणोंद्वारा उस जलप्रवेशका निषेध नहीं किया गया । क्योंकि वे लोग जान गये थे कि राजाका उस राजपुत्रीपर उत्पन्न प्रेम अति दृढ है। ऐसा निश्चय करके

एष न निषिद्धः । तथास्थितश्च तदासादनदृढतराशयश्च स आख्यायत—'राजन्, अत्र ते जनान्ते चिरं स्थितम्, न चैकत्र चिरस्थानं नः शस्तम्। कृतकृत्यश्चेह न द्रष्टासि । यस्य ते राष्ट्रे ग्रासाद्यासादितं तस्य ते किंचिदनाचर्य कार्यं गतिरार्यगर्ह्या' इति । तत्रैतच्चिरस्थानस्य कारणम् । तच्चाद्य सिद्धम् । गच्छ गृहान् । यथार्हंजलेन हृद्यगन्धेन स्नातः सितस्रगङ्गरागः शक्तिसदृशेन दानेनाराधितधरणितलतैतिलगणस्तिलस्नेहसिक्तयष्ट्यग्रग्रथित-

विषयः । न निषिद्धः न निवारितः । तथास्थितः तथा कर्तुं प्रतिज्ञातः । तदासादनेति—तस्याः कन्याया आसादने प्राप्तौ दृढतरः द्रढीयान् आशयोऽभिप्रायो यस्यासौ । सः जयसिंहः । आख्यायत कथितोऽभवत् मयेति शेषः । ते तव । जनान्ते जनपदे । चिरं दीर्घकालं यावत् । स्थितं—वासः कृतो मयेति शेषः । एकत्र एकस्मिन् स्थाने । चिरस्थानं दीर्घकालमवस्थानम् । नः अस्माकं संन्यासिनामित्यर्थः । शस्तं प्रशस्तं नेति सम्बध्यते । कृतकृत्य; सफलप्रयोजनस्त्वं इहास्मिन् स्थाने न द्रष्टासि नावलोकयिष्यसि मामिति शेषः । नाहमत्र स्थास्यामीति भावः । राष्ट्रे राज्ये । ग्रासादि भोजनादि । आसादितं—मया लब्धं तस्य तादृशस्य तव कार्यं प्रयोजनं अनाचर्य असम्पाद्य गतिरन्यत्रगमनम् आर्यगर्ह्या सज्जननिन्दनीया अनुचितेत्यर्थः । तत्र स्थाने चिरस्थानस्य एतदेव कारणं नान्यदित्यर्थः । तच्च कार्यम् । सिद्धं सम्पन्नम् । यथार्हंजलेन राजस्नानोचितसलिलेन हृद्यगन्धेन मनोहरगन्धशालिना हृदं जलेनेत्यस्य विशेषणम् । सितेति—सितौ शुभ्रौ स्रक् माल्यं अङ्गरागश्च यस्य सः । शुभ्रमाल्यधरः शुभ्रानुलेपनश्चेत्यर्थः । शक्तिसदृशेन सामर्थ्यानुसारेण । दानेन दानं कृत्वा । आराधितेति—आराधिताः सेविताः धरणित-

उन लोगोंने उस कार्यका निषेध न किया और वे राजसेवक उस तालाबके दोष देखनेमें असमर्थ थे । जब मैंने देखा कि वह राजा तालाबमें प्रवेश करनेमें कटिबद्ध है और उस राजपुत्रीकी प्राप्तिके लिये सन्नद्ध है तब मैंने कहा—'हे राजन् ! आपके इस नगरमें मैं बहुत समयतक बसा । हम सन्यासियोंका एक ही स्थानमें दीर्घकालतक वास करना अनुचित है । कृतकृत्य होनेपर आप मुझे यहां नहीं देखेंगे । आपके इस राष्ट्रमें मैंने भोजन आदि प्राप्त किया था, यदि आपके कार्यको असम्पादित किये बिना मैं, यहांसे चला जाता तो, अनुचित कार्यका कर्त्ता होता । अतः आपके कार्यके सम्पादनार्थ मैं इस राष्ट्रमें दीर्घकालतक रहा । आपका वह कार्य आज सम्पादित हो गया । अब आप घर जायं । और राजोचित सुगन्धित जलसे स्नान करें । सफेद माला तथा चन्दन आदि यथाक्रम धारण करें । अपने सामर्थ्यके अनुसार दान करें । ब्राह्मणोंकी पूजा करें । पुनः तिलके तेलसे भींगे हुए कपड़ोंकी बत्तियोंको बांसोंके दण्डोंके अग्रभागमें लपेटकर

वर्तिकाग्निशिखासहस्रग्रस्तनैशान्धकारराशिरागत्यार्थसिद्धये यतेथाः' इति।

(१८) स किल कृतज्ञतां दर्शयन्—'असिद्धिरेषा सिद्धिः, यदसन्निधिरिहार्याणाम् । कष्टा चेयं निःसङ्गता, या निरागसं दासजनं त्याजयति। न च निषेधनीया गरीयसां गिरः' इति स्नानाय गृहानयासीत् । अहं च निर्गत्य निर्जने निशीथे सरस्तीररन्ध्रनिलीनः सन्नीषच्छिद्रदत्तकर्णः स्थितः।

लस्य भूतलस्य तैतिलगणाः देवाः ब्राह्मणा इत्यर्थः येनासौ। कृतब्राह्मणपूजः इत्यर्थः। तिलस्नेहेति—तिलस्नेहेन तिलतैलेन सिक्तानां आर्द्रीकृतानां यष्ट्यग्रेषु दण्डाग्रेषु ग्रथितानां प्रोतानां वर्तिकानां दीपदशानां अग्निशिखासहस्रेण अग्निज्वालासमूहेन ग्रस्तो ध्वस्तः नैशान्धकारराशिः रजनीतिमिरसङ्घो येनासौ। आगत्य-सरस्तटमिति शेषः। अर्थसिद्धये स्वप्रयोजनसम्पादनाय। यतेथाः प्रयत्नं कुर्याः।

(१८) स जयसिंहः। कृतज्ञतां स्वकृतज्ञभावं दर्शयन् प्रकाशयन् गृहानयासीदित्यग्रिमेणान्वयः। असिद्धिरित्यादि—एषा सिद्धिः मदभीष्टलाभः असिद्धिरलाभ एव, यत्-यतः आर्याणां भवादृशां महापुरुषाणामिह अस्मिन् स्थाने असन्निधिरसन्निधानम् अनवस्थानमिति यावत्। मत्प्रयोजनसिद्धौ सत्यामपि भवतोऽन्यत्र गमनान्न सा सिद्धिर्मे रोचते इति भावः। इयमीदृशी निःसङ्गता—भवत्सङ्गराहित्यम्। कष्टा—दुःखदायिनी। या निःसङ्गता। निरागसं निरपराधं दासजनं सेवकं मामिति शेषः त्याजयति दूरीकरोति। गरीयसां गुरूणां गिरः वचनानि। गुरूणां वाक्यानि न लङ्घनीयानि अतो नाहं भवन्तं प्रतिरुणध्मि इति भावः। इति-एवमुक्त्वा। स्नानाय–स्नातुम्। अहं–मन्त्रगुप्तः। निशीथे अर्धरात्रे। सरस्तीरेति-सरसस्तीरे यद् रन्ध्रं बिलं तत्र निलीनो गुप्तः। ईषदिति ईषच्छिद्रे स्वल्परन्ध्रे दत्तौ

हजारों अग्निशिखासे रातका अन्धकार दूर करें। और अपने अर्थसिद्धिका प्रयत्न करें।'

(१८) उस राजाने कृतज्ञता प्रकाशित करते हुए कहा—'यह लाभ मुझे इस समय अलाभके समान प्रतीत होता है क्योंकि, इस अवसर पर आपका रहना न होगा। आपके संगसे रहित होना कष्टप्रद है। हाय! निःसंगताके कारण निरपराधी सेवकका (मेरा) आपसे वियोग हो जायगा। गुरुजनोंकी वाणीका लङ्घन नहीं करना चाहिये (इसलिए मैं आपको रोक भी नहीं सकता)।' इस प्रकार कहकर स्नानके लिये घर चला गया। मैं (मन्त्रगुप्त) भी सूनी आधी रातमें उस कुटीसे निकलकर तालाबके तीरवाले बिल (छेद) में प्रविष्ट होकर छोटे छेदमें कान लगाकर बैठ गया। आधी रातके समय वह राजा, मुझसे उपदेशित क्रियाओंको करके स्थान-स्थान पर रक्षक पुरुषोंको नियुक्त करके, अनेकों धीवरोंको लाकर, उस तालाबके अन्तःप्रदेशके शल्यों (काँटों) को निकलवाकर उस तालाबके जलमें

स्थिते चार्धरात्रे कृतयथादिष्टक्रियः स्थानस्थानरचितरक्षः स राजा जालिकजनानानीय निराकृतान्तःशल्यं शङ्काहीनः सरःसलिलं सलीलगतिरगाहत गतं च कीर्णकेशं संहतकर्णनासं सरसस्तलं हास्तिनं नक्रलीलया नीरातिनिलीनया तं तथा शयानं कन्धरायां कन्थया न्यग्रहीषम् । खरतरकालदण्डसंघट्टनातिचण्डैश्च करचरणघातैर्निर्दयदत्तनिग्रहः क्षणेनैकेनाजहात्स चेष्टाम् । ततश्चाकृष्य तच्छरीरं छिद्रे निधाय नीरान्निरयासिषम् ।

(१९) सङ्गतानां च सैनिकानां तदत्यचित्रीयताकारान्तरग्रहणम् ।

कर्णौ येन तादृशः । स्थिते अवशिष्टे । कृतेति—कृता अनुष्ठिता यथादिष्टा मत्कथनानुरूपा क्रिया येनासौ । स्थानेति-स्थाने अनेकेषु स्थानेषु रचिता कृता रक्षा रक्षिपुरुषसंस्थापनं येनासौ । राजा जयसिंहः । निराकृतेति—निराकृतं दूरीकृतं परीक्ष्य शोधितमिति यावत् अन्तःशल्यं जलमध्यस्थविघ्नो यस्य तादृशं सरःसलिलम् । सलीलगतिः सविलासगमनः । अगाहत प्राविशत् । गतमित्यादि—कीर्णकेशं कीर्णा विक्षिप्ताः केशा मूर्द्धजा यस्मिन् कर्मणि तद् यथा तथा, संहतकर्णनासं—कर्णौ च नासे चेति कर्णनासं प्राण्यङ्गत्वादेकवद्भावः संहतं पिहितं कर्णनासं यस्मिन् कर्मणि तद् यथा तथा । एतत्पदद्वयं गतमिति क्रियाया विशेषणम् । हस्तिनं—हास्तिप्रमाणकं—हस्ती प्रमाणमस्येति अण्प्रत्ययः । सरसस्तलं गतं प्रविष्टं, तथा पूर्वोद्दिष्टानुसारेण शयानं सुप्तम् तं जयसिंह ग्रीवायां कन्धरायां नक्रलीलया नक्रस्य मकरस्येव लीला तया—नक्रवदित्यर्थः नीरातिनिलीनया नीरे सलिले अतिनिलीनया अत्यन्तनिमग्नया कन्थया प्रावरणविशेषेण न्यग्रहीषं निगृहीतवानहमिति शेषः । खरतरेति—खरतरोऽतितीक्ष्णः यः कालदण्डो यमदण्डस्तस्य यत्सङ्घट्टनं सङ्घर्षस्तद्वत् अतिचण्डैः अतिभीषणैः । करचरणघातैः हस्तपादप्रहारैः । निर्दयेति—निर्दयं यथा तथा दत्तो निग्रहो निकारो यस्यासौ । स जयसिंहः चेष्टां अजहात् अम्रियत । ततः—सरस्तलात् । आकृष्य बहिष्कृत्य । छिद्रे पूर्वकृतरन्ध्रे । निधाय संस्थाप्य । निरयासिषम्-निर्गतोऽभवम् ।

(१९) सङ्गतानां तत्रोपस्थितानाम् । तदाकारान्तरग्रहणं अन्याकारप्राप्तिः ।

विलासयुक्त प्रविष्ट हुआ । राजा अपने बालोंको खोलकर, कान-नाक बन्दकर हस्तिप्रमाण जलमें सो गया । तब मैंने उस सोनेवाले राजाके गलेको पानीमें अत्यन्त गुप्त मगरकी लीलासे कन्थाद्वारा पकड़ लिया । तदनन्तर अत्यन्त तीक्ष्ण कालदण्ड के संघट्टनके समान अति भीषण अपने हाथ-पैरोंके आघातसे उस राजाको खूब मारा जिससे उस जयसिंहने एक क्षणमें ही अपनी लीला समाप्त कर दी (मर गया) । फिर उसके शरीरको ले जाकर उसी छेदमें रख दिया और मैं जलसे बाहर आ गया ।

(१९) वहांपर उपस्थित सैनिकोंने रूप परिवर्तन देखकर अत्यन्त आश्चर्य प्रकट

गजस्कन्धगतः सितच्छत्रादिसकलराजचिह्नराजितश्चण्डतरदण्डिदण्डताडनत्रस्तजनदत्तान्तरालया राजवीथ्या यातस्तां निशां रसनयननिरस्तनिद्रारतिरनैषम्। नीते च जनाक्षिलक्ष्यतां लाक्षारसदिग्धदिग्गजशिरःसदृक्षे शक्रदिगङ्गनारत्नादर्शेऽर्कचक्रे कृतकरणीयः किरणजालकरालरत्नराजिराजितराजार्हासनाध्यासी यथास्वदृशाचारदर्शिनः शङ्कायन्त्रिताङ्गान्सन्नि-

अत्यचित्रीयत–अत्याश्चर्यजनकमभवत्। गजस्कन्धगतः हस्तिशिरस्थितः। सितेति सितच्छत्रमादि येषां तानि सितच्छत्रादीनि श्वेतातपत्रप्रभृतीनि यानि सकलानि निखिलानि राजचिह्नानि नृपलक्ष्माणि तैः राजितः शोभितः। विशेषणद्वयं अहमित्यस्य मन्त्रगुप्तवाचकस्य। चण्डतरेति—चण्डतराणामतिप्रचण्डानां दण्डिनां दण्डधारिदौवारिकाणां दण्डैर्लगुडैस्ताडनेन प्रहारेण त्रस्ता भीता ये जनास्तैर्दत्तमन्तरालमवकाशो यस्यां तया। राजवीथ्या राजमार्गेण। यातश्चलितः। अहमिति शेषः। रसेति–रसेन अत्यधिकानन्देन कनकलेखानुरागेण वा नयनाभ्यां–पञ्चमीद्विवचनमेतत्—निरस्ता अपगता निद्रारतिः शयनप्रीतिः यस्य तादृशोऽहम् अनैषम् अत्यवाहयम् निशामिति पूर्वोक्तेनान्वयः। नीते चेत्यादि—लाक्षारसेन यावकेन दिग्धमनुलिप्तं यद् दिग्गजस्य दिङ्मातङ्गस्य शिरो मस्तकं तत्सदृक्षे तत्तुल्ये रक्तवर्णे इति भावः, शक्रस्य दिक् पूर्वाशा–सैवाङ्गना कामिनी तस्या रत्नादर्शे मणिदर्पणस्वरूपे अर्कचक्रे सूर्यमण्डले जनाक्षिलक्ष्यतां नरनयनगोचरतां नीते प्रापिते सति–सूर्ये उदिते सतीत्यर्थः। कृतकरणीयः विहितनित्यक्रियः। किरणजालेति—किरणजालेन मयूखमण्डलेन कराला व्याप्ता या रत्नराजिः रत्नसमूहस्तया राजितं शोभितं यद् राजार्हं राजयोग्यमासनं तदध्यास्ते इति तच्छीलः। अहमिति शेषः। यथेति—यथास्वदृशं स्वस्वाधिकारोचितं आचारं राजमर्यादादिकं दर्शयन्ति ये तान्। शङ्केति—शङ्कया-यथा राज्ञः आकृतिपरिवर्त्तनं जातं तथैव प्रकृतेरपि

किया। हाथीके ऊपर चढ़कर सफेद छत्र आदि सभी राजचिन्होंसे सुशोभित मैं राजमार्गसे चला। उस राजमार्गको अत्यन्त प्रबल दण्डधारी सेवक गण आगे आगे दण्डोंके प्रहार द्वारा जनोंको भय दिखाकर खाली करा देते थे। उस रात कनकावतीके प्रबलानुरागसे मुझे आखोंमें निद्रा न आयी—वह रात मैंने जागकर बिता दी। प्रभातमें जब लाक्षारससे परिव्याप्त हुए दिग्गजोंके मस्तकोंके तुल्य, इन्द्रकी दिशा-(पूर्वदिशा-) रूपी अंगनाके मणिदर्पणके सदृश, सूर्यमण्डल लोगोंकी आखोंके सामने लक्षित हुआ। उस समय मैं नित्यक्रियासे निवृत्त होकर, किरणजालसे परिपूर्ण एवं रत्नराशिसे देदीप्यमान, राजाओंके अनुरूप श्रेष्ठ (सिंहासन) पर आरूढ़ होकर बैठा। उस समय यथानुरूप अपने नियमाचरणोंको प्रदर्शित करनेवाले, भयसे शरीरोंको संकुचित

धिनिषादिनः सहायानगादिषम्—'दृश्यतां शक्तिरार्षी, यत्तस्य यतेरजेयस्येन्द्रियाणां संस्कारेण नीरजसा नीरजसांनिध्यशालिनि सहर्षालिनि सरसि सरसिजदलसन्निकाशच्छायस्याधिकतरदर्शनीयस्याकारान्तरस्य सिद्धिरासीत् । अद्य सकलनास्तिकानां जायेत लज्जानतं शिरः । तदिदानीं चन्द्रशेखरनरकशासनसरसिजासनादीनां त्रिदशेशानां स्थानान्यादररचितनृत्यगीताराधनानि क्रियन्ताम् । ह्रियन्तां च गृहादितः क्लेशनिरसनसहान्यर्थिसार्थैर्धनानि' इति ।

परिवर्त्तनं जातं स्यादिति भयेन यन्त्रितानि सङ्कुचितानि अङ्गानि गात्राणि येषां तान् । सन्निधिनिषादिनः सन्निधौ समीपे निषीदन्ति ये तान्-पार्श्वचरानित्यर्थः । सहायान् सचिवादीन् । अगादिषम् अवोचम् । शक्तिः प्रभावः । आर्षी ऋषिसम्बन्धिनी । यत्तस्येत्यादि—इन्द्रियाणां चक्षुरादीनां करणानां अजेयस्य जेतुमशक्यस्य तस्य पूर्वोक्तस्य यतेर्मुनेः नीरजसा रजोगुणरहितेन पवित्रेणेत्यर्थः संस्कारेण मन्त्रानुष्ठानेन नीरजानां कमलानां साान्निध्येन सम्पर्केण शालते शोभते एवं शीले—तथा सहर्षाः सानन्दा अलिनो भ्रमरा यत्र तथाभूते सरसि सरोवरे सरसिजदलैः कमलदलैः सन्निकाशा तुल्या छाया कान्तिर्यस्य तादृशस्य तथा अधिकतरदर्शनीयस्य परमरमणीयस्य अकारान्तरस्य अन्यशरीरस्य सिद्धिः प्राप्तिरभूत् । ममेति शेषः । अद्य साम्प्रतम् सकलनास्तिकानां मन्त्रतन्त्रादिप्रभावमस्वीकुर्वताम् पाषण्डानामित्यर्थः । जायेत भवेत् । तत् तस्मात् । चन्द्रशेखरो महेश्वरः, नरकशासनो विष्णुः सरसिजासनो ब्रह्मा तदादीनां त्रिदशेशानां देवानाम् । स्थानानि मन्दिराणि । आदरेति—आदरेण श्रद्धया भक्त्या वा रचितमनुष्ठितं नृत्यगीताभ्यां आराधनं पूजनं येषु तानि । ह्रियन्तां नीयन्ताम् । गृहात् इतः—अस्माद् राजसदनात् । क्लेशनिरसनसहानि-दारिद्र्यदुःखनाशसमर्थानि धनानि । अर्थिसार्थैः-याचकसमूहैः । दरिद्रा आगत्य यथेष्टं स्वाभिलषितं धनं गृह्णन्त्विति भावः।

इन्द्रियोंसे अजेय उस तपस्वीके पवित्र (रजोगुण रहित) संस्कारद्वारा उस तालाबमें, मैंने कमलदलतुल्य क्या उससे भी अधिक दर्शनीय देह प्राप्त की। जिस तालाबमें कमलोंके समीप रहनेवाले प्रमुदित भौंरे कमलोंपर शोभा पा रहे हैं। (अपूर्व सिद्धि प्राप्त की)। आज सभी नास्तिकोंका (आर्यधर्मविहीनोंका) शिर लज्जासे झुक गया है। अतः सम्प्रति सभी, महादेव, विष्णु, ब्रह्मा तथा अन्य देवताओंके मन्दिरोंमें श्रद्धाके साथ नाच-गाना एवं पूजा-अर्चा होवे। दारिद्र्यके दुःखको नाश करनेवाली लक्ष्मी (धन, वस्त्र आदि) याचक जनोंको इस राज प्रासादसे दिये जायें।

करनेवाले, पार्श्वचरों और सहायकोंसे मैंने कहा—ऋषियोंकी शक्ति देखिये।

(२०) आश्चर्यरसातिरेकहृष्टदृष्टयस्ते 'जय जगदीश, स्वतेजसातिशय्य दश दिशः स्थगयन्निजेन यशसादिराजयशांसि' इत्यसकृदाशास्याचरयन्यथादिष्टाः क्रियाः। स चाहं दयितायाः सखीं हृदयस्थानीयां शशाङ्कसेनां कन्यकां कदाचित्कार्यान्तरागतां रहस्याचक्षिषि—'कच्चिदयं जनः कदाचिदासीद्दृष्टः' इति।

(२१) अथ सा हर्षकाष्ठां गतेन हृदयेनेषदालक्ष्य दशनदीधितिलतां लीलालसं लासयन्ती, ललिताञ्चितकरशाखान्तरितदन्तच्छदकिसलया,

(२०) आश्चर्येति—आश्चर्यरसस्य विस्मयस्य अतिरेकेण आधिक्येन हृष्टा प्रसन्ना दृष्टिर्येषां ते तादृशाः। ते सचिवादयः। स्वतेजसा निजप्रतापेन दशदिशः अतिशय्य अतिक्रम्य निजेन यशसा कीर्त्या आदिराजयशांसि पूर्वनृपतिकीर्त्तीः स्थगयन् आच्छादयन् जय सर्वोत्कर्षेण वर्त्तस्वेति असकृत्पुनःपुनः आशास्य आशीर्भिरभिनन्द्य यथादिष्टाः राजाज्ञानुसारेण क्रियाः देवताराधनादिकाः अरचयन् अन्वतिष्ठन्। स च अहं—नृपरूपेण परिणतो मन्त्रगुप्त इत्यर्थः। दयितायाः प्रियायाः। हृदयस्थानीयां स्वहृदयतुल्यामन्तरङ्गभूताम्। कार्यान्तरागतां—अन्यकार्यव्यपदेशेनागताम्। रहसि निर्जने। आचक्षिषि अकथयम्। अयञ्जनः—मल्लक्षणः। कदाचित्-कस्मिन्नपि समये। दृष्टः आसीत् त्वयेति शेषः कच्चित्-किम्।

(२१) अथ प्रश्नानन्तरम्। सा शशाङ्कसेना। हर्षकाष्ठां हर्षातिशयम्। गतेन प्राप्तेन हृदयेनोपलक्षिता। ईषदल्पं आलक्ष्य दृष्ट्वा दशनदीधितिरेव दन्तकिरणा एव लता वल्ली तां लीलालसं विलासमन्दं यथा तथा लासयन्ती नर्त्तयन्ती प्रक्षिपन्तीति यावत्। तथा ललितेति—ललितं सुन्दरं यथा तथा

(२०) विस्मयकी अधिकतासे प्रफुल्लित दृष्टिवाले उन याचकगण तथा मन्त्रिगणने 'जय जगदीश' एवं 'अपने प्रतापसे दश दिशाओंको परिव्याप्त करके तथा अपने यशसे पूर्ववर्ती राजाओंकी कीर्तिको जिन्होंने आच्छादित कर लिया है' ऐसे-ऐसे प्रशंसनीय वाक्य तथा आशीर्वचनको बार-बार कहकर, राजाद्वारा आदेशित पूजा-अर्चा समाप्त की। तदनन्तर किसी समय मेरे समीप किसी कार्यवश आयी हुई अपनी प्यारीकी सखी जो उसकी अन्तरंगिणी थी जिसका नाम शशांकसेना था, उस शशांकसेनासे मैंने (मन्त्रगुप्तने) एकान्तमें कहा—'क्या इस पुरुष को (मुझे) कभी पहिले देखा था ?'

(२१) प्रश्नके बाद उस शशांकसेनाने आनन्दकी परम सीमा से युक्त चित्तसे कुछ देर देखकर, दन्तरूपी लताको विलाससे नर्त्तन कराकर, सुन्दर और संकुचित हाथकी अंगुलीसे अपने अधर पल्लवको ढककर, हर्षसे उत्पन्न जो आँसू उससे आक्रान्त एवं कज्जल रहित नेत्रोंसे बद्धाञ्जलि होकर कहा—'मैं आपको भली-भाँति पहचानती हूँ, यदि यह दृश्य (आपकी छवि) कोई कपटसे नहीं रचा हुआ है तो यह कैसे

हर्षजलक्लेदजर्जरनिरञ्जनेक्षणा रचिताञ्जलिः नितरां जाने यदि न स्यादैन्द्रजालिकस्य जालं किञ्चिदेतादृशम्। कथं चैतत् कथय। इति स्नेहनिर्यन्त्रणं शनैरगादीत्। अहं चास्यै कात्स्न्येनाख्याय तदाननसङ्क्रान्तेन सन्देशेन सञ्जनय्य सहचर्या निरतिशयं हृदयाह्लादं ततश्चैतया दयितया निर्गलीकृतातिसत्कृतकलिङ्गनाथन्यायदत्तया सङ्गत्यान्ध्रकलिङ्गराजराज्यशासी तस्यास्यारिणा लिलङ्घयिषितस्याङ्गराजस्य साहाय्यकायालघीयसा साधनेनागत्यात्र ते सखिजनसङ्गतस्य यादृच्छिकदर्शनानन्दराशिलङ्घित-

अञ्चितया संकुचितया करशाखया कराङ्गुल्या अन्तरितौ पिहितौ दन्तच्छदौ ओष्ठाधरावेव किसलयौ यया तादृशी, तथा—हर्षेति—हर्षजलक्लेदेन आनन्दाश्रुनिर्गमेण जर्जरे क्लान्ते अतएव निरञ्जने कज्जलरहिते ईक्षणे नयने यस्याः सा। नितरां—अतिशयेन। जाने—त्वां जानामि। ऐन्द्रजालिकस्य मायाविनः। जालं—कपटम्, एतादृशं एवम्भूतम्। यद्येषा ऐन्द्रजालिकमाया न स्यात्तदा त्वां सर्वथा परिचिनोमीत्यर्थः। कथं चैतत् कथय—कथमेवं सम्भावितमभूत् तद् कथयेत्यर्थः। स्नेहनिर्यन्त्रणं—स्नेहेन प्रेम्णा निर्यन्त्रणं निर्बाधम्। अस्यै शशाङ्कसेनायै। कात्स्न्येन—साकल्येन। तदाननसंक्रान्तेन—शशाङ्कसेनामुखद्वारा कथितेन। संजनय्य—उत्पाद्य। सहचर्याः कनकलेखायाः। एतया पूर्वोक्तया कनकलेखया। कीदृश्या इत्याह—निर्गलीति—निर्गलीकृतेन बन्धनान्मोचितेन ततः सत्कृतेन पूजितेन कलिङ्गनाथेन कर्दनाख्येन न्यायेन विधिपूर्वकं दत्तया अर्पितया कृतविवाहयेत्यर्थः। संगत्य संगं प्राप्य। आन्ध्रेति—आन्ध्रकलिङ्गराजयोः आन्ध्रराजस्य कलिङ्गराजस्य च राज्यं शास्तीति तच्छासी अहमिति शेषः। तस्येत्यादि—तस्य पूर्ववर्णितस्यास्य अङ्गराजस्य सिंहवर्मणः अरिणा शत्रुणा चण्डवर्माख्येन लिलंघयिषितस्य आक्रमितुमिष्टस्य। साहाय्यकाय—साहाय्यं कर्तुम्। अलघीयसा विपुलेन। साधनेन सैन्येन। अत्र अस्मिन् अङ्गदेशे। सखिजनसंगतस्य मित्रवर्गपरिवृतस्य। ते तव राजवाहनस्येत्यर्थः। यादृच्छिकेति—यादृच्छिकं दैवसंयोगाज्जातं यद्दर्शनं तेन य आनन्दराशिस्तेन लङ्घितमाक्रान्तं चेतो यस्य सः। इत्यन्तं मन्त्रगुप्तस्य वचनम्।

हुआ, कहिये।' स्नेहसे बांधती हुई उसने मुझसे धीरेसे उपर्युक्त बात पूछी। तब मैंने अपनी सभी कृतियां उससे निवेदित कर दीं। फिर उसी शशांकसेनाके मुखसे अपनी सभी कृतियां, जो मेरी प्यारीको आनन्ददायिका थीं, अपनी प्यारीके समीप कहला भेजी। तत्पश्चात् अति आदरपूर्वक प्रतिबन्ध रहित यथाविधि कलिङ्गराजकी पुत्रीको स्वीकार किया और आन्ध्र तथा कलिङ्गका राज्य भी प्राप्त किया। ततः आन्ध्र और कलिङ्ग देशपर शासन करते हुए इस शत्रुको जीतनेकी अभिलाषासे और अङ्गराजको

चेता जात इति। तस्य तत्कौशलं स्मितज्योत्स्नाभिषिक्तदन्तच्छदः सह सुहृद्भिरभिनन्द्यचित्रमिदं महामुनेर्वृत्तम्। अत्रैव खलु फलितमतिकष्टं तपः। तिष्ठतु तावन्नर्म। हर्षप्रकर्षस्पृशोः प्रज्ञासत्त्वयोर्दृष्टमिह स्वरूपम्। इत्यभिधाय पुनः अवतरतु भवान् इति बहुश्रुते विश्रुते विकचराजीवसदृशं दृशं चिक्षेप देवो राजवाहनः।

इति मन्त्रगुप्तचरितं नाम सप्तम उच्छ्वासः।

---

(२२) तस्य मन्त्रगुप्तस्य। तत् पूर्ववर्णितम्। कौशलं नैपुण्यम्। अभिनन्द्येत्यस्य कर्म। स्मितेति–स्मितस्य मन्दहासस्य ज्योत्स्नया किरणेन अभिषिक्तौ अनुलिप्तौ दन्तच्छदौ ओष्ठाधरौ यस्य तादृश इति राजवाहन इत्यग्रिमेणान्वयः। चित्रं–विस्मयकरम्। महामुनेः महातापसस्य तापसवेषधारिणो मन्त्रगुप्तस्येत्यर्थः। वृत्तं चरित्रम्। अत्रैव इह जन्मन्येव। फलितं सिद्धम्। अतिकष्ट–कष्टसाध्यं। नर्म परिहासवाक्यम्। एतावद् यदुक्तं राजवाहनेन तत्तु परिहाससूचकमेव साम्प्रतं परिहासं विहाय तत्त्वमेवोच्यते इत्यत्र तात्पर्यम्। हर्षप्रकर्षेति हर्षस्यानन्दस्य प्रकर्षमाधिक्यं स्पृशतः इति तयोः–समधिकानन्दजनकयोः। प्रज्ञासत्त्वयोः बुद्धिबलयोः। स्वरूपम् तत्त्वम्। अवतरतु–स्वचरितवर्णनमारभताम् इत्यर्थः। बहुश्रुते–बहु नानाशास्त्रं श्रुतमधीतं येन तस्मिन्। विश्रुते तन्नामधेये कुमारे, तदुपरीत्यर्थः। विकचं प्रफुल्लं यद् राजीवं कमलं तत्–सदृशं तत्तुल्यां दृशं नयनं चिक्षेप निदधौ। अत्र तस्येत्यारभ्य राजवाहन इत्यन्तं वर्णनं कविनैव कृतमतोऽत्र ओष्ठ्यवर्णप्रयोगो न वैरस्यमावहतीति सहृदयैर्बोध्यम्।

इति बालविबोधिनी व्याख्यायां सप्तम उच्छ्वासः।

सहायताके लिए संग्राम के प्रभूत साधनों (सैन्यादिकों) के सहित यहाँपर आया। यहाँपर मित्रोंसहित आपका दर्शन पाकर आनन्दराशिसे मेरा मन पुलकित हो गया।

(२२) कुमार मन्त्रगुप्तके इस वृत्तको सुनकर सुहृदोंके साथ राजवाहनने मुसकुराते हुए चन्द्रिकासे अभिषिक्त अधरोंद्वारा उस मन्त्रगुप्तका अभिवादन किया और कहा—'इस महामुनिका चरितवृत्त विचित्र है। अति कठिन तपका फल आपको इसी जीवनमें उपलब्ध हो गया। अब परिहास त्याग दिया जाय। आनन्दके आधिक्यको स्पर्शित करनेवाला आपके बुद्धिबलका स्वरूप इस वृत्तमें देखा गया। अस्तु....। ऐसी बातें कहकर अपने विकसित पद्मके सदृश नेत्रोंको विक्षेपित कर देव राजवाहनने नानाशास्त्रनिष्णात विश्रुतसे अपने चरितको प्रारम्भ करनेके लिये कहा।

इस प्रकार सप्तम उच्छ्वासकी बालक्रीड़ा नामक हिन्दी टीका समाप्त हुई।

|| श्रीः ||

दशकुमारचरितम्

अष्टमोच्छ्वासः

(१) अथ सोऽप्याचचक्षे—'देव, मयापि परिभ्रमता विन्ध्याटव्यां कोऽपि कुमारः क्षुधा तृषा च क्लिश्यन्नक्लेशार्हः कश्चित्कूपाभ्याशेऽष्टवर्षदेशीयो दृष्टः। स च त्रासगद्गदमगदत्—'महाभाग, क्लिष्टस्य मे क्रियतामार्य, साहाय्यकम्। अस्य मे प्राणापहारिणीं पिपासां प्रतिकर्तुमुदकमुदञ्चन्निह कूपे कोऽपि निष्कलो ममैकशरणभूतः पतितः। तमलमस्मि नाहमुद्धर्तुम्' इति।

(२) अथाहमभ्येत्य व्रतत्या कयापि वृद्धमुत्तार्य, तं च बालं वंशना-

---

❀ बालविबोधिनी ❀

(१) अथ मन्त्रगुप्तकथनानन्तरम्। स विश्रुतनामा कुमारः। विन्ध्याटव्यां विन्ध्यारण्ये। कोऽपि अज्ञातकुलनामा। अक्लेशार्हः क्लेशसहनयोग्यो नेत्यर्थः। कूपाभ्याशे जलाशयसमीपे। अष्टवर्षदेशीयः असमाप्ताष्टवर्षः। सः बालकः। त्रासगद्गदं भयविक्लवं यथा तथा। क्लिष्टस्य क्लेशयुक्तस्य। आर्य-पूज्य। साहाय्यकं स्वार्थे कः। प्राणापहारिणीं जीवितनाशिनीम्। प्रतिकर्तुं अपनोदयितुम्। उदञ्चन् निष्कासयन्। निष्कलो वृद्धः। ममैकशरणभूतो मदवलम्बनभूतः। तं कूपपतितं वृद्धम्। अलं समर्थः। उद्धर्तुं कूपान्निष्कासयितुम्। इत्यन्तं अगददित्यस्य कर्म।

(२) अथ तच्छ्रवणानन्तरम्। अभ्येत्य समीपमागत्य। व्रतत्या लतया

❀ बालक्रीडा ❀

(१) विश्रुत कहने लगा-'देव! मैं भी विन्ध्याटवी में इधर-उधर भ्रमण कर रहा था। सहसा एक कुए के समीप मैंने लगभग आठ वर्ष का एक बालक देखा। कष्ट सहन करने के अयोग्य वह सुकुमार बालक भूख-प्यास से व्याकुल था। उसने मुझे देखकर भयभीत भाव से गद्‌गद होकर कहा-'महाभाग! मैं इस समय संकट में हूँ। आप मेरी सहायता करिए। मुझे प्राणान्तक पिपासा लगी हुई थी। उसे बुझाने के लिए मैं इस कुए पर आया तो देखा, कोई वृद्ध पुरुष कूप में गिरा हुआ है। मेरे सिवाय इसका और कोई सहायक नहीं है और मुझमें इतना बल नहीं है कि मैं इसका उद्धार कर सकूँ।'

(२) इसके अनन्तर मैंने कुछ लताओं की सहायता से उस वृद्ध को कुए

लीमुखोद्धृताभिरद्भिः फलैश्च पञ्चषैः शरक्षेपोच्छ्रितस्य लकुचवृक्षस्य शिखरात्पाषाणपातितैः प्रत्यानीतप्राणवृत्तिमापाद्य, तरुतलनिषण्णस्तं जरन्तमब्रवम्—'तात, क एष बालः, को वा भवान्, कथं चेयमापदापन्ना' इति।

(३) सोऽश्रुगद्गदमगदत्—'श्रूयतां महाभाग ! विदर्भो नाम जनपदः तस्मिन्भोजवंशभूषणम्, अंशावतार इव धर्मस्य, अतिसत्त्वः, सत्यवादी, वदान्यः, विनीतः, विनेता प्रजानाम्, रञ्जितभृत्यः, कीर्तिमान्, उदग्रः,

❀ बालविबोधिनी ❀

रज्जुभूतयेत्यर्थः। उत्तार्य उद्धृत्य। वंशनालीति—वंशस्य नाली अन्तश्छिद्रं वेणुर्वा तस्य। मुखमग्रभागस्तेनोद्धृताभिर्निष्कासिताभिः। अद्भिर्जलैः। पञ्च षट् वा प्रमाणमेषां ते पञ्चषास्तैः। शरक्षेपो बाणगतिः यावद्बाणा गच्छन्तीत्यर्थः। शरक्षेपादप्युच्छ्रितस्योन्नतस्य। शिखरात् अग्रदेशात्। पाषाणपातितैः प्रस्तरनिःक्षेपेणाधः क्षिप्तैः। फलैरित्यस्य विशेषणम्। करणभूतैः तैः प्रत्यानीता पुनराक्षिप्ता प्राणवृत्तिः जीवनयोगो यस्य तम्। आपाद्य कृत्वा। जरन्तं वृद्धम्।

(३) सः वृद्धः। जनपदः देशः। अस्तीति शेषः। अंशावतारः—अंशेनैकदेशेन अवतारः न तु पूर्ण इत्यर्थः। अतिसत्त्वः समधिकबलवान् सत्त्वगुणप्रधानो वा। वदान्यो दानशौण्डः। विनेता शिक्षादाता। रञ्जितभृत्यः अनुरक्तसेवकः।

❀ बालक्रीडा ❀

से बाहर निकाला और बाँस की नली से पानी काढ़कर उस बालक की पिपासा निवृत्त की। तत्पश्चात् पत्थर तथा बाणों की सहायता से मैंने एक लकुच वृक्ष से पाँच-छ फल तोड़े और उसे खिलाकर उन दोनों की भूख मिटायीं। तब वृक्ष की छाया में बैठकर उस बूढे से मैंने कहा—'हे तात ! यह बालक कौन है ? आप कौन हैं और यहाँ आकर इस विपत्ति में कैसे पड़ गये ?' मेरे वचन सुनकर उस वृद्ध के नेत्र छलछला आये और गद्गद वाणी में उसने कहा :—

(३) 'महाभाग ! सुनिए। विदर्भ नाम का एक देश है। उसमें भोजवंशावतंस, धर्म का अंशावतार, असाधारण बलवान्, सत्यवादी, दानी, विनयभावसम्पन्न, प्रजा का शासक, अपने सेवकों को प्रसन्न रखनेवाला, यशस्वी, उन्नतिशील, अपनी बुद्धि और अपने शरीर से सदा प्रजा की उन्नति में लगा रहनेवाला, शास्त्र पर आस्था रखने वाला, पंडितों का सत्कार करने में तत्पर,

बुद्धिमूर्तिभ्यामुत्थानशीलः, शास्त्रप्रमाणकः, शक्यभव्यकल्पारम्भी, संभावयिता बुधान्, प्रभावयिता सेवकान्, उद्भावयिता बन्धून्, न्यग्भावयिता शत्रून्, असंबद्धप्रलापेष्वदत्तकर्णः, कदाचिदप्यवितृष्णो गुणेषु, अतिनदीष्णः कलासु, नेदिष्ठो धर्मार्थसंहितासु, स्वल्पेऽपि सुकृते सुतरां प्रत्युपकर्ता, प्रत्यवेक्षिता कोशवाहनयोः, यत्नेन परीक्षिता सर्वाध्यक्षाणाम्, उत्साहयिता कृतकर्मणामनुरूपैर्दानमानैः, सद्यः प्रतिकर्ता दैवमानुषीणामापदाम्, षाड्गु-

❀ बालविबोधिनी ❀

बुद्ध्या मूर्त्या आकारेण चोत्थानशीलः पौरुषस्वभावः । शक्यं स्वसाध्यं भव्यं मङ्गलजनकं कल्पं विधिं आरभत इति शक्यभव्यकल्पारम्भी । संभावयिता मानधनादिना सत्कर्त्ता । प्रभावयिता प्रभुत्वकारकः । उद्भावयिता संवर्द्धकः । न्यग्भावयिता जेता । असंवद्धप्रलापेषु निरर्थकवचनेषु । अवितृष्णो विरागरहितः सर्वदा गुणानुरक्त एवेत्यर्थः । अतिनदीष्णः परमपटुः । नेदिष्ठोऽतिसमीपवर्ती सर्वदैव तत्र संलग्न इति भावः । सुकृते केनापि कृते उपकारे । सुतरामतिशयेन । प्रत्यवेक्षिता अनुसन्धानकर्त्ता । परीक्षिता परीक्षकः । सर्वाध्यक्षाणां प्रधानकर्मकर्तॄणाम् । कृतं निष्पादितं कर्म कार्यं यैस्तेषाम् । प्रतिकर्त्ता शमयिता । षाड्गुण्यं सन्धिविग्रहादिः

❀ बालक्रीडा ❀

सेवकों का प्रभाव बढ़ाने में संलग्न, बन्धुजनों का सहायक और शत्रुओं का दमक करनेवाला पुण्यवर्मा नाम का राजा था। वह कभी असम्बद्ध बातों पर ध्यान नहीं देता था। गुणों को ग्रहण करने में कभी भी वह तृप्त नहीं होने पाता था। वह सभी कलाओं में निपुण था। धर्म और अर्थ के संग्रह में वह सदा प्रयत्नशील रहता था। यदि कोई उसका तनिक भी उपकार कर देता तो वह उसका भरपूर प्रत्युपकार करता था। अपने कोष और वाहनों पर उसकी सर्वदा निगाह रहती थी। अपने सभी अधिकारियों की वह गुप्तरूप से परीक्षा किया करता था। कार्यकुशल लोगों का सम्मान करता हुआ वह उन्हें आर्थिक सहायता भी पहुँचाया करता था। यदि कभी कोई दैवी या मानुषी विपत्ति आ जाती तो वह तत्काल उसका प्रतीकार कर देता था। सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और आश्रय इन छहों गुणों का वह यथोचित उपयोग करता था। मनु की बतायी प्रणाली के अनुसार वह चारों वर्णों और चारों आश्रमों के धर्मों का पालन कराता था। उसकी पुनीत

ण्योपयोगनिपुणः, मनुमार्गेण प्रणेता चातुर्वर्ण्यस्य, पुण्यवर्मा नामासीत् ।

(४) स पुण्यैः कर्मभिः प्राप्य पुरुषायुषम्, पुनरपुण्येन प्रजानामगण्यताम रेषु । तदनन्तरमनन्तवर्मा नाम तदायतिरवनिमध्यतिष्ठत् । स सर्वगुणैः समृद्धोऽपि दैवाद्दण्डनीत्यां नात्यादृतोऽभूत् । तमेकदा रहसि वसुरक्षितो नाम मन्त्रिवृद्धः पितुरस्य बहुमतः प्रगल्भवागभाषत ।

(५) 'तात, सर्वैवात्मसंपदभिजनात्प्रभृत्यन्यूनैवात्रभवति लक्ष्यते । बुद्धिश्च निसर्गपटूवी, कलासु नृत्यगीतादिषु चित्रेषु च काव्यविस्तरेषु प्राप्त-

❀ बालविबोधिनी ❀

तेषामुपयोगे विविच्य प्रयोगे निपुणः कुशलः । मनुमार्गेण मनूक्तपद्धत्या । पुण्यश्लोकः पवित्रकीर्त्तिः ।

(४) सः पुण्यवर्मा । पुण्यैः कर्मभिः यज्ञदानादिभिः । पुरुषायुषं पूर्णमायुः शतं वर्षाणीति यावत् । प्राप्य लब्ध्वा । प्राण्येति पाठे जीवित्वेत्यर्थः । अपुण्येन पापेन दुर्भाग्येनेति यावत् । अमरेषु अगण्यत स्वर्गमगच्छत् । तदायतिः—तस्मात् पुण्यवर्मणः आयतिः प्रभावो यस्य सः । तत्पुत्र इत्यर्थः । स्यात्प्रभावेऽपि चायतिरित्यमरः । दण्डनीत्यां राजनीतौ । अत्यादृत आदरवान् । बहुमतः सम्मानितः । प्रगल्भवाक् वाक्पटुः ।

(५) आत्मसम्पत् पुरुषगुणपरम्परा । अभिजनात्प्रभृति कुलक्रमानुसारेण । अन्यूना अहीना । अत्रभवति त्वयि । निसर्गेति—निसर्गात् स्वभावात् पटूवी

❀ बालक्रीडा ❀

कीर्ति समस्त धरातल में फैली हुई थी । ऐसा था वह वीर पुण्यवर्मा ।

(४) उसने मनुष्य की पूर्ण (१२० वर्ष) आयु भोगी और अन्त में प्रजा के पाप वश वह स्वर्ग के देवताओं में जा मिला । उसके प्रतीकस्वरूप अनन्तवर्मा नामक पुत्र था । अनन्तवर्मा यद्यपि सब गुणों से पूर्ण था, फिर भी अभाग्य वश लोग उसकी दण्डनीति (राजनीति) का आदर नहीं करते थे । एक दिन उसके पिता द्वारा सम्मानित वृद्ध मंत्री वसुरक्षित ने अनन्तवर्मा को एकान्त में ले जाकर कहा :—

(५) 'तात ! अपने कुल के अनुसार आप में सभी गुण विद्यमान हैं । बुद्धि भी आप की स्वभावतः प्रखर है । नृत्य, गीत, चित्र तथा काव्यकला पर भी और

विस्तरा तवेतरेभ्यः प्रतिविशिष्यते । तथाप्यसावप्रतिपद्यात्मसंस्कारमर्थशास्त्रेषु, अनग्निसंशोधितेव हेमजातिर्नातिभाति बुद्धिः । बुद्धिहीनो हि भूभृदत्युच्छ्रितोऽपि परैरध्यारुह्यमाणमात्मानं न चेतयते । न च शक्तः साध्यं साधनं वा विभज्य वर्तितुम् । अयथावृत्तश्च कर्मसु प्रतिहन्यमानः स्वैः परैश्च परिभूयते न चावज्ञातस्याज्ञा प्रभवति प्रजानां योगक्षेमाराधनाय । अतिक्रान्तशासनाश्च प्रजा यत्किंचनवादिन्यो यथाकथंचिद्वर्तिन्यः सर्वाः स्थितीः

❀ बालविबोधिनी ❀

पटुः । चित्रेषु नानाविधेषु । प्राप्तविस्तरा लब्धप्रसरा । प्रतिविशिष्यते विशिष्टास्ति । असौ बुद्धिः । अप्रतिपद्य अप्राप्य । आत्मसंस्कारं वासनाम् । अर्थशास्त्रेषु दण्डनीत्यादिषु । अनग्निशोधितेति सुवर्णं यथा न शोभते तथा संस्काररहिता बुद्धिरपि न शोभत इत्यर्थः । भूभृत् राजा । अत्युच्छ्रतः अत्युन्नतः । परैः शत्रुभिः । अध्यारुह्यमाणं आक्रम्यमाणम् । चेतयते ज्ञातुं प्रभवति । शक्तः समर्थः । साध्यं कार्यम् । साधनं कारणम् । अथवा साध्यं विपक्षभूतं साधनं सपक्षभूतम् । विभज्य निर्णीय । अयथावृत्तः योग्यचरित्रहीनः । कर्मसु कार्येषु । प्रतिहन्यमानः प्रतिरुध्यमानः परिभूयते अवज्ञायते । अलब्धस्य लाभो योगः लब्धस्य संरक्षणं क्षेमस्तयोराराधनाय साधनाय । अतिक्रान्तं लङ्घितं शासनं नृपादेशो याभिस्ताः । यत्किञ्चनवादिन्यः

❀ बालक्रीडा ❀

लोगों की अपेक्षा आपकी बुद्धि को अच्छा अधिकार प्राप्त है। यह सब होने पर भी वह बुद्धि अर्थशास्त्र तक नहीं पहुँचती । इसलिये उसकी शोभा उसी तरह नहीं निखर पाती, जैसे सोना आगमें तपे विना अपनी चमक-दमक नहीं दिखा पाता । बुद्धिहीन राजा चाहे कितना ही बड़ा क्यों न हो, उसके शत्रु उसे भीतर ही भीतर खोखला कर देते हैं, किन्तु ऊपर से कुछ नहीं मालूम होता । बुद्धि के अभाव से वह अपने साध्य और साधन का भी विभाग नहीं कर पाता । जो राज्यपद के अनुकूल आचरण नहीं करता उसे अपने या पराये शत्रु एक न एक दिन अवश्य धर दबोचते हैं । ऐसी दशा में वह अपमानित हो जाता है और अपमानित राजा की आज्ञाओं का कोई मूल्य नहीं रह जाता । इसी से वह अपनी प्रजा के योगक्षेम का भी प्रबन्ध नहीं कर पाता । इस परिस्थिति में प्रजा राजा की आज्ञाओं का उल्लंघन करती हुई सभी मर्यादाओं को ठुकराकर मनमाने मार्ग से चलने

संकिरेयुः। निर्मर्यादश्च लोको लोकादितोऽमुतश्च स्वामिनमात्मानं च भ्रंशयते। आगमदीपदृष्टेन खल्वध्वना सुखेन वर्तते लोकयात्रा। दिव्यं हि चक्षुर्भूतभवद्भविष्यत्सु व्यवहितविप्रकृष्टादिषु च विषयेषु शास्त्रं नामप्रतिहतवृत्ति। तेन हीनः सतोरप्यायतविशालयोर्लोचनयोरन्ध एव जन्तुरर्थदर्शनेष्वसामर्थ्यात्। अतो विहाय बाह्यविद्यास्वभिषङ्गमागमय दण्डनीतिं

❀ बालविबोधिनी ❀

अनियन्त्रितभाषिण्यः। यथा कथञ्चिद्वर्त्तिन्यः यथेच्छं विहरन्त्यः। स्थितीर्मर्यादाः। संकिरेयुः विशृङ्खलयेयुः। इतो लोकात्। अमुतः परलोकात्। भ्रंशयति पातयति। आगमः शास्त्रमेव दीपस्तेन दृष्टेन निर्दिष्टेन। वर्त्तते सम्पद्यते। लोकयात्रा लोकस्थितिः। व्यवहिता विषयान्तरेणाच्छादिताश्च विप्रकृष्टा असन्निहितास्तेषु। अप्रतिहताऽकुण्ठिता वृत्तिः प्रसरो यस्य तत्। चक्षुषा सर्वं द्रष्टुं न प्रभवन्ति जीवाः शास्त्ररूपं दिव्यं चक्षुर्न कुत्रापि प्रतिहतं भवतीति भावः। तेन शास्त्रचक्षुषा। सतोः वर्तमानयोः। शत्रन्तादस्धातोः सप्तमीद्विवचने रूपम्। आयतविशालयोः दीर्घमहतोः। जन्तुर्जीवः। अर्थदर्शनेषु विषयज्ञानेषु। बाह्यविद्यासु नीतिविद्येतरविद्यासु। अभिषङ्गमासक्तिम्। आगमय प्रापय। आवर्जिता प्राप्ता शक्तिः सामर्थ्यं सिद्धिः कार्यसिद्धिश्च येन सः। अस्खलितशासनः अप्रतिहताज्ञः। शाधि पालयेत्यर्थः।

❀ बालक्रीडा ❀

लगती है। मर्यादाहीन जनता अपने को और अपने स्वामी को इस लोक और परलोक से भ्रष्ट कर देती है। शास्त्ररूपी दीपक के उजाले में देखकर निर्धारित किये हुए मार्ग पर चलते रहने पर बड़े आनन्द से जीवन बीतता है। शास्त्र दिव्य दृष्टि के सदृश है, जो दृष्टि वर्तमान–भूत और भविष्य तथा अज्ञान से दृष्टिगोचर न होने वाले सभी पदार्थों तक जा पहुँचती है–उसकी कहीं रुकावट नहीं है। जिसके पास यह दिव्य दृष्टि नहीं है, वह सुन्दर और बड़ी–बड़ी आँखें रहते हुए भी अन्धे के समान है। क्योंकि वह कार्य–अकार्य के विषय की विवेचना नहीं कर सकता। इसलिये अब आप बाहरी विद्याओं की ओर से आसक्ति हटाकर अपने कुल की विद्या अर्थात् दण्डनीति सीखने का कष्ट करिए। उस दण्डनीति-प्रतिपादित पथ से चलते हुए यदि आप कार्यसाधन में लगिएगा तो सभी शक्तियाँ और सभी सिद्धियाँ आपके पास दौड़ आयेंगी और शासनकार्य में कभी

कुलविद्यां तदर्थानुष्ठानेन चावर्जितशक्तिसिद्धिरस्खलितशासनः शाधि चिरमुदधिमेखलामुर्वीम्' इति ।

(६) एतदाकर्ण्य 'स्थान एव गुरुभिरनुशिष्टम् । तथा क्रियते' इत्यन्तःपुरमविशत् । तां च वार्तां पार्थिवेन प्रसङ्गेनोदीरितामुपनिशम्य समीपोपविष्टश्चित्तानुवृत्तिकुशलः प्रसादवित्तो गीतनृत्यवाद्यादिष्वबाह्यो बाह्यनारीपरायणः पटुरयन्त्रितमुखो बहुभङ्गिविशारदः परमर्मान्वेषणपरः परिहासयिता परिवादरुचिः पैशुन्यपण्डितः सचिवमण्डलादप्युत्कोचहारी सकलदुर्नयोपाध्यायः कामतन्त्रकर्णधारः कुमारसेवको विहारभद्रो नाम स्मितपूर्वं

❀ बालविबोधिनी ❀

अनुशासनार्थकशासधातोर्लोटि मध्यमपुरुषैकवचने रूपम् । उदधिः समुद्रो मेखला रशना यस्यास्तां ससागरामित्यर्थः । उर्वीं पृथ्वीम् ।

(६) स्थाने युक्तम् । प्रसादवित्तः राज्ञः प्रसादेन वित्तः प्रसिद्धः अथवा प्रसाद एव वित्तं धनं यस्य सः, राजप्रसादोपजीवीत्यर्थः । अबाह्यः बहिर्भूतो न; सर्वकलैकदेशज्ञ इत्यर्थः । बाह्यनारीपरायणो वेश्यासक्तः । अयन्त्रितमुखः असंयतमुखः—वाच्यावाच्यज्ञानहीनो बहुभाषी वा । बहुभङ्गिविशारदः वक्रोक्तिचतुरः । परस्य मर्मान्वेषणे गोप्यविषयानुसन्धाने परस्तत्परः परच्छिद्रान्वेषणपरायणो वा । परिवादरुचिः परनिन्दारसिकः । पैशुन्यं खलता तत्र पण्डितः । सचिवमण्डलात् मन्त्रिसमूहादपि

❀ बालक्रीडा ❀

कोई भूल होने का खटका नहीं रहेगा । ऐसा करके आप चिरकाल तक समुद्रवसना धरित्री का शासन करिए ।

(६) यह सुनकर अनन्तवर्मा ने कहा—'आपका उपदेश युक्तिसंगत है । मैं ऐसा ही करूंगा ।' यह कहकर वह अन्तःपुर में चला गया । रानियों के बीच में पहुँचकर प्रसंगवश उसने अपने वृद्धमंत्री के उपदेश की भी चर्चा कर दी । जिसे अनन्तवर्मा के एक सेवक विहारभद्र ने सुन लिया । क्योंकि वह भी वहीं बैठा था । विहारभद्र दूसरे का भाव भाँपने में कुशल था । राजा की उस पर कृपा रहती थी । वह नृत्य-गीत-वाद्यादि विद्याओं में निपुण, वेश्यागामी, मुँहफट, व्यंग्य बोलने में चतुर, औरों के गुप्त भेद जानने में तत्पर, परनिन्दापरायण,

व्यज्ञपयत्—

(७) 'देव, दैवानुग्रहेण यदि कश्चिद्भाजनं भवति विभूतेः, तमकस्मादुच्चावचैरुपप्रलोभनैः कदर्थयन्तः स्वार्थं साधयन्ति धूर्ताः। तथाहि—केचित्प्रेत्य किल लभ्यैरभ्युदयातिशयैराशामुत्पाद्य, मुण्डयित्वा शिरः, बद्ध्वा दर्भरज्जुभिः, अजिनेनाच्छाद्य, नवनीतेनोपलिप्य, अनशनं च शयित्वा सर्वस्वं स्वीकरिष्यन्ति। तेभ्योऽपि घोरतराः पाषण्डिनः पुत्रदारशरीरजीविता-

❀ बालविबोधिनी ❀

अन्यजनात्तु का कथा। उत्कोचहारी गुप्तरूपेण द्रव्यग्रहणपरः। कुमारसेवकः कुमारावस्थामारभ्य राज्ञः सेवकः।

(७) भाजनं पात्रम्। विभूतेः ऐश्वर्यस्य। उच्चावचैर्नानाविधैः। कदर्थयन्तो गर्हयन्तः। केचित् केचन धूर्ताः। स्वीकरिष्यन्तीत्यनेनान्वयः। प्रेत्य मरणानन्तरम्। अजिनेन मृगचर्मणा। सर्वस्वं अन्यस्य सर्वं धनम्। स्वीकरिष्यन्ति ग्रहीष्यन्ति। यज्ञदीक्षितस्य शिरो मुण्डनं कुशरज्जुभिर्वेष्टनं, मृगचर्माच्छादनमनशनञ्च प्रसिद्धमेव। तेभ्यो धूर्त्तेभ्योऽपि पाषण्डिनः भ्रष्टाः। पुत्रदारेति पुत्रदारादीन्यकिञ्चित्कराणि धर्मे एवाश्रयणीय इत्यादि कथयित्वा जनान् स्वस्वपुत्रकलत्रादीनि त्याजयन्तीति भावः। पटुजातीयः चतुरसदृशः। प्रकारवचने जातीयर् प्रत्ययः। अस्यै अनन्तरोक्तायै। मृगतृष्णिकायै मरीचिकायै। निमित्ते चतुर्थी। हस्तगतं धनमिति शेषः। तं पटुजातीयम्। अन्ये अपरे राजनीतिज्ञाः इति भावः।

❀ बालक्रीडा ❀

चुगलखोर, मन्त्रिमण्डल से भी घूस लेने वाला, दुष्टों का सरदार और कामतंत्र अर्थात् नायक-नायिका को एकत्र करने में पटु था। सब बातें सुनकर मन्द-मन्द मुसकाते हुए विहारभद्र ने कहा—

(७) महाराज! यदि भाग्यवश कोई धनी हो जाता है तो नाहक ऊँची-नीची बातें समझाकर धूर्तलोग उसका मस्तिष्क दूषित करके अपना स्वार्थ साधते हैं। कितने तो ऐसे धूर्त होते हैं कि वे किसी सीधे-सादे व्यक्ति को पाते ही अपनी बातों के चक्कर में डालकर उसके हृदय आशा उत्पन्न कराके उसका मूड मुड़ा देते, मृगचर्म की कौपीन धारण कराते और कई दिन भूखे सुलाते

न्यपि मोचयन्ति। यदि कश्चित्पटुजातीयो नास्यै मृगतृष्णिकायै हस्तगतं त्यक्तुमिच्छेत् तमन्ये परिवार्याहुः—'एकामपि काकिणीं कार्षापणलक्षमापादयेम, शस्त्रादृते सर्वशत्रून्घातयेम, एकशरीरिणमपि मर्त्यं चक्रवर्तिनं विदधीमहि यद्यस्मदुद्दिष्टेन मार्गेणाचर्यते' इति।

(८) स पुनरिमान्प्रत्याह—'कोऽसौ मार्गः' इति। पुनरिमे ब्रुवते—'ननु चतस्रो राजविद्यास्त्रयी वार्तान्वीक्षिकी दण्डनीतिरिति। तासु तिस्रस्त्रयीवार्तान्वीक्षिक्यो महत्यो मन्दफलाश्च, तास्तावदासताम्। अधीष्व ताव-

❀ बालविबोधिनी ❀

काकिणी वराटिकानां विंशतिः। पणचतुर्थांश इत्यर्थः। कार्षापणः षोडश पणाः। आपादयेम उत्पादयेम। अर्थशास्त्रबलात् एकयाऽपि काकिण्या कार्षापणलक्षमर्जयितुं प्रभवति नर इति भावः। शस्त्रादृते शस्त्रं विना। कूटनीत्या विना युद्धं शत्रुनाशो भवतीत्यर्थः। एकशरीरिणं एकाकिनं पुरुषम्। मर्त्यानां मनुष्याणां चक्रे मण्डले समूहे वा वर्त्तते प्राधान्येन चरतीति तथा। विदधीमहि कर्त्तुं शक्नुयाम। अस्मदुद्दिष्टेन अस्माभिः प्रदर्शितेन। आचर्यते अनुष्ठीयते त्वयेति शेषः।

(८) त्रयी वेदः। वार्त्ता अर्थशास्त्रम्। आन्वीक्षिकी न्यायशास्त्रम्। मन्दफलाः निष्फलप्रायाः। आसतां तिष्ठन्तु। आस् उपवेशने इत्यस्य धातोर्लोटि रूपम्।

❀ बालक्रीडा ❀

हैं। ऐसा करके एक दिन उसका सर्वस्व डकार जाते हैं। जो उन से भी प्रबल धूर्त हैं, वे तो स्त्री-पुत्र आदि में भी विलगाव कराते हुए शरीर और जीवन तक से पृथक् कराके अपना स्वार्थ साधते हैं। यदि कोई कुशल शिष्य उस धूर्त के कथनानुसार अपनी हस्तगत सम्पत्ति नहीं छोड़ना चाहता तो उसे और और भी प्रबल धूर्त आ घेरते और कहते हैं-'मैं एक कौड़ी से लाखों बना सकता हूँ। बिना शस्त्र उठाये ही सब शत्रुओं को नष्ट कर सकता हूँ। केवल एक शरीरधारी किसी भी साधारण मनुष्य को मैं चक्रवर्ती बना सकता हूँ। लेकिन यह सब तभी हो सकता है, जब कोई मेरे बताये मार्ग से चले।'

(८) उस उस धूर्त की इन लम्बी-लम्बी बातों के फेर में पड़कर यदि कोई पूछता है—'आखिर, आप का वह कौन सा मार्ग है?' इस पर वे कहते हैं 'चार

दण्डनीतिम् । इयमिदानीमाचार्यविष्णुगुप्तेन मौर्यार्थे षड्भिः श्लोकसहस्रैः संक्षिप्ता । सैवेयमधीत्य सम्यगनुष्ठीयमाना यथोक्तकर्मक्षमा' इति ।

(६) स 'तथा' इत्यधीते । शृणोति च । तत्रैव जरां गच्छति । तत्तु किल शास्त्रं शास्त्रान्तरानुबन्धि । सर्वमेव वाङ्मयमविदित्वा न तत्त्वतोऽधिगंस्यते । भवतु कालेन बहुनाल्पेन वा तदर्थाधिगतिः । अधिगतशास्त्रेण

❀ बालविबोधिनी ❀

इयं दण्डनीतिः । आचार्यविष्णुगुप्तेन चाणक्येन । मौर्यार्थे चन्द्रगुप्तकृते । अनुष्ठीयमाना आचर्यमाणा । यथोक्तकर्मक्षमा पूर्वप्रतिपादितकार्यकरणसमर्था ।

(९) तथा तथैवास्तु । तत्रैव दण्डनीत्यध्ययने । जरां गच्छति—वृद्धत्वं प्राप्नोति । शास्त्रान्तरानुबन्धि-अन्यशास्त्रापेक्षि । वाङ्मयं शास्त्रम् । तत्त्वतो याथातथ्येन । अधिगंस्यते-सम्यग् ज्ञानं भविष्यति । तदर्थाधिगतिः-तदर्थबोधः । अधिगतं सम्यग् ज्ञातं शास्त्रं येन तेन; जनेनेति शेषः । आदावेव प्रथममेव । विश्वास्यं विश्वसनीयम् । आत्मकुक्षेः स्वोदरस्य । कृते निमित्तम् । इयद्भिः इयत्परिमाणैः ।

❀ बालक्रीडा ❀

प्रकार की राजविद्यायें होती हैं, त्रयी (ऋग् यजुः साम तीनों वेद) वार्ता (कृष्यादि कर्म) आन्वीक्षिकी (तर्कशास्त्र) और दण्डनीति (अर्थशास्त्र) । इनमें तीन विद्यायें बड़े परिश्रम से प्राप्त होती हैं और इनका फल भी साधारण ही होता है । इसलिए उनकी कोई आवश्यकता नहीं । तुम उनको त्यागकर केवल दण्डनीति का अध्ययन करो । इस विद्या को आचार्य विष्णुगुप्त (चाणक्य) ने अपने शिष्य चन्द्रगुप्त के लिए केवल ६ हजार श्लोकों में रच दिया था । बस, इसे तुम पढ़ लो और इसके अनुसार चलो तो तुम जो चाहोगे सो कर लोगे ।'

(९) इस पर जब वह शिष्य कह देता कि 'मैं ऐसे ही करूंगा' और इस कौल के अनुसार वह पढ़ने-सुनने लग जाता तो केवल दण्डनीति का मंथन करते करते वह वृद्ध हो जाता है । फिर भी उसके पल्ले कुछ भी नहीं पड़ता । जब वह कुछ घबड़ाता तो वह धूर्त समझाता हुआ कहता है—'देखो, एक शास्त्र का सम्बन्ध दूसरे शास्त्रों से लगा रहता है । जबतक तुम सब शास्त्र न पढ़ लोगे तब तक दण्डनीति का आशय समझमें आवेगा कैसे ?' अच्छा, कुछ समय माथा मारने

चादावेव पुत्रदारमपि न विश्वास्यम् । आत्मकुक्षेरपि कृते तण्डुलैरियद्भिरियानोदनः संपद्यते । इयत ओदनस्य पाकायैतावदिन्धनं पर्याप्तमिति मानोन्मानपूर्वकं देयम् । उत्थितेन च राज्ञा क्षालिताक्षालिते मुखे मुष्टिमर्धमुष्टिं वाभ्यन्तरीकृत्य कृत्स्नमायव्ययजातमह्नः प्रथमेऽष्टमे वा भागे श्रोतव्यम् । शृण्वत एवास्य द्विगुणमपहरन्ति तेऽध्यक्षधूर्ताश्चत्वारिंशतं चाणक्योपदिष्टानाहरणोपायान्सहस्रधात्मबुद्धयैव ते विकल्पयितारः ।

❀ बालविबोधिनी ❀

इयान् इयत्परिमाणः । इयतः इयत्परिमाणस्य ! एतावत् एतत्परिमाणम् । इन्धनं काष्ठम् । मानः प्रस्थादिकृतः । उन्मानं तुलादण्डकृतः । तत्पूर्वकम् । प्रस्थेन तुलया वा परिमाप्येति भावः । उत्थितेन शय्याया इति शेषः । क्षालिताक्षालिते–कार्यत्वरया किञ्चित् क्षालिते किञ्चिदक्षालिते मुखे–इत्यस्य विशेषणम् । अभ्यन्तरीकृत्य निक्षिप्य गिलित्वेति भावः । शृण्वत इति अनादरे षष्ठी । शृण्वन्तं तमनादृत्य तस्यैव समक्षमित्यर्थः । अध्यक्षधूर्त्ताः धूर्त्ताः अधिकारिणः । चत्वारिंशतमित्यादि–चाणक्येन चत्वारिंशत्संख्यका एवाहरणोपाया उपदिष्टास्ते तु स्वबुद्धिबलेन सहस्रप्रकारानाहरणोपायान् कल्पयेयुरित्यर्थः ।

❀ बालक्रीडा ❀

से दण्डनीति थोड़ी–बहुत समझ में आयी भी तो उस शास्त्र का पहला उपदेश यह होता है कि अपने पुत्र और अपनी स्त्री पर भी विश्वास न करो । एक आदमी का पेट भरने के लिए इतने चावल से इतना भात तैयार हो सकता है । इतना चावल पकाने के लिए इतना ईंधन पर्याप्त होगा । इसलिए ठीक उतना ही चावल और ईंधन तौल–नाप कर रसोइए को देना चाहिए । राजा सोकर उठते ही मुंह धोये हो या नहीं, मुट्ठी-आधी मुट्ठी अन्न पेट में डाल कर सूर्योदय होने के साथ ही उस दिन का सब आय–व्यय समझे । वे मूढ़ राजे आय–व्यय समझते रहते ही हैं और उनके धूर्त अधिकारी उस से दुगुनी रकम खा जाते हैं । औरों के धन ऐंठने की चार विधि चाणक्य मुनिने बतायी है, किन्तु वे धूर्त अपनी बुद्धि से हजारों उपाय ढूँढ़ निकालते हैं ।

(१०) द्वितीयेऽन्योन्यं विवदमानानां जनानामाक्रोशाद्दह्यमानकर्णः कष्टं जीवति । तत्रापि प्राड्विवाकादयः स्वेच्छया जयपराजयौ विदधानाः, पापेनाकीर्त्या च भर्तारमात्मनश्चार्थैर्योजयन्ति । तृतीये स्नातुं भोक्तुं च न लभते । भुक्तस्य यावदन्धःपरिणामस्तावदस्य विषभयं न शाम्यत्येव । चतुर्थे हिरण्यप्रतिग्रहाय हस्तं प्रसारयन्नेवोत्तिष्ठति । पञ्चमे मन्त्रचिन्तया महान्तमायासमनुभवति । तत्रापि मन्त्रिणो मध्यस्था इवान्योन्यं संभूय, दोषगुणौ दूतचारवाक्यानि शक्याशक्यतां देशकालकार्यावस्थाश्च स्वेच्छया

❀ बालविबोधिनी ❀

(१०) द्वितीये दिवसस्य द्वितीयभागे । आक्रोशात् चीत्कारशब्दात् । प्राड्विवाकः व्यवहारद्रष्टा जज् इति भाषा । पापेनेत्यादि—पापेन निन्दया च भर्त्तारं स्वामिनं योजयन्ति आत्मनः स्वान् अर्थैर्धनैर्योजयन्ति । तृतीये तृतीयभागे । अन्धसामन्नानां परिणामः परिपाकः । विषभयमिति । नृपस्य विनाशाय शत्रवोऽन्नेन सह विषप्रदानं कुर्वन्तीति प्रसिद्धम् । हिरण्यप्रतिग्रहाय प्रजाभ्यो धनग्रहणाय । मन्त्रचिन्तया अमात्यैः सह मन्त्रणायाम् । आयासं क्लेशम् । मध्यस्था उदासीनाः । सम्भूय मिलित्वा । दोषगुणावित्यादि द्वितीयान्तपदानि विपरिवर्त्तयन्त इत्यस्य

❀ बालक्रीडा ❀

(१०) आपस में झगड़ते हुए जनसमुदाय के स्पर्धाभरे (गाली-गलौज) वाक्य अलग सुनने पड़ते हैं । उन कटुवाक्यों को सुनकर उस सीधे-सादे राजा के कान पक जाते हैं । इस प्रकार बड़े कष्ट के साथ बेचारा अपने जीवन के दिन विताता है । दूसरे ने धूर्त अपने मन से झूठ-मूठ के झगड़े खड़े करके जय-पराजय की वात गढ़कर विविध पाप और अपयश के कार्य करते हुए अपने मूढ़ प्रभु को वदनाम करके अपनी ज़ेवें भरते हैं । तीसरे नित्य व्यग्र रहने के कारण राजा को नहाने-खाने का भी अवकाश नहीं मिलता । यदि भोजन भी मिलता तो जब तक वह पच नहीं जाता, तब तक यह भय भी बना रहता है कि कहीं किसी ने जहर न दे दिया हो । चौथे नित्य धन ग्रहण की इच्छा को लिये हुए ही सोते से उठाना पड़ता है । पाँचवें सलाह-बात की चिन्ता से बड़ा क्लेश भोगते रहना पड़ता है । तिस पर भी मन्त्री लोग मध्यस्थ बनकर दूतों और गुप्तचरों की

विपरिवर्तयन्तः, स्वपरमित्रमण्डलान्युपजीवन्ति । बाह्याभ्यन्तरांश्च कोपान्गूढमुत्पाद्य प्रकाशं प्रशमयन्त इव स्वामिनमवशमवगृह्णन्ति ।

(११) षष्ठे स्वैरविहारो मन्त्रो वा सेव्यः । सोऽस्यैतावान्स्वैरविहारकालो यस्य तिस्रस्त्रिपादोत्तरा नाडिकाः । सप्तमे चतुरङ्गबलप्रत्यवेक्षणप्रयासः । अष्टमेऽस्य सेनापतिसखस्य विक्रमचिन्ताक्लेशः । पुनरुपास्यैव संध्याम्, प्रथमे रात्रिभागे गूढपुरुषा द्रष्टव्याः । तन्मुखेन चातिनृशंसाः शस्त्राग्निरसप्रणिधयोऽनुष्ठेयाः । द्वितीये भोजनानन्तरं श्रोत्रिय इव स्वा-

❀ बालविबोधिनी ❀

कर्माणि । विपरिवर्त्तयन्तः विपर्यासयन्तः । दोषं गुणरूपेण गुणं च दोषरूपेणेत्यर्थः । दूतचारवाक्यादीन्यपि तथैव । स्वपरेति स्वस्य परस्य मित्राणाञ्च मण्डलानि उपजीवन्ति । आश्रयन्ते तेभ्योऽपि धनं गृह्णन्ति । बाह्यान् प्रजाः, आभ्यन्तरान् अमात्यादींश्च । प्रशमयन्तः शान्तिं प्रापयन्तः । अवगृह्णन्ति अनाद्रियन्ते ।

(११) स्वैरविहारः स्वच्छन्दविहरणम् । त्रिपादोत्तराः त्रिपादधिकाः । नाडिकाः घटिकाः । चतुरङ्गबलस्य हस्त्यश्वरथपदातिलक्षणस्य प्रत्यवेक्षणं परीक्षणं तस्य प्रयासः क्लेशः । सेनापतिसखस्य सैन्याध्यक्षेण सहेत्यर्थः । शस्त्राग्नीति—

❀ बालक्रीडा ❀

बातों के विविध गुण-दोष, सबलता-निर्बलता और देश-काल की अवस्था में मनमाने परिवर्तन करके अपना और अपने मित्रों का कार्य साधन करते हैं। बाहर-भीतर की ओछी बातें सुना-सुना कर वे राजा को कुपित कर देते हैं, किन्तु ऊपर-ऊपर से कोप को शान्त करने का उपक्रम बाँधते हुए राजा को सर्वदा अपनी मुट्ठी में किये रहते हैं।

(११) छठी बात यह है कि स्वेच्छापूर्वक विहार या सलाह-बात का झमेला इन दोनों में एक ही सध सकता है। उन धूर्त मन्त्रियों की योजना के अनुसार दो-तीन घड़ी से अधिक स्वेच्छा विहार का अवसर नहीं मिलता। सातवें सदा अपनी चतुरंगिणी सेना पर निगाह रखने का प्रयास करते रहना पड़ता है। आठवें राजाके लिये यह आवश्यक रहता है कि वह अपने सेनापति को मित्र बनाये रहे और अपना बल बढ़ाने की नई योजनायें सोचा करे। शाम को सन्ध्या-वन्दन

ध्यायमारभेत । तृतीये तूर्यघोषेण संविष्टश्चतुर्थपञ्चमौ शयीत किल । कथमिवास्याजस्रचिन्तायासविह्वलमनसो वराकस्य निद्रासुखमुपनमेत । पुनः षष्ठे शास्त्रचिन्ताकार्यचिन्तारम्भः । सप्तमे तु मन्त्रग्रहो दूताभिप्रेषणानि च । दूताश्च नामोभयत्र प्रियाख्यानलब्धान् अनर्थान् वीतशुल्कबाधवर्त्मनि वाणिज्यया वर्धयन्तः, कार्यमविद्यमानमपि लेशेनोत्पाद्यानवरतं भ्रमन्ति ।

(१२) अष्टमे पुरोहितादयोऽभ्येत्यैनमाहुः—'अद्य दृष्टो दुःस्वप्नः ।

❀ बालविबोधिनी ❀

शस्त्रेण अग्निना रसेन विषेण च हन्तारः प्रणिधयो गुप्तदूताः । अनुष्ठेयाः कर्त्तव्याः प्रयोज्या इति भावः । तूर्यघोषेण नृपस्य शयनसमयसूचकेन वाद्यध्वनिना । संविष्टः शयितः । उपनमेत समीपमागच्छेत् । उभयत्र येन प्रेषितो यदन्तिकं प्रेषितश्च । वीतशुल्केति—वीता राजकीयपुरुषोऽयमिति कृत्वा अपगता शुल्कस्य भाषायां मासूल् इति ख्यातस्य बाधा यत्र तादृशे वर्त्मनि मार्गे । लेशेन कपटेन ।

(१२) दुःस्थाः निकृष्टस्थानस्थिताः अनिष्टकारका इति भावः । होमसाधनं

❀ बालक्रीडा ❀

से निवृत्त होकर रात के प्रथम पहर में ही गुप्तचरों का कार्यकलाप देखे । उनके द्वारा नृशंसव्यक्तियों के शस्त्रप्रहार, अग्निप्रयोग या विष देने वाले पापियों की गूढ़ योजना का प्रतीकार करे । जैसे ही भोजन से निवृत्त हो, उसी समय वेदपाठी ब्राह्मण के समान शास्त्र के पोथे लेकर उनका पारायण करे । संगीत और तुड़ही आदि के कोलाहल में केवल चार-पाँच घड़ी सोनेको मिलता है । इस तरह नित्य चिन्ता और क्लेश के वातावरण में जिसका मन व्याकुल रहेगा, उस वेचारे को क्या कभी सुख की नींद मिल सकती है ? सोकर उठे तैसे ही फिर वही शास्त्र और कार्य की चिन्ता का वोझ धर दवाता है । मंत्रियों से सलाह-वात करके दूत भेजने आदि के झमेले खड़े दीखते हैं । वे दूत दोनों पक्षवालों से चिकनी-चुपड़ी बातें करके कहीं से कोई रकम ऐंठते और कहीं किसी चीज का महसूल माफ कराके उसी वस्तु का व्यापार करके अपना कार्य साधन करते फिरते हैं । वास्तव में उनकी कोई आवश्यकता नहीं रहती, पर नन्हीं-नन्हीं वातों को बढ़ा-वढ़ा कर वे अपने लिए नित्य नयी आवश्यकता पैदा कर लिया करते हैं ।

(१२) इनके अतिरिक्त पुरोहित आदि आकर कहते हैं—'आज मैंने एक

दुःस्था ग्रहाः शकुनानि चाशुभानि। शान्तयः क्रियन्ताम्। सर्वमस्तु सौवर्णमेव होमसाधनम्। एवं सति कर्म गुणवद्भवति। ब्रह्मकल्पा इमे ब्राह्मणाः। कृतमेभिः स्वस्त्ययनं कल्याणतरं भवति। ते चामी कष्टदारिद्र्या बह्वपत्या यज्वानो वीर्यवन्तश्चाद्याप्यप्राप्तप्रतिग्रहाः। दत्तं चैभ्यः स्वर्ग्यमायुष्यमरिष्टनाशनं च भवति' इति बहु बहु दापयित्वा तन्मुखेन स्वयमुपांशु भक्षयन्ति। तदेवमहर्निशमविहितसुखलेशमायासबहुलमविरलकदर्थनं च नयतोऽनयज्ञस्यास्तां चक्रवर्तिता स्वमण्डलमात्रमपि दुरारक्ष्यं भवेत्। शास्त्रज्ञसमज्ञातो

❀ बालविबोधिनी ❀

हवनसामग्री। एवं सति—सौवर्णे होमसाधने सतीत्यर्थः। कर्म यज्ञादि। गुणवत् सार्थकम्। स्वस्त्ययनं शान्त्यादिकम्। कष्टं दारिद्र्यं। बहूनि अपत्यानि येषां ते तथा। अप्राप्तः अद्यापि न लब्धः प्रतिग्रहो दानादिकं यैस्ते। उपांशु गूढमिति भावः। अविरला घना कदर्थना निन्दा यत्र तद् यथा तथा। नयतः जीवनं यापयतः। आस्तां तिष्ठतु। शास्त्रज्ञेति—नीतिशास्त्रज्ञोऽयमिति या समज्ञा

❀ बालक्रीडा ❀

बहुत बुरा स्वप्न देखा है। इस समय आप के ग्रह खराब स्थानों में पड़े हैं। शकुन अच्छे नहीं दिखायी देते। यज्ञ द्वारा इन अनिष्टों की शान्ति की जानी चाहिए। यज्ञकार्य के सभी पात्र सुवर्ण के होने चाहियें। क्योंकि ऐसा करने से किया हुआ कर्म शीघ्र कार्य सिद्ध कर देता है। ब्राह्मण परमात्मा के स्वरूप हैं। ये यदि आपकी कल्याणकामना करेंगे तो सब तरह से कल्याण होगा। ये ब्राह्मण बेचारे असह्य दारिद्र्य भोग रहे हैं। इनके अनेक बाल-बच्चे हैं। ये नित्य यज्ञ करते हैं अतएव इनका तेज भी साधारण नहीं है। ये किसी का प्रतिग्रह नहीं लेते। जो लोग इनको पूजते हैं, उन्हें परलोक में स्वर्ग मिलता, आयु बढ़ती और सब अनिष्ट शान्त हो जाया करते हैं।' इस प्रकार प्रशंसा करके उन विप्रों को बहुत-सा धन दिला देते और बाद में उन से छीन कर स्वयं हड़प जाया करते हैं। इस तरह अहर्निशि सुख से दूर रह, प्रबल परिश्रम कर और दुनिया भर की भलाई-बुराई ढोनेवाला नीतिज्ञान से शून्य पुरुष चक्रवर्ती तो क्या होगा, अपने राज्य की रक्षा करने की सामर्थ्य भी उस में नहीं रह सकती। उसके मन्त्री आदि धूर्त सेवक

हि यद्दाति, यन्मानयति, यत्प्रियं ब्रवीति, तत्सर्वमभिसंधातुमित्यविश्वासः । अविश्वास्यता हि जन्मभूमिरलक्ष्म्याः । यावता च नयेन विना न लोकयात्रा स लोकत एव सिद्धः नात्र शास्त्रेणार्थः । स्तनंधयोऽपि हि तैस्तैरुपायैः स्तनपानं जनन्या लिप्सते तदपास्यातियन्त्रणामनुभूयन्तां यथेष्टमिन्द्रियसुखानि ।

(१३) येऽप्युपदिशन्ति 'एवमिन्द्रियाणि जेतव्यानि, एवमरिषड्वर्गस्त्याज्यः, सामादिरुपायवर्गः स्वेषु परेषु चाजस्रं प्रयोज्यः, संधिविग्रह-

❀ बालविबोधिनी ❀

कीर्त्तिस्तस्या इति पञ्चम्यास्तसिल् । अभिसन्धातुं जनान् वञ्चयितुम् । अविश्वासो जनानामुत्पद्यते इति शेषः । यावता यत्परिमाणेन । अर्थः प्रयोजनम् । जनन्या इत्यत्र पञ्चमी विभक्तिः । लिप्सते लब्धुमिच्छति । अपास्य दूरीकृत्य । अतियन्त्रणां अत्यर्थनिपीडनं नीतिशास्त्रस्येति शेषः ।

(१३) अरिषड्वर्गः कामक्रोधादयः । इत्यन्तं उपदिशन्तीत्यस्य कर्म । मन्त्रिवकैः निकृष्टमन्त्रिभिः । दासीगृहेषु परस्त्रीष्वित्यर्थः । एते उपदेशकाः । के

❀ बालक्रीडा ❀

जो शास्त्रसम्मत बातें कहते, दिखावे के लिए राज्य को कुछ लाभ करा देते, राजा का सम्मान करते या मीठी-मीठी बातें करते हैं, यह सब कार्य उस भोले-भाले राजा को ठगने का आडम्बरमात्र रहता है। इस लिए उन पर विश्वास नहीं किया जा सकता । जहां विश्वास नहीं होगा, वहां दरिद्रता का आना निश्चित सा रहता है। जितनी नीति के विना जीवन निर्वाह नहीं हो सकता, उतनी नीति तो लोकव्यवहार से अपने आप आ जाती है। उसके लिए शास्त्र की आवश्यकता नहीं पड़ती। दूध पीने वाला बच्चा भी किसी न किसी उपाय से अपनी माता का दूध पीना चाहता है। यद्यपि उसे सब तरह से दुखी रहना पड़ता है, फिर भी इन्द्रियजनित सुखों का अनुभव तो करता ही है।

(१३) जो लोग उपदेश देते हुए कहते हैं कि 'इस प्रकार इन्द्रियों को वश में करो, इस प्रकार काम-क्रोध आदि छहों शत्रुओं को त्यागो, अपने-पराये सब लोगों के साथ सदा साम-दानादि उपायों को व्यवहार में लाओ । 'सर्वदा सन्धि-

चिन्तयैव नेयः कालः, स्वल्पोऽपि सुखस्यावकाशो न देयः' इति। तैरप्येभिर्मन्त्रिबकैर्युष्मत्तश्चौर्यार्जितं धनं दासीगृहेष्वेव भुज्यते। के चैते वराकाः। येऽपि मन्त्रकर्कशास्तन्त्रकर्तारः शुकाङ्गिरसविशालाक्षबाहुदन्तिपुत्रपराशरप्रभृतयस्तैः किमरिषड्वर्गो जितः, कृतं वा तैः शास्त्रानुष्ठानम्। तैरपि हि प्रारब्धेषु कार्येषु दृष्टे सिद्ध्यसिद्धी। पठन्तश्चापठद्भिरतिसंधीयमाना बहवः।

❀ बालविबोधिनी ❀

उपदेष्टुं नाधिकारिणः। मन्त्रकर्कशाः नीतिकठोराः। तन्त्रकर्त्तारः नीतिशास्त्रप्रणेतारः। शुक्रः शुक्राचार्यः, आङ्गिरसो बृहस्पतिः, विशालाक्षस्तन्नामधेयो नीतिशास्त्रकारः, बाहुदन्तिपुत्रोऽपि, पराशरः पराशरनीतिकारः। सिद्ध्यसिद्धी क्वचित् सिद्धिः क्वचिच्चासिद्धिः। पठन्त इति—ये पठनविमुखास्ते पठतो जनान् प्रतारयन्तीत्यर्थः। उपपन्नं सङ्गतं प्राप्तमिति यावत्। देवस्य भवतः। अयातयामं नवम्। दर्शनीयं मनोहरम्। सर्वैरित्यादि तृतीयान्तपदानि तन्त्रावापेनेत्यस्य विशेषणानि। सुखेति—सुखभोगविरोधिना। बहुमार्गेति—नानापथविमर्शनात्। अमुक्तसंशयेन संशययुक्तेन। तन्त्रः स्वराष्ट्रचिन्ता, आवापः परचिन्ता। कोशगृहाणि धनागाराणि। रेचयिष्यति शून्यीकरिष्यति। किमिदमिति—इदं एतत्सर्वं अपर्याप्तमसम्पूर्णं किं?

❀ बालक्रीडा ❀

विग्रह आदि की बात सोचते हुए ही कालयापन करो। क्षण भर भी मौज करने की बात न सोचो।' वे ही मन्त्रीरूपी बगुले आप के पास से चोरी करके प्राप्त किये हुए धन को वेश्याओं के घरों में भरते हुए मजे लूटते हैं। ये बेचारे कौन हैं? ये वे ही हैं, जो मन्त्रणा देने में बड़े कुशल और बड़े-बड़े शास्त्रों के रचयिता हैं। इनमें शुक्र, आङ्गिरस, विशालाक्षि, बाहुदन्तिपुत्र, पराशर आदि मुख्य हैं। क्या इन लोगों ने काम-क्रोध आदि पर विजय पा ली थी? क्या वे लोग शास्त्रप्रतिपादित मार्ग से चलते थे? क्या उन्होंने अपने प्रारम्भ किये हुए कार्यों की सिद्धि या असिद्धि पहले से ही देख ली थी? इन पढ़े-लिखे धूर्तों ने बहुतेरे अनपढ़ लोगों को अपना अनुयायी बना लिया है। क्या यह आप को उचित जान पड़ता है कि सारे संसार की वन्दनीय जाति, सुन्दर शरीर, अपरिमित सम्पत्ति, यह सब उन अविश्वसनीय मन्त्रियों के भुलावे में आकर छोड़ दिया

नन्विदमुपपन्नं देवस्य, यदुत सर्वलोकस्य वन्द्या जातिः, अयातयामं वयः, दर्शनीयं वपुः, अपरिमाणा विभूतिः । तत्सर्वं सर्वाविश्वासहेतुना सुखोपभोगप्रतिबन्धिना बहुमार्गविकल्पनात्सर्वकार्येष्वमुक्तसंशयेन तन्त्रावापेन मा कृथा वृथा । सन्ति हि ते दन्तिनां दश सहस्राणि, हयानां लक्षत्रयम्, अनन्तं च पादातम् । अपि च पूर्णान्येव हैमरत्नैः कोशगृहाणि । सर्वश्चैष जीवलोकः समग्रमपि युगसहस्रं भुञ्जानो न ते कोष्ठागाराणि रेचयिष्यति । किमिदमपर्याप्तं यदन्यार्जितायासः क्रियते । जीवितं हि नाम जन्मवतां चतुःपञ्चाप्यहानि । तत्रापि भोगयोग्यमल्पाल्पं वयःखण्डम् । अपण्डिताः पुनर्जयन्त एव ध्वंसन्ते । नार्जितस्य वस्तुनो लवमप्यास्वादयितुमीहन्ते ।

(१४) किं बहुना राज्यभारं भारक्षमेष्वन्तरङ्गेषु भक्तिमत्सु समर्प्य,

❀ बालविबोधिनी ❀

नैवेत्यर्थः । अन्यार्जितं परकीयधनं तदर्थं आयासः क्लेशो युद्धादिनेति शेषः । जन्मवतां प्राणिनाम् । अल्पाल्पमत्यल्पम् । वयःखण्डमायुर्भागः । अपण्डिताः मूर्खाः । जयन्त एव ध्वंसन्ते जित्वाऽपि नाशमायान्ति ।

(१४) भारक्षमेषु राज्यपालनसमर्थेषु । अन्तरङ्गेषु अमात्येषु । यथर्तु ऋतु-

❀ बालक्रीडा ❀

जाय और सब सुख त्यागकर स्वपरराष्ट्र के विषय में चिन्तन करते हुए ही समय विताया जाय ? ऐसा न कीजिए महाराज ! आप के पास दस हजार हाथी हैं, तीन लाख घोड़े हैं और अगणित पैदल सेनायें हैं । आप का खजाना सुवर्ण और रत्नों से भरा हुआ है । यदि हजारों युग भी आप की छाया में रहने वाले सब लोग बैठकर भोजन करें तो भी आपका कोष खाली नहीं होगा । क्या इतना धन कम है, जो और अर्जन करने का व्यर्थ प्रयास किया जाय ? प्रत्येक मनुष्य का जीवन केवल चार दिन की चाँदनी है । उस में भी भोग करने योग्य समय तो और भी कम रहता है । मूर्ख लोग जन्मते ही मर जाते हैं । वे लोग अपनी कमाई हुई सम्पत्ति में से कुछ भी नहीं भोगना चाहते ।

(१४) आप को मैं कहाँ तक समझाऊँ ? राज्य का भार अपने उन अन्तरङ्ग साथियों पर डाल कर कि जो आप पर श्रद्धा रखते हुए राज-काज

अप्सरःप्रतिरूपाभिरन्तःपुरिकाभी रममाणो गीतसंगीतपानगोष्ठीश्च यथर्तु बध्नन्यथार्हं कुरु शरीरलाभम्' इति पञ्चाङ्गीमृष्टभूमिरञ्जलिचुम्बितचूडश्चिरमशेत। प्राहसीच्च प्रीतिफुल्ललोचनोऽन्तःपुरप्रमदाजनः।

(१५) जननाथश्च सस्मितम् 'उत्तिष्ठ, ननु हितोपदेशाद्गुरवो भवन्तः। किमिति गुरुत्वविपरीतमनुष्ठितम्' इति तमुत्थाप्य क्रीडानिर्भरमतिष्ठत्। अथैषु दिनेषु भूयोभूयः प्रस्तुतेऽर्थे प्रेर्यमाणो मन्त्रिवृद्धेन, वचसाभ्युपेत्य मनसैवाचित्तज्ञ इत्यवज्ञातवान्।

❀ बालविबोधिनी ❀

मनतिक्रम्य कालानुरूपमित्यर्थः। बध्नन् कुर्वन्। यथार्हं सार्थकम्। शरीरलाभं जन्म। पञ्चाङ्गेति—जानुद्वयं बाहुद्वयं मूर्द्धा चेति पञ्चाङ्गानि तेषां समाहारः पञ्चाङ्गी तया पञ्चभिरङ्गैरित्यर्थः—मृष्टा स्पृष्टा भूमिर्येन सः, अञ्जलिना चुम्बिता चूडा मौलिर्येन सः। तथाविधो विहारभद्रः। चिरं दीर्घकालं यावत्, अशेत भूमौ पतितोऽतिष्ठत्।

(१५) जननाथो राजा अनन्तवर्मा। गुरुत्वविपरीतं दण्डवत्प्रणामकरणमित्यर्थः। प्रस्तुते उपदिष्टे। अर्थे विषये। अभ्युपेत्य स्वीकृत्य। अवज्ञातवान् मन्त्रिवृद्धमिति शेषः।

❀ बालक्रीडा ❀

सम्हालनेमें समर्थ हों। इसके बाद अप्सराओं के सदृश अन्तःपुर की सुन्दरियों के साथ विहार करते हुए गायन-वाद्य आदि सङ्गीत तथा पानशाला के जमावड़े में बैठकर ऋतु के अनुकूल सुखों का उपभोग करते हुए जीवन का आनन्द लीजिए।' ऐसा कह और हाथ जोड़कर अपने पाँचों अङ्गों से अवनितल का स्पर्श करता हुआ वह लेट गया। उस के वचन सुनकर अन्तःपुर की सब स्त्रियाँ गद्गद होकर हँसने लगीं।

(१५) महाराज भी मुसकाते हुए उठ खड़े हुए और कहने लगे—'उठिए, आप यह क्या करते हैं? हम को नेक सलाह देनेवाले आप लोग गुरुजन हैं। और गुरुजन अपने शिष्यों के समक्ष ऐसा नहीं किया करते।' ऐसा कहकर उन्होंने उठाया और उस के साथ-साथ स्वयं भी बैठ गये। उन्हों ने अपने मन में सोचा कि 'इन दिनों मुझे जो मन्त्री जी बार-बार प्रस्तुत अर्थ के विषय में सलाह दे रहे हैं, यह उन्हीं बातों को सुनकर उसका कुछ आशय समझे बिना ही बड़बड़ा रहा है।' इसलिए उन्हों ने उस की बात का कुछ ख्याल नहीं किया।

(१६) अथैवं मन्त्रिणो मनस्यभूत्—'अहो मे मोहाद्बालिश्यम्। अरुचितेऽर्थे चोदयन्नर्थीवाक्षिगतोऽहमस्य हास्यो जातः। स्पष्टमस्य चेष्टानामायथापूर्व्यम्। तथा हि—न मां स्निग्धं पश्यति, न स्मितपूर्वं भाषते, न रहस्यानि विवृणोति, न हस्ते स्पृशति, न व्यसनेष्वनुकम्पते, नोत्सवेष्वनुगृह्णाति, न विलोभनवस्तु प्रेषयति, न मत्सुकृतानि प्रगणयति, न मे गृहवार्तां पृच्छति, न मत्पक्षान्प्रत्यवेक्षते, न मामासन्नकार्येष्वभ्यन्तरीकरोति, न मामन्तःपुरं प्रवेशयति। अपि च मामनर्हेषु कर्मसु नियुङ्क्ते,

❀ बालविबोधिनी ❀

(१६) बालिश्यं मूर्खता। अरुचिते अनभीष्टे। अर्थी याचकः। अक्षिगतो द्वेष्यः। हास्यः परिहासविषयः। अयथापूर्व्यं पूर्वापरवैपरीत्यं, यथापूर्वं न भवतीति अयथापूर्वं तस्य भावः तथा। पूर्वं यथासीदिदानीं न तथेति भावः। रहस्यानि सङ्गोपनीयानि। विवृणोति प्रकाशयति। व्यसनेषु मम विपत्सु। अनुगृह्णाति मयि अनुग्रहं प्रकाशयति। आसन्नकार्येषु उपस्थितकर्मसु। अभ्यन्तरीकरोति नियोजयति। अनर्हेषु अयोग्येषु। अवष्टभ्यमानमाक्रम्यमाणम्। अनुजानाति अनुमोदते। विश्रम्भं विश्वासम्। प्रतिक्षिपति निषेधति। नयज्ञानां नीति-

❀ बालक्रीडा ❀

(१६) उधर मन्त्री ने अपने मन में सोचा—'अहो! मैं भी कितनी मूर्खता कर रहा हूँ, जो बार-बार राजा से अरुचिकर बातें कहता हूँ। मेरे बार बार ऐसा करने से वह भी मुझे भिक्षुक समझने लगा है और मेरी हँसी उड़ाता है। इस का जैसा व्यवहार पहले मेरे साथ होता था, वैसा अब नहीं है। अब मुझे स्नेह भरी निगाह से नहीं देखता। मुस्कराकर मुझसे बातें नहीं करता। अपने मन की बात नहीं बताता। मुझे हाथ से छूता भी नहीं। मुझे तकलीफ में देखकर दया नहीं दिखाता। मेरे यहाँ कोई उत्सव होता है तो उस में भाग नहीं लेता। कोई सुन्दर वस्तु सौगात में नहीं भेजता। मेरे उपकारों को नहीं गिनता और न मेरे घर का हाल-चाल पूछता है। मेरे पक्षवालों की ओर नहीं निहारता। अब तो वह अपना कोई निजी काम भी नहीं सौंपता और न अपने अन्तःपुर में ही भेजता है। अब वह मुझे अयोग्य कामों में लगाता है। दूसरे लोग मेरा पद

मदासनमन्यैरवष्टभ्यमानमनुजानाति, मद्वैरिषु विश्रम्भं दर्शयति, मदुक्तस्योत्तरं न ददाति, मत्समानदोषान्विगर्हति, मर्मणि मामुपहसति, स्वमतमपि मया वर्ण्यमानं प्रतिक्षिपति, महार्हाणि वस्तूनि मत्प्रहितानि नाभिनन्दति, नयज्ञानां स्खलितानि मत्समक्षं मूर्खैरुद्घोषयति । सत्यमाह चाणक्यः—'चित्तज्ञानानुवर्तिनोऽनर्था अपि प्रियाः स्युः । दक्षिणा अपि तद्भावबहिष्कृता द्वेष्या भवेयुः' इति । तथापि का गतिः । अविनीतोऽपि न परित्याज्यः पितृपैतामहैरस्मादृशैरयमधिपतिः । अपरित्यजन्तोऽपि कमुपकारमश्रूयमाणवाचः कुर्मः । सर्वथा नयज्ञस्य वसन्तभानोरश्मकेन्द्रस्य हस्ते राज्यमिदं पतितम् । अपि नामापदो भाविन्यः प्रकृतिस्थमेनमापाद-

❀ बालविबोधिनी ❀

विदाम् । स्खलितानि दोषान् । चित्तज्ञानेत्यादि—अनर्था अपि यदि दुर्जनानां स्वमतानुकूलाः स्युस्तर्हि प्रिया एव । दक्षिणा अनुकूलाः सरला वा यदि तद्भावविरुद्धास्तदा तेऽपि द्वेष्याः स्युरित्यर्थः । तथापि एवं सत्यपि । का गतिः—उपायान्तरं नास्तीत्यर्थः । पितृपैतामहैः पितृपितामहक्रमागतैः । न श्रूयमाणा वाक्

❀ बालक्रीडा ❀

प्राप्त करना चाहते हैं तो वह जैसे अपनी मौन भाषा में उनका समर्थन करता है । अब वह मेरे वैरियों पर भरोसा करने लगा है । मैं कुछ कहता हूँ तो उस का उत्तर नहीं देता और मेरे निरपराध साथियों की निन्दा करता है । मेरे मर्म की बातें कहकह कर मेरा उपहास करता है । यदि कभी मैं अपना मत प्रगट करने लगता हूँ, तो मुझ पर आक्षेप करता है । यदि मैं कीमती वस्तुयें भी उस के पास भेजता हूँ तो वह उन्हें विनीतभाव से अङ्गीकार नहीं करता । बड़े-बड़े नीतिज्ञों के दोषों को वह मेरे सामने मूर्खों का प्रलाप कहता है । चाणक्य ने ठीक ही कहा है-मनोभाव का ठीक से अनुसरण करने वाले दुर्जन भी राजाओं के प्रिय हो जाते और राजा के मनोभाव को न समझने वाले प्रियजन भी शत्रु हो जाते हैं । फिर भी क्या किया जाय ? यह कितना भी उद्धत क्यों न हो अपने पिता-पितामह आदि के द्वारा अधिपति माना हुआ राजा है । इस लिए त्यागा भी तो नहीं जा सकता । और नहीं त्यागने पर भी जब मैं इसकी

येयुः। अनर्थेषु सुलभव्यलीकेषु क्वचिदुत्पन्नोऽपि द्वेषः, सद्वृत्तमस्मै न रोचयेत्। भवतु भविता तावदनर्थः। स्तम्भितपिशुनजिह्वो यथाकथंचिद्भ्रष्टपदस्तिष्ठेयम् इति।

(१७) एवं गते मन्त्रिणि, राजनि च कामवृत्ते, चन्द्रपालितो नामाश्मकेन्द्रामात्यस्येन्द्रपालितस्य सूनुः, असद्वृत्तः पितृनिर्वासितो नाम भूत्वा, बहुभिश्चारणगणैर्बह्वीभिरनल्पकौशलाभिः शिल्पकारिणीभिरनेकच्छन्नकिंकरैश्च गूढपुरुषैः परिवृतोऽभ्येत्य विविधाभिः क्रीडाभिर्विहारभद्रमात्मसा-

❀ बालविबोधिनी ❀

येषां ते—वयमिति शेषः। अपिनामेति सम्भावनायाम्। आपादयेयुः कुर्युः। सुलभं व्यलीकमपराधो येषु तेषु। स्तम्भिता पिशुनानां खलानां जिह्वा येन सः। अभ्रष्टपदः अनष्टाधिकारः।

(१७) कामवृत्ते यथेच्छाचारे। पितृनिर्वासितो नाम भूत्वा—असद्वृत्त इति हेतोः पित्रा निर्वासितो राज्यान्निष्काशित इति च्छद्मना। नामेत्यलीके। शिल्पकारिणीभिश्चित्रकारिणीभिः। आत्मसात् स्ववशीभूतम्। अमुना विहारभद्रेण सह। संक्रमेण सम्मेलनेन। राजनि नृपेऽनन्तवर्मण्यपि। आस्पदं स्थानं प्रतिष्ठा-

❀ बालक्रीडा ❀

कोई बात न सुनूँगा तो इसका क्या उपकार करूँगा? यह राज्य अब नीतिज्ञ राजा अश्मकेन्द्र के हाथों में जा पड़ेगा। क्या भविष्य में आनेवाली विपत्तियाँ इस को प्रकृतिस्थ कर सकेंगी? जो लोग अनायास उपद्रव खड़ा कर सकते हैं, उन में यदि द्वेष के लक्षण प्रत्यक्ष दीखने लगें तो भी यह उनकी ओर नहीं निहारेगा। इस में संशय नहीं कि कोई न कोई उपद्रव अवश्य खड़ा होगा। जो हो, मुझे चाहिए कि मैं अपनी जिह्वा को वश में रखता हुआ किसी तरह अपने पद पर बना रहूँ।

(१७) इस प्रकार जब मन्त्री तटस्थ होगया और राजा मनमानी करने लगा, तब अश्मकेन्द्र के मंत्री इन्द्रपालित के दुराचारी पुत्र चन्द्रपालितने—जो पिता द्वारा घर से निकाल बाहर कर दिया गया था—बहुतेरे दुष्टों और वन्दीजनों के साथ नाना प्रकार के कौशल में निपुण वेश्याओं एवं अनेक गुप्तचरों के संग तरह-तरह के खेल-कूद दिखाकर विहारभद्र को अपनी मुट्ठी में करलिया। इस

दकरोत्। अमुना चैव संक्रमेण राजन्यास्पदमलभत। लब्धरन्ध्रश्च स यद्यद्व्यसनमारभते तत्तथेत्यवर्णयत्—'देव, यथा मृगया ह्यौपकारिकी न तथान्यत्। अत्र हि व्यायामोत्कर्षादापत्सूपकर्ता दीर्घाध्वलङ्घनक्षमो जङ्घाजवः, कफापचयादारोग्यैकमूलमाशयाग्निदीप्तिः, मेदोपकर्षादङ्गानां स्थैर्यकार्कश्यातिलाघवादीनि, शीतोष्णवातवर्षक्षुत्पिपासासहत्वम्, सत्त्वानामवस्थान्तरेषु चित्तचेष्टितज्ञानम्, हरिणगवलगवयादिवधेन सस्यलोप-

❀ बालविबोधिनी ❀

मिति यावत्। व्यसनं मृगयादिकम्—स्त्रियोऽक्षा मृगया पानं वाक्पारुष्यार्थदूषणे। दण्डपारुष्यमित्येतन्महाव्यसनसप्तकमिति वैजयन्ती। तथा युक्तम्। औपकारिकी उपकारायार्हा। अत्र मृगयायाम्। जङ्घाजवो जङ्घावेगः। कफस्य श्लेष्मणः अपचयात् क्षयात्। आरोग्यस्यैकमद्वितीयं मूलं निदानम् आशयाग्नेर्जठराग्नेर्दीप्तिः सन्धुक्षणम्। मेदसां भाषायां चर्बीति ख्यातानां धातुविशेषाणाम् अपकर्षादपचयात्। सत्त्वानां प्राणिनाम्। अवस्थान्तरेषु अवस्थाविशेषेषु। गवलो महिषः। गवयो गोसदृशः पशुः। सस्यलोपप्रतिक्रिया सस्यरक्षा। वृकः 'हुड़ार'

❀ बालक्रीडा ❀

विहारभद्ररूपी सेतु (पुल) के सहारे चन्द्रपालित ने राजापद प्राप्त कर लिया। छिद्र देख-देख कर चन्द्रपालितने जिन-जिन व्यसनों में फंसाया, उस-उसकी उसने भरपूर सराहना की। उसने राजासे कहा—मृगया से जितने उपकार होते हैं, उतने और किसी से नहीं। मृगया में व्यायाम होता है, जिस से शारीरिक पुष्टता आती है। शरीर पुष्ट रहने पर किसी आफत-विपत्ति के अवसर पर आत्मरक्षा होती है। जांघो में पैदल रास्ता तय करने का बल आता है। कफ नहीं उभड़ता, जिससे औदर्य अग्नि उद्दीप्त रहता है। मेद (चर्बी) न बढ़ने के कारण अङ्गों में स्थिरता और फुर्तीलापन आता है। शीत-उष्ण-वायु-वर्षा-भूख-प्यास आदि सहने की शक्ति उपजती और प्रत्येक जीव का मनोभाव जानने का ज्ञान प्राप्त होता है। हिरन, सांभर आदि पशुओं को मार देने से खेत का अन्न चर जाने से बचता है। भेड़िये-व्याघ्र आदि मारने से स्थलमार्गका शोधन हो जाता है। पर्वत और वन में विचरने से तरह-तरह के स्थान देखने को मिलते हैं। जिससे यह ज्ञान होता

प्रतिक्रिया, वृकव्याघ्रादिघातेन स्थलपथशल्यशोधनम् , शैलाटवीप्रदेशानां विविधकर्मक्षमाणामालोचनम् , आटविकवर्गविश्रम्भणम् , उत्साहशक्तिसंधुक्षणेन प्रत्यनीकवित्रासनमिति बहुतमा गुणाः ।

(१८) द्यूतेऽपि द्रव्यराशेस्तृणवत्त्यागादनुपमानमाशयौदार्यम् , जयपराजयानवस्थानाद्धर्षविषादयोरविधेयत्वम् , पौरुषैकनिमित्तस्यामर्षस्य वृद्धिः, अक्षहस्तभूम्यादिगोचराणामत्यन्तदुरुपलक्ष्याणां कूटकर्मणामुपलक्षणादनन्तबुद्धिनैपुण्यम् , एकविषयोपसंहाराच्चित्तस्यातिचित्रमैकाग्र्यम् ,

❀ बालविबोधिनी ❀

इति भाषा । स्थलपथेति—स्थलपथस्य शल्यानां कण्टकभूतानां शोधनमपनयनम् । शैलाटवीति—पार्वत्यवनभूमिषु बहवः प्रदेशा निरर्थकास्तिष्ठन्ति तेषां सार्थकीकरणम् । आटविका आरण्यकाः । विश्रम्भं विश्वासोत्पादनम् । प्रत्यनीकः शत्रुः ।

(१८) अनुपमानमतुलनीयम् । आशयस्य चित्तस्यौदार्यम् । जयपराजययोः अनवस्थानात् अनिश्चितत्वात् । अविधेयत्वम् अवशीभूतत्वम् । एकस्मिन् विषये उपसंहारात् अभिनिवेशात् । एकाग्रस्य भाव ऐकाग्र्यम् । साहसेषु साहस-

❀ बालक्रीडा ❀

है कि किस स्थान से क्या काम लिया जा सकता है । बार-बार आते जाते रहने से वनजन्तुओं के मन में उस शिकारी के प्रति विश्वास उत्पन्न हो जाता है । मृगया से उत्साहशक्ति बढती है, जिससे शत्रुओं में आतंक उत्पन्न करने के अनेक हथकंडे मालूम हो जाते हैं ।

(१८) इसी प्रकार जुए से भी तृण के समान सभी वस्तुओं को त्यागने की क्षमता आती है । जय और पराजय का कोई निश्चय नहीं रहता कि कब कौन पक्ष विजयी होगा और कौन पराजित । जुआ खेलने वाला जय-पराजय सम्बन्धी हर्ष और विषाद से परे रहता है । पौरुष बढ़ाने वाले अमर्ष की उत्पत्ति होती है । जुए के पासे से हाथ की सफाई आदि अनुभव की कितनी ही कठिन बातें ज्ञात होती हैं । बुद्धि में निपुणता आती है । एक ही काम में मन लगाये रहने से चित्त में आश्चर्यजनक एकाग्रता उत्पन्न होती है ।

अध्यवसायसहचरेषु साहसेष्वरतिः, अतिकर्कशपुरुषप्रतिसंसर्गादनन्यधर्षणीयता मानावधारणं अकृपणं च शरीरवापनमिति ।

(१६) उत्तमाङ्गनोपभोगेऽप्यर्थधर्मयोः सफलीकरणम्, पुष्कलः पुरुषाभिमानः भावज्ञानकौशलम्, अलोभक्लिष्टमाचेष्टितम्, अखिलासु कलासु वैचक्षण्यम्, अलब्धोपलब्धिलब्धानुरक्षणरक्षितोपभोगभुक्तानुसंधानरुष्टानुनयादिष्वजस्रमभ्युपायरचनया बुद्धिवाचोः पाटवम्, उत्कृष्टशरीरसंस्कारात्सुभगवेषतया लोकसम्भावनीयतया, परं सुहृत्प्रियत्वम्, गरी-

❀ बालविबोधिनी ❀

कर्मसु अरतिः अप्रीतिः । अनन्यधर्षणीयता अन्यानभिभवनीयता । अकृपणं दैन्यरहितम्, शरीरवापनं शरीरधारणम् ।

(१९) पुष्कलः अतिशोभनः । अलब्धोपलब्धीत्यादि । अलब्धस्य वस्तुनो लब्धिर्लाभः, लब्धस्य अनुरक्षणं पालनं, रक्षितस्योपभोगः, भुक्तस्यानुसन्धानं स्मरणं, रुष्टस्य क्रुद्धस्य च अनुनयः समाधानमित्यादिषु विषयेषु अजस्रं निरन्तरं अभ्युपायरचनया बुद्धिवाचोः मतिवचनयोः पाटवं कौशलम् । शरीरस्य संस्कारः

❀ बालक्रीडा ❀

उद्योग के सहायक कार्यों में अप्रीति बढ़ती है । जुए में एक से एक कठोर पुरुषों का सम्पर्क होता है, इस लिए मन इतना प्रबल हो जाता है कि किसी के डिगाये नहीं डिगता । जुए से स्वाभिमान का भाव जागृत होता है और दैन्यरहित जीवन बिताने की आदत पड़ जाती है ।

(१९) उत्तम श्रेणी की स्त्रियों के साथ सम्भोग करने से भी अर्थ और धर्म की सफलता प्राप्त होती है । 'इस से उग्र पौरुषाभिमान का भाव उदित होता है । और मानसिक भाव का ज्ञान भी होता है । निर्लोभ कार्य में प्रवृत्ति होती है । सभी कलाओं की निपुणता आती है । अलब्ध वस्तु के लाभ, लब्ध वस्तु की रक्षा, रक्षित वस्तु के उपभोग और भोगी हुई वस्तुओं से उत्पन्न सुख-दुख की विवेचनाशक्ति एवं रूठे हुए प्राणियों का नित्य अनुनय-विनय करते रहने से बुद्धि और वचन में पटुता आती है । इस दशा में शारीरिक संस्कार पर पर्याप्त ध्यान रखना पड़ता है और वेष-भूषा भी अच्छी रहती है । इस कारण सर्व साधारण के

यसी परिजनव्यपेक्षा, स्मितपूर्वाभिभाषित्वम् , उद्रिक्तसत्त्वता, दाक्षिण्यानुवर्तनम् । अपत्योत्पादनेनोभयलोकश्रेयस्करत्वमिति ।

(२०) पानेऽपि नानाविधरोगभङ्गपटीयसामासवानामासेवनात्स्पृहणीयवयोव्यवस्थापनम् , अहंकारप्रकर्षादशेषदु:खतिरस्करणम् , अङ्गरागदीपनादङ्गनोपभोगशक्तिसंधुक्षणम् , अपराधप्रमार्जनान्मनःशल्योन्मार्जनम् , अश्राव्यशंसिभिरनर्गलप्रलापैर्विश्वासोपबृंहणम् , मत्सराननुबन्धादा-

❀ बालविबोधिनी ❀

शुद्धिः सम्भावनीयता सम्माननीयता । परिजनव्यपेक्षा परिजनेषु दाक्षिण्यम् । उद्रिक्तसत्त्वता समधिकसारत्वम् ।

(२०) पाने मद्यपाने । नानाविधानां रागाणां विषयाभिलाषाणां भङ्गे तरङ्गे विच्छित्तौ वा पटीयसाम् । आसवानां मद्यानाम् । आसेवनात् पानात् । स्पृहणीयवयो यौवनं तस्य व्यवस्थापनं संरक्षणम् । अङ्गजस्य कामस्य रागः इच्छा तस्य दीपनाद् वृद्धेः । सन्धुक्षणमुत्तेजनम् । अपराधस्य अन्यकृतापराधस्य मार्जनाद् विस्मरणात् । अश्राव्यं श्रावयितुमयोग्यं यत्तस्यापि शंसिभिः सूचकैः । अनर्गलप्रलापैर्यथेच्छमनर्थकवचनैः । विश्वासस्योपबृंहणं वर्द्धनम् । मत्तः सन्नश्राव्यमपि श्रावयति तेन च जनानां विश्वासः समुत्पद्यते । यदयं सारल्येनास्माभिरश्राव्यमपि

❀ बालक्रीडा ❀

समक्ष सम्मानित होने का अवसर और मित्रों का प्रेम प्राप्त होता है । अपने परिजनों पर संकोच का अभाव, हँस-हँस कर बातें करने का अभ्यास, बलकी वृद्धि तथा उदारता का उदय होता है । सन्तानोत्पादन द्वारा दोनों लोक में श्रेयःसाधन किया जाता है ।

(२०) इसी तरह मद्यपान में भी विविध प्रकार के रोगों को दूर करने वाले मद्यों का सेवन करने से मनचाही अवस्था प्राप्त की जाती है । इस में अहंकार की वृद्धि होती है । इस कारण सभी प्रकार के क्लेश पास नहीं फटकते । मदिरा से वासना उद्दीप्त होती है, जिससे स्त्री के साथ सम्भोग करने की शक्ति तीव्र होती है । कितने ही अपराध क्षमा करते रहने के कारण मनका उद्वेग दूर हो जाता है । गुप्त बातों के संसूचक और व्यर्थ की बकवाद से भी विश्वास उत्पन्न

नन्दैकतानता, शब्दादीनामिन्द्रियार्थानां सातत्येनानुभवः, संविभागशीलतया सुहृद्वर्गसंवर्गणम्, अनुपमानमङ्गलावण्यम्, अनुत्तराणि विलसितानि, भयार्तिहरणाच्च साङ्ग्रामिकत्वमिति ।

(२१) वाक्पारुष्यं दण्डो दारुणो दूषणानि चार्थानामेव यथावकाशमौपकारिकाणि । नहि मुनिरिव नरपतिरुपशमरतिरभिभवितुमरिकुलमलम्, अवलम्बितं च लोकतन्त्रम्' इति ।

❀ बालविबोधिनी ❀

वक्तीति भावः । मत्सरस्य मात्सर्यस्य अननुबन्धाद्धारणात् । आसवपानेन मात्सर्यं न तिष्ठतीति प्रसिद्धिः । एकतानता तत्परता । इन्द्रियार्थानां चक्षुरादीन्द्रियविषयाणाम् । सातत्येन नैरन्तर्येण । आगतेभ्यः सर्वेभ्योऽपि मद्यस्य सम्यग् वण्टनं संविभागः तच्छीलतया सुहृद्वर्गस्य संवर्गणमेकत्रीकरणम् । अनुत्तराणि अलौकिकानि । संग्रामे साधुः सांग्रामिकः तस्य भावः । युद्धपटुत्वमित्यर्थः ।

(२१) एतावता व्यसनसप्तके मृगयादीनां चतुर्णामुपकारकत्वं प्रतिपादितमधुना अवशिष्टं वाक्पारुष्यादित्रयमपि राज्ञामुपकारकमिति वक्ति वाक्पारुष्येति— वाक्पारुष्यमेकं, दारुणो दण्डो दण्डपारुष्यं द्वितीयं, अर्थानां दूषणानि चेति तृतीयं, तान्यपि यथावकाशं यथावसरमुपकारकाणीति । नहीति—उपशमे शान्तौ रतिरनुरागो यस्यासौ-तादृशो मुनिर्यथा अरिकुलं कामादिशत्रुवर्गं जेतुं समर्थस्तथा शान्तो नरपतिररिकुलं पराजेतुं लोकतन्त्रं राष्ट्रसाधनमवलम्बितुं धारयितुञ्च नालमित्यर्थः ।

❀ बालक्रीडा ❀

न्द दीखता है । शब्द, स्पर्श, रूप, रस आदि का अनुभव होता रहता है । बाँट-चोट कर खाते-पीते रहने से अपने मित्रों और सगे-सम्बन्धियों में एकता बनी रहती है । शारीरिक सौन्दर्य भी असाधारण रूप से निखरता जाता है । विलापसम्बन्धी सर्वोत्कृष्ट सुख प्राप्त होता रहता है । भय के कारण उत्पन्न होनेवाला संकट टालते रहने से युद्धकौशल भी प्राप्त होता है ।

(२१) कटु वचन, कठोर दण्ड और अर्थदूषण (अर्थात् किसी का धन हड़प जाने से) भी लाभ होता है । मुनिके समान शान्तिप्रिय राजा न अपने शत्रुओं को परास्त कर पाता और न प्रजा की स्थिति को ही काबू में रख सकता है' ।

करा देने की शक्ति आती है । राग-द्वेष दूर हो जाने के कारण आनन्द ही आन-

(२२) असावपि गुरूपदेशमिवात्यादरेण तस्य मतमन्ववर्तत । तच्छीलानुसारिण्यश्च प्रकृतयो विशृङ्खलमसेवन्त व्यसनानि । सर्वश्च समानदोषतया न कस्यचिच्छिद्रान्वेषणायायतिष्ट । समानभर्तृप्रकृतयस्तन्त्राध्यक्षाः स्वानि कर्मफलान्यभक्षयन् । ततः क्रमादायद्वाराणि व्यशीर्यन्त । व्ययमुखानि विटवैधेयतया विभोरहरहर्व्यवर्धन्त । सामन्तपौरजानपदमुख्याश्च समानशीलतयोपारूढविश्रम्भेण राज्ञा सजायाः पानगोष्ठीष्वभ्यन्तरीकृताः स्वं स्वमाचारमत्यचारिषुः ।

❀ बालविबोधिनी ❀

(२२) असौ अनन्तवर्मापि । तस्य चन्द्रपालितस्य । अन्ववर्त्तत अन्वसरत् । तच्छीलानुसारिण्यः नृपस्वभावानुवर्त्तिन्यः । छिद्रान्वेषणाय दोषानुसन्धानाय । समाना भर्त्तुः प्रकृतिर्येषां ते तन्त्राध्यक्षाः सेनापतयः । कर्मफलानि पूर्वसुकृतफलान्यभक्षयन् खादितवन्तः—तेऽपि दुर्वृत्ता अभवन्नित्यर्थः । आयद्वाराणि अर्थागमोपायाः । व्यशीर्यन्त क्षीणा बभूवुः । विटेति—विटत्वेन परदारासक्तत्वेन वैधेयतया मूर्खतया च विभोः स्वामिनः । विटविधेयतयेति पाठे विटानां धूर्त्तानां विधेयतया वशीभूततया । उपारूढविश्रम्भेण उत्पन्नविश्वासेन । सजायाः सस्त्रीकाः । पानगोष्ठीषु मद्यपानसभासु । अभ्यन्तरीकृताः प्रवेशिताः । अत्यचारिषुः लंघयामासुः ।

❀ बालक्रीडा ❀

(२२) राजाने उस धूर्त की सलाह मान ली और उसी के अनुसार सब काम करने लगा । राजा के स्वभाव का अनुसरण करते हुए उसके नौकर-चाकर भी स्वेच्छानुसार सुरा-सौन्दर्य आदि दुर्व्यसनों का सेवन करने लगे । इस प्रकार उस राज्य का सम्पूर्ण भृत्यसमुदाय समान दोषी हो गया । ऐसी दशामें कोई किसी का दोष कैसे देखता ? जब राजा और राजसेवक समान प्रकृति के हो गये, तब राज्य के अधिकारी प्रजा से प्राप्त धन का स्वयं उपभोग करने लगे । धीरे—धीरे आमदनी के सब द्वार अपने आप बन्द होते गये और धूर्तों के वशीभूत होकर नित्य मदिरा वेश्या आदि में आसक्त रहने के कारण राजा का खर्च बढ़ता गया । उस मूर्ख ने अपने सामन्तों और राज्य के धनी-मानी लोगों और उनकी स्त्रियों को भी विश्वास दिलाकर अपनी पानगोष्ठी में सम्मिलित कर लिया और उनकी स्त्रियों के साथ भी उसने विविध प्रकार के दुराचार किये ।

(२३) तदङ्गनासु चानेकापदेशपूर्वमपाचरन्नरेन्द्रः । तदन्तःपुरेषु चामी भिन्नवृत्तेषु मन्दत्रासः बहुसुखैरवर्तन्त । सर्वश्च कुलाङ्गनाजनः सुलभभङ्गिभाषणरतो भग्नचारित्रयन्त्रणस्तृणायापि न गणयित्वा भर्तॄन्धातृगणमन्त्रणान्यशृणोत् । तन्मूलाश्च कलहाः सामर्षाणामुदभवन् । अहन्यन्त दुर्बला बलिभिः । अपहृतानि धनवतां धनानि तस्करादिभिः । अपहृतपरिभूतयः प्रहृताश्च पातकपथाः । हृतबान्धवा हृतवित्ता वधबन्धातुराश्च मुक्तकण्ठमाक्रोशन्नश्रुकण्ठ्यः प्रजाः ।

❀ बालविबोधिनी ❀

(२३) तदङ्गनेति—तेषां सामन्तादीनामङ्गनासु स्त्रीषु । अनेकापदेशपूर्वं बहुकपटपूर्वकम् । अपाचरत् असदाचरत् । तदन्तःपुरेति—तस्य नृपस्यान्तःपुरेषु स्त्रीषु । अमी सामन्तादयः । भिन्नं विनष्टं वृत्तं चरित्रं येषां तेषु भिन्नवृत्तेष्विति तदन्तःपुरेष्वित्यस्य विशेषणम् । मन्दत्रासा निर्भयाः–अमी इत्यस्य विशेषणम् । भग्नं भिन्नं चारित्रयन्त्रणं वृत्तबन्धनं यस्येति कुलाङ्गनाजन इत्यस्य विशेषणम् । धातॄणां जाराणां गणः समूहस्तस्य मन्त्रणानि वचनानि । धाता जारे विधातरि इति कोषः । सामर्षाणां असहिष्णूनाम् । अपहृता दूरीकृता परिभूतिस्तिरस्क्रिया येभ्यस्ते । प्रहृता विततः विस्तारं गता वा पातकपथाः पापमार्गाः । पापमार्गप्रवृत्तानपि न कश्चित्तिरस्करोतीत्यर्थः । आक्रोशन् चक्रन्दुः । अश्रुकण्ठ्यः वाष्पगद्गदस्वराः ।

❀ बालक्रीडा ❀

(२३) तरह तरह के कपट करके उसने अपने सामन्तों की स्त्रियों तक को नहीं छोड़ा । उसको कुपथपरायण देखकर सामन्तगण निर्भीकभाव से उसके अन्तःपुर की महिलाओं के साथ आनन्द लूटने लगे । कुछ ही समय में अन्तःपुर की सब महिलायें चारित्रभ्रष्ट हो और राजा को तृण के बराबर भी न मानकर उन बदमाशों के उपदेशानुसार चलने लगीं । आगे चलकर उन यारों में ही कलह की आग भभक उठी । जिससे दुर्बल बलवानों के हाथ मार डाले गये । धनवानों का धन चोर चुरा ले गये । उसके राज्य की सारी सम्पत्ति हर गयी । पाप के सभी द्वार खुल गये । उसकी सारी प्रजा के बन्धु-बान्धव मार डाले गये । उनका बहुत सा धन छिन गया । उसके उच्छृङ्खल अधिकारियों द्वारा कितने ही प्रजाजन पकड़कर मार डाले गये या कारागार में बन्द कर दिये

(२४) दण्डश्चायथाप्रणीतो भयक्रोधावजनयत् । कृशकुटुम्बेषु लोभः पदमधत्त । विमानिताश्च तेजस्विनोऽमानेनादह्यन्त । तेषु तेषु चाकृत्येषु प्रासरन्परोपजापाः । तदा च मृगयुवेषमृगबाहुल्यवर्णनेनाद्रिद्रोणीरनपसारमार्गाः शुष्कतृणवंशगुल्माः प्रवेश्य द्वारतोऽग्निविसर्गैः, व्याघ्रादिवधे प्रो-

❀ बालविबोधिनी ❀

(२४) अयथाप्रणीतोऽन्यायकृतः । लघुपापेन गुरुदण्डो गुरुपापेन च लघुदण्ड इत्यर्थः । कृशकुटुम्बेषु दरिद्रपरिवारेषु । पदं स्थानम् । अकृत्येषु अन्यायेषु । परोपजापाः भेदाः । तदा भेदे समुत्पन्ने । मृगयुवेषेति—मृगयुवेषेण व्याधरूपधारिणा यन्मृगबाहुल्यवर्णनं तेन । विश्वासोत्पादनाय स्वयं मृगयुर्भूत्वा अत्र बहवो मृगा वर्त्तन्त इति कथयित्वेत्यर्थः । अद्रिद्रोणीः पर्वतमध्यपद्धतीः । द्रोणिः स्यान्मध्यपद्धतिरिति कोषात् । नास्ति अपसारमार्गो निर्गमनमार्गो यासु ताः । शुष्काणि तृणानि वंशगुल्मानि च यासु ताः । अद्रिद्रोणीरित्यस्य विशेषणद्वयम् । प्रवेश्य जनानिति शेषः । अग्निविसर्गैरनलप्रदानैः । अनन्तवर्मकटकं जर्जरमकुर्वन् इत्यनेनान्वयः । एवं सर्वत्रापि । तन्मुखपातनैः व्याघ्रमुखपातनैः । इष्टेषु मनोज्ञेषु कूपेषु तृष्णोत्पादनेन तत्र मनोज्ञः कूपोऽस्ति तस्यैव जलं पातव्यमिति तृष्णामुत्पाद्य । अतिदूरहारितानां दूरं नीतानाम् । तृणगुल्मेति–तृणगुल्मैर्गूढच्छन्नानामाच्छादितानां

❀ बालक्रीडा ❀

गये । इस दशा में सारी प्रजा आँसू बहाती हुई रोने लगी ।

(२४) अपराधियों को ठीक तरह से दण्ड नहीं दिया गया, इस कारण प्रजा में भय और क्रोध का सञ्चार हो गया । धनहीन परिवारों में लोभ ने आसन जमाया । राज्य के स्वाभिमानी पुरुषों का अपमान किया गया । इस कारण वे लोग भी क्षुब्ध हो गये । तरह-तरह के अनाचार होने के कारण धीरे-धीरे शत्रुओं की भेदनीति काम करने लगी । इस नीति के अनुसार शत्रु के कितने ही दूत बहेलिये का वेष धारण कर अनन्तवर्मा की सेना में जा पहुँचे और वन के किसी प्रदेश में वनजन्तुओं की अधिकता तथा उनके अनायास प्राप्त होने का प्रलोभन दे देकर पर्वतों की ऐसी कन्दराओं में ले गये, जहाँ से निकलने का कोई मार्ग न था । वहाँ पहुँचा कर उन्होंने द्वार पर फूस और लकड़ियों का ढेर लगाकर आग

त्साह्य तन्मुखपातनैः, इष्टकूपतृष्णोत्पादनेनातिदूरहारितानां प्राणहारिभिः क्षुत्पिपासाभिवर्धनैः तृणगुल्मगूढच्छन्नतटप्रदरपातहेतुभिर्विषममार्गप्रधावनैः विषमुखीभिः क्षुरिकाभिश्चरणकण्टकोद्धरणैः विष्वग्विसरविच्छिन्नानुयातृतयैकाकीकृतानां यथेष्टघातनैः, मृगदेहापराद्धैर्नामेषुमोक्षणैः, सपणबन्धमधिरुह्याद्रिशृङ्गाणि दुरधिरोहाण्यनन्यलक्ष्यैः प्रभ्रंशनैः, आटविक-

❀ बालविबोधिनी ❀

तटानामुच्चैःप्रदेशानां प्रदरेषु निम्नमार्गेषु पातहेतुभिः पतनकारणैः । विषमुखीभिः विषलिप्ताग्राभिः । विष्वगिति—विष्वक् समन्ताद् विसरेण प्रसरणेन विच्छिन्ना भ्रष्टा अनुयातारोऽनुसारिणो येषां तेषां भावस्तया । हेतौ तृतीया । यथेष्टघातनैर्यथेच्छमारणैः । मृगदेहे मृगशरीरे अपराद्धैर्लक्ष्यभ्रष्टैः । इषुमोक्षणैर्बाणक्षेपैः । सपणबन्धं पणं कृत्वा । प्रभ्रंशनैः पातनैः । आटविक आरण्यकस्तस्य कपटेन ।

❀ बालक्रीडा ❀

लगा दी । कितने ही यह कहकर कि 'अमुक वन में एक व्याघ्र है, जो बड़ा उत्पात मचाता है ।' ले गये और उनमें से बहुतेरे सैनिकों को बाघों द्वारा मरवा डाला । कितने ही प्यासे सिपाहियों को किसी कुएँ का पता बताकर दूर भेज दिया और वहाँ पहुँच कर उनको मार डाला । जिस मार्ग से सेना गुजरने वाली होती, उधर राह में बड़े—बड़े कुएं खोदकर ऊपर घास—फूस बिछा दिया, इससे भी कितने ही सैनिक मर गये । ऐसे—ऐसे कौशल रचे गये कि कितने ही सिपाही पर्वत के दुर्गम मार्ग में दौड़—दौड़ कर मर मिटे । वनों की दौड़-धूप में यदि सिपाहियों के पैर में काँटे गड़ जाते तो उसे निकालने के लिए लोग जहर की बुझी हुई छुरियें देते, जिन से रुधिर का संसर्ग होने पर घाव बिगड़ जाता और वे सड़—सड़ कर मर जाते थे । कभी—कभी वे लोग कुछ सिपाहियों को टोली से अलग कर मार डालते थे । वनजन्तुओं का शिकार करने के बहाने भी उन्होंने कितने ही सैनिकों को मार डाला । कभी—कभी किसी पर्वतशिखर पर बाजी लगाकर चढ़ा ले जाते और एकान्त में पाकर उन्हें ढकेल देते थे । कितने ही लोग वनवासी बनकर जंगलों में छिपे रहते और इक्के-दुक्के सिपाहियों पर आक्रमण करके उन्हें मार डालते थे । किसी समय सैनिक लोग यदि किसी प्रकार के आमोद—प्रमोद में व्यस्त रहते तो एकाएक छापा मारकर वे कितने ही सैनिकों को साफ कर दिया

च्छद्मना विपिनेषु विरलसैनिकानां प्रतिरोधनैः, अक्षद्यूतपक्षियुद्धयात्रोत्सवादिसंकुलेषु बलवदनुप्रवेशनैः इतरेषां हिंसोत्पादनैः, गूढोत्पादितव्यलीकेभ्योऽप्रियाणि प्रकाशं लब्ध्वा साक्षिषु तद्विख्याप्याकीर्तिगुप्तिहेतुभिः पराक्रमैः, परकलत्रेषु सुहृत्त्वेनाभियोज्य जारान्भर्तृभयमपहृत्य तत्साहसोपन्यासैः, योग्यनारीहारितानां संकेतेषु प्रागुपनिलीय पश्चादभिद्रुत्याकीर्तनीयैः प्रमापणैः, उपप्रलोभ्य बिलप्रवेशेषु निधानखननेषु च विघ्नव्याज-

❀ बालविबोधिनी ❀

विरलसैनिकानां स्वल्पसैन्यानाम् । गूढेत्यादि गूढं गुप्तमुत्पादितं व्यलीकं दुःखं येषां तेभ्यः तत्सकाशमित्यर्थः । प्रकाशं सर्वसमक्षं अप्रियाणि अप्रियवाक्यानि लब्ध्वा श्रुत्वा अकीर्त्तेरयशसो गुप्तेर्गोपनस्य हेतुभिः कारणैः पराक्रमैः साक्षिषु द्रष्टृषु तद् विख्याप्य ख्यापयित्वा । अभियोज्य नियोज्य । तत्साहसेति—तेषां जाराणां साहसोपन्यासैः साहसोत्पादनैः । योग्यनारीति—योग्याभिर्नारीभिर्हारितानामाकर्षितानां सङ्केतेषु सङ्केतस्थानेषु प्राक् प्रथममुपनिलीय प्रच्छन्नो भूत्वा पश्चादभिद्रुत्य

❀ बालक्रीडा ❀

करते थे। कभी-कभी लोग कोई ऐसा झमेला खड़ा कर देते कि बहुतेरे सैनिक आपस में ही कट मरते थे। कभी-कभी वे लोग झूठ-मूठ की अफवाहें फैलाकर लोगों में आतंक उत्पन्न कर देते, जिससे साधारण जनसमुदाय में राजा अनन्तवर्मा की बदनामी फैल जाती और अवसर पाकर लोग बहुत से सैनिकों को यमपुरी पहुँचा दिया करते थे। मौका पाकर कभी-कभी किसी स्त्री से किसी अधिकारी का सम्बन्ध बताकर लोग उस पक्ष वाले कितने ही सैनिकों को मरवा डालते थे। कभी-कभी किसी सुन्दरी को नियुक्त कर देते। जो राजा के अधिकारियों या सैनिकों को पूर्वनिश्चित किसी स्थान पर ले जाती और वहां पहले ही से छिपे हुए गुप्त दूत आकर उन्हें नष्ट कर देते थे। कभी-कभी किसी कन्दरा में बड़ा भारी खजाना गड़ा होने या किसी मन्त्र का साधन करके कामनापूर्ण होने की बात कहकर राजा के अधिकारियों और सैनिकों के हृदय में लोभ जाग्रत करते और वहां पहुँचने पर स्वयं विघ्न बन कर कितने ही लोगों की इहलीला समाप्त कर देते थे। किसी को किसी मतवाले हाथी पर सवारी करने के लिए प्रेरित करके ऊपर-ऊपर से उस मतवाले हाथी को सम्हालनेके बहाने उसे भड़का देते थे।

साध्यैर्व्यापादनैः, मत्तगजाधिरोहणाय प्रेर्य प्रत्यवायनिर्वर्तनैः, व्यालहस्तिनं कोपयित्वा लक्ष्यीकृतमुख्यमण्डलेष्वपक्रमणैः, दायाद्यर्थे विवदमानानुपांशु हत्वा प्रतिपक्षेष्वयशःपातनैः, सामन्तपुरजनपदेष्वयथावृत्तानप्रकाशमभिप्रहृत्य तद्वैरिनामघोषणैः, योग्याङ्गनाभिरहर्निशमभिरमय्य राजयक्ष्मोत्पादनैः, वस्त्राभरणमाल्याङ्गरागादिषु रसविधानकौशलैः, चिकित्सामुखेनामयोपबृंहणैरन्यैश्चाभ्युपायैरश्मकेन्द्रप्रयुक्तास्तीक्ष्णरसदादयः प्रक्षपितप्रवीरमनन्तवर्मकटकं जर्जरमकुर्वन् ।

ॐ बालविबोधिनी ॐ

धावित्वा अकीर्त्तनीयैर्निन्दनीयैः प्रमापणैर्मारणैः । प्रत्यवायनिर्वर्तनैः हिंसोत्पादनैः । व्यालहस्तिनं दुष्टगजम् । अपक्रमणैः प्रेरणैः । दायाद्यर्थे धनादिविषये । अयथावृत्तान् असद्वृत्तान् । राजयक्ष्मा रोगविशेषः । रसविधानकौशलैः विषप्रदानचातुर्यैः । चिकित्सामुखेन चिकित्साच्छलेन । आमयोपबृंहणैः रोगवर्द्धनैः । तीक्ष्णरसं विषं ददातीति तीक्ष्णरसदः स आदिर्येषां ते । प्रक्षपिता विनाशिताः प्रवीरा योधा यस्य तत् । जर्जरं शिथिलम् ।

ॐ बालक्रीडा ॐ

जिस से बिगड़ कर वह उसे रौंद डालता था। कभी-कभी वे मतवाले हाथी को कुपित करके उसी ओर भागते थे, जिधर राज्य के बड़े-बड़े अधिकारी उपस्थित होते थे, जिससे वह बिगड़ा हुआ हाथी उन सबको साफ कर दिया करता था। राजा के सहायकों में यदि खानदानी झगड़ा रहता तो कुछ लोग जाकर उन को साफ कर देते और उस कुकर्म का अपराध दूसरे पक्षवालों पर लाद दिया करते थे। वे लोग उस राजा के सामन्तों की नगरियों में घुसकर दुराचारियों को मार डालते और जाँच-पड़ताल के अवसर पर उन के शत्रुओं का नाम घोषित कर देते थे। कितने ही सैनिकों को वे लोग किसी रुग्ण स्त्री के साथ सम्बन्ध करा कर क्षयी रोग का रोगी बनाकर मरवा डालते थे। कितने ही दूतों ने राज्य के सैनिकों को विषाक्त वस्त्र-आभूषण तथा सुगन्धित लेप आदि अर्पण कर-करके मार डाला। कितनों ने वैद्य बनकर बहुतेरे सैनिकों को औषधि के बहाने दूषित रस या विष दे देकर समाप्त कर दिया। इस प्रकार अश्मक देश के अधिपति वत्सभानु के द्वारा प्रेरित चरोंने तीक्ष्ण रस आदि देने के व्याज से अनन्तवर्मा की

(२५) अथ वसन्तभानुर्भानुवर्माणं नाम वानवास्यं प्रोत्साह्यानन्तवर्मणा व्यग्राहयत्। तत्परामृष्टराष्ट्रपर्यन्तश्चानन्तवर्मा तमभियोक्तुं बलसमुत्थानमकरोत्। सर्वसामन्तेभ्यश्चाश्मकेन्द्रः प्रागुपेत्यास्य प्रियतरोऽभूत्। अपरेऽपि सामन्ताः समगंसत। गत्वा चाभ्यर्णे नर्मदारोधसि न्यविशन्। तस्मिंश्चावसरे महासामन्तस्य कुन्तलपतेरवन्तिदेवस्यात्मनाटकीयां क्ष्मातलोर्वशीं नाम चन्द्रपालितादिभिरतिप्रशस्तनृत्यकौशलामाहूयानन्तवर्मा नृत्यमद्राक्षीत्। अतिरक्तश्च भुक्तवानिमां मधुमत्ताम्।

❀ बालविबोधिनी ❀

(२५) वसन्तभानुः अश्मकेन्द्रः। वानवास्यो वनप्रदेशाधिपतिः। व्यग्राहयत् विग्रहं कारितवान्। तत्परामृष्टेति-तेन वानवास्येन परामृष्टो गृहीतो राष्ट्रस्य स्वराज्यस्य पर्यन्तः प्रान्तभागो यस्य सः। तम् अश्मकेन्द्रम्। सर्वसामन्तेभ्य इत्यत्र पञ्चमीविभक्तिः। अस्य वानवास्यस्य। समगंसत मिलिता अभवन्। अभ्यर्णे समीपवर्त्तिनि। नर्मदारोधसि नर्मदातीरे। आत्मनाटकीयां स्वनर्त्तकीम्। मधुमत्तां मद्यपानप्रमत्ताम्।

❀ बालक्रीडा ❀

सारी सेना जर्जर कर डाली।

(२५) इसके अनन्तर वसन्तभानु ने भानुवर्मा नामक भीलों के राजा को उभाड़कर अनन्तवर्मा से लड़ा दिया। भानुवर्मा के आक्रमण करने पर अनन्तवर्मा ने उसे पराजित करने के लिए सारे राष्ट्र की शक्ति लगा दी। इधर अपने सभी सामन्तों को साथ लेकर वसन्तभानु अनन्तवर्मा से जा मिला और उस का प्रिय बन गया। इसके अतिरिक्त और और सामन्त भी अनन्तवर्मा की सहायताके लिए आ पहुँचे। उन सब लोगों ने नर्मदा नदी के तट पर अपनी-अपनी छावनियाँ डाल दीं। उस समय महासामन्त और कुन्तल देश के अधिपति अवन्तिदेव की नाट्यशाला की प्रधान नर्तकी-जो सुन्दरता में पृथ्वीतलकी उर्वशी कही जा सकती थी-नाच रही थी और अनन्त वर्मा उसका नृत्य देख रहा था। चन्द्रपालित आदि भी उसी के साथ थे। मधुपान करके मस्त होकर उस सुन्दरी के सौन्दर्य में वह अतिशय आसक्त था। अश्मकपति ने कुन्तलपति अवन्तिदेव को एकान्त में ले जाकर कहा—

(२६) अश्मकेन्द्रस्तु कुन्तलपतिमेकान्ते समभ्यधत्त—'प्रमत्त एष राजा कलत्राणि नः परामृशति । कियत्यवज्ञा सोढव्या । मम शतमस्ति हस्तिनाम्, पञ्चशतानि च ते । तदावां संभूय मुरलेशं वीरसेनमृचीकेश-मेकवीरं कोङ्कणपतिं कुमारगुप्तं सासिक्यनाथं च नागपालमुपजपाव । ते चावश्यमस्याविनयमसहमाना अस्मन्मतेनैवोपावर्तेरन् । अयं च वान-वास्यः प्रियं मे मित्रम् । अमुनैनं दुर्विनीतमग्रतो व्यतिषक्तं पृष्ठतः प्राह-रेम । कोशवाहनं च विभज्य गृह्णीमः' इति हृष्टेन चामुनाभ्युपेते, विंशतिं वरांशुकानाम्, पञ्चविंशतिं काञ्चनकुङ्कुमकम्बलानाम्, प्राभृतीकृत्याप्तमु-

❀ बालविबोधिनी ❀

(२६) परामृशति धर्षयति । सम्भूय मिलित्वा । उपजपाव विघटयाव । लोट् । ते वीरसेनादयः । अस्य अनन्तवर्मणः । अविनयं दुराचरणम् । उपावर्त्तेरन् आगच्छेयुः । अमुना वानवास्येन । एनं अश्मकेन्द्रम् । अग्रतः सम्मुखे । व्यति-षक्तं प्रतिरुद्धम् । अमुना कुन्तलपतिना । अभ्युपेते स्वीकृते । वरांशुकानां श्रेष्ठ-वस्त्राणाम् । काञ्चनेति—काञ्चनवर्णकुङ्कुमवासितकम्बलानामित्यर्थः । प्राभृतीकृत्य उपायनीकृत्य । आप्तमुखेन विश्वस्तपुरुषद्वारा । स्वमतौ स्वाभिमते । उत्तरेयुः

❀ बालक्रीडा ❀

(२६) 'राजा इस समय पागल सा हो गया है और हमारी स्त्रियों पर बलात्कार करता है । आखिर, हम लोग कब तक इस प्रकार का अपमान सहेंगे ? मेरे पास सौ हाथी हैं और पाँच सौ आप के पास । आओ, हम दोनों मिलकर मुरलेश वीरसेन, ऋचीक देश के अधिपति एकवीर, कोंकण देश के स्वामी कुमार गुप्त और सासिक्य देश के अधिपति नागपाल को फोड़कर अनन्तवर्मा से अलग कर दें । उसके उच्छृङ्खल व्यवहार से रुष्ट होकर वे अवश्य मेरे साथ हो जायँगे । वह भीलों का अधिपति मेरा प्रिय मित्र है । उसे आगे भेजकर अनन्तवर्मा को रोक दें और पीछे से हम लोग चढ़ाई करके मार डालें और इसका सारा खजाना और वाहन आपस में बाँट लें ।' जब अवन्तिदेव ने यह बात स्वीकार कर ली, तब बीस उत्तम वस्त्र और पच्चीस सुनहले तथा कुंकुम की सुगन्धि से सुगन्धित कम्बल देकर उसने उसके विश्वासपात्र मन्त्रियों के साथ मन्त्रणा करके उन सब

खेन तैः सामन्तैः संमन्त्र्य तानपि स्वमतावस्थापयत्। उत्तरेद्युस्तेषां सामन्तानां वानवास्यस्य च अनन्तवर्मा नयद्वेषादामिषत्वमगच्छत्। वसन्तभानुश्च तत्कोशवाहनमवशीर्णमात्माधिष्ठितमेव कृत्वा 'यथा न्यासं यथाबलं च विभज्य गृह्णीत। युष्मदनुज्ञया येनकेनचिदंशेनाहं तुष्यामि' इति शाठ्यात्सर्वानुवर्ती, तेनैवामिषेण निमित्तीकृतेनोत्पादितकलहः सर्वसामन्तानध्वंसयत्। तदीयं च सर्वस्वं स्वयमेवाग्रसत्। वानवास्यं केनचिदंशेनागृह्य प्रत्यावृत्य सर्वमनन्तवर्मराज्यमात्मसादकरोत्।

(२७) अस्मिश्चान्तरे मन्त्रिवृद्धो वसुरक्षितः कैश्चिन्मौलैः संभूय

❀ बालविबोधिनी ❀

परदिने। नयद्वेषात् दुर्नयात्। आमिषत्वं भोग्यवस्तुत्वम्। तैर्हत इति भावः। तत्कोशेति—तस्यानन्तवर्मणः कोशवाहनं धनरत्नगजाश्वादिकम्। अवशीर्णं विध्वस्तम्। आत्माधिकृतं स्वाधिकृतम्। यथाप्रयासं स्वस्वचेष्टानुरूपम्। यथाबलं स्वस्वशक्त्यनुसारेण। सर्वानुवर्त्ती सर्वेषां मनोरञ्जकः।

(२७) मौलैः भूम्यादिमूलज्ञातृभिः। 'मुखिया' इति भाषा। भास्करवर्मा

❀ बालक्रीडा ❀

को भी मिला दिया। दूसरे दिन उन सामन्तों और भीलों के अधिपति के कौशल से अनन्तवर्मा मार डाला गया। इसके अनन्तर वसन्तभानु ने अनन्तवर्मा की विध्वस्त सेना, कोश और वाहन अपने कब्जे में कर लिया और सब लोगों से कहा—'आप लोग अपने परिश्रम और अपने बल के अनुसार इस धनका हिस्सा बाँट लीजिए। अपनी इच्छा से आप मुझे जो कुछ दे दीजिएगा, मैं उसी में प्रसन्न हो जाऊँगा।' इस प्रकार की माया फैलाकर वसन्तभानु ने अपनी ओर से सब को प्रसन्न कर दिया। किन्तु इस धनके बटवारे में सभी सामन्त आपस में ही लड़ गये और अवसर पाकर उसने सभी सामन्तों को ध्वस्त कर डाला। इसके अनन्तर उन लोगों की भी सारी सम्पत्ति वह स्वयं हड़प गया। भीलों के राजा को अलबत्ते थोड़ा–बहुत दिया और वहां से लौटकर अनन्तवर्मा का सारा राज्य अपने हाथ में कर लिया।

(२७) इसी बीच मन्त्रियों में वृद्ध वसुरक्षित इस विपत्ति से दुःखित होकर

बालमेनं भास्करवर्माणम्, अस्यैव ज्यायसीं भगिनीं त्रयोदशवर्षां मञ्जुवादिनीम्, अनयोश्च मातरं महादेवीं वसुंधरामादायापसर्पन्नापदोऽस्या भावितया दाहज्वरेण देहमजहात्। अस्माद्दृशैर्मित्रैस्तु नीत्वा माहिष्मतीं भर्तृद्वैमातुराय भ्रात्रे मित्रवर्मणे सापत्या देवी दर्शिताभूत्। तां चार्यामनार्योऽसावन्यथाऽध्यमन्यत। निर्भर्त्सितश्च तया 'सुतमियमखण्डचारित्रा राज्यार्हं चिकीर्षति' इति नैर्घृण्यात्तमेनं बालमजिघांसीत्। इदं तु ज्ञात्वा देव्याहमाज्ञप्तः—'तात, नालीजङ्घ, जीवतानेनार्भकेण यत्र क्वचिदवधाय जीव। जीवेयं चेदहमप्येनमनुसरिष्यामि। ज्ञापय मां क्षेमप्रवृत्तः स्ववा-

❀ बालविबोधिनी ❀

विश्रुतेन पूर्वदृष्टाऽष्टवर्षदेशीयो बालकः अनन्तवर्मणः पुत्रः। ज्यायसीं ज्येष्ठाम्। अपसर्पन् पलायमानः। भर्त्तुः पत्युर्द्वैमातुराय वैमात्रेयभ्रात्रे। आर्यां सुचरित्राम्। अन्यथा दुश्चरित्रामित्यर्थः। अखण्डचारित्रा अभ्रष्टचरित्रा। राज्यार्हं राज्यप्राप्तियोग्यम्। इति हेतोः। नैर्घृण्यात् निष्करुणत्वात्। अजिघांसीत् हन्तुमैच्छत्। अवसन्नन्ताद् हन्धातोर्लुङ्। अहं—अस्येतिवृत्तस्य वक्ता वृद्धो नालीजङ्घनामा। अवधाय व्यवहितो भूत्वा। संकुले जनाकीर्णे। व्यगाहिषि प्राविक्षम्। घोषे आभीरप-

❀ बालक्रीडा ❀

कुछ पुराने सेवकों और उसकी तेरह वर्ष की बड़ी बहिन मंजुवादिनी तथा उन दोनों की माता महादेवी वसुंधरा को लेकर भागा, किन्तु कुछ ही दिनों बाद दाहज्वर से मर गया। इसके अनन्तर कुछ मित्रों ने बच्चे समेत महादेवी वसुन्धरा को उसकी सौत के लड़के के पास पहुँचा दिया। उस सच्चरित्रवती माता को उसके सौतेले बेटेने भ्रष्ट समझा और वह इस बात से डरा कि 'कहीं यह इस विचार में न हो कि मैं अपने बेटे को राजा बनाऊँगी'। ऐसा विचारकर मित्रवर्मा ने बड़ी निर्दयता के साथ उस के पुत्रको मार डालने का विचार किया। जब महारानी को यह बात मालूम हुई तब उन्होंने मुझे आज्ञा दी—'नालीजंघ! इस बालक को ले जाव और कहीं छिपाकर तुम भी इसके साथ रहो। तब तक यदि मैं जीवित रहूँगी तो इससे आ मिलूँगी। यहां से जाकर जहाँ रहो, वहां से अपने कुशलपूर्वक पहुँचने की खबर मुझे अवश्य दे देना।' महारानी की आज्ञानुसार मैं उस बालकको लेकर उस

तीम्' इति अहं तु संकुले राजकुले कथंचिदेनं निर्गमय्य विन्ध्याटवीं व्यगाहिषि । पादचारिणं चैनमाश्वासयितुं घोषे क्वचिदहानि कानिचिद्विश्रमय्य, तत्रापि राजपुरुषसंपातभीतो दूराध्वमपासरम् । तत्रास्य दारुणपिपासापीडितस्य वारि दातुकामः कूपेऽस्मिन्नपभ्रश्य पतितस्त्वयैवमनुगृहीतः । त्वमेवास्यातःशरणमेधि विशरणस्य राजसूनोः' इत्यञ्जलिमबध्नात् ।

(२८) 'किमीया जात्यास्य माता' इत्यनुयुक्ते मयामुनोक्तम्–'पाटलिपुत्रस्य वणिजो वैश्रवणस्य दुहितरि सागरदत्तायां कोसलेन्द्रात्कुसुमधन्वनोऽस्य माता जाता' इति । 'यद्येवमेतन्मातुर्मत्पितुश्चैको मातामहः,

❀ बालविबोधिनी ❀

ल्यप् । विश्रमय्य विश्रामं कारयित्वा । तत्रापि घोषेऽपि । राजपुरुषेति–राजपुरुषाणां सम्पातात् आगमनाद् भीतः शङ्कितः । दूराध्वं दूरमार्गम् । अपभ्रश्य भ्रष्टो भूत्वा त्वया विश्रुतेनेत्यर्थः । अतः अस्मात्परम् । विशरणस्य शरणरहितस्य । एधि भव । अस् धातोर्लोटि रूपम् ।

(२८) किमीया जात्येति–कस्येयमिति किमीया कस्या जातेरुत्पन्नेत्यर्थः । अनुयुक्ते पृष्टे । मया विश्रुतेनेत्यर्थः । अमुना नालीजङ्घेन । तं बालकम् । सिन्धुदत्तेति सिन्धुदत्तस्य बहवः पुत्रास्तेषु तव पिता कतमः किंनामक इति । तं

❀ बालक्रीडा ❀

राजकुल से निकलकर विन्ध्य पर्वत के वनों में जा छिपा । पैदल चलने के कारण थके हुए बालक की थकान मिटाने के लिए मैंने कई दिन तक एक अहीर की गोशाला में रखा । लेकिन वहां राजपुरुषों के आ पहुँचने का भय था, इस लिए वहां से भी दूर चला गया । रास्ते में इसे बड़ी जोर की प्यास लगी । मैं इस लिये पानी लेने को गया और इस कुए में गिर पड़ा और आपने कृपा करके मुझे बचा लिया । अतएव इस अनाथ राजपुत्र के आप ही प्रभु बनें और इसे जिलावें ।' वह ऐसा कह और हाथ जोड़कर वह खड़ा हो गया ।

(२८) मैंने पूछा–'यह किस जाति का बालक है ?' उसने उत्तर दिया–पाटलिपुत्र के वैश्य वैश्रवण की कन्या सागरदत्ता के गर्भ और कोशल देश के अधिपति महाराज कुसुमधन्वा के संसर्ग से इसकी माता उत्पन्न हुई थीं ।'

इति सस्नेहं तमहं सस्वजे । वृद्धेनोक्तम्—'सिन्धुदत्तपुत्राणां कतमस्ते पिता' इति । 'सुश्रुतः' इत्युक्ते सोऽत्यहृष्यत् । अहं तु 'तं नयावलिप्तमश्मकनयेनैवोन्मूल्य बालमेनं पित्र्ये पदे प्रतिष्ठापयेयम्' इति प्रतिज्ञाय 'कथमस्यैनां क्षुधं क्षपयेयम्' इत्यचिन्तयम् । तावदापतितौ च कस्यापि व्याधस्य त्रीनिषूनतीत्य द्वौ मृगौ स च व्याधः । तस्य हस्तादवशिष्टमिषुद्वयं कोदण्डं चाक्षिप्यावधिषम् । एकश्च सपत्राकृतोऽन्यश्च निष्पत्राकृतोऽपतत् । तं चैकं मृगं दत्त्वा मृगयवे, अन्यस्यापलोमत्वचः क्लोमापोह्य, निष्कुलाकृत्य विकृत्योर्वङ्घ्रि ग्रीवादीनि शूलाकृत्य दावाङ्गारेषु, तप्तेनामिषेण तयोरात्मनश्च

❀ बालविबोधिनी ❀

अश्मकेन्द्रम् । नयावलिप्तं नीतिगर्वितम् । अश्मकनयेन पाषाणोन्मूलनन्यायेन । अश्मकमिति पाठे तु नयेन नीत्येति सम्बन्धः । अस्य बालस्य । क्षुधं क्षुधाम् । क्षपयेयं नाशयेयम् । तावत्—एतस्मिन्नन्तरे । त्रीन् इषून् बाणत्रयमित्यर्थः । अतीत्योल्लङ्घ्य । स च व्याध आपतित इत्यध्याहारेणान्वयः । अवधिषं प्राहरम् । सपत्राकृतो निष्पत्राकृतश्च 'सपत्रनिष्पत्रादतिव्यथने' इति डाच् । अनयोरर्थस्तु—सपत्रः शरो मृगस्य शरीरे प्रवेशित इति सपत्राकृतः—मृगस्य पार्श्वद्वयं भित्त्वा निष्पत्रः शरो बहिष्कृत इति निष्पत्राकृतः । मृगयवे व्याधाय । अपलो-

❀ बालक्रीडा ❀

यह सुनकर मैंने कहा—'तब तो इसकी माता और मेरे पिता दोनों के मातामह एक ही थे ।' बस, मैंने उस बालक को छाती से लगा लिया । वृद्ध ने कहा—'सिन्धुदत्त के पुत्रों में से कौन तुम्हारे पिता थे ?' मैंने कहा—'सुश्रुत ।' यह सुन कर वह बहुत प्रसन्न हुआ । मैंने मन ही मन प्रतिज्ञा की—'मैं उस नीतिगर्वित अश्मकदेशाधिपति को नीतिबल से उखाड़ फेंकूंगा और इस बालक को इसके पिता के पद पर बैठाऊंगा ।' इस के बाद यह चिन्ता हुई कि 'इस बालक की भूख कैसे मिटाऊं ?' इसी समय दो मृग भागते हुए मेरी ओर आये । वे एक बहेलिए के तीन बाणों से बचकर भाग निकले थे । इसी समय वह बहेलिया भी आ पहुँचा । उसके पास अभी दो बाण शेष थे । बस, मैंने उससे धनुष-बाण ले लिया और उन दोनों पर चला दिया । उनमें से एक के शरीर में वह बाण ऊपर लगे हुए पंख तक

क्षुधमतार्षम्। एतस्मिन्कर्मणि मत्सौष्ठवेनातिहृष्टं किरातमस्मि पृष्टवान्—'अपि जानासि माहिष्मतीवृत्तान्तम्' इति। असावाचष्ट—'तत्र व्याघ्रत्वचो दृतीश्च विक्रीयाद्यैवागतः किं न जानामि। प्रचण्डवर्मा नाम चण्डवर्मानुजो मित्रवर्मदुहितरं मञ्जुवादिनीं विलिप्सुरभ्येतीति तेनोत्सवोत्तरा पुरी' इति।

(२६) अथ कर्णे जीर्णमब्रवम् 'धूर्तो मित्रवर्मा दुहितरि सम्यक्प्रतिप-

❀ बालविबोधिनी ❀

मत्वचो निर्लोमचर्मणः। अन्यस्येत्यस्य विशेषणम्। क्लोम फुप्फुसम्। 'फेंफड़ा' इति भाषा। अपोह्य निःसार्य। निष्कुलाकृत्य निस्त्वचीकृत्य। विकृत्य विच्छिद्य। शूलाकृत्य शूलेन पाचयित्वा। दावाङ्गारेषु वनाग्निषु। तप्तेन उष्णेन भर्जितेन वा। आमिषेण मांसेन। तयोः बालवृद्धयोः। अतार्षं न्यवारयम्। मत्सौष्ठवेन मम पाटवेन दक्षतयेति यावत्। किरातं पूर्वागतं व्याधम्। व्याघ्रत्वचो व्याघ्रचर्माणि। दृतीः चर्मपुटकान्। किं न जानामीत्यस्यार्थः। सर्वमेव जानामीति विलप्सुर्लब्धुमिच्छुः। उत्सवोत्तरा उत्सवभूयिष्ठा।

(२९) जीर्णं वृद्धं नालीजंघमित्यर्थः। दुहितरि मञ्जुवादिन्याम्। सम्य-

❀ बालक्रीडा ❀

घुस गया था और दूसरे मृग के शरीर में मेरा फेंका हुआ बाण आर-पार निकल गया था। उन दोनों में से एक मृग मैंने बहेलिये को दे दिया और दूसरे मृग के रोयें, चमड़ी तथा क्लोम (हृदय के दाहिने भाग में रहने वाला = पिपासा का उत्पत्तिस्थान) तथा अंतड़ियें आदि निकालकर अलग कीं और काटा-कूटा। इसके बाद उसकी जांघ, हड्डी और गला आदि सलाइयों में बाँधकर दावानल के अङ्गारों में भूना। इस प्रकार उस पचे हुए मांस से मैंने उस बालक की, नालीजंघ की तथा अपनी क्षुधा निवृत्त की। मेरे इस कौशल से वह बहेलिया बहुत प्रसन्न हुआ। मैंने उससे पूछा-'माहिष्मती का कुछ हाल जानते हो?' उसने कहा—'वहीं तो बाघ के चमड़े की पेटारियें बेच कर आ रहा हूं। वहां का हाल क्यों न जानूंगा। चण्डवर्मा का छोटा भाई प्रचण्डवर्मा मित्रवर्मा की पुत्री मंजुवादिनी को लेने आ रहा है। इसलिए पुरी में 'आज बड़ा उत्सव मनाया जा रहा है।'

(२९) इसके अनन्तर मैंने उस वृद्ध नालीजंघ के कान में कहा—'वह धूर्त

स्या मातरं विश्वास्य तन्मुखेन प्रत्याकृष्य बालकं जिघांसति। तत्प्रतिगत्य कुशलमस्य मद्वार्तां च देव्यै रहो निवेद्य पुनः कुमारः शार्दूलभक्षित इति प्रकाशमाक्रोशनं कार्यम्। स दुर्मतिरन्तःप्रीतो बहिर्दुःखं दर्शयन्देवीमनुनेष्यति। पुनस्तया त्वन्मुखेन स वाच्यः—'यदपेक्षया त्वन्मतमत्यक्रमिषं सोऽपि बालः पापेन मे परलोकमगात्। अद्य तु त्वदादेशकारिण्येवाहम्' इति। स तथोक्तः प्रीतिं प्रतिपद्याभिपत्स्यति। पुनरनेन वत्सनाभनाम्ना महाविषेण संनीय तोयं तत्र मालां मज्जयित्वा तया स वक्षसि मुखे च हन्तव्यः। 'स एवायमसिप्रहारः पापीयसस्तव भवतु यद्यस्मि पतिव्रता'। पुनरनेनागदेन संगमितेऽम्भसि तां मालां मज्जयित्वा स्वदुहित्रे देया। मृते तु तस्मिंस्तस्यां च निर्विकारायां सत्याम्, सतीत्येवैनां प्रकृतयोऽनुवर्तिष्यन्ते।

❀ बालविबोधिनी ❀

कप्रतिपत्त्या अनुकम्पया। प्रत्याकृष्य आनीय। तत् तस्मात् कारणात्। अस्य भास्करवर्मणः। रहो निर्जने। पुनः पश्चात्। आक्रोशनं क्रन्दनम्। त्वन्मुखेन त्वां सम्प्रेष्येत्यर्थः। स मित्रवर्मा। अत्यक्रमिषम् अतिक्रान्तवती। प्रतिपद्य प्राप्य। अभिपत्स्यते अनुग्रहीष्यति देवीमिति शेषः। वत्सनाभो विषभेदः। दारदो वत्सनाभश्चेत्यमरः। सन्नीय मिश्रयित्वा। तया देव्या। स मित्रवर्मा। अगदेन औषधिना। सङ्गमिते मिश्रिते। स्वदुहित्रे मञ्जुवादिन्यै। तस्मिन् मित्रवर्मणि। तस्यां

❀ बालक्रीडा ❀

मित्रवर्मा अपनी पुत्री मंजुवादिनी पर स्नेह दरसा और उसके द्वारा माता को विश्वास दिला करके इस बालकको अपने पास बुलवा कर मार डालना चाहता है। इसलिए तुम मेरा और इस बालक का कुशल-समाचार लेकर देवी वसुधंरा के पास जाओ और 'बच्चे को बाघ खा गया' यह कह कर रोने लग जाओ। दुष्ट मित्रवर्मा मन ही मन प्रसन्न हो और बाहर से दुःख प्रदर्शन करता हुआ महारानी को सान्त्वना देगा। इसके बाद महारानी तुम्हारे द्वारा उस दुष्ट के पास यह कहलायें कि जिसके लिए मैंने तुम्हारी बात नहीं मानी, वह बालक भी मर गया। अब तुम जो कहोगे, मैं वही करूंगी।'. यह सुनकर वह बहुत प्रसन्न होकर महादेवी वसुन्धरा के पास जायगा। उस समय महादेवी इस वत्स-

पुनः प्रचण्डवर्मणे संदेश्यम्—'अनायकमिदं राज्यम्। अनेनैव सह बालिकेयं स्वीकर्तव्या' इति। तावदावां कपालिकवेषच्छन्नौ देव्यैव दीयमानभिक्षौ पुरो बहिरुपश्मशानं वत्स्यावः। पुनरार्यप्रायान्पौरवृद्धानाप्तांश्च मन्त्रिवृद्धानेकान्ते ब्रवीतु देवी—स्वप्नेऽद्य मे देव्या विन्ध्यवासिन्या कृतः प्रसादः। अद्य चतुर्थेऽहनि प्रचण्डवर्मा मरिष्यति। पञ्चमेऽहनि रेवातटवर्तिनि मद्भवने परीक्ष्य वैजन्यम्, जनेषु निर्गतेषु कपाटमुद्घाट्य त्वत्सुतेन सह कोऽपि द्विजकुमारो निर्यास्यति। स राज्यमिदमनुपाल्य बालं ते प्रतिष्ठापयिष्यति। स खलु बालो मया व्याघ्रीरू-

ॐ बालविबोधिनी ॐ

मञ्जुवादिन्याम्। निर्विकारायां विकाररहितायाम्। सतीति पतिव्रतेति। एनां देवीम्। अनुवर्त्तिष्यन्ते अनुसरिष्यन्ति। सन्देश्यं वाचिकं प्रेषणीयम्। अनायकं नायकशून्यम्। अनेन राज्येन। स्वीकर्त्तव्या विवाह्या। तावत् तावता कालेन। आवां अहं भास्करवर्मा च। दीयमाना भिक्षा याभ्यां तौ। पुरो बहिर्नगराद्बहिः। उपश्मशानं श्मशानसमीपे। आर्यप्रायान् साधून् सच्चरित्रान्। वैजन्यं जनशून्य-

ॐ बालक्रीडा ॐ

नाभ नाम के महाविष को पानी में घोलकर उसमें फूलों की माला डुबो ले और उससे मित्रवर्मा की छाती और मुख में मारे और कहे—'यदि मैं पतिव्रता हूँ तो मेरी इस माला की मार तेरे लिए तलवार का प्रहार हो जाय।' इसके अनन्तर मेरी इस औषधि में उस माला को धो और निर्विष करके अपनी कन्या मंजुवादिनी को दे दे। ऐसा करने से मित्रवर्मा मर जायगा और मंजुवादिनी निर्विकार बच जायगी। ऐसी दशा में लोग महादेवी को सती समझकर उसका अनुसरण करेंगे। इसके अनन्तर प्रचण्डवर्मा के पास यह सन्देश भेजना चाहिए कि 'यह राज्य इस समय राजा से हीन है। अत एव आप इस राज्य के साथ-साथ इस बालिका को भी अंगीकार करें। तब तक हम दोनों कापालिक (वाममार्गी संन्यासी) का वेश धारण करके महारानी की भिक्षा पर ही जीवन बिताते हुए नगर के बाहर श्मशान में रहेंगे। अवसर पाकर महादेवी अपने आप पुरवासियों और वृद्ध मन्त्रियों को बुलाकर एकान्त में कहे—'आज स्वप्न में भगवती विन्ध्यवासिनी ने

पया तिरस्कृत्य स्थापितः । सा चेयं वत्सा मञ्जुवादिनी तस्य द्विजातिदारकस्य दारत्वेनैव कल्पिता' इति । तदेतदतिरहस्यं युष्मास्वेव गुप्तं तिष्ठतु यावदेतदुपपत्स्यते' इति ।

(३०) स सांप्रतमतिप्रीतः प्रयातोऽर्थश्चायं यथाचिन्तितमनुष्ठितोऽभूत् । प्रतिदिशं च लोकवादः प्रासर्पत्—'अहो माहात्म्यं पतिव्रतानाम् । असिप्रहार एव हि स मालाप्रहारस्तस्मै जातः । न शक्यमुपधियुक्तमेतत्कर्मेति वक्तुम् । यतस्तदेव दत्तं दाम दुहित्रे स्तनमण्डनमेव तस्यै जातं न

❀ बालविबोधिनी ❀

ताम् । अतिरहस्यमतिगोपनीयम् । यावत् यत्कालपर्यन्तम् । उपपत्स्यते सिद्धं भविष्यति ।

(३०) सः नालीजंघः । अर्थः मदुक्तो विषयः । प्रासर्पत् प्राचरत् । तस्मै

❀ बालक्रीडा ❀

मेरे समक्ष आकर कहा है कि 'आज के चौथे रोज प्रचण्डवर्मा मर जायगा ।' पाँचवें दिन रेवा नदी के तट पर एकान्त में विद्यमान मेरे मन्दिर में जब सन्नाटा हो जायगा तब एक ब्राह्मणकुमार तुम्हारे बालक के साथ फाटक खोलकर बाहर निकलेगा । वह द्विज इस राज्य को हस्तगत करके तुम्हारे बालक को राज्यसिंहासन पर बैठावेगा । इस समय मैं व्याघ्रीरूप से उस बालक की रक्षा कर रही हूँ । यह मंजुवादिनी उस द्विजबालक की पत्नी होगी । हमने जो यह गुप्त बात बतायी है, उसे तब तक आप लोग भी गुप्त ही रखें ।'

(३०) वह वृद्ध (नालीजंघ) बड़ी प्रसन्नता के साथ विदा हुआ और मैंने जो योजना बतायी थी, उसके अनुसार उसने सब कार्य सम्पन्न कर दिया । अब चारों ओर यह प्रवाद फैल गया—'अहो ! पातिव्रत धर्म की कितनी प्रबल महिमा है ! देवी ने मित्रवर्मा पर माला का प्रहार किया और वह उसके लिए खड्गप्रहार हो गया । यदि कहा जाय कि माला में कोई ऐसा असर था, सो बात भी नहीं है । क्योंकि उससे मित्रवर्मा को मारकर वह माला देवी ने मंजुवादिनी को दे दी । उसने उसे पहन लिया । जिससे वह मरी नहीं, बल्कि वह माला उसके स्तनों का अलंकार

मृत्युः । योऽस्याः पतिव्रतायाः शासनमतिवर्तते स भस्मैव भवेत्' इति ।

(३१) अथ महाव्रतिवेषेण मां च पुत्रं च भिक्षायै प्रविष्टौ दृष्ट्वा प्रस्नुतस्तनी प्रत्युत्थाय हर्षाकुलमब्रवीत्—'भगवन्, अयमञ्जलिः । अनाथोऽयं जनोऽनुगृह्यताम् । अस्ति ममैकः स्वप्नः स किं सत्यो न वा' इति । मयोक्तम्—'फलमस्याद्यैव द्रक्ष्यसि' इति । 'यद्येवं बहु भागधेयमस्या वो दास्याः । स खल्वस्याः सानाथ्यशंसी स्वप्नः' इति मद्दर्शनरागबद्धसाध्वसां मञ्जुवादिनीं प्रणमय्य, भूयोऽपि हर्षगर्भमब्रूत—'तच्चेन्मिथ्या सोऽयं युष्मदीयो बालकपाली श्वो मया निरोद्धव्यः' इति । मयापि सस्मितं

❀ बालविबोधिनी ❀

तदर्थम् मित्रवर्मणे इत्यर्थः । उपधियुक्तं कपटतायुक्तम् । दाम माला । अतिवर्त्तते लंघयति ।

(३१) महाव्रतिवेषेण कापालिकच्छद्मना । भिक्षायै भिक्षार्थम् । प्रस्नुतस्तनी स्रवत्पयोधरा । यद्येवं भवद्वचनं यदि सत्यं स्यात् । अस्याः ममेत्यर्थः । अस्याः मद्दुहितुः । सानाथ्यं शंसतीति सानाथ्यशंसी सनाथतासूचकः । मद्दर्शनेति—मम दर्शनाद् रागेण प्रेम्णा बद्धमुत्पादितं साध्वसं लज्जा यस्यास्ताम् । प्रणमय्य

❀ बालक्रीडा ❀

बन गयी । जो कोई इस पतिव्रता की आज्ञा का उल्लंघन करेगा, वह भस्म हो जायगा ।'

(३१) इसके बाद जब मैं और उसका पुत्र दोनों संन्यासी बनकर उसके यहाँ भिक्षा माँगने गये, तो हम दोनों को देखकर उसकी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा । उसके स्तनोंसे दूध की धारा बहने लगी और गद्गद होकर बोली—'भगवन् ! मैं हाथ जोड़ती हूँ । कृपया आप इस अनाथ को सनाथ करें । मैंने एक स्वप्न देखा था, वह सच है या नहीं ?' मैंने कहा—'आज ही उस स्वप्न का फल दिखायी देगा ।' यह सुनकर वह बोली—'यदि इस दासी का इतना प्रबल भाग्योदय हुआ है तो मैं समझती हूँ कि वह स्वप्न इसको सनाथ होने की सूचना देने के लिए ही हुआ था । ऐसा कह और मुझे देखते ही आसक्त हो जाने वाली सुन्दरी मंजुवादिनी को प्रणाम कराके बड़े हर्ष के साथ वह बोली—'यदि

मञ्जुवादिनीरागलीनदृष्टिलीढधैर्येण 'एवमस्तु' इति लब्धभैक्ष्यः नालीजङ्घ-माकार्य निर्गम्य ततश्च तं चानुयान्तं शनैरपृच्छम्—'कासावल्पायुः प्रथितः प्रचण्डवर्मा' इति। सोऽब्रूत—'राज्यमिदं ममेत्यपास्तशङ्को राजस्थानम-ण्डप एव तिष्ठत्युपास्यमानः कुशीलवैः' इति।

(३२) 'यद्येवमुद्याने तिष्ठ' इति तं जरन्तमादिश्य तत्प्राकारैकपार्श्वे क्वचि-च्छून्यमठिकायां मात्राः समवतार्य, तद्रक्षणनियुक्तराजपुत्रः, कृतकुशीलव-वेषलीलः प्रचण्डवर्माणमेत्यान्वरञ्जयम्। अनुरञ्जितातपे तु समये, जनसमा-

---

❀ बालविबोधिनी ❀

प्रणामं कारयित्वा मञ्जुवादिन्येति शेषः। तत् तव वचनं चेन्मिथ्या भवेत्तर्हि। बालकपाली शिशुव्रती। मञ्जुवादिनीत्यादि—मञ्जुवादिन्या रागेण प्रेम्णा लीना संसक्ता या दृष्टिस्तया लीनं कवलितं धैर्य्यं यस्य तेन। स नालीजंघः। राज-स्थानमण्डपे राजसभायाम्। कुशीलवैः चारणैः।

(३२) जरन्तं वृद्धम्। शून्यमठिकायां निर्जनमठे। मठशब्दात्स्वल्पार्थे कः प्रत्ययः। मात्राः कन्यादिपरिच्छदान्। मात्रा परिच्छदेऽल्पेंऽशे इति कोषात्। तद्र-क्षणे मात्रासंरक्षायां नियुक्तो राजपुत्रो येनासौ। कृतकुशीलवेति-कुशीलवच्छद्म-नेत्यर्थः। अनुरञ्जितो रक्त आतपो यस्मात्—दिवावसानकाले। जनसमाजस्य

❀ बालक्रीडा ❀

मेरा वह स्वप्न मिथ्या होगा तो कल मैं तुम्हारे इस बालभिक्षु को रोक लूँगी। मंजुवादिनी के अनुराग से मैंने स्थिर दृष्टि से निहार और मुसकाकर कहा—'अच्छा, ऐसे ही सही।' इसके बाद भिक्षा ले और नालीजंघ को साथ लेकर चल पड़ा। कुछ दूर आगे जाकर मैंने नालीजंघ से पूछा—'वह अल्पायु चण्डवर्मा इस समय कहाँ है?' उसने उत्तर दिया—'उसको यह विश्वास हो गया है कि अब यह राज्य मेरा ही है। अत एव वन्दीजनों की स्तुतियें सुनता हुआ सभागृह में बैठा है।'

(३२) 'यदि ऐसा है तो तुम इस उद्यान में ठहरो' उस वृद्ध से यह कहकर मैं उस महल के एक कोने में विद्यमान शून्य मठ में चला गया वहां अपना कापा-लिक वेष उतारकर धर दिया और चारण का वेष धारण करके प्रचण्डवर्मा के पास जा पहुँचा। राजपुत्र को भी कह-सुन कर उसकी सेवकाई में लगा दिया और

ज्ज्ञानोपयोगीनि संहृत्य नृत्यगीतनानारुदितादिहस्तचङ्क्रमणमूर्ध्वपादालातपादपीठवृश्चिकमकरलङ्घनादीनि मत्स्योद्वर्तनादीनि च कारणानि,पुनरादायादायासन्नवर्तिनां छुरिकाः ताभिरुपाहितवर्ष्मा चित्रदुष्कराणि करणानि श्येनपातोत्क्रोशपातादीनि दर्शयन् , विंशतिचापान्तरालावस्थितस्य प्रचण्डवर्मणश्छुरिकयैकया प्रत्युरसं प्रहृत्य, 'जीव्याद्वर्षसहस्रं वसन्तभानुः'

❀ बालविबोधिनी ❀

लोकसमूहस्य ज्ञानोपयोगीनि यथा लोकाः ज्ञातुं प्रभवेयुस्तथाभूतानि । संहृत्य दर्शयित्वा । नृत्यं नर्त्तनं, गीतं गानं नानारुदितादि नानाविधक्रन्दनानुकारि शब्दादि, हस्तचंक्रमणं इतस्ततो हस्तभ्रामणं, ऊर्ध्वपादोऽलातपादश्चेति नृत्यविशेषौ, वृश्चिकलंघनं वृश्चिकेन क्रीडनं, मकरलंघनमपि तथा । द्वन्द्वान्ते वहुव्रीहिः । मत्स्योद्वर्त्तनं मीनविलसितम् । करणानि क्रियाविशेषान् । आदायादाय विश्वासोत्पादनार्थं पुनःपुनर्गृहीत्वा । आसन्नवर्त्तिनां समीपस्थितानाम् । छुरिकाः शस्त्रिकाः । आदायेत्यस्य कर्म । ताभिश्छुरिकाभिः । उपाहितवर्ष्मा संयुक्तशरीरः । चित्रदुष्कराणि–चित्राणि आश्चर्याणि दुष्कराणि अन्यैः कर्त्तुमशक्यानि । श्येनः पक्षिविशेषः उत्क्रोशः—कुररपक्षी तद्वत्पातः पतनं तादृशानि । विंशतिचापेति–विंशतिचाप-

❀ बालक्रीडा ❀

कवितायें सुना–सुनाकर प्रचण्डवर्मा का मनोरंजन करने लगा । जब सायंकाल के समय सूर्य भगवान् के आतप में लालिमा आ गयी, तब मैंने अपनी वेष–भूषा ऐसी बना ली–जिस से जन साधारण मुझे पहचान न सके और नृत्य, गान, विविध प्रकार के रोदन, हाथ चमकाने, दोनों हाथों से पृथिवी को थामकर मस्तक घुमाते हुए पैरों को ऊपर उठाने, एक पैर उठा और दूसरा पैर सिकोड़कर नाचने, बिच्छू या मगर जैसी आकृति बनाकर चलने, मछली की तरह उलटने आदि का कौशल दिखाते–दिखाते मैंने अपने पास वाले लोगों की छुरियाँ ले लीं और उनपर अपने सारे शरीर का भार लाद दिया । मेरे कार्य ऐसे थे, जो कोई नहीं कर सकता था । इस लिए मेरा कौशल देख–देखकर लोग बड़े विस्मित थे । इनके अतिरिक्त बाज पक्षी के समान झपटने और कुररी पक्षी के समान कुहुँकने आदि का कार्य दिखाया । उस समय प्रचण्डवर्मा बीस धनुष (८० हाथ) की दूरीपर बैठा था ।

इत्यभिगर्जन्, मद्गात्रमुत्कर्तुमुद्यतासेः कस्यापि चारभटस्य पीवरांसबाहुशिखरमाक्रम्य, तावतैव तं विचेतीकुर्वन्, आकुलं च लोकमुच्चक्षूकुर्वन्, द्विपुरुषोच्छ्रितं प्राकारमत्यलङ्घयम्।

(३३) अवप्लुत्य चोपवने 'मदनुपातिनामेष पन्था दृश्यते' इति ब्रुवाण एव नालीजङ्घसमीकृतसैकतास्पृष्टपादन्यासया तमालवीथ्या चानुप्राकारं

❀ बालविबोधिनी ❀

मशीतिहस्तपरिमाणं तत्प्रमाणेऽन्तराले दूरेऽवस्थितस्य वर्त्तमानस्य । प्रत्युरसं वक्षसि । विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः । उत्कर्त्तुं छेत्तुम् । उद्गतासेः गृहीतखड्गस्य । चारश्चरः स चासौ भटो योद्धा चेति । पीवरौ स्थूलौ अंशौ ययोस्तयोर्बाह्वोः करयोः शिखरं मूर्द्धभागम् । तावता तन्मात्रेणैव । आकुलं सम्भ्रान्तम् । उच्चक्षूकुर्वन् ऊद्र्ध्वनेत्रं सम्पादयन् । द्विपुरुषोच्छ्रितं पुरुषद्वयप्रमाणोन्नतम् ।

(३३) अवप्लुत्य उल्लम्घ्य । मदनुपातिनां मामनुधावताम् । पन्था गतिरित्यर्थः । यो मां धर्त्तुं धाविष्यति स एवं हतो भविष्यतीति भावः । नालीजंघेति—नालीजंघेन समीकृतेन समानीकृतेन सैकतेन वालुकामयस्थानेन अस्पृष्टोऽलग्नो यः पादस्तादृशस्य न्यासो निक्षेपो यस्यां तया । पादचिह्नगोपनार्थमेतत् ।

❀ बालक्रीडा ❀

खेल दिखाते-दिखाते मैं उसके पास जा पहुँचा और उसीकी छुरी लेकर उसकी छाती में भोंक दी और 'महाराज वसन्तभानु हजारों वर्ष तक विजयी होकर जीवित रहें' यह कहकर चिल्ला उठा । इसी समय उन गुप्त दूतों में से किसी योधाने मेरे पर प्रहार करने के लिए तलवार उठायी । तत्काल, मैंने झपट कर उसकी भुजा थाम ली । उसी समय उसे अचेत करता और व्याकुल जनसमाज की दृष्टि अपनी ओर आकृष्ट करता हुआ मैं दो पुरुष जितनी ऊँचाई की चहारदीवारी फाँद आया ।

(३३) उससे बाहर होकर मैं उपवन में पहुँचा । जो लोग मेरा पीछा कर रहे थे, उनको 'यही रास्ता दिखायी दे रहा है' यह कहता हुआ मैं नालीजंघ के द्वारा समतल किये हुए वालुकामय स्थान का स्पर्श किये विना ही अर्थात् बड़े वेग से प्राकार के ईर्द-गिर्द की तमालवीथी में होता हुआ पूर्वदिशा को भाग निकला । किन्तु आगे चलकर ईंटों का एक ऊँचा सा टीला था, इस कारण फिर पश्चिम की

प्राचा प्रतिप्रधावितः; पुनरवाचोच्चितेष्टकचितत्वादलक्ष्यपातेन प्रद्रुत्य, लङ्घितप्राकारवप्रखातवलयः, तस्यां शून्यमठिकायां तूर्णमेव प्रविश्य, प्रतिमुक्तपूर्ववेषः सह कुमारेण मत्कर्मतुमुलराजद्वारदुःखलब्धवर्त्मा श्मशानोद्देशमभ्यगाम् । प्रागेव तस्मिन्दुर्गागृहे प्रतिमाधिष्ठान एव मया कृतं भग्नपार्श्वस्थैर्यस्थूलप्रस्तरस्थगितबाह्यद्वारं बिलम् ।

(३४) अथ गलति मध्यरात्रे वर्षवरोपनीतमहार्हरत्नभूषणपट्टनिवसनौ तद्बिलमावां प्रविश्य तूष्णीमतिष्ठाव । देवी तु पूर्वेद्युरेव यथार्हमग्नि-

❀ बालविबोधिनी ❀

तमालवीथ्या तमालवृक्षपद्धत्या । अनुप्राकारं प्राकारसमीपम् । प्राचा पूर्वया दिशा । अवाचा दक्षिणदिशा । उच्चितानि राशीकृतानि यानि इष्टकानि तैश्चितत्वात् व्याप्तत्वात् । लंघितमतिक्रान्तं प्राकारवप्रस्य प्राचीरस्य खातवलयं खातवेष्टनं येन सः । प्रतिमुक्तस्त्यक्तः पूर्ववेषः कुशीलववेषो येनासौ । मत्कर्मणा पूर्वोक्ताचरणेन तुमुले सङ्कुले राजद्वारे दुःखेनातिकष्टेन लब्धं वर्त्म पन्था येनासौ । प्रतिमाया मूर्त्तेरधिष्ठाने स्थाने । भग्नं त्रुटितं पार्श्वयोः पार्श्वभागयोः स्थैर्यं काठिन्यं यस्य तादृशेन स्थूलेन महता प्रस्तरेण स्थगितमाच्छादितं बाह्यद्वारं वहिर्द्वारं यस्य तदिति बिलविशेषणम् । बिलं छिद्रम् ।

(३४) गलति गच्छति अतिक्रामति सतीत्यर्थः । वर्षवरो राजान्तःपुरर-

❀ बालक्रीडा ❀

ओर लौटा और बड़े वेग से भागकर मृन्मय स्तूप, परिखा आदि लाँघता हुआ उसी शून्य मठ में जा पहुँचा । वहाँ जाकर मैंने अपना वह वेष उतारकर फिर पुरानी पोशाक पहन ली । तब कुमार को साथ लेकर कोहराम मचे हुए राजद्वार पर बड़ी कठिनाई से रास्ता साफ करके श्मशान की ओर बढ़ा । वहाँ दुर्गाजी का एक मन्दिर था । प्रतिमा के पास मैंने पहले ही से एक गुप्त द्वारा बना लिया था और उसके मुखपर एक बड़ा सा पत्थर रख दिया था । जब कि मध्य रात्रि का समय हुआ और अन्तःपुर का रक्षक कीमती रेशमी वस्त्र और आभूषण ले आया तो हम दोनों उसी बिल के भीतर चुपके से जा बैठें ।

(३४) महादेवी तो एक दिन पहले ही मालवाधिपति चण्डवर्मा और प्रच-

संस्कारं मालवाय दत्त्वा प्रचण्डवर्मणे, चण्डवर्मणे च तामवस्थामश्मकेन्द्रोपधिकृतामेव सन्दिश्य, उत्तरेद्युः प्रत्युषस्येव पूर्वसंकेतितपौरामात्यसामन्तवृद्धैः सहाभ्येत्य भगवतीमर्चयित्वा सर्वजनप्रत्यक्षं परीक्षितकुक्षिवैजन्यं तद्भवनं विधाय दत्तदृष्टिः सह जनेन स्थित्वा, पटीयांसं पटहशब्दमकारयत् । अणुतररन्ध्रप्रविष्टेन तेन नादेनाहं दत्तसंज्ञः शिरसैवोत्क्षिप्य सप्रतिमं लोहपादपीठमंसलपुरुषप्रयत्नदुश्चलमुभयकरविधृतमेकपार्श्वमेकतो निवेश्य

❀ बालविबोधिनी ❀

क्षकः षण्ढः तेनोपनीतं प्रापितं देव्या प्रदत्तमित्यर्थः महार्हं महामूल्यं रत्नभूषणं पट्टनिवसनं कौषेयवस्त्रं च याभ्यां तौ । रत्नालङ्कारान् वस्त्राणि च परिधायेत्यर्थः । आवां कुमारो विश्रुतश्च । अग्निसंस्कारं दाहक्रियाम् । मालवाय मालवदेशीयाय । चण्डवर्मणे चेत्यस्य सन्दिश्येत्यनेन सम्बन्धः । अवस्थां प्रचण्डवर्ममरणघटनाम् । अश्मकेन्द्रस्य वसन्तभानोरुपधिना छलेन कृतां जनितामिति अवस्थाया विशेषणम् । प्रत्युषसि प्रभाते परीक्षितं सम्यग् दृष्टं कुक्षेः अभ्यन्तरस्य वैजन्यं विजनता जनशून्यत्वं यस्य तत् । भवनस्य विशेषणम् । पटीयांसं महान्तम् । दत्तसंज्ञः दत्तसङ्केतः । सप्रतिमं देवीमूर्त्तिसहितम् । अंसलस्य बलवतः पुरुषस्य प्रयत्नेनायासेन दुश्चलं चालयितुमशक्यम् । लोहपादपीठविशेषणम् । उभयकरविधृतमिति

❀ बालक्रीडा ❀

ण्डवर्मा का यथोचित दाहसंस्कार कर चुकी थीं । वसन्तभानु के कौशल से किये हुए सब कार्यों का वृत्तान्त बताकर दूसरे दिन सवेरे पहले ही से निश्चित पुरवासियों, वृद्ध मंत्रियों और सामन्तों के साथ में गया और मन्दिर में पूजन करके सब लोगों के समक्ष सफाई दी (कि प्रचण्डवर्मा और चण्डवर्मा की मृत्यु के सम्बन्ध में मेरा हाथ नहीं था) और सब के साथ बैठकर बड़ा-सा नगाड़ा बजवाया । महीन-महीन छिद्रों से पहुँचे हुए उस पटहशब्द से मुझे संकेत हो गया और प्रतिमा समेत लौहपीठ को जो कि मोटे-ताजे मनुष्यों से भी नहीं उठ सकता था-मैंने अपने दोनों हाथों से उठाकर एक कंधे पर रखा और कुमार को साथ लेकर निकल पड़ा । इसके अनन्तर मैंने नित्य की तरह दुर्गा की पूजा की और किंवाड़ खोला । उस समय विश्वास के कारण प्रसन्न दृष्टिवाली, रोमांच युक्त,

निरगमम्। निरगमयं च कुमारम्। अथ यथापूर्वमर्चयित्वा दुर्गामुद्घाटितकपाटः प्रत्यक्षीभूय प्रत्ययहृष्टदृष्टीः स्पष्टरोमाञ्चमुद्यताञ्जलि रूढविस्मयं च प्रणिपतन्तीः प्रकृतीरभ्यधाम्—'इत्थं देवी विन्ध्यवासिनी मन्मुखेन युष्मानाज्ञापयति—मया सकृपया शार्दूलरूपेण तिरस्कृत्याद्य वो दत्तमेनमद्यप्रभृति मत्पुत्रतया मन्दमातृपक्ष इति परिगृह्णन्तु भवन्तः।

(३५) अपि च दुर्घटकूटकोटिघटनापाटवप्रकटशाठ्यनिष्ठुराश्मकघटघट्टनात्मानं मां मन्यध्वमस्य रक्षितारम्। रक्षानिर्वेशश्चास्य स्वसेयं सुभ्रू-

❀ बालविबोधिनी ❀

एकपार्श्वस्य विशेषणम्। एकपार्श्वञ्च लोहपादपीठस्येति ज्ञेयम्। एकतः विलस्यैकपार्श्वे। निरगमयं निष्कासितवान्। प्रत्यक्षीभूय सर्वजनसमक्षं निर्गत्य। प्रत्ययेन विश्वासेन हृष्टा सन्तुष्टा दृष्टिर्यासां ताः। रूढः सञ्जातो विस्मयो यस्मिंस्तद् यथा तथा। स्पष्टरोमाञ्चमित्यादि त्रयं क्रियाविशेषणम्। प्रकृतयः प्रजाः। तिरस्कृत्य संछाद्य सङ्गोप्य वा। वः युष्मभ्यम्। एनं कुमारम्। मन्दो दुर्भाग्यो मातृपक्षो यस्य तथाभूतः। परिगृह्णन्तु—स्वीकुर्वन्तु।

(३५) दुर्घटेति—दुर्घटाया दुःसाध्यायाः कूटकोटेः कपटसमूहस्य पाटवेन नैपुण्येन प्रकटं व्यक्तं शाठ्यं धूर्तत्वं यस्य तथाभूतो निष्ठुरो निर्दयो योऽश्मको वसन्तभानुः स एव घटस्तस्य घट्टनं स्फोटनं तदेव आत्मा यस्य तम्। अश्मकेन्द्रस्य कपटचेष्टितं मयैवावगतमिति भावः। अस्य बालकस्य। रक्षानिर्वेशः रक्ष-

❀ बालक्रीडा ❀

हाथ जोड़े और विस्मित भाव से दुर्गा को नमस्कार करती हुई प्रजा से मैंने कहा—'विन्ध्यवासिनी देवी ने मेरे द्वारा तुम सबको आदेश दिया है कि—'मैंने कृपा करके व्याघ्ररूप धारणकर कुमार की रक्षा की है। आज मैं इसे तुम्हारे हाथों में सौंप रही हूँ। आज से तुम इसे मेरा पुत्र समझो।' मैंने फिर कहा—

(३५) इन दुर्घट कपटों की योजना के नैपुण्य से जिसकी शठता प्रकट हो चुकी है, उस निर्दयी वसन्तभानु का मंसूबा बिगाड़ने वाला मैं इस कुमार का रक्षक हूँ। मेरे पुरुषार्थ के पुरस्कारस्वरूप महादेवी वसुन्धरा ने इसकी बहिन मंजुवादिनी मुझे दे दी है।' यह सुनकर लोग बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे—

रभ्यनुज्ञाता मह्यमार्यया' इति । श्रुत्वैतत् 'अहो भाग्यवान्भोजवंशः, यस्य त्वमार्योदत्तो नाथः' इत्यप्रीयन्त प्रकृतयः । सा तु वाचामगोचरां हर्षावस्थामस्पृशन्मे श्वश्रूः । तदहरेव च यथावदग्राहयन्मञ्जुवादिनीपाणिपल्लवम् । प्रपन्नायां च यामिन्यां सम्यगेव बिलं प्रत्यपूरयम् । अलब्धरन्ध्रश्च लोको नष्टमुष्टिचिन्तादिकथनैरभ्युपायान्तरप्रयुक्तैर्दिव्यांशतामेव मम समर्थयमानः, मदाज्ञां नात्यवर्तत ।

(३६) राजपुत्रस्यार्यापुत्र इति प्रभावहेतुः प्रसिद्धिरासीत् । तं च

❀ बालविबोधिनी ❀

णपारिश्रमिकम् । स्वसा भगिनी । अभ्यनुज्ञाता दातुं स्वीकृता । आर्यया देव्या । वाचामगोचरां अनिर्वाच्याम् । अस्पृशत् प्राप्तवती । तदहरेव तस्मिन्नेव दिने । यथावत् यथाविधि । प्रपन्नायाम् उपस्थितायाम् । अलब्धेति—न लब्धं दृष्टं रन्ध्रं छिद्रं दोषो येन सः । नष्टस्य अदर्शनं गतस्य मुष्टौ करमध्ये चिन्ता नष्टानि वस्तूनि करे एव पश्यामीत्यादिकथनैः प्रकाशनैः । अभ्युपायेति अन्योपायनिर्वर्तितैः । उपायान्तरेण नष्टमाविष्कृत्य स्वमुष्टावेव पश्यामीति ख्यापयतीति भावः । दिवि स्वर्गे भवो दिव्यो देवस्तस्यांशतां समर्थयमानः अनुमन्यमानः । अत्यवर्तत अत्यक्रामत् ।

(३६) आर्यापुत्रो देवीपुत्रो भवानीपुत्रो वा । इति एवंरूपा । प्रसिद्धिरि·

❀ बालक्रीडा ❀

'यह भोजवंश धन्य है, जिसके अधिपति तुम हो । जिसे स्वयं भगवती ने हम लोगों के कल्याणार्थ भेज दिया है । मेरी सास को भी अवर्णनीय हर्ष प्राप्त हुआ । उसने उसी रोज मेरे साथ अपनी पुत्री मंजुवादिनी का विवाह कर दिया । जब रात हुई तो मैंने वह सुरंग अच्छी तरह भर दी । जनसाधारण को मेरे इस कपट व्यवहार का हाल कुछ भी नहीं मालूम हुआ । उसे इस बात का बड़ा विस्मय था कि उस मन्दिर में खाने-पीने के लिए कुछ भी नहीं रहा, फिर भी हम प्रसन्न और हृष्ट-पुष्ट थे । इसी कारण सब लोग मुझे किसी देवता का अंश मान रहे थे । अब किसी में भी यह साहस नहीं था जो मेरी आज्ञा का उल्लंघन करता ।

(३६) राजकुमार आर्या (देवी) के पुत्र कहे जाते थे, इसलिए उनका

गुणवत्यहनि भद्राकृतमुपनाय्य पुरोहितेन पाठयन्नीतिं राजकार्याण्यन्वतिष्ठम् । अचिन्तयं च—'राज्यं नाम शक्तित्रयायत्तम् , शक्तयश्च मन्त्रप्रभावोत्साहाः परस्परानुगृहीताः कृत्येषु क्रमन्ते । मन्त्रेण हि विनिश्चयोऽर्थानाम् , प्रभावेण प्रारम्भः, उत्साहेन निर्वहणम् । अतः पञ्चाङ्गमन्त्रमूलः, द्विरूपप्रभावस्कन्धः, चतुर्गुणोत्साहविटपः, द्विसप्ततिप्रकृतिपत्रः, षड्गुणकिसलयः, शक्तिसिद्धिपुष्पफलश्च, नयवनस्पतिर्नेतुरुपकरोति । स चायमने-

---

❀ बालविबोधिनी ❀

त्यर्थेनान्वयः । प्रभावहेतुः प्रभुत्वकारणम् । तं राजकुमारम् । गुणवति शुभे । भद्राकृतं मुण्डितम् । उपनाय्य उपनयनं कारयित्वा । शक्तित्रयायत्तं शक्तित्रयाधीनम् । मन्त्रेति-मन्त्रशक्तिः प्रभुशक्तिरुत्साहशक्तिश्चेति । परस्परानुगृहीताः परस्परापेक्षिणः । कृत्येषु विधेयवस्तुषु । क्रमन्ते प्रभवन्ति । विनिश्चयो निर्णयः । अर्थानां कार्यवस्तूनाम् । प्रारम्भः प्रवर्त्तनं कार्येष्विति शेषः । निर्वहणं सिद्धिः । पञ्च अङ्गानि सहायादीनि यस्य तादृशो यो मन्त्रः स एव मूलं यस्य सः । द्विरूपः कोषजदण्डजत्वेन द्विविधः । प्रभाव एव स्कन्धः काण्डो यस्य सः । चतुर्गुणोऽधिक उत्साहो विटपाः शाखा यस्य सः । द्विसप्ततिः प्रकृतयः स्वाम्यमात्यादयः पत्राणि यस्य सः । षाड्गुण्यं सन्धिविग्रहादि किसलयं पल्लवं यस्य सः । शक्तिर्बलं सिद्धिः कार्यसिद्धिश्च ते पुष्पं फलञ्च यस्य सः । एतत्सर्वं नयवनस्पतिविशेषणम् । नय-

❀ बालक्रीडा ❀

प्रभाव भी बहुत बढ़ गया । इसके अनन्तर शुभ दिन को मैंने पुरोहित द्वारा राजकुमार का मुण्डन संस्कार और यज्ञोपवीत कराया और नीतिशास्त्र पढ़ाते हुए राज्यकार्य का सञ्चालन प्रारम्भ किया । मैंने विचार किया कि राज्य तीन शक्तियों के अधीन रहता है । वे तीन शक्तियाँ हैं—मंत्र, प्रभाव और उत्साह । ये तीनों परस्पर एक दूसरी से सम्बद्ध होकर कार्यसाधन करती हैं । मंत्र से कर्तव्य कर्म का ज्ञान होता है । प्रभाव अर्थात् प्रभुशक्ति से कार्य में प्रवृत्ति होती है और उत्साहशक्ति से कार्यसिद्धि होती है । सहाय, साधन, उपाय, देश–कालका विभाग और विपत्ति का प्रतीकार ये पंचांग कहे जाते हैं । ये ही पांच अङ्ग नीतिरूपी वृक्ष के मूल हैं । कोष और दण्ड का प्रभाव उक्त वृक्ष का स्कन्ध है । कर्तव्य अर्थ के अतिशय स्थिर प्रयत्न को उत्साह कहते हैं । साम, दान, दण्ड और भेद

काधिकरणत्वादसहायेन दुरुपजीव्यः ।

(३७) यस्त्वयमार्यकेतुर्नाम मित्रवर्ममन्त्री स कोशलाभिजनत्वात्कुमारमातृपक्षो मन्त्रिगुणैश्च युक्तः तन्मतिमवमत्यैव ध्वस्तो मित्रवर्मा, स चेल्लब्धः पेशलम्' इति । अथ नालिजङ्घं रहस्यशिक्षयम्—'तात, आर्यमार्यकेतुमेकान्ते ब्रूहि—'को न्वेष मायापुरुषो य इमां राज्यलक्ष्मीमनुभवति, स चायमस्मद्बालो भुजङ्गेनामुना परिगृहीतः । किमुद्गीर्येत ग्रस्येत

❀ बालविबोधिनी ❀

वनस्पतिः नीतिवृक्षः । नेतुर्नायकस्य विजिगीषोरित्यर्थः । स नीतिवृक्षः । अनेकाधिकरणत्वात् नानाश्रयत्वात् अनेकविधत्वादिति यावत् । दुरुपजीव्यः कष्टेन संरक्षणीयः ।

(३७) कोशलाभिजनत्वात् कोशलवंशोत्पन्नत्वात् कोशलदेशीयत्वात् वा । कुमारस्य राजपुत्रस्य मातृपक्षस्तत्पक्षीयः । अवमत्य अनादृत्य । ध्वस्तो विनष्टः । स आर्यकेतुः । लब्धः प्राप्तोऽस्मदधीनः स्यादिति शेषः । पेशलं सुन्दरं शुभमिति वा । मायापुरुष ऐन्द्रजालिकः । भुजङ्गेन सर्पसदृशेन धूर्त्तेन वा । अमुना विश्रुते-

❀ बालक्रीडा ❀

ये चारो गुण उसकी शाखायें हैं । स्वामी, अमात्य, सुहृद्, कोष, राष्ट्र, दुर्ग, सेना और पुरवासी, इन आठ राज्याङ्गों के भेद-प्रभेद से नीतिवृक्ष के ७२ पत्र होते हैं । सन्धि, विग्रह, यान, द्वैध और समाश्रय ये ही नीतिवृक्ष के पल्लव हैं । प्रभाव, मन्त्र, उत्साह और इनकी सिद्धियाँ इसके पुष्प और फल हैं । यह नीतिरूपी वृक्ष राजा का बराबर उपकार करता रहता है ।

(३७) मित्रवर्मा का मंत्री आर्यकेतु कोशल देश में उत्पन्न होने के कारण कुमार की माता का पक्षपाती है और इस में मन्त्री के सभी गुण विद्यमान हैं । उसकी सलाह न मानने के कारण ही मित्रवर्मा को नीचा देखना पड़ा है । यदि आर्यकेतु कुमार के हाथ लग जाय तो बहुत अच्छा हो । इसके बाद नालीजंघ को एकान्त में ले जाकर मैंने शिक्षा देते हुए कहा-'तात ! तुम श्रद्धेय आर्यकेतु को एकान्त में ले जाकर कहो—'यह महापापी पुरुष कौन है, जो राजकुमार को अपने वश में करके राज्यलक्ष्मी का उपभोग कर रहा है ? इस दुष्ट ने मेरे

वा इति। स यद्वदिष्यति तदस्मि बोध्यः' इति। सोऽन्यदैवं मामावेदयत्—'मुहुरुपास्य प्राभृतैः, प्रवर्त्य चित्राः कथाः, संवाह्य पाणिपदम्, अतिविस्रम्भदत्तक्षणं तमप्राक्षं त्वदुपदिष्टेन नयेन। सोऽप्येवमकथयत्—'भद्र, मैवं वादीः। अभिजनस्य शुद्धिदर्शनम्, असाधारणं बुद्धिनैपुण्यम्, अपरिमाणमौदार्यम्, अत्याश्चर्यमस्त्रकौशलम्, अनल्पं शिल्पज्ञानम्, अनुग्रहार्द्रं चेतः, तेजश्चाप्यविषह्यमभ्यमित्रीणम्, इत्यस्मिन्नेव संनिपातिनो

❀ बालविबोधिनी ❀

नेत्यर्थः। उद्गीर्येत त्यज्येत। ग्रस्येत भक्ष्येत। बोध्यः विज्ञाप्यः। अन्यदा अन्यदिवसे। प्राभृतैरुपायनैः। प्रवर्त्य आरभ्य। संवाह्य मर्दयित्वा। अतिविस्रम्भेनाधिकविश्वासेन दत्तोऽर्पितः क्षणो येन तम् आर्यकेतुम्। अप्राक्षमिति प्रच्छधातोर्लुटि रूपम्। त्वया भवतोपदिष्टेन कथितेन। नयेन मार्गेण प्रकारेण वा। अभिजनस्य कुलस्य। शुद्धेर्वैमल्यस्य दर्शनं ज्ञापकम्। अतिमानुषमलौकिकम्। अनुग्रहेण दयया आर्द्रं स्निग्धम्। तेजः प्रतापः। अभ्यमित्रीणं शत्रून् प्रति प्रकटितमिति तेजोविशेषणम्। अविषह्यं परैः सोढुमशक्यम्। अस्मिन् विश्रुते इत्यर्थः।

❀ बालक्रीडा ❀

कुमार पर जैसे मोहिनी डाल दी है। आखिर; यह कुमार को छोड़ेगा या निगल ही जायगा?' इसका वे जो उत्तर दें, वह मुझे बताना।' दूसरे समय नालीजंघ ने आकर कहा—'आपकी आज्ञा से मैं आर्यकेतु के पास गया। विविध प्रकार से उनकी सेवा की, तरह-तरह के उपहार अर्पण किये और नाना प्रकार के वार्तालाप करके हाथ-पैर दाबा। इस प्रकार उनको अत्यन्त विश्वास दिलाकर मैंने आप की बतायी नीति के अनुसार पूछा। इस पर उन्होंने कहा—'भद्र! ऐसा मत कहो। उससे राजवंश विमल होगा। उसकी असाधारण बुद्धि है। उसमें अलौकिक बल है। उसमें असीम उदारता और आश्चर्यजनक अस्त्रकौशल है। उसमें अतुलित शिल्पज्ञान है। उसका मन दया से ओत-प्रोत है। उसका तेज दुःसह है और वह बड़ी वीरता के साथ शत्रुका सामना कर सकता है। मुझे तो ऐसा मालूम पड़ता है कि जो मानवोचित गुण एक पुरुष में कमी नहीं दीखते; उन

गुणाः येऽन्यत्रैकैकशोऽपि दुर्लभाः । द्विषतामेष चिरबिल्वद्रुमः, प्रह्वाणां तु चन्दनतरुः, तमुद्धृत्य नीतिज्ञम्मन्यमश्मकमिमं च राजपुत्रं पित्र्ये पदे प्रतिष्ठितमेव विद्धि । नात्र संशयः कार्यः' इति ।

(३८) तच्चापि श्रुत्वा भूयोभूयश्चोपदाभिर्विशोध्य तं मे मतिसहायमकरवम् । तत्सखश्च सत्यशौचयुक्तानमात्यान्विविधव्यञ्जनांश्च गूढपुरुषानुदपादयम् । तेभ्यश्चोपलभ्य लुब्धसमृद्धमत्युत्सिक्तमविधेयप्रायं च प्रकृतिमण्डलमलुब्धतामभिख्यापयन्, धार्मिकत्वमुद्भावयन्, नास्तिकान्कदर्थयन्,

❀ बालविबोधिनी ❀

सन्निपातिनः एकत्रावस्थायिनः । ये गुणाः । अन्यत्र अपरपुरुषे । एकैकश इति— सम्भूयावस्थानं तु दूरे, प्रत्येकमेकोऽपि दुर्लभ इत्यर्थः । चिरविल्वद्रुमः करञ्जवृक्षः, अनम्रः कण्टकाकीर्णश्च भवतीति तत्तादात्म्यारोपः । प्रह्वानां नम्राणाम् । चन्दनतरुरानन्ददायकः । उद्धृत्य विनाश्य । आत्मानं नीतिज्ञं मन्यत इति नीतिज्ञम्मन्यं नीतिज्ञाभिमानिनम् ।

(३८) उपदाभिः उपढौकनैः । विशोध्य सन्तोष्य । तमार्यकेतुम् । मतिसहायं बुद्धिसहायकम् । तत्सखः तत्सहायः । विविधव्यञ्जनान् नानावेषधारिणः । उदपादयम्—अजनयम् । तेभ्यः गूढपुरुषेभ्यः । लुब्धं लोभोपहतं, समृद्धं सधनञ्च । अत्युत्सिक्तम् अतिगर्वितम् । अविधेयप्रायं प्रायेणावशीभूतम् । एतानि प्रकृतिमण्डलस्य विशेषणानि । अलुब्धतां स्वकीयलोभशून्यताम् । कदर्थयन् गर्ह-

❀ बालक्रीडा ❀

सभी गुणों ने आकर इस में डेरा जमाया है। यह शत्रु के लिये कंटीला वृक्ष और नम्रजनों के लिए चन्दनतरु है। इसी ने उस नीति के अभिमानी अश्मकदेश के अधिपति को उजाड़ कर इस राजकुमार को इसके पिता के पद पर लाकर बैठाया है। इस विषय में तुम कुछ भी संशय मत करो।

(३८) उस वृद्ध मन्त्री का मनोभाव जानकर मैंने उसे विविध प्रकार के उपहार दे और उसका हृदय आप्यायित करके अपना सहायक बनाया। उसकी सहायता से मैंने विविध प्रकार के वेष धारण करनेवाले गुप्तचर बनाये। उन चरों के द्वारा मैंने प्रजा के भीतर रहने वाले लोभी, अभिमानी, किसी के वश में न होने वाले लोगों में अपनी अलुब्ध वृत्ति का प्रचार और धार्मिक भावना जाग्रत

कण्टकान्विशोधयन्, अमित्रोपधीरपघ्नन्, चातुर्वर्ण्यं च स्वधर्मकर्मसु स्थापयन्, अभिसमाहरेयमर्थानर्थमूला हि दण्डविशिष्टकर्मारम्भा न चान्यदस्ति पापिष्ठं तत्र दौर्बल्यात्, इत्याकलय्य योगानन्वतिष्ठम् ।

इति श्रीदण्डिनः कृतौ दशकुमारचरिते विश्रुतचरितं नामाष्टम उच्छ्वासः ।

❀ बालविबोधिनी ❀

यन् । कण्टकान् रिपून् । विशोधयन् उन्मूलयन् । अमित्राणां शत्रूणामुपधीः कपटानि । अपघ्नन् विफलयन् । अभिसमाहरेयं सञ्चिनुयाम्, उपार्जयेयमित्यर्थः । अर्थानिति शेषः । अर्थमूला अर्थप्रधानाः । दण्डानां दण्डसाध्यानां विशिष्टानां च कर्मणामारम्भा उद्योगाः । तत्र अर्थविषये । दौर्बल्यात् दौर्बल्यं विहाय । अन्यदपरं पापिष्ठं निकृष्टं पापं दोषो वा नास्तीति आकलय्य विचार्य । योगान् नानाविधोपायान् । अन्वतिष्ठम् आचरम् ।

इति श्रीताराचरणभट्टाचार्यकृतायां बालविबोधिनीसमाख्यायां दशकुमारचरितव्याख्यायामष्टम उच्छ्वासः ।

❀ बालक्रीडा ❀

करते हुए मैंने नास्तिक जनों को नीचा दिखाया । राज्य कार्य संचालन में जो बाधक थे, उन्हें उखाड़ फेंका । शत्रुओं की कूटनीति का शमन किया । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इन चारो वर्णों के लोगों को अपने-अपने धर्म पर चलाते हुए मैंने अर्थोपार्जन के उपाय निकाले । क्यों कि अर्थ से ही दण्ड और राज्यसम्बन्धी कार्य सिद्ध होते हैं । दुर्बलता से बढ़कर और कोई पाप नहीं है यह विचार कर मैं बल बढ़ाने का उपाय करने लगा ।

इति श्रीरामतेजपाण्डेयकृतदशकुमारचरितभाषानुवादे विश्रुतचरितं नामाष्टम उछ्वासः ।

उत्तरपीठिकायामुपसंहारः

(१) व्यचिन्तयं च—'सर्वोऽप्यतिशूरः सेवकवर्गो मयि तथानुरक्तो यथाज्ञया जीवितमपि तृणाय मन्यते। राज्यद्वितयसैन्यसामग्र्या च नाहमश्मकेन्द्राद्वसन्तभानोर्न्यूनो नीत्याविष्टश्च। अतो वसन्तभानुं पराजित्य विदर्भाधिपतेरनन्तवर्मणस्तनयं भास्करवर्माणं पित्र्ये पदे स्थापयितुमलमस्मि। अयं च राजसूनुर्भवान्या पुत्रत्वेन परिकल्पितः। अहं चास्य साहाय्ये नियुक्त इति सर्वत्र किंवदन्ती सञ्जातास्ति। अद्यापि चैतन्मत्कपटकृत्यं न केनापि विदितम्। अत्रस्थाश्चास्मिन्भास्करवर्मणि राजतनये 'अयमस्मत्स्वामिनाऽनन्तवर्मणः पुत्रो भवान्याः प्रसादादेतद्राज्यमवाप्स्यति' इति बद्धाशा वर्तन्ते। अश्मकेन्द्रसैन्यं च राजसूनोर्भवानीसाहाय्यं विदित्वा 'दैव्याः शक्तेः पुरो न बलवती मानवी शक्तिः' इत्यस्माभिर्विग्रहे चलचित्तमिवोपलक्ष्यते। अत्रत्याश्च मौलाः प्रकृतयः प्रथममेव राज-

---

(१) विश्रुत एवं कथयति व्यचिन्तयं चेति। चकारेण पूर्वोच्छ्वासान्ते उक्तस्य योगानन्दतिष्ठमित्यस्य समाहारः। तृणाय मन्यते—जीवितं तृणवत्त्यक्तुमर्हतीत्यर्थः।। राज्ययोर्द्वितयं द्वयं मित्रवर्मराज्यं प्रचण्डवर्मराज्यञ्च तस्य सैन्यसामग्र्या बलसम्पदा। न्यूनो हीनः। नीत्याविष्टो नीतिपरायणः। अलं समर्थः। किं वदन्ती जनरवः। अत्रस्था अत्र वर्त्तमाना जनाः। बद्धाशा घनाशाः। भवानीसाहाय्यं देव्यपि साहाय्यं करिष्यतीति। अस्माभिः सह विग्रहे युद्धे। चलचित्तं दोलायमानमानसं भीतमिति भावः। दानमानादिना आवर्जनेन प्रह्वी-

---

(१) विश्रुत के ऐसा कहनेपर मैं सोचने लगा—ये जितने भी शूर-वीरसमुदाय हैं वे सब मेरेपर इतनी दृढ़ भक्ति रखते हैं कि, आज्ञा देनेपर अपने प्राणोंको भी तृणके समान त्यागनेके लिये उद्यत हैं। दोनों साम्राज्योंकी सैन्यबल और युद्धास्त्रोंमें मैं, अश्मकेन्द्र वसन्तभानुसे न्यून नहीं हूँ तथा नीतिपरायण भी हूँ। अतएव अश्मकेन्द्र (वसन्तभानु) को पराजितकर विदर्भेश अनन्तवर्माके पुत्र भास्करवर्माको उनके पितृपद पर आरूढ़ करानेके लिये सर्वदा शक्तिशाली हूँ। इस राजपुत्रको देवी जगदम्बाने पुत्रके तुल्य माना है और मुझे उसकी सहायता करनेके लिये संस्थापित (नियोजित) किया है। सब जगह यह किंवदन्ती विख्यात है ही। मेरेद्वारा किया हुआ जाल (कपट) कर्म अभीतक कोई नहीं जानता है। यहांके निवासीजन इस राजपुत्र भास्करवर्माके विषयमें यही सोचकर आशान्वित हैं कि, 'यह भास्करवर्मा जो मेरे स्वामी अनन्तवर्माका

सुताभ्युदयाभिलाषिण्य इदानीं च पुनर्मया दानमानाद्यावर्जनेन विश्वासिता विशेषेण राजपुत्रमेवाभिकाङ्क्षन्ति । अश्मकेन्द्रान्तरङ्गाश्च भृत्या मदीयैर्विश्वास्यतमैः पुरुषैः प्रभूतां प्रीतिमुत्पाद्य मदाज्ञया रहसीत्युपजप्ताः—'यूयमस्मन्मित्राणि, अतोऽस्माकं शुभोदर्कं वचो वाच्यमेव । अत्र भवान्या राजसूनोः साहाय्यकाय विश्रुतं विश्रुतं नियुज्य तद्धस्तेनाश्मकेन्द्रस्य वसन्तभानोस्तत्पक्षे स्थित्वा ये चानेन सह योत्स्यन्ति तेषामप्यन्तकातिथिभवनम् । यावदश्मकेन्द्रेण स जन्यवृत्तिर्न जातस्तावदेनमनन्तवर्मतनयं भास्करवर्माणमनुसरिष्यथ । स वीतभयो भूयसीं प्रवृत्तिमासाद्य सप-

करणेन वशीकरणेनेति यावत् । प्रभूतामत्यधिकाम् । रहसि एकान्ते । इति वक्ष्यमाणप्रकारम् । उपजप्ताः भेदिताः । शुभोदर्कं कल्याणपरिणामकम् । वाच्यं कथनीयमस्माभिरिति शेषः । विश्रुतं प्रख्यातम् । विश्रुतं तदाख्यम् । तद्धस्तेन विश्रुतद्वारा । अनेन विश्रुतेन । अन्तकस्य यमस्य अतिथिभवनं यमालयगमनम् । यावत् यत्कालपर्यन्तम् । स विश्रुतः । जन्यवृत्तिः युद्धप्रवृत्तः सः यो

पुत्र है भवानीके अनुग्रहसे अवश्य इस राज्यको प्राप्त करेगा ।' अश्मकेन्द्रकी सेना भी, राजपुत्रके विषयमें कि, उन्हें भवानीकी सहायता है, ऐसा ज्ञात करके, कहती है 'दैवीशक्तिके आगे मानुषी शक्ति बलवती नहीं होती है' अतः अवश्य युद्धावसरपर वह भयभीत दिखायगी । यहाँकी प्रधान प्रजा पहिलेसे ही राजपुत्रका अभ्युदय चाहती है और अब तो, मेरेद्वारा दान–सम्मानसे विश्वसित हो, विशेषतया राजपुत्रकी ही उन्नति चाहती है । अश्मकेन्द्रके जो अन्तरङ्ग सेवक हैं वे मेरे विश्वसनीय पुरुषोंद्वारा प्रगाढ़ प्रीतिको प्राप्तकर एकान्तमें इस तरह भेदभाव करा देंगे अर्थात् अपनी सेनावालोंसे गुप्त रीतिसे कहेंगे—'हे मित्रो ! आप लोग मेरे सखा हैं, अत एव हमारा कर्त्तव्य है आपसे श्रेयस्करी बातें कह दें । इस राजपुत्रकी सहायता के लिये भवानीने विश्रुतकुमारको नियुक्त किया है यह बात सर्वथा प्रसिद्ध ही है । अतः उसके द्वारा नियुक्त होकर जो वीर, अश्मकेन्द्र वसन्तभानुके पक्षमें होकर भी, इसके साथ युद्ध करेगा, वह यमराजके घरका अतिथि होगा । जबतक अश्मकेन्द्रके साथ यह राजपुत्र युद्ध प्रवृत्त नहीं हुआ है तबतक आप लोग अनन्त वर्माके पुत्र भास्करवर्माका अनुसरण कर लें । जो लोग ऐसा कर लेंगे वे निर्भय होकर प्रचुर आदर पाकर परिजन सहित सुखसे जीवन व्यतीत करेंगे । जो इसके विरुद्ध करेंगे वे भवानीके त्रिशूलके वशीभूत होंगे—मर जायंगे । भवानीने मुझे यह विज्ञप्ति दी है कि मैं आप लोगोंको एक बार उपर्युक्त सूचना दे दूं । मेरी आप लोगोंके साथ मित्रता है अतः मेरे मुखसे (मेरे माध्यमसे) यह बात कहलायी गयी है ।'

रिजनः सुखेन निवत्स्यति न चेद्भवानीत्रिशूलवश्यो भविष्यति । भवान्याच समेत्याज्ञप्तमस्ति यदेकवारं सर्वेषां कथय । अतोऽस्माकं युष्माभिः सह मैत्रीमवबुध्यास्मन्मुखेन सर्वेभ्योऽपि गदितम् । वार्तामिमामाकर्ण्य तेऽश्मकेन्द्रान्तरङ्गभृत्या राजसूनोर्भवानीवरं विदित्वा पूर्वमेव भिन्नमनस आसन् । विशेषतश्च मदीयमिति वचनं श्रुत्वा ते सर्वेऽपि मद्वशे समभवन् ।

(२) एवं सर्वमपि वृत्तान्तमवबुध्याश्मकेन्द्रेण व्यचिन्ति—'यद्राजसूनोर्मौलाः प्रजास्ताः सर्वा अप्येनमेव प्रभुमभिलषन्ति । मदीयश्च बाह्य आभ्यन्तरो भृत्यवर्गो भिन्नमना इव लक्ष्यते । एवं यद्यहं क्षमामवलम्ब्य गृह एव स्थास्यामि तत उत्पन्नोपजापं स्वराज्यमपि परित्रातुं न शक्ष्यामि । अतो यावता भिन्नचित्तेन मदवबोधकं प्रकटयता मद्बलेन सह मिथोवचनं न संजातं तावतैव तेन साकं विग्रहं रचयामि इत्येवं विहिते सोऽवश्यं

भास्करवर्माणमनुयास्यति । भूयसीं प्रभूताम् । प्रवृत्तिं सम्मानम् । भवानीत्रिशूलवश्यो भवान्या विनाश्यः । अवबुध्य विचार्य । भिन्नमनसः चञ्चलचित्ताः ।

(२) मौलाः प्रजाः—प्रधानप्रकृतयः । एवं विश्रुतम् । क्षमामवलम्ब्य-युद्धमकृत्वा । उत्पन्नोपजापं जनितभेदम् । परित्रातुं रक्षितुम् । मदवबोधकं मम हृदयज्ञापकं वचनम् । प्रकटयता प्रकाशयता । मद्बलेन मम सैन्येन । मिथोवचनं

अश्मकेन्द्रके अन्तरङ्ग सेवकगण राजपुत्रपर भवानीका अनुग्रह जानकर प्रथमसे ही अन्यमनस्क हो रहे थे । मेरे वचनोंको सुनकर वे लोग सब मेरे वशीभूत हो गये ।

(२) अश्मकेन्द्रने इन सब वृत्तोंको सुनकर विचारा—'राजपुत्रकी जितनी मुख्य प्रजा है, वह सबकी सब उसी राजपुत्रको राजा बनानेकी इच्छा कर रही है । मेरे बाह्य और अन्तरङ्ग सेवकगण अन्यमनस्क दीख रहे हैं । ऐसी दशामें यदि मैं शान्ति रखकर घरमें बैठा रहूँगा तो, ये लोग भेदभाव करके मुझे अपने राज्यपर प्रभुत्व करनेके अयोग्य बना देंगे-अपने राज्यपर शासन करने योग्य न रह जाऊँगा । अत एव जबतक अन्यमनस्क सेवक, मेरी अवज्ञा करनेवाले, मेरी अन्य प्रजाके साथ एकान्तमें बात-चीत करने न पायें तबतक मैं उन प्रजाओं को साथ लेकर युद्ध छेड़ दूँ । ऐसी स्थितिपर वह राजपुत्र मेरे साथ युद्धमें एक क्षण भी नहीं टिकेगा । ऐसा निश्चय करके अन्यायसे प्राप्त परराज्यके पापसे प्रेरित होकर अश्मकेन्द्र सेनाके साथ मेरी सेनाकी ओर आया मानो, वह मृत्युके मुखकी ओर आ रहा था । राजपुत्र, अश्मकेन्द्रको आगे आते जानकर, अग्रसर हो गया । और मैं अश्मकेशकी ओर ही घोड़ेपर सवार होकर दौड़ गया । तब उसकी सम्पूर्ण सेना यह सोचने लगी कि, अवश्य यह भवानीके

मदग्रे क्षणमवस्थास्यति' इति निश्चित्यान्यायेन परराज्यक्रमणपाकप्रेरितः ससैन्यो मृत्युमुखमिवास्मत्सैन्यमभ्ययात्। तमभ्यायान्तं विदित्वा राजपुत्रः पुरोऽभवत्। अतोऽश्मकेन्द्रमेव तुरगाधिरूढो यान्तमभ्यसरम्। तावत्सर्वा एव तत्सेना 'यदयमेतावतोऽपरिमितस्यास्मत्सैन्यस्योपर्येक एवाभ्यागच्छति तत्र भवानीवर एवासाधारणं कारणं नान्यत्' इति निश्चित्यालेख्यलिखिता इवावस्थिताः।

(३) ततो मयाभिगम्य सङ्गराय समाहूतो वसन्तभानुः समेत्य मामसिप्रहारेण दृढमभ्यहनत्। अहं च शिक्षाविशेषविफलिततदसिप्रहारः प्रतिप्रहारेण तं प्रहृत्यावकृत्तमश्मकेन्द्रशिरोऽवनौ विनिपात्य तत्सैनिकानवदम्—'अतःपरमपि ये युयुत्सवो भवन्ति ते समेत्य मया युध्यन्ताम्। न चेद्राजतनयचरणप्रणामं विधाय तदीयाः सन्तः स्वस्ववृत्त्युपभोगपूर्वकं निजान्निजानधिकारान्निःशङ्कं परिपालयन्तः सुखेनावतिष्ठन्तु'

परस्परभेदवचनम्। तेन विश्रुतेन। स–विश्रुतः। परराज्यस्य क्रमणं अन्यायेन ग्रहणं तस्य पाकः परिणामः पापमित्यर्थस्तेन प्रेरितः। पुरः अग्रतः। अभ्यसरम् अभिमुखमगच्छम्। अयं विश्रुतः। अपरिमितस्य असंख्यस्य। एक एकाकी। आलेख्यलिखितः चित्रार्पितः।

(३) संगराय युद्धार्थम्। शिक्षाविशेषेण शिक्षानैपुण्येन विफलितो व्यर्थीकृतस्तस्य वसन्तभानोरसिप्रहारः खड्गाघातो येन तादृशः। प्रतिप्रहारेण प्रत्याघातेन। अवकृत्तं छिन्नम्। तदीयाः राजपुत्रपक्षीयाः। आनम्य प्रणम्य।

दिव्यवरकी शक्ति है कि, यह एकाकी हमारी अपरिमित सेनाके ऊपर दौड़ आया है और कोई अन्य कारण नहीं है। ऐसा सोचते हुए सेनाके लोग चित्रगतके समान खड़े रहे।

(३) इतनेमें मैंने पास जाकर अश्मकेन्द्रको युद्धके लिये ललकारा तो, अश्मकेन्द्रने मुझपर तलवारका कठिन प्रहार किया। मैंने शस्त्रशिक्षा विशेषसे उस तलवारके प्रहारको विफल कर दिया। फिर मैंने उसके ऊपर प्रतिप्रहार किया तथा उसके शिरको काटकर पृथिवीपर गिरा दिया और उसके सैनिकोंसे कहा—'इसके अतिरिक्त यदि कोई युद्धकी इच्छा रखते हों तो, वह मिलकर मेरे साथ युद्ध करें। अन्यथा, इस राजपुत्रके चरणोंमें प्रणामकर, उसके सेवक होकर, अपनी-अपनी वृत्तिका उपभोग करते हुए, अपने-अपने अधिकारोंके साथ निर्भय होकर, सुखसे जीवन यापन करें।' मेरे वाक्यों को सुनकर सभी अश्मकेन्द्रके सेवक शीघ्र ही अपने-अपने वाहनोंसे उतरकर राजपुत्रको प्रणामकर उसके अधीन हो गये। तत्पश्चात् मैंने अश्मकेन्द्रके राजको राजपुत्रके अधीन कर दिया।

इति । मद्वचनश्रवणानन्तरं सर्वेऽप्यश्मकेन्द्रसेवकाः स्वस्ववाहनात्सहसावतीर्य राजसूनुमानम्य तद्वशवर्तिनः समभवन् । ततोऽहं तदश्मकेन्द्रराज्यं राजसूनुसाद्विधाय तद्रक्षणार्थं मौलान्स्वानधिकारिणो नियुज्यात्मीभूतेनाश्मकेन्द्रसैन्येन च साकं विदर्भानभ्येत्य राजधान्यां तं राजतनयं भास्करवर्माणमभिषिच्य पित्र्ये पदे न्यवेशयम् ।

(४) एकदा च मात्रा वसुमत्या सहावस्थितं तं राजानं व्यजिज्ञपम्—'मयैकस्य कार्यस्यारम्भश्चिकीर्षितोऽस्ति । स यावन्न सिध्यति तावन्मया न कुत्राप्येकत्रावस्थातुं शक्यम् । अत इयं मद्भार्या त्वद्भगिनी मञ्जुवादिनी कियन्त्यहानि युष्मदन्तिकमेव तिष्ठतु । अहं च यावदिष्टजनोपलम्भः कियन्तमप्यनेहसं भुवं विभ्रम्य तमासाद्य पुनरत्र समेष्यामि' इत्याकर्ण्य मात्रानुमतेन राज्ञाहमगादि—'यदेतदस्माकमेतद्राज्योपलम्भलक्षणस्यैताव-

---

राजसूनुसाद् राजपुत्राधीनम् । मौलान् प्रधानान् । स्वान् आत्मीयान् । आत्मीभूतेन स्ववशीभूतेन । पित्र्ये पदे पितृसिंहासने । न्यवेशयम् अस्थापयम् ।

(४) वसुमत्या अनन्तवर्मपत्न्या । राजानं भास्करवर्माणम् । मद्भार्या मम पत्नी । त्वद्भगिनी तव स्वसा । कियन्त्यहानि कतिचिद्दिनानि । यावता कालेन इष्टजनस्य वाञ्छितजनस्योपलम्भः प्राप्तिर्भवेत्तावदित्यर्थः । अनेहसं कालम् । तम् इष्टजनम् । समेष्यामि आगमिष्यामि । राज्यधूः राज्यभारः । निर्वाह्या वोढुं शक्या । प्रत्यवादि प्रत्युक्तः । चिन्तालवः चिन्तालेशः । सचिवरत्नं

और उसके संरक्षणके लिये अपने मुख्य प्रजाजनोंको नियुक्त किया अपने वशमें आये हुए अश्मकेन्द्रके सैनिकवीरोंके साथ विदर्भ देशमें आकर उस राजधानीमें राजपुत्र भास्करवर्माका राज्याभिषेक करके उसे पिताके पदपर आसीन किया ।

(४) माता वसुमतीके साथ बैठे हुए उन राजा भास्करवर्मासे एक दिन मैंने सूचित किया—'मैं एक कार्यको प्रारम्भ करनेकी इच्छा कर चुका हूं । वह जबतक सिद्ध न हो जायगा तबतक एक स्थानमें कहीं भी स्थिर नहीं रह सकता । अतएव यह मेरी पत्नी आपकी बहिन मञ्जुवादिनी कुछ दिनोंतक आपके पास ही रहे । जबतक मैं अपने इष्ट जनको प्राप्त करनेके लिये कुछ समयतक पृथिवीका परिभ्रमण करूं और उसे प्राप्त करके पुनः यहांपर आ जाऊं ।' यह सुनकर माताकी राय करके राजाने कहा—'हम लोगोंको यह जो राज्य प्राप्त हुआ है और उसका अभ्युदय हुआ उसके असाधारण हेतु (मुख्य कारण) आप ही हैं । आपके विना हम लोग एक क्षण भी राज्यभार वहन करनेमें असमर्थ हैं । अत एव आप यह क्या

तोऽभ्युदयस्यासाधारणो हेतुर्भवानेव। भवन्तं विना क्षणमप्यस्माभिरियं राज्यधूर्न निर्वोढ्या। अतः किमेवं वक्ति भवान्' इत्याकर्ण्य मया प्रत्यवादि 'युष्माभिरयं चिन्तालवोऽपि न चित्ते चिन्तनीयः। युष्मद्गृहे यः सचिवरत्नमार्यकेतुरस्ति स ईदृग्विधानामनेकेषां राज्यानां धुरमुद्वोढुं शक्तः। ततस्तं तत्र नियुज्याहं गमिष्यामि' इत्यादिवचनसंदोहैः प्रलोभितोऽपि सजननीको नृपोऽनेकैराग्रहैर्मां कियन्तमपि कालं प्रयाणोपक्रमान्न्यवर्तयत्। उत्कलाधिपतेः प्रचंडवर्मणो राज्यं मह्यं प्रादात्। अहं च तद्राज्यमात्मसात्कृत्वा राजानमामन्त्र्य यावत्त्वदन्वेषणाय प्रयाणोपक्रमं करोमि तावदेवाङ्गनाथेन सिंहवर्मणा स्वसाहाय्यायाकारितोऽत्र समागतः पूर्वपुण्यपरिपाकात्स्वामिना समगंसि।

(५) ततस्ते तत्र संगता अपहारवर्मोपहारवर्मार्थपालप्रमतिमित्रगुप्तमन्त्रगुप्तविश्रुताः कुमाराः पाटलिपुरे यौवराज्यमुपभुञ्जानं समाकारणे पूर्वकृतसंकेतं वामलोचनया भार्यया सह कुमारं सोमदत्तं सेवकैरानाय्य सराजवाहनाः संभूयावस्थिता मिथः प्रमोदसंवलिताः कथा यावद्विदधति

मन्त्रिश्रेष्ठः। वचनसन्दोहैः वाक्यसमूहैः। सजननीकः समातृकः। प्रयाणोपक्रमात् प्रस्थानारम्भात्। आत्मसात्कृत्वा स्वाधीनीकृत्य। राजानं भास्करवर्माणम्। आमन्त्र्य निवेद्य। त्वदन्वेषणाय राजवाहनान्वेषणायेत्यर्थः। आकारित आहूतः। पूर्वपुण्यपरिपाकात् प्राक्तनपुण्यफलात्। स्वामिना भवता। समगंसि सम्मिलितः। सम्पूर्वकाद्गम्धातोः कर्मणि लुङ्।

(५) तत्र राजवाहनसमीपे। सङ्गताः मिलिताः। समाकारणे आह्वाने।

कहते हैं।' ऐसा श्रवणकर मैंने प्रत्युत्तर दिया—'आप इसकी अणुमात्र भी चिन्ता न करें आपके घरमें जो श्रेष्ठ सचिव आर्यकेतु हैं वे ऐसे अनेकों राज्योंके भारको वहन करनेमें समर्थ हैं। इससे मैं उन्हें सौंपकर (परदेश) जाऊंगा।' इस रीतिसे वाक्य प्रलोभन देनेपर भी वह रानी सहित राजा मुझे बहुत दिनोंतक जानेसे रोके रहा। उत्कलाधिपति प्रचण्डवर्माका राज्य मुझे दे दिया। मैंने उस राज्यको प्राप्तकर राजासे निवेदन करके जब तक अन्वेषण करनेको जाना चाहता था कि अङ्गनाथ सिंहवर्माद्वारा सहायताके लिये बुलाया गया और यहाँ आनेपर पूर्वजन्मके पुण्यप्रभावसे स्वामीके दर्शन हो गये।

(५) इसके पश्चात् उस पाटलिपुत्र (पटना) में एकत्र हुए अपहारवर्मा, उपहारवर्मा, अर्थपाल, प्रमति, मित्रगुप्त, मन्त्रगुप्त और विश्रुत कुमारगण यौवराज्य पदके आनन्दको लूटते हुए पूर्वकृत संकेतसे सुन्दर नेत्रोंवाली भार्याके साथ कुमार सोमदत्तको

तावत्पुष्पपुराद्राज्ञो राजहंसस्याज्ञापत्रमादाय समागता राजपुरुषाः प्रणम्य राजवाहनं व्यजिज्ञपन्–'स्वामिन् , एतज्जनकस्य राजहंसस्याज्ञापत्रं गृह्यताम्' इत्याकर्ण्य समुत्थाय भूयोभूयः सादरं प्रणम्य सदसि तदाज्ञापत्रमग्रहीत् । शिरसि चाधाय तत उत्तार्योत्कील्य राजा राजवाहनः सर्वेषां शृण्वतामेवावाचयत्–'स्वस्ति श्रीपुष्पपुरराजधान्याः श्रीराजहंसभूपतिश्चम्पानगरीमधिवसतो राजवाहनप्रमुखान् कुमारानाशास्याज्ञापत्रं प्रेषयति । यथा यूयमितो मामामन्त्र्य प्रणम्य प्रस्थिताः पथि कस्मिंश्चिद्वनोद्देश उपशिवालयं स्कन्धावारमवस्थाप्य स्थिताः । तत्र राजवाहनं शिवपूजार्थं निशि शिवालये स्थितं प्रातरनुपलभ्यावशिष्टाः सर्वेऽपि कुमाराः 'सहैव राजवाहनेन राजहंसं प्रणंस्यामो न चेत्प्राणांस्त्यक्ष्यामः' इति प्रतिज्ञाय सैन्यं परावर्त्य राजवाहनमन्वेष्टुं पृथक्प्रस्थिताः । एवं भवद्वृत्तान्तं ततः

पूर्वकृतसंकेतं–पूर्वं प्राक् कृतः संकेतो येन तम् । सेवकैर्भृत्यैः । आनाय्य आनीयेत्यर्थः । संभूय मिलित्वा । मिथः परस्परम् । यावत्–यावत्कालपर्यन्तम् । भूयोभूयः वारंवारम् । आधाय संस्थाप्य । ततः मस्तकात् । उत्तार्य अवतार्य ।

सेवकोंद्वारा बुलाकर राजवाहनके सहित एक साथ प्रमपूर्वक आपसमें कथा वार्त्ता कह रहे थे कि उसी समय पुष्पपुरसे राजा राजहंसके आज्ञापत्रको लेकर, राजसेवकगण आये । राजवाहनको उन्होंने प्रणाम करके विज्ञापित किया—'हे स्वामिन् ! अपने जनक राजा राजहंसका यह आज्ञापत्र लीजिये ।' यह सुनकर सभामें बार-बार उस पत्रको प्रणाम करके ग्रहण किया । फिर शिरपर धरकर पुनः शिरसे उतारकर राजा राजवाहनने सबको सुनाते हुए ही वह पत्र पढ़ा—'स्वस्ति श्रीपुष्पपुरी राजधानीसे श्री राजहंस भूपति चम्पानगरीमें अधिवास करनेवाले राजवाहन आदि सभी कुमारोंको आशीर्वाद देकर आज्ञापत्र भेज रहा है कि आप लोगोंने मुझे प्रणाम करके और मुझसे आज्ञा लेकर गमन किया । मार्गमें एक शिवमन्दिरके समीप शिविरमें ठहरे । वहाँपर रातमें शिवपूजनके लिये बैठे हुए राजकुमारको प्रभातमें न पाकर सभी कुमारोंने यह प्रतिज्ञा की कि 'हम लोग राजवाहनके साथ ही राजहंसको प्रणाम करेंगे नहीं तो प्राणोंको त्याग देंगे ।' इस प्रकार प्रतिज्ञा करके उन लोगोंने सेनाको लौटा दिया और राजवाहनका अन्वेषण करनेके लिये अलग-अलग चल पड़े । आप लोगोंके ऐसे समाचारको लौटे हुए सैनिकोंके मुखसे सुनकर मैं और आप लोगोंकी माता असहनीय दुःखरूपी समुद्रमें डूबकर दोनों जने वामदेवके आश्रममें गये कि यह वृत्तान्त उन्हें ज्ञात कराकर हम दोनों 'प्राणपरित्याग कर देंगे' ऐसा निश्चय करके दोनों जने उनके आश्रममें उन मुनिको प्रणाम करके जब

प्रत्यावृत्तानां सैनिकानां मुखादाकर्ण्यासह्यदुःखोदन्वति मग्नमनसावुभावहं युष्मज्जननी च 'वामदेवाश्रमं गत्वैतद्वृत्तान्तं तद्विदितं विधाय प्राणपरित्यागं कुर्वः' इति निश्चित्य तदाश्रममुपगतौ तं मुनिं प्रणम्य यावत्स्थितौ तावदेव तेन त्रिकालवेदिना मुनिना विदितमेवास्मन्मनीषितं निश्चयमवबुध्य प्राबाचि—'राजन्, प्रथममेवैतत्सर्वं युष्मन्मनीषितं विज्ञानबलाद्ज्ञायि। यदेते त्वत्कुमारा राजवाहननिमित्ते कियन्तमनेहसमापदमासाद्य भाग्योदयादसाधारणेन विक्रमेण विहितदिग्विजयाः प्रभूतानि राज्यान्युपलभ्य षोडशाब्दान्ते विजयिनं राजवाहनं पुरस्कृत्य प्रत्येत्य तव वसुमत्याश्च पादानभिवाद्य भवदाज्ञाविधायिनो भविष्यन्ति। अतस्तन्निमित्तं किमपि साहसं न विधेयम्' इति। तदाकर्ण्य तत्प्रत्ययाद्धैर्यमवलम्ब्याद्यप्रभृत्यहं देवी च प्राणमधारयाव। इदानीमासन्नवर्तिन्यवधौ वामदेवाश्रमे गत्वा विज्ञप्तिः कृता—'स्वामिन्, त्वदुक्तावधिः पूर्णप्रायो भवति तत्प्रवृ-

उत्कीलय उन्मोच्य। अवाचयत् अपठत्। आशास्य आशीर्भिरभिनन्द्य। इतः पुष्पपुरात्। आमन्त्र्य निवेद्य। उपशिवालय शिवालयसमीपे। स्कन्धावारं शिबिरम्। अनुपलभ्य अप्राप्य। असह्यदुःखोदन्वति दुःसहदुःखसागरे। अहं राजहंस इत्यर्थः। युष्मज्जननी वसुमतीत्यर्थः। तद्विदितं—तेन वामदेवेन विदितं ज्ञातम्। निश्चयमवबुध्य आवां प्राणपरित्यागे कृतनिश्चयाविति ज्ञात्वेत्यर्थः। विज्ञानबलात् ज्ञानप्रभावात्। अनेहसं कालम्। पुरस्कृत्य अग्रे कृत्वा। प्रत्येत्य प्रत्यावृत्य। भवदाज्ञाविधायिनो भवदादेशपालकाः। तत्प्रत्ययात् तस्य वामदेवस्य

तक बैठे तब तक उन त्रिकालवेत्ता महामुनिने हम लोगोंके मनकी इच्छा जान ली। हमारे निश्चयको ज्ञातकर मुनिने कहा—'हे राजन्! विज्ञानके बलसे (योगप्रभावसे) मैंने आपकी मनोकामना पूर्वमें ही ज्ञात कर ली। ये सब कुमार राजवाहनके लिये अनेक प्रकारके कष्टोंको कुछ कालतक भोगेंगे। भाग्यके उदय होनेपर असाधारण पराक्रमसे दिग्विजयकर अनेकों राज्योंको प्राप्तकर सोलह वर्षके अन्तमें राजवाहनको आगेकर आपके और रानी वसुमतीदेवीके चरणोंको प्रणाम करके आप लोगोंकी आज्ञामें दृढ रहेंगे अतः उन लोगोंके लिये कोई साहसका काम आत्महत्या आदि न करें।' ऐसी मुनिवाणी सुनकर उसी विश्वाससे धीरता धारण करके आजतक मैं और देवी वसुमती प्राणोंको धारण किये हुए हैं। अब वह अवधि समीप आई जानकर हम दोनों वामदेवजीके आश्रममें गये और उनसे प्रार्थना की—'हे प्रभो! आपके कथनानुसार वह समय प्रायः समाप्तिपर है। क्या आप इस समय उन लोगोंके (कुमारोंके) विषयमें कुछ

त्तिस्त्वयाद्यापि विज्ञायते' इति । श्रुत्वा मुनिरवदत्—'राजन्, राजवाहनप्रमुखाः सर्वेऽपि कुमारा अनेकान्दुर्जयाञ्शत्रून्विजित्य दिग्विजयं विधाय भूवलयं वशीकृत्य चम्पायामेकत्र स्थिताः । तवाज्ञापत्रमादाय तदानयनाय प्रेष्यन्तां शीघ्रमेव सेवकाः' इति मुनिवचनमाकर्ण्य भवदाकारणायाज्ञापत्रं प्रेषितमस्ति । अतः परं चेत्क्षणमपि यूयं विलम्बं विधास्यथ ततो मां वसुमतीं च मातरं कथावशेषावेव श्रोष्यथेति ज्ञात्वा पानीयमपि पथि भूत्वा पेयम् इति ।

(६) एवं पितुराज्ञापत्रं मूर्ध्नि विधृत्य गच्छेमेति निश्चयं चक्रुः । अथ वशीकृतराज्यरक्षापर्याप्तानि सैन्यानि समर्थतरान्पुरुषानाप्तान्स्थाने स्थाने नियुज्य कियता सैन्येन मार्गरक्षां विधाय पूर्ववैरिणं मालवेशं मानसारं पराजित्य तदपि राज्यं वशीकृत्य पुष्पपुरे राज्ञो राजहंसस्य देव्या वसुमत्याश्च पादान्नमस्यामः । एवं निश्चित्य स्वस्वभार्यासंयुताः परिमितेन सैन्येन मालवेशं प्रति प्रस्थिताः । प्राप्य चोज्जयिनीं तदैव सहायभूतैस्तैः कुमारैः परिवृतेन राजवाहनेनातिबलवानपि मालवेशो मानसारः

प्रत्ययाद्विश्वासात् । आसन्नवर्तिनि समीपमागते । अवधौ युष्मत्समागमनिर्दिष्टदिवसे । कथावशेषौ मृतौ । पानीयमपीति–आज्ञापत्रप्राप्त्यनन्तरमेव प्रस्थानं विधेयम् पिपासापि चेत्तदा बाधेत तदा मार्गं निष्क्रम्यैव जलं पेयमिति भावः ।

(६) वशीकृतेति–वशीकृतानामधीनानां राज्यानां रक्षार्थे पर्याप्तानि

जानते हैं ?' मुनिवरने सुनकर उत्तर दिया—'हे राजन् ! राजवाहन आदि सभी कुमारगण अनेक दुर्जय शत्रुओंको जीतकर दिग्विजयका विधान करके पृथ्वीमण्डलको वशमें करके, अधुना चम्पानगरीमें एकत्र हुए हैं। अपना आज्ञापत्र देकर उनको बुलानेके लिये सेवकोंको भी शीघ्र भेजिये ।' ऐसे मुनिके वचनोंको सुनकर आप लोगोंको बुलानेके लिये आज्ञापत्र भेजा है । इसमें यदि आप लोग क्षण भर भी विलम्ब करेंगे तो मुझे और माता वसुमतीका कथावशेष ही सुनेंगे । आप लोग जल भी मार्गमें ही पीजियेगा ।

(६) ऐसी पिताकी आज्ञाको शिरपर धारण करके 'चलना चाहिये' यह निश्चय किया । तत्पश्चात् जीते हुए राज्योंमें पर्याप्त रक्षा करके, प्रचुर सेनाको, समर्थ आत्मीयजनोंको स्थान-स्थानपर नियुक्त करके, कुछ सेनासे मार्गकी रक्षा करके, पूर्ववैरी मालवेश मानसारको पराजित करके, उसके राज्यको आत्मसात् करके, पुष्पपुरमें राजहंस और देवी वसुमतीके चरणोंको प्रणाम करेंगे। ऐसा निश्चय करके अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ परिमित सेनाके साथ मालवेशके प्रति चल पड़े। उज्जयिनी नगरीमें

क्षणेन पराजिग्ये निहतश्च । ततस्तद्दुहितरमवन्तिसुन्दरीं समादाय चण्डवर्मणा तन्मन्त्रिणा पूर्वं कारागृहे रक्षितं पुष्पोद्भवं कुमारं सकुटुम्बं तत उन्मोचितं सह नीत्वा मालवेन्द्रराज्यं वशीकृत्य तद्रक्षणाय कांश्चित्सैन्यसहितान्मन्त्रिणो नियुज्यावशिष्टपरिमितसैन्यसहितास्ते कुमाराः पुष्पपुरं समेत्य राजवाहनं पुरस्कृत्य तस्य राजहंसस्य मातुर्वसुमत्याश्च चरणानभिवन्दितवन्तः । तौ च पुत्रसमागमं प्राप्य परमानन्दमधिगतौ । ततो राज्ञो वसुमत्याश्च देव्याः समक्षं वामदेवो राजवाहनप्रमुखाणां दशानामपि कुमाराणामभिलाषं विज्ञाय तानाज्ञापयत्–'भवन्तः सर्वेऽप्येकवारं गत्वा स्वानि स्वानि राज्यानि न्यायेन परिपालयन्तु । पुनर्यदेच्छा भवति तदा पित्रोश्चरणाभिवन्दनायागन्तव्यम्' इति । ततस्ते सर्वेऽपि कुमारास्तन्मुनिवचनं शिरस्याधाय तं प्रणम्य पितरौ च, गत्वा दिग्विजयं विधाय प्रत्यागमनान्ते स्वस्व-

समर्थानि । आप्तान् विश्वस्तान् । परिमितेन स्वल्पेन । तद्दुहितरं मानसारनन्दिनीम् । ततः कारागारात् । तौ च–वसुमतीराजहंसौ । तान् कुमारान् । अतिदुर्घटानि दुःसाध्यानि । मनुजमनोरथाधिकं यत्तु मनुष्या मनसापि कल्पयितुं

पहुंचकर उन्हीं कुमारोंकी सहायतासे, परिमित सेनासे बलवान मालवेश मानसारको क्षणभरमें पराजित करके मार डाला । तत्पश्चात् उस मालवेशकी कन्या अवन्तिसुन्दरीको लेकर उसके मन्त्री चण्डवर्माको जो पहिलेसे ही कारागारमें बन्द था उस पुष्पोद्भव कुमारको कुटुम्ब सहित मुक्त करके अपने साथ लेकर और मालवेन्द्रके राज्यको अधीन करके, उसकी रक्षाके लिये कुछ सेनाके साथ आत्मीय सचिवको वहाँ नियुक्त करके, कुछ परिमित सेनाके साथ वे कुमारगण पुष्पपुरमें आकर, राजवाहनको आगे करके, उन राजा राजहंस और रानी वसुमतीके चरणोंको उन कुमारोंने खूब अभिनन्दन किया । वे दोनों राजा-रानी भी पुत्रोंकी प्राप्तिपर बड़े हर्षित हुए । तब फिर राजा और रानी वसुमतीके समक्ष वामदेवमुनिने दशों कुमार राजवाहन आदिके मनोगत अभिलाषको जानकर कहा—'आप लोग फिर एक बार जाकर अपने-अपने राज्यका न्यायपूर्वक शासन करें और पुनः जब आप लोगोंकी इच्छा होवे तब पिता-माताके चरणस्पर्शको आवें ।' ततः वे सब राजकुमार उन मुनि–वचनोंको शिरपर धारण करके तथा उन्हें और माता-पिताको प्रणाम करके चले गये । जाकर दिग्विजयका विधान करके लौट आये और अपने-अपने वृत्तान्तको अलग-अलग मुनिराजसे उन कुमारोंने निवेदित किया । माता-पिता भी, कुमारोंके दुःसाध्य चरित तथा पराक्रमोंको सुनकर परम प्रमुदित हुए । तब राजा राजवाहनने मुनिवरसे निवेदन किया—'हे

वृत्तं पृथक्पृथङ्मुनिसमक्षं न्यवेदयन् । पितरौ च कुमाराणां निजपराक्रमावबोधकान्यतिदुर्घटानि चरितान्याकर्ण्य परमानन्दमाप्नुताम् । ततो राजा मुनिं सविनयं व्यजिज्ञपत्—'भगवन्, तव प्रसादादस्माभिर्मनुजमनोरथाधिकमवाङ्मनसगोचरं सुखमधिगतम् । अतःपरं मम स्वामिचरणसंनिधौ वानप्रस्थाश्रममधिगत्यात्मसाधनमेव विधातुमुचितम् । अतः पुष्पपुरराज्ये मानसारराज्ये च राजवाहनमभिषिच्यावशिष्टानि राज्यानि नवभ्यः कुमारेभ्यो यथोदितं संप्रदाय ते कुमारा राजवाहनाज्ञाविधायिनस्तदेकमत्यावर्तमानाश्चतुरुदधिमेखलां वसुंधरां समुद्धृत्य कण्टकानुपभुञ्जन्ति तथा विधेयं स्वामिना' इति । तेषां तत्पितुर्वानप्रस्थाश्रमग्रहणोपक्रमनिषेधे भूयां समाग्रहं विलोक्य मुनिस्तानवदत्—'भोः कुमारकाः, अयं युष्मज्जनक एतद्वयःसमुचिते पथि वर्तमानः कायक्लेशं विनैव मदाश्रमस्थो वानप्रस्थाश्रमाश्रयणं चिकीर्षुः सर्वथा भवद्भिर्न निवारणीयः । अत्र स्थितस्त्वयं भग-

नार्हन्ति इति भावः । अवाङ्मनसगोचरम् अनिर्वाच्यमचिन्त्यञ्च । स्वामिचरणसन्निधौ भवत्पादसमीपे । आत्मसाधनमात्मसाक्षात्कारः । परमात्मचिन्तनं वा । यथोदितं तेषां वचनानुसारेण । स्वामिना भवता वामदेवेनेत्यर्थः । तेषां कुमाराणाम् । एतद्वयःसमुचिते वार्द्धक्योचिते पथि मार्गे । वानप्रस्थाश्रमग्रहणयोग्ये

भगवन् ! आपकी कृपासे हमने मनुष्यके कल्पनातीत मनोरथोंके दुःखके अनुभवको किया । अब हमारी इच्छा है कि आपके चरणके समीपमें वानप्रस्थाश्रम ग्रहण कर, योग साधन करनेके औचित्यकी प्रतीति होती है । इस कारण पुष्पपुर राज्य और मानसारके राज्यपर राजवाहनका राज्याभिषेक करके, शेष राज्योंपर नव कुमारोंको, जिस राज्यको जो कुमार चाहे उसे वह राज्य देकर उन कुमारोंको राजवाहनकी आज्ञा माननेवाला बनाकर, एकमत होकर उन लोगोंको चारों समुद्रोंकी करधनीवाली भूमिके भारको ग्रहण करनेवाला बनाकर, राज्यकण्टकोंको निकालकर राज्यसुखको वे लोग भोगें ऐसा ही विधान आपके द्वारा होना चाहिये' । पिताकी ऐसी इच्छापर उन कुमारोंने वानप्रस्थ ग्रहण न करनेके लिये अति आग्रह किया । ऐसी अवस्था देखकर वामदेवमुनिने उन कुमारोंसे कहा—'हे कुमारो ! ये आपके पिताजी अपनी अवस्थाके अनुरूप मार्गपर चलनेवाले हैं । शरीर-कष्टके विना ही मेरे आश्रममें रहकर वानप्रस्थाश्रमका आश्रयण करना चाहते हैं, अतः आप लोगोंके द्वारा इनकी यह इच्छाका दमन न किया जाय । यहाँ रहकर ये ईश्वर-चिन्तन करके भगवद्भक्ति प्राप्त करेंगे । आप लोग पिताके साथ रहकर सुख न पावेंगे ।' महर्षि वामदेवकी आज्ञा प्राप्त कर उन कुमारोंने पिता राजहंसको वानप्रस्थ-

वद्भक्तिमुपलप्स्यते। भवन्तश्च पितृसन्निधौ न सुखमवाप्स्यन्ति' इति। महर्षेराज्ञामधिगम्य ते पितुर्वानप्रस्थाश्रमाधिगमप्रतिषेधाग्रहमत्यजन्। राजवाहनं पुष्पपुरेऽवस्थाप्य तदनुज्ञया सर्वेऽपि परिजनाः स्वानि स्वानि राज्यानि प्रतिपाल्य स्वेच्छया पित्रोः समीपे गतागतमकुर्वन्। एवमवस्थितास्ते राजवाहनप्रमुखाः सर्वेऽपि कुमारा राजवाहनाज्ञया सर्वमपि वसुधावलयं न्यायेन परिपालयन्तः परस्परमैकमत्येन वर्तमानाः पुरंदरप्रभृतिभिरप्यतिदुर्लभानि राज्यसुखान्यन्वभूवन्।

इति श्रीमन्महामहोपाध्यायकविकुलसार्वभौमनिखिलविद्याकुमुदिनीशर्वरीश्वसरस्वतीनिःश्वसितकविदण्डिपण्डितविरचितं दशकुमारचरितं सम्पूर्णम्।

वयसि वर्तमान इति भावः। न सुखमवाप्स्यन्तीत्यस्यायं भावः—पितुः समीपेऽवस्थानेन भवतां स्वाधीनता न भविष्यति। स्वाधीनस्य यथा सुखं न तथा पराधीनस्येति। वानप्रस्थाश्रमाधिगमस्य वानप्रस्थाश्रमग्रहणस्य प्रतिषेधो निषेधस्तस्याग्रहो निर्बन्धस्तम्। गतागतं यातायातम्। वसुधावलयं भूमण्डलम्।

पूर्ववङ्गाङ्गनबोति ग्रामेऽस्मिन् धानुकाख्यके। कृष्णात्रेयमहावंश-प्राडुर्भूतो द्विजाग्रगोः॥
शशिभूषणतामातस्तातो मे शशिभूषणः। जननी शारदादेवी काश्यपान्वयसम्भवा॥
महामहोपाध्यायो द्वितीय इव गौतमः। स वामाचरणन्यायाचार्यवर्यो ममाग्रजः॥
ताराचरणनामाहं किङ्करोऽस्मि विपश्चिताम्। व्याख्यां दशकुमारस्य कौतुकेन व्यधामिमाम्॥
शाकेऽग्निरसवस्विन्दुमिते मकरसंक्रमे। विश्वेशानुग्रहात्काश्यां समाप्तिमियमागतम्॥

इति श्रीताराचरणभट्टाचार्यकृता बालविबोधिनी टीका समाप्ता।

आश्रम सेवन करनेसे न रोका—अपने हठको त्याग दिया। राजवाहनको पुष्पपुरमें राज्यसिंहासनपर बैठाकर वे सब अपने-अपने राज्यका शासन करने लगे। स्वेच्छासे कभी-कभी पिता-माताके दर्शनार्थ आ जाया करते। इस रीति से वे सभी कुमार राजवाहनकी आज्ञासे पूरे भूमण्डलका न्यायसे शासन करने लगे। एकमत होकर राज्य करते हुए उन लोगों द्वारा, इन्द्रादि देवोंको जो सुख प्राप्त नहीं होते, वे अति दुर्लभ सुख-भोग भोगे गये।

इस प्रकार पं० श्री [illegible] हिन्दी टीका समाप्त हुई।

उपहार
कांगड़ी
पुस्तकालय

आधुनिक शिक्षापद्धति के अनमोल रत्न

१ आदर्श-संस्कृत-हिन्दीकोशः—प्रो० रामस्वरूप शास्त्री
२ हिन्दी कुवलयानन्द—विमर्शाख्य हिन्दी व्याख्या। डॉ० भोलाशंकर व्या
३ हिन्दी दशरूपक—विमर्शाख्य हिन्दी व्याख्या।
४ हिन्दी साहित्यदर्पण—विमर्शाख्य हिन्दी व्याख्या। डॉ० सत्यव्रत सिंह
५ हिन्दी काव्यप्रकाश—'शशिकला' हिन्दी व्याख्या। " "
६ रसगंगाधर—'चन्द्रिका' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या [illegible] उत्प्रेक्षालंकारान्त
७ उत्तररामचरित—'चन्द्रकला' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या, नोट्स सहित
८ वेणीसंहारनाटक—'प्रबोधिनी' 'प्रकाश' संस्कृत-हिन्दी टीका " "
९ रत्नावली—'प्रकाश' संस्कृत-हिन्दी टीका प्रस्तावना, नोट्स सहित
१० कर्पूरमञ्जरी—'मकरन्द' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या, समालोचनादि सहित
११ प्रबोधचन्द्रोदय—'प्रकाश' संस्कृत-हिन्दी टीका समालोचनादि सहित
१२ चम्पूरामायण—'प्रकाश' संस्कृत हिन्दी टीका समालोचनादि सहित
१३ चम्पूभारत—'प्रकाश' संस्कृत-हिन्दी टीका समालोचनादि सहित
१४ हर्षचरित—'प्रकाश' संस्कृत-हिन्दी टीका समालोचनादि सहित
१५ विक्रमोर्वशीय—'प्रकाश' संस्कृत-हिन्दी टीका, नोट्स, प्रस्तावनादि सहित
१६ वासवदत्ता—'चपला' संस्कृत-हिन्दी टीका प्रस्तावनादि सहित
१७ प्रसन्नराघव—'चन्द्रकला' संस्कृत-हिन्दी टीका समालोचनादि सहित
१८ प्रतिमानाटक—'प्रकाश' संस्कृत-हिन्दी टीका समालोचनादि सहित
१९ प्रियदर्शिका—'प्रकाश' संस्कृत-हिन्दी टीका समालोचनादि सहित
२० मालतीमाधव—'चन्द्रकला' संस्कृत-हिन्दी टीका समालोचनादि सहित
२१ स्वप्नवासवदत्तम्—(नवीन संस्करण) प्रो० कान्तानाथ शास्त्री तैलंग कृत समालोचनादि सहित प्रबोधिनी प्रकाश संस्कृत-हिन्दी टीका
२२ कादम्बरी—चन्द्रकला-विद्योतिनी संस्कृत-हिन्दी टीका सहित पूर्वार्ध १२
२३ वाग्भटालङ्कार—संस्कृत-हिन्दी टीका। डा० सत्यव्रत सिंह

प्राप्तिस्थानम्—चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस, वाराणसी–१